



सुखस्य हि सां निवे

॥ हरिचन्द्रकृत-भाषाविशुद्धिसहिता. ॥

राज श्रीकृष्णदास इत्यनेन

सकामो "श्रीवैद्येश्वर" सुखाय लभे

अद्रयित्वा प्रकाशिता ।

सन्मय १९५८, माघ १८१३, सङ् १८२८.

६७ तगलिस्टाद्विक २५ तमराजनियमानुसारतो  
 राजलेखेन सर्वथा स्वायत्तीकृतोऽयं ग्रन्थः ।







चरक संहिता ।

महीदरज्यम् ।

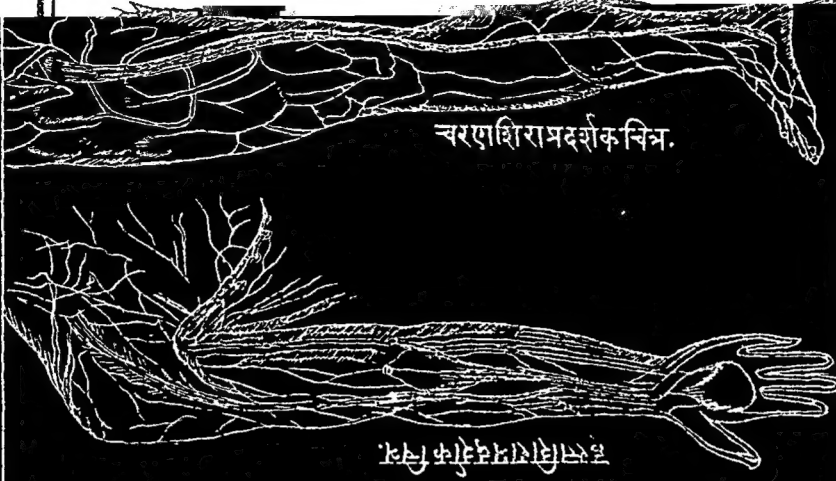
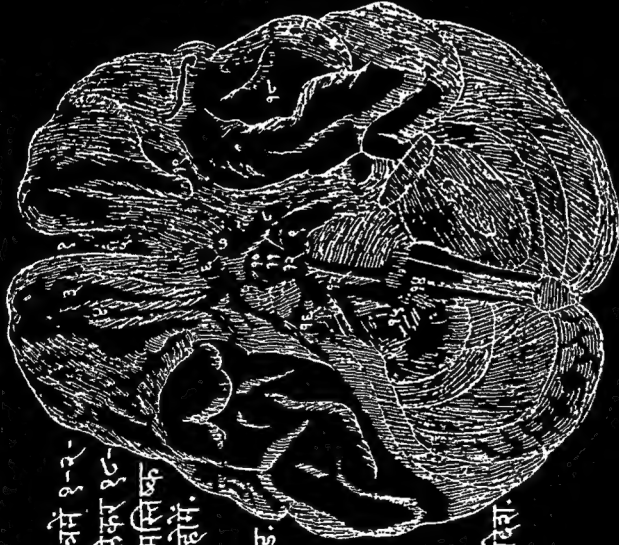






मस्तिष्क संबंधी चित्र. (Brain)

इस मस्तिष्क संबंधी चित्रमें १-२-  
३-४ चिन्ह इत्यादिसें लेकर १८-  
१९-२० चिन्ह पर्यंत मस्तिष्क  
कानीचेका प्रतिरूप निम्नमें.  
१ क्षुद्रमस्तिष्क.  
२ मस्तिष्कक्रान्नाग्रप्रखंड.  
३ प्राणस्नायु.  
४ दर्शनस्नायु.  
५ दशनस्नायुप्रदेश.  
६ नेत्रस्पर्शकस्नायु  
७ दृष्टिसंस्थि.  
८ पश्चाच्छिद्रान्वितप्रदेश.



चरणशिराप्रदर्शकचित्र.

हस्तशिराप्रदर्शकचित्र.

पार्श्वप्रदर्शक अस्थिपंजर

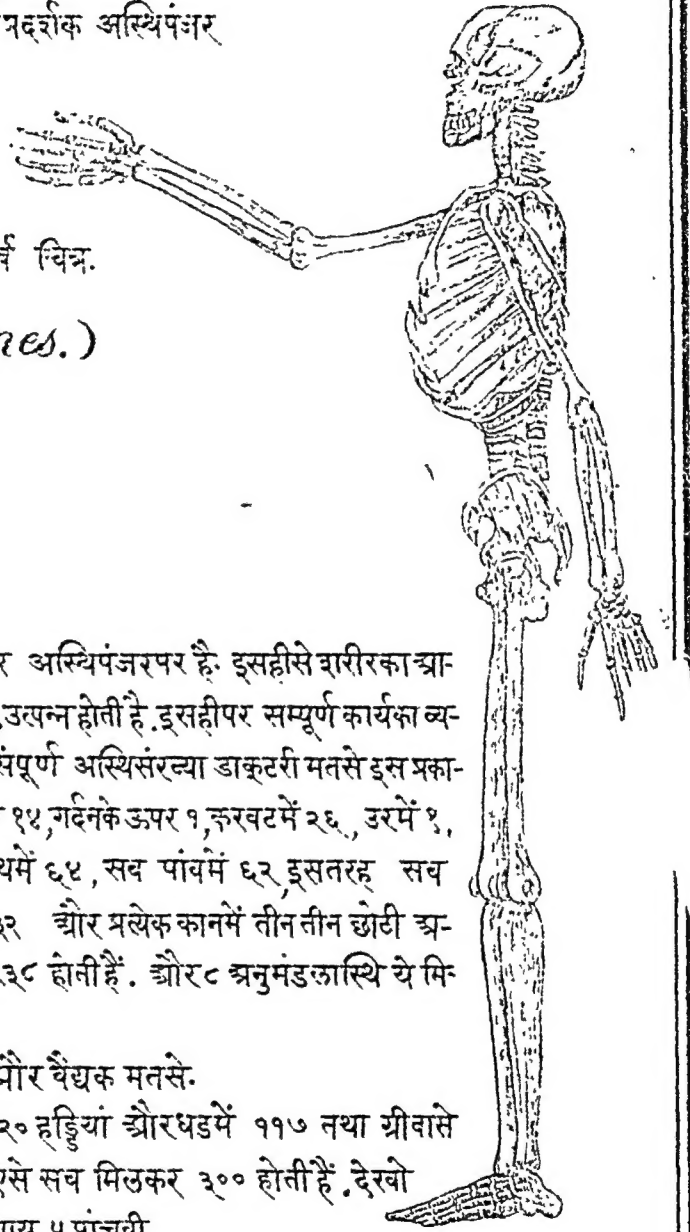
अस्थिप्रदर्शक पार्श्व चित्र.

(Bones.)

शरीरका मुख्य आधार अस्थिपंजरपर है. इसहीसे शरीरका आकार, दृढता, गमनशक्ति, उत्पन्न होती है. इसहीपर सम्पूर्ण कार्यका व्यवहार निर्भर है. शरीरमें संपूर्ण अस्थिसंख्या डाक्टरी मतसे इस प्रकार है. खोपड़ीमें ८, चहरोमें १४, गर्दनके ऊपर १, कुरवटमें २६, उरमें १, पांखोंमें २४, सम्पूर्ण हाथमें ६४, सब पांवमें ६२, इसतरह सब मिलकर २०० हैं. दांत ३२ और प्रत्येक कानमें तीनतीन छोटी अस्थि हैं सबमिलकर २३८ होती हैं. और ८ अनुमंडलास्थि ये मिलकर २४६ हैं.

और वैद्यक मतसे.

चारों हाथ पावोंमें १२० हड्डियां और धड़में ११७ तथा ग्रीवासे उपर ६३ हड्डियां हैं. ऐसे सब मिलकर ३०० होती हैं. देखो शरीरक स्थान अध्याय ५ पांचवी.

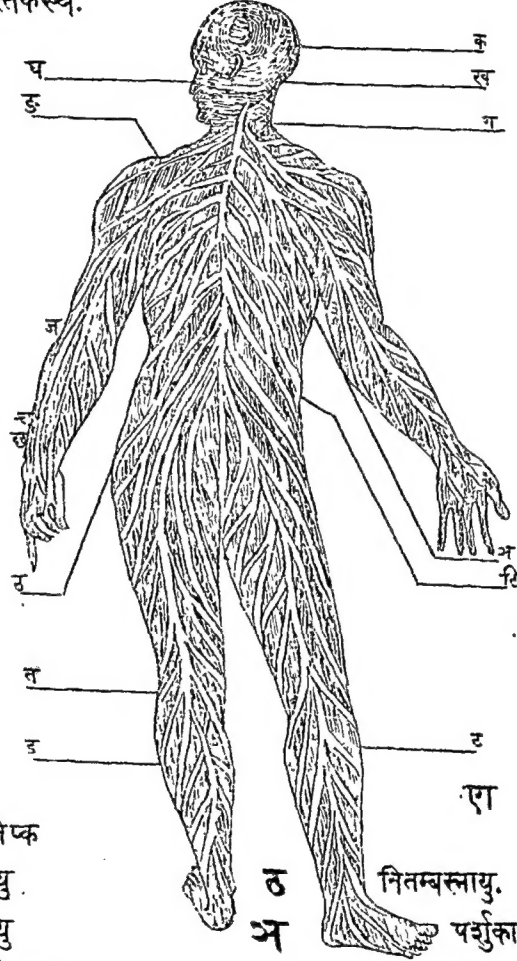




## स्नायुप्रदर्शकचित्र (Nervous)

इस चित्रमें क मस्तकस्थ.

बृहत् मस्तिष्क.



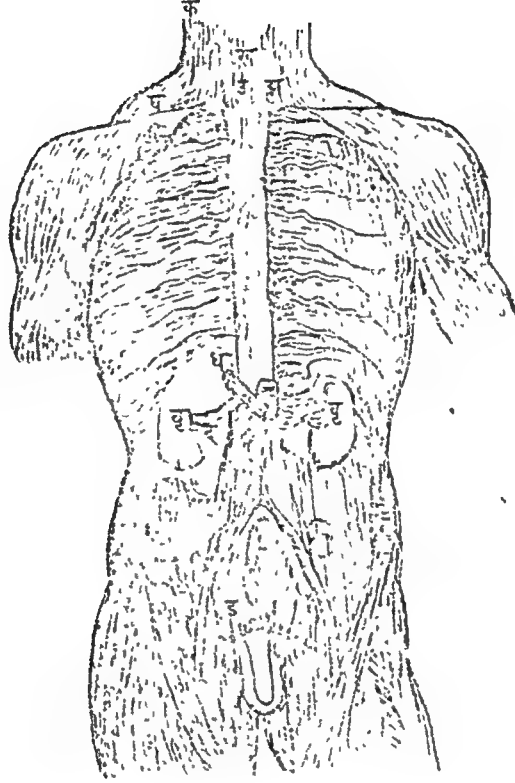
ख क्षुद्रमस्तिष्क  
ग घीवास्नायु  
घ चदनस्नायु  
ङ प्रगंडसन्धिस्नायु  
ज प्रगंडस्नायु  
च प्रकोष्ठस्नायु  
छ प्रकोष्ठनिम्नस्नायु  
झ करतलस्नायु

ठ नितम्बस्नायु.  
अ पशुकाभ्यंतरस्नायु  
इ जानुपश्चात्स्नायु.  
उ जान्वभिमुखस्नायु.  
ए पदनलस्नायु.  
दि कटिस्नायु  
त ऊरुस्थि त  
कथन

(योंके नाम)



## शिराप्रदर्शकचित्र.



इस शिराप्रदर्शक चित्रमें क रव ग्रीवा पार्श्वस्थ बाह्य तथा अभ्यंतर कंठशिरा.

ग अनारव्यानशिरा.

घ जघुनिम्नशिरा.

च वृक्षहृय.

द वृक्षशिरा.

ध ऊर्ध्ववृक्षग्रंथिशिरा.

उ रेतो रज्जुशिरा.

थ वागन्मिशिरा.

जघुके नीचे ऊ महाशिरा तथा बस्तीमें अधस्थ महाशिरा.

श्रीः ।  
अथ चरकसंहितायाः—  
विषयाऽनुक्रमणिकाप्रारंभः ।

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
<b>सूत्रस्थान ।</b>		सम्पूर्ण ऋषियोंका उनपुण्य कर्माओंकी रचना को सुनकर अति आनंदित होना तथा ऊँचे स्वर से ( सम्पूर्ण भूतोंपर दया हुई ) इस शब्दका उच्चारण करना. ५	
<b>प्रथमोऽध्यायः ।</b>		बुद्धि आदिकोंका अग्निवेश आदि ऋषियोंके प्रति प्रविष्ट होना और प्राणियोंके कल्याणके लिये भूमिपर उनके रचेहुए तंत्रोंकी प्रतिष्ठा का प्राप्त होना. ११	
दीर्घजीवित अध्यायका व्याख्यान १		आयुर्वेद शब्दकी निरुक्ति करना और तिसको दोनों लोकमें अति हितकारक समझना. ११	
दीर्घजीवनामिलायी देवताओंके ईश्वर भर- द्वाज ऋषिका इंद्रके पास जाना. ११		आकाशादि इंद्रियों सहित चेतन द्रव्य तथा इंद्रियोंसे रहित अचेतन द्रव्योंका कथन करना. ६	
ग्रहोंका कहाहुवा आयुर्वेद प्रजापति ने आदि में अश्विनी कुमारोंको ग्रहण कराना. ११		वातादिक को शरीर दोष और रजोगुणादिकों मनके दोषों का समूह जानना. ७	
अश्विनी कुमारोंसे आयुर्वेदका इंद्रको प्राप्त होना और इसी कारण से ऋषियोंके भेजे हुए भरद्वाजजीका इंद्रके पास जाना. ११		औषधोंसे शरीर दोषोंका निवृत्त होना और ज्ञान आदिसे मन दोषोंका निवृत्त होना ११	
तपादिकोंके विघ्नकारक रोगोंकी प्रकटता देखकर प्राणियोंपर दया करनेवाले अंगिरा आदि महर्षियोंका हिमाचल पर्वतपर इकट्ठा होना औरतहां धर्मादिकोंका मूल आरोग्य का निर्णय करना. २		स्वादु आदिरसों का संग्रह तथा उनके गुण और तीन प्रकारके द्रव्यका कथन. ८	
ध्यानहीनसे कल्याणमें विघ्नकारक रोगोंको जानकर भरद्वाजका इंद्रकी शरणमें जाना. ३		जंगमोंके प्रयोगमें आने वाले तथा भूमिकी औषधियों और चार प्रकारकी वनस्पत्यादि औद्धिद, वृद्धनके लक्षण और सोलह मूलिनी तथा उन्नीस फलिनियोंका कथन. ९	
इंद्र करके भरद्वाजके प्रति आयुर्वेदका कहना. ११		चार महा ( बड़े ) स्नेह और पांच लवण आठ मूत्र और आठही दूध तथा शोधन के लिए छः वृक्षोंका कथन. ११	
आयुर्वेदके प्रतापसे भरद्वाजको अभित आयुका प्राप्तहोना और सम्पूर्ण आयुर्वेदको ऋषियों के प्रति कथन करना. ४		सोलह मूलिनियोंके नाम और पृथक् २ तिनके प्रयोगोंका कथन. १०	
सब प्राणियोंपर दया करने वाले महर्षिपुन. र्वसुजीका अग्निवेश आदि छः शिष्योंके प्रति आयुर्वेदका कथन करना. ११			
भेल आदि ऋषियों ने अपने २ तंत्र रचकर ऋषि समूहसहित पुनर्वसुको सुनाना और तिनका अति प्रसन्न होना. ११			

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
उत्तीस फलिनियोंके नाम और पृथक् २ तिनकी क्रियाका कथन.	११	<b>तृतीयोऽध्यायः ।</b>	
चार प्रकारके घृतादि स्नेह तथा उनकी क्रिया और गुण व पांच प्रकारके सौवर्चलादि लघुण और उनके गुण व क्रिया का कथन.	११	आरग्वधीय अध्यायका व्याख्यान. २१	
भेड आदिकों के मूत्रका गुणागुण सामान्यता से कथन पूर्वक पृथक् २ रोगोंमें प्रयोगों का कथन.	११	कुष्ठादि रोगोंको शीघ्रही नष्ट करने वाले अमलतासादि प्रदेहोंका कथन.	११
पुनः भेड आदिकों में प्रत्येकों के मूत्र के पृथक् २ गुणों का कथन.	१२	शरीरकी खुजली आदि व्याधियों में कूटादि उषरन क्रियाका कथन.	२२
भेड आदिकों के दुग्धोंका पृथक् २ रोगों में प्रयोग तथा गुणागुण कथन	१३	कुष्ठ रोगके शान्तिके अर्थ दोनों हरिद्रादिक दूर्वाप्रलेपका कथन.	२३
वैद्य को अज्ञात औषधियोंका गोप आदिसे जानना.	१४	पुनः कुष्ठरोगपर चतुरंगुलादि औषधोंका कथन.	११
औषधियों के जाननेसे वैद्यकी प्रशंसा और नहीं जानने से अप्रशंसा का कथन.	१५	वात रोगपर कोलादि प्रदेहका कथन.	११
औषधियों के न जानने हारे वैद्योंके संग संभाषणके अवगुण तथा श्रेष्ठ वैद्योंके लक्षणों का कथन.	१६	शिरकी पीडामें तगरादि प्रदेह.	२४
इति दीर्घजीविताध्यायः ॥ १ ॥		पार्श्व पीडामें रायसनादि प्रलेप.	११
<b>द्वितीयोऽध्यायः ।</b>		निर्वाणपर केनालादि प्रदेह.	११
अपामार्ग तंडुलीय अध्यायका व्याख्यान.	१७	शीत नष्टकारक चंदनादि प्रदेह.	२५
उर्ध्व विरेचनादि रोगोंमें अपामार्गादि औषधियोंका कथन.	१८	शरीरकी दुर्गंधपर शिरसादि प्रदेह.	११
श्लेष्मपित्तके होनेपर और आमोशयकी व्याधिमें देहको दूषित न करके वमनके लिए मेनफलादिकों का कथन.	१९	इति आरग्वधीयानाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥	
पक्षाशयके दोषमें विरेचनके लिए निशोथादि औषधियों का कथन.	१८	<b>चतुर्थोऽध्यायः ।</b>	
उदावर्तादि रोगोंमें पाटलादि औषधियों का कथन.	१९	पड्विरेचन शताश्रितीय अध्यायका व्याख्यान.	११
दोषवान् मनुष्योंको स्नेहादि पांचकर्मोंका कथन.	१९	छःसौ विरेचनोंके पृथक् पृथक् संक्षेपसे योग तथा दूधादि छः विरेचनों के आश्रय.	२६
अष्टाईस प्रकारकी चवाम् और उनकी क्रिया तथा अनेक प्रकारके रोगोंमें तिनके प्रयोग और लक्षणोंका कथन.	१९	मधुरादि पांच कपायोंकी योनि तथा स्वरसादि पांच प्रकारके कपायोंकी कल्पना.	११
इति भेषजचतुष्के अपामार्गतंडुलीयो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥		पचास महाकपाय और तिन के पृथक् २ वर्गोंका कथन.	२७
		पुनः पचास महाकपायोंके लक्षण तथा तिनके पृथक् २ दश २ भेद करके ५०० पांचसौ कपायोंके गुणागुणका कथन.	२८
		पांचसौ कपायोंकी पूर्तिके लिये महाभि पुनर्वसुजीके प्रति अग्निवेशजीका प्रश्न तथा पुनर्वसुजीका तिनके प्रति उत्तर का कथन.	३६
		इति भेषजचतुष्कः ॥ ४ ॥	

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
<b>पंचमोऽध्यायः ।</b>		<b>षष्ठोऽध्यायः ।</b>	
मात्राश्रितिय अध्यायका व्याख्यान. ३७		तस्याश्रितिय अध्यायका व्याख्यान. ५१	
गुरुद्रव्यों तथा लघुद्रव्योंके गुणागुणका व्याख्यान और तिनको मात्रासे उपयोगमें लेने की पृथक् २ क्रिया. ३८		वर्षके छः ऋतुओं के विभागसे अंगोंका वर्णन और तिनअंगोंमें रवि उत्तरायण व दक्षिणायनके गुणागुण. ५१	
नेत्रोंके दर्दमें चंदनादि अंजन लगानेकी क्रिया तथा काल. ३९		शीतादि छः ऋतुओंमें पृथक् २ कर्तव्यता. ५२	
पुनः नेत्रोंके दर्दमें हरेण्वादि अंजन. ४०		इति तस्याश्रितियोऽध्यायः ॥ ६ ॥	
पुनः नेत्ररोगपर वर्तिका. ४१		<b>सप्तमोऽध्यायः ।</b>	
ऊर्ध्वविरचनादि रोगोंपर इवेतादि औषधियों का धून्नपान. ४१		<b>नवेगान्धारणीय अध्यायका व्याख्यान. ५८</b>	
स्नानादि आठकालोंमें बारसहित धून्नपानका प्रयोग और लक्षण. ४२		मूत्रादिवेगोंको रोकनेके अवगुण तथा तिनकी पृथक् २ चिकित्सा. ५८	
बिना समय धून्नपान करनेके अवगुण और तिसकी शान्ति तथा जिनको न पीना चाहिये उनके पीनेसे दारुण रोगों की उत्पत्तिका वर्णन. ४३		उभय लोकाभिलाषी मनुष्यको साहसादि वेगों के धारण करनेके गुण. ६०	
पृथक् २ रोगोंमें धून्नपान करनेकी विधि तथा अत्यंत धून्नपानके अवगुण. ४३		व्यायाम करनेके गुण तथा अधिक व्यायाम करनेके अवगुण. ६१	
नेत्रादिकोंके रक्षाके अर्थ नस्य क्रिया और तिसके गुणागुण. ४४		हरप्रकारके कर्मोंको मात्रासे अधिक सेवन करनेवालोंके अवगुण. ६१	
त्रिदोषादि रोगों पर चंदनादि तैलकी नस्यक्रिया. ४५		बुद्धिके अपराधसे ईर्ष्यादिकोंकी उत्पत्ति ६३	
दंतों करनेकी क्रिया और तिसके गुणागुण. ४६		पापांचारी मनुष्योंके सेवनमें अवगुण और बुद्धिमानोंके सेवनका गुण. ६४	
सुवर्णादिनिलेखन ( जिम्मी ) करनेकी क्रिया और लक्षण. ४७		दध्यादिक. पदार्थोंको अन्यके संयोगसे सेवन करनेके गुणागुण तथा काल. ६५	
करंजादि दंतों करनेके गुणागुण. ४७		विधिको त्यागकर दधि भक्षणकरनेके अवगुण. ६५	
प्रतिदिन शिरमें तेल लगानेके गुण और कान में तेलडोलनेके गुणागुण. ४७		इति न वेगान्धारणीयोऽध्यायः ॥ ७ ॥	
अभ्यंग करनेके गुणागुण. ४८		<b>अष्टमोऽध्यायः ।</b>	
स्नान करनेके गुणागुण. ४९		<b>इन्द्रियोपक्रमणीय अध्यायका व्याख्यान. ६६</b>	
निर्मल वस्त्र और सुगंधित पुष्प व रत्नादिकों के धारण करनेके गुणागुण. ५०		इन्द्रियाधिकारका कथन. ६६	
केशादिकोंको साधन करनेके गुणागुण. ५०		चक्षुःवादि पांच इंद्रियों और पांच इंद्रियोंके द्रव्यादिकोंका कथन. ६७	
पादत्राण धारण करनेके गुणागुण. ५०		मनादि अध्यात्म द्रव्योंके लक्षण तथा क्रियाका वर्णन. ६७	
छत्र धारण करनेके गुणागुण. ५०			
दंढधारण करनेके गुणागुण. ५०			
इति मात्राश्रितियोनाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥			

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
हिताभिलाषी मनुष्यको सदैव सदाचरणकी कर्तव्यता, और पृथक् २ सदाचरण के लक्षणोंका वर्णन तथा सदाचरणका उपदेश. ६८		आसोपदेशादि चार प्रकारकी परीक्षा करके दो प्रकारके सब सत् असत् की उपपत्ति. ११	
दध्यादिक वस्तुओंको न खानेकी शिक्षा. ७२		आसोपदेशादिकोंकी पृथक् २ सविस्तर उपपत्ति. ११	
सदाचरण करनेवालोंके गुण. ७६		तीन प्रकारके उपस्तम्भों के लक्षण. ९१	
इति इन्द्रियोपक्रमणोऽध्यायः ॥ ८ ॥		तीन प्रकारका चल तिसके लक्षण. ११	
<b>नवमोऽध्यायः ।</b>		तीन प्रकारके आयतन तथा मिथ्या योग. ११	
खुड्डाक चतुष्पाद अध्यायका व्याख्यान. ११		तीन प्रकारके रोगोंके लक्षण. ९४	
विकारकी शान्तिके लिये गुणवान् वैद्यादिकों का कथन. ११		तीन प्रकारके रोगों के मार्ग. ९५	
विकार और प्रकृति तथा सुख दुःखके लक्षण. ११		तीन प्रकारके वैद्योंके लक्षण. ९६	
चिकित्साके लक्षण. ११		तीन प्रकारकी औषध के ल० ११	
निश्चयवानादि वैद्योंके चारगुण. ७७		रोगपीडित मनुष्यको प्रथमतः चिकित्सा करनेकी आवश्यकता. ९७	
आधिकतादि चार औषधोंके गुण. ११		इति तिस्रेपणीयाध्यायः ॥ ११ ॥	
उपचारादि ग्रन्थोंके चार गुण. ११		<b>द्वादशोऽध्यायः ।</b>	
आतुरके स्मरणादि चार गुण. ११		वात कलाकलीय अध्यायका व्याख्यान ९८	
मूर्ख वैद्यकी निंदा तथा प्राणामिसर वैद्यकी प्रशंसा. ७८		वातकी कलाको जाननेके अभिलाषी सांङ्कृत्या यनादि ऋणिगणोंका पृथक् २ परस्पर प्रश्रोत्तरका होना और महर्षि पुनर्वसुजीके वचनोंकी सब ऋणियों करके प्रशंसा होना तथा वातके छः प्रकार के गुण व चार प्रकारका कर्म और कफ पित्तके पृथक् २ कर्मोंका कथन. ११	
वैद्य शब्दकी निरुक्ति. ११		इति वातकलाकलीयोऽध्यायः ॥ १२ ॥	
इति खुड्डाक चतुष्पादाध्यायः ॥ ९ ॥		<b>त्रयोदशोऽध्यायः ।</b>	
<b>दशमोऽध्यायः ।</b>		स्नेहाध्यायका व्याख्यान १०४	
महाचतुष्पाद अध्यायका व्याख्यान. ७९		महर्षि पुनर्वसुजीके प्रति अग्निवेश करके स्नेह तथा उनकी योन्यादिकोंके विषे प्रश्न. ११	
पुनर्वसुजी करके आरोग्यका दाता सोलह प्रकारका चतुष्पाद भेषजका मंडन. ११		अग्निवेशके प्रति पुनर्वसु करके स्थावरजंगम रूपसे दो २ प्रकारकी स्नेहोंकी योनिका कथन. १०५	
भेषजजी करके चतुष्पाद भेषजका खंडन. ८०		स्थावरादि योनियोंके पृथक् २ नामोंका कथन. ११	
पुनः पुनर्वसुजी करके दृष्टान्तसहित मंडन. ८१		तिलके तेलके गुणागुण. १०६	
असाध्य रोगीकी चिकित्सा करने हारे वैद्य की निंदा. ८२		घृतादि चार स्नेहोंके गुणागुण. ११	
साध्यरोगों और असाध्य रोगोंके भेद व लक्षण. ११		वसाके गुणागुण. ११	
एकपथ और द्विपथ रोगोंके लक्षण तथा द्विदोषज और त्रिदोषज रोगमें कर्तव्यता. ८३		मज्जाके गुणागुण. ११	
इति महाचतुष्पादाध्यायः ॥ १० ॥			
<b>एकादशोऽध्यायः ।</b>			
तिस्रेषणीय अध्यायका व्याख्यान. ८४			
प्राणेषणादि तीन एषणावोंका सविस्तरवर्णन. ११			
नास्तिकोंकी अप्रशंसा. ८७			

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
घृतादि स्नेहोंको पीनेके ऋतु.	१०७	अवगाहन स्वेदके ल०	१०७
ओदनादि चौबीस स्नेहोंकी विचारणा.	१०८	जेन्ताक स्वेदके ल०	१०८
पुनः चौसठ स्नेहोंकी विचारणाका कथन.	१०९	अदमघन स्वेदके ल०	१२५
उत्तम मात्रा करके स्नेह पीनेके गुण.	१०९	कर्पूस्वेदके ल०	१२५
घातादि प्रकृतियोंको घृत पीनेके गुण.	११०	कुटी स्वेदके ल०	१२५
कफादि प्रकृतियोंको तैल सेवनके गुण.	११०	मू स्वेदके ल०	१२५
वातादि सहनशीलोंको वसा पानके गुण.	११०	कूपस्वेदके ल०	१२५
दीप्तान्यादिकोंको मज्जापान के गुण.	११०	होलाक स्वेदके ल०	१२६
रूक्षादि प्रकृतियोंको स्नेह पानके गुण.	१११	अग्नि गुणोंके बिना व्यायामादि दश स्वेद	१२६
स्नेहादि किनको न पीना चाहिये.	१११	कारकोंका वर्णन.	१२६
स्नेह अस्नेह के लक्षण.	११२	द्वंद्वस्वेदके ल०	१२६
स्नेहपानके पश्चात् कर्त्तव्यता.	११२	इति स्वेदाध्यायः ॥ १४ ॥	
मृदुकोष्ठियोंको गुहादि विरेचन.	११२	<b>पंचदशोऽध्यायः ।</b>	
पित्ताधिक ग्रहणीमें स्नेहादि पानके अवगुण.	११३	उपकल्पनीय अध्यायका व्याख्यान. १२७	
कोष्ठादि रोगोंकी स्नेहके विभ्रमसे उत्पत्ति तथा	११३	औषधियोंकी कल्पना के विषे पुनर्वसुजीका	
तिनके दमनार्थ उल्लेखन.	११४	तथा अग्निवेशका परस्पर प्रश्नोत्तर.	१२७
स्नेह पीनेके नियम.	११४	गृहादि अनेक प्रकारके संभारोंकी कर्त्तव्यता.	१२७
स्नेहनमें हितकारक लावादिकोंका रस.	११५	मेन फलके कषायकी मात्राके पानकी क्रिया	
कुष्ठादि रोगियोंको स्नेह पानमें कर्त्तव्यता.	११५	तथा मात्राके पानानंतरकी कर्त्तव्यता.	१२७
शीघ्रतासे स्नेह पीनेके अवगुण.	११६	योग और अतियोगके ल०	१२८
इति स्नेहाध्यायः ॥ १३ ॥		अतियोगसे उत्पन्न आध्मानादि उपद्रवोंकी	
<b>चतुर्दशोऽध्यायः ।</b>		क्रिया.	१२८
स्वेदाध्यायका व्याख्यान.	११७	इति उपकल्पनीयोऽध्यायः ॥ १५ ॥	
स्वेदोपयोगियोंका कथन तथा उनकी स्वेदक्रि-		<b>षोडशोऽध्यायः ।</b>	
याका कथन.	११७	चिकित्सा प्रभृतीय अध्यायका	
अत्यंत स्विन्नके लक्षण.	११८	व्याख्यान.	१२७
स्वेद करानेमें अयोग्योंका कथन.	११८	सम्यग्विरेचनके लक्षण.	१२७
स्वेद करानेमें योग्योंका कथन.	११९	अविरेचनके ल०	१२८
पिंडस्वेदमें तिलादिकोंकी योजना.	११९	अतियोगके ल०	१२८
कफ वालोंको स्वेदक्रियाकी विधि.	१२०	अनेक दोषोंके ल०	१२८
नाडी. स्वेदकी विधि.	१२०	विशुद्धकोष्ठ मनुष्यके गुणागुण तथा संशोध	
उपनाहकी क्रिया तथा अति सेवनके गुणागुण.	१२०	न पानके लक्षण व गुणागुण.	१२९
स्वेद कारक तेरह संकरादिकोंका वर्णन.	१२१	मुखदाई अभ्यंगादिकोंका वर्णन.	१२९
संकर स्वेदके लक्षण.	१२१	चिकित्साके विषे अग्निवेश तथा पुनर्वसुजीका	
प्रस्तर स्वेदके ल०	१२२	परस्पर प्रश्नोत्तर.	१४०
नाडी स्वेदके ल०	१२२	इति चिकित्सा प्रभृतीयोऽध्यायः ॥ १६ ॥	
परिपेकस्वेदके ल०	१२२		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
<b>सप्तदशोऽध्यायः ।</b>		<b>अष्टादशोऽध्यायः ।</b>	
कियन्तःशिरसीय अध्यायका व्या-		त्रिशोफीय अध्यायका व्याख्यान. १५६	
ख्यान.	१४२	वातादि निमित्तसे उत्पन्न शोफोंके लक्षण	
शिरादि रोगोंके विषे आग्रवेश व पुनर्वसुजी-		तथा तिनकी पृथक् २ उपपत्ति-	"
का परस्पर प्रश्नोत्तर.	"	छर्द्यादि सात प्रकारके शोफोंके लक्षण तथा	
तीन प्रकारके दोषोंकी गतिका वर्णन.	"	तिनसे उत्पन्न रोगोंका पृथक् २ वर्णन.	१६०
शिरके रोगोंके लक्षण.	१४३	विकारादिकोंको जाननेकी शिक्षा.	१६३
शोकादिकोंकरके हृदय प्रविष्ट वायुके अवगुण.	१४५	उत्साहादि वायुके अविकारी कर्म.	"
उष्णादिकोंसे पित्तकी कुपितता.	"	दर्शनादि पित्तके अविकारी कर्म.	१६४
पित्तोद्भव हृदयके रोगोंके लक्षण.	"	स्नेहादि कफके अविकारी कर्म.	"
कफोद्भव हृदयके रोगोंके लक्षण.	"	इति त्रिशोफीयोऽध्यायः ॥ १८ ॥	
सन्निपात रोगके ल०	१४६	<b>ऊनविंशोऽध्यायः ।</b>	
हृद्दोगके ल०	"	अष्टोदरीय अध्यायका व्याख्यान.	"
तेरह प्रकार तथा पञ्चस्र प्रकारके सन्निपा-		आठ उदरादिकोंका सविस्तर वर्णन और	
तके ल०	"	तिनके पृथक् २ स्पष्टतासे लक्षणोंका कथन.	"
वातादिकोंके क्षय तथा वृद्धिसे उत्पन्न उप-		इति अष्टोदरीयोऽध्यायः ॥ १९ ॥	
द्रवोंका कथन.	१४७	<b>विंशोऽध्यायः ।</b>	
रसक्षयके लक्षण.	१४९	महारोगाध्यायका व्याख्यान.	१७०
रक्तक्षयके ल०	"	चार प्रकारके आगन्तवादि भेद करके रोगोंका	
मांसक्षयके ल०	"	सविस्तर वर्णन तथा तिनकी पृथक् २ उप-	
मेदाक्षयके ल०	"	पत्ति और अस्सी वातके विकारोंका कथन.	"
अस्थिक्षयके ल०	"	चालीस पित्तके विकारोंके ल०	१७४
मज्जाक्षयके ल०	"	बीस कफके विकारोंके ल०	१७६
मलक्षयके ल०	१५०	इति महारोगाध्यायः ॥ २० ॥	
मूत्रक्षयके ल०	"	<b>एकविंशोऽध्यायः ।</b>	
ओजक्षयके ल०	"	अष्टौ नितीय अध्यायका व्याख्यान. १७८	
क्षयके हेतु.	"	अति दीर्घादि आठ निन्दित पुरुषोंका कथन.	"
कफादिकोंके बढनेके ल०	"	अति स्थूलके आठ दोष.	१७९
शराविकादि सात पिडिकाओंकी उत्पत्ति तथा		अतिस्थूलताकी उत्पत्ति तथा लक्षण.	"
तिनके लक्षण.	१५१	पुनःअतिस्थूलके उपद्रव.	१८०
ग्रंथिके उत्पन्न होनेके लक्षण तथा उपद्रव.	१५२	अतिकृशताकी उत्पत्ति तथा दोष और लक्षण.	"
सर्व प्रकारकी विद्रवियोंके ल०	१५३	स्थूलकृशमनुष्योंको गुरु लघु संतर्पणका कथन. १८१	
विद्रवियोंके साध्यासाध्यके ल०	"	अतिस्थूलतापर गिलोयादि प्रयोग.	१८२
नृष्णादि पिडिकाओंके ल०	१५५	अतिकृशतापर स्वप्नादि प्रयोग.	"
कालकीगतिके ल०	"		
ओजके ल०	१५६		
इति कियन्तः शिरसीयोऽध्यायः ॥ १७ ॥			

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
निद्रामें सुरादिकोंका अधीनत्व.	१८३	दुष्ट शोणितकी कुलत्वादिकों करके उत्पत्ति	
गान अध्ययनादिसेवी मनुष्योंको दिनमें शयन		तथा शोणितोद्भव मुखपाकादि रोग.	१९७
का कथन.	१८४	वातादि करके उत्पन्न शोणित तथा विशुद्ध	
दिनमें शयनके काल.	"	शोणितके ल०	१९८
मेदस्यादिकोंको दिनमें निद्राका असेवन.	"	विशुद्धवर्णके ल०	१९९
दिनमें शयन करनेके अवगुण.	"	दुष्टमलोद्भवमदादि रोगोंका कथन	"
नष्टहुई निद्राको ले आनेवाले पदार्थ.	१८५	वातादि मदीय रोगोंके ल०	२००
निद्राके भंग करनेवाले पदार्थ.	"	पुनःवातादि मदीका सविस्तर वर्णन.	"
निद्राके प्रकार.	१८६	संन्यास रोगकी उत्पत्ति.	२०१
इति अष्टौनिन्दितोऽध्यायः ॥ २१ ॥		संन्यास रोगोद्भव उपद्रव.	"
<b>द्वाविंशोऽध्यायः ।</b>		संन्यास रोगीकी क्रिया.	"
लंघन वृंहणीय अध्यायका व्या-		संन्यास रोगीको संज्ञाके उपाय.	२०२
ख्यान.	१८७	मदादिकोंकी औषध.	"
लंघनादिकोंके विषे अग्निवेश व पुनर्वसुजीका	"	इति विधिशोणितोऽध्यायः ॥ २५ ॥	
परस्पर प्रश्नोत्तर.	"	<b>५ पञ्चविंशोऽध्यायः ।</b>	
पाचनेसे कफादिरोगियोंकी चिकित्सा.	१८९	यज्जःपुरुषीय अध्यायका व्याख्यान २०३	
वृंहण और लाघव रोगोंकी पृथक् २ ऋतुओंमें	"	धर्मवान पुनर्वसुजीके सामने एकत्रित हुये	
देनेकी क्रिया.	"	ऋषियोंका आत्मादिसमूह तथा रोगोंकी	
द्रवादिस्तेभनोंका कथन.	१९०	उत्पत्तिके विषेपरस्पर पृथक् प्रश्नोत्तर और	
लंघनीयोंके लक्षण.	"	महार्धपुनर्वसुजी करके सबका समाधान.	"
वृंहणके लक्षण.	१९१	हित सहित आहारोंके समूहके विषेअग्निवेश व	
रुक्षित व अतिस्तमितके ल०	"	पुनर्वसुजी करके सविस्तर प्रश्नोत्तर.	२०७
इति लंघन वृंहणीयोऽध्यायः ॥ २२ ॥		विकारोंके श्रमनार्थ एकसोवावन १५२ मुख्य	
<b>त्रयोविंशोऽध्यायः ।</b>		योगोंका कथन.	२०८
सन्तर्पणीय अध्यायका व्याख्यान. १९२		चौराही आसवोंके विषेअग्निवेश व नगवान	
स्निग्धादिकों करके सन्तर्पण करनेके उपद्रव.	१९२	अत्रिय करके परस्पर सविस्तर प्रश्नोत्तर.	२१६
सन्तर्पणोद्भव रोगोंकी चिकित्सा.	१९३	इति यज्जःपुरुषीयोऽध्यायः ॥ २६ ॥	
मृषकृच्छादिकोंपर कूटादि प्रयोग.	"	<b>षड्विंशोऽध्यायः ।</b>	
प्रमेहादि रोगोंपर द्यूषणादि सन्तर्पण.	"	आत्रेय भद्रकापीय अध्यायका	
अपतर्पणोद्भव उपद्रव तथा औषध क्रिया.	१९४	व्याख्यान.	२१८
ज्वरादि रोगपर शर्करादि मध.	१९५	रस और आहारके निनिश्चयके विषेपरमर्णाक	
मद्यविकारपर खर्जूरदि मध.	१९६	चैत्ररथ वनमें उपस्थित हुए आत्रेयादि मह	
इति सन्तर्पणीयोऽध्यायः ॥ २३ ॥		र्षियोंका परस्पर प्रश्नोत्तर.	"
<b>चतुर्विंशोऽध्यायः ।</b>		मयूरादिछःरसोंकीयोनि तथा पृथक् २ गुण व	
विधिशोणितोऽध्यायका व्याख्यान. १९७		लक्षण.	२२०
शुद्ध शोणित के गुण.	"		



विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
यथासंख्य करके बीस २० द्रव्यादिकोंके द्रव्य- रस ठ भेद व ल०	२२२	<b>अष्टाविंशोऽध्यायः ।</b>	
पंद्रह चतुष्करसके द्रव्योंकी पृथक् पृथक् तिरसठ २३ संख्या.	२२३	<b>विविधा शितपीतिय अध्यायका ।</b>	
रस और अन्नरसकी कल्पनासे तिरसठ २३ असंख्य.	"	<b>व्याख्यान.</b>	२८६
सिद्धिके परत्वादि उपाय और चिकित्साके लक्षण.	२२४	अग्नितादि हितकारी अन्नके ल० व गुणागुण.	"
मधुरादिछः रसोंके विभाग तथा उत्पत्ति व गुण और ल०.	२२५	आहार प्रसाद रस करके किष्ठादिकों की उ- त्पत्ति.	"
विषाक्तोंके लक्षण व गुणागुण.	२२२	धातु प्रसादके गुणागुण और सविस्तर लक्षण.	२८७
तीक्ष्णादि आठ प्रकारके वीर्यके ल०.	२३३	हित अहित पदार्थों के सेवनाद्भव उपद्रवोंके विषे अग्निवेश व आवेयजी करके सविस्तर	
प्रभावके कारण व लक्षण.	२३४	प्रश्नोत्तर.	२८८
मधुरादिछः रसोंके विज्ञानका वर्णन.	"	रसोद्भव अश्रद्धादि रोगोंका कथन.	२९०
विरोधी आहारके विषे अग्निवेश व आवेयजी करके परस्पर सविस्तर प्रश्नोत्तर.	२३५	रक्तोद्भव रोग.	"
इति भद्रकापीयोऽध्यायः ॥ २६ ॥		मांसोद्भव रोग.	"
<b>सप्तविंशोऽध्यायः ।</b>		मेदोद्भव रोग.	"
<b>अन्नपान विधि अध्यायका व्या- ख्यान.</b>	२४३	अस्थिव मज्जासे प्रकट रोग.	"
अग्निवेशके प्रतिपुनर्वसुकरके हितअहितके ज्ञानार्थ संपूर्ण अन्नपान विधिका सविस्तर कथन.	"	स्नायु आदिकों में दूषित मलके अवगुण.	२९१
द्राक्ष शूकधान्यादि वर्गोंके नामतया पृथक् २ वर्गोंका कथन.	२४४	रसोद्भव रोगोंकी औषध.	"
शूक धान्य व शमी धान्यकी श्रेष्ठता के ल०	२८०	मांसोद्भव रोगोंकी चिकित्सा.	२९२
वर्जने योग्य मांस.	"	अस्थ्युद्भव रोगोंकी चिकित्सा.	"
मांस रसके गुण.	२८१	मज्जाव शुक्रोद्भव रोगोंकी चिकित्सा.	"
वर्जने योग्य शाक तथा फूल.	"	पथ्य अपथ्योंके गुणागुण.	२९४
योग्य अयोग्य जलेके दोषप्रकारके भेद तथा परीक्षा.	२८२	इत्यन्नपान चतुष्कः ॥ २८ ॥	
तृप्तादिकोंका कारक अनुपान कर्मके लक्षण तथा सविस्तर वर्णन.	"	<b>एकोन त्रिंशोऽध्यायः ।</b>	
गुरु लघु भक्ष्योंका कथन.	२८३	<b>दश प्राणायतनीय अध्यायका व्याख्यान.</b>	"
इत्यन्नपानविधि अध्यायः ॥ २७ ॥		प्राणामिसरके ल०.	२९५
		दोषप्रकारके वैद्योंके विषे अग्निवेश व पुनर्वसुजी करके परस्पर प्रश्नोत्तर.	"
		त्यागने योग्य वैद्य.	२९९
		इति दशप्राणायतनीयाध्यायः ॥ २९ ॥	
		<b>त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।</b>	
		<b>दशमूलीय अध्यायका व्याख्यान.</b>	३००
		दशमहा मूलोंका सविस्तर वर्णन.	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
प्राणादिकों में उत्तमों का कथन.	३०१	<b>द्वितीयोऽध्यायः ।</b>	
आयुर्वेदके जानने वालोंके लक्षण.	३०२	<b>रक्तपित्तनिदानका व्याख्यान.</b>	३२३
तंत्र तथा आयुर्वेदके विषे अग्निवेश व पुनर्वसुजीका परस्पर प्रश्नोत्तर.	"	यवकादिकोंके खानेसे लोहित पित्तकी उत्पत्ति.	३२४
हित आयुके लक्षण.	३०३	लोहित पित्तके पूर्वरूप तथा उपद्रव और ल०	३२५
अहित आयुके लक्षण.	३०४	रक्तपित्तकी उत्पत्ति तथा यत्न.	३२६
आयुके प्रमाण तथा अप्रमाणके लक्षण.	"	साध्यासाध्य रक्तपित्तके लक्षण.	३२७
आयुर्वेदके ज्ञाततादि गुण.	३०५	इति रक्तपित्तनिदानम् ॥ २ ॥	
आयुर्वेदके काय चिकित्सादि आठ अंग और संपूर्ण धर्मोंके प्राप्तिके लिये तिरुके पढनेकी प्रशंसा.	३०६	<b>तृतीयोऽध्यायः ।</b>	
तंत्रके श्लोक स्थानादि आठ स्थानके पृथक् २ भेद व लक्षण.	३०७	<b>गुल्म निदानका व्याख्यान.</b>	३२९
एकसौ बीस १२० अध्यायोंके पृथक् २ नामों का कथन.	३०८	वातादि पांच गुल्मोंके विषे अग्निवेश व पुनर्वसुजीका सविस्तर प्रश्नोत्तर.	"
ज्वरादि कल्पोका कथन.	३१०	वात गुल्मके ल०	"
पांच कर्मादि बारह सिद्धियोंका कथन.	३११	पित्त गुल्मके ल०.	३३१
तंत्र शब्दकी उत्पत्ति.	"	श्लेष्म गुल्मके ल०.	३३२
पाल्लविक उपद्रवोंका वर्णन.	३१२	सन्निपात गुल्मके ल०	३३३
शास्त्रद्रूपक वैद्यकी निन्दा.	३१३	शोणित गुल्मके लक्षण.	"
उत्तम वैद्योंके लक्षण तथा प्रशंसा.	"	मूढ सगर्भाके लक्षण.	"
इति दशमहामूलीयोऽध्यायः ॥ ३० ॥		पांच गुल्मोंके पूर्वरूप.	"
इति सूक्त स्थानम् ।		गुल्मोंकी चिकित्साका कथन.	३३४
<b>( अथ निदानस्थानम् )</b>		इति गुल्मनिदानम् ॥ ३ ॥	
<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>		<b>चतुर्थोऽध्यायः ।</b>	
<b>ज्वर निदानका व्याख्यान.</b>	३१४	<b>प्रमेह निदानका व्याख्यान.</b>	३३५
हेत्वादि निदानोंके नाम और भेद तथा सविस्तर वर्णन.	"	त्रिदोषोद्भव प्रमेहोंके लक्षण तथा विघातादि हेतुओंका कथन.	"
विकारोंके आदिमें वातादि आठ ज्वरोंकी उत्पत्ति और तिनके लिंग व भेद तथा सविस्तर लक्षणोंका कथन.	३१६	प्रमेहोंके निदान तथा दूष्यविशेष.	३३६
वृत्तके गुणागुण.	३२३	सन्निपातमें अधिक श्लेष्मोद्भव उपद्रव.	"
इति ज्वरनिदानम् ॥ २ ॥		शरीरागत क्लेदके उपद्रव.	३३७
		उदकमेहादि दश श्लेष्म प्रमेहोंकी उत्पत्ति तथा नाम.	"
		दशउदक मेहादिकोंके पृथक् २ लक्षण.	३३८
		क्षार प्रमेहादिछःपित्त प्रमेहोंकी उत्पत्ति तथा नाम व पृथक् २ लक्षण.	३३९
		वसामेहादि चार असाध्य प्रमेहोंकी उत्पत्ति व नाम.	३४१

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
वसामेहीके ल०.	३४२	उन्मादोंके पूर्वरूप.	३५३
मग्नामेहीके लक्षण.	"	वातोन्मादके लिंग.	३६०
हस्तिमेहीके ल०.	"	पित्तोन्मादके लिंग.	"
मधुमेहीके ल०.	"	कफोन्मादके लिंग.	३६१
प्रमेहोंके पूर्वरूप.	"	असाध्य सन्निपातिक उन्मादके लिंग.	"
प्रमेहोंके उपद्रव.	३४३	तीनों साध्य उन्मादोंका संश्लेषकों करके	
इति त्र्यम्बहनिदानम् ॥ ४ ॥		साधन.	"
<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		आंगतु उन्मादके लिंग.	३६२
कुष्ठनिदानका व्याख्यान.	३४४	प्रज्ञापरार्थके अवगुण.	"
कपाल कुष्ठादि सात प्रकारके असाध्य कुष्ठोंकी		देवादि प्रकोपोन्मादके पूर्वरूप.	"
उत्पत्ति तथा नाम.	"	उन्मादकारका आघातके काल०.	३६३
सर्व कुष्ठोंके निदान.	३४५	साध्या साध्य उन्मादोंके ल०.	३६४
सर्व कुष्ठोंके पूर्वरूप.	३४६	इत्युन्मादनिदानम् ॥ ८ ॥	
कपालकुष्ठके ल०.	"	<b>अष्टमोऽध्यायः ।</b>	
उदुंबर कुष्ठके ल०.	३४७	अपस्मार निदानका व्याख्यान.	३६६
परिमंढल कुष्ठके ल०.	"	वातादि चार अपस्मारोंके नाम व उत्पत्ति.	"
ऋष्यजिह्वा कुष्ठके ल०.	"	अपस्मारोंके पूर्वरूप.	३६७
पुंडरीक कुष्ठके ल०.	३४८	वातापरमारीके ल०.	"
सिध्म कुष्ठके ल०.	"	पित्तापरमारीके ल०.	"
काकणक कुष्ठके ल०.	"	श्लेष्मा परमारीके ल०.	३६८
वातादि कुष्ठोंके अवगुण तथा उपद्रव.	३४९	असाध्य सन्निपातापरमारीके ल०.	"
इति कुष्ठनिदानम् ॥ ६ ॥		पुनःअपस्मारोंकी उत्पत्ति.	"
<b>षष्ठोऽध्यायः ।</b>		ज्वर व राज्यक्षमाकी उत्पत्ति.	३६९
शोषनिदानका व्याख्यान.	३५०	संक्षेपसे रोगोंके पृथक् २ निदान.	"
साहसादि चार शोषों के नाम	"	इत्यपरमार निदानम् ।	
साहस शोष की उत्पत्ति व लक्षण.	"	<b>निदानस्थानं समाप्तम् ।</b>	
संधारण शोष की उत्पत्ति व लक्षण.	३५२	<b>( अथ विमानस्थानम् )</b>	
क्षय शोष की उत्पत्ति व लक्षण.	३५३	<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>	
विषमाशन शोषकी उत्पत्ति व ल०.	३५५	रसविमानका व्याख्यान.	३७३
राजयक्ष्माके पूर्वरूप और एकादशरूप.	३५७	मधुरादि छःरसोंके गुणागुण.	"
साध्यासाध्य राज्यक्ष्माके ल०.	३५८	वातादि तीन दोषोंके गुणागुण.	३७४
इति शोषनिदानम् ॥ ७ ॥		एक २ दोषोंका तीन २ रसों करके विनाश.	"
<b>सप्तमोऽध्यायः ।</b>		तथा उत्पत्ति.	"
उन्माद निदानका व्याख्यान.	"	द्रव्यादिकोंके प्रभाव का पृथक् २ सविस्तर वर्णन.	"
वातादि पांच उन्मादोंके नाम व उत्पत्ति.	"		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
पिप्पल्यादि द्रव्योंके पृथक् २ गुणगुण.	३७६	कालाकाल मृत्युके विषे अग्निवेश व पुनर्व-	
सात्म्यशब्दकी उपपत्ति.	३७८	सुजीका प्रश्नोत्तर.	४००
प्रकृत्यादि आठ आहार विधिविशेषोंके आय-		स्नानवानोंको उष्णजल देने और शीतजल न	
तनोंके नाम व पृथक् २ उपपत्ति.	"	देनेके विषे अग्निवेश व पुनर्वसुजीका	
भोजन करनेका प्रकार तथा छः प्रकारक		प्रश्नोत्तर.	४०१
उपदेश.	३८०	लघनादि तीन अपतर्पणोंके लक्षण.	४०३
इति रसविमानम् ॥ २ ॥		अपयशी वैद्यके ल०	"
		जांगल व साधारण देशके ल०.	४०४
		इति जनपदोपध्वंसनीयम् ॥	
<b>द्वितीयोऽध्यायः ।</b>		<b>चतुर्थोऽध्यायः ।</b>	
त्रिविध कुक्षीय विमानका व्या-		त्रिविधरोग विशेष विज्ञानीय	
ख्यान.	३८३	विमानका व्याख्यान.	"
तीन प्रकारके आहार मात्राका वर्णन.	"	रोगविशेष के ज्ञानकारक तीनों आसोपदे-	
मात्रावान् आहारके ल.	३८४	शादिकों का वर्णन	"
दोषकारके अमात्रावान् आहार तथा अरुजी०		आसोपदेशके ल०	४०५
चातनिकारोंके पृथक् २ ल० व सविस्तर		प्रत्यक्षके ल०	"
वर्णन.	३८५	अनुमान के ल०	"
असाध्य अलसके ल०	३८६	प्रत्यक्षादिकों करके रोग तथा रस की परीक्षा	"
साध्यासाध्य आम विषके ल० व क्रिया.	३८७	इति त्रिविधरोगविशेषविज्ञानीयम् ॥	
आम प्रदोषके अवगुण व औषधक्रिया.	"		
अग्नितादि आहारोंके पकनेके विषे अग्नि वेश		<b>पंचमोऽध्यायः ।</b>	
व पुनर्वसुजीका प्रश्नोत्तर.	३८८	स्रोतोविमानका व्याख्यान.	४०९
इति त्रिविधकुक्षीयविमानम् ॥ ३ ॥		स्रोत शब्दकी उपपत्ति तथा ल०.	"
<b>तृतीयोऽध्यायः ।</b>		प्रदुष्ट प्राणवाहक स्रोतके ल०.	४१०
जनपदोपध्वंसनीय विमानका व्या-		प्रदुष्ट उदकवाही स्रोतके ल०.	"
ख्यान.	३८९	प्रदुष्ट अन्नवाही स्रोतके ल०.	"
ऋतुओंके विभागमें औषधियोंका ग्रहण तथा		प्रदुष्ट धातु स्रोतके ल०.	"
जनपदके उपध्वंसकारी चारभाव और तीन		प्रदुष्ट मूत्रवाहक स्रोत के ल०.	४११
के कारणके विषे अग्निवेश व पुनर्वसुजीका		प्रदुष्ट पुरीषवाहक स्रोत के ल०.	"
परस्पर सविस्तर प्रश्नोत्तर.	"	प्रदुष्ट स्वेदवाहक स्रोतके ल०.	"
वाय्वादिकोंके धैगुण्यके विषे अग्निवेश व पुनर्व		प्राण वाहकादि स्रोतोंके दूषित होनेके कारण.	४१२
सुजीका प्रश्नोत्तर.	३९४	स्रोतोंके लक्षण व आकृति और औषधि का	४१४
धर्मधर्मके लक्षण.	"	क्रम.	
प्राणीकी आयुके ह्रासकारक अधर्मदिकोंका		इति स्रोतो विमानम् ।	
वर्णन.	३९६	<b>षष्ठोऽध्यायः ।</b>	
आयुके प्रमाणके विषे अग्निवेश व पुनर्वसुजीका		रोगानीक विमान का व्याख्यान.	४१५
प्रश्नोत्तर.	३९७	प्रमावादि भेदोंकरके रोगकी सेना तथा	
		बहुत्वादिकों का प्रकार.	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
व्याधि और दोषोंका प्रमाण.	४१६	वैयवादि मार्गके ज्ञानार्थ जाननेयोग्य वादा-	
कामादि मानसविकारोंका कथन.	"	दिकोंका कथन.	४४८
ज्वरादि शरीरविकारों का कथन.	४१७	वाद् शब्दकी निरुक्ति.	"
दोष और अनुबंधका वर्णन.	"	स्थापनाके ल०.	४४९
तीक्ष्णादि चारप्रकारका विशेष.	४१८	प्रतिष्ठापनाके ल०.	"
वातादि प्रकृतियों का वर्णन.	४१९	हेतुके ल०.	४५०
चार तथा तीनप्रकारके प्राणियों का वर्णन	"	उत्तर नामके ल०.	"
वातल पुरुष के उपचार.	४२०	दृष्टान्त नामके ल०.	"
पित्तल पुरुष के उपचार.	"	सिद्धान्तके ल०.	"
श्लेष्मल पुरुष के उपचार.	४२२	सर्वतंत्र सिद्धान्तके ल०.	४५१
इति रोगानीक विमानम् ॥		प्रतितंत्र सिद्धान्तके ल०.	"
<b>सप्तमोऽध्यायः ।</b>		अधिकरण सिद्धान्तके ल०.	"
व्याधितरूपीय विमान का		अभ्युपगम सिद्धान्तके ल०.	"
व्याख्यान.	४२३	शब्द नामके ल०.	४५२
गुरुलघु व्याधिमानों के लक्षण तथा उपद्रव.	"	प्रत्यक्षके ल०.	"
पुरुषोंके संश्रय जोकिमिहै उनकी उत्पत्त्यादिके		अनुमानके ल०.	"
विषे अभिवेश और पुनर्वसुजीका प्रश्नोत्तर.	४२४	औपम्यके ल०.	"
मलोद्भव क्रिमियोंके ल०.	४२५	ऐतिह्यके ल०.	"
शोणितोद्भव क्रिमियोंके ल०.	"	संशयके ल०.	४५३
श्लेष्मोद्भव क्रिमियोंके ल०.	४२६	प्रयोजनके ल०.	"
पुरीषोद्भव क्रिमियोंके ल०	४२७	सव्यभिचारके ल०.	"
अपकर्षणकी विधि.	"	जिज्ञासाके ल०.	"
प्रकृत विघातके ल.	४२८	व्यवसायके ल०.	"
क्रिमि कोष्ठवान् रोगियोंकी सविस्तर चिकित्सा.	"	अर्थप्राप्तिके ल०.	"
इति व्याधितरूपीयविमानम् ॥		सम्भवके ल०.	"
<b>अष्टमोऽध्यायः ।</b>		अनुयोज्यके ल०.	४५४
रोगभिषग् जातीय विमानका व्या-		अननु योज्यके ल०.	"
ख्यान.	४२६	अनुयोगके ल०.	"
वैद्यकी स्वीकार करनेयोग्य शास्त्र.	"	प्रत्यनुयोगके ल०.	"
आचार्यकी परीक्षा तथा शिष्यकी अध्ययनादि		वाक्य दोषके ल०.	"
तीन क्रिया.	४२७	आधिक्यके ल०.	४५५
अध्ययनकी विधि.	"	अनर्थकके ल०.	"
अभ्यापनकी विधि.	४२८	अपार्थकके ल०.	"
संभाषणकी विधि.	४२९	विरुद्धके ल०.	"
तीनप्रकारका और दोषकारके पारिपतका		वाक्यप्रशंसाके ल०.	४५६
सविस्तर पृथक्भेद व ल०.	४४५	छलके ल०.	"
		सामान्य छलके ल०.	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
अहेतु नाम प्रकरण के ल०	४५७	सर्व परीक्षाका कथन	११
संशय सम नाम अहेतुके ल०	११	आहार शक्ति परीक्षा का कथन	४७६
वर्ण्य सम नाम अहेतुके ल०	११	व्यायाम शक्ति परीक्षाका कथन.	११
अतीत कालके ल०	११	अवस्थासे परीक्षाका कथन	११
उपालम्भके ल०	४५८	वालादे तीन अवस्थाका वर्णन.	४७७
परिहारके ल०	११	आयुके प्रमाणका कथन	११
प्रतिज्ञा हानिके ल०	११	कालके प्रकारों का कथन तथा पृथक् २	
अभ्यनुज्ञाके ल०	११	अनेक प्रकारके विभाग करके लक्षण सहित	
हेत्वन्तरके ल०	११	उपद्रव व कर्मका वर्णन	४७८
अर्थान्तरके ल०	११	अवस्था करके काल अकालका कथन	४८०
निग्रहस्थानके ल०	११	उपायके गुण व लक्षण	४८१
अननुयोज्यादिक वादमार्गके पद	४५९	प्रतिपत्तिकी निरुक्ति	११
वैद्योंकी कर्तव्यता.	११	वमनोपयोग्य फलादिद्रव्य	११
इष्ट फलके दाता कारणादिकोंके नाम तथा		चिरेचनोपयोग्य इयामादि द्रव्य	४८३
पृथक् २ ल०	११	आस्थापनोपयोग्य जीवकादि मधुर स्कंध	४८४
वैद्यकी परीक्षा करनेका प्रकार तथा परीक्षा		आम्रादि अम्ल स्कंध.	४८६
शब्दकी निरुक्ति और ल०	४६१	सैन्धवादि लवण स्कंध.	११
वैद्यके गुणका वर्णन.	४६२	पिप्पल्यादि कटुक स्कंध.	४८७
करण शब्दकी निरुक्ति व ल०	११	चन्दनादि तिक्त स्कंध.	११
धातुबोंकी विषमताकी निरुक्ति व ल०	४६४	प्रियंगवादि कषाय स्कंध.	४८८
कार्य शब्द निरुक्ति व ल०	४६५	स्थावर जंगम भेद करके अनुवासन के	
कार्य फलकी निरुक्ति व ल०	११	द्रव्योंका कथन.	४९०
अनुबंध शब्दकी निरुक्ति व ल०	११	ऊर्ध्व चिरेचनोपयोग्य आपामार्गादि द्रव्य.	११
देश शब्दकी निरुक्ति व ल०	११	इति रोग भिषग् जातीयम् ।	
अपरीक्षक की दीहुई औषधके अचगुण.	४६६	इति विमान स्थानम् ।	
औषध देने की व्यवस्था.	११		
प्रकृतियोंके शुक्रादि भावोंका कथन.	४६७		
लेष्मा के लक्षण.	११		
पित्तके लक्षण.	४६८		
वातके लक्षण	४६९		
विकृति ( विकारों ) के ल०	४७०		
त्वचादि आठ सारों के नाम तथा पृथक् २			
लक्षण और गुणागुण.	११		
संपूर्ण सारोंसे युक्तके गुणागुण.	४७२		
वैद्य को सार से परीक्षा करने की शिक्षा.	४७३		
सुसंहत के ल०	११		
अंगुलोंके प्रमाण करके पादादिकोंका कथन	४७४		
सारम्य परीक्षाका कथन	४७५		
		अथ शारीरस्थानम् ।	
		अथ प्रथमोऽध्यायः ।	
		कतिधापुरुषीय शारीरकाव्याख्यान ४९२	
		पुरुष कितने प्रकारके हैं और उनके	
		कारणादि भेद कितने हैं यह सब विषयोंके	
		विषे अग्निवेश व पुनर्वसुजीका परस्पर	
		सविस्तर पृथक् २ प्रश्नोत्तर.	११
		इति कतिधा पुरुषीय शारीरम् ।	

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
<b>द्वितीयोऽध्यायः ।</b>		सातवें मासके गर्भका ल०	११
अतुल्य गोत्रीय शारीरकाव्याख्यान ५११		आठवें मासके गर्भका ल०	११
रजो धर्मादि आठ विकृतियोंके प्रकारका		नवम तथा दशम मासके गर्भका ल०	५३८
सविस्तर कथन.	११	विकृति कारक दूषित गर्भाशय के ल०	११
कुक्षिमेंसद्यः प्राप्तगर्भ और स्थित स्त्री पुरुष		प्रदुष्ट पुरुष बीजके ल०	५३९
नपुंसक के सविस्तर लक्षण	५१४	वातादि शरीर के दोषोंका कथन.	५४०
विकृत अंग और हीनादि अंगकी प्रजाको किस		रजादि सत्वके दोषोंका कथन.	११
हेतुसे स्त्री पैदा करती है तिसका वर्णन.	५१५	त्राह्य सत्वके लक्षण.	५४१
रोगादिकों की उत्पत्तिका कारण तथा औषध		अर्प सत्वके ल०	११
क्रिया.	५१७	ऐंद्र सत्वके ल०	११
इति अतुल्य गोत्रीयशारीरम् ।		याम्य सत्वके ल०	११
<b>तृतीयोऽध्यायः ।</b>		चारुण सत्वके ल०	११
खुड्डीका गर्भावक्रांति शारीरका		कौवेर सत्वके ल०	११
व्याख्यान.	५१९	गांधर्व सत्वके ल०	११
गर्भोत्पन्नका समय.	११	शुद्ध सत्वके ल०	५४२
अत्रियजी करके गर्भोत्पन्नके कारणों के		आसुर सत्वके ल०	११
कथन.	११	राक्षस सत्वके ल०	११
पुनर्वसुजीके कहे हुए गर्भोत्पन्नके कारणों का		पैशाच सत्वके ल०	११
भरद्वाज मुनि करके खंडन.	११	सार्प सत्वके ल०	११
पुनः अत्रिय मुनि करके मातादि कारणों		प्रेत सत्वके ल०	११
करके गर्भोत्पन्न का सविस्तर कथन.	५२१	शाकुन सत्वके ल०	११
पुनः गर्भोत्पन्नके विषे भरद्वाज और पुनर्वसु		राजस सत्वके ल०	५४३
जीका परस्पर प्रश्नोत्तर	५२७	पाशव सत्वके ल०	११
इति खुड्डीका गर्भावक्रांति शारीरः समाप्तः ॥		मात्स्य सत्वके ल०	११
<b>चतुर्थोऽध्यायः ।</b>		वानस्पत्य सत्वके ल०	११
महती गर्भावक्रांति शारीरका		तामस सत्वके ल०	११
व्याख्यान.	५३१	पांच निमित्तादि शुभ संज्ञक और गर्भविद्या	
मातादि कारणों करके गर्भोत्पन्नका कथन.	११	तकका वर्णन	५४४
प्रथम मास के गर्भका लक्षण.	५३२	इतिमहती गर्भावक्रान्ति शारीरं समाप्तम् ॥	
द्वितीय मासके गर्भका लक्षण.	५३३	<b>पंचमोऽध्यायः ।</b>	
तृतीय मास के गर्भका ल०	११	पुरुषविजय शारीरका व्याख्यान. ५४४	
चतुर्थ मासके गर्भका ल०	५३७	लोकसंमित पुरुषका वर्णन	११
पंचम मासके गर्भका ल०	११	अपरिसंख्येय लोकावयव तथा अपरिसंख्येय	
छठे मासके गर्भका ल०	११	पुरुषावयवके विषे अग्निवेश व पुनर्वसुजी	
		का परस्पर प्रश्नोत्तर	५४५
		सामान्य उपदेशके विषे अग्निवेश व पुनर्व-	

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
सुजी करके प्रदोत्तर.	५४६	तीन सौ सहस्र और नौसौ छप्पन सहस्र अणु	
प्रवृत्ति और निवृत्तिके विषे अग्निवेश व पुन-		रूपसे विभाग करके शिरावमनियोंका	
र्वसुजी करके प्रश्नोत्तर.	५४७	कथन.	५६६
अग्निचर्यादिक अपवर्गमार्गोंका कथन	५४९	अजलिकी संख्याका उपदेश.	"
विपापादी शान्तिपर्यायोंका वर्णन.	५५१	स्थूलादि पार्थिव तत्त्व.	५६७
इति पुरुषविजय शरीरम् ।		द्रवादि जलीय तत्त्व.	"
<b>षष्ठोऽध्यायः ।</b>		पित्तादि अग्नियतत्त्व.	"
शरीर विचय शरीरका व्याख्यान. ५५२		उच्छ्वासादि वायवीयतत्त्व.	"
शरीर विचयकी निरुक्ति	"	विविक्तादि आंतरिक्षतत्त्व.	"
स्वस्थयुक्त धातुवोंकी समताके अनुग्रहके		इति शरीरसंख्यः शरीरः ।	
अर्थोंका कथन.	५५३	<b>अष्टमोऽध्यायः ।</b>	
शरीरकी धातुवोंके गुणकारक गुर्वादिकोंका		जाति सूत्रीय शरीरका व्याख्यान. ५६८	
वर्णन.	५५४	प्रजाके अभिलाषी स्त्री पुरुषोंके कर्म सिद्धि	
शरीरके पुष्टिकारक रुधिरादि धातुवोंका		के अर्थ संपूर्ण सविस्तर पृथक् २ क्रिया	
कथन.	"	करनेका वर्णन.	"
मुक्तादिकोंके क्षयमें दुग्धादिकोंका सेवन.	५५५	गर्भके प्रगट होनेसे पहिले स्त्री व पुरुष की	
शरीरके पोषक कालादिभाव.	"	औषध क्रियाका कथन.	५७५
आहारके परिणामकारक ऊष्मादि भाव.	५५६	गर्भस्थापन में देशादि औषध.	५७६
ऊष्मादि भावोंके गुणागुण.	"	गर्भापघातक भावोंका वर्णन.	"
संग्रह करके शरीरकी द्विविध धातुका कथन.	"	गर्भिणी स्त्रीकी व्याधियों में उपचारका प्रकार ५७८	
गर्भके मुख्यादिवर्गोंकी उत्पत्तिके विषे		यदि गर्भिणी स्त्री के चार आदि मासों में	
अग्निवेश व पुनर्वसुजीका प्रदोत्तर.	५५७	क्रोधादि योगसे पुष्प दृष्टिमें आवे तो उसके	
विकर्षकी उपलब्धिके कारण.	५६०	गर्भस्थापन विधिका कथन.	५७९
काल, काल मृत्युके लक्षण.	"	उपविष्टक गर्भके लक्षण.	५८१
इति शरीरविचयः शरीरः		नागोदर गर्भके ल०	"
<b>सप्तमोऽध्यायः ।</b>		उपविष्टक और नागोदर गर्भकी चिकित्सा.	"
शरीर संख्या शरीरका व्याख्यान. ५६३		अष्टम मासमें उदावर्त व विवंधके होनेपर	
शरीरकी संख्या अवयवादिकोंके विषे अग्नि		उरके श्रमनार्थ वीरण शाल्यादि निरूह तथा	
वेश व पुनर्वसुजीका सविस्तर प्रदोत्तर.	"	अनुवासनोपचार.	५८२
तीनसौ साठ ३६० अस्थियोंका कथन.	"	मृतगर्भाके पूर्वरूप व लक्षण और औषध क्रिया. ५८३	
पांच इन्द्रियोंके अधिष्ठान और पांच ज्ञानेन्द्रिय		गर्भवतीका मास हुए गर्भकी संकासे प्रथम	
तथा पांच कर्मेन्द्रियोंका कथन.	५६४	माससे सप्तम मास तक का औषध क्रिया. ५८४	
मूर्द्धादि दश माणोंके आयतनोंका कथन.	५६५	पेदा हुए गर्भके केशमाताको विदाह करतहें	
नाभी आदि पंद्रह कोष्ठ के अंग	"	इस प्रकार स्त्रियोंके वाक्यको पुनर्वसुजी	
छप्पन भ्रतृयों का कथन.	"	करके खंडन और औषध क्रियाका कथन.	"



विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.																																																																																																
अष्टम मासके गर्भमें दूधकी यवागू क्रियाका भद्रकाव्य व पुनर्वसुजी करके खंडन तथा मंडन.	५८५	<b>द्वितीयोऽध्यायः ।</b>																																																																																																	
नवममास गर्भमें मधुरादि औषध क्रिया.	५८६	पुष्पितिक इन्द्रियका व्याख्यान. ६०९																																																																																																	
प्रसूतिक गृहपवेशकी विधि.	५८७	मरणप्राय पुष्पित मनुष्यके सविस्तर लक्षण. ६१०		प्रसूतकालके लिंग और प्रसूताश्रीका कराने योग्य कर्म.	५८८	रस विकार के ल०	६११	जब प्रजात होजावे तब अमरास्त्रा देखे इत्यादि क्रियाओंका कथन.	५८९	इति पुष्पितिक मिन्द्रियम् ।		जातमात्र कुमारके करने योग्य कार्य.	५९२	<b>तृतीयोऽध्यायः ।</b>		रक्षाविधानका कथन.	५९४	परिमर्षणीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१२		सूतिकाके स्वस्थ वृत्तका कथन.	५९५	स्पर्शयोग्य भावोंके सविस्तर ल०	६१२	नाम कर्म करनेका प्रकार.	५९६	परिदृश्यमान पृथक् २ पादादिकों करके गत प्राणके ल०	६१३	आयुष्मान् कुमारोंके लक्षण.	५९७	परिमृश्यमान पृथक् २ गुल्फादि भावों करके गत प्राणके ल०	६१३	धात्री परीक्षाका सविस्तर कथन.	५९९	उद्ग्रासादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१४	कुमारागार विधि:	६०१	केश लोमादिकों करके पृथक् २ सविस्तर गत प्राणके ल०	६१४	बालकके आयनादिकोंका वर्णन.	६०२	इति परिमर्षणीयमिन्द्रियम् ।		बालकको धूपादि युक्त नखादि क्रियाका सविस्तर वर्णन.	६०३	<b>चतुर्थोऽध्यायः</b>		इति जातिसूचीयः शरीरः समाप्तः ।		इन्द्रियानीक इन्द्रियका व्याख्यान. ६१४		<b>इति शरीर स्थानकं चतुर्थं समाप्तम् ।</b>		अतीन्द्रियके ल०	६१४	<b>अथ इन्द्रियस्थानम् ।</b>		इन्द्रियोंके अशुभकारी ल०	६१५	<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>		आकाशादिकोंको विपरीत देखना इत्यादि भावों करके गत प्राण मनुष्यके सविस्तर पृथक् २ ल०	६१५	वर्णस्वरीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६०४		इति इन्द्रियानीकम इन्द्रियम् ।		वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।			
प्रसूतकालके लिंग और प्रसूताश्रीका कराने योग्य कर्म.	५८८	रस विकार के ल०	६११	जब प्रजात होजावे तब अमरास्त्रा देखे इत्यादि क्रियाओंका कथन.	५८९	इति पुष्पितिक मिन्द्रियम् ।		जातमात्र कुमारके करने योग्य कार्य.	५९२	<b>तृतीयोऽध्यायः ।</b>		रक्षाविधानका कथन.	५९४	परिमर्षणीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१२		सूतिकाके स्वस्थ वृत्तका कथन.	५९५	स्पर्शयोग्य भावोंके सविस्तर ल०	६१२	नाम कर्म करनेका प्रकार.	५९६	परिदृश्यमान पृथक् २ पादादिकों करके गत प्राणके ल०	६१३	आयुष्मान् कुमारोंके लक्षण.	५९७	परिमृश्यमान पृथक् २ गुल्फादि भावों करके गत प्राणके ल०	६१३	धात्री परीक्षाका सविस्तर कथन.	५९९	उद्ग्रासादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१४	कुमारागार विधि:	६०१	केश लोमादिकों करके पृथक् २ सविस्तर गत प्राणके ल०	६१४	बालकके आयनादिकोंका वर्णन.	६०२	इति परिमर्षणीयमिन्द्रियम् ।		बालकको धूपादि युक्त नखादि क्रियाका सविस्तर वर्णन.	६०३	<b>चतुर्थोऽध्यायः</b>		इति जातिसूचीयः शरीरः समाप्तः ।		इन्द्रियानीक इन्द्रियका व्याख्यान. ६१४		<b>इति शरीर स्थानकं चतुर्थं समाप्तम् ।</b>		अतीन्द्रियके ल०	६१४	<b>अथ इन्द्रियस्थानम् ।</b>		इन्द्रियोंके अशुभकारी ल०	६१५	<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>		आकाशादिकोंको विपरीत देखना इत्यादि भावों करके गत प्राण मनुष्यके सविस्तर पृथक् २ ल०	६१५	वर्णस्वरीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६०४		इति इन्द्रियानीकम इन्द्रियम् ।		वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।							
जब प्रजात होजावे तब अमरास्त्रा देखे इत्यादि क्रियाओंका कथन.	५८९	इति पुष्पितिक मिन्द्रियम् ।		जातमात्र कुमारके करने योग्य कार्य.	५९२	<b>तृतीयोऽध्यायः ।</b>		रक्षाविधानका कथन.	५९४	परिमर्षणीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१२		सूतिकाके स्वस्थ वृत्तका कथन.	५९५	स्पर्शयोग्य भावोंके सविस्तर ल०	६१२	नाम कर्म करनेका प्रकार.	५९६	परिदृश्यमान पृथक् २ पादादिकों करके गत प्राणके ल०	६१३	आयुष्मान् कुमारोंके लक्षण.	५९७	परिमृश्यमान पृथक् २ गुल्फादि भावों करके गत प्राणके ल०	६१३	धात्री परीक्षाका सविस्तर कथन.	५९९	उद्ग्रासादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१४	कुमारागार विधि:	६०१	केश लोमादिकों करके पृथक् २ सविस्तर गत प्राणके ल०	६१४	बालकके आयनादिकोंका वर्णन.	६०२	इति परिमर्षणीयमिन्द्रियम् ।		बालकको धूपादि युक्त नखादि क्रियाका सविस्तर वर्णन.	६०३	<b>चतुर्थोऽध्यायः</b>		इति जातिसूचीयः शरीरः समाप्तः ।		इन्द्रियानीक इन्द्रियका व्याख्यान. ६१४		<b>इति शरीर स्थानकं चतुर्थं समाप्तम् ।</b>		अतीन्द्रियके ल०	६१४	<b>अथ इन्द्रियस्थानम् ।</b>		इन्द्रियोंके अशुभकारी ल०	६१५	<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>		आकाशादिकोंको विपरीत देखना इत्यादि भावों करके गत प्राण मनुष्यके सविस्तर पृथक् २ ल०	६१५	वर्णस्वरीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६०४		इति इन्द्रियानीकम इन्द्रियम् ।		वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।											
जातमात्र कुमारके करने योग्य कार्य.	५९२	<b>तृतीयोऽध्यायः ।</b>		रक्षाविधानका कथन.	५९४	परिमर्षणीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१२		सूतिकाके स्वस्थ वृत्तका कथन.	५९५	स्पर्शयोग्य भावोंके सविस्तर ल०	६१२	नाम कर्म करनेका प्रकार.	५९६	परिदृश्यमान पृथक् २ पादादिकों करके गत प्राणके ल०	६१३	आयुष्मान् कुमारोंके लक्षण.	५९७	परिमृश्यमान पृथक् २ गुल्फादि भावों करके गत प्राणके ल०	६१३	धात्री परीक्षाका सविस्तर कथन.	५९९	उद्ग्रासादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१४	कुमारागार विधि:	६०१	केश लोमादिकों करके पृथक् २ सविस्तर गत प्राणके ल०	६१४	बालकके आयनादिकोंका वर्णन.	६०२	इति परिमर्षणीयमिन्द्रियम् ।		बालकको धूपादि युक्त नखादि क्रियाका सविस्तर वर्णन.	६०३	<b>चतुर्थोऽध्यायः</b>		इति जातिसूचीयः शरीरः समाप्तः ।		इन्द्रियानीक इन्द्रियका व्याख्यान. ६१४		<b>इति शरीर स्थानकं चतुर्थं समाप्तम् ।</b>		अतीन्द्रियके ल०	६१४	<b>अथ इन्द्रियस्थानम् ।</b>		इन्द्रियोंके अशुभकारी ल०	६१५	<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>		आकाशादिकोंको विपरीत देखना इत्यादि भावों करके गत प्राण मनुष्यके सविस्तर पृथक् २ ल०	६१५	वर्णस्वरीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६०४		इति इन्द्रियानीकम इन्द्रियम् ।		वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।															
रक्षाविधानका कथन.	५९४	परिमर्षणीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१२		सूतिकाके स्वस्थ वृत्तका कथन.	५९५	स्पर्शयोग्य भावोंके सविस्तर ल०	६१२	नाम कर्म करनेका प्रकार.	५९६	परिदृश्यमान पृथक् २ पादादिकों करके गत प्राणके ल०	६१३	आयुष्मान् कुमारोंके लक्षण.	५९७	परिमृश्यमान पृथक् २ गुल्फादि भावों करके गत प्राणके ल०	६१३	धात्री परीक्षाका सविस्तर कथन.	५९९	उद्ग्रासादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१४	कुमारागार विधि:	६०१	केश लोमादिकों करके पृथक् २ सविस्तर गत प्राणके ल०	६१४	बालकके आयनादिकोंका वर्णन.	६०२	इति परिमर्षणीयमिन्द्रियम् ।		बालकको धूपादि युक्त नखादि क्रियाका सविस्तर वर्णन.	६०३	<b>चतुर्थोऽध्यायः</b>		इति जातिसूचीयः शरीरः समाप्तः ।		इन्द्रियानीक इन्द्रियका व्याख्यान. ६१४		<b>इति शरीर स्थानकं चतुर्थं समाप्तम् ।</b>		अतीन्द्रियके ल०	६१४	<b>अथ इन्द्रियस्थानम् ।</b>		इन्द्रियोंके अशुभकारी ल०	६१५	<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>		आकाशादिकोंको विपरीत देखना इत्यादि भावों करके गत प्राण मनुष्यके सविस्तर पृथक् २ ल०	६१५	वर्णस्वरीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६०४		इति इन्द्रियानीकम इन्द्रियम् ।		वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																			
सूतिकाके स्वस्थ वृत्तका कथन.	५९५	स्पर्शयोग्य भावोंके सविस्तर ल०	६१२	नाम कर्म करनेका प्रकार.	५९६	परिदृश्यमान पृथक् २ पादादिकों करके गत प्राणके ल०	६१३	आयुष्मान् कुमारोंके लक्षण.	५९७	परिमृश्यमान पृथक् २ गुल्फादि भावों करके गत प्राणके ल०	६१३	धात्री परीक्षाका सविस्तर कथन.	५९९	उद्ग्रासादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१४	कुमारागार विधि:	६०१	केश लोमादिकों करके पृथक् २ सविस्तर गत प्राणके ल०	६१४	बालकके आयनादिकोंका वर्णन.	६०२	इति परिमर्षणीयमिन्द्रियम् ।		बालकको धूपादि युक्त नखादि क्रियाका सविस्तर वर्णन.	६०३	<b>चतुर्थोऽध्यायः</b>		इति जातिसूचीयः शरीरः समाप्तः ।		इन्द्रियानीक इन्द्रियका व्याख्यान. ६१४		<b>इति शरीर स्थानकं चतुर्थं समाप्तम् ।</b>		अतीन्द्रियके ल०	६१४	<b>अथ इन्द्रियस्थानम् ।</b>		इन्द्रियोंके अशुभकारी ल०	६१५	<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>		आकाशादिकोंको विपरीत देखना इत्यादि भावों करके गत प्राण मनुष्यके सविस्तर पृथक् २ ल०	६१५	वर्णस्वरीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६०४		इति इन्द्रियानीकम इन्द्रियम् ।		वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																							
नाम कर्म करनेका प्रकार.	५९६	परिदृश्यमान पृथक् २ पादादिकों करके गत प्राणके ल०	६१३	आयुष्मान् कुमारोंके लक्षण.	५९७	परिमृश्यमान पृथक् २ गुल्फादि भावों करके गत प्राणके ल०	६१३	धात्री परीक्षाका सविस्तर कथन.	५९९	उद्ग्रासादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१४	कुमारागार विधि:	६०१	केश लोमादिकों करके पृथक् २ सविस्तर गत प्राणके ल०	६१४	बालकके आयनादिकोंका वर्णन.	६०२	इति परिमर्षणीयमिन्द्रियम् ।		बालकको धूपादि युक्त नखादि क्रियाका सविस्तर वर्णन.	६०३	<b>चतुर्थोऽध्यायः</b>		इति जातिसूचीयः शरीरः समाप्तः ।		इन्द्रियानीक इन्द्रियका व्याख्यान. ६१४		<b>इति शरीर स्थानकं चतुर्थं समाप्तम् ।</b>		अतीन्द्रियके ल०	६१४	<b>अथ इन्द्रियस्थानम् ।</b>		इन्द्रियोंके अशुभकारी ल०	६१५	<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>		आकाशादिकोंको विपरीत देखना इत्यादि भावों करके गत प्राण मनुष्यके सविस्तर पृथक् २ ल०	६१५	वर्णस्वरीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६०४		इति इन्द्रियानीकम इन्द्रियम् ।		वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																											
आयुष्मान् कुमारोंके लक्षण.	५९७	परिमृश्यमान पृथक् २ गुल्फादि भावों करके गत प्राणके ल०	६१३	धात्री परीक्षाका सविस्तर कथन.	५९९	उद्ग्रासादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१४	कुमारागार विधि:	६०१	केश लोमादिकों करके पृथक् २ सविस्तर गत प्राणके ल०	६१४	बालकके आयनादिकोंका वर्णन.	६०२	इति परिमर्षणीयमिन्द्रियम् ।		बालकको धूपादि युक्त नखादि क्रियाका सविस्तर वर्णन.	६०३	<b>चतुर्थोऽध्यायः</b>		इति जातिसूचीयः शरीरः समाप्तः ।		इन्द्रियानीक इन्द्रियका व्याख्यान. ६१४		<b>इति शरीर स्थानकं चतुर्थं समाप्तम् ।</b>		अतीन्द्रियके ल०	६१४	<b>अथ इन्द्रियस्थानम् ।</b>		इन्द्रियोंके अशुभकारी ल०	६१५	<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>		आकाशादिकोंको विपरीत देखना इत्यादि भावों करके गत प्राण मनुष्यके सविस्तर पृथक् २ ल०	६१५	वर्णस्वरीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६०४		इति इन्द्रियानीकम इन्द्रियम् ।		वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																															
धात्री परीक्षाका सविस्तर कथन.	५९९	उद्ग्रासादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१४	कुमारागार विधि:	६०१	केश लोमादिकों करके पृथक् २ सविस्तर गत प्राणके ल०	६१४	बालकके आयनादिकोंका वर्णन.	६०२	इति परिमर्षणीयमिन्द्रियम् ।		बालकको धूपादि युक्त नखादि क्रियाका सविस्तर वर्णन.	६०३	<b>चतुर्थोऽध्यायः</b>		इति जातिसूचीयः शरीरः समाप्तः ।		इन्द्रियानीक इन्द्रियका व्याख्यान. ६१४		<b>इति शरीर स्थानकं चतुर्थं समाप्तम् ।</b>		अतीन्द्रियके ल०	६१४	<b>अथ इन्द्रियस्थानम् ।</b>		इन्द्रियोंके अशुभकारी ल०	६१५	<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>		आकाशादिकोंको विपरीत देखना इत्यादि भावों करके गत प्राण मनुष्यके सविस्तर पृथक् २ ल०	६१५	वर्णस्वरीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६०४		इति इन्द्रियानीकम इन्द्रियम् ।		वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																																			
कुमारागार विधि:	६०१	केश लोमादिकों करके पृथक् २ सविस्तर गत प्राणके ल०	६१४	बालकके आयनादिकोंका वर्णन.	६०२	इति परिमर्षणीयमिन्द्रियम् ।		बालकको धूपादि युक्त नखादि क्रियाका सविस्तर वर्णन.	६०३	<b>चतुर्थोऽध्यायः</b>		इति जातिसूचीयः शरीरः समाप्तः ।		इन्द्रियानीक इन्द्रियका व्याख्यान. ६१४		<b>इति शरीर स्थानकं चतुर्थं समाप्तम् ।</b>		अतीन्द्रियके ल०	६१४	<b>अथ इन्द्रियस्थानम् ।</b>		इन्द्रियोंके अशुभकारी ल०	६१५	<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>		आकाशादिकोंको विपरीत देखना इत्यादि भावों करके गत प्राण मनुष्यके सविस्तर पृथक् २ ल०	६१५	वर्णस्वरीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६०४		इति इन्द्रियानीकम इन्द्रियम् ।		वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																																							
बालकके आयनादिकोंका वर्णन.	६०२	इति परिमर्षणीयमिन्द्रियम् ।		बालकको धूपादि युक्त नखादि क्रियाका सविस्तर वर्णन.	६०३	<b>चतुर्थोऽध्यायः</b>		इति जातिसूचीयः शरीरः समाप्तः ।		इन्द्रियानीक इन्द्रियका व्याख्यान. ६१४		<b>इति शरीर स्थानकं चतुर्थं समाप्तम् ।</b>		अतीन्द्रियके ल०	६१४	<b>अथ इन्द्रियस्थानम् ।</b>		इन्द्रियोंके अशुभकारी ल०	६१५	<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>		आकाशादिकोंको विपरीत देखना इत्यादि भावों करके गत प्राण मनुष्यके सविस्तर पृथक् २ ल०	६१५	वर्णस्वरीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६०४		इति इन्द्रियानीकम इन्द्रियम् ।		वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																																											
बालकको धूपादि युक्त नखादि क्रियाका सविस्तर वर्णन.	६०३	<b>चतुर्थोऽध्यायः</b>		इति जातिसूचीयः शरीरः समाप्तः ।		इन्द्रियानीक इन्द्रियका व्याख्यान. ६१४		<b>इति शरीर स्थानकं चतुर्थं समाप्तम् ।</b>		अतीन्द्रियके ल०	६१४	<b>अथ इन्द्रियस्थानम् ।</b>		इन्द्रियोंके अशुभकारी ल०	६१५	<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>		आकाशादिकोंको विपरीत देखना इत्यादि भावों करके गत प्राण मनुष्यके सविस्तर पृथक् २ ल०	६१५	वर्णस्वरीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६०४		इति इन्द्रियानीकम इन्द्रियम् ।		वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																																															
इति जातिसूचीयः शरीरः समाप्तः ।		इन्द्रियानीक इन्द्रियका व्याख्यान. ६१४		<b>इति शरीर स्थानकं चतुर्थं समाप्तम् ।</b>		अतीन्द्रियके ल०	६१४	<b>अथ इन्द्रियस्थानम् ।</b>		इन्द्रियोंके अशुभकारी ल०	६१५	<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>		आकाशादिकोंको विपरीत देखना इत्यादि भावों करके गत प्राण मनुष्यके सविस्तर पृथक् २ ल०	६१५	वर्णस्वरीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६०४		इति इन्द्रियानीकम इन्द्रियम् ।		वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																																																			
<b>इति शरीर स्थानकं चतुर्थं समाप्तम् ।</b>		अतीन्द्रियके ल०	६१४	<b>अथ इन्द्रियस्थानम् ।</b>		इन्द्रियोंके अशुभकारी ल०	६१५	<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>		आकाशादिकोंको विपरीत देखना इत्यादि भावों करके गत प्राण मनुष्यके सविस्तर पृथक् २ ल०	६१५	वर्णस्वरीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६०४		इति इन्द्रियानीकम इन्द्रियम् ।		वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																																																							
<b>अथ इन्द्रियस्थानम् ।</b>		इन्द्रियोंके अशुभकारी ल०	६१५	<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>		आकाशादिकोंको विपरीत देखना इत्यादि भावों करके गत प्राण मनुष्यके सविस्तर पृथक् २ ल०	६१५	वर्णस्वरीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६०४		इति इन्द्रियानीकम इन्द्रियम् ।		वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																																																											
<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>		आकाशादिकोंको विपरीत देखना इत्यादि भावों करके गत प्राण मनुष्यके सविस्तर पृथक् २ ल०	६१५	वर्णस्वरीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६०४		इति इन्द्रियानीकम इन्द्रियम् ।		वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																																																															
वर्णस्वरीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६०४		इति इन्द्रियानीकम इन्द्रियम् ।		वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																																																																			
वैद्यके परीक्षा करने योग्य वर्णादिकोंका कथन.	६०५	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																																																																							
प्रकृति विकृतिके वर्ण शरीरके पृथक् २ लक्षण व गुणांगुण और तिनकी निरुक्तिका सविस्तर कथन.	६०५	पूर्व रूपीय इन्द्रियका व्याख्यान. ६१७		वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																																																																											
वर्णभेदके लक्षण तथा उपद्रव.	६०७	ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप मात्रासे अधिकहों इत्यादि भावों करके मरण प्रायके ल०	६१७	प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																																																																															
प्रकृति स्वरके लक्षण.	६०८	जिस मनुष्यके बल की हानि हो इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	६१८	विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																																																																																			
विकृति स्वरके लक्षण.	६०८	सब प्रकार के स्वप्नों करके मरण प्रायके लक्षणोंका पृथक् २ सविस्तर कथन.	६१८	प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																																																																																							
प्रेतके लक्षण.	६०९			मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																																																																																											
मरणके लक्षण.	६१०			इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																																																																																															
इति वर्णस्वरीयमिन्द्रियम् ।																																																																																																			

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
काल रात्रिके ल०	६२२	<b>अष्टमोऽध्यायः ।</b>	
सात प्रकारके दृष्टादि स्वप्न और तिनके फला- फलका कथन.	"	अवाक् शिरसीय इन्द्रियका व्याख्यान.	६२९
इति पूर्वरूपीयमिन्द्रियम् ॥		प्रेतवत् मनुष्यके लक्षण.	६३०
<b>षष्ठोऽध्यायः ।</b>		तीन अथवा छःदिनमें मरणके लक्षण.	"
<b>कतमानि शरीरीय इन्द्रियका</b>		प्रेत जिह्वाके लक्षण.	६३१
<b>व्याख्यान.</b>	६२३	दातांसे नखोंको छेदन करना इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल.	"
कितने शरीर व्याधिमान हैं और किनमें कर्म सिद्ध नहीं होता इस विषयमें अग्निवेश व पुनर्वसुजीके प्रश्नोत्तर.	"	वारंवार इंसना इत्यादि भावों करके गत प्राण के ल०	"
भाषण करते हुए जिस मनुष्यकी छाती अत्यंत ऊपरकी भग्न होतीहो इत्यादि भावों करके वैद्यको वर्जने योग्य रोगीके लक्षण.	"	इति अवाक् शिरसीयमिन्द्रियम् ।	
अनाहादिरोंगोंसे आर्त मनुष्य जोहों इत्यादि भावोंकरके गत प्राणके लक्षण.	६२४	<b>नवमोऽध्यायः ।</b>	
पादोंमें सूजन युक्तादि भावों करके गत प्राणके लक्षण.	"	यस्यश्याव निमित्तीय इन्द्रियका व्याख्यान.	६३३
छानादि भावों करके पृथक् २ गत प्राणके लक्षण.	६२५	श्यावादि नेत्रोंकरके गत प्राणके ल०	"
इति कतमानि शरीरीयम् ।		राजयक्ष्माके पूर्व रूप व उपद्रव.	६३३
<b>सप्तमोऽध्यायः ।</b>		कंठादिकों के विषद्धादि उपद्रवों करके गत प्राणके ल०	६३४
<b>पञ्चरूपीय इन्द्रियका व्याख्यान.</b>	६२६	स्वरकी दुर्बलता इत्यादि उपद्रवों करके गत प्राणके ल०	"
छायादि भावों करके प्रेतके लक्षण.	"	दुर्बल नरको सहसा रोग होकर छोड़दे इत्यादि भावों करके गत प्राणके ल०	"
मध्यादि भेदोंसे मनुष्यका तीन प्रकारका प्रेमाण.	"	निष्ठ्यूतादि करके गत प्राणके ल०	६३५
अग्निकी छायाके लक्षण.	६२७	इति यस्यश्यावमिन्द्रियम् ॥	
पृथिवीकी छायाके लक्षण.	"	<b>दशमोऽध्यायः ।</b>	
वायुकी छायाके अवगुण व लक्षण.	"	सद्योमरणीय इन्द्रियका व्याख्यान	"
तेजकी छायाके गुणागुण.	"	हृदयादिकों में गोलादि रोगों करके गत प्राण के सविस्तर पृथक् २ लक्षणोंका कथन.	"
नेत्रोंमें कामला होवे इत्यादि भावों करके गतायुके लक्षण.	६२८	इति सद्योमरणीयमिन्द्रियम् ॥	
इवासेके न्दस्वादि भावों करके मृतके लक्षण.	"	<b>एकादशोऽध्यायः ।</b>	
इति पूर्वरूपीय इन्द्रियम् ।		अणुज्योतीयमिन्द्रियका व्याख्यान.	६३८
		वर्ष मरमें मरण हारके ल०	"
		छः मास में मरण हारके ल०	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
एक मासमें मरण हारके ल०	६३८	प्राणकामीय रसायन पादका	
अल्प कालमें मरण हारके ल०	६३९	व्याख्यान	६६२
कालसे प्रेरित के लक्षण.	॥	प्राणकामीय रसायन पादके गुण और किन २	
चिना हास्यके हंसना इत्यादि भेदोंकरके पृथक्		रोगोंमें प्रयोग करने योग्य है तिरुका	॥
२ मरण हारोंके लक्षणोंका वर्णन.	६४०	सविस्तर वर्णन.	॥
इत्यनुज्योतीयमिन्द्रियं समाप्तम् ।		शतवर्षतक अजीर्णावस्थाका कारक आमलादि	
<b>द्वादशोऽध्यायः</b>		रसायन योग.	६६४
<b>गोमय चूर्णीयमिन्द्रियका</b>		शत वर्षतक अजर अवस्थाका कारक आमल	
<b>व्याख्यान.</b>	६४१	क घृत.	६६५
गोमय चूर्णादि लक्षणों करके मरण प्राय		शत वर्षतक अजर आयुका कारक आमलका	
का कथन.	॥	वलेह.	६६६
दूताधिकरके विषे मरण प्रायके लक्षण.	६४२	अजर आयुका कारक विडगा वलेह.	॥
मार्ग के स्वभाविक उपायों का कथन.	६४३	पुनः अजर आयुका कारक : आमलकावलेह.	६६७
मुमूर्षुओंके गृहकी अवस्था.	६४४	अजर आयुकारक नागबला रसायन.	॥
अधिक उपतापादि मरण प्रायके लक्षण.	६४६	पुनः अजर आयुपर भल्लातक क क्षीर	६६८
शोभनाचारादि भावों करके आरोग्यके लक्षण.	६४८	अजर आयुपर भल्लातक क्षौद्र	६६९
भंगलाचारादि भावों करके आरोग्यके लक्षण.	६४९	अजर आयुपर भल्लातक तैल	६७०
इति गोमयचूर्णीयमिन्द्रियम् ।		भल्लातकके गुणागुण.	॥
इत्याचार्य चरक मुनि विरचितायां पं० मिहि-		इति प्राण कामीयों रसायन पादः द्वितीयः ।	
रचन्द्र कृत भाषा विवृति संहितायां हृन्दिप			
स्थानकं पञ्चमं समाप्तम् ॥			
<b>अथ चिकित्सितस्थानम् ।</b>		<b>कर प्रचितीय रसायन पादका</b>	
<b>प्रथमोऽध्यायः ।</b>		<b>व्याख्यान.</b>	६७१
<b>अभया मलकीय रसायन पादका</b>		अजर आयुपर आमलकायसं ब्रह्म रसायन.	॥
<b>व्याख्यान.</b>	६५१	सहस्र वर्षतक यौवन कारक के वल्लभमलक	
भेषज अभेषजके लक्षण व नाम.	॥	रसायन.	६७२
दीर्घायु आदि रसायनके गुण.	॥	अभिघातादि रोगोंपर लौहादि : सासन प्रयोग.	६७३
वाजीकरण औषध के अपत्यादि कारक गुण.	६५२	जरादि रोगोंपर ऐन्द्री रसायन.	६७४
कुटी प्रावेशिक रसायन का वर्णन.	६५३	आयुके दाता मेध्य रसायन.	६७५
हरीतकीके कल्याण कारिण्यादि ल०.	६५४	कास क्षयादि रोगोंपर पिप्पली रसायन.	॥
चिरायु कारक पांच पंच मूलादि ब्रह्म रसायन.	६५५	पिप्पली वर्द्धमान रसायन	६७६
द्वितीय अमलादि ब्राह्म रसायन योग.	६५७	सर्व व्याधि हर त्रिफला रसाय न.	६७७
कासादि रोगोंपर विल्वादिच्यवनप्राज्ञ.	६५९	शिलाजीतक प्रयोग और तिस्वे ; लक्षण तथा	
यौवन कारक चतुर्थ आमलक रसायन.	६६०	शोधन, क्रिया.	६७८
ज्वरादिकों के विषे पंचम हरीतकी रसायन.	६६१	इति कर प्रचितीको रसाय न पादः तृतीयः ।	
आयुष्मान् कारक हरीतक्यादि रसायन.	६६२		
इति चिकित्सिते अभयामलकीये रसायन			
पादः प्रथमः ।			

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
आयुर्वेद समुत्थानीय रसायनपादका व्याख्यान.	६८०	आसक्त क्षीरीय वाजी करणका व्याख्यान.	६९७
समुत्थानीय रसायन पादका सविस्तर वर्णन.	"	अपत्यकरापाटिकादि गुटिका.	"
इन्द्रोक्त रसायन.	६८२	वृष्य पूषलिका योग.	६९८
द्रोणीप्रवेधिक रसायन.	"	अपत्यकर आत्मगुतादि रसरस.	"
इन्द्रोक्त अपर रसायन.	६८४	खर्जूरदि वृष्यक्षार.	६९९
रसायनके योग्य मनुष्यों के गुणोंका कथन	६८६	जीवकादि वृष्यघृत.	"
रसायन के अयोग्य मनुष्योंका कथन.	६८७	वृष्यदध्योदन.	७००
वैद्योंकी पूजा करनेका प्रकार.	"	वृष्य दुग्धादि.	"
अश्विनी कुमारोंके गुण.	"	नकादि पाक वृष्य योग.	"
नक्षत्रोंके लक्षण तथा कर्त्तव्यता.	६८८	इति चिकित्सिते आसक्त क्षीरिके वाजीकरण पादोद्वितीयः ।	
इति चिकित्सिते पं० मिहिरचंद्र कृत भाषा विश्रुति सहिते आयुर्वेद समुत्थानिये रसायन पादश्चतुर्थः ॥		मापपर्ण वाजीकरण पादका व्याख्यान.	७०१
इति रसायनोऽध्यायः प्रथमः ।		वृष्य दुग्ध.	"
<b>द्वितीयोऽध्यायः ।</b>		अपत्य कारक मेदादिऔषध.	७०२
संमयोग शरमूलीय वाजीकरण पादका व्याख्यान.	६९०	वीर्य्य वर्द्धक पिप्पल्यादि औषध.	"
वाजीकरणकी प्रशंसा तथा स्त्रीके गुणागुणका कथन.	"	वीर्य्य वर्द्धक जीवनीयादिकी औषधोंकी पूरी.	७०२
अपत्यहीन पुरुषकी अप्रशंसा.	६९२	वीर्यवान पुरुषके लक्षण.	७०३
बहु प्रजावान् पुरुषकी प्रशंसा.	"	अभ्यंगनादि वीर्य्यवर्द्धक योग.	"
परम वृष्य कारक वृद्धणी गुटिका.	६९३	कामदेवके आयुध.	७०४
वाजी करण घृत.	६९४	इति मापपर्ण नाम तृतीयो वाजीकरण पादः ।	
वाजीकरण पिण्ड रस.	६९५	पुमान् जात बलादिक वाजीकरण पादका व्याख्यान.	७०५
वृष्य रस.	"	स्त्रियोंमें गमन करने वाले मनुष्योंके सविस्तर लक्षण.	"
अन्य वृष्य रस.	"	वृष्या मांस गुटिका.	७०६
वृष्य मांस.	६९६	वृष्यो माहिपरसः.	"
वृष्य माश.	"	गर्भाधान करो योगः.	"
वृष्य शुक्र रस.	"	वृष्यौ पूषलिका योगौ.	७०७
अन्य वृष्य रस.	"	वृष्या मापादि पूषलिका.	"
वृष्य योग करनेका प्रकार.	"	वृष्ययोग.	७०८
इति चिकित्सिते शरमूलीयो वाजी करण पादः ।		अपत्य कर घृत.	"
		वृष्य गुटिका.	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
वृष्या लक्षिका.	७०९	मेदामें स्थित ज्वरके लक्षण.	७२०
वृष्य के लक्षण व गुणागुण.	"	आस्थि गत ज्वरके लक्षण.	"
वृद्ध मनुष्यको मैथुनके अवगु.	"	मज्जामें स्थित ज्वरके लक्षण.	"
हर्षादि आठ ८ हेतुओंसे देहमेंसे शुक्रसींचा		शुक्रस्थ ज्वरके उपद्रव.	७२१
जाताहै इत्यादि सब योगोंका सविस्तर वर्णन. ७१०		साध्य और कृच्छ्र साध्य ज्वरके लक्षण.	"
इति वाजीकरण अध्याय समाप्तः ।		वात पित्तज्वरकी आकृति.	"
		वात कफ ज्वरकी आकृति.	"
		कफ पित्त ज्वरकी आकृति.	"
<b>तृतीयोऽध्यायः ।</b>		वातादिकोंके हान मध्य अधिक भेद करके	
<b>ज्वर चिकित्साध्यायका</b>		संपूर्ण ज्वरके पृथक् २ लक्षणोंका कथन.	७२२
<b>व्याख्यान.</b>	७११	सन्निपात ज्वरके लक्षण.	७२३
माणियोंके शत्रुरूपी ज्वर और तिस्के प्रकृ-		असाध्य व कृच्छ्र साध्य सन्निपात ज्वरके ल० ७२४	
त्यादि हेतुओं के विषे पुनर्वसुजीके प्रति	"	अभिधात ज्वरके लक्षण.	"
अग्निवेशजीका प्रश्न.	"	अभिपंग ज्वरके लक्षण.	७२५
अग्निवेशके प्रति पुनर्वसुजी करके ज्वराधि		अभिचार और अभिशाप ज्वरके लक्षण.	"
कारका कथन.	७१२	काम आदि ज्वरोंके पृथक् २ लक्षण.	७२६
ज्वरके नाम.	"	ज्वरके उपद्रव.	७२७
ज्वरकी प्रकृतिके ल०	"	आम ज्वरके लक्षण.	"
ज्वरकी प्रकृतिके ल०	"	निराम ज्वरके लक्षण.	"
ज्वरके प्रभावका वर्णन.	७१४	नवीन ज्वर दिनमें शयनादिकोंका कथन.	"
ज्वरके प्रथम उत्पादक आलस्यादि योग.	"	तरुण ज्वरमें लघनादिकोंका वर्णन.	७२८
विधिके भेद करके ज्वरके प्रकारोंका वर्णन.	७१५	ज्वरकी पिपासाके शान्तिके लिए मोथादिकों	
मनके तापके लक्षण.	"	का जल.	"
देहके सन्नाप और शीत ज्वरादिकोंके लक्षण.	"	यवागू करके चिकित्सा करनेका प्रकार.	७२९
अन्तर्वेग ज्वरके लक्षण.	"	तर्पण योग्य मनुष्योंको मुनक्कादि करके नृत्ति	
बहिर्वेग ज्वरके लक्षण.	७१६	करनेका वर्णन.	"
षसन्तादि ऋतियोंमें ज्वरोद्भव होनेके कारणों	"	दंत धावन करनेका प्रकार.	७३०
का कथन.	"	तरुण ज्वरमें कपाय न देनेका प्रकार.	"
प्राणान्तकारी ज्वरके लक्षण.	७१७	ज्वरमें घृत तथा दुग्ध देनेका प्रकार.	७३१
असाध्य ज्वरके लक्षण.	"	विरचन और निरुहोंका प्रकार.	"
सन्तत ज्वरके लक्षण और उपद्रव.	"	वस्ति करानेका प्रकार.	"
अन्येष्टु ज्वरके लक्षण व पूर्वरूप.	७१८	श्लेरो विरेचन व अवगाहन का प्रकार.	७३२
तृतीयक व चतुर्थक ज्वरके लक्षण व पूर्वरूप.	"	ज्वर नाशक रक्त शल्यादि यवागू.	"
तीन प्रकारके तृतीयक और दो प्रकारके चतु		ज्वर हरनेवाली पिप्पल्यादि पेया.	"
र्थक ज्वरके प्रभावका वर्णन.	७१९	कासादि युक्तज्वरकी शान्तिके लिए. विदारी	
विषम ज्वरके लक्षण.	"	कंदादिकोंकी यवागुओंका पृथक् कथन.	७३३
रस स्थित ज्वरके लक्षण.	७२०		
रक्त स्थित ज्वरके लक्षण.	"		
मांस स्थित ज्वरके लक्षण.	"		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
परिकर्तिकादि सतत ज्वर पर बलादि पेयार्थों का कथन.	७३३	<b>चतुर्थोऽध्यायः ।</b>	
यूपसात्म्य ज्वरितोंको मूंगादिके यूपोंका कथन.	७३४	<b>रक्तपित्तचिकित्सितका व्याख्यान. ७५५</b>	
मांस सात्म्यज्वरितोंको लावादिकोंके मांसका कथन.	"	रक्त पित्तके हेतुका वर्णन.	"
सन्ततादिक ज्वरनाशक मोथादिकोंके कषायोंका कथन.	७३५	वातिक रक्त पित्तके लक्षण.	७५६
ज्वरनाशक वत्सकादि कषाय.	"	पैत्तिक रक्त पित्तके लक्षण.	"
सन्निपात ज्वरनाशक कटेहल्यादि योग.	७३६	सान्निपातिक रक्त पित्तके लक्षण.	"
सन्निपात पर कचूरादि कषायोंका कथन.	"	साध्यसाध्य रक्त पित्तके लक्षण.	"
कषायादिकों से जो ज्वर शान्त न हो तिसपर वृत्तकी चिकित्सा.	७३७	याप्य रक्त पित्तके लक्षण.	७५७
जीर्ण ज्वरपर पिप्पल्यादि वृत्त.	"	ऊर्द्धादिगामी रक्त पित्तका कथन.	"
जीर्ण ज्वरपर वासाद्य वृत्त.	"	गलग्रहादिके उपरोधसे रक्त पित्तकी उत्पत्ति. ७५८	
बलाद्य वृत्त.	"	ऊर्द्धादिगामी रक्त पित्तियोंकी शृङ्ख २ औपथ का वर्णन.	"
भैर फलादि ज्वरहर वमन.	७३८	रक्त पित्तियोंके शास्त्रादि भोजन.	७५९
मुनक्का आदि ज्वरहर वमनोंका कथन.	"	रक्त पित्त नाशक पटोलादि औपथ.	"
कासादिकों पर पंचमूल दुग्ध.	७३९	रक्त पित्तियोंको पारावतादिकोंका मांस.	"
वात पित्त ज्वरपर दूध.	"	रक्त पित्तपर पद्मादिपेया.	७६०
पटोलादि निर्यूह.	७४०	रक्त पित्तपर चन्दनादियवागू.	"
ज्वर नाशक अमलतासादि वस्ति.	"	रक्त पित्तपर अश्वादिकोंके मांस.	"
ज्वर पर जीवन्त्यादि छेह.	७४१	रक्त पित्तकी बलादिको धरके उत्पत्ति.	७६१
ज्वरमें वृत्तिक्रिया का वर्णन.	"	रक्त पित्तपर निषोथादि विरेचन.	"
ज्वर पर वृत्तादि अंजन.	"	श्वसादि पर नांसादि काय.	७६२
चन्दनाद्य तैल.	७४१	रक्त पित्तपर प्रपोंडरीकादि पेया.	"
दाहादिकोंकी शान्ति कारक कमलादिकों की क्रिया का वर्णन.	७४३	रक्त पित्तपर खदिरादिकोंका चूर्ण.	७६३
शीतज्वर पर अगुर्वादि तैल.	७४४	रक्त पित्तपर खसादि औपथ.	"
शीत ज्वर पर रवेदनादि क्रियाओंका कथन.	७४६	रक्त पित्तपर मूनादि कषाय.	७६४
अग्न्यादिके रक्षार्थ लघन क्रियाका वर्णन.	"	रक्त पित्तपर म्रियंगवादि औपथ.	"
वात ज्वरकी क्रिया.	"	रक्त पित्तपर शतावरादि दुग्ध.	७६५
जीर्ण ज्वरकी क्रिया.	७४७	रक्त पित्तपर वासादि वृत्त.	"
कफादि ज्वरोंकी क्रिया.	"	रक्त पित्तपर शतमूलादि वृत्त.	७६६
विषम ज्वरादिकोंकी पृथक् २ सविस्तर भेद सहित क्रिया व उपचारादिकोंका कथन.	७४८	रक्त पित्तपर नीलाग्निकों की नस्य.	७६७
रसादिकोंमें स्थित ज्वरकी क्रिया.	७५१	रक्त पित्तपरभद्रश्रीद त्यादि औपधियोंका कथन.	"
ज्वरके मोक्षणके लिंग.	७५२	रक्त पित्तपर शीतल धारा गृहादिकोंका वर्णन. ७६८	
ज्वर मुक्त मनुष्यको कर्तव्यता और वर्जने योग्य पदार्थोंका वर्णन.	७५३	इति रक्त पित्त चिकित्सितम् ।	
इति ज्वरचिकित्सितम् ।		<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>	
		<b>गुल्म चिकित्सितका व्याख्यान. ७६९</b>	
		गुल्म रोगके पूर्वरूप.	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
वात गुल्मके पूर्वरूप.	७७०	पित्त गुल्म पर आमलकादि घृत,	७८४
पित्तगुल्मके पूर्वरूप.	"	पित्त गुल्म पर द्राक्षादि घृत.	"
कफात्मक गुल्मके पूर्वरूप.	७७१	पित्त गुल्मादि पर वासादि घृत तथा	"
त्रिदोषज गुल्मके लिंग.	"	त्रायमाणादि घृत.	७८५
स्त्रीके रक्तोद्भव गुल्मके लक्षण व औषध क्रिया.	"	पित्त गुल्ममें मुनक्काः इत्यादि औषधियोंका	"
रूक्षादिकोंसे उत्पन्न गुल्म तिरुकी स्नेहादिकों	"	पृथक् २ सविस्तर वर्णन.	"
करके चिकित्साका कथन.	७७२	पित्त गुल्ममें आल्यादिकों के पानका कथन.	७८६
गुल्ममें स्नेह पानादिकों का वर्णन.	"	कफ गुल्मकी क्रिया.	"
वातादि गुल्मों में विरेचनादि क्रियाका कथन.	७७३	कफ गुल्मपर दशमूली तथा मल्लतकदिघृत.	७८७
गुल्मियोंको यदि तृष्णादि होय तो रक्ताव	"	कफ गुल्म पर पंचकोलादि घृत.	"
सेकादिकी शिक्षा.	"	कफादिकों पर मिश्रक स्नेह.	"
साध्यासाध्य गुल्मके लिंग.	७७४	विरेचनादिकी हितकारी दंती हरीतकी.	७८८
अपक्व गुल्मके लक्षण.	"	वात गुल्म पर पुराने अन्नादिकोंकी क्रिया	"
पक्व गुल्मके लक्षण.	"	का कथन.	७८९
पक्व गुल्मके उपद्रव और औषध क्रिया	७७५	साध्यासाध्य गुल्मके लक्षण.	७९०
गुल्ममें लेघनादि क्रिया.	"	योन्यादिकों की शुद्धिके लिए सर्व प्रकार	"
कफके गुल्ममें स्नेह सहित विरेचनादिकों का	"	की सविस्तर पृथक् २ भेद सहित क्रिया	"
कथन.	७७६	का वर्णन.	७९१
वात गुल्म पर झूपणादि घृत.	७७७		
वात गुल्मपर पट्टपल घृत.	"		
वात गुल्मपर हिंगु सौवर्चलादि घृत.	"		
वात गुल्मादिकों पर हवुपादि घृत.	७७८		
वात गुल्मपर पिप्पल्यादि घृत.	"		
पाश्वादि रोगोंपर हिंग्वादि चूर्ण व गुटिका.	७७९		
गुल्मादिकों पर कचूरादि चूर्ण तथा मातुलुंगा-	"		
दि वटिका.	७८०		
वात गुल्मादिकों पर सोंठादि युक्त दुग्ध.	"		
वात गुल्मादिकों पर लशुन क्षीर.	"		
तेल पंचक.	७८१		
शिलाजतु प्रयोग.	"		
गुल्मरोग पर पीपलके यूषादिकोंका कथन.	"		
गुल्मरोग पर वस्ति क्रिया.	"		
नीलिन्यादि घृत.	७८२		
वात गुल्म पर कुक्कुटादिकोंका कथन.	७८३		
सब गुल्मों में प्रथम स्नेहादिकोंका कथन.	"		
पित्त गुल्म पर रोहिण्यादि घृत.	"		
पित्त रक्तोद्भव गुल्मपर त्रायमाणादि घृत.	७८४		
		पित्त गुल्म पर आमलकादि घृत,	७८४
		पित्त गुल्म पर द्राक्षादि घृत.	"
		पित्त गुल्मादि पर वासादि घृत तथा	"
		त्रायमाणादि घृत.	७८५
		पित्त गुल्ममें मुनक्काः इत्यादि औषधियोंका	"
		पृथक् २ सविस्तर वर्णन.	"
		पित्त गुल्ममें आल्यादिकों के पानका कथन.	७८६
		कफ गुल्मकी क्रिया.	"
		कफ गुल्मपर दशमूली तथा मल्लतकदिघृत.	७८७
		कफ गुल्म पर पंचकोलादि घृत.	"
		कफादिकों पर मिश्रक स्नेह.	"
		विरेचनादिकी हितकारी दंती हरीतकी.	७८८
		वात गुल्म पर पुराने अन्नादिकोंकी क्रिया	"
		का कथन.	७८९
		साध्यासाध्य गुल्मके लक्षण.	७९०
		योन्यादिकों की शुद्धिके लिए सर्व प्रकार	"
		की सविस्तर पृथक् २ भेद सहित क्रिया	"
		का वर्णन.	७९१

## षष्ठोऽध्यायः ।

प्रमेह चिकित्सितका व्याख्यान. ७९२

प्रमेह की उत्पत्तिके लक्षण. " |साध्यासाध्य प्रमेहोंका कथन. ७९३ |दश कफोद्भव प्रमेहोंके लक्षण. " |छः पित्तोद्भव प्रमेहोंके लक्षण. " |पर वांतोद्भव प्रमेहोंके लक्षण. ७९४ |भविष्य मेहरोगके लक्षण. " |बलावल प्रमेहकी औषध क्रिया. " |प्रमेही मनुष्यको संतर्पणादि क्रियाका वर्णन. ७९५ |मूंगादिके यूषोंसे प्रमेहकी शान्तिक्रियाका " |कथन. " |कफ प्रमेहपर जौके सत्तु इत्यादि भक्ष्योंका ७९६ |कथन कफ प्रमेह पर हरीतक्यादि कपाय. " |पित्त प्रमेह पर खसादि कपाय. ७९७ |कफ पित्त प्रमेह पर कम्पिल्लाकादि औषध. " |कफ वात प्रमेह पर विकंटादिका तैल. ७९८ |कफ पित्त प्रमेहादि पर लोधादि मध्वासव. " |

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
प्रमेह रोगपर सारोदकादिकोंका वर्णन.	७९९	कुष्ठरोग पर कूटादि तैल.	"
व्यायामादि योगों से प्रमेहकी शान्ति.	८००	स्वेत करवीरादि तैल.	"
प्रमेहके पूर्व रूप व पृथक् २ लक्षण तथा	"	स्वेत करवीर पत्रादि तैल.	८१५
अनेक प्रकारके कर्मोंका कथन.	"	तिक्तेक्ष्वाकु तैल.	"
इति प्रमेह चिकित्सितम् ॥		कनकक्षीर तैल.	"
<b>सप्तमोऽध्यायः ।</b>		कुष्ठरोग पर कूटादि सिध्म लेप.	८१६
कुष्ठ चिकित्सितका व्याख्यान.	८०१	चैवाँई पर जीवन्त्यादि तैल.	"
सात प्रकारके कुष्ठोंका द्रव्य संग्रह.	८०२	वातादि कुष्ठों पर किण्वादि लेपोंका कथन.	८१७
सब कुष्ठोंके पूर्व लक्षण.	८०३	कुष्ठ पर वासादि स्नान तथा पान.	८१८
कपालादि अठारह कुष्ठोंके पृथक् २ लक्षणोंका	"	कुष्ठपर म्रियंगवादि अभ्यंगोंका कथन.	"
कथन.	"	कुष्ठपर त्रिफलादि कषाय.	८१९
सप्तमहा कुष्ठ.	"	कुष्ठादिकों पर तिक्त घट्टपलघृत.	"
एकादश क्षुद्रकुष्ठ.	८०४	कुष्ठादिकों पर महा तिक्तक घृत.	८२०
वातादिकोंके अधिकता से कपालादि कुष्ठोंकी	"	संपूर्ण कुष्ठों पर महा खदिरादि घृत.	८२१
उत्पत्ति का कथन.	८०५	क्रिमि कुष्ठोंपर वांसादि स्नान व पान.	"
कुष्ठोंमें वातादिकोंके लिंग.	"	दिवचहण्ड गजादि योग.	८२२
साध्यासाध्य कुष्ठके लक्षण.	८०६	दिवच नाशक मनशिलादि लेपों का कथन.	८२३
कुष्ठके श्मनार्थ वमनादि क्रिया.	"	स्वेत दिवचके लक्षण.	८२४
कुष्ठोंमें वमन और विरेचनादिगों का कथन.	८०७	किलासके हेतु.	"
कुष्ठ रोगपर स्नेह.	"	इति कुष्ठ चिकित्सितम् ॥	
कुष्ठ रोगपर नस्य.	"	<b>अष्टमोऽध्यायः ।</b>	
कुष्ठ रोगपर शस्त्रोंसे भेदन तथा जलोकावों से	"	<b>राजयक्ष्मा चिकित्सितका</b>	
विरेचन किया.	८०८	<b>व्याख्यान.</b>	"
प्रदेह करने योग्य कुष्ठोंका वर्णन.	"	राजयक्ष्माकी उत्पत्तिका सविस्तर वर्णन.	"
वातादि कुष्ठोंके विनाश कारक कर्म.	"	राजयक्ष्माके प्रणट करने हारे ग्यारह साहसों	
कुष्ठरोग पर पटोलादि योग.	८०९	का कथन.	८२६
सर्व कुष्ठ नाशक मोथादि योग.	"	महान् राजयक्ष्माके ग्यारह ११ प्रतिश्यायादि	
सुप्ति कुष्ठपर त्रिफलादि चूर्ण.	८१०	रूप.	८२७
कुष्ठरोग पर मध्वासव.	"	राजयक्ष्माके प्रतिश्यायादि ग्यारहलिंग.	"
कुष्ठरोग पर कनक बिंद्वारिष्ट.	८११	कफादिक राजयक्ष्माके लिंग.	"
कुष्ठरोग पर त्रिफलादि आसवोंका वर्णन.	८१२	राजयक्ष्माके प्रतिश्यायादि पूर्व रूप.	८२८
कुष्ठरोग पर जटामांस्यादि लेप.	"	राजयक्ष्माके कासादि रूप तथा साध्यासाध्य	
मंडल कुष्ठनाशक जस्तादिकों का वर्णन.	"	का वर्णन.	८२९
कुष्ठरोग पर मोथादि सिद्धार्थक.	८१३	राजयक्ष्माकी उत्पत्ति व लक्षण.	८३०
कुष्ठनाशक कूटादि चार लेप.	"		
कुष्ठहरदाव्यादि छः कषायोंका योग.	८१४		



विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
राजयक्ष्मी के उपद्रवोंका कथन.	८३०	अर्शके वृद्धिकारक पूर्वरूप.	८५३
पीनस में स्वेदादि क्रियाओं का कथन.	८३२	साध्यासाध्य अर्शके लक्षण.	"
सच प्रकार के नाडी स्वेदों का कथन.	"	अर्शोंमें शस्त्रादि क्रियाका कथन	८५४
शिरःशूलादि पर बलादि प्रदेह.	८३३	शुष्क अर्शोंपर चीतादि स्वेदोंका पृथक् २	"
प्रपौडरीकादि संज्ञमनी क्रिया.	८३४	कथन.	८५५
कासादिकों की शान्ति के लिए बलादि		अर्शरोगपर रायसनादि अभ्यंगोंका कथन.	"
सिद्धि नस्यक्रिया.	"	अर्शरोगपर धूप तथा घृत और लेपनों का	
दशमूल के जलादि युक्त घृत क्रियाका कथन.	८३५	कथन.	८५६
कासादि रोगपर खजूरादि स्नेहोंका कथन.	"	अर्शरोगके शमनार्थ त्र्यूपणादि औषधियें.	८५७
कासादि रोगपर गोक्षुरादि घृत.	८३६	अर्शरोगपर तक्रारिष्ट.	८५९
रोगराज पर जीवन्त्यादि घृत.	८३७	अर्शरोगके शमनार्थ तक्रादि क्रियावोंका	
ज्वरादि पर बलादि योग.	"	कथन.	"
कफ प्रसेकमें वमनादि क्रियावोंका पृथक् २		अर्शरोग पर पिप्पल्यादि औषधियां तथा अन्न	
कथन.	"	विधान का कथन.	८६१
अतिसार पर पाटादि योग.	८३८	अर्शरोगपर स्नेहभिले सत्तुवोंकी मत्स्यांडिका	
अतिसार पर वेतादि योग.	८३९	दि क्रियावों का कथन.	८६२
दालचीनी इत्यादि रोचक मुखधावन.	८४०	अर्शरोगके शमनार्थ पिप्पल्यादि घृतोंका	
जिह्वाका शोधक यमानी शाडव.	"	कथन.	"
कासादि पर तालीस पत्रादि चूर्ण तथा गूटिका	८४१	ग्रहण्यादिहर पिप्पल्यादि घृत.	८६४
शुष्क मनुष्यको मयूरादि के मांसोपचार का		मलवातके संग्रहमें मोरादिके मांस तथा शाका	
सविस्तर कथन.	"	दिकों का कथन.	"
मदिरा के गुणागुण तथा शोषहर घृत.	८४३	अर्शरोगपर अनुवासन.	८६५
शुष्क हरजीवन्त्यादि उत्सादन.	८४४	संपूर्ण गुदजों पर अभयारिष्ट.	८६६
शुष्क मनुष्य को सपेद सरसों के कल्कादि		ग्रहण्यादि परदन्त्यरिष्ट.	८६७
कोंका सविस्तर उपचार का पृथक् २		ग्रहण्यादि रोगपर फलारिष्ट.	"
वर्णन.	८४५	पुनः द्वितीयफलारिष्ट.	८६८
इति राजयक्ष्मा चिकित्सितम् ।		अर्शरोग पर कनकारिष्ट.	८६९
<b>नवमोऽध्यायः ।</b>		रक्तार्शके लक्षण व उपद्रव तथा प्रति क्रिया.	८७०
अर्शश्चिकित्सितका व्याख्यान.	८४६	रक्तार्श पर कुटजादि रसक्रिया.	८७२
दो प्रकार के अर्श और तिनके क्षेत्रका		रक्तार्शपर नीलोत्पलादि दूध.	८७३
वर्णन.	"	रक्तार्शपर कुटजादि घृत तथा चुक्रिकादिपेया.	"
सहज अर्शके वर्णका कथन.	८४७	रक्तार्शपर कादमर्यादि औषध तथा शशादिकों	
सहज अर्शके लिंग व उपद्रव.	"	का मांस.	८७४
वातादि अर्शों की उत्पत्ति व लक्षण.	८४९	रक्तार्शपर मधूकादि परिषेचन तथा अव	
वातोलवण अर्शोंके लक्षण.	८५०	गाहन.	८७५
पित्तोलवण अर्शोंके लक्षण.	८५१	रक्तार्शपर घृतादि क्रिया.	८७६
कफोलवण अर्शोंके लक्षण.	८५२		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
रक्ताशेषपर पिच्छावस्ति.	८७७	<b>एकादशोऽध्यायः ।</b>	
अर्शरोगपर ह्रीविरादि घृत.	"	<b>विसर्प चिकित्सितका व्याख्यान ८९९</b>	
अर्शरोगहर सुनिपण्णक चांगेरी घृत.	८७८	विसर्प रोगकी उत्पत्त्यादिके विषे अग्निवैज्ञ व	
अर्शादिकोंका सविस्तर वर्णन.	८७९	पुनर्वसुजीका मश्रोत्तर.	"
इति अर्शचिकित्सितम् ।		सात प्रकारके विसर्प रोगोंकी निरुक्ति तथा	
<b>दशमोऽध्यायः ।</b>		हेतुका कथन.	९००
<b>अतिसार चिकित्सित का</b>		विसर्प रोगोंकी उत्पत्तिके करता लवणादि	
<b>व्याख्यान.</b>	८८०	पदार्थ.	९०१
अतिसारकी उत्पत्ति तथा लक्षण.	८८१	साध्यासाध्य विसर्पके लक्षण.	९०२
आमातिसार के लक्षण.	८८२	वात विसर्पके हेतु तथा लिंग.	"
अनुश्रयातिसारके लक्षण.	"	पित्त विसर्पके हेतु व लिंग.	९०३
पित्तातिसारके लक्षण.	"	श्लेष्म विसर्पके हेतु व लक्षण.	९०४
कफातिसारके लक्षण.	८८३	वात पित्तादिकांसे उत्पन्न चिकित्साके अयोग्य	
त्रिदोषातिसारके कारण.	"	विसर्पोंका पृथक् २ वर्णन.	९०५
सन्निपातातिसारके लक्षण	८८४	साध्य विसर्पोंकी संक्षेपसे लंघनादि चिकित्सा.	९०८
आगन्तवादि भेदकरके दो अतिसारोंका कथन.	८८५	विसर्परोग पर भ्रमफलादि वमन क्रियाका	
अतिसारहर पिप्पल्यादि प्रमथ्या.	८८६	पृथक् २ कथन	९०९
अतिसारविनाशक कालपण्यादि अन्नपान विधि.	८८७	विसर्प रोगपर चिरायतादि कषाय	९१०
अतिसारपर यूषादिकोंका कथन.	८८८	विसर्प रोगपर पटोलादि ओषध	"
मलके क्षयमें यवादि योगोंका कथन.	"	कोट्टादिमें प्रातहुप विसर्पोंके दोषोंपर रक्तहर-	
गुद श्रृंखलें चांगेरी तथा चव्यादि घृत.	८८९	णादि क्रिया	९११
गुदश्रृंखलपर दक्षमूलादि अनुवासन.	"	वातपित्तके विसर्परोग पर उदुम्बरादि प्रदेह	९१२
नृषावानादि अतिसारियोंकी क्रिया.	८९०	कफभिले विसर्परोगपर त्रिफलादि प्रदेह	९१३
पित्तातिसारियोंकी चिकित्सा.	८९१	विसर्परोगपर रूक्षादि युक्त चटनी तथा	
रक्तातिसारियोंकी सविस्तर चिकित्सा.	८९२	अन्नपान	९१६
पित्तातिसार करके मसोंसे पकी हुई गुदाकी		वातादि विसर्पोंकी पृथक् २ चिकित्सा	"
चिकित्सा.	८९५	ग्रंथि विसर्प पर पृथक् २ रूक्षादि चिकित्सा	९१६
चिरकालके अतिसारियोंकी चिकित्सा.	८९६	इति विसर्प चिकित्सितम् ।	
मलसहित रक्तातिसारियोंकी चिकित्सा.	"	<b>द्वादशोऽध्यायः ।</b>	
मरणप्राय अतिसारियोंके लक्षण.	"	<b>मदात्यय चिकित्सितका</b>	
कफके अतिसारपर बिल्वादि प्रयोग.	८९७	<b>व्याख्यान</b>	९२०
उदररोगपर कपित्थादि चटनी.	८९८	सुराकी प्रशंसा	"
वात कफके विबन्धादिपर पिच्छा वस्त्यादि	"	सुरापीनेकी विधि	९२१
क्रिया.	"	बातवाले मनुष्योंको सुरापानकी विधि	९२२
इति अतिसार चिकित्सितम् ॥		पैत्तिक तथा कफवाले मनुष्योंको सुरापान	
		की विधि	९२३

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
मदिरापानके गुणागुण	९२३	विट्क्षयके लक्षण	९४३
मदिराके लघ्वमादिदश १० गुण	९२४	वातके नाशक वस्त्यादि योग	"
ओजके गुर्वादि दशगुण तथा स्थान	"	इति मदात्यय चिकित्सितम् ।	
मद्यके प्रथमादि भेदोंका कथन	९२५	<b>त्रयोदशोऽध्यायः ।</b>	
विभ्रम मद्यके लक्षण	"	<b>द्वित्रिणीय चिकित्सितका</b>	
सुखदाई प्रथमादिमद्योंके लक्षण	"	<b>व्याख्यान</b>	९४४
मद्यके मोहादि गुणोंका कथन	९२७	आगन्तु व्रणके लक्षण	९४५
सत्त्वगुणादि मद्यपानके लक्षण	९२९	निज व्रणके लक्षण	"
सुखशीलोंके साथ मद्यपानके लक्षण	"	वातोत्पन्न व्रणके लक्षण	"
शीघ्राशीघ्र मद प्राप्तवालोंके लक्षण	९३०	पित्तोद्भव व्रणके लक्षण	९४६
वात प्राय मदात्ययके पूर्वरूप तथा लक्षण	९३१	कफोद्भव व्रणके लक्षण	"
पित्तप्राय मदात्ययके पूर्वरूप व लक्षण	"	व्रणोंके प्रकारादिका कथन	"
कफ प्राय मदात्ययके पूर्वरूप और लक्षण	"	व्रणोंके कृत्यादि भेद तथा दर्शनादि परीक्षा	"
सर्व मदात्ययके रूप	९३२	ना कथन	"
संपूर्ण मदात्पयोंका प्रतिकारका कथन	९३३	श्वेतादि चारह १२ मृदुव्रण	९४७
जीर्णभ्राममद्यकी चिकित्सा	"	त्वचादि ८ आठ व्रणोंके स्थान	"
अतिमात्र पिष्ट मद्यमें सौवर्चलादि क्रिया	"	घृतादि ८ व्रणोंके गन्ध	"
अम्लस्वभाव मद्यके अनुयायी मधुरादि चार	"	लक्ष्मीकादि १४ चौदह व्रणोंके स्त्राव	"
रसका कथन	९३४	विसर्पादि १६ सोलह व्रणोंके उपद्रव	"
मद्यविकारके शान्तिकारक योग	"	व्रण शान्तनहीं होनेके कारण	९४८
वातके शान्तिकेअर्थ विजौरादि पैष्टिकमद्य	"	कृच्छ्राध्यादिकोंके लक्षण	"
वाताधिक्यमें लावादिके उपचारोंका कथन	"	छत्तीस व्रणोंके उपक्रमोंका कथन	९४९
वातविकारमें धनियादि सिद्धयोग	९३५	शोफ रोगपर न्यग्रोधादि प्रलेप	९४९
रूक्षादि युक्त मदात्ययकी शान्तिकारक क्रिया	"	शोफ रोग पर विजयादि प्रदेह	"
पित्तके मदात्ययमें खर्जूरादि युक्तमद्य तथा	"	पकेहुए शोथके नाशक हरिद्रादि औषध समूह ९५०	
शशादि भोजन	९३६	पाटनादि छः श्लेष्मक्रियाके योग्योंका	"
कफपित्तके मदात्ययमें मद्यदियोग	"	खविस्तर वर्णन	"
वातपित्तके मदात्ययमें द्राक्षादि रसोंकी क्रिया	९३७	रक्त पित्ताधिक व्रणोंमें शाल्मल्यादि निर्वापण	९५१
पित्तके मदात्ययमें शीतल अन्नपानादि क्रिया	९३८	व्रणोंमें फलिन्यादि अवचूर्णन तथापट्टी क्रिया	९५२
मद्यसे उत्पन्न दाहमें चंदनादियोगोंका कथन	"	व्रणोंमें तिलादि स्नेह क्रियावोंका कथन	९५३
संपूर्ण मदात्ययोंमें उल्लेखनादियोग	९३९	दो प्रकारकी एषणाक्रियाका कथन	"
कफ प्राय मदात्ययमें यवादियोग तथा	"	शोधनकारक विफलादिकपाय	९५४
अष्टांग लवण तयारोग	९४०	रोषण करने योग्य व्रणोंका कथन	"
कफ प्राय मदात्ययमें रूक्षादि अन्नपान योगों	"	न्यग्रोधादि रोषण व शोधनोंका वर्णन	"
का कथन	९४१	व्रणपर कदम्बादि आच्छादन	९५५
सर्व मदात्ययमें रमणीय वनादि सिद्ध योग	९४२	व्रणवान् मनुष्यको लवणादि वर्जने योग्य	"
मद्य पानसे दग्धमनुष्यकी दूधादि योग	"	पदार्थ	"
ध्वंसके लक्षण	९४३		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
त्रणोंका अस्सादन तथा जलाने योग्योंका कथन	९५६	उन्माद पर वयरवायुक्त पुगना घृत	९६८
अग्निकर्मके अयोग्योंका कथन	"	उन्माद नाशक नस्याञ्जन	९६९
त्रणकी शिथिलतादिके अर्थ लोघ्रादि योग्योंका कथन	९५७	उन्माद हर मरिचादि अञ्जन	९७०
त्रणके शान्त्यर्थ ककुभादि चूर्ण	"	प्रबोधकारक क्रियावोंका सविस्तर कथन	९७१
त्रणनाशक कालीयकादि लेप	९५८	देवादि उन्मादोंको शान्तिकारक क्रिया	९७२
इति त्रिप्रणाय चिकित्सितम् ।		विगत उन्मादके लक्षण	९७३
		इति उन्माद चिकित्सितम् ।	
<b>चतुर्दशोऽध्यायः ।</b>		<b>पञ्चदशोऽध्यायः ।</b>	
उन्माद चिकित्सितका व्याख्यान	"	अपस्मार चिकित्सितका व्याख्यान	"
उन्मादके हेतु	"	अपस्मार के उत्पन्न करनेवाले कारण	"
उन्मादके सामान्य लक्षण	९५९	चातादि चार प्रकारके अपस्मारोंके लक्षण	९७४
निजोन्मादका कथन	"	चातादि अपस्मारमें वस्त्यादि क्रिया	९७५
वातोन्मादके लक्षण	"	अपस्मारपर पंचगव्य तथा महा पंचगव्य	"
पित्तोन्मादके लक्षण	९६०	घृत	"
कफोन्मादके लक्षण	"	वात कफादिके अपस्मार पर वचादि घृतोंका कथन	९७६
वर्जने योग्य उन्मादोंके लक्षण	"	अपस्मार नाशक सर्पपादि तैलाभ्यंग	९७७
आगन्तु उन्मादके हेतु	"	अपस्मार हर पलंकपादि अंजन	"
भूतोत्पन्न उन्मादके लक्षण	९६१	अपस्मार विनाशक पिप्यद्यादि प्रदेह क्रियाओं का कथन	"
देवोन्मादके लक्षण	"	अपस्मारादि हर कायस्थादि वर्त्ता	९७८
पितरोन्मादके लक्षण	"	अपस्मार पर मोयादि अंजन	९७९
गन्धर्वोन्मादके लक्षण	"	महागदके लक्षण	"
यक्ष तथा राक्षसोन्मादके लक्षण	९६२	महागद नाशक क्षेडादि उपचार	९८०
ग्रहाराक्षस व पिशाचोन्मादके लक्षण	"	इति अपस्मार चिकित्सितम् ।	
शौचाचारादि युक्त मनुष्योंको धर्पण करनेवाले देवोंदि ग्रह	"	<b>षोडशोऽध्यायः ।</b>	
असाध्य उन्मादोंके लक्षण	९६४	क्षतक्षीण चिकित्सितका व्याख्यान	९८१
वातादि उन्मादोंकी पृथक् २ चिकित्सा	"	क्षतरोगका निदान	"
उन्मादी मनुष्यकी तर्जनादि क्रियाका कथन	९६५	क्षीणरोग निदान	९८२
उन्मादहरहिंवादि घृत	"	क्षतक्षीणके उपद्रव तथा साध्या साध्यके लक्षण	"
अपस्मारादिपर विशालादि कल्याणक घृत	"	क्षतरोगनाशक लाक्षादि क्रियावोंका कथन	"
वृंहणीय महा कल्याणक घृत	९६७	कासादि हर एलादि गुटिका	९८३
बुद्धिकारक महा पैशाचिक घृत	"	रक्तटीव पर पुनर्नवादि घृत	९८४
उन्मादहर लशुनादि घृत	"		
शूलादि पर द्वितीयलशुनादि घृत	९६८		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
क्षामक्षीणादिकोंकी चिकित्साका पृथक् २		कफोद्भव शोथ पर पिप्यल्यादि प्रयोग	१००४
सविस्तर वर्णन	९८४	शोथ पर राय सनादि लेप	"
नष्ट शुक्रादि पर जीवकादि अमृत प्राशघृत	९८५	शालूकादि शोथोंके निदान तथा उपद्रव और	
वातादि पर श्वद्रंष्ट्रादि घृत	९८६	पृथक् २ लक्षण सहित सविस्तर औषध	
क्षतक्षीण पर संक्षुपयोग	९८७	क्रिया, व साध्यासाध्यका कथन	"
राजयक्ष्मादि पर आंवलादि घृत	"	इति श्वयथु चिकित्सितम् ।	
शोषादि रोगोंपर तीन प्रकारके सर्पिर्गुण	९८८		
वातादि रोगोंपर सर्पिर्मादक	९८९		
क्षतक्षीणरोगमें यूषादि क्रिया	९९०		
रोचन पर सैन्धवादि चूर्ण	९९१		
अन्नपानमें धनियादि पाडव	९९२		
क्षतक्षीण पर नागबलादि औषध	"		
इति क्षतक्षीण चिकित्सितम् ।			
<b>सप्तदशोऽध्यायः ।</b>		<b>अष्टादशोऽध्यायः ।</b>	
श्वयथु चिकित्सितका व्याख्यान ९९३		उदर चिकित्सितका व्याख्यान १००९	
निज श्वयथुके हेतु तथा पृथक् २ लक्षण		संपूर्ण उदर रोगोंके विषे अग्निवेश व पुनर्व	
व उपद्रव	"	सूजीका प्रश्नोत्तर	"
श्वयथुके सामान्य लिङ्ग	९९४	उदररोगके हेतु तथा लिंग	१०१०
वातोद्भव श्वयथुके लक्षण	"	वातोदरके हेतु व लक्षण	१०११
पित्तोद्भव श्वयथुके लक्षण	"	पित्तोदरके हेतु व लक्षण	१०१२
कफोद्भव श्वयथुके लक्षण	"	कफोदर के हेतु व लक्षण	"
आमादिसे उत्पन्न शोथोंकी पृथक् २ क्रिया	९९५	सन्निपातोदरके हेतु व लिंग	१०१३
शोथबालेको वर्जने योग्य पदार्थ	"	यकृतप्लीहोदरके हेतु व लिंग	"
वातादि शोथों पर पृथक् २ व्योषादि औषध		द्ववगुदोदरके हेतु तथा लिंग	१०१४
क्रियावोंका कथन	९९६	छिद्रोदर के हेतु व लिंग	१०१५
शोथ पर गण्डरीयारिष्ट	९९७	उदकोदर के हेतु व लिंग	"
शोफ पर कादर्भयाद्यरिष्ट	"	साध्यासाध्य उदररोग के लिंग	१०१६
हृद्भोगादि पर पुनर्नवाद्यरिष्ट	९९८	अजातोदकके लिंग	१०१७
हृद्भोगादि पर त्रिफलाद्यरिष्ट	९९९	वातोदरमें स्नेहादि उपचारोंका पृथक् २ कथन	१०१८
प्लीहादि पर क्षार गुटिका	"	पित्तोदरमें अनुवासनादि उपचारोंका वर्णन	१०१९
गुल्मादि पर गुडाद्रिक प्रयोग	१०००	कफोदर में कट्टादि युक्त अन्नसे संसर्जनदिकों-	
शोयादि पर कंस हरीतकी	"	का वर्णन	"
विसर्पादि पर पटोल मूलादि घृत	१००१	प्लीहोदरमें स्नेहादि क्रिया	१०२०
अंक्षादि पर चित्रकादि घृत	"	गुल्मादि पर वायविडंगादि प्रयोग	"
अंक्षादि पर जीवन्त्यादि यवागू	१००२	कामलादिपर रोहीतकादि प्रयोग	"
वातोद्भव शोथ पर शैलेयादि तेल	१००३	प्लीहोदर व बद्धोदरकी क्रिया	१०२१
पित्तोद्भव शोथ पर बांसादिप्रयोग	"	छिद्रोदरकी क्रिया	१०२२
		उदकोदरकी क्रिया	"
		निचयोदरादिमें त्र्यूषणादि युक्त पृथक् २	
		तक्रादि पानोंका सविस्तर कथन	१०२३
		उदर रोग पर पञ्चकोलादि घृत	१०२४
		उदर रोग पर नागरादि घृत	१०२५
		उदर रोग पर चित्रकादि तथा वयाद्यघृत	"
		जातोदकादि पर पटोलादि चूर्ण	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
संपूर्ण रोगों पर अजवायनादि नारायण चूर्ण	१०२६	आम ग्रहणी पर सोटादि योगोंका कथन	१०४६
गुल्मादि रोगों पर हनुपाय तथा नीलिन्यादि चूर्ण	१०२७	कफ वात ग्रहणी पर कलिगादि योग	१०४७
गुल्मादिकों पर स्नुही क्षीर घृत	"	पित्त कफ ग्रहणी पर अमयादि योग	"
उदर रोग पर दधिमण्डादि क्रियाओंका कथन	१०२८	वात ग्रहणी पर मरिचादि चूर्ण	१०४८
क्रमसे नष्टहै दोष जिनका तथा जंगलके मांसके जो मक्षकहैं उनके शेष दोषोंके शमनार्थ चीतादि योगोंका कथन	"	संपूर्ण अर्तासारादि पर चट्यादि पंच प्रकार की यनागू	"
कफसे बढे हुए उदर रोग में पिप्पल्यादि योग	१०३०	दीपनकारक तकारिष्ट	१०४९
जिस मनुष्यको दूधसे पाइर्बशूलादि उत्पन्नहों उसकी चिकित्सा	१०३१	पित्त ग्रहणीकी चिकित्सा	१०५०
उदर रोग श्रांत न होय तो उसपर विष क्रिया	१०३२	पित्त ग्रहणी पर चन्दनादि घृत	"
उदर रोगपर श्लेष्मक्रिया	१०३३	अर्शादि पर नागरादि चूर्ण	"
इति उदर चिकित्सितम् ।		ग्रहण्यादि पर भूनिम्बादि चूर्ण	१०५१
<b>एकोनविंशोऽध्यायः ।</b>		हृद्रोगादि पर किरातादि चूर्ण	"
<b>ग्रहणी चिकित्सितका</b>		कफ ग्रहणी पर वमनादि चिकित्सा	१०५२
<b>व्याख्यान</b>	१०३५	ग्रहणी पर मध्वासव	"
अग्नि के गुण तथा प्रशंसा	"	ग्रहणी पर द्वितीय मध्वासव	१०५३
रक्तादि की उत्पत्तिके विषे अग्निवेश व पुनर्व सुजीका मश्रोत्तर	१०३६	ग्रहण्यादि डुरालभासव	"
रक्तादिकों की उत्पत्ति	१०३७	दीपनादिकारक मूलासव	१०५४
ग्रहणी रोग के सविस्तर हेतु और पृथक् २ रोगों करके तिस्की उत्पत्ति व लक्षण तथा उपद्रव	१०३९	सर्व रोगमें पिंडासव	"
वातोद्भव ग्रहणीके लक्षण	१०४१	मंदाग्न्यादि पर मध्वारिष्ट	१०५५
पित्तोद्भव ग्रहणीके लक्षण	१०४२	दीपनादि पर क्षारघृत	१०५६
कफोद्भव ग्रहणीके लक्षण	"	वातादि रोगों पर दशमूलादि घृत	"
सन्निपातोद्भव ग्रहणीके लक्षण	१०४३	ग्रहण्यादि पर भल्लातकादि क्षारोंका कथन	"
वात के ग्रहणीपर त्रिफलादि योग	"	दीपनादि पर सुधाकांडादि क्षारगुटिका	१०५७
अग्नि दीप्तिकारक दशमूलादि घृत	१०४४	ग्रहणी पर वांसादि चतुर्थक्षार	१०५८
मंदाग्नि पर त्र्यूपणादि घृत	१०४५	अर्शादि पर त्रिफलादि पंचम क्षार	"
अग्नि दीप्ति पर पंचमूलादि घृत	"	सन्निपात ग्रहणी पर पांच कर्म	१०५९
दीपनीय चित्रकादि गुटिका	१०४६	समय समयमें श्लेष्मादिसे ग्रसितों की पृथक् २ चिकित्सा	"
		भस्मक रोगका कथन	१०६१
		भस्मक रोगके हेतु तथा पायसादि औषधियों का कथन	१०६२
		पथ्यापथ्य तथा जीर्णाजीर्णके गुणागुण	१०६४
		इति ग्रहणरोग चिकित्सितम् ।	
		<b>विंशोऽध्यायः ।</b>	
		<b>पांडुरोग चिकित्सितका व्याख्यान</b>	१०६६
		पाण्डुरोगके लक्षण तथा सविस्तर हेतु	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
वातादिसे पैदा हुए पाण्डुरोगके पृथक् २		हिक्का तथा इवासके पूर्वरूप	१०८५
लक्षण	१०६७	महा हिक्काके लक्षण	"
मृत्तिकोद्भव पाण्डुरोगके लक्षण	१०६९	गम्भीर हिक्काके लक्षण	१०८६
साध्यासाध्य पाण्डुरोगीके लक्षण	"	व्यपेता वायमिका हिक्काके लक्षण	"
कामला रोगके हेतु तथा लक्षण व उपद्रव	१०७०	शुद्ध हिक्काके लक्षण	१०८७
हृदयादि पर दाढिमादि घृत	१०७१	अन्नजा हिक्काके लक्षण	"
रक्त पित्तादि पर कटुकादि घृत	"	साध्यासाध्य हिक्काके लक्षण	१०८८
पाण्डुरोगपर पथ्या घृत	१०७२	महा इवासके लक्षण	"
झाहादि पर दन्ती घृत	"	ऊर्ध्वइवासके लक्षण	१०८९
कामलादि पर द्राक्षाघृत	"	छिन्न इवासके लक्षण	"
कामलापर हरिद्रादि घृत	"	तमक इवासके लक्षण	१०९०
पाण्डुरोगादिपर गोमूत्रादि योग	"	प्रतमक इवासके लक्षण	१०९१
पित्तादि पाण्डुरोगमें दुग्धादि प्रयोग	१०७३	साध्यासाध्य इवासके लक्षण	"
कासश्वासादिपर निम्बोत्थादि औषध	"	हिक्का तथा इवासपर स्निग्धादि प्रयोग	१०९२
पाण्ड्रादि रोगोंपर नवायस चूर्ण	१०७४	हिक्का व इवासपर हरिद्रादि धून्प्रदान	१०९३
पाण्डुरोगपर मंडूरवटिका	"	स्वरक्षीणादिसे उत्पन्न हिक्का व इवासपर	
पाण्ड्रादि रोगोंपर कुलत्थादि योगराज	१०७५	मधुरादि प्रयोग	"
पाण्ड्रादि रोगोंपर झिलाजनु वटिका	१०७६	अतियोगसे वृद्धवातकी चिकित्सा	१०९४
पाण्ड्रादि रोगोंपर पुनर्नवा मंडूर	१०७७	कफाधिककी चिकित्सा	"
कामलादिपर अयोरजादिप्रयोग	१०७८	हिक्का व इवासपर कटेहल्यादियुष	१०९५
कामलादिपर धान्यवलेह तथा मंडूर वटिका	"	हिक्का और इवासपर मातुलुंगादिक्षार	"
पाण्डुरोगपर गौडोरिष्ट	१०७९	हिक्का और इवासपर हिंग्वादि अनेक प्रकारके	
ग्रहण्यादिपर बीजकारिष्ट	"	यवाग्रादि योगोंका पृथक् २ सविस्तर	
कामलादिपर धान्यरिष्ट	"	कथन	१०९६
मृत्तिकोद्भव पाण्डुरोगकी चिकित्सा	१०८०	हिक्कादिपर मुक्तादि चूर्ण	१०९८
पाण्डुरोगपर व्योपादि घृत	"	हिक्कादिपर तामलक्यादि नस्यपान	१०९९
पाण्डुरोगीको देनेलायक मिष्टी	१०८१	हिक्कादिपर दशमूलादि घृत	११००
कामला रोगियोंकी मलादि हेतुवोंकरके		हिक्कादिपर तेजोवत्यादि घृत	"
पृथक् २ सविस्तर चिकित्सा	"	हिक्कादिपर मनःशिलादिघृत	११०१
इलीमकके लक्षण व औषध	१०८२	हिक्का और इवासपर जीवनीयादि प्रयोग	"
इति पाण्डुरोग चिकित्सितम् ।		इति हिक्काइवास चिकित्सितम् ।	
<b>एकाधिकविंशोऽध्यायः ।</b>		<b>द्वाविंशोऽध्यायः ।</b>	
हिक्काश्वास चिकित्सितका		कास चिकित्सितका व्याख्यान	११०२
व्याख्यान	१०८३	पांच प्रकारके कास और तिनके वातादि	
त्रिदोषसे उत्पन्न दुर्जय दोषोंके विषे अग्नि-		भेद करके पृथक् २ पूर्वरूप तथा सविस्तर	
वैश्व व पुनर्वसुजीका प्रश्नोत्तर	"	लक्षण	"
हिक्का और श्वासके लिंग व उत्पत्ति	१०८४	साध्यासाध्य कासके लक्षण	११०५

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
वातोद्भव कासपर स्नेहादि चिकित्सा	११०५	छांदिरोगके विषे अग्निवैद्य व पुनर्वसुजी का	
वातोद्भव कासपर कंठिकारी घृत	११०६	प्रश्नोत्तर	११२५
कासादिपर पिप्पल्यादि घृत	"	वातादि पांच प्रकारकी छांदिके पूर्वरूप व उपद्रव	११२६
ज्वरादि पर व्यूषणादि घृत	"	साध्यासाध्य छांदिके लक्षण	११२८
कासादिपर रास्नादि घृत	११०७	छांदिरोगपर लघनादि क्रिया	"
कफ वातोद्भव कासपर क्षारादि घृत	११०८	वातोद्भवछांदिपर तिक्तिरादि के रसकी	
कासादिपर चित्रकादि लेह	"	चिकित्सा	११२९
कासादिपर अगस्त्य हरीतकी	११०९	पित्तकी छांदिके अनुलोमनादि चिकित्सा	"
झिरेक सद्नादिपर संधवादि प्रयोग	"	कफकी छांदिके पिप्पल्यादि वमनादि	
कासादिपर मनशिलादि धूत्रपान	१११०	चिकित्सा	११३०
वातके कासपर अजवायनादि पेया	११११	सन्निपात छांदिकी चिकित्सा	११६१
पित्त कफके कासपर घृतादि चिकित्सा	१११२	मनोभिषातोद्भव छांदिकी चिकित्सा	"
पित्तके कासपर मृद्गाटकादिलेह	"	इति छांदि चिकित्सितम् ।	
कासादिपर दालचीन्यादिलेह	१११३	<b>चतुर्विंशोऽध्यायः ।</b>	
कासादिपर स्थिरादिदूध तथा मोदक	१११४	तृष्णा चिकित्सितका व्याख्यान	११३३
कफके कासपर वमनादि क्रिया	१११५	तृष्णाके पूर्वरूप व हेतु	"
वातकफके कासपर कायफलादि योग	"	वातोद्भव तृष्णाके लक्षण	११३४
कफके कासमें कासमर्दादि योग	१११६	पित्तोद्भव तृष्णाके लक्षण	"
कफके कासमें देवदावादिलेह	"	अहंकाराद्युद्भव अग्निवादि तृष्णाओंका	
कासरोग पर दक्षमूलादि घृत	१११७	पृथक् २ सविस्तर लक्षण	"
कासादिपर कंठकारी तथा कुलत्यादि घृत	"	तृष्णाके शान्त्यर्थ शहदमिले जलादिकोंका	
क्षतज कासपर पिप्पल्यादिलेह और पृथक् २		कथन	११३६
कारणसे चिकित्साका कथन	१११८	तृष्णापर दुग्धपान	"
क्षयके कासपर घृहणादि चिकित्सा	११२०	तृष्णाके श्मनार्थ पृथक् २ सविस्तर अभ्यं-	
क्षयके कासपर श्रम्पाकादिघृत	"	गादि औषध क्रियाओंका वर्णन	११३७
क्षयके कासपर त्रिपंचमूलादिघृत	११२१	इति तृष्णा चिकित्सितम् ।	
गुल्मादिपर गुहूल्यादि घृत	"	<b>पञ्चविंशोऽध्यायः ।</b>	
शोषादिपर कासमर्दादि घृत	११२२	विष चिकित्सितका व्याख्यान	११४१
श्वासादिपर हरीतकालेह	"	विषकी उत्पत्ति व उपद्रव	"
कासादिपर श्वाविदादि प्रयोग	११२३	जंगम विषके लक्षण	११४२
संपूर्ण कासपर पत्रकादिलेह	"	स्थिर विषके लक्षण	"
कासादिपर जीवन्त्यादिलेह	"	जंगम व स्थावर विषके अवगुण	११४३
कासादिपर गौरसर्पपादियवागू	११२४	विषके द्रव्यकारके वेगोंके गुण	"
इति कासश्वास चिकित्सितम् ।		रूक्षतादि भावोंसे कुपित हुए विषके पृथक् २	
<b>त्रयोविंशोऽध्यायः ।</b>		सविस्तर उपद्रवों का वर्णन	११४४
छांदि चिकित्सितका व्याख्यान	११२५	विषके मंत्रादि चौबीस उपक्रमोंके नाम	११४५



विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
दंशसे पैदाहुए विषपर वेलिका ( पट्टी )		शंकाविषपर आश्वासनादि क्रिया	११६९
आदि क्रियाओंका पृथक् २ सविस्तर कथन	११४६	चतुष्पदोंसे डसेहुओंके लक्षण और	
विषके प्रथमादि वेगोंमें कर्त्तव्यता	"	चिकित्सा	११७०
विषसे मृतमनुष्योंको मोर पित्तादि क्रिया	११४७	विषहर शिरीषादि अमृतघृत	"
विषहर पृष्ठादिमृत संजीवनी वटिका	११४८	इति विषचिकित्सितम् ।	
वातादि स्थानमें स्थित विषकी स्वेदनादि			
चिकित्सा	११४९		
विषादिके शान्त्यर्थ इवेतादि गंधनामा			
अगदहस्ती	११५०	<b>षड्विंशोऽध्यायः ।</b>	
पेल्यादिपर तालीस पत्रादि महागंध हस्ती	११५१	त्रिमर्मीय चिकित्सितका	
महागंध हस्तीके पोसनेके समयका मंत्र	११५२	व्याख्यान	११७३
इवासादिपर ऋषमकादि औषध क्रियाओंका		उदावर्तके निःशम	"
पृथक् २ सविस्तर वर्णन	११५३	उदावर्तकी चिकित्सा	११७४
संपूर्ण विषादिपर पलाशादि क्षारागद	११५४	मूत्रकृच्छ्र निदान	११७७
राजाको सेवकोंकी तथा विषकी परीक्षाका		अश्मरी निदान	११७८
कथन	"	मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा	११८०
जंगम विषकी चिकित्सा	११५७	अश्मरी चिकित्सा	११८२
दर्वाकरादि तीनप्रकारके सर्पोंके विषके लक्षण		हृद्रोग चिकित्सा	११८५
तथा उपद्रव और पुरुष स्त्री नपुंसकका		पीनस ( नासरोग ) निदान	११८९
वर्णन	"	पीनस ( नासरोग ) चिकित्सा	११९२
गर्भवती सर्पिणीके दंशके उपद्रव	११५८	शिरोरोग निदान	११९५
गोधेरकादि सर्पोंके विषके उपद्रव	"	शिरोरोग चिकित्सा	"
सर्पोंकी चारदंष्ट्राके रंग तथा उपद्रव	"	मुखरोग निदान	११९९
दूषी विषादि कीटोंके दंशके लक्षण व उपद्रव	११५९	मुखरोग चिकित्सा	"
मूसानामके दूषी विषके दंशके लक्षण	११६०	अरोचक निदान	१२०३
कृकलासके दंशके लक्षण	"	अरोचक चिकित्सा	"
वृश्चिकादि दूषी विषियोंके डसेहुयोंके पृथक् २		कर्णरोग निदान	१२०४
सविस्तर लक्षण	"	कर्णरोग चिकित्सा	"
वातादि विषोंके हृत्पीडादि लक्षणतथा पृथक् २		नेत्ररोग निदान	१२०६
औषध	११६२	नेत्ररोग चिकित्सा	"
विषवानोंके कंडूादि लक्षणोंका कथन	११६३	खालित्य रोग निदान	१२१०
हृदयादि स्थानोंमें प्राप्तहुए विषपर विरेचनादि		खालित्य रोग चिकित्सा	१२११
क्रियाका पृथक् २ कथन	११६४	स्वरभेद चिकित्सा	१२१३
संपूर्ण विषोंपर चंदनादि औषध	११६५	इति त्रिमर्मीयचिकित्सितम् ।	
दाव्यादिकोंके डसनेपर सिन्धुवारादि			
औषधियें	११६६	<b>सप्तविंशोऽध्यायः ।</b>	
विषनाशक दवादि औषध तथा पंच शिरीषो		ऊरुस्तंभ चिकित्सितका	
ऽगद	११६८	व्याख्यान	१२१५

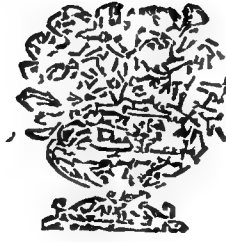
विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
ऊरुस्तंभके कारणादि भेदोंके विषे अग्नि- वेद्य व पुनर्वसुजोका मश्रोत्तर	१२१५	झोहादिपर रास्ना तेल	१२४५
ऊरुस्तंभके हेतु और पूर्वरूप	१२१६	मास्त आदि पांचोंके परस्पर आवरणमें	
नवीन ऊरुस्तंभमें स्नेहादिकोंका निषेध	१२१७	पृथक् २ लक्षण व चिकित्सा	१२४७
ऊरुस्तंभपर क्षारादि प्रयोग	१२१८	इति वातव्याधिचिकित्सितम् ।	
ऊरुग्रहपर मोथादिक कल्क	"	<b>एकोनविंशोऽध्यायः ।</b>	
ऊरुस्तंभपर झार्गुष्टादि औषध	१२१९	वातशोणित चिकित्सितका	
ऊरुस्तंभपर स्वर्णक्षौर्यादि औषध	"	व्याख्यान ।	१२५३
गुधस्यादिपर अष्टकदर तेल	१२२०	वात शोणितके हेतु	"
ऊरुस्तंभपर बल्मीकादि उत्सादन	"	वात शोणितके स्थान तथा पूर्व लक्षण	१२५४
ऊरुस्तंभपर दंत्यादि लेपोंका वर्णन	१२२१	उत्तानादि दो प्रकारके वातरक्तके पृथक् २ लक्षण	१२५५
इति ऊरुस्तंभचिकित्सितम् ।		वातादिके अधिक रक्तके लक्षण	१२५६
<b>अष्टाविंशोऽध्यायः ।</b>		साध्यासाध्य वातरक्तके लक्षण	१२५७
वातव्याधिचिकित्सितका व्या- ख्यान	१२२२	संक्षेपसे वातरक्तपर भृंगादि चिकित्सा	"
वायुकी प्रशंसा	"	विस्तारसे वातरक्तपर मुंद्यादि प्रयोग	१२६०
प्राणादि पांच प्रकारके वायुके पृथक् २ स्थान	१२२३	वातरक्तपर पारूपक घृत	"
वायुको कुपित करनेहारे रुक्षादि हेतु तथा पूर्वरूप	१२२४	वातरक्तपर द्विपंचमूलादि घृत	"
आमाशयादिमें प्राप्त हुये वायुके पृथक् २ उपद्रव	१२२५	वातशोणितपर दाक्षादि तथा गुडूच्यादि घृत	१२६२
बाहिरायान वायुके उपद्रव	१२२८	वातरक्तपर जीवकादि औषधियें	"
वातादिसे वायुके मार्गोंका आवरण होनेपर पृथक् २ कंषादि लिंगोंका कथन	१२२९	वातव्याधिपर सुकुमार तेल	१२६५
वायुरोगपर स्नेहादि चिकित्सा	१२३२	वातरक्तादिपर अमृतादि तेल	१२६६
कोष्ठादिमें स्थित वायुकी विशेष करके क्षारादि चिकित्सा	१२३३	वातरक्तपर महापद्मतेल	"
वातरोगपर घृतादि योग	१२३५	वातरक्तपर खुट्टाक नाम पद्मक तेल	१२६७
वातरोगपर आनूपोदकादि नाडी स्नेह	१२३६	वातरक्तादि पर जलपाक मधुपर्णा तेल	"
वातरोगपर जलादि स्नेह	१२३७	वातरक्तपर सहस्रपाक वा शतपाक तथा पिंडतेल	१२६८
वातरोगपर नाकामत्स्यादि महास्नेह	१२३८	आक्षेपादिव्याधियोंमें स्नेहादि प्रयोगोंका पृथक् २ सविस्तर वर्णन	१२६९
श्लासादि रोगोंपर बलातेल	१२४०	इति वातशोणित चिकित्सितम् ।	
क्षीण वीर्यादिपर अमृतादि तेल	१२४२	<b>त्रिंशोऽध्यायः ।</b>	
वातरोगपर रास्ना तेल	"	योनिव्यापच्चिकित्सितकाव्या- ख्यान	१२७४
वातरोगपर बलानागबला अभ्रगंधादि तेलोंका पृथक् २ कथन	१२४३	योनिकी बीज व्यापत्तिकी वातल भोजनादि हेतुओंसे उत्पत्ति व पृथक् लक्षण तथा उपद्रव	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
अचरणादि योनियोंके पृथक् २ लक्षण	१२७५	<b>द्वितीयोऽध्यायः ।</b>	
वातलादि योनियोंमें स्नेहनादि पृथक् २ क्रिया	१२७८	जीमूत कल्पका वर्णन	१२२६
वातसे आर्त योनिमें कादमर्यादि घृत	१२८०	<b>तृतीयोऽध्यायः ।</b>	
पित्तसे आर्त योनिमें पञ्चवल्कलादि प्रयोग	१२८१	इक्ष्वाकुकल्पका कथन	१२२७
योनि दोषपर बृहच्छतावरी घृत	"	<b>चतुर्थोऽध्यायः ।</b>	
कफसे प्रदुष्ट योनिमें संशोधन वर्त्यादि क्रियाओंका पृथक् २ कथन	१२८२	धामार्गव कल्पका वर्णन	१२३०
पिच्छिलादि योनियोंमें उदुम्बरादि तैलादि प्रयोगोंका पृथक् २ कथन	१२८३	<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>	
अर्शादि रोगोंपर पाठादि पुण्यानुगचूर्ण	१२८४	वत्सक कल्पका वर्णन	१२३२
कफादि असृग्दोषोंमें मधूकादि प्रयोगोंका पृथक् २ विस्तार कथन	१२८६	<b>षष्ठोऽध्यायः ।</b>	
शुक्रके दोषादि विषयोंमें अग्निवैद्य व पुनर्व-सुर्जाका प्रश्नोत्तर	१२८९	कृतवेधन कल्पका वर्णन	१२३४
आठ प्रकारके फेनिलादि शुक्रके पृथक् २ लक्षण तथा चिकित्सा	१२९१	<b>सप्तमोऽध्यायः ।</b>	
वीर्यके दोषसे उत्पन्न नपुंसकताके लक्षणोंका पृथक् २ वर्णन	१२९२	श्यामानिवृत्तकल्पका वर्णन	१२३५
ध्वजाके भंगसे पैदा हुई नपुंसकताके लक्षण	१२९३	<b>अष्टमोऽध्यायः ।</b>	
ध्वजाके भंगके पूर्वरूप	१२९४	चतुरङ्गल कल्पका वर्णन	१२४४
जरासे उत्पन्न नपुंसकताका वर्णन	१२९५	<b>नवमोऽध्यायः ।</b>	
साध्यासाध्य नपुंसकताके लक्षण	१२९६	तिल्वक कल्पका वर्णन	१२४६
संक्षेप तथा विस्तारसे नपुंसकताकी औपधियें	१२९७	<b>दशमोऽध्यायः ।</b>	
प्रदर रोगके हेतु	१२९८	सुधा कल्पका वर्णन	१२४८
वातादि प्रदरोंके लक्षण तथा चिकित्सा	१२९९	<b>एकादशोऽध्यायः ।</b>	
स्तन्यदोष चिकित्सा	१३०१	सप्तला शंखिनी कल्पका वर्णन	१२५०
आठ प्रकारके स्तन्य दोषके लक्षण तथा चिकित्सा	१३०२	<b>द्वादशोऽध्यायः ।</b>	
इति योनिव्यापचिकित्सितं पं० मिहिरचंद्रकृत भाषाविवृतिसहितं समाप्तम् ।		दन्ती द्रवन्ती कल्पका वर्णन	१२५३
		इति पं० मिहिरचंद्रकृतभाषाविवृतिसहितं सप्तमं कल्पस्थानं समाप्तम् ।	
<b>कल्पस्थानम् ।</b>		<b>सिद्धिस्थानम् ।</b>	
<b>प्रथमोऽध्यायः ।</b>		<b>प्रथमोऽध्यायः ।</b>	
मदन कल्पका व्याख्यान	१३१५	कल्पनासिद्धिका वर्णन	१३६६
		<b>द्वितीयोऽध्यायः ।</b>	
		पञ्चकर्मसिद्धिका वर्णन	१३७६

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
<b>तृतीयोऽध्यायः ।</b>		हृद्गत व्यापञ्चिकित्सा.	१४२१
वस्तिसूत्रीयसिद्धिकावर्णन.	१३८६	ऊर्ध्वव्यापञ्चिकित्सा.	"
<b>चतुर्थोऽध्यायः ।</b>		मवाहिका व्यापञ्चिकित्सा.	१४२२
स्नेह व्यापादिकासिद्धिका कथन.	१३९७	शिरःशूल व्यापञ्चिकित्सा.	१४२३
<b>पञ्चमोऽध्यायः ।</b>		अंगशूल व्यापञ्चिकित्सा.	१४२४
नेत्र वस्तिव्यापादिका सिद्धिका कथन.	१४०४	परिकर्त व्यापञ्चिकित्सा.	१४२५
<b>षष्ठोऽध्यायः ।</b>		परिस्रव व्यापञ्चिकित्सा.	"
वमनविरेचन व्यापत्तिस्त्रिका कथन.	१४०६	<b>अष्टमोऽध्यायः ।</b>	
<b>सप्तमोऽध्यायः ।</b>		मसृत योगिका सिद्धिकावर्णन.	१४२७
वस्तिव्यापत्तिस्त्रिका कथन.	१४१७	<b>नवमोऽध्यायः ।</b>	
अयोग व्यापञ्चिकित्सा.	१४१८	त्रिमर्मीया सिद्धिका कथन.	१४३२
आतियोग व्यापञ्चिकित्सा.	१४१९	<b>दशमोऽध्यायः ।</b>	
कृम व्यापञ्चिकित्सा.	"	वस्ति सिद्धिका वर्णन.	१४५०
आध्मान व्यापञ्चिकित्सा.	१४२०	<b>एकादशोऽध्यायः ।</b>	
द्विक् व्यापञ्चिकित्सा.	१४२१	फलमात्रासिद्धिका वर्णन.	१४५५
		<b>द्वादशोऽध्यायः ।</b>	
		उत्तरवस्ति सिद्धिका वर्णन.	१४६१

इति पं० मिहिरचन्द्रकृतभाषाविवृतिसहितं अष्टमं सिद्धिस्थानं समाप्तम् ।

इति  
चरकसंहितायाःविषयानुक्रमणिका  
समाप्ता ।



श्रीः ।  
अथ  
**चरकसंहितायाः ।**  
( सूत्रस्थानम् )

अथातो दीर्घजीवितमध्यायं व्याख्यास्यामः ।  
इसके अनंतर दीर्घ जीवित अध्यायका व्याख्यान करतेहैं—

दीर्घजीवितमन्विच्छन् भरद्वाज उ-  
पागमत् । इन्द्रमुग्रतपावुद्धाशर-  
ण्यममरेश्वरम् ॥ १ ॥

कि दीर्घजीवनके अभिलाषी महात-  
पस्वी भरद्वाज ऋषि, देवताओंके  
ईश्वर शरणागतके रक्षक समझकर  
इंद्रके समीप गये ॥ १ ॥

ब्रह्मणा हियथा प्रोक्तमायुर्वेदं प्रजा-  
पतिः । जग्राह निखिलेनादावश्वि-  
नौ तु पुनस्ततः ॥ २ ॥

ब्रह्माने जैसा आयुर्वेद कहा है वह  
संपूर्ण प्रजापतिने अश्विनीकुमारोंको ग्रह-  
ण कराया फिर उन ॥ २ ॥

अश्विभ्यां भगवाञ्छक्रः प्रतिपेदे हि  
केवलम् । ऋषिप्रोक्तो भरद्वाजः

तस्माच्छक्रमुपागमत् ॥ ३ ॥

अश्विनीकुमारोंसे केवल भगवान्  
शक्रकोही आयुर्वेद प्राप्त भया तिससे  
ऋषियोंके कहनेसे भरद्वाज इंद्रके समी-  
प गये ॥ ३ ॥

विघ्नीभूतायदारोगाः प्रादुर्भूताः श-  
रीरिणाम् । उपवासतपःपाठव्र-  
तचर्ग्यव्रतायुषाम् ॥ ४ ॥

जब तप उपवास अध्ययन ब्रह्मचर्य  
व्रत इनसे युक्त अवस्थावान् देहधारियों  
मेंभी विघ्नकारक रोगोंकी प्रकटता हुई ४  
तदाभूतेष्वनुक्रोशं पुरस्कृत्य मह-  
र्षयः । समेताः पुण्यकर्माणि  
पार्श्वे हिमवतः शुभे ॥ ५ ॥

तब भूतोंपर दया करके संपूर्ण पुण्य  
कर्मा महर्षि हिमाचलके शोभनपार्श्वमें  
इकट्ठे होते भये कि ॥ ५ ॥

अंगिराजमदग्निश्चवसिष्ठःकश्यपो  
भृगुः । आत्रेयोगौतमः सांख्यः  
पुलस्त्योनारदोऽसितः ॥ ६ ॥

अंगिरा जमदग्नि वसिष्ठ कश्यप भृगु  
आत्रेय गौतम सांख्य पुलस्त्य नारद  
असित ॥ ६ ॥

अगस्त्योवामदेवश्चमार्कण्डेयाश्च  
लायनौ । पारीक्षिद्भिक्षुरात्रेयो  
भरद्वाजःकपिष्ठलः ॥ ७ ॥

अगस्त्य वामदेव मार्कण्डेय आश्व-  
लायन पारीक्षित् भिक्षु आत्रेय भरद्वाज  
कपिष्ठल ॥ ७ ॥

विश्वामित्राश्वरथ्यौचभार्गवश्चव  
नोऽभिजित् । भार्ग्यःशाण्डिल्य  
कौण्डिन्यौवाक्षिर्देवलगालवौ ८

विश्वामित्र अश्वरथ्य भार्गव च्यवन  
अभिजित् भार्ग्य शाण्डिल्य कौण्डिन्य वाक्षि  
देवल गालव ॥ ८ ॥

साङ्कृत्योवैजवापिश्चकुशिकोवा  
दरायणः । वडिशःशरलोमाचका  
प्यकात्यायनावुभौ ॥ ९ ॥

साङ्कृत्य वैजवापि कुशिक वादरायण  
वडिश शरलोमा काप्य और कात्यायन  
ये दोनों ॥ ९ ॥

कांकायनकैकशेषोधौम्योमारी  
चिकाश्यपौ । शर्कराक्षोहिरण्या  
क्षो लौगाक्षिः पैगिरेवच ॥ १० ॥

काङ्कायन कैकश्य धौम्य मारीचि

काश्यप शर्कराक्ष हिरण्याक्ष लौगाक्षि और  
पैगि ॥ १० ॥

शौनकःशाकुनेयश्चमैत्रेयो मैमंता  
यनिः । वैखानसावालखिल्या  
स्तथाचान्येमहर्षयः ॥ ११ ॥

शौनक शाकुनेय मैत्रेय मैमतायनि  
वैखानस और वालखिल्य और जो अन्य  
महर्षि हैं वे सब ॥ ११ ॥

ब्रह्मज्ञानस्यनिधयोदमस्यनियम  
स्यच । तपसातेजसादीप्ताहूयमा  
नाइवाग्नयः ॥ १२ ॥

ब्रह्मज्ञान दम और नियमके निधि  
तपके तेजसे होमकीहुई अग्निके समान  
देदीप्य मान ॥ १२ ॥

सुखोपविष्टास्तेतत्रपुण्याश्चक्रुरि  
मांकथाम् । धर्मार्थकाममोक्षा  
णामारोग्यमूलमुत्तमम् ॥ १३ ॥

सुखसे बैठे हुये वे सब इस पवित्र क-  
थाको करते भये कि धर्म अर्थ काम मोक्ष  
इन सबका उत्तम मूल आरोग्यहै ॥ १३ ॥

रोगास्तस्यापहर्त्तारःश्रेयसोजीवि  
तस्यच । प्रादुर्भूतोमनुष्याणाम  
न्तरायोमहानयम् ॥ १४ ॥

उस आरोग्यके और कल्याण और  
जीवितके हरने हारे रोगहैं यह मनुष्योंको  
महान् विघ्नः प्रकट भया ॥ १४ ॥

कःस्यात्तेषांशमोपायइत्युक्त्व  
ध्यानमास्थिताः । अथतेशरणंश

क्रंददृशुर्ध्यानचक्षुषा ॥ १५ ॥

इसकी शांतिका उपाय कौनहै यह कहकर ध्यानमें स्थित होते भये इसके अनंतर वे ध्यानरूप नेत्रसे इंद्रको शरण देखते भये ॥ १५ ॥

सवक्ष्यतिशमोपायंयथावदमरप्रभुः । कःसहस्राक्षभवनंगच्छेत्प्रष्टुं शर्चापतिम् ॥ १६ ॥

देवताओंके प्रभु वे इंद्र यथार्थ शांतिके उपायको कहेंगे इंद्राणीके पतिको पृच्छनेके लिये इंद्रके भवनमें कौन जाय ॥ १६ ॥

अहमर्थनियुज्येयमत्रेतिप्रथमंवचः । भरद्वाजोऽब्रवीत्तस्मादपि भिःसनियोजितः ॥ १७ ॥

इस अर्थ (काम) में मैं नियुक्त किया जाऊं यह प्रथम वचन भरद्वाजने कहा तिससे ऋषियोंने उसकोही नियुक्त कर दिया ॥ १७ ॥

सशक्रभवनंगत्वासुरर्षिगणमध्यगम् । ददर्शवलहन्तारंदीप्यमानमिवानलम् ॥ १८ ॥

वे भरद्वाज इंद्रके भवनमें जाकर देवर्षिगणोंके मध्यमें बैठे हुये अग्निके समान दीपते हुये बलके हंता (इंद्र) को देखते भये ॥ १८ ॥

सोऽभिगम्यजयाशीर्भिरभिनन्द्य सुरेश्वरम् । प्रोवाचभगवान्धीमान् नृषीणांवाक्यमुत्तमम् ॥ १९ ॥

वे भगवान् ! बुद्धिमान् भरद्वाज संमुख जायकर और मुझोंके ईश्वरकी जय आशीर्वादसे प्रशंसा करके ऋषियोंके उत्तम वाक्यको कहते भये ॥ १९ ॥

व्याधयोहिंसमुत्पन्नाःसर्वप्राणिभयंकराः । तद्रूहिमेशमोपायं यथावदमरप्रभो ॥ २० ॥

किं संपूर्ण प्राणियोंके भयंकर व्याधि उत्पन्न हुईहैं तिससे हे अमरोंके प्रभो! उनकी शांतिके यथार्थ उपायको कहो ॥ २० ॥

तस्मैप्रोवाचभगवानायुर्वेदशतक्रतुः । पदैरल्पैर्मतिबुद्ध्याविपुलांपरमर्पये ॥ २१ ॥

उस परमर्षिके प्रति भगवान् इंद्र विपुल बुद्धिजानकर अल्पपदोंसे आयुर्वेदको कहते भये ॥ २१ ॥

हेतुलिङ्गौषधज्ञानंस्वस्थातुरपरायणम् । त्रिसूत्रंशाश्वतंपुण्यंबुबुधेयंपितामहः ॥ २२ ॥

हेतुलिङ्ग औषधका जिससे ज्ञानहो स्वस्थ आतुरका जो परमअयन त्रिसूत्र सनातन पवित्र जो आयुर्वेदहै जिसको पितामह जानतेहैं ॥ २२ ॥

सोऽनन्तपारं त्रिस्कन्दमायुर्वेदमहामतिः । यथावदचिरात्सर्वबुबुधेतन्मनामुनिः ॥ २३ ॥

अनंतपार तीनस्कंध तिस संपूर्ण आयुर्वेदको वह महामति मुनि भरद्वाज तिसमें मनलगाकर अल्पकालमेंही जानते भये ॥ २३ ॥



तेनायुरमितलेभेभरद्वाजःमुखान्वि  
तः । ऋषिभ्योऽनधिकन्तश्चशशं  
साऽनवशेषयन् ॥ २४ ॥

तिस आयुर्वेदके प्रतापसे सुखसे युक्त  
भरद्वाज अमितआयुको प्राप्त हुये और  
अधिकतासे रहित उस संपूर्ण आयुर्वेदको  
ऋषियोंको कहते भये ॥ २४ ॥

ऋषयश्चभरद्वाजाज्जगृहुस्तंप्रजाहि  
तम् । दीर्घमायुश्चिकीर्षन्तोवेदं व  
र्धनमायुषः ॥ २५ ॥

दीर्घ अवस्था करनेके अभिलाषी वे  
ऋषि आयुके वर्द्धन और प्रजाके हित  
उस आयुर्वेदको भरद्वाजसे ग्रहण करते  
भये ॥ २५ ॥

महर्षयस्तेददशुर्यथावज्ज्ञानचक्षु  
षा । सामान्यश्चविशेषश्चगुणान्द्र  
व्याणिकर्मच ॥ २६ ॥

वे महर्षि ज्ञानरूप नेत्रसे सामान्य  
विशेष गुण द्रव्य कर्म इनको यथायोग्य  
देखते भये ॥ २६ ॥

समवायंचतज्ज्ञात्वातन्त्रोक्तं वि  
धिमास्थिताः । लेभिरेपरमंशर्म  
जीवितंचापिनिर्गदम् ॥ २७ ॥

उस समवायको जानकर तंत्रमें कही  
हुई विधिमें टिककर परम आनंद और  
रोग रहित जीवितको प्राप्त होते भये ॥ २७ ॥

अथमैत्रीपरःपुण्यमायुर्वेदं पुनर्व

मुः । शिष्येभ्योदत्तवान्पङ्क्त्यः  
सर्वभूतानुकम्पया ॥ २८ ॥

इसके अनंतर मित्रतामें तत्पर पुनर्वसु  
सब प्राणियों पर दया करके पवित्र  
आयुर्वेदको छः ६ शिष्यों को देते  
भये ॥ २८ ॥

अग्निवेशश्चभेलश्चजतूकर्णःपराश  
रः । हारीतःक्षारपाणिश्चजगृहु  
स्तन्मुनेर्वचः ॥ २९ ॥

अग्निवेश १ भेल २ जातूकर्ण ३  
पराशर ४ हारीत ५ क्षारपाणि ६ ये छः  
ऋषि उस मुनिके वचनको ग्रहण करते  
भये ॥ २९ ॥

बुद्धेर्विशेषस्तत्रासीन्नोपदेशान्तरं  
मुनेः । तन्त्रप्रणेताप्रथममग्निवेशो  
यतोऽभवत् ॥ ३० ॥

जिससे तंत्र(शास्त्र)का प्रणेता (रचने  
हारा) प्रथम अग्निवेश हुआ उसमें बु-  
द्धिकी ही विशेषताथी कुछ मुनि ( पु-  
नर्वसु) के उपदेशमें अंतर नथा ॥ ३० ॥

अतोभेलादयश्चक्रुःस्वंस्वंतन्त्रकृ  
तानिच । श्रावयामासुरात्रेयंसर्षि  
संघंसुमेधसः ॥ ३१ ॥

इसके अनंतर भेल आदिभी अपने २  
तंत्रोंको करते भये और कियेहुये उन  
तंत्रोंको ऋषियोंके संघ सहित जो आत्रेय  
(पुनर्वसु)उनको बुद्धिमान् वे सुनातेभये ३१  
श्रुत्वामूत्रणमर्थानामृषयःपुण्यक

र्मणाम् । यथावत्सूत्रितमितिप्रं  
हृष्टास्तेऽनुमेनिरे ॥ ३२ ॥

संपूर्ण ऋषि उन पुण्य कर्माओंके  
सूत्रण (रचना) को सुनकर अति आनंदित  
हुये मानते भये कि यथार्थ सूत्रण किया ३२

सर्वएवाऽस्तुवंस्तांश्चसर्वभूतहितै  
पिणः । सर्वभूतेष्वनुक्रोशइत्युच्चै  
रनुवन्समम् ॥ ३३ ॥

संपूर्ण भूतोंके हीतैपी वे सब उनकी  
स्तुति करते भये और ऊंचे स्वरसे एक  
वार यह कहते भये कि, संपूर्ण भूतोंपर  
दया हुई ॥ ३३ ॥

तंपुण्यंशुश्रुवः शब्दंदिविदेवर्षयः  
स्थिताः । सामराःपरमर्षीणांशु-  
त्वामुमुदिरेपरम् ॥ ३४ ॥

स्वर्गमें स्थित हुये देवताओं सहित  
देवर्षिउत्त पुण्य शब्दको सुनते भये और  
परमर्षियोंके वचनको सुनकर परमआनं-  
दको प्राप्त होते भये ॥ ३४ ॥

अहोसाध्वितिघोषश्चलोकांस्त्रीन  
न्ववादयत् । नभसिस्निग्धगम्भी  
रोहर्षाद्भूतैरुदीरितः ॥ ३५ ॥

अहो साधु ( बहुत अच्छा हुआ )  
यह शब्द, तीनों लोकोंमें और आका-  
शमें और आनंदसे भूतोंका कहाहुआ  
स्निग्ध गंभीर वह शब्द पहुंचता भया ३५

शिवोवायुर्ववौसर्वाभाभिरुन्मी  
लितादिशः । निपेतुःसजलाश्चैव

दिव्याःकुसुमवृष्टयः ॥ ३६ ॥

कल्याणकारी वायु चली और संपूर्ण  
दिशा कांतिसे प्रकाशित होतीभई  
और स्वर्गसे जल सहित पुष्पोंकी वर्षा  
होती भई ॥ ३६ ॥

अथाग्निवेशप्रमुखान् विविशुज्ञान  
देवताः । बुद्धिःसिद्धिःस्मृतिर्मैधाधृ  
तिःकीर्त्तिःक्षमादयाः ॥ ३७ ॥

इसके अनंतर अग्निवेश आदिके  
शरीरोंमें बुद्धि सिद्धि स्मृति मेधा धृति  
कीर्त्ति क्षमा दया ये सब ज्ञानके दाता  
देवता प्रविष्ट होते भये ॥ ३७ ॥

तानिचानुमतान्येपांतन्त्राणिपरम  
र्षिभिः । भावायभूतसङ्ख्यानंप्रतिष्ठां  
भुविलेभिरे ॥ ३८ ॥

परमर्षियोंके संमत कियेहुये उनके तंत्र  
प्राणियोंके संघके कल्याणके लिये भूमि  
पर प्रतिष्ठाको प्राप्त होते भये ॥ ३८ ॥

हिताहितंसुखंदुःखमायुस्तस्यहि  
ताहितम् । मानश्चतच्चयत्रोक्तमा  
युर्वेदःसउच्यते ॥ ३९ ॥

हित और अहित सुख दुःख आयु  
और आयुका हित अहित मान ये सब  
जहां कहेहों उसको आयुर्वेद कहतेहैं ३९ ॥

शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगोधारि  
जीवितम् । नित्यगश्चानुबन्धश्च  
पर्यायैरायुरुच्यते ॥ ४० ॥

शरीर इंद्रिय सत्व, सत्व आत्मा इनके संयोगका धारक जीवित और नित्यग और अनुबंध इन पर्यायोंसे आयु कही है अर्थात् ये आयुके नाम हैं ॥ ४० ॥

तस्यायुषःपुण्यतमोवेदोवेदविदां मतः । वक्ष्यतेयन्मनुष्याणालोक योरुभयोर्हितः ॥ ४१ ॥

उस आयुका अत्यंत पवित्र वेद वेदके ज्ञाताओंने जो माना है उसको कहते हैं जो मनुष्योंके दोनों लोकोंको हित है ॥ ४१ ॥

सर्वदासर्वभावानांसामान्यवृद्धि कारणम् । हासहेतुर्विशेषश्च प्रवृत्तिरुभयस्य तु ॥ ४२ ॥

सब कालोंमें संपूर्ण भावोंका जो सामान्य वृद्धि कारण है और हास हेतुका विशेष और हास वृद्धि इन दोनोंकी प्रवृत्ति ॥ ४२ ॥

सामान्यमेकत्वकरंविशेषस्तु पृथक्त्वकृत् । तुल्यार्थताहिसामान्यंविशेषस्तुविपर्ययः ॥ ४३ ॥

सामान्य एकताको करता है और विशेष पृथक्ताको करता है तुल्य अर्थको सामान्य और उससे विपरीतको विशेष कहते हैं ॥ ४३ ॥

सत्वमात्माशरीरञ्च त्रयमेतन्निदं ण्डवत् । लोकस्तिष्ठतिसंयोगात् त्रसर्वप्रतिष्ठितम् ॥ ४४ ॥

सत्व आत्मा शरीर ये तीनों त्रिदंडके समान हैं और इनके संयोगसे लोक

टिकता है उसमें सब टिकेहुये हैं ॥ ४४ ॥

सपुमांश्चेतनं तच्च तच्चाधिकरणं स्मृतम् । वेदस्यास्य तदर्थं हि वेदोऽयं सम्प्रकाशितः ॥ ४५ ॥

वही पुमान् है वही चेतन है वही अधिकरण इस वेदका कहा है उसके लिये इस आयुवेदका भलीप्रकार प्रकाश किया ॥ ४५ ॥

खादीन्यात्मानः कालो दिशश्च द्रव्यसंग्रहः । सेन्द्रियं चेतनं द्रव्यं निरिन्द्रियमचेतनम् ॥ ४६ ॥

आकाश आदि आत्मा मन काल दिशा द्रव्यका संग्रह यह चेतन द्रव्य इंद्रियों सहित है और अचेतन इंद्रियोंसे रहित है ॥ ४६ ॥

सार्थागुर्वादयो बुद्धिः प्रयत्नान्ताः परादयः । गुणाः प्रोक्ताः प्रयत्नादि कर्मतेष्विदमुच्यते ॥ ४७ ॥

अर्थ सहित गुरु आदि और बुद्धि और परसे लेकर प्रयत्न पर्यंत गुण कहे हैं और प्रयत्न आदि चेष्टित कहाता है ॥ ४७ ॥

सशरीरः पृथग्भावो द्रव्यादीनां गुणैर्मतः । स नित्यो यत्र हि द्रव्यं न तत्रानियता गुणाः ॥ ४८ ॥

द्रव्योंका जो गुणोंसे अपृथक् भाव वह समवाय माना है जिसमें द्रव्य रहता है वह नित्य है, उसमें गुण अनियत हैं अर्थात् सदा नहीं रहते हैं ॥ ४८ ॥

यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं सम

वायियत् । तद्द्रव्यंसमवायीतु  
निश्चेष्टः कारणगुणः ॥ ४९ ॥

जिसमें कर्मके गुण आश्रित हैं और जो समवायि कारण है वह द्रव्य है और द्रव्यमें समवायी होकर चेष्टासे रहित हुआ कारण है वह गुण होता है ॥ ४९ ॥

संयोगेचवियोगेचकारणद्रव्यमा  
श्रितम् । कर्तव्यस्यक्रियाकर्म  
कर्मनान्यदपेक्षते ॥ ५० ॥

वह संयोग और वियोगमें कारण द्रव्यके आश्रित है करने योग्यकी जो क्रिया उसको कर्म कहते हैं वह कर्म अन्यकी अपेक्षा नहीं करता है ॥ ५० ॥

इत्युक्तंकारणकार्यधातुसाम्यमि  
होच्यते । धातुसाम्यक्रियाचो  
क्तातन्त्रस्यास्यप्रयोजनम् ॥ ५१ ॥

ये कारण और कार्य कहे, अब धातुओंकी समताको कहते हैं इस तंत्रका प्रयोजन धातुओंकी समता करना है ॥ ५१ ॥

कालबुद्धीन्द्रियार्थानांयोगोमि  
थ्यानचातिच।त्रयाश्रयाणांव्या  
धीन।त्रिविधोहेतुसंग्रहः ॥ ५२ ॥

काल बुद्धि इंद्रिय अर्थ इनका योग है और मिथ्या योग नहीं है और जो व्याधि दोके आश्रय ( द्वंद्वज ) उनके तीन प्रकारके हेतुका संग्रह है ॥ ५२ ॥

शरीरतत्त्वसंज्ञाचव्याधीनामाश्रयो

मतः । तथासुखानांयोगस्तुसुखा  
नांकारणंशमः ॥ ५३ ॥

सत्त्व संज्ञक जो शरीर है वह व्याधियोंका आश्रय माना है तिसी प्रकार सुखोंका योग सुखोंका कारण शम(शांति) है ॥ ५३ ॥

निर्विकारः परस्त्वात्मासत्त्वभूत  
गुणेन्द्रियै । चेतनेकारणानित्यो  
द्रष्टापश्यतिहिक्रियाः ॥ ५४ ॥

परम आत्मा निर्विकार है सत्त्व भूत गुण इंद्रियोंसे चैतन्यमें कारण है नित्य द्रष्टा है क्योंकि वह क्रियाओंको देखता है ॥ ५४ ॥

वायुःपित्तकफश्चोक्तःशारीरोदोष  
संग्रहः । मानसःपुनरुद्दिष्टोरजश्च  
तमएवच ॥ ५५ ॥

वात पित्त कफ यह शरीरके दोषोंका संग्रह है और मनके दोषोंका संग्रह रज और तम है ॥ ५५ ॥

प्रशाम्यत्यौषधैःपूर्वोद्रव्ययुक्तिव्य  
पाश्रयैः । मानसोज्ञानविज्ञानधैर्य  
स्मृतिसमाधिभिः ॥ ५६ ॥

उनमें पहिला द्रव्य युक्तिके आश्रित जो औषधि उनसे शांत होता है और मानस रोग-ज्ञान विज्ञान धैर्य स्मृति समाधियोंसे शांत होता है ॥ ५६ ॥

रूक्षःशीतोलघुःसूक्ष्मश्चलोऽथवि  
षदःखरः । विपरीतगुणैर्द्रव्यैर्मा

रुतःसंप्रशाम्यति ॥ ५७ ॥

रूक्ष शीत लघु सूक्ष्म चल विषद खर  
जो वायुहै वह विपरीत गुणवान् द्रव्योंसे  
शांत होताहै ॥ ५७ ॥

सस्नेहमुष्णंतीक्ष्णंचद्रवमम्लं सरं  
कटु । विपरीतगुणैःपित्तद्रव्यै  
राशुप्रशाम्यति ॥ ५८ ॥

स्नेहसे युक्त उष्ण तीक्ष्ण द्रव अम्ल  
सर कटु जो पित्तहै वह विपरीत गुणवान्  
द्रव्योंसे शीघ्र शांत होताहै ॥ ५८ ॥

गुरुशीतमृदुस्निग्धमधुरस्थिरपि  
च्छिलाः । श्लेष्मणःप्रशमयान्ति  
विपरीतगुणैर्गुणाः ॥ ५९ ॥

गुरु शीत मृदु स्निग्ध मधुर स्थिर  
पिच्छिल जो श्लेष्माके गुणहैं वे विपरीत  
गुणवान् द्रव्योंसे शांत होतेहैं ॥ ५९ ॥

विपरीतगुणैर्देशमात्राकालोपपा  
दितैः । भेषजैर्विनिवर्तन्तेविकाराः  
साधुसंमताः ॥ ६० ॥

देश मात्रा काल इनसे उत्पन्न किये  
विपरीत गुणवान् भेषजोंसे साध्य संमत  
( माने हुए ) विकार विशेषकर नष्ट  
होतेहैं ॥ ६० ॥

साधनंनत्वसाध्यानांव्याधीनामुप  
दिश्यते । भूयश्चातोयथाद्रव्यंगु  
णकर्मप्रवक्ष्यते ॥ ६१ ॥

और असाध्य व्याधियोंका साधन-

नहीं कहाहै-इसके अनंतर फिरभी द्रव्य  
के गुण और कर्मको कहतेहैं कि॥ ६१॥

रसनार्थिरसस्तस्यद्रव्यमापःक्षि  
तिस्तथा । निवृत्तौचविशेषेचप्र  
त्ययाःखादयस्त्रयः ॥ ६२ ॥

रसनाइंद्रियका विषय रसहै उसके  
द्रव्य जल और पृथ्वीहैं और आकाश  
आदि तीनों निवृत्ति और विशेषमें प्रती  
तिके उत्पादकहैं ॥ ६२ ॥

स्वादुरम्लोऽथलवणोऽकटुकस्ति  
क्वच । कपायश्चेतिपट्कोऽ  
यंरसानांसंग्रहःस्मृतः ॥ ६३ ॥

स्वादु अम्ल लवण कटु तिक्त कपाय  
यह छः प्रकारका रसोंका संग्रह कहाहै ६३

स्वादुम्ललवणावायुंकपायस्वादु  
तिक्तकाः । जयन्तिपित्तंश्लेष्माणं  
कपायकटुतिक्तकाः ॥ ६४ ॥

स्वादु अम्ल लवण ये वायुको कपाय  
स्वादु तिक्तक ये पित्तको कपाय कटु  
तिक्त ये श्लेष्माको पैदा करतेहैं ॥ ६४॥

किञ्चिदोषप्रशानंकिञ्चिद्धातुप्रदूष  
णम् । स्वस्थवृत्तौहितंकिञ्चिद्  
व्यंत्रिविधमुच्यते ॥ ६५ ॥

कोई दोषका प्रशमनहै कोई धातुको  
दूषित करताहै कोई स्वस्थ वृत्तिमें हितहै  
इसप्रकार द्रव्य तीन प्रकारका कहाहै ६५

तत्पुनस्त्रिविधंज्ञेयंजाङ्गमौद्भिद

पार्थिवम् । मधूनिगोरसाःपित्तं व  
सामज्जामृगामिषम् ॥ ६६ ॥

वह फिर जांगल औद्धिद पार्थिव  
भेदसे तीन प्रकारकाहै, मधु गोरस पित्त  
वसा मज्जा मृगोंका मांस ॥ ६६ ॥

विण्मूत्रं चर्मरेतोऽस्थिस्नायुरङ्गं खु  
रानखाः । जङ्गमेभ्यः प्रयुज्यन्ते  
केशालोमानिरोचनाः ॥ ६७ ॥

विष्टा मूत्र चर्म रेत अस्थि स्नायु शृंग  
खुर नख केश लोम रोचन ये जंगमोंके  
प्रयोगोंमें आतेहैं ॥ ६७ ॥

सुवर्णसमलाः पञ्चलोहाः ससिक  
तामुधा । मनःशिलालेमणयो ल  
वणैरिकाञ्चने ॥ ६८ ॥

सुवर्ण मल और सिकता सहित पांचों  
लोह मुधा मनशील मणि लवण गेरू  
अंजन ॥ ६८ ॥

भौममौषधमुद्दिष्टमौद्भिदन्तुचतु  
र्विधम् । वनस्पतिर्वीरुधश्च वान  
स्पत्यस्तथौषधिः ॥ ६९ ॥

ये भूमिकी औषध कहीहैं औद्भिदतो  
चार प्रकारका वनस्पति वीरुध वानस्पत्य  
औषधि इनके भेदसे है ॥ ६९ ॥

फलैर्वनस्पतिः पुष्पैर्वानस्पत्यः फलै  
रपि । औषध्यः फलपाकान्ताः  
प्रतानैर्वीरुधः स्मृताः ॥ ७० ॥

जिनके फल आवे वे वनस्पति जिनके  
पुष्पफलदोनोंहों वे वानस्पत्य—जो फलको

पाक पर्यंत रहें वे औषधि—जिनका प्रतान  
( फैलाव ) हो वे वीरुध कहेहैं ॥ ७० ॥

मूलत्वक्सारनिर्यासनाडस्वरसप  
ल्लावाः । क्षाराः क्षीरं फलं पुष्पं भस्म  
तैलानिकण्टकाः ॥ ७१ ॥

मूल त्वचा सार गोंद नाड स्वरस पत्ते  
क्षार दूध फल पुष्प भस्म तैल कांटे ७१

पत्राणि शुङ्गाः कन्दाश्च प्ररोहाश्चौ  
द्भिदो गुणः । मूलिन्यः पोडशैको  
नाः फलिन्यो विपरीतकाः ॥ ७२ ॥

पत्र शृंग कंद प्ररोह ये औद्भिदोंका  
गुण ( समूह ) होताहैं और सोलह मूलिनी  
और उन्नीस फलिनी कहीहैं ॥ ७२ ॥

महास्नेहाश्च चत्वारः पंचैव लवणा  
निच । अष्टौ मूत्राणि संख्यातान्य  
ष्टावेव पयांसि च ॥ ७३ ॥

चार महा ( बडे ) स्नेह और पांच  
लवण आठ मूत्र और आठही दूध  
कहेहैं ॥ ७३ ॥

शोधनार्थाश्च षड्वृक्षाः पुनर्वसुनिद  
र्शिताः । य एतान्वेत्ति संयोक्तुं  
विकारेषु सवेदवित् ॥ ७४ ॥

और शोधनके लिये छः ६ वृक्ष  
पुनर्वसुने दिखायेहैं जो विकारोंमें इनके  
संयोगको जानताहै वह आयुर्वेदका  
ज्ञाताहै ॥ ७४ ॥

हस्तिदन्तीहैमवतीश्यामात्रिवृद्धो  
गुडा । सप्तलाश्वेतनामाचप्रत्य  
क्श्रेणीगवाक्ष्यपि ॥ ७५ ॥

गज पीपल लज्जालु श्यामा ( हरड़े )  
निसोथ अधोगुडा ( मुनक्का ) वा ईख  
सप्तला श्वेतनामा प्रत्यक्श्रेणी और  
गवाक्षी ॥ ७५ ॥

ज्योतिष्मतीचबिम्बीचशणपुष्पी  
विषाणिका। अजगन्धाद्रवन्तीच  
क्षीरिणीचात्रषोडशी ॥ ७६ ॥

ज्योतिष्मती बिम्बी शणपुष्पी विषा-  
णिका अजगन्धा द्रवन्ती और इनमें सोल-  
हवीं क्षीरिणी ॥ ७६ ॥

शणपुष्पीचबिम्बीचछर्दनेहैमव  
त्यपि । श्वेताज्योतिष्मतीचैवयो  
ज्याशीर्षविरेचने ॥ ७७ ॥

इनमें शणपुष्पी बिम्बी हैमवती ये  
छर्दनमें और श्वेता और ज्योतिष्मती ये  
शिरके विरेचनमें युक्त करने योग्यहैं ७७ ॥

एकादशावशिष्टायाःप्रयोज्यास्ता  
विरेचने । इत्युक्तानामकर्मभ्यां  
मूलिन्यःफलिनीःशृणु ॥ ७८ ॥

एकादश जो शेषहैं वे विरेचनमें प्रयोग  
करने योग्यहैं ये नाम और कर्मोंसे  
मूलिनी कही अब फलिनियोंको श्रवण  
कर ॥ ७८ ॥

शंखिन्यथविडङ्गानित्रपुषंमदना

निच । आनूपं स्थलजंचैवह्नी  
तकंद्विविधंस्मृतम् ॥ ७९ ॥

शंखिनी वायविडंग त्रपुष मैनफल  
जल और स्थलमें पैदाहुआ दो प्रकारका  
कृतिक कहाहै ॥ ७९ ॥

प्रकीर्याचोदकीर्याचप्रत्यक्पु  
ष्पीतथाभया । अन्तःकोटरपुष्पी  
चहस्तिपर्ण्याश्चशारदम् ॥ ८० ॥

प्रकीर्या उदकीर्या प्रत्यक्पुष्पी  
और अभया ( हरड़े ) अंतःकोटरपुष्पी  
हस्तिपर्णिका शारद ॥ ८० ॥

कम्पिल्वकारग्वधयोःफलंयत्कुट  
जस्यच । धामार्गवमथेक्ष्वाकुजी  
मूतंकृतवेधनम् ॥ ८१ ॥

कंपिल्वक और अमलतासका फल  
और कुटजका फल ये मूलिनी हैं धामार्गव  
और इक्ष्वाकु जीमूत कृतवेधन ॥ ८१ ॥

मदनंकुटजश्चैवत्रपुषंहस्तिपर्णिनी।  
एतानिवमनेचैवयोज्यान्यास्थाप  
नेषु च ॥ ८२ ॥

मदन कुटज त्रपुष हस्तिपर्णिनी ये  
वमन और आस्थापनमें युक्तकरने  
योग्यहैं ॥ ८२ ॥

दशयान्यवशिष्टानितान्युक्तानिवि  
रेचने । नामकर्मभिरुक्तानिफला  
न्येकोनविंशतिः ॥ ८३ ॥

नासिकासे छर्दनमें प्रत्यक्पुष्पी कहीहै  
दश जो शेषहैं वे विरेचनमें कहीहैं ये नाम  
कर्मसे उन्नीस फल कहेहैं ॥ ८३ ॥

सर्पिस्तैलंवसामज्जास्नेहोदृष्टःचतु  
र्विधः । पानाभ्यञ्जनवस्त्यर्थं  
नस्यार्थंचैवयोगतः ॥ ८४ ॥

धी तेल वसा मज्जा यह चार प्रकारका  
स्नेह कहाँ पान अभ्यंग वस्तिके और  
नस्यके लिये योगसे ॥ ८४ ॥

स्नेहनाजीवनावल्यावर्णोपचयव  
र्धनाः । स्नेहाद्येतेपुविहितावात  
पित्तकफापहाः ॥ ८५ ॥

ये चारों स्नेहन जीवन बलकारी और  
वर्णकी वृद्धिकारकहैं वात पित्त कफके  
नाशक स्नेह इनमें कहे हैं ॥ ८५ ॥

सौवर्चलसैन्धवश्चविडमौद्गिदमेव  
च । सामुद्रेणसहैतानिपञ्चस्युल्ल  
वणानिच ॥ ८६ ॥

सौवर्चल सैन्धव विड औद्गिद और  
समुद्रका ये पांच लवण होतेहैं ॥ ८६ ॥

स्निग्धान्युष्णानितीक्ष्णानिदीपनी  
यतमानिच । आलेपनार्थेयुज्यन्ते  
स्नेहस्वेदविधौतथा ॥ ८७ ॥

ये स्निग्ध उष्ण तीक्ष्ण दीपनीयोंमें  
उत्तम होते हैं ये आलेपनके लिये और  
स्नेह स्वेदविधिमें युक्त होतेहैं ॥ ८७ ॥

अधोभागोर्द्ध्वभागेषुनिरूहेष्वनुवा  
सने । अभ्यञ्जनेभोजनार्थेशिरस  
श्चविरेचने ॥ ८८ ॥

अधोभाग ऊर्द्ध्व भागके निरूहोंमें अनु-

वासनमें अभ्यंगमें भोजनमें शिरके  
विरेचनमें ॥ ८८ ॥

शस्त्रकर्मणिवस्त्यर्थमञ्जनोच्छा  
दनेपुच । अजीर्णानाहयोर्वातेगु  
ल्मेशूलेतथोदरे ॥ ८९ ॥

शस्त्रकर्ममें वस्तिमें अंजन और  
उत्सादनमें अजीर्ण और आनाहमें वात  
गुल्म शूल और उदरमें ॥ ८९ ॥

उक्तानिलवणान्यूर्द्ध्वमूत्राण्यष्टौनि  
बोधमे । मुख्यानियानिह्यष्टानि  
सर्वाण्यात्रेयशासने ॥ ९० ॥

ये लवण कहे इसके अनंतर मूत्रोंको  
मेरेसे श्रवणकर जो सब आत्रेयके शास्त्रमें  
मुख्य और इष्टहैं ॥ ९० ॥

अविमूत्रमजामूत्रंगोमूत्रंमाहिपंतथा  
हस्तिमूत्रमथोष्टस्यहयस्यचखर  
स्यच ॥ ९१ ॥

भेडका मूत्र अजाकामूत्र गोमूत्र भैंस-  
कामूत्र हस्तिमूत्र ऊँटकामूत्र अश्वका  
मूत्र खरकामूत्र ॥ ९१ ॥

उष्णन्तीक्ष्णमथोस्निग्धंकटुकंलव  
णान्वितम् । मूत्रमुच्छादनेयुक्तं  
युक्तमालेपनेपुच ॥ ९२ ॥

उष्ण तीक्ष्ण रुक्ष कटु लवण से तयु  
मूत्र होताहै वह उत्सादन और आले  
पनोंमें युक्त होताहै ॥ ९२ ॥



युक्तमास्थापनेयुक्तंमूत्रञ्चापिविरे  
चने । स्वेदेष्वपिचतद्युक्तमानाहे  
पुगदेषुच ॥ ९३ ॥

आस्थापन और विरेचनमेंभी मूत्र  
युक्त है स्वेदोंमें वह युक्त है आनाहोंमें ९३

उदरेष्वथचार्शस्सुगुल्मकुष्ठकिला  
सिषु । तद्युक्तमुपनाहेषुपरिषेकेत  
थैवच ॥ ९४ ॥

उदरके रोगोंमें अर्श गुल्म कुष्ठ कि  
लासियोंमें युक्त होता है वह उपनाहोंमें  
और परिषेकमें युक्त है ॥ ९४ ॥

दीपनीयंविषघ्नंचक्रिमिघ्नंचोपदि  
श्यते । पाण्डुरोगोपमृष्टानामुत्तमं  
शर्मचोच्यते ॥ ९५ ॥

और दीपनीय विषनाशक और क्रिमि  
नाशक कहा है और पाण्डुरोगियोंको तो  
सर्वथा उत्तम कहा है ॥ ९५ ॥

श्लेष्माणंशमयेत्पीतमारुतञ्चानु  
लोमयेत् । कर्षेत्पित्तमधोभागमि  
त्यस्मिन्गुणसंग्रहः ॥ ९६ ॥

पीनेसे श्लेष्माको शांत करता है और  
वातको अनुलोम करता है और पित्तको  
अधोभागमें खींचता है ये इसमें गुण हैं ९६

सामान्येनमयोक्तंस्तुपृथक्त्वेनप्र  
वक्ष्यते । अविमूत्रंसतिक्त्स्यात्  
स्निग्धंपित्ताविरोधिच ॥ ९७ ॥

यह मैं सामान्यसे कहा अब पृथक्

मूत्रोंके गुणको कहता हूँ भेडका मूत्र तिक्त-  
स्निग्ध पित्तका अविरोध होता है ॥ ९७ ॥

आजंकषायमधुरं पथ्यं दोषान्निह  
न्तिच । गव्यंसमधुरं किञ्चिद्दो  
षघ्नं क्रिमिकुष्ठनुत् ॥ ९८ ॥

अजाका मूत्र कसेला मधुर पथ्य  
दोषोंका नाशक होता है गौका मूत्र मधुर  
किञ्चित् दोषोंका नाशक क्रिमिकुष्ठ ९८

कण्डूलंशमयेत्पीतंसम्यग्दोषोदरे  
हितम् । अर्शःशोफोदरघ्नन्तुसक्षा  
रंमाहिषंसरम् ॥ ९९ ॥

कंडू इनको पीनेसे नष्टकरता है और  
उदरके दोषोंमें अत्यंतहित है भैंसका मूत्र  
अर्श शोफ उदर इनकानाशक और क्षार  
और सर ( दस्तावर ) होता है ॥ ९९ ॥

हस्तिकंलवणंमूत्रंहितन्तुक्रिमिकु  
ष्ठिनाम् । प्रशस्तं वद्धविण्मूत्रविष  
श्लेष्मामयार्शसाम् ॥ १०० ॥

हस्तिकामूत्र लवण है और क्रिमि  
कुष्ठियोंको हित है और वद्ध विण्मूत्र विष  
कफ अर्श इन रोगोंमें उत्तम है ॥ १०० ॥

सतिक्तंश्वासकासघ्नमर्शोघ्नंचौष्टुमु  
च्यते । वाजिनांतिक्तकटुकंकुष्ठव्र  
णविषापहम् ॥ १०१ ॥

और ऊंटकामूत्र श्वास कास अर्शका  
नाशक और तिक्त कहा है घोंडोंकामूत्र  
तिक्त कटु होता है और कुष्ठ व्रण विष  
इनका नाशक है ॥ १०१ ॥

स्वरमूत्रमपस्मारोन्मादग्रहविनाश  
नम् । इतीहोक्तानिमूत्राणियथा  
सामर्थ्ययोगतः ॥ १०२ ॥

गधेकामूत्र अपस्मार उन्माद ग्रह  
इनका विनाशक होता है ये सब मूत्र  
अपनीबुद्धिके सामर्थ्यानुसार कहे १०२ ॥

अतःक्षीराणिवक्ष्यन्तेकर्मचैपांगु  
णाश्रये । अविक्षीरमजाक्षीरंगो  
क्षीरमाहिपंचयत् ॥ १०३ ॥

इसके अनंतर दूधोंको कहते हैं और  
इनके जो कर्म और गुण हैं उनको  
कहते हैं भेड बकरी गौ भैंस ॥ १०३ ॥

उष्ट्रीणामथनागीनांवडवायाःस्त्रि  
यास्तथा । प्रायशोमधुरंस्निग्धंशी  
तंस्तन्यंपयःस्मृतम् ॥ १०४ ॥

ऊँटनी हथिनी घोड़ी और स्त्री इनका  
दूध प्रायः मधुर स्निग्ध शीतल है और  
स्त्रीके स्तनोंका दूध ॥ १०४ ॥

प्रीणनं बृंहणं वृष्यमेध्यं वल्यं मनस्क  
रम् । जीवनीयं श्रमहरं श्वासकास  
निवर्हणम् ॥ १०५ ॥

प्रीणन बृंहण वृष्य मेध्य वल्य और  
मनकी प्रसन्नता कारक है जीवनीय है  
श्रमहर है श्वास कासका नाशक ॥ १०५ ॥

हन्ति शोणितपित्तञ्च सन्धानं विह  
तस्य च । सर्वप्राणभृतां सात्म्यं श  
मनं शोधनं तथा ॥ १०६ ॥

और शोणित पित्तको हते हैं विहत  
( घाव ) का संधान करता है सब  
प्राण धारियोंका सात्म्य शमन और  
शोधन है ॥ १०६ ॥

तृष्णाग्रं दीपनीयं च श्रेष्ठं क्षीणक्षते  
पुच । पाण्डुरोगेऽम्लपित्ते च शोषे  
गुल्मे तथोदरे ॥ १०७ ॥

तृष्णाका नाशक आग्नि दीपन और  
क्षीण और क्षतमें श्रेष्ठ कहा है पांडुरोग  
अम्लपित्त शोष गुल्म उदर ॥ १०७ ॥

अतीसारज्वरे दाहेश्वयथौ च विधी  
यते । योनिशुक्रप्रदोपे पुमूत्रेष्वपि  
सरेषु च ॥ १०८ ॥

अतीसार ज्वरदाह सूजन इनमें श्रेष्ठ  
कहा है योनि शुक्रके दोषोंमें मूत्र और  
प्रदरके दोषोंमें ॥ १०८ ॥

पुरीषेऽथिते पथ्यं वातपित्तविका  
रिणाम् । नस्यालेपावगाहे पुवम  
नास्थापने पुच ॥ १०९ ॥

पुरीषमें ग्रथितमें और वात पित्तके  
विकारोंमें पथ्य कहा है नस्य लेप अवगाह  
( स्नान ) वमन आस्थापन ॥ १०९ ॥

विरेचने स्नेहने च पयःसर्वत्र युज्यते ।  
यथाक्रमं क्षीरगुणानेकैकस्य पृथ  
ज्पृथक् ॥ ११० ॥

विरेचन स्नेहन इन सबमें दूध युक्त

कहा है और यथा क्रमसे एक २ दूधके  
पृथक् २ गुणोंको ॥ ११० ॥

अन्नपानादिकेऽध्यायेभूयोवक्ष्या  
म्यशेषतः । अथापरेत्तयोवृक्षाः  
पृथग्येफलमूलिभिः ॥ १११ ॥

अन्नपानादिक अध्ययमें संपूर्ण रूपसे  
कहूंगा इसके अनंतर फल मूलवानोंसे  
अन्य तीन वृक्ष ये भिन्न हैं ॥ १११ ॥

स्तुह्यर्काश्मन्तकास्तेपामिदं कर्म  
पृथक्पृथक् ॥ वमनेऽश्मन्तकं वि  
द्यात्स्तुहीक्षीरं विरेचने ॥ ११२ ॥

कि थूहर आक वहेडा उनका पृथक् २  
कर्म यह है वमनमें वहेडेको जाने और  
थूहरके दूधको विरेचनमें ॥ ११२ ॥

क्षीरमर्कस्य विज्ञेयं वमने स विरेचने ।  
इमां स्त्रीनपरान् वृक्षानाहु र्येषां हिता  
स्त्वचः ॥ ११३ ॥

और आकका दूध वमन और विरेचन  
दोनोंमें जानना इन तीन अन्य वृक्षोंको  
कहते हैं जिनकी त्वचा हित है ॥ ११३ ॥

पूतिकः कृष्णगन्धा च तिलकश्च त  
थातरुः । विरेचने प्रयोक्तव्यः पूति  
कः स्तिलकस्तथा ॥ ११४ ॥

पूतिक कृष्णगंधा और तिलक वृक्ष  
पूतिक और तिलक ये दोनों विरेचनमें  
प्रयोग करने योग्य हैं ॥ ११४ ॥

कृष्णगन्धा परीसर्प शोथेऽप्यर्शस्सु  
चोच्यते । दद्रुविद्रधिगण्डेषुकुष्ठे  
ष्वप्यलजीपुच ॥ ११५ ॥

और कृष्ण गंधा परीसर्प शोथ और  
अर्श रोगोंमें कहा है दद्रु विद्रधि गंड कुष्ठ  
और अलजी इनमें भी ॥ ११५ ॥

पड्वृक्षान् शोधनाने तानपि विद्या  
द्विचक्षणः । इत्युक्ताः फलमूलि  
न्यः स्नेहाश्च लवणानि च ॥ ११६ ॥

इन छः पूर्वोक्त शोधनके वृक्षोंका  
बुद्धिमान् मनुष्य जानने ये फलिनी मूलिनी  
स्नेह और लवण ॥ ११६ ॥

मूत्रं क्षीराणि वृक्षाश्च पड्येदृष्टाः पय  
स्त्वचः । औषधीर्नमरूपाभ्यां  
जानते ह्यजपावने ॥ ११७ ॥

मूत्र और दूध और त्वचाके छः वृक्ष  
जो देखे वे कहे नामरूपसे औषधोंको  
वनमें अजाके पालक ॥ ११७ ॥

अविपाश्चैव गोपाश्च ये चान्ये वनवा  
सिनः । न नामज्ञानमात्रेण रूप  
ज्ञानेन वा पुनः ॥ ११८ ॥

और भेडके पालक गोप और जो  
अन्य वनवासी हैं वे जानते हैं नामके  
ज्ञानमात्रसे वा रूपके ज्ञानसे ॥ ११८ ॥

औषधीनां परांप्राप्तिकश्चिद्वेदितुम  
र्हति । योगज्ञस्तस्य रूपज्ञस्तासां  
तत्त्वविदुच्यते ॥ ११९ ॥

. औपधियोंकी उत्तम प्राप्तिकी कोई नदी जानसकता है जो उनके योगका ज्ञाता और रूपका ज्ञाता है वही तत्त्वविद् ( ज्ञाता ) कहाता है ॥ ११९ ॥

किंपुनर्यौविजानीयादोपधीःसर्व  
भाभिपक् । रूपन्तासान्तुयोवि  
यादेशकालोपपादितम् ॥ १२० ॥

और जो वैद्य औपधियोंको सर्वथाजाने नो क्या कहना है देशकालके विभागके ज्ञानसे जो ॥ १२० ॥

पुरुषंपुरुषंवीक्ष्यसविज्ञेयोभिपक्त  
मः । यथाविषयथाशस्त्रंयथाग्नि  
रशनिर्यथा ॥ १२१ ॥

पुरुष २ को देखकर उन औपधियोंके रूप जो जानै वह अत्यंत श्रेष्ठ भिपक् जानना जैसा विष जैसा शस्त्र जैसा अग्नि जैसा वज्र है ॥ १२१ ॥

तथौपधमविज्ञातंविज्ञातममृतंय  
था । औपधंनभिज्ञातंनारूप  
गुणैस्त्रिभिः ॥ १२२ ॥

तैसीही विनाजानी औषध है और जानी हुई अमृतके समान है नामरूप गुण इनतीनोंसे नहीं जाना हुआ औषध १२२

विज्ञातंवापिदुर्युक्तंयुक्तिवाह्येनभे  
पजम् । योगादपिविषंतीक्ष्णमुत्त  
मंभेषजंभवेत् ॥ १२३ ॥

और जाना हुआभी दुष्टयोगसे वा

युक्तिके विना युक्त भेषज अधम जानना योगसेतीक्ष्ण विषभी उत्तम औषध होता है ॥ १२३ ॥

भेषजंवापिदुर्युक्तंतीक्ष्णंसम्पद्यते  
विषम् । तस्मान्नभिपजायुक्तंयु  
क्तिवाह्येनभेषजम् ॥ १२४ ॥

और दुर्युक्त होनेसे भेषजभी तीक्ष्ण विष होजाता तिससे है बुद्धिमान् वैद्यकी युक्तिसे अन्यथायुक्त जो कोई भेषजहै १२४

धीमताकिञ्चिदोदयंजीवितारोग्य  
कांक्षिणा । कुर्व्यान्निपतितोमू  
र्धिसशेषंवासवाशनिः ॥ १२५ ॥

वह यदि जीवितके आरोग्यको चाहे तो ग्रहण न करनी इंद्रकावज्र मस्तकपर पड़े तो शेषको छोड़ देता है अर्थात् मारतानहीं ॥ १२५ ॥

सशेषमातुरंकुर्व्यान्निवज्रमतमौप  
धम् । दुःखितायशयानायश्रद्धा  
नायरोगिणे ॥ १२६ ॥

और मूर्खकी संमत ( दी ) औषध रोगीको शेषनहीं रखती जो प्राज्ञका अभिमानी दुःखित सोते हुये श्रद्धावान् रोगीको ॥ १२६ ॥

योभेषजमविज्ञायप्राज्ञमानीप्रय  
च्छति । तस्याचमृत्युदूतस्यदुर्म  
तेस्त्यक्तधर्मणः ॥ १२७ ॥

विनाजाने औषध देता है मृत्युके दूत

दुर्मति धर्मके त्यागी ॥ १२७ ॥

नरोनरकपातीस्यात्तस्यसम्भाष  
णादपि। वरमाशीविषविषंक्थितं  
ताम्रमेववा ॥ १२८ ॥

उसके संग संभाषण करनेसेभी मनुष्य  
नरकमें पड़ताहै सर्पका विष श्रेष्ठ है और  
पियाहुआ पकाया ताम्रभी श्रेष्ठ है ॥ १२८ ॥

पीतमत्यग्निसन्तप्ताभक्षितावाप्य  
योगुडाः । नतुश्रुतवतावेदंविभ्रता  
शरणागतात् ॥ १२९ ॥

और अत्यंत अग्निमें तपायेहुये लोहा  
गुडोंका भक्षणभी श्रेष्ठ है औ पंडितोंके  
वेशको धारणकिये वैद्यको शरण आये ॥ १२९ ॥

गृहीतमन्नपानंवावित्तंवारोगपीडि  
तात् । भिषक्बुभूर्धुर्मतिमानतः  
स्याद्गुणसम्पदि ॥ १३० ॥

रोगपीडितसे अन्नपान धनका ग्रहण  
करना श्रेष्ठ नहीं इससे होनहार मतिमान  
वैद्य अपने गुणोंकी संपदाओंमें ॥ १३० ॥

परंप्रयत्नमातिष्ठेत्प्राणदःस्याद्य  
थानृणाम्। तदेवयुक्तंभैषज्यंयदा  
रोग्यायकल्पते ॥ १३१ ॥

ऐसा उत्तम यत्न करै जैसे मनुष्योंके  
प्राणोंका दाता हो वही औषधयुक्तहै जो  
आरोग्यका कर्ता हो ॥ १३१ ॥

सचैवभिषजांश्रेष्ठोरोगेभ्योयःप्रमो

चयेत् । सम्यक्प्रयोगंसर्वेषांसि  
द्धिराख्यातिकर्मणाम् ॥ १३२ ॥

और वही वैद्योंमें श्रेष्ठ है जो रोगोंसे  
छुटादे संपूर्ण कर्मोंके सम्यक् प्रयोगकी सि-  
द्धि कहदेतीहै ॥ १३२ ॥

सिद्धिराख्यातिसर्वैश्वगुणैर्युक्तंभि  
षक्तमम् इति ॥ १३३ ॥

और संपूर्ण गुणोंसे युक्त अति श्रेष्ठ  
वैद्यकी सिद्धि कहदेतीहै ॥ १३३ ॥ इति ॥

तत्र श्लोकाः ।

आयुर्वेदागमोहेतुरागमस्यप्रवर्त्तन  
म् । सूत्रणंसाभ्यनुज्ञानमायुर्वेद  
स्यनिर्णयः ॥ १३४ ॥

उसमेंये श्लोकहैं कि आयुर्वेदका  
आगमन हेतु आगमकी प्रवृत्ति सूत्रका  
अभ्यनुज्ञान आयुर्वेदका निर्णय ॥ १३४ ॥

सम्पूर्णकारणंज्ञेयंआयुर्वेदप्रयोज  
नम् । हेतवश्चैवदोषाश्चभेषजंसं  
ग्रहेणच ॥ १३५ ॥

जानने योग्य संपूर्ण कारण आयुर्वेदका  
प्रयोजन हेतु और दोष औ संग्रहसे  
भेषज ॥ १३५ ॥

रसाःसप्रत्ययद्रव्यास्त्रिविधोद्रव्य  
संग्रहः । मूलिन्यश्चफलिन्यश्च  
स्नेहाश्चलवणानिच ॥ १३६ ॥

प्रतीति सहित रस और द्रव्य यह  
तीन प्रकारका द्रव्यका संग्रह मूलिनी  
फलिनी स्नेह और लवण ॥ १३६ ॥

मृत्रंक्षौराणिवृक्षाश्चपङ्क्येक्षीगत्व  
गाश्रयाः । कर्माण्यैपांसर्वेपांयो  
गायोगगुणागुणाः ॥ १३७ ॥

मृत्र-धीर और दूध, त्वचाके आश्र-  
य जो छः वृक्षों वे और इन सबके कर्म  
योग और योगोंकेगुण अगुण ॥ १३७ ॥

वैद्यापवादीयत्रस्थाःसर्वचभिपजां  
गुणाः । सर्वमेतत्समाख्यातपूर्व  
ऽध्यायेमहर्षिणा ॥ १३८ ॥

इति दीर्घजीविताध्यायः ॥ २ ॥

वैद्योंकी निंदा और जो सब वैद्योंके  
गुणों वे सब यह संपूर्ण पहिले अध्यायमें  
महर्षिने कहा है ॥ १३८ ॥

इति दीर्घजीविताध्यायः

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथोऽपामार्गतण्डुलीयमध्यायः ।

व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माहजगवानात्रेयः ।

इसके अनंतर अपामार्ग तंडुलीय  
अध्यायका व्याख्यान करते हैं—यह भग-  
वान् आत्रेय कहते हैं

अपामार्गस्यबीजानिपिप्पलीर्म  
रिचानिच । विडङ्गान्यथशिग्रू  
णिसर्षपांस्तुम्बुरुणिच ॥ १ ॥

कि अपामार्गके बीज पीपल और भिरचवाय  
विडंग और सहिजना सरसों और तुलसी ॥

अजाजीश्वाजगन्धाश्चपीलून्येलां  
हरेणुकाम् । पृथ्वीकांसुरसांश्वे  
तांकुठेरकफणिज्जकौ ॥ २ ॥

जीरा अजगंधा पीलु इलायची हरेणु  
( मोथा ) पृथ्वीका तुलसी श्वेता कुठेरक  
फणिज्जक ॥ २ ॥

शिरीषबीजलशुनंहारिद्रिलवणद्वय  
म् । ज्योतिष्मतीनागरश्चविद्या  
नमूर्द्धविरेचने ॥ ३ ॥

शिरसके बीज लशुन दोनों हलदी  
दोनों लवण ज्योतिष्मती मूँठ इनको  
शिरके विरेचनमें दे ॥ ३ ॥

गौरवेशिरसःशूलेपीनसेऽर्द्धावभेद  
के । क्रिमिव्याधौअपस्मारेघ्राण  
नाशेप्रमेहने ॥ ४ ॥

गौरवेशिरसःशूलेपीनसेऽर्द्धावभेद  
के । क्रिमिव्याधौअपस्मारेघ्राण  
नाशेप्रमेहने ॥ ४ ॥

मदनमधुकंनिम्बंजीमूतकृतवेधन  
म् । पिप्पलीकुटजेक्ष्वाकूण्येलां  
धामार्गवाणिच ॥ ५ ॥

मेनफल महुआ नींव जीमूत कृत  
वेधन पीपल कुटज इक्ष्वाकु इलायची  
धामार्गव इनको ॥ ५ ॥

उपस्थितेश्लेष्मपित्तव्याधायामा

शयाश्रये । वमनार्थप्रयुजीतभि  
षदेहमदूपयन् ॥ ६ ॥

श्लेष्मपित्तके होनेपर और आमाशय  
किंव्याधिमें वैद्य देहको दूषित न करके  
वमन के लियेदे ॥ ६ ॥

त्रिवृतांत्रिफलादन्तीनीलिनीसम  
लां वचाम् । कम्पिल्वकंगवाक्षी  
अक्षीरिणीमुदकीटिकाम् ॥ ७ ॥

निसोथ त्रिफला दन्तीनिलिनी सप्तला वच  
कंपिल्वक गवाक्षी क्षीरिणी उदकीर्या ॥ ७ ॥

पीलून्यारग्वधंद्राक्षांद्रवन्तीनिचु  
लानिच । पक्काशयगतेदोषेविरे  
कार्थप्रयोजयेत् ॥ ८ ॥

पीलु अमलतास मुनक्का द्रवन्ती निचुल  
इनकी पक्काशयके दोषमें विरेचनके लिये  
दे ॥ ८ ॥

पाटलाश्वाग्निमन्थाश्चविल्वंशो  
नाकमेतन् ॥ १३० ॥

रोगपीडितसे अन्नपान धनका ग्रहण  
चपृश्निपर्णीनिदिग्धिकाम् ॥ ९ ॥

पाटलअरणीविलस्योनाक केशरशाल  
पर्णीपृश्निपर्णी निदिग्धिका, ( कटेहली )

बलांश्वदंष्ट्रां बृहतीमेरण्डंसपुनर्नवम्  
यवान्कुलुत्थान्कोलानिगुडूचीं  
मदनानिच ॥ १० ॥

बला, गोखरू, कटेहरी, अरंड सांठ  
जौ कुलथी कोल बैर-मिरचागिलोह  
मै नफल ॥ १० ॥

पलाशकृतृणंचैवस्नेहांश्चलवणा  
निच । उदावर्तविबन्धेपुयुंज्या  
दास्थापनेसदा ॥ ११ ॥

पलाश कृतृण स्नेह और लवण इनको  
उदावर्त विबन्ध आस्थापनोंमें सदा युक्त  
करै ॥ ११ ॥

अतएवौषधगतात्संकल्प्यमनुवा  
सनम् । मारुतघ्नमितिप्रोक्तः संग्रहः  
पाञ्चकर्मिकः ॥ १२ ॥

इनहीं औषधोंके समूहसे अनुवासनकी  
कल्पना करै यह मारुतको नाशक पांच-  
कर्मिक संग्रह कहा है ॥ १२ ॥

तान्यपस्थितदोषाणांस्नेहस्वेदोप  
पादनैः । पञ्चकर्माणिकुर्वीतमात्रा  
कालौविचारयन् ॥ १३ ॥

ह दोष जनका ऐसे मनुष्यों  
स्नेह स्वेद उपपादनोंसे पांच कर्मोंको  
अत्र कालको विचारकर करै ॥ १३ ॥

मात्राकालाश्रयायुक्तिः सिद्धिर्यु  
क्तौप्रतिष्ठिता । तिष्ठत्युपरियुक्ति  
ज्ञोद्रव्यज्ञानवतांसदा ॥ १४ ॥

मात्रा और कालके आधीन युक्तिमें  
सिद्धि स्थित है और द्रव्यके ज्ञानवानों-  
के ऊपर सदैव युक्तिका ज्ञाता टिकता है ॥ १४ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि यवागुर्विविधौ  
षधाः । विविधानां विकाराणांत

त्साध्यानां निवृत्तये ॥ १५ ॥

इसके अनन्तर अनेक प्रकारके औषधोंकी यवागुओंकी अनेक प्रकारके विकार और उनके साध्योंकी निवृत्तिके लिये कहनाहै ॥ १५ ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रक नागैः । यवागुदीपनीयास्याच्छूलक्षीचापसादिता ॥ १६ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ इनकी बनाई यवागु दीपनी और छूलनाशक होतीहै ॥ १६ ॥

दधित्थविल्वचाङ्गेरीतक्रदाडिमसाधिता । पाचनीग्राहणीपिया सवातपात्रमूलिकौ ॥ १७ ॥

दधित्थ(कैय)वेल चांगेरी तक्र अनार इनकी बनाई यवागु पाचनी और ग्राहिणी होतीहै और वात सहित रोग होयतो तक्रमूलकी यवागु हित होतीहै ॥ १७ ॥

शालपर्णी वला वेल पृश्निपर्णी चसाधिता । दाडिमाम्लाहितापेयापित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ १८ ॥

शालपर्णी वला वेल पृश्निपर्णी इनसे बनाई यवागु अनारकी खटाई मिलाकर पित्त कफके आतिसार विकारियोंको पीने योग्यहै ॥ १८ ॥

पयस्यर्द्धोदकेछागेहीवेरोत्पलनागैः । पेयारक्तातिसारघ्नीपृश्नी पण्यार्चसाधिता ॥ १९ ॥

आधे जलके बकरीके दूधमें हाउवेर कमल सोंठ पृश्निपर्णी इनकी बनी यवागु पीनेसे रक्तातिसारका नाश करती है ॥ १९ ॥

दद्यात्सातिविपांपेयांसामेसाम्लां सनागराम् । श्वदंष्ट्राकण्टकारी भ्यामूत्रकृच्छ्रेसफाणिताम् ॥ २० ॥

आम सहित रोग होयतो अतीस और अम्ल सहित और सोंठकी और गोखरू कटेहली फाणित सहित इनकी मूत्रकृच्छ्रमें यवागुको दे ॥ २० ॥

विडङ्गपिप्पलीमूलशिग्रुभिर्मरिचे नच । तक्रसिद्धायवागुःस्यात्क्रिमिघ्नीसमुवर्चिका ॥ २१ ॥

वायविडंग पीपलामूल सहिजना मिरच मुवर्चिका इनकी तक्रमें सिद्ध यवागु क्रिमि नाशक होती है ॥ २१ ॥

मृद्वीकाशारिवालाजपिप्पलीमधु

पिपासाघ्नीविपघ्नीचसो

मराजावपाचता ॥ २२ ॥

मुनक्का शारिवा खील पीपल सहत नागर इनकी सोमराजीमें पकाई यवागु विप नाशक होतीहै ॥ २२ ॥

सिद्धावराहनिर्यूहेयवागुर्वृंहणीमता । गवेषुकानामृष्टानां कर्षणी यासमाक्षिका ॥ २३ ॥

वराहके निर्यूहमें बनाई भुने गेहूंकी यवागु वृंहणी कही है और सहत मिली कर्षणीया कही है ॥ २३ ॥



सर्पिष्मती बहुतिलास्नेहनीलवणा  
न्विता । कुशामलकनिर्यूहेश्या  
माकानां विरूक्षणी ॥ २४ ॥

अधिक तिल और घी जिसमें हो  
ऐसी लवण मिली यवागू स्नेहिनी होती  
है—कुशा और आंवलोंके निर्यूहमें साम-  
ककी बनी यवागू विरूक्षणी कही है २४

दशमूलीशृताकासहिकाश्वासक  
फापहा । यमके मदिरासिद्धापका  
शयरुजापहा ॥ २५ ॥

दश मूलमें पकाई कास श्वास हिका  
कफ इनकी नाशक होती है यमके  
मदिराकी बनी यवागू पकाशयके रोगको  
दूर करती है ॥ २५ ॥

शाकैर्मसैस्तिर्लैर्मापैः सिद्धावर्चा  
निरस्यति । जम्बाम्रास्थिदधि  
त्थाम्लविल्वैः सांग्राहिकीमता २६

शाक मांस तिल उडद इनकी यवागू  
निरस्यति है जामुन अम्ल इनकी  
गुठली दधित्थ अम्ल बेल इनकी यवागू  
सांग्राहिणी मानी है ॥ २६ ॥

क्षारचित्रकहिङ्गवम्लवेतसैर्भेदनी  
मता । अभयापिप्पलीमूलविश्वै  
र्वातानुलोमनी ॥ २७ ॥

क्षार चीता हींग अमलवेत इनकी  
यवागू भेदिनी कही है—हरड पीपलामूल  
सोंठ इनकी यवागू वातको अनुलोम  
करती है ॥ २७ ॥

तक्रसिद्धायवागूः स्याद्घृतव्याप  
त्तिनाशिनी । तैलव्यापदिशस्ता  
तुतक्रपिण्याकसाधिता ॥ २८ ॥

मट्टेमें बनाई यवागू घृतसे पैदाहुये रोग  
को नष्ट करती है और मट्टेके पिण्याकमें  
बनाई यवागू तैलसे पैदाहुये रोगमें  
श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥

गव्यमांसरसैः साम्लाविषमज्वर  
नाशिनी । कण्ठ्यायवानायमके  
पिप्पल्यामलकैः श्रिता ॥ २९ ॥

गोमांसके रसमें बनी जो अम्लसहित  
यवागू है वह विषमज्वरको नष्ट करती  
है जोके यमके पीपल और आमलोंकी  
बनाई यवागूकंठको हित होती है ॥ २९ ॥

ताम्रचूडरसे सिद्धारेतो मार्गरुजा  
पहा । समाषविदलावृष्याघृतक्षी  
रोप साधिता ॥ ३० ॥

ताम्रचूड ( मुर्गा ) के रसमें सिद्ध तो  
वीर्यके मार्गरुजा रोग उसकी नाशक  
है और उडदकी दालसहित होय और  
दूधमें बनाई होय तो वीर्य वर्द्धक होती है ३०

उपोदिकादधिभ्यान्तु सिद्धामदवि  
नाशिनी ॥ क्षुधंहन्यादपामार्ग  
क्षीरगोधरसे श्रिता ॥ ३१ ॥

पोई और दही से सिद्ध तो मदको  
नष्ट करती है और ओंगा दूध गोधा-  
कारस इनमें पकाई यवागू क्षुधाको नष्ट  
करती है ॥ ३१ ॥

तत्रश्लोकाः ॥ अष्टाविंशतिरित्ये  
तायवाग्वःपरिकीर्तिताः । पञ्च  
कर्माणिचाश्रित्यप्रोक्तोभैषज्य  
संग्रहः ॥ ॥ ३२ ॥

उसमें ये श्लोक हैं कि, ये अष्टाईस  
२८ यवाग्व कही हैं और पाँचकर्मों के  
आश्रयसे भैषज्यका संग्रह कहा है ॥ ३२ ॥

पूर्वमूलफलज्ञानहेतोरुक्तंयदौषध  
म् । पञ्चकर्माश्रयज्ञानहेतोस्तत्  
कीर्तितं पुनः ॥ ३३ ॥

पहिले मूल फलके ज्ञानार्थ जो औषध  
कहीयी वही औषध पाँच कर्मोंके आश्रित  
ज्ञानके लिये पुनः कही है ॥ ३३ ॥

स्मृतिमान् युक्तिहेतुर्ज्ञातात्माप्र  
तिपत्तिमान् । भिषगौषधसंयोगैः  
चिकित्सां कर्तुमर्हति ॥ ३४ ॥

इति भैषजचतुष्केऽपामार्गतण्डुलीयो  
नामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

स्मृतिमान् युक्तिहेतुर्ज्ञातात्माप्र

ज्ञातात्मा प्रतिपत्तिमान् ( ज्ञानी ) जो  
वेद्य है औषधोंके संयोगोंसे चिकित्सा  
करने को योग्य है ॥ ३४ ॥

इति भैषज चतुष्के अपामार्ग तण्डुलीयो  
नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथात आरग्वधीयमध्यायं वक्ष्यामः ।

इसके अनंतर आरग्वधीय अध्याय  
का वर्णन करते हैं—

इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

यह भगवान् आत्रेय कहते हैं,

आरग्वधः सैडगजः करञ्जो वासागु  
डूचीमदनं हरिद्रे । श्याहः सुराहः  
खदिरोधवश्च निम्बो विडङ्गं करवी  
रकत्वक् ॥ १ ॥

अमलतास ऐडगज करंज वासागिलोह  
मैनफल दोनों हल्दी श्रीसुरा खदिर धमां-  
सा नींबू वायविडंग कनेरक्री त्वचा ॥ १ ॥

ग्रन्थिश्च भौर्जो लशुनः शिरीषः सलो  
मशोगुगुलुकृष्णगन्धे । फणिज्ज  
कोवत्सकसप्तपर्णौ पीलूनि कुष्ठं सु  
मनः प्रवालाः ॥ २ ॥

ग्रंथि भोजपत्र लहसन शिरस लोमश  
गृगल कृष्णगंधा फणिज्जक वत्सक सप्तपर्ण  
पीलु कूट सुमन केपत्ते ॥ २ ॥

वचाहरेणुस्त्रिवृतानि कुम्भो मल्लो  
कंगैरिकमञ्जनश्च । मनःशिलाले  
मण्डूकानामुलकासीमस्तार्जुनरो  
ध्रसर्जाः ॥ ३ ॥

वच मोथा निशोथ निकुंभ भिलावा  
गेरू अंजन मनशिल गृहधूम इलायची  
कसीस मोथा अर्जुन लोध सज्जी ॥ ३ ॥

इत्यर्द्धरूपैर्विहिताः षडेते गोपित्तापी  
ताः पुनरेव पिष्टाः । सिद्धाः परं सर्षप  
पतैल युक्ताः चूर्णप्रदेहाभिषजाप्रयो  
ज्याः ॥ ४ ॥

ये आधे २ श्लोकमें कही जो औषध हैं

इनको गौकेपित्तमें चूर्ण करके भिगोवे और फिर पीसे फिर सरसों के तेलमें भलीप्रकार पकाये इन चूर्णों के प्रदेहों-को वैद्य प्रयुक्त करै ( दै ) ॥ ४ ॥

कुष्ठानिकृच्छ्राग्निवन् किलासंसुरे  
न्द्रलुप्तकिटिमंसदद्रु । भगन्दरार्शा  
स्यपर्चासपामांहन्युःप्रयुक्तास्त्व  
चिरान्नराणम् ॥ ५ ॥

ये कुष्ठकृच्छ्र नवीन किलास सुरेन्द्र-  
लुप्त किटिम दाद भगंदर अर्श अपची  
खुजली इनमनुष्योंके रोगोंको प्रयोग  
करनेसे शीघ्रही नष्ट करतेहैं ॥ ५ ॥

कुष्ठंहरिद्रेसुरसंपटोलंनिम्बाश्वग  
न्धेसुरदारुशिष्टु । ससर्पपंतुम्बुरुधा  
न्यवन्यंचण्डांशचूर्णानिसमानिकु  
र्यात् ॥ ६ ॥

कूट दोनों हलदी सरस पटोल नींव  
आसगंध देवदारु सोहंजना सरसों वनका  
तुलसीवांन्य चंडा इनको समभाग लेकर  
चूर्णकरै ॥ ६ ॥

तैस्तक्रयुक्तैःप्रथमंशरीरंतैलाक्तमु  
द्वर्त्तयितुंयतेत। तथास्यकण्डूःपिड  
काःसकोठाःकुष्ठानिशोफाश्वशमं  
ब्रजन्ति ॥ ७ ॥

उनको मट्टमें मिलाकर पहिले तैलमें  
भिगोये शरीर पर उबटना करनेका यत्न  
करै उसके मलनेसे इसके खुजली पिडिका  
कोठ कुष्ठ शोफ शांतिकी प्राप्त होतेहैं ७

कुष्ठामृतासङ्गकटङ्कुटेरीकाशीश  
क्राम्पिलकरोध्रमुस्ताः । सौग  
न्धिकंसर्जरसोविडङ्गमनः शिला  
लेकरवीरकत्वक् ॥ ८ ॥

कूट हरडै या गिलोय असंग कटं  
कटेरी कसीस कांपिल्यक ( कवीला )  
लोध मोथा सौगंधिकसर्जरस ( सज्जी )  
वायविडंग मनसिल कनेरकी त्वचा ॥ ८ ॥

तैलाक्तगात्रस्यकृतानिचूर्णान्ये  
तानिदद्यादवचूर्णनार्थम् । दद्रुः  
सकण्डुः किटिमानिपामांविच  
र्चिकाचैवतथैतिशान्तिम् ॥ ९ ॥

इन चूर्णोंको उस मनुष्यको मलने  
केलिये दे जिसका गात्र तैलसे भीगाहो  
उसके दाद खुजली किटिम खाज विच-  
र्चिका ये सब तिसी प्रकारशांत होती हैं ९

मनःशिलालेमरिचानितैलमार्कम्प  
यःकुष्ठहरःप्रदेहः। तुल्यंविडङ्गंमरि  
चानिकुष्ठंलोध्रश्चतद्वत्समनःशि  
लंस्यात् ॥ १० ॥

दोनों मनशिल मिरच तेल आककादूध  
इनका मलना कुष्ठको हरताहै वायविडंग  
मिरच कूट लोध और मनशिल ये सबतु  
ल्यहों ॥ १० ॥

रसाञ्जनंसप्रपन्नाडबीजयुक्तःकपि  
त्थस्यरसेनलेपः। करञ्जबीजैडगजं  
सकुष्ठंगोमूत्रपिष्टश्चपरःप्रदेहः ११ ॥

रसोत प्रपुत्राड (पुँवाड) केबीज इनको  
कैथके रसमें मिलाकर लेप करना युक्त है  
करंजके बीज एडगज (पुँवाड) कूट इनको  
गोमूत्रमें पीसकर प्रदेह करना श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥

उभेहरिद्रेकुटजस्य बीजं करंजवी  
जं सुमनःप्रवालान् । त्वचंसच  
व्यांहयमारकश्चलेपंतिलक्षारयुतं  
विदध्यात् ॥ १२ ॥

दोनों हलदी कुटजका बीज करंजका  
बीज सुमना के प्रवाल हयमारक (कनेर)  
की त्वचा और गुदा इनका तिलके  
क्षारमें मिलाकर लेप करे ॥ १२ ॥

मनःशिलात्वक्कुटजात्सकुष्ठःसलो  
मशःसैडगजःकरंजः । ग्रन्थिश्च  
भौजःकरवीरमूलचूर्णानिसाध्या  
नितुपोदकेन ॥ १३ ॥

मनसिल कुटजकी वकली कूट लोमश  
एडगज करंज ग्रंथि भौज मश  
जड़ इनके चूर्णों को तुपके जलमें  
पकावे ॥ १३ ॥

पलाशनिर्दाहरसेनचापिकर्पाद्धता  
न्यादकसम्मितेन । दर्वीप्रलेपप्रव  
दन्तिलेपमेतत्परंकुष्ठनिपूदनाय १४ ॥

पलाशकी भस्मके रसमें पकावे आढ़  
कभर जलमें पकाकर कर्पभर निकासै  
इसलेपको दर्वी प्रलेप कहते हैं यह कुष्ठके  
नाशके लिये अतिश्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

पर्णानिपिष्टाचतुरंगुलस्यतक्रेण

पर्णान्यथकाकमाच्याः । तैला  
क्तगात्रस्यनरस्यकुष्ठान्युदत्तयेद  
श्वहनच्छदैश्च ॥ १५ ॥

चतुरंगु लके पत्तोंको और काकमाची  
(मकोह) के पत्तोंको मट्टमें पीसकर  
और ऐसेही अश्वमारके (कनेर) के पत्तों  
को पीसकर तैलमें गात्रको भिगाकर उद्घ  
र्तन (मलना) करे तो मनुष्यका  
कुष्ठ दूर होता है ॥ १५ ॥

कोलंकुलथाःसुरदारुसामापा  
तसीतैलफलानिकुष्ठम् । वचाश  
ताद्वायवचूर्णमम्लमुष्णानिवाता  
मयिनांप्रदेहः ॥ १६ ॥

कोल कुलथी देवदारु रायसन उड़द  
अलसीका तैल और फल कूट वच सोंफ  
जौकाचूर्ण अम्ल यह प्रदेह वातरोगोंको  
दूर करता है ॥ १६ ॥

पमम्भुजिज्जेश्वारैरुष्णैः  
प्रदेहःपवनापहःस्यात् । स्नेहश्च  
तुभिर्दशमूलमिश्रैर्गन्धौषधैर्वानिल  
जित्प्रदेहः ॥ १७ ॥

जलके मत्स्योंका मांस वेशवार इनको  
उष्णकरके जो प्रदेह है वह वातनाशक है  
चारों स्नेहोंमें दशमूल वा गंधौषध मिलाकर  
जो प्रदेह है वह भी वातको जीते है ॥ १७ ॥

तक्रेणयुक्तंयवचूर्णमुष्णंसक्षारमा  
र्त्तिअठरेनिहन्यात् । कुष्ठंशताह्वं

सवचांयवानांचूर्णसतैलाम्लमुपन्ति  
वाते ॥ १८ ॥

तक्रमें मिला जौका चूर्ण क्षार मिला  
और उष्णहोय तो मलनेसे उदरकी पीड़ाको  
शांतकरताहै कूट सौंफ वच जौका चूर्ण  
तैलमें अम्ल मिलाहुआ वातमें कहाहै १८

उभेशताह्वेमधुकंमधूकंबलांपिया  
लुञ्चकशेरुकञ्च । घृतंविदारीञ्च  
सितोपलाञ्चकुर्यात्प्रदेहंपवनेस  
रक्ते ॥ १९ ॥

दोनों शताह्व (सौंफ शतावर) महुआ  
शहद खरेंडी बला चिरौंजी कसेरू घृत  
विदारीकंद मिश्री इनका प्रदेह रक्त वातमें  
करना ॥ १९ ॥

रास्नांगुडूचीमधुकंबलेद्वेसजीवकं  
सर्षपकम्पयञ्च । घृतञ्चसिद्धंम  
धुशेषयुक्तंरक्तानिलात्तिप्रणुदेत्प्र  
५६० ॥ २० ॥

रायसन गिलोह महुआ दोनों बला  
जीवक ऋषभक दूध इनकासिद्ध घृतमोम  
मिलाकर मलाजाय तो रक्तवातकी पीड़ा  
को शांतकरताहै ॥ २० ॥

वातेसरक्तेसघृतःप्रदेहोगोधूमचूर्ण  
छगलीपयञ्च । नतोत्पलंच  
न्दनकुष्ठयुक्तंशिरोरुजायांसघृतः  
प्रदेहः ॥ २१ ॥

और रक्त सहित वातमें गेहूंका चूर्ण  
बकरीका दूध इनका घृत सहित प्रदेह  
रक्त वातमें और नत ( तगर ) उत्पल  
चंदन कूट इनका घृत सहित प्रदेह शिरकी  
पीड़ामें उत्तमहै ॥ २१ ॥

प्रपौण्डरीकंसुरदारुकुष्ठंयष्ट्याह्व  
मेलाकमलोत्पलेच । शिरोरु  
जायांसघृतःप्रदेहोलोहैरकापञ्च  
कचोरकैश्च ॥ २२ ॥

बड़ाकमल देवदारु कूट मुलहठी  
इलायची कमल उत्पल लोहेकी एरका  
पद्माख चोरक इनका घृत सहित प्रदेह  
शिरकी पीड़ामें उत्तम है ॥ २२ ॥

रास्नाहरिद्रेनलदंशताह्वेद्वेदेवदारु  
णिसितोपलाञ्च । जीवन्तिमूलंस  
घृतंसतैलमालेपनंपार्श्वरुजासुको  
ष्णम् ॥ २३ ॥

रायसन दोनों हलदी नलद सैं  
मनानर हेतुद्वारा निरुद्ध जीवन्तिका मूल  
इनको घी तेल मिलाकर कुछ उष्णलेप  
पार्श्वोंकी पीड़ामें श्रेष्ठहै ॥ २३ ॥

शैवालपद्मोत्पलवेत्रतुङ्गंप्रपौण्डरी  
काण्यमृणाललोध्रम् । प्रियंगु  
कालीयकचन्दनानिनिर्वापणःस्या  
त्सघृतःप्रदेहः ॥ २४ ॥

शैवाल पद्म उत्पल वेतकी तुंग बड़ा  
कमल मृणाल ( विष ) लोध प्रियंगु  
कालीयक चंदन इनका घृत सहित प्रदेह  
निर्वापण करताहै ॥ २४ ॥

सितालतावेतसपद्मकानियष्ट्याह  
मैन्द्रीनलिनानिदूर्वा । यवासमूलं  
कुशकाशयोश्चनिर्वापणः स्यात्  
जलमेरकाच ॥ २५ ॥

मिश्री लता वेंत पद्म मुलेहटी इन्द्रायण  
कमल दूर्वा जवासेका मूल कुशा काशकी  
जड जलका पटेरा इनका प्रदेहभी निर्वा  
पण करता है ॥ २५ ॥

शैलेयमेलागुरुणीसकुष्ठेचण्डानतं  
त्वक्सुरदारुरास्त्रा । शीतनिह  
न्यादचिरात्प्रदेहोविपंशिरीपस्तु  
ससिन्धुवारः ॥ २६ ॥

चंदन इलायची अगर कूट चंडा वेंत  
दालचीनी देवदारु रायसन विष शिरस  
सिंधुवार इनका प्रदेह शीघ्रही शीतकी  
नष्ट करता है ॥ २६ ॥

शिरापलामज्जकहेमलोभ्रैस्त्वग्दो  
पसंखेदहरः प्रघर्षः । पत्राम्बुलो  
भ्राज्यचन्दनानिशरीरदौर्गन्ध्यह  
रः प्रदेहः ॥ २७ ॥

शिरस लामज्जक हेम लोध इनका  
प्रघर्ष त्वचाके दोषका नाशक है पत्तोंका  
( ओस ) जल लोध हरडे चंदन इनका  
प्रदेह शरीरकी दुर्गंधको हरता है ॥ २७ ॥

तत्र श्लोकः ।

इहात्रिजः सिद्धतमानुवाच द्वात्रिंश  
तंसिद्धमहर्षिपूज्यः । चूर्णप्रदेहा

न्विविधामयन्नानारग्वधीयेजगतो  
हितार्थम् ॥ २८ ॥

इति भेषजचतुष्के आरग्वधीयो नाम  
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

उसमें यह श्लोक है कि इस आरग्व  
धीय अध्यायमें सिद्ध महर्षियोंके पूज्य  
आत्रेयने अनेक प्रकारके रोगोंके नाशक  
वत्तीस चूर्णोंके प्रदेह जगत्के हितके लिये  
कहे हैं ॥ २८ ॥

इति आरग्वधीयो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातः पट्विरेचनशताश्रिती

यमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इसके अनंतर पट्विरेचन शताश्रिती  
अध्यायका व्याख्यान करते हैं—

इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

यह भगवान् आत्रेय कहते हैं,  
इहस्वत्पट्विरेचनशतानि भवन्ति । पट्विरेचनाश्रयाः । पञ्च  
कषायशतानि । पञ्चकषाययो  
नयः । पञ्चविधं कषायकल्पनम् ।  
पञ्चाशन्महाकषाया इति संग्रहः ।  
कि, यहां निश्चयसे छः सौ विरेचन होते  
हैं छः विरेचनोंके आश्रय, पांचसौ कषाय  
पांच कषायोंकी योनि पांच प्रकारके  
कषायों की कल्पना पचास महाकषाय हैं  
इतना संग्रह इस अध्यायमें है ॥ १ ॥

षड्विरेचनशतानीतियदुक्तं तदि  
हसंग्रहेणोदाहृत्यविस्तरेण कल्पो  
पनिषदिव्याख्यास्यामः ॥ २ ॥

छःसौ विरेचन जो कहे हैं उनको यहां  
संग्रहसे कहकर विस्तारसे कल्पोपनिष-  
दमें व्याख्यान करेंगे ॥ २ ॥

त्रयस्त्रिंशद्योगशतंप्रणीतं फलेष्वे  
कोनचत्वारिंशज्जीमूतकेषु योगाः ।  
पञ्चचत्वारिंशदिक्ष्वाकुषु धामार्गवः  
षष्टिधा भवति योगयुक्तः ॥ ३ ॥

ते तीस योगोंका शतफलोंमें १३३  
एकोनचत्वारिंशत् ३९ जीमूतक  
( जल ) के योग पैंतालीस इक्ष्वाकुओंके  
योग धामार्गव साठ प्रकारके योगसे युक्त  
होता है ॥ ३ ॥

कुटजस्त्वष्टादशधा योगमेति कृत  
वेधनं षष्टिधा भवति योगयुक्तम् ।  
श्यामात्रिवयोगश्चापि त्रिंशद्विंश  
रचात्र भवन्ति योगाः ॥ ४ ॥

कुटजके अठारह योग हैं कृतवेधनके  
साठ योग हैं श्याम निशोथके सौ योग हैं  
और दश अन्य योग यहां होते हैं ॥ ४ ॥

चतुरंगुलोद्वादशधा योगमेतिलो  
ध्रंविधौ षोडशयोगयुक्तम् । महा  
वृक्षो भवति विंशतियोगयुक्तः एकोन  
चत्वारिंशत्सप्तलाशंखिन्योर्यो  
गाः ॥ ५ ॥

चतुरंगुलके बारह योग होते हैं लोध  
विधिसे सोलह योगसे युक्त है महावृक्ष  
बीस योगोंसे युक्त है सप्तला शंखिनीको  
योग उनतालीस हैं ॥ ५ ॥

अष्टाचत्वारिंशदन्तीद्रवन्त्योरि  
ति षड्विरेचनशतानि । षड्विरेच  
नाश्रया इति ॥ ६ ॥

दंती द्रवन्तीके योग अडतालीस ये  
छःसौ विरेचन हैं ॥ ६ ॥

क्षीरमूलत्वक्पत्रपुष्पफलानीति ।  
पञ्चकषाययोनय इति ॥ ७ ॥

छः विरेचनके आश्रय ये हैं कि दूध  
जड़ त्वचा पत्र पुष्प फल इति ॥ ७ ॥

मधुरकषायोऽम्लकषायः कटुक  
पायस्तिक्तकषायः कषायकषाय  
श्वेतितन्त्रे संज्ञा ॥ ८ ॥

पांच कषायकी योनि मधुर कषाय  
अम्ल कषाय कटुक कषाय तिक्त कषाय  
कसेला कषाय ये तंत्रमें संज्ञा है ॥ ८ ॥

पञ्चविधं कषायकल्पनमिति । त  
द्यथा । स्वरसः कल्कः शृतः शीतः  
फाण्टः कषाय इति ॥ ९ ॥

पांच प्रकारके कषायकी कल्पना जो  
है वह ऐसे है कि स्वरस कल्क शृत शीत  
फाण्टः कषाय यह कही है ॥ ९ ॥

“ यन्त्रप्रपीडनाद्रव्याद्रसः स्व  
रस उच्यते । यत्पिण्डरसपिष्टानां  
तत्कल्कं परिकीर्तितम् ॥ १० ॥

द्रव्यको ग्रंथमें पीडकर जो रसनिकसै वह स्वरस कहा है रसमें पीसे हुयोंका जो पिंड वह कल्क कहा है ॥ १० ॥

वहौतुकथितं द्रव्यं शृतमाहुश्चिकित्सकाः । द्रव्यादापोत्थितात्तो येतत्पुनर्निशिसंस्थितात् ॥ ११ ॥

अग्रिमें पकाया जो द्रव्य उसको वैद्य लोग शृत कहते है पीसे हुये द्रव्यको रात्रिमें जलमें स्थित रखनेसे ॥ ११ ॥

कपायोयोऽभिनिर्यातिसशीतः समुदाहृतः । क्षिप्तोष्णतोयेमृदितं तत्फाण्डपरिकीर्तितम् ॥ १२ ॥

जो कपाय निकसै वह शीत कहाताहै और उष्ण जलमें डालकर मलनेसे जो कपाय निकसै उसको फाण्ड कहतेहैं ॥ १२ ॥

तेषां यथापूर्वबलाधिक्यम् । अतः कपायकल्पनाव्याध्यातुरबलापे क्षिणीनत्वेवं खलु सर्वाणि सर्वत्रोपयोगीनिभवन्ति । पञ्चाशन्महा कपायाइतियदुक्तं तदनुव्याख्या स्यामः ॥ १३ ॥

उसमें पहिले २ का अ.मसे अधिक बल होता है इससे कपायकी कल्पना व्याधि और आतुरके बलकी अपेक्षासे होती है इससे इसप्रकार सबका सर्वत्र उपयोग नहीं होता है—पचास जो महाकपाय कहे हैं उनका व्याख्यान करते हैं ॥ १३ ॥

तद्यथा । जीवनीयो बृंहणीयो लेखनीयो भेदनीयः सन्धानीयो दीपनीय इति पट्कः कपायवर्गः ॥ १४ ॥

वह ऐसे है कि जीवनीय बृंहणीय लेखनीय भेदनीय संधानीय दीपनीय ये छः कपायोंका वर्ग है ॥ १४ ॥

बल्यो वर्ण्यः कण्ठ्यो हृद्यः इति चतुष्कः कपायवर्गः ॥ १५ ॥

बलकारी वर्णकारी कंठकी हित हृदयकी प्रिय यह चार कपायोंका वर्ग है १५ तृप्तिघ्नोऽर्शोघ्नः कुष्ठघ्नः कण्डूघ्नः कृमिघ्नो विषघ्न इति पट्कः कपायवर्गः १६

तृप्तिनाशक अर्शनाशक कुष्ठनाशक कण्डूनाशक कृमिनाशक विषनाशक ये छः कपायोंके वर्ग हैं ॥ १६ ॥

स्तन्यजननः स्तन्यशोधनः शुक्रजननः शुक्रशोधन इति चतुष्कः कपायवर्गः ॥ १७ ॥

स्तन्यजनन स्तन्यशोधन शुक्रजनन शुक्रशोधन यह चार कपायोंके वर्ग हैं १७ स्नेहोपगः स्वेदोपगो वमनोपगो विरेचनोपगो आस्थापनोपगोऽनुवासनोपगः शिरोविरेचनोपग इति सप्तकः कपायवर्गः ॥ १८ ॥

स्नेहोपयोगी स्वेदोपयोगी वमनोपयोगी आस्थापनोपयोगी अनुवासनोपयोगी शिरोविरेचनोपयोगी यह सात कपायोंका वर्ग है ॥ १८ ॥



छर्दिनिग्रहणस्तृष्णानिग्रहणोहिका  
निग्रहणइतित्रिकःकषायवर्गः १९

छर्दिकानिग्रहण तृष्णानिग्रहण  
हिचकीकानिग्रहण यह तीनकषायोंका  
वर्ग है ॥ १९ ॥

पुरीषसंग्रहणीयःपुरीषविरजनी  
योमूत्रसंग्रहणीयोमूत्रविरजनीयो  
मूत्रविरचनीय इतिपञ्चकःकषा  
यवर्गः ॥ २० ॥

मलसंग्रहणीय पुरीष विरजनीय मूत्र  
संग्रहणीय मूत्रविरजनीय मूत्रविरचनीय  
यह पांचकषायोंका वर्ग है ॥ २० ॥

कासहरःश्वासहरःशोथहरोज्वरहरः  
श्रमहरइतिपञ्चकःकषायवर्गः २१

कासहर श्वासहर शोथहर ज्वरहर  
श्रमहर यह पांच कषायोंका वर्ग है ॥ २१ ॥

दाहप्रशमनःशीतप्रशमनउदरदप्र

शमनोऽङ्गमर्दप्रशमनःशूलप्रशमन  
इतिपञ्चकःकषायवर्गः ॥ २२ ॥

दाहप्रशमन शीतप्रशमन उदरदप्रशमन  
अंगमर्दप्रशमन शूलप्रशमन यह पांच  
कषायोंका वर्ग है ॥ २२ ॥

शोणितास्थापनोवेदनास्थापनः

संज्ञास्थापनःप्रजास्थापनोवयः

स्थापनइतिपञ्चकःकषायवर्गः ।

इतिपञ्चाशन्महाकषायाः॥ २३ ॥

शोणितास्थापन वेदनास्थापन संज्ञा

स्थापन प्रजास्थापन वयःस्थापन यह पांच  
कषायोंका वर्ग है ये पचासमहाकषायहैं २३

महताञ्चकषायाणांलक्षणोदाहर  
णार्थव्याख्याताभवन्ति । तेषा  
मेकैकस्मिन्महाकषायेदशदशा  
वयविकान्कषायाननुव्याख्या  
स्यामः । तान्येवपञ्चकषायश  
तानिभवन्ति ॥ २४ ॥

महान् कषायोंके लक्षण और उदाह-  
रणके लिये कहेहैं उनके मध्यमें एक २  
महाकषायमें अंगोंके दश २ कषायोंका  
व्याख्यान करते हैं वेही पंचशत ५००  
कषाय होते हैं ॥ २४ ॥

तद्यथा । जीवकर्षभकौमेदामहा  
मेदाकाकोलीक्षीरकाकोलीमुद्रमा  
षैपणीजीवन्तीमधुकमितिदशेमा  
निजीवनीयानिभवन्ति ॥ २५ ॥

वे ऐसे हैं कि जीवक ऋषभक मेदा  
महामेदा काकोली क्षीरकाकोली मुद्रपणी  
माषपणी जीवन्ती महुआ ये दश कषाय  
जीवनीय होते हैं ॥ २५ ॥

क्षीरिणीराजक्षवकबलाकाकोली  
क्षीरकाकोलीवाट्यायनीभद्रौदनी  
भारद्वाजीपयस्यर्ष्यगन्धाइतिदशे  
मानिबृंहणीयानिभवन्ति ॥ २६ ॥

क्षीरिणी राजक्षवक बला काकोली  
क्षीरकाकोली वाट्यायनी भद्रौदनी भार-

द्राजी पयस्या ऋष्यगंधा ये दश कषाय  
वृंहणीय होते हैं ॥ २६ ॥

मुस्तकुष्ठहरिद्रादारुहरिद्रावचा  
तिविषाकटुरोहिणीचित्रकचिरि  
विल्वहैममत्यइतिदशेमानिलेख  
नीयानिभवन्ति ॥ २७ ॥

मोथा कूट हलदी दारुहलदी वच अतीस  
कटुरोहिणी चित्रक करंजुवा हैमपती  
ये दश कषाय लेखनीय होते हैं ॥ २७ ॥

मुवहाकर्कसूकाग्निमुखीचित्राचि  
त्रकचिरविल्वशंखिनीशकुलाद  
नीस्वर्णक्षीरिण्यइतिदशेमानिभेद  
नीयानिभवन्ति ॥ २८ ॥

मुवहा अर्क सूका अग्निमुखी चित्रा  
चीता पुराणवेल शंखिनी शकुलादनी  
स्वर्णक्षीरिणी ( सोनामक्खी ) ये दश  
कषाय भेदनीय होते हैं ॥ २८ ॥

मधुकमधुपर्णीपृश्निपर्ण्यम्बुष्टकी  
समङ्गामोचरसधातकीलोध्रप्रियं  
गुकट्फलानीतिदशेमानिसंधानी  
यानि भवन्ति ॥ २९ ॥

महुआ मधुकपर्णी पृश्निपर्णी अंबुष्टकी  
समंगा मोचरस धातकी लोध्र प्रियंगु  
कायफल ये दश कषाय संधानीय होते हैं ॥ २९ ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रक  
शृङ्गवेराम्लवेतसमरिचाजमोदा  
भल्लातकास्थिहिङ्गुनिर्यासाइतिद

शेमानिदीपनीयानिभवन्ति ॥ ३० ॥

पीपल पीपलामूल चव्य चित्रक शृङ्गवेर  
अम लंवेत मिरच अजमोद भिलाये हींग  
ये दश दीपनीय होते हैं ॥ ३० ॥

इतिपट्ककषायवर्गः । ऐन्द्रीकष  
भ्यतिरसर्ष्यप्रोक्तापयस्यश्वगंधा  
स्थिरारोहिणीवलातिवलाइतिद  
शेमानिवल्यानिभवन्ति ॥ ३१ ॥

ये छः कषायोंके वर्ग हैं इंद्रायण ऋषभ  
अतिरस ऋष्यप्रोक्ता पयस्या आसगंध  
स्थिरा रोहिणी वला अतिवला ( खरेंटी )  
ये दश कषाय बलकारक होते हैं ॥ ३१ ॥

चन्दनतुङ्गपद्मकोशीरमधुकमज्जि  
ष्टाशारिवापयस्यासितालताइति  
दशेमानिवर्णानिभवन्ति ॥ ३२ ॥

चंदन तुंग, पद्माख खस महुआ मजीठ  
सारिवा पयस्या सितालता ये दश कषाय  
वर्णशोधक होते हैं ॥ ३२ ॥

सारिवेक्षुमूलमधुकपिप्पलीद्राक्षा  
विदारीकैट्यहंसपदीवृहतीकण्ट  
कारिकइतिदशेमानिकण्ठयानि  
भवन्ति ॥ ३३ ॥

सारिवा इक्षुमूल महुआ पीपल  
मुनक्का विदारीकंद कैट्यर्हंसपदी बडी  
कटेहली ये दश कषाय कंठके हितकारी  
होते हैं ॥ ३३ ॥

आम्रात्रातकनिकुचकरमर्दवृक्षा  
म्लाम्लवेतसकुबलबदरदाडिममा

तुलुङ्गानीतिदशेमानिहृद्यानिभव  
न्ति ॥ ३४ ॥

आम्र आम्रातक निकुच करमर्द  
वृक्षाम्ल अमलवेत कुवलय वेर अनार  
मातुलुंग ( विजोरा ) ये दशकषाय हृद-  
यकोहितकारी होते हैं—यह चार कषायोंका  
वर्ग है ॥ ३४ ॥

इतिचतुष्कःकषायवर्गः । नागर  
चित्रकचव्यविडङ्गमूर्वागुडूचीव  
चामुस्तपिप्पलीपटोलानीतिदशे  
मानितृप्तिघ्नानिभवन्ति ॥ ३५ ॥

सूठ चीता चव्य वायविडंग मूर्वागिलोय  
वच मोथा पीपल पटोल ये दश कषाय  
तृप्तिके नाशक हैं ॥ ३५ ॥

कुटजबिल्वचित्रकनागरातिविषा  
भयाधन्वयशकदारुहरिद्रावचा  
चव्यानीतिदशेमानिअर्शोग्नानि  
भवन्ति ॥ ३६ ॥

कुटज बेल चीता सूठ अतीस हरडे  
धमासा दारुहलदी वच चव्य ये दश  
कषाय अर्शके नाशक हैं ॥ ३६ ॥

खदिराभयामलकहरिद्रारुक्मरस  
तपणार्गवधकरवीरविडङ्गजाति  
प्रवालाइतिदशेमानिकुष्ठघ्नानिभ  
वन्ति ॥ ३७ ॥

खदिर हरडै आमले हलदी अरुक्मर  
सप्तपर्ण अमलतास कनेर वायविडंग

जातिके पत्ते ये दश कषाय कुष्ठनाशक  
होते हैं ॥ ३७ ॥

चन्दननलदकृतमालनक्तमालनि  
म्बकुटजसर्पपमथुकदारुहरिद्रामु  
स्तानीतिदशेमानिकण्डुघ्नानिभ  
वन्ति ॥ ३८ ॥

चंदन नलद कृतमाल नक्तमाल निंब  
कुटज सरसों महुआ दारुहलदी मोथा  
ये दश कषाय कंडूनाशक होते हैं ॥ ३८ ॥

अक्षीवमारिचगण्डरिकेवूकविड  
ङ्गनिर्गुण्डीकिणहीश्वदंष्ट्रावृषपर्णी  
काआखुपर्णिकाइतिदशेमानिक  
मिघ्नानिभवन्ति ॥ ३९ ॥

अक्षीव मिरच गंडीर केवुक वायविडंग  
निर्गुण्डी किणही गोखरू वृषपर्णी आखुपर्णी  
ये दश कषाय कृमि नाशक होते हैं ॥ ३९ ॥

हरिद्रामज्जिष्ठासुवहामूक्षमैलापा  
लिन्दीचन्दनकनकशिरीषसिन्धु  
वारश्लेष्मातकाइतिदशेमानिवि  
षघ्नानिभवन्ति ॥ ४० ॥

हलदी मंजीठ सुहागा छोटी इलायची  
पालिंदी चंदन कतक शिरस सिन्धुवार  
वहेडा ये दश कषाय विषनाशक होते हैं ॥ ४० ॥

इतिषट्कःकषायवर्गः । वीरण  
शालीषट्टिकेशुवालिकादर्भकुम्  
काशगुन्द्रेत्कटकतृणमूलानीति  
दशेमानिस्तन्यजननानिभवन्ति ॥ ४१ ॥

यह छः कषायोंका वर्ग है—वीरणशाली  
सांठीचावल इक्षुवालिका दर्भ कुशकाश  
गुंठ उत्कट कटूणकी जड़ ये दश कषाय  
स्तन्यजनन होते हैं ॥ ४१ ॥

पाठामहौपधसुरदारुमुस्तमूर्वागु  
डूचीवत्सकफलकिराततिक्त  
कटूरोहिणीशारिवाइतिदशेमानी  
स्तन्यशोधनानिभवन्ति ॥ ४२ ॥

पाठा सूठ देवदारु मोथा मूर्वा गि-  
ल्लोय वांसाका फल किरात तिक्त कटू-  
रोहिणी शारिवा ये दश कषाय स्तन्य  
शोधन होते हैं ॥ ४२ ॥

जीवकर्पभककाकोलीक्षीरकाको  
लीमुद्गपर्णीमापपर्णीमेदावृक्षरुहा  
जटिलाकुलिङ्गाइतिदशेमानिशु  
क्रजननानिभवन्ति ॥ ४३ ॥

जीवक ऋषभक काकोली क्षीरका-  
कोली मुद्गपर्णी मापपर्णी मेदा वृक्षरुहा  
जटिला कुलिङ्गा ये दश कषाय शुक्र-  
जनन होते हैं ॥ ४३ ॥

कुष्ठैलवालुककटुफलसमुद्रफेणक  
दम्बनिर्यासेक्षुकाण्डेक्षिवक्षुरकव  
सुकोशीराणीतिदशेमानिशुक्रशो  
धनानिभवन्ति ॥ ४४ ॥

इति चतुष्कः कषायवर्गः ।

कूट, एलवालुककायफल समुद्रझाग  
कदंबका गोंद इक्षु, कांडेक्षु इक्षुरक वसुक  
खस ये दश शुक्रशोधन होते हैं ॥ ४४ ॥

यह चार कषायोंका वर्ग है—

मृद्रीकामधुकमधुपर्णीमेदाविदा  
रीक कोलीक्षीरकाकोलीजीवक  
जीवन्तीशालपर्ण्यइतिदशेमानि  
स्नेहोपयोगानिभवन्ति ॥ ४५ ॥

मुनक्का महुआ मधुपर्णी मेदा विदारीकंद  
काकोली क्षीरकाकोली जीवत जीवन्ती  
शालपर्णी ये दश कषाय स्नेहके उपयोगी  
होते हैं ॥ ४५ ॥

शोभाजनैकरण्डार्कवृश्चीरपुनर्न  
वायवतिलकुलत्थमापबदराणी  
तिदशेमानिस्वेदोपगानिभवन्ति ॥ ४६ ॥

सहिंजना एरंड आख वृश्चीर पुनर्नवा  
( सांढवा विपस्त्रपरा ) जों तिलकुलत्थी  
उड़द बेर ये दश कषाय स्वेदोपग ( पसीना  
कारक ) होते हैं ॥ ४६ ॥

मधुमधुककोविदारकर्बुदारणोप  
विदुलविम्बीशणपुष्पीसदापुष्पी  
प्रत्यक्पुष्प्यइति दशेमानिवमनो  
पगानिभवन्ति ॥ ४७ ॥

सहत महुआ कचनार वा कनेर कर्बुदा  
अरणी अरल उपविदुल बिंबी वा कडवी  
तुंबी शणपुष्पी सदापुष्पी प्रत्यक्पुष्पी  
ये दश कषाय वमनकारी होते हैं ॥ ४७ ॥

द्राक्षाकाश्मर्यपरुषकाभयामल  
कविभीतककुवलबदरकर्कन्दुपी  
लूनीतिदशेमानिविरेचनोपगानि  
भवन्ति ॥ ४८ ॥

मुनक्का केशर काश्मरी अपरूपक (फाल सा ) हरडे आंवले वहेडा कमलवेर हाऊवेर पीलु ये दश कषाय दस्तावर होतेहैं ॥ ४८ ॥

त्रिवृद्विल्वपिप्पलीकुष्ठसर्पपवचा  
वत्सकफलशतपुष्पामधुकमदन  
फलानीतिदशेमान्यास्थापनीयो  
पगानिभवन्ति ॥ ४९ ॥

हरडे वेल पीपल कूट सरसो वच वांसे-  
काफल सौंफ महुआ मेनफल ये दश  
कषाय मलबंधक होतेहैं ॥ ४९ ॥

रास्नासुरदारुबिल्वमदनशतपुष्पा  
वृश्चीरपुनर्नवाश्वदंष्ट्राग्निमन्थश्यो  
णाकाइतिदशेमानिअनुवासनोप  
गानिभवन्ति ॥ ५० ॥

रायसन देवदारु वेल मेनफल सौंफ  
विच्छू घास सांढि अश्वदंष्ट्रा ( गोखरू )  
एरण्डी स्योनाक अरलू ये दश कषाय  
अनुवासन ( सुगंधिकारक ) होतेहैं ॥ ५० ॥

ज्योतिष्मतीक्षवकमरिचपिप्पली  
विडङ्गशिगुसर्षपापामार्गतण्डुल  
श्वेतामहाश्वेताइतिदशेमानिशि  
रोविरेचनोपगानिभवन्ति ॥ ५१ ॥

इति सप्तकः कषायवर्गः ।

ज्योतिष्मती ( मालकांगनी ) छत्राक  
मिरच पीपल वायविडंग सहिजना सरसों  
अपामार्ग ( ओंगा ) तंडुल श्वेता महा-  
श्वेता ये दश कषाय शिरके विरेचनकारक  
होतेहैं ॥ ५१ ॥

यह सातकषायोंका वर्ग है ।

जम्ब्वाम्रपल्लवमातुलुङ्गाम्लवदरदा  
डिमयवयष्टिकोशीरमृल्लाजाइति  
दशेमानिछादिनिग्रहाणिभवन्ति ५२

जामुन आमकेपत्ते मातुलुंग ( विजोरा )  
इमली वेर अनार जों मुलहटी उशीर  
चंदनकी मिट्टीखील ये दश कषाय  
वमनको रोकतेहैं ॥ ५२ ॥

नागरधन्वयवासकमुस्तपर्पटक  
चन्दनकिराततिक्तकगुडूचीही  
वेरधान्यकपटोलानीतिदशेमा  
नितृष्णानिग्रहाणिभवन्ति ५३

सूठ धवासा मोथा पित्तपापडा चंदन  
चिरायता गिलोह हाऊवेर धनियां परवल  
ये दश तृषाको रोकतेहैं ॥ ५३ ॥

शटीपुष्करमूलवदरबीजकण्टका  
रिकावृहतीवृक्षरुहाभयापिप्पली  
दुरालभाकुलीरशृङ्गचइतिदशेमा  
मानिहिकानिग्रहाणिभवन्ति ५४

इतित्रिकःकषायवर्गः ।

शटी ( कचूर ) पोहकरमूल वेरकी  
गुठली कटेहलीवडी आकाशवेल हरडे  
पीपल दुरालभा ( चिरचिटा ) कुलीर-  
शृंगी ( काकडासिंगी ) ये दश हिचकीको  
रोकतेहैं ॥ ५४ ॥

यह तीनकषायोंका वर्ग है ।

प्रियंग्वनन्ताम्रास्थिकट्वङ्गलोध्रमो  
चरससमङ्गाधातकीपुष्पपद्माप

वृक्षेशराणीतिदशेमानिपुरीपसं  
ग्रहणानिभवन्ति ॥ ५५ ॥

चिरोन्जी अनन्ता (जवासा) आमकी गुठली  
कूटलोध मोचरस (मजीठ) समंगाधाड़केफूल  
पद्माख कमलकी केशर ये दश मलको  
रोकतेहैं ॥ ५५ ॥

जम्बुशलकीत्वक्कच्छुरामधूक  
शाल्मलीश्रीवेष्टकभृष्टमृत्पयस्यो  
त्पलतिलकणाइतिदशेमानिपुरी  
पविरजनीयानिभवन्ति ॥ ५६ ॥

जामुन शलकी ( चीठ ) की त्वचा  
कच्छुरा ( जवासा कचूर ) महुआ सैमल  
श्रीवेष्टक ( कुंदुरु ) भुनी मिट्टी जल कमल  
तिल पीपल ये दश मलको स्वच्छ  
करतेहैं ॥ ५६ ॥

जम्बुवाप्रपुक्षवटकपीतनोदुम्बरा  
श्वत्थभल्लातकाश्मन्तकसोमव  
ल्काइतिदशेमानिमूत्रसंग्रहणानि  
भवन्ति ॥ ५७ ॥

जामुन आम पिलखन बड कैथ गूलर  
पीपल भल्लातक ( भिलावे ) अश्मन्तक  
( बहेड़ा ) सोमवल्क ये दश मूत्रका संग्रह  
( रोक ) करतेहैं ॥ ५७ ॥

वृक्षादनोश्वदंष्ट्रावमुकोशीरपाषा  
णभेददर्भकुशपद्मोत्पलनलिनकु  
मुदसौगन्धिकपुण्डरीकशतपत्रम  
धुकप्रियंगुधातकीपुष्पाणीतिदशे  
मानिमूत्रविरेजनीयानिभवन्ति ५८

वृक्षाकाशगुन्द्रोत्कटमूलानीति  
दशेमानिमूत्रविरेचनीयानिभव  
न्ति ॥ ५९ ॥

इति पञ्चकः कषायवर्गः ।

मैनफल अश्वदंष्ट्रा ( गोख रू ) वंसुक  
उशीर ( खस ) पाषाणभेद दर्भ कुश  
( कास ) गुंठ उत्कट इनकी जड़ ये दश मूत्रके  
शोधक होतेहैं । कुमुद पद्म उत्पल नालिन  
सौगन्धिक पुष्प पुंडरीक शतपत्र महुआ  
फूल प्रियंगु धाड़के पुष्प ये दश मूत्रके विरे  
चनकारक होतेहैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

यह पांच कषायोंका वर्गहै ।

द्राक्षाभयामलकपिप्पलीदुरालभा  
शृङ्गीकण्टकारिकारिकावृश्चीरपु  
नर्नवातामलक्यइतिदशेमानिका  
सहराणिभवन्ति ॥ ६० ॥

मुनक्कादाख हरडे आंवले पीपल चिर  
चिटा काकडाशिंगी कटेहली विच्छुवास  
सांठी आंवले ये दश कासको नष्ट  
करतेहैं ॥ ६० ॥

शटीपुष्करमूलाम्लवेतसैलाहिंघ  
गुरुसुरसातामलकीजीवन्तीच  
ण्डाइतिदशेमानिश्वासहराणिभव  
न्ति ॥ ६१ ॥

शटी ( कचूर ) पोहकरमूल अमल-  
वेत इलायची हींग अगर सुरसा ( तुलसी )  
आमलकी जीवन्ती ( हरडे ) चंडा ये  
दश श्वास हरतेहैं ॥ ६१ ॥

पाटलाग्रिमन्थबिल्वश्योणाकका  
श्मर्यकण्टकारिकावृहतीशालप  
र्णीपृश्निपर्णीगोक्षुरकाइतिदशेमा  
निशोथहराणिभवन्ति ॥ ६२ ॥

पाटल( अग्रिमन्थ) अरणी बेल श्योणाक  
काश्मरी कटेहली बडीकटेहली शालपर्णी  
पृश्निपर्णी गोखरू ये दशशोथको हरतेहैं ॥ ६२ ॥

शारिवाशर्करापाठामञ्जिष्ठाद्राक्षा  
पीलपरूपकाभयामलकविभीतका  
नीतिदशेमानिज्वरहराणिभवन्ति ॥ ६३ ॥

शारिवा ( गुलसरके बीज ) शर्करा  
( सीरखिस्त ) पाठा मजीठ दाख पीलू  
परूष ( फालसे ) हरडे आंवले बहेड़ा  
ये दश ज्वरको हरतेहैं ॥ ६३ ॥

द्राक्षाखर्जूरपियालबदरदाडिमभ  
ल्लुपपरूषकेशुयवयष्टिकाइतिदशे  
मानिश्रमहराणिभवन्ति ॥ ६४ ॥

इति पञ्चकः कषायवर्गः ।

मुनक्कादाखखजूर चिरौंजी बेर अनार  
फल्लु परूषक ( फालसे ) ईख जौं मुलहदी  
ये दश श्रमको हरतेहैं ॥ ६४ ॥

यह पांच कषायोंका वर्ग है ।

लाजाचन्दनकाश्मर्यफलमधुक  
शर्करानीलोत्पलोशरिशारिवागु  
डूचीहीवेराणीतिदशेमानिदाहप्र  
शमनानिभवन्ति ॥ ६५ ॥

ल. जा चंदन काश्मरीका फल महुआ

शर्करा नील उत्पल उशीर ( खस )  
शारिवा गिलोय हाऊबेर ये दश दाहको  
शांत करतेहैं ॥ ६५ ॥

तगरागुरुधान्यकशृङ्गवेरभूतीक  
वचाकण्टकारिकाग्रिमन्थश्योणा  
कपिप्पल्यइतिदशेमानिशीतप्रश  
मनानिभवन्ति ॥ ६६ ॥

तगर अगर धनियां शृंगवेर भूतीक  
वच कटेहली अग्रिमन्थ श्योनाक पीपल  
ये दश शीतको शांत करतेहैं ॥ ६६ ॥

तिन्दुकपियालबदरखदिरकदरस  
सप्तपर्णाश्वकर्णार्जुनासनारिमेदाइति  
दशेमान्युद्वर्द्धप्रशमनानिभवन्ति ॥ ६७ ॥

तेंदू चिरौंजी बेर खैर कदर सप्तपर्ण  
अश्वकर्ण ( साल ) अर्जुन असन अरिमेद  
ये दश उद्वर्द्धको शांत करतेहैं ॥ ६७ ॥

विदारिगन्धापृश्निपर्णीवृहतीक  
ण्टकारिकैरण्डकाकोलीचन्दनो  
शीरैलामधुकानीतिदशेमान्यङ्ग  
मर्दप्रशमनानिभवन्ति ॥ ६८ ॥

विदारिगन्धा पृश्निपर्णी कटेहली कंट-  
कारी अरंड काकोली चंदन उशीर ( खस )  
इलायची महुआ ये दश अंगमर्दको शांत  
करतेहैं ॥ ६८ ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्याचेत्त  
कशृङ्गवेरमरिचाजमोदाजगन्धा  
जाजीगण्डीराणीतिदशेमानिशूल  
प्रशमनानिभवन्ति ॥ ६९ ॥

इति पञ्चकः कषायवर्गः ।

पीपल पीपलामूल चव्य चीता शृंगवेर  
मिरच अजमोद अजगंधा अजाजी(जीरा)  
गंडीर ये दश शूलको शांत करतेहैं ॥ ६९ ॥  
यह पांच कषायोंका वर्ग है ।

मधुमधुकरुधिरमोचरसमृत्कपाल  
लोध्रगैरिकप्रियंगुशर्करालाजाइति  
दशेमानिशोणितस्थापनानिभव  
न्ति ॥ ७० ॥

सहत महुआ रुधिर मोचरस मृत्क-  
पाल लोध गेरु प्रियंगु शर्करा लाजा ये  
दश रुधिरके स्थापन होतेहैं ॥ ७० ॥

शालकट्फलकदम्बपञ्चकतुङ्गमो  
चरसशिरीषवंजुलैलावालुकाशो  
काइतिदशेमानिवेदनास्थापनानि  
भवन्ति ॥ ७१ ॥

शाल कायफल कदंब पद्माख तुरंग  
मोचरस सिरस वंजुल एलवा बालुका  
अशोक ये दश वेदना ( दर्द ) के स्थापक  
होतेहैं अर्थात् बढ़ने नहीं देतेहैं ॥ ७१ ॥

हिंगुकैट्यारिमेदवचाजीरकवयः  
स्थागोलोमीजटिलापलङ्कपाशो  
करोहिण्यइतिदशेमानिसंज्ञास्था  
पनानिभवन्ति ॥ ७२ ॥

हींग कैट्यर्य अरिमेद ( विट्खदिर )  
वच जीरा वयस्था गोलोमी जटिला  
पलंकपा (लाख) अशोक रोहिणी ये दश  
संज्ञाके स्थापन होते हैं अर्थात् सावधानी  
रखते हैं ॥ ७२ ॥

ऐन्द्रीब्राह्मीशतवीर्यासहस्रवीर्या  
मोघाव्यथाशिवारिष्टावात्यपुष्पी  
विश्वक्सेनकान्ताइतिदशेमानिप्र  
जास्थापनानिभवन्ति ॥ ७३ ॥

ऐंद्री ( इंद्रायण ) ब्राह्मी शतवीर्या  
( सौंफ ) सहस्रवीर्या शतावर अमोघा  
अव्यथा ( बड़ी हरडे ) हरडे अरिष्टा  
वात्यपुष्पी-विश्वक्सेन कांता ये दश  
प्रजा ( संतान ) के स्थापन होतेहैं ॥ ७३ ॥

अमृताभयाधात्रीमुक्ताश्वेताजीव  
न्त्यतिरसामण्डूकपर्णीस्थिरापुन  
र्नवाइतिदशेमानिवयस्थापनानि  
भवन्ति ॥ ७४ ॥

इति पञ्चकः कषायवर्गः ।

गिलोय हरडे आंवला मुक्ता श्वेता  
जीवन्ती अतिरसा मंडूकपर्णी स्थिरा पुन-  
र्नवा-( विषखपरा ) ये दश अवस्थाके  
स्थापन होतेहैं ॥ ७४ ॥

यह पांच कषायोंका वर्ग है ।

इति पञ्चकषायशतान्याभिसम  
स्यपञ्चाशन्महाकषायाः महता  
ञ्चकषायाणां लक्षणोदाहरणार्थं  
व्याख्याताभवन्ति ॥ ७५ ॥

ये पांचसौ कषायोंमेंसे संक्षेप करके  
पचास कषाय-बड़े २ कषायोंके लक्षण  
और उदाहरणके लिये वर्णन कियेहैं ॥ ७५ ॥

नहि विस्तरस्यप्रमाणमस्ति न चाप्य  
तिसंक्षेपोऽल्पबुद्धीनां सामर्थ्यायो



पकल्पतेतस्मादनतिसंक्षेपेणानति  
विस्तरेणचोद्दिष्टाः। एतावन्तोह्यल्प  
बुद्धीनांव्यवहारायबुद्धिमताश्च  
स्वालक्षण्यानुमानयुक्तिकुगला  
नामनुक्तार्थज्ञानायेति ॥ ७६ ॥

क्योंकि विस्तारका कोई प्रमाण नहीं है—और अत्यंत संक्षेपभी अल्प बुद्धियोंके सामर्थ्यके लिये योग्य है तिससे अति संक्षेपके और अति विस्तारके बिना वर्णन किंयहैं—इतनेही कषाय अल्पबुद्धियोंके व्यवहारके लिये और बुद्धिमानोंके अनुक्त अर्थके ज्ञानार्थ जो सुंदर लक्षण अनुमान और युक्तिमें कुशलहैं—बहुतहैं—इति ७६

एदंवादिनंभगवन्तमात्रेयमग्निवे  
शउवाच । नैतानिभगवन्पञ्चक  
षायशतानिपूर्यन्ते । तानितानि  
ह्येवाङ्गानिसंप्लवन्तेतेपुतेपुमहाक  
षायेष्विति ॥ ७७ ॥

इस प्रकार कहते हुये भगवान् आत्रेयको अग्निवेश बोले कि, हे भगवन्! इतनेसे पांचसौ कषायोंकी पूर्ति नहीं हो सकती क्योंकि वेही २ अंग तिन २ महा कषायोंमें मिलतेहैं अर्थात् वेही औषधि अदल बदलकर आतीहै ॥ ७७ ॥

तमुवाचभगवानात्रेयः । नैतदेवं  
बुद्धिमताद्रष्टव्यमग्निवेश । एकोऽ  
पिह्यनेकांसंज्ञालभतेकार्प्यान्तरा  
णिकुर्वन् । तद्यथापुरुषोबहूनां

कर्मणांकरणेसमर्थोभवति । स  
यद्यत्कर्मकरोतितस्यतस्यकर्मणः  
कर्तृकरणकार्प्यसंप्रयुक्तंतत्तद्वौ  
णंनामविशेषंप्राप्नोति । तद्वदौष  
धद्रव्यमपिद्रष्टव्यम् । यदिचैक  
मेवकिञ्चिद्रव्यमासादयामस्त  
थागुणयुक्तंयत्सर्वकर्मणांकरणे  
समर्थस्यात्कस्ततोऽन्यदिच्छेदु  
पधारयितुमुपदेष्टुंवाशिष्येभ्यइति ।

उस अग्निवेशके प्रति भगवान् आत्रेय बोले—कि हे अग्निवेश ! बुद्धिमान्को यह इस प्रकार न देखना चाहिये क्योंकि भिन्न २ कार्योंको करता हुआ एकभी मनुष्य अनेक संज्ञाओंको प्राप्त होताहै सो ऐसेहैं कि, मनुष्य बहुत कर्मोंके करनेमें समर्थ होताहै वह जो २ कर्म करताहै तिस २ कर्मके कर्ता करण कार्यके योगसे तिस तिस गौण नाम विशेषकी जैसे प्राप्त होताहै तिसी प्रकार औषधकोभी देखना—यदि एकही किसी द्रव्यको ग्रहण करले जो सब कार्य करनेके गुणोंसे युक्त होय तो कौन अन्य द्रव्यके धारण और उप-देश करनेके लिये शिष्योंके अर्थ इच्छा करताअर्थात् ऐसा एक कोई द्रव्य नहीं ७८

तत्र श्लोकाः ।

यतोयावन्तियैर्द्रव्यैर्विरेचनशता  
निषट् । उक्तानिसंग्रहेणेहतथैवै  
षांषडाश्रयाः ॥ ७९ ॥

उसमें ये श्लोकहैं—जिससे जितने छःसौ विरेचन जिन द्रव्योंसे संग्रह करके इस ग्रंथमें कहे हैं तिससेही इनके छः आश्रयहैं ॥ ७९ ॥

रसालवणवर्जाश्चकषायाइतिसंज्ञिताः । तस्मात्पञ्चविधायोनिःकषायाणामुदाहृता ॥ ८० ॥

वे लवणको छोड़कर कषाय कहाँतैं तिससे कषायोंकी योनि पाँच प्रकारकी कही है ॥ ८० ॥

तथाकल्पनमप्येषामुक्तं पञ्चविधं पुनः । महताञ्चकषायाणां पञ्चाशत्परिकीर्तिताः ॥ ८१ ॥

तैसेही इनकी कल्पनाभी पाँच प्रकारकी कहीहै और बडे २ कषाय पचास कहेहैं ॥ ८१ ॥

पञ्चचापिकषायाणां शतान्युक्ता निभागशः । लक्षणार्थप्रमाणं हि विस्तरस्य न विद्यते ॥ ८२ ॥

और भागसे पाँचसौ कषायभी लक्षणके लिये कहे हैं और विस्तारका कोई प्रमाण नहीं है ॥ ८२ ॥

न चालमति संक्षेपः सामर्थ्यायोपकल्प्यते । अल्पबुद्धेरयं तस्मान्ना तिसंक्षेपविस्तरः ॥ ८३ ॥

और अत्यंत संक्षेपभी सामर्थ्यके लिये योग्य नहींहै तिससे अल्पबुद्धिकेलिये न अति संक्षेपहै न अति विस्तारहै ॥ ८३ ॥

मन्दानां व्यवहाराय बुधानां बुद्धि वृद्धये । पञ्चाशत्कोह्ययं वर्गः कषायाणामुदाहृतः ॥ ८४ ॥

और यह मंदोंके व्यवहारार्थ और बुद्धिमानोंकी बुद्धि बढ़ानेके लिये है—यह पचास कषायोंका वर्ग कहाँहै ॥ ८४ ॥

तेषां कर्मसु बाह्येऽप्युपयोगमाभ्यन्तरे पुनः । संयोगं च वियोगञ्च यो वेद स भिषग्वरः ॥ ८५ ॥

भेषजचतुष्कपट्टविरेचनशताश्रित्योनाम चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥ इति भेषजचतुष्कः ॥

तिनके बाह्य और भीतरके कर्मोंका योग और संयोग और वियोगको जो जानताहै वह वैद्योंमें श्रेष्ठ है ॥ ८५ ॥ यह भेषजचतुष्क पट्टविरेचन शताश्रित्य नामका चौथा अध्याय समाप्त भया ॥ ४ ॥

इति भेषजचतुष्कः ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातो मात्राश्रित्यमध्यायं

व्याख्यास्यामः ।

अब मात्राश्रित्य अध्यायका वर्णन करतेहैं ।

इति हस्माद् भगवानात्रेयः ।

यह भगवान् आत्रेयजीने कहाहै ।

मात्राशीस्यात् । आहारमात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी । यावद्व्याशानमशितमनुपहत्य प्रकृतिं तथा कालं जराङ्गच्छति तावदस्य मात्राप्रमाणं

वेदितव्यं भवति ॥ तत्त्वशालिपाष्टि  
कमुद्रलावकपिञ्जलैणशशशरभश  
म्बरादीन्याहारद्रव्याणि प्रकृतिल  
घून्यपि मात्रापेक्षीणि भवन्ति ॥  
तथापि षष्ठेक्षुक्षीरविकृतिमाषानूपौ  
दकपिशितादीन्याहारद्रव्याणि प्र  
कृतिगुरुण्यपि मात्रामेवापेक्षन्ते ॥  
न चैवमुक्तेद्रव्ये गुरुलाघवमकारणं  
मन्यते । लघूनि हि द्रव्याणि वाय्व  
ग्निगुणबहुलानि भवन्ति । पृथिवी  
सोमगुणबहुलानीतराणि । तस्मा  
त्स्वगुणादपिलघून्यग्निसन्धुक्षण  
स्वभावान्यल्पदोषाणि चोच्यन्ते  
अपि सौहित्योपयुक्तानि गुरुणि पुन  
र्नाग्निसन्धुक्षणस्वभावान्यसामा  
न्यादतश्चातिमात्रं दोषवन्ति सौहि  
त्योपयुक्तानि अन्यत्र व्यायामाग्नि  
बलात् । सैषा भवत्यग्निबलापेक्षि  
णी मात्रानचनापक्षतेद्रव्यम् ।  
द्रव्यापेक्षया च त्रिभागसौहित्यम  
र्द्धसौहित्यं वा गुरुणामुपदिश्यते ।  
लघूनामपि च नाति सौहित्यमग्रेयु  
क्त्यर्थम् । मात्रावद्व्यशनमशि  
तमनुपहत्य प्रकृतिबलवर्णमुखायु  
षायोजयत्युपयोक्तारमनुष्यामिति

मात्रासे औषधका भक्षण करै-और  
आहारकी मात्रा अग्नि और बलकी अपे-  
क्षासे होती है-इस मनुष्यका जितना भक्षण  
किया हुआ भोजन प्रकृति विना बिगाड़े  
अपने समयपर पचजाय उतनाही इसकी  
मात्राका प्रमाण जानना चाहिये-उनमें  
तंडुल साठी चावल मूंग लाव कपिंजल  
एण शश शरभ शंवर आदि जो स्वभा-  
वसे लघुभी द्रव्य हैं वे भी मात्राकी अपेक्षा  
करते हैं-तैसेही पीठी इक्षु दूधके विकार  
उड़द सजल देशका जल-मांस आदि  
जो स्वभावसे गुरुभी हैं तोभी मात्राकीही  
अपेक्षा करते हैं इस प्रकार पूर्वोक्त द्रव्यमें  
गुरुता और लघुता विना कारण नहीं मानी  
है-लघुद्रव्योंमें वायु और अग्निका अधिक  
गुण होता है और गुरु पदार्थोंमें पृथिवी  
और सोमका गुण अधिक होता है-तिससे  
अपने गुणसेभी लघुद्रव्योंका अग्निके प्रज्व-  
लित करनेका स्वभाव कहाता है और  
अत्यंत हितके उपयोगीभी गुरु द्रव्योंका  
अग्नि प्रज्वलित करनेका स्वभाव नहीं  
होता । असामान्य रीतिसे मात्रासे अधिक  
भक्षण करने वालेको सौहित्यसे उपयुक्तभी  
दोषवाले हो जाते हैं यदि अग्निका बल  
और व्यायाम न हो सो यह अग्नि और  
बलकी अपेक्षावाली मात्रा द्रव्यकी  
अपेक्षा न करै यह बात नहीं है-  
द्रव्यकी अपेक्षासे गुरुपदार्थोंका त्रिभाग  
वा आधा सौहित्यका उपदेश किया है-  
लघु द्रव्योंकोभी अग्निकी युक्तिके लिये  
अत्यंत हित नहीं जानना-क्योंकि मात्रासे

भक्षण किया भोजन प्रकृतिको विना  
बिगाड़े भोजन कर्ताके बल वर्ण सुख  
अवस्था इनको बढ़ाताहै ॥ १ ॥

भवन्तिचात्र॥ गुरुपिष्टमयंतस्मा  
त्तण्डुलान्पृथुकानपि। नजातुभु  
क्तवान्खादेन्मात्रांखादेद्बुभुक्षि  
तः ॥ २ ॥

इसमें ये श्लोकभीहैं कि मोटे चावलों-  
काभी चूर्ण जिससे गरिष्ठहै तिससे भोजन  
किये पीछे इसको न खाय और जो भूखाहै  
वह मात्रासे खाय ॥ २ ॥

बल्लूरंशुष्कशाकानिशालूकानिवि  
सानिच । नाभ्यस्येद्रौरवान्मांसं  
कृशंनैवोपयोजयेत् ॥ ३ ॥

मांस सूकेशाक शालूक विस इनको  
नखाय-गुरुहोनेसे मांसका अभ्यास न करे  
और न कृश मनुष्यको मांसदे ॥ ३ ॥

कूर्चिकांश्चकिलाटांश्चशौकरंगव्य  
माहिषे । मत्स्यान्दधिचमापां  
श्चयवकांश्चनशीलयेत् ॥ ४ ॥

कूर्चिक किलाट ( फटादूध ) सूकर  
गौ भैंस इनके मांस मत्स्य दधि उड़द जौ  
इनकोभी विशेषकर न खाय ॥ ४ ॥

पष्टिकान्शालिमुद्गांश्चसैन्धवाम  
लकेयवान् । आन्तरीक्षंपयःस  
र्पिर्जाङ्गलंमधुचाभ्यसेत् ॥ ५ ॥

साठीचावल तंडुल मूंग सीधानूण

आंवले जौ आकाश ( वर्षा ) काजल  
धी और जंगलका सहत इनका अभ्यास  
करै ॥ ५ ॥

तच्चनित्यंप्रयुज्जीतस्वास्थ्ययेनानु  
वर्त्तते । अजातानां विकाराणाम  
नुत्पत्तिकरश्चयत् ॥ ६ ॥

और जिस द्रव्यसे स्वस्थता बनीरहै  
उसको नित्य खा । जो शरीरमें विनाउत्पन्न  
किये विकारोंको पैदा न करे उसकोभीखा  
अतऊर्द्धशरीरस्यकार्यमभ्यञ्ज  
नादिकम् । स्वस्थवृत्तमभिप्रेत्य  
गुणतःसंप्रवक्ष्यते ॥ ७ ॥

इससे आगे शरीरके अभ्यंजन आदि-  
का कार्य स्वस्थताके वृत्तांतको जानकर  
गुणसे वर्णन करतेहैं ॥ ७ ॥

सौवीरमञ्जनंनित्यंहितमक्ष्णोःप्र  
योजयेत् । पञ्चरात्रेऽष्टरात्रेवा  
स्नावणार्थेरसाञ्जनम् ॥ ८ ॥

प्रतिदिन हितकारी चंदनका अंजन  
नेत्रोंमें लगावै पांचरात्रमें वा अष्टरात्रमें  
जल निकासनेके लिये रसका अंजन जो  
लगावै ॥ ८ ॥

नहिनेत्रामयंतस्यविशेषात्श्लेष्म  
तोभयम् । दिवातत्रप्रयोक्तव्यं  
नेत्रयोस्तीक्ष्णमञ्जनम् ॥ ९ ॥

उसको विशेषकर कफसे भय और  
नेत्ररोग नहीं होता और तीक्ष्ण अंजनको  
नेत्रोंमें दिनमें लगावै ॥ ९ ॥

विरेकदुर्बलादृष्टिरादित्यं प्राप्य  
सीदति । तस्मात्स्त्राव्यं निशाया  
न्तुध्रुवमञ्जनमिष्यते ॥ १० ॥

विरेचनसे दुर्बल हुई दृष्टि मूर्च्छकी  
प्राप्ति होनेपर नष्ट होजातीहै तिससे जल-  
निकासनेका अंजन रात्रिके विषे विशेष-  
कर इष्टहै ॥ १० ॥

ततः श्लेष्महरं कर्म हितं दृष्टेः प्रसाद  
नम् ॥ ११ ॥

फिर कफहारक कर्म दृष्टिकी प्रसन्न-  
ताका कर्ता हितहै ॥ ११ ॥

यथाहिकणकादीनां मलिनां विवि  
धात्मनाम् । धौतानां निर्मलाशु  
द्धिस्तैलचेलकचादिभिः ॥ १२ ॥

जैसे अनेक प्रकारके मलीन कणक  
आदिजो धोयेहैं उनकी निर्मल शुद्धि  
तेल वस्त्र केश आदिसे होती है ॥ १२ ॥

एवेनेत्रेषु मर्त्यानामञ्जनाश्च्योतना  
दिभिः । दृष्टिर्निराकुलाभातिनि  
र्मलेन भसीन्दुवत् ॥ १३ ॥

इस प्रकार मनुष्योंके नेत्र आदिमें  
अंजन और धोने आदिसे ऐसी निराकुल  
दृष्टि प्रकाशित होतीहै जैसे निर्मल आका-  
शमें चंद्रमा होताहै ॥ १३ ॥

हरेणुकां प्रियंगुश्च पृथ्वीकां केशरं  
नखम् । ह्रीवेरं चन्दनं पत्रं त्वगे  
लोशीरपद्मकम् ॥ १४ ॥

हरेणु अर्थात् महदी वा निर्गुडीके

बीज-प्रियंगु पृथ्वीक ( इलायची ) केशर  
नख हाऊवेर चंदन पत्रज दालचिनी  
इलायची खस पन्नाख ॥ १४ ॥

ध्यामकं मधुकं मांसी गुग्गुलुं वगुरुशं  
करम् । न्यग्रोधो दुम्बराश्च त्वष्टु  
क्षलोध्रत्वचः शुभाः ॥ १५ ॥

ध्यामक ( रोहिससोधिया ) महुआ  
मांसी गुग्गुलु अगर मिसरी वड गूलर  
पीपल पीलखन लोध इनकी त्वचा नेत्रोंके  
अंजनमें हितहैं ॥ १५ ॥

वन्यं स्वर्जरसं मुस्तं शैलेयं कमलो  
त्पले । श्रीवेष्टकं शल्लकीश्च शुकवर्ह  
मथापि च ॥ १६ ॥

वनकी खजूरकारस मोथा चंदन  
कमल उत्पल श्रीवेष्टक ( सरलका गोंद )  
शल्लकी ( शालई ) तोतेका पंख ॥ १६ ॥

पिष्ट्वा लिम्पेच्छिरपिकां तान् वार्त्तिय  
वसन्निभाम् । अंगुष्ठसंमितां कु  
र्यादष्टांगुलसमां भिषक् ॥ १७ ॥

इनको पीस जौके समान बत्ती बना-  
कर लेप करै वह बत्ती अंगुल भरकी हो वा  
आठ अंगुलकी हो ऐसी वैद्य बनावै ॥ १७ ॥

शुष्कां विगर्भां तान् वार्त्तिधूमनेत्रार्पितां  
नरः । स्नेहाक्ता मयि संपुष्टां पिवे  
त्प्रायोगिकीं सुखाम् ॥ १८ ॥

गर्भ रहित सूकी उस बत्तीको धूमको  
मनुष्य नेत्रोंमें लगावै और अग्रिमें फूंक-  
कर घी मिलाकर प्रयोगसे पीवै तो सुख-  
कारी होतीहै ॥ १८ ॥

वसाघृतमधूच्छिष्टैर्युक्तियुक्तैर्वरौ  
पथैः । वर्त्तिमधुरकैः कृत्वा सैहि  
कीधूममाचरेत् ॥ १९ ॥

वसाका धी मोम और युक्तिसे युक्त  
श्रेष्ठ मधुर औषध इनकी वर्त्ती बनाकर  
घृत मिलाकर धूम ले ॥ १९ ॥

श्वेताज्योतिष्मतीचैवहरितालंम  
नःशिला । गन्धाश्चागुरुपत्राद्या  
धूमोमृद्ध्विरेचनम् ॥ २० ॥

श्वेता(फोडी) ज्योतिष्मती (मालकां-  
नगी) हडताल मनसिल गंधा ( चंपाकी  
कली ) अगर पत्रज इनका धूम मस्तकके  
विरेचनको करताहै ॥ २० ॥

गौरवंशिरसःशूलंपीनसार्द्धावभेद  
कौ । कर्णाक्षिशूलंकासश्चह्रिका  
श्वासौगलग्रहः ॥ २१ ॥

शिरका भारापन पीनस आधे शिरका  
फूटना कान और नेत्रोंका शूल कास  
हुचकी श्वास गलग्रह ॥ २१ ॥

दन्तदौर्बल्यमास्त्रावःश्रोत्रघ्राणा  
क्षिदोषजः । पूतिघ्राणास्यगन्ध  
श्चदन्तशूलभरीचकः ॥ २२ ॥

दांतोंका दौर्बल्य कान नेत्र नाक इनमें  
से जलका जाना नासिकाकी दुर्गंध  
मुखकी दुर्गंध दांतोंका शूल अरुचि २२

हनुमन्याग्रहःकण्डूःक्रिमयःपाण्डु  
तामुखे । श्लेष्मप्रसेकोवैस्वर्यग  
लशुण्डचपजिह्विका ॥ २३ ॥

ढोडीका जकडना खुजली क्रिमि मुखकी  
पांडुता कफका प्रसेक ( वृद्धि ) स्वरका  
विगडना गलगंड जिह्वाका जकडना २३

खालित्यं पिञ्जरत्वचकेशानांपत  
नन्तथा । क्षवथुश्चातितन्द्राचबु  
द्धेर्मोहोऽतिनिद्रता ॥ २४ ॥

गंजापन पिंजरता केशोंका पड़ना  
क्षवथु अत्यंत तंद्रा बुद्धिका मोह अत्यंत  
निद्रा ॥ २४ ॥

धूमपानात्प्रशाम्यन्तिबलंभवति  
चाधिकम् । शिरोरुहकपालाना  
मिन्द्रियाणांस्वरस्यच ॥ २५ ॥

ये सब पूर्वोक्त औषधियोंके धूमपानसे  
शांत होतेहैं और अधिक बल होताहै केश  
कपाल इंद्रिय स्वर इनमें बल होताहै २५॥

नचवातकफात्मानोबलिनोऽप्यु  
र्ध्वजत्रुजाः । धूमरक्तकपालस्य  
व्याधयःस्युःशिरोगताः ॥ २६ ॥

और वात, कफ प्रकृतिके मनुष्यकेभी  
बलवान् होनेसे जत्रुके ऊपरके विकार  
शिरमें विकार इससे नहीं होते कि कपाल  
धूमसे रक्त होजाताहै ॥ २६ ॥

प्रयोगपानेतस्याष्टौकालाः तस्य  
रिकीर्त्तिताः । वातश्लेष्मसमुत्  
केशःकालेष्वेपुहिलक्ष्यते ॥ २७ ॥

उसके पीनेके प्रयोगमें आठ काल  
कहेहैं क्यों कि वात कफका क्लेश इन्ही  
कालोंमें दीखताहै ॥ २७ ॥

स्नात्वाभुक्त्वासमुल्लिख्यक्षुत्त्वाद  
न्तान् विधृष्य च । नावनाञ्जननिद्रा  
न्तेचात्मवान् धूमपो भवेत् ॥ २८ ॥

स्नान भोजन लिखना छीकना दांतोंको  
घिसना दौडना अंजन निद्रा इनके अंतमें  
शुद्धिमान् मनुष्य धूम्र पानकरै ॥ २८ ॥

तथा वातकफात्मानो न भवन्त्यूर्ध्व  
जत्रुजाः । रोगास्तस्य तु पेयाः स्यु  
रापानास्त्रिस्त्रयस्त्रयः ॥ २९ ॥

तो वात कफ प्रकृतिके मनुष्यको  
जत्रुके ऊपरके रोग नहीं होते  
और पीनेसे तीनों वस्ति पीनेके योग्य  
होजाती है ॥ २९ ॥

परं द्विकालपायी स्यादह्नः कालेषु  
बुद्धिमान् । प्रयोगे स्नेहिके त्वेवं  
विरेच्यं त्रिश्चतुःपिवेत् ॥ ३० ॥

और बुद्धिमान् मनुष्य दिनके कालोंमें  
दोसमयमें धूम्रपान करै और एवंवा-  
रकी विधि घृत आदि पीनेके प्रयोगमें है  
और विरेचन औषधियोंको तो तीन या  
चारवार पीवै ॥ ३० ॥

हृत्कण्ठेन्द्रियसंशुद्धिर्लघुत्वं शिर  
सःशमः । यथेरितानां दोषाणां स  
म्यक् पीतस्य लक्षणम् ॥ ३१ ॥

इससे हृदय कंठ इंद्रिय इनकी शुद्धि  
और शिरकी लघुता और उन दोषोंकी  
शांति होती है जो पहिले कहे हैं यह  
अच्छे धूम्रपानका लक्षण है ॥ ३१ ॥

वाधिर्यमान् धूम्रकृत्वं रक्तपित्तं शि  
रोभ्रमम् । अकाले चातिपीतश्च  
धूमः कुर्व्यादुपद्रवान् ॥ ३२ ॥

और बिना समय अत्यंत जो धूम्र  
पान करता है उसको ये उपद्रव धूम्रपान  
करता है कि वधिरता मंदता मूकता रक्त  
पित्त शिरमें भ्रम ॥ ३२ ॥

तत्रेष्टं सर्पिषः पानं नावनाञ्जनतर्प  
णम् । स्नेहिकं धूम्रजे दोषे वायुः पि  
तानुगो यदि ॥ ३३ ॥

उनमें घीका पीना नावन अंजन  
तर्पण ये इष्ट हैं ( करने ) स्नेहके धूम्रसे  
पैदा हुये दोषमें यदि वायुपित्तके अनु-  
कूल होजाय तो ॥ ३३ ॥

शीतन्तुरक्तपित्ते स्याच्छ्लेष्मपि  
त्ते विरुक्षणम् । परन्त्वतः प्रवक्ष्या  
मिधूमोयेषां विगर्हितः ॥ ३४ ॥

रक्तपित्तमें शीत हो जाता है और श्लेष्म  
पित्तमें विरुक्षण हो जाता है—इससे आगे  
उनका वर्णन करते हैं जिनको धूम्रपान  
निंदित है ॥ ३४ ॥

न विरिक्तः पिवेद्धूमनकृते वस्तिक  
र्मणि । न रक्तीनविषेणार्त्तोन शो  
चीनचर्गभिणी ॥ ३५ ॥

कि विरेचन और वस्तिकर्म किये  
पीछे धूम्रकोन पीवें और रक्तका विकारी—  
विषसे दुःखी—शोकवान् गर्भवती स्त्री—ये  
धूम्रपान न करै ॥ ३५ ॥

नश्रमेनमदेनामेनपित्तेनप्रजागरे ।  
नमूच्छाभ्रमतृष्णासुनक्षीणेनापि  
चक्षते ॥ ३६ ॥

और श्रम-मद-आमपित्त जागरण  
मूच्छाभ्रम तृष्णा-क्षीणता-घाव ॥ ३६ ॥  
नमद्यदुग्धपीत्वाचनस्नेहंनचमा  
क्षिकम् । धूमनभुक्त्वादध्वाचनरु  
क्षःक्रुद्धएवच ॥ ३७ ॥

मदिरा दूधइनकी पीकर स्नेह और  
सहतकी पीकर और दधिसे भोजन करके-  
रुक्षता और क्रोधमें ॥ ३७ ॥

नतालुशोषेतिमिरेशिरस्यभिहतेन  
च । नशंखकेनरोहिण्यांनमेहेनम  
दात्यये ॥ ३८ ॥

तालुके शोषमें तिमिरमें शिरकी  
चाटमें शंखक रोगमें रोहिणी रोगमें प्रमे-  
हमें मदात्ययमें ॥ ३८ ॥

एषुधूममकालेषुमोहात्पिबतियो  
नरः । रोगास्तस्यप्रवर्द्धन्तेदारुणा  
धूमविभ्रमात् ॥ ३९ ॥

इन निषिद्ध कालोंमें जो मनुष्य मोहसे  
धूमपान करताहै उसके धूमके विभ्रमसे  
दारुण रोग बढ़तेहैं ॥ ३९ ॥

धूमयोग्यःपिबेदोपेशिरोघ्राणाक्षि  
संश्रये । घ्राणेनास्येनकण्ठस्थेमु  
खेनघ्राणपोवमत्ते ॥ ४० ॥

धूम योग्य मनुष्य शिर घ्राण नेत्रके

दोषोंमें घ्राण और मुखसे धूमपान करै  
कंठके दोषमें घ्राणसे पीकर मुखसे वमन  
करै ॥ ४० ॥

आस्येनधूमकवलान्पिबन्घ्राणे  
ननोद्वमेत् । प्रतिलोमंगतोह्याशु  
धूमोहिंस्याद्धिचक्षुषी ॥ ४१ ॥

मुखसे धूमके कवलोंको पीवै तो घ्राणसे  
वमन न करै-क्योंकि प्रतिलोम रीतिसे  
गया हुआ धूम शीघ्रही नेत्रोंको नष्ट  
करताहै ॥ ४१ ॥

ऋज्वङ्गचक्षुस्तच्चैताःसूपपिष्टस्त्रि  
पर्य्ययम् । पिबेच्छिद्रं पिधायैकं  
नासयाधूममात्मवान् ॥ ४२ ॥

कोमलहै अंग और नेत्र जिसके धूममें  
है मन जिसका भली प्रकारसे स्थित  
ऐसा बुद्धिमान् मनुष्य नासिकाके एक  
छिद्रको रोककर नाकसे धूमका पान  
तीनवार करै ॥ ४२ ॥

चतुर्विंशतिकेनेत्रंस्वंगुलीभिर्विरेच  
ने। द्वात्रिंशदंगुलंस्नेहेप्रयोगेऽध्यर्द्ध  
मिष्यते ॥ ४३ ॥

अपनी चौबीस अंगुलियोंका नेत्र  
( नेचा ) विरेचनमें होताहै स्नेहमें बत्तीस  
अंगुलका अन्य प्रयोगोंमें आधा इष्टहै ४३

ऋजुत्रिकोषाफलितंकोलास्थ्यग्र  
प्रमाणितम् । बस्तिनेत्रसमद्रव्यं  
धूमनेत्रं प्रशस्यते ॥ ४४ ॥

कोमल तीन कोष्ठ ( पर्वका ) फलका  
कोलेके अस्थिके अग्रभागकी तुल्य-बस्तिके



और नेत्रके समान द्रव्यका धूम नेत्र श्रेष्ठ होताहै ॥ ४४ ॥

दूराद्विनिर्गतःपर्वच्छिन्नोनाडीतनुः  
कृतः । नेन्द्रियंवाधतेधूमोमात्रा  
कालनिषेवितः ॥ ४५ ॥

दूरसे निकासी हुआ पर्वोंमें छिन्न नाडीमें सूक्ष्म किया धूम मात्राके कालमें पीनेसे इंद्रियोंकी बाधा नहीं करता ॥ ४५ ॥

यदाचोरश्चकण्ठश्चशिरश्चलघुतां  
ब्रजेत् । कफश्चतनुतांप्राप्तःसुपी  
तंधूममादिशेत् ॥ ४६ ॥

जब कंठ उर शिर ये लघु हो जाय और कफभी अल्प हो जाय उस समय धूम पानको उत्तमता कहै ॥ ४६ ॥

अविशुद्धःस्वरोयस्यकण्ठश्चसक  
फोभवेत् । स्तिमितोमस्तकश्चैव  
मपीतंधूममादिशेत् ॥ ४७ ॥

जिसका स्वर अत्यंत शुद्ध हो और कंठमें कफ हो मस्तक स्तिमित ( रुका ) होय तो उस धूमको अपीत ( निंदित ) कहै ॥ ४७ ॥

तालुमूर्द्धाचकण्ठश्चशुष्यतेपरित  
प्यते । तृप्यतेमुह्यतेजन्तूरक्तश्च  
स्रवतेऽधिकम् ॥ ४८ ॥

तालु-मूर्द्धा-कंठ ये शुष्क हों और सूखते हों तृषा मोह हों और अधिकरु-धिर जिस मनुष्यके जाताहै ॥ ४८ ॥

शिरश्चभ्रमतेऽत्यर्थमूर्च्छाचास्यो

पजायते । इन्द्रियाण्युपतप्यन्ते  
धूमेऽत्यर्थनिषेविते ॥ ४९ ॥

शिरमें अत्यंत भ्रम हो और मूर्च्छा उस मनुष्यको होजातीहै-इंद्रियोंमें दुःख होताहै इतने उपद्रव धूमके अत्यंत सेवनसे होतेहैं ॥ ४९ ॥

वर्त्मवर्षेऽणुतैलञ्चकालेपुत्रिपुना  
चरेत् । प्रावृट्शरद्वसन्तेपुगतमे  
घेनभस्तले ॥ ५० ॥

मार्ग वर्षा अल्पतैल इनका प्रावृट् शरद्वसंत इन तीन कालोंमें सेवन न करै और जब आकाशमें मेघ न रहें ५०

नस्यकर्मयथाकालंयोयथोक्तंनि  
षेवते । नतस्यचक्षुर्नघ्राणंनश्रोत्र  
मुपहन्यते ॥ ५१ ॥

उस समय जो यथाकाल नस्यकर्मको सेवताहै उसके नेत्र घ्राण श्रोत्र ये नष्ट नहीं होते ॥ ५१ ॥

नस्युःश्वेतानकपिलाःकेशाःश्म  
श्रूणिवापुनः । नचकेशाःप्रलुब्ध  
न्तेवर्द्धन्तेचविशेषतः ॥ ५२ ॥

और उसके केश और श्मश्रु श्वेत और पीले नहीं होते और न केश गिरतेहैं और विशेषकर बढतेहैं ॥ ५२ ॥

मन्यास्तम्भःशिरःशूलमर्द्धितंहनु  
संग्रहः । पीनसार्द्धाविभेदौचशिरः  
कम्पश्च शाम्यति ॥ ५३ ॥

मन्या शिराकास्तंभन शिरका शूल  
मर्दित हनु ( ठोडी ) का संग्रह पीनस  
आधे शिरका फूटना शिरका कंपये शांत  
होते हैं ॥ ५३ ॥

शिराःशिरःकपालानांसन्धयःस्ना  
युकण्डराः । नावनप्रीणिताश्वा  
स्यलभन्तेऽभ्यधिकं बलम् ॥ ५४ ॥

शिरा और शिरके कपालोंकी संधि  
स्नायुमें खुजली ये सब नावनसे तृप्त  
हुये अधिक बलको प्राप्त होतेहैं ॥ ५४ ॥

मुखं प्रसन्नोपचितं स्वरः स्निग्धः स्थि  
रोमहान् । सर्वेन्द्रियाणां वैमल्यं  
बलं भवति चाधिकम् ॥ ५५ ॥

मुख प्रसन्न होताहै स्वर स्निग्ध  
और अधिक स्थिर होताहै सब इंद्रिय  
निर्मल होतीहैं और अधिक बल होताहै ॥ ५५ ॥

न चास्य रोगाः सहसा प्रभवन्त्यूर्ध्व  
जत्रुजाः । जीर्णतश्चोत्तमाङ्गे व  
जरानलभते बलम् ॥ ५६ ॥

और उस मनुष्यके जत्रुके ऊपरके  
रोग सहसा नहीं होते और जीर्ण समयमें  
उत्तम अंग ( मूर्द्धा ) में जरा बल नहीं  
करती ॥ ५६ ॥

चन्दनागुरुणीपत्रं दार्वी त्वक्मधु  
कंबलाम् । प्रपौण्डरीकं सूक्ष्मैलां  
विडङ्गं बिल्वमुत्पलम् ॥ ५७ ॥

चंदन अगर पत्रज दारुहलदीकी

त्वचा सहत बला कमल छोटी इलायची  
वायविडंग बेल उत्पल ॥ ५७ ॥

हीवेरमभयं वन्यं त्वङ्मुस्तं सारि  
वांस्थिराम् । सुराहं पृश्निपर्णीश्च  
जीवन्तीश्च शतावरीम् ॥ ५८ ॥

हाऊवेर वनकी हरडे मोथा सारिवा  
स्थिरा ( शालपर्णी ) देवदारु पृश्निपर्णी  
पिठवन जीवन्ती ( हरडे ) शतावर ॥ ५८ ॥

हरेणुं वृहतीं व्याघ्रीं सुरभीं पद्मकेश  
रम् । विपाचयेच्छतगुणे माहेन्द्रे  
विमलेऽम्भासि ॥ ५९ ॥

हरेणु मोथा कटेहली व्याघ्री ( बड़ी कटे  
हली ) सुरभी ( चंपा ) पद्मकेशर इन  
सबको तेलसे सौगुने वर्षाके निर्मल जलमें  
पकावै ॥ ५९ ॥

तैलादशगुणं शेषकपायमवतारये  
त् । तेन तैलं कपायेण दशकृत्वो वि  
पाचयेत् ॥ ६० ॥

तेलसे दश गुणे शेषकपायको उता-  
रले उस कषायमें दशवार तेलको  
पकावै ॥ ६० ॥

अथास्य दशमेपाके समांशं छागलं  
पयः । दद्यादेपो नु तैलस्य नावनी  
यस्य संविधिः ॥ ६१ ॥

फिर इसके दशमें पाकमें बराबरका  
बकरीका दूध डालदे यह नावन ( नस्य )  
कर ने योग्य तैलकी विधिहै ॥ ६१ ॥

तस्य मात्रां प्रयुजीत तैलस्यार्द्धपलो

न्मिताम् । स्निग्धस्विन्नोत्तमाङ्ग  
स्थपिचुनानावनैस्त्रिभिः ॥ ६२ ॥

उस तैलकी मात्रा आधे पलकी  
लगावै—चिकना और स्वेद युक्त जिसका  
मस्तकहो उसके कूँचीसे तीनवार नावन  
( मलना ) से ॥ ६२ ॥

व्यहाव्यहाच्चसप्ताहमेतत्कर्मसमा  
चरेत् । निवातोष्णसमाचारोहि  
ताशीनियतेन्द्रियः ॥ ६३ ॥

इस कर्मको तीन २ दिनके अंतरसे  
सप्ताहभर करे पवन और धूपमें नमलै  
हितभोजी और जितेंद्रिय रहे ॥ ६३ ॥

तैलमेतन्निदोषत्रिभिन्द्रियाणांवल  
प्रदम् । प्रयुञ्जानोयथाकालंयथो  
क्तानश्नुतेगुणान् ॥ ६४ ॥

यह तैल त्रिदोषको नष्ट करता है  
इन्द्रियोंको बल देताहै इसको समयके  
अनुसार लगाता हुआ यथोक्त गुणोंको  
प्राप्त होताहै ॥ ६४ ॥

आपोत्थिताग्रंद्रीकालौकषायंक  
टुतिक्तकम् । भक्षयेदन्तपवनंदन्त  
मांसान्यवाधयन् ॥ ६५ ॥

चवायाहै अग्रभाग जिसका ऐसे कसैले  
कटु तिक्त दंतोंको इस प्रकार भक्षण  
करे जिससे दांतोंके मांसोंमें पीडा  
नहो ॥ ६५ ॥

निहन्तिगन्धवैरस्यंजिह्वादन्तास्य

जंमलम् । निष्कृष्यरुचिमाधत्ते  
सद्योदन्तविशोधनम् ॥ ६६ ॥

तो वह गंधकी विरसता जिह्वा दंत  
मुखका मल इनको नष्ट करताहै और निका  
सनेसे रुचि करताहै दांतोंको शीघ्र शुद्ध  
करताहै ॥ ६६ ॥

सुवर्णरूप्यताम्राणित्रपुरीतिमया  
निचजिह्वानिलेखनानिस्युरतीक्ष्णा  
न्यनृजूनच ॥ ६७ ॥

सुवर्ण चांदी तांबा त्रपु ( सीसा )  
रांग इनके जिह्वाके निलेखन ( जिम्मी )  
ऐसे बनावै जो तीक्ष्ण ( पेने ) नहों और  
नक्रजु हों ॥ ६७ ॥

जिह्वामूलगतंयच्चमलमुच्छ्रासरो  
धिच । सौगन्ध्यंभजतेतेनतस्मा  
जिह्वांविनिलिखेत् ॥ ६८ ॥

और जिह्वाके मूलमें जो ऊर्ध्व श्वासको  
रोकनेका मलहै वहभी सुगंधवान् उस  
निलेखन करनेसे होताहै ॥ ६८ ॥

करञ्जकरवीरार्कमालतीककुभा  
सनाः । शस्यन्तेदन्तपवनेयेचा  
प्येवंविधाद्रुमाः ॥ ६९ ॥

तिससे जिह्वाको निलेखनसे स्वच्छ  
करै—करंज वा—करवीर—मालती ककुभ  
( अर्जुन ) असन ( विजय सार ) ये वृक्ष दंतों  
न कानमें श्रेष्ठहैं और जो अन्य ऐसे २  
वृक्षहैं ॥ ६९ ॥

धार्यान्यास्येनवैशद्यरुचिसौग

न्धमिच्छता । जातीकटुकपूगा  
नालवङ्गस्यफलानिच ॥ ७० ॥

वेभी मुखमें सुगंधके अभिलाषीको  
धारण करने-जाती मालती कटुक सुपारी  
लौंग इनके फलोंको ॥ ७० ॥

कक्कोलकफलपत्रताम्बूलस्यशु  
भंतथा। तथाकपूरनिर्य्यासःसूक्ष्मै  
लायाःफलानिच ॥ ७१ ॥

और कंकोलके फल और तांबूलके  
पत्तोंको शुभ कहतेहैं और तैसेही कपूरका  
चूर्ण छोटी इलायचीके फल ॥ ७१ ॥

हन्वोर्वलंस्वरवलंवदनोपचयःप  
रः । स्यात्परश्चरसज्ञानमन्त्रेचरु  
चिरुत्तमा ॥ ७२ ॥

इनके मुखमें रखनेसे हनुमें और स्वरमें  
बल मुखका श्रेष्ठ उपचय (वृद्धि) होताहै  
और रसका उत्तम ज्ञान अन्नमें उत्तम  
रुचि होतीहै ॥ ७२ ॥

नचास्यकण्ठशोषःस्यान्नौष्ठयोः  
स्फुटनाद्रयम् । नचदन्ताःक्षयं  
यान्तिदृढमूलाभवन्तिच ॥ ७३ ॥

और उस मनुष्यके कंठमें शोष नहीं  
होता और न ओष्ठोंके फटनेका भय होताहै  
और न दंत नष्ट होतेहैं और मूलमें दृढ  
होतेहैं ॥ ७३ ॥

नशूलन्तेनचाम्लेनहृष्यन्तेभक्षय  
न्तिच ॥ परानपिपरान्भक्ष्यान्  
तैलगण्डूषसेवनात् ॥ ७४ ॥

और खटाईसेभी नहीं दूखतेहैं और  
दांत प्रसन्न रहतेहैं और तेलके गंडूष  
करनेसे परसे परभी ( करडे ) भक्षणके  
पदार्थोंको भक्षण करसकतेहैं ॥ ७४ ॥

नित्यंस्नेहार्द्रशिरसःशिरःशूलंनजा  
यते। नखातित्यंनपालित्यंनकेशाः  
प्रपतन्ति च ॥ ७५ ॥

और तेलसे प्रतिदिन आर्द्र है शिर  
जिसका उसके शिरमें शूल नहीं होता  
और न गंजापन न सपेद केश गिरतेहैं  
न त्वचा ढीली पडतीहै ॥ ७५ ॥

बलंशिरःकपालानांविशेषेणाभि  
वर्द्धते । दृढमूलाश्चदीर्घाश्चक  
ण्णाःकेशाभवन्तिच ॥ ७६ ॥

और शिर और कपालोंका बल विशेष  
कर बढताहै और मूलमें दृढ और काले  
केश होतेहैं ॥ ७६ ॥

इन्द्रियाणिप्रसिदन्तिसुत्वग्भवति  
चामलम् । निद्रालाभःसुखंचस्या  
न्मूर्धितैलनिषेवणात् ॥ ७७ ॥

इन्द्रिय प्रसन्न होतीहैं और निर्मल  
सुंदर त्वचा होजातीहै मस्तकमें तेलके  
लगानेसे निद्राका लाभ और सुख  
होताहै ॥ ७७ ॥

नकर्णरोगावातोत्थाःनमन्याहनु  
संग्रहः । नोच्चैःश्रुतिर्नवाधिर्यस्या  
न्नित्यंकर्णतर्पणात् ॥ ७८ ॥

और नित्य कानोंमें तेल भरनेसे वात

से कानोंके रोग मन्या (ग्रीवा पृष्ठनाडी) और हनुका संग्रह (जकड़ना) नहीं होता नीचेभी वचनको सुन सकता है वधिरता नहीं होती ॥ ७८ ॥

स्नेहाभ्यङ्गायथाकुम्भश्चर्मस्नेहविमर्दनात् । भवत्युपाङ्गादक्षश्चट्टः क्लेशसहोयथा ॥ ७९ ॥

स्नेहके अभ्यंगसे जैसे घट और स्नेहके मलनेसे जैसे चर्म और उपांगोंमें दक्ष (बलवान्) टट और क्लेशोंका सहन शील होता है तैसेही अभ्यंग करनेसे शरीर टट होजाता है और त्वचा सुंदर होजाती है ॥ ७९ ॥

तथाशरीरमभ्यङ्गादट्टसुत्वक्प्रजायते । प्रशान्तमारुतावाधक्लेशव्यायामसंग्रहम् ॥ ८० ॥

प्रशांत होनेसे पवनकी बाधा नहींहोती क्लेश और व्यायामका संग्रह होता है ८० स्पर्शनेचाधिकोवायुःस्पर्शनश्चत्वगाश्रितम् । त्वच्यश्चपरमोभ्यङ्गस्तस्मात्तंशीलयेन्नरः ॥ ८१ ॥

स्पर्शकरनेमें वायु अधिक है और स्पर्श त्वचाके आश्रय है और अभ्यंग त्वचाके लिए परम हित है तिससे मनुष्य अभ्यंगका सेवन करे ॥ ८१ ॥

नचाभिधाताभिहतंगात्तमभ्यङ्गसेविनः । विकारंभजतेऽत्यर्थंबलकर्मणिवाक्चित् ॥ ८२ ॥

अभ्यंगके कर्ता मनुष्यका गात्र आभिधातसे नष्ट नहीं होता और कदाचित्भी बलके काममें विकारको प्राप्त नहीं होता है ८२

सुस्पर्शोपचिताङ्गश्चबलवान्प्रियदर्शनः । भवत्यभ्यङ्गनित्यत्वाच्चरोऽल्पोजरएवच ॥ ८३ ॥

सुंदर स्पर्शसे बढा हुआ अंग होता है बलवान् प्रियदर्शन होता है अभ्यंगके नित्यकरनेसे मनुष्य अल्पभी जरा रहित होता है ॥ ८३ ॥

खरत्वंशुष्कतांरौक्ष्यश्रमःसुतिश्चपादयोः । सद्यएवोपशाम्यन्तिपादाभ्यङ्गनिपेवणात् ॥ ८४ ॥

खरता सूखापन रूक्षता श्रम पैरोंका सोना ये सब शीघ्रही चरणोंके अभ्यंग करनेसे नष्ट होते हैं ॥ ८४ ॥

जायतेसौकुमार्यश्चबलस्थैर्ग्यश्चपादयोः । दृष्टिःप्रसादंलभतेमारुतश्चोपशाम्यति ॥ ८५ ॥

और चरणोंमें कोमलता बल और स्थिरता होती है दृष्टि सुंदर होती है वात व्याधि शांत होती है ॥ ८५ ॥

नचस्याद्गृध्रसीवाताःपादयोःस्फुटनंच । नशिरास्नायुसङ्कोचःपादाभ्यङ्गेनपादयोः ॥ ८६ ॥

और गृध्रसी वात नहींहोती पादोंका फटना नहीं होता शिरा और स्नायुका

संकोच(सुकडना) पादोंके अभ्यंगसे नहीं होता ॥ ८६ ॥

दौर्गन्ध्यंगौरवंतन्द्रांकण्डूमलम  
रोचकम् । स्वेदंवीभत्सताहन्ति  
शरीरपरिमार्जनम् ॥ ८७ ॥

और दुर्गन्धि गुरुता तन्द्रा कण्डू(मुजली)  
मल अरुचि स्वेद वीभत्सता शरीरके  
मार्जन ( स्नान ) से नष्ट होतेहैं ॥ ८७ ॥

पवित्रंवृष्यमायुष्यंश्रमस्वेदमला  
पहम् । शरीरबलसन्धानंस्नानमो  
जस्करं परम् ॥ ८८ ॥

स्नान-पवित्र वीर्यवर्द्धक अवस्थाका  
दाता श्रम स्वेदमल इनका नाशक शरीरमें  
बलकादाता और परमबलकारीहै ॥ ८८ ॥

काम्यंयशस्यमायुष्यमलक्ष्मीघ्नं  
हर्षणम् । श्रीमत्पारिषदंशस्तंनि  
र्मलाम्बरधारणम् ॥ ८९ ॥

और निर्मल वस्त्रका धारण कामना  
योग्य यश आयुका दाता दरिद्रताका  
नाशक आनंदका जनक लक्ष्मीका दाता  
सभामें हित और श्रेष्ठहै ॥ ८९ ॥

वृष्यंसौगन्ध्यमायुष्यंकाम्यंपुष्टि  
बलप्रदम् । सौमनस्यमलक्ष्मीघ्नं  
गन्धमाल्यनिषेवणम् ॥ ९० ॥

और सुगंधिके पुष्पोंकासेवन वीर्य  
वर्द्धक सुगंधका कर्ता अवस्थाका दाता  
कामना योग्य पुष्टि बलका दाता मनकी  
प्रसन्नताका कर्ता अलक्ष्मीका नाशकहै ॥ ९० ॥

धन्यंमङ्गल्यमायुष्यंश्रीमद्वयसन  
सूदनम् । हर्षणंकाम्यमोजस्यंर  
त्नाभरणधारणम् ॥ ९१ ॥

और रत्नोंके भूषणोंका धारण-धन्य-  
मंगल अवस्था इनका दाता-लक्ष्मी कारक-  
व्यसनोका नाशक आनंदकारी कामना  
योग्य बलकारी होताहै ॥ ९१ ॥

मेध्यंस्पवित्रमायुष्यमलक्ष्मीक  
लिनाशनम् । पादयोर्मलमार्गा  
णांशौचाधानमभीक्षणशः ९२ ॥

और वारंवार पाद-मलके मार्गों के  
शौचका करना-मेध्य ( बुद्धि वर्द्धक )  
पवित्र-आयुका दाता-अलक्ष्मी कलि  
इनका नाशक होताहै ॥ ९२ ॥

पौष्टिकंवृष्यमायुष्यंशुचिरूपेवि  
राजनम् । केशश्मश्रुनखादीनां  
कल्पनंसंप्रसाधनम् ॥ ९३ ॥

और केश श्मश्रु नख आदिकी कल्पना  
और भली प्रकार साधन ( धोना आदि )  
पुष्टि वीर्य आयु इनका वर्द्धक शुद्ध  
रूपका प्रकाशक होताहै ॥ ९३ ॥

चक्षुष्यंस्पर्शनहितंपादयोर्व्यसना  
पहम् । बल्यंपराक्रमसुखंवृष्यं  
पादत्रधारणम् ॥ ९४ ॥

और पादत्राणोंका धारण नेत्रोंको  
हित स्पर्शमें हित पादोंके दुःखका  
नाशक बलकारक पराक्रममें सुखदायी  
वीर्यवर्द्धक होताहै ॥ ९४ ॥

इतिःप्रशमनंवल्यंगुप्यावरणसङ्क-  
रम् । घर्मानिलरजोम्बुघ्नछत्रधा-  
रणमुच्यते । स्वलतःसंप्रतिष्ठानं  
शत्रूणाञ्चनिषेधनम् ॥ ९५ ॥

और छत्रका धारण इति ( अति-  
वर्षाआदि ) की शांतिका कर्ता बल-  
कारक रक्षा आच्छादन इनका कर्ता—  
धूप पवन रजजल इनका नाशक होता है  
और दंडका धारण गिरतेहुयेका स्थापक  
शत्रुओंका निषेधक है ॥ ९५ ॥

अवष्टम्भनमायुष्यंभयघ्नदण्डधा-  
रणम् । नगरोनगरस्यैवरथस्यैव  
रथीसदा ॥ ९६ ॥

रोकने हारा आयुका दाता भय-  
नाशक होता है—जैसे नगरी नगरका  
रथका रथी सदा हितकारी होतेहैं ॥ ९६ ॥

स्वशरीरस्यमेधावीकृत्येस्वरहि-  
तोभवेदिति । भवतिचात्र! वृत्त्यु-  
पायान्निषेवेत येस्युर्द्ध्वमविरोधि-  
नः । शममध्ययनञ्चैवसुखमेवंस-  
मश्नुते ॥ ९७ ॥

इसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य अपने  
शरीरके कृत्यके लिये अपनी वाणीका  
हितकारी रहै इस विषयमें यह श्लोकभीहै  
कि जो धर्मके विरोधी नहों उन जीविकाके  
उपायोंको करै शांतिसे पढ़ै इसप्रकार  
सुखको भोगताहै ॥ ९७ ॥

तत्रश्लोकाः । मात्राद्रव्याणिमा

त्राञ्चसंश्रित्यगुरुलाघवम् । द्रव्या-  
णांगर्हितोभ्यासोयेपांयेपाञ्चश-  
स्यते ॥ ९८ ॥

उसमें ये श्लोकहैं कि मात्राके द्रव्य  
और मात्रा और गुरु लाघव इनके आश्र-  
यसे और जिन २ द्रव्योंका अभ्यास  
निंदितहै और जिन २ का श्रेष्ठहै ॥ ९८ ॥

अञ्जनधूमवर्त्तिश्चत्रिविधावर्त्तिक-  
ल्पना । धूमपानगुणाःकालाःपा-  
नमानंचयस्ययत् ॥ ९९ ॥

और अंजन धूम, वर्त्ति तीन प्रकारसे  
वर्त्तिकी कल्पना धूमपानके गुण और  
काल और जिस पानका जो मानहै ९९

व्यापत्तिचिह्नंभैषज्यंधूमोयेपांवि-  
गर्हितः । पेयोयथायन्मयंचनेत्रं  
यस्यचयद्विधम् ॥ १०० ॥

रोगका चिह्न औषधके योग्य, जिनका  
धूम निंदितहै और जिस प्रकारका पीने  
योग्यहै और जो पीने योग्यहैं और जिसका  
जैसा नेत्रहै ॥ १०० ॥

नस्यकर्मगुणानस्तःकार्ययच्चय-  
थायदा । भक्षयेदन्तपवनंयथाय-  
द्यद्रुणश्चयत् ॥ १०१ ॥

नस्य कर्मके गुण नस्यका जो कार्य  
जैसे और जिस समय होताहै—और  
दंतोंको जैसे भक्षण करै जिसको करै  
जिसका जो गुणहै ॥ १०१ ॥

यदर्थयानिचास्येनधार्याणिकव  
लग्रहे । तैलस्ययेगुणादृष्टाशिरस्तै  
लगुणाश्वये ॥ १०२ ॥

और जिसके लिये जो मुखमें घ्रासमें  
धारण करने-और तेलके जो गुण देखें  
शिरमें तेल लगानेके जो गुणहैं ॥ १०२ ॥

कर्णतैलतथाभ्यङ्गेपादाभ्यङ्गे  
चमार्जने । स्नानेवाससिशुद्धेचसौ  
गन्धेरत्नधारणे ॥ १०३ ॥

कानोंमें और अभ्यङ्गमें पादोंके अभ्यं-  
गमें मार्जनमें जो तेलके गुणहैं-और  
स्नान वस्त्रकी शुद्धिमें सुगंध, रत्नोंके  
धारणमें ॥ १०३ ॥ 5950

शौचेसंहरणेलोम्रांपादत्रछत्रधार  
णम् । गुणमात्राश्रितियेऽस्मिन्  
यथोक्तादण्डधारणे ॥ १०४ ॥

इतिअग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेश्लो  
कस्थानेमात्राश्रितियोनामपञ्चमोऽध्यायः ।

शौच और क्षौरमें पादत्राण और  
छत्रके धारणमें दंड धार करनेमें जो २  
गुणहैं वे सब इस मात्राश्रितिय अध्या  
यमें यथार्थ रीतिसे कहेंहैं ॥ १०४ ॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेश्लोकस्थाने  
पठितमिहिरचंद्रकृतभाषाविद्युतिसंहितेमात्रा  
श्रितियोनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातःतस्याश्रितियमध्यायं  
व्याख्यास्यामः ।

इसके अनंतर तिस मात्राके अश्रितिय  
अध्यायको कहतेहैं

तस्याश्रितियोऽध्याहारब्दलवर्ण  
श्ववर्द्धते । यावत्तुसात्म्यंविदितं  
चेष्टाहारव्यपाश्रयम् ॥ १ ॥

यह भगवान् आत्रेय कहतेहैं उस मात्रा  
का अश्रितिय ( भक्षण ) है कि जितनी  
मात्राके भक्षणसे बल और वर्ण बढ़ताहै  
जिससे प्रकृति स्वस्थ रहे और चेष्टा  
अहार आनुकूल रहें ॥ १ ॥

इहखलुपडङ्गमृतुविभागेनविधात् ।  
तदादित्यस्योदगयनमादानंचत्री  
नृत्तृन्शिशिरादीन् ग्रीष्मान्तान्  
व्यवस्येत् वर्षादीन् पुनर्हेमन्ता  
न्तान् दक्षिणायनं विसर्गञ्च ॥ २ ॥

उसमें वर्षको छः अंग ऋतुओंके वि-  
भागसे जानें वह सूर्यका उत्तरायण और  
आदान ( दक्षिणायन ) है वे शिशिर  
वर्षा ग्रीष्ममें इसे तीन ऋतु जाननी वर्षा  
से हेमन्त पर्यंतोंको दक्षिणायन और  
विसर्ग कहतेहैं ॥ २ ॥

विसर्गंचपुनर्वायवोनातिरुक्षाः प्रवा  
न्तीतरेपुनरादानेसोमश्चाव्याहृत  
बलः । शिशिराभिर्भाभिरापूरयन्  
जगदाप्याययतिश्वदतोविसर्गः  
सौम्यः ॥ ३ ॥

और विसर्गमें वायु अत्यंत रूखी नहीं  
चलती और दूसरे आदानमें चंद्रमाका



बल बना रहताहै शीतल किरणोंसे जग-  
त्को पूर्ण करता हुआ निरंतर जगत्को  
पुष्ट करताहै इससे विसर्ग सौम्यहै ॥ ३ ॥

आदानपुनराग्रेयंतावेतावर्कवायूसो  
मश्वकालस्वभावमार्गपरिगृहीताः  
कालर्तुरसदोषदेहबलनिर्वृत्तिप्रत्य  
यभूताःसमुपदिश्यन्ते ॥ ४ ॥

और आदान आग्रेयहै वेही सूर्यवायु  
और सोम कालके स्वभाव मार्गके अनु-  
ग्रहसे—काल ऋतुके रस दोष देह बल  
इनको सिद्धिके साक्षिरूप हुये कर्ता उप-  
देश किये जातेहैं ॥ ४ ॥

तत्ररविर्भाभिराददानोजगतःस्नेहंवा  
यवस्तीव्ररूक्षाश्चोपशोषयन्तः ॥  
शिशिरवसन्तग्रीष्मेपुयथाक्रमरौ  
क्ष्यमुत्पादयन्तोरूक्षान्तरसान्ति  
क्तकषायकटुकांश्चाभिवर्द्धयन्तो  
नृणांदौर्बल्यमावहन्ति ॥ ५ ॥

उसमें सूर्य जगत्के स्नेहको अपनी  
किरणोंसे ग्रहण करताहुआ और तीक्ष्ण  
रूखे वायु उसको सुखाते हुए और शिशिर  
वसंत ग्रीष्म ऋतुओंमें क्रमसे रूक्षताको  
पैदा करते हुए और रूखे रसोंको और  
चरपरे कसेले कडवे रसोंको बढ़ाते हुए  
मनुष्योंको दुर्बल करतेहैं ॥ ५ ॥

वर्षाशरद्धेमन्तेपुतुदक्षिणाभिमुखे  
ऽर्ककालमार्गमेधवातवर्षाभिहत  
प्रतापेशशिनिचाव्याहतबलेमाहे

न्द्रसलिलप्रशान्तसन्तापेजगत्य  
रूक्षारसाःप्रवर्द्धन्तेऽम्ललवणमधु  
रायथाक्रमंतत्रबलमुपचीयन्ते  
नृणामिति ॥ ६ ॥

वर्षा शरद हेमंत इनमें तो सूर्यके  
दक्षिणाभिमुख होनेसे और कालमार्गका  
प्रताप मेघवात वर्षासे प्रायः नष्ट  
होनेपर और चंद्रमाका बल नष्ट होजाने  
से वर्षाके जलसे संतापके शांत होनेसे  
जगत्में स्निग्ध रस बढ़तेहैं और वे क्रम  
से अम्ल लवण मधुर होतेहैं उसमें मनु-  
ष्योंका बल बढ़ताहै ॥ ६ ॥

भवतिचात्र ॥ आदावन्तेचदौर्व  
ल्यंविसर्गादानयोर्नृणाम् । मध्ये  
मध्यंवरन्त्वन्तेश्रेष्ठमग्रेचनिर्दिशेत्  
इसमें ये श्लोकभीहैं कि विसर्ग और  
आदानके आदि और अंतमें मनुष्योंको  
दुर्बलता होतीहै मध्यमें मध्य अंतमें  
और आरंभमें श्रेष्ठताको कहै ॥ ७ ॥

शीतेशीतानिलस्पर्शसंरुद्धोबलिनां  
बली । पक्वाभवतिहेमन्तेमात्राद्र  
व्यगुरुक्षमः ॥ ८ ॥

शीतकालमें शीतपवनके स्पर्शसे रुका  
हुआ बलवानोंका बली ( वायु ) हेमन्त  
में पाचक और मात्रा द्रव्य इनकी गुरु-  
तामें समर्थ होजाताहै ॥ ८ ॥

सयदानेन्धनंयुक्तंलभतेदेहजंतदा।  
रसंहिनस्त्यतोवायुःशीतःशीते  
प्रकुप्यति ॥ ९ ॥

वह जब देहमें योग्य इंधन (भोजन) को नहीं प्राप्त होता तब वह रसको नष्ट करता है—शीत पवन शीत कालमें कुपित होता है ॥ ९ ॥

तस्मान्नुषारसमयेस्त्रिधा म्ललव  
णान्नरसान् । औदकानूपमांसानां  
मेध्यानामुपयोजयेत् ॥ १० ॥

तिससे शीत कालके समयमें स्त्रिधा अम्ल लवण रसोंको और जलके मांसों को योग्य जानकर भक्षण करे ॥ १० ॥

विलेशयानां मांसानि प्रसहानां भृ  
तानि च । भक्षयेन्मदिरांसीधुं मधु  
चानुपिवेन्नरः ॥ ११ ॥

और बिलमें सोनेहारे जीवोंके मांसों को और भारवाहियोंके अन्न वा मांसों को भक्षण करे फिर मदिरा सीधु शहद इनका पान मनुष्य करे ॥ ११ ॥

गोरसानिक्षुविकृतीर्वसांतैलनवौद  
नम् । हेमन्तेऽभ्यस्यतस्तोयमुष्ण  
आयुर्नहीयते ॥ १२ ॥

गोरस इक्षुके विकार वसा तेल नवोद न उष्णजल इनका अभ्यास जो हेमन्तमें करता है उसकी आयु हीन नहीं होती १२

अभ्यङ्गोत्सादनं मूर्ध्नि तैलजैन्ता  
कमातपम् । भजेद्भूमिगृहञ्चो  
ष्णमुष्णं गर्भगृहं तथा ॥ १३ ॥

मस्तकपर अभ्यंगका करना तेल सूर्यकी धूप उष्ण भूमि और गृह और उष्ण गर्भ गृह ॥ १३ ॥

शीते सुसंवृतं सेव्यं यानं शयनमास  
नम् । प्रावाराजिनकौष्णेयप्रवे  
णीकुथकास्तृतम् ॥ १४ ॥

इनका सेवन शीतकालमें करे और शीतकालमें भली प्रकार ढके हुये ऐसे यान शयन आसनका सेवन करे—प्रावार अजिन और रेशम उष्ण प्रवेणी (गद्दा) कुथक ये सब जिसपर बिछे हों ॥ १४ ॥

गुरुष्णवासादिग्धाङ्गो गुरुणाऽगु  
रुणा सदा । शयने प्रमदां पीनां वि  
शालोपचितस्तनीम् ॥ १५ ॥

और उस गुरु उष्ण वस्त्रसे सदैव अंगको ढके जो गुरु वा हलका हो—और शय्यापर विशाल ऊंचे स्तनवाली ॥ १५ ॥

आलिङ्ग्याऽगुरुदिग्धाङ्गी सुप्या  
त्समदमन्मथः । प्रकामश्च निपे  
वेतमैथुनं शिशिरागमे ॥ १६ ॥

उस पुष्ट स्त्रीका आलिंगन करके और काम देवका मथन करके शयन करे जो कोमल वस्त्रोंको धारण कर रही हो—और शिशिर ऋतुके आगमनमें यथेच्छ मैथुनको करे ॥ १६ ॥

वर्जयेदन्नपानानि लघूनि वातलानि  
च । प्रवातं प्रमिताहारमुदमन्थं  
हिमागमे ॥ १७ ॥

और लघु वातल अन्न पानोंको वर्ज दे—और हिमके आनेपर प्रवात और प्रमित भोजन जलमें मथकर करे ॥ १७ ॥

हेमन्तशिशिरेतुल्येशिशिरेऽल्पं  
विशेषणम् । रौक्ष्यमादानजंशीतं  
मेघमारुतवर्षजम् ॥ १८ ॥

हेमन्त शिशिरमें तुल्य और शिशिरमें  
विशेषतासे अल्पभोजन करे और  
आदान कालका जो रुखा शीतहै जो  
मेघ पवन वर्षासे उत्पन्न होताहै ॥ १८ ॥

तस्माद्धैमन्तिकःसर्वःशिशिरेवि  
धिरिष्यते । निवातमुष्णमधिकं  
शिशिरेगृहमाश्रयेत् ॥ १९ ॥

तिससे शिशिर ऋतुमें संपूर्ण विधि  
हेमन्तकी इष्टहै—शिशिरमें ऐसे गृहमें वसे  
जो निवात और अधिक उष्ण हो ॥ १९ ॥

कटुतिक्तकपायाणिवातलानिल  
धूनिच । वर्जयेदन्नपानानिशि  
शिरेशीतलानिच ॥ २० ॥

और शिशिरमें कटु तिक्त कपाय  
वातल लघु शीतल जो अन्न पानहैं उनको  
वर्ज दे ॥ २० ॥

हेमन्तैनिचितःश्लेष्मादिनक्तद्रा  
भिरीरितः । कायाग्निबाधतेरोगां  
स्ततःप्रकुरुतेबहून् ॥ २१ ॥

हेमन्त ऋतुमें संचित हुआ कफ  
सूर्यकी किरणोंकी प्रेरणासे जठराग्निको  
बाधताहै फिर बहुतसे रोगोंको करताहै २१

तस्माद्वसन्तेकर्माणिवमनादीनि  
कारयेत् । गुर्वम्लस्निग्धमधुरं  
दिवास्वप्नञ्चवर्जयेत् ॥ २२ ॥

तिससे वसन्तमें वमन आदि कर्मोंको  
करावे और गुरु अम्ल स्निग्ध मधुर  
भोजन और दिनमें शयनको वर्ज दे २२

व्यायामोद्वर्त्तनंभूमंकवलग्रहमञ्ज  
नम् । मुखाम्बुनाशौचविधिंशी  
लयेत्कुसुमागमे ॥ २३ ॥

व्यायाम उवटना धूम कवलग्रह अंजन  
और मुखके जलसे शौच इनका सेवन  
वसन्तमें करे ॥ २३ ॥

चन्दनागुरुदिग्धाङ्गोयवगोधूमभो  
जनः । शारभंशाशमैण्यंमार्गला  
वकपिञ्जलम् ॥ २४ ॥

चंदन अगर इनको देहमें लगावे—जों  
गहूँका भोजन करे—और शरभ शशा  
एणमृग लाव कपिंजल इनका मांस २४

भक्षयेन्निगदंसीधुपिवेन्माध्वीक  
मेववा । वसन्तेनुपिवेत्स्त्रीणां  
कामिनीनाञ्चयौवनम् ॥ २५ ॥

और निरोग सीधु सिरका और महु-  
ओंकी मदिराका भोजन पानकरे—वसन्त  
ऋतुमें कामिनी स्त्रियोंके यौवनको निश्च  
यसे पीवे ॥ २५ ॥

मयूखैर्जगतःसारंश्रीष्मपेपीयतेर  
विः । स्वादुशीतद्रवंस्निग्धमन्नपा  
नंतदाहितम् ॥ २६ ॥

और श्रीष्म ऋतुमें अपनी किरणोंसे  
सूर्य जगत्के सारको पीलेताहै उसमें स्वादु  
शीतल द्रव स्निग्ध अन्न पानहित होताहै २६

शीतंसशर्करामन्थंजाङ्गलान्मृगपक्षिणः । घृतंपयःसशाल्यन्नंभजन्ग्रीष्मेनसीदति ॥ २७ ॥

शीतल शर्करा सहित मंथन ( मठा आदि ) और जंगलके मृग और पक्षी-घृत दूध चावलमिला अन्न इन सबका सेवन करताहुवा मनुष्य ग्रीष्ममें दुःखी नहीं होता ॥ २७ ॥

मद्यमल्पंनवोपयमथवासुबहूदकम् । लवणाम्लकटूष्णानिव्यायामञ्चात्रवर्जयेत् ॥ २८ ॥

मदिरा अल्प पीवै वा न पीवै अथवा अधिक जल मिलाकर पीवै-लवण अम्ल कटु उष्ण पदार्थ और व्यायाम इनको ग्रीष्ममें वर्ज दे ॥ २८ ॥

दिवाशीतगृहेनिद्रानिशिचन्द्रांशुशीतले । भजेच्चन्दनदिग्धाङ्गःप्रवातेहर्म्यमस्तके ॥ २९ ॥

दिनके समय शीतल घरमें और रात्रिको चंद्रमाकी किरणोंसे शीतल महलके ऊपर जहाँ अधिक पवन लगै वहाँ चंदनको देहमें लगाकर निद्राका सेवन करै ॥ २९ ॥

व्यजनैःपाणिसंस्पर्शैश्चन्दनोदकशीतलैः । सेव्यमानोभजेदोस्यामुक्तामणिविभूषितः ॥ ३० ॥

व्यजन और हाथका स्पर्श जो चंदन और जलसे शीतल हों उनका सेवन

करता हुआ और मोती और मणिसे विभूषित होकर रात्रिमें शयन करै ॥ ३० ॥

काननानिचशीतानिजलानिकुसुमानिच । ग्रीष्मकालेनिषेवेतमैथुनाद्विरतो नरः ॥ ३१ ॥

और शीतलवन जल पुष्पोंका ग्रीष्म कालमें सेवन मनुष्यकरै और मैथुनकी त्यागदे ॥ ३१ ॥

आदानदुर्बलेदेहेपक्ताभवतिदुर्बलः । स वर्षास्वनिलादीनांदूषणैर्वाध्यतेपुनः ॥ ३२ ॥

आदानसे दुर्बल देहमें जठराग्नि दुर्बल होजातीहै फिर वह वर्षाओंमें पवन आदिके दूषणोंसे बाधितहो जाता है ॥ ३२ ॥

भूवास्यान्मेघनिस्यन्दात्पाकादम्लज्जलस्यच । वर्षास्वाग्निबलेक्षीणेकुप्यन्तिपवनादयः ॥ ३३ ॥

भूमिकी सुगंधि मेघकी वर्षा पाक जलकी अम्लता इनसे अग्निका बलक्षीण होनेसे पवन आदि कुपित होजातेहैं ॥ ३३ ॥

तस्मात्साधारणःसर्वोविधिर्वर्षासुवक्ष्यते । उदमन्थंदिवास्वप्नमवश्यायनदीजलम् ॥ ३४ ॥

तिससे वर्षाओंमें सब विधि साधारण कहेंगे-जलका मंथन दिनमें स्वप्न-अवश्याय नदीका जल ॥ ३४ ॥

व्यायाममातपश्चैवव्यवायञ्चात्रवर्जयेत् । पानभोजनसंस्कारान्

प्रायःक्षौद्रान्वितान् भजेत् ३५

व्यायाम आतप मैथुन इनको वर्षाओंमें वर्जदे- और पान भोजनके जो संस्कार हैं इनको प्रायःशहत मिलाकर सेवन करे ॥ ३५ ॥

व्यक्ताम्ललवणस्नेहं वातवर्षाकुले ऽहनि । विशेषशीतेभोक्तव्यं वर्षा स्वनिलशान्तये ॥ ३६ ॥

और प्रकट है अम्ल लवण स्नेह जिसमें ऐसे पदार्थको वात वर्षासे व्याकुल दिनमें विशेष शीत होनेपर सेवन करे ॥ ३६ ॥

अग्निसंरक्षणवतायवगोधूमशाल यः । पुराणाजाङ्गलैर्मसैर्भोज्य यूषैश्च संस्कृतः ॥ ३७ ॥

अग्निकी रक्षाका अभिलाषी मनुष्य पुराने जौ गेहूं शाली और जांगलके मांस और यूप इनसे संस्कृत करके भोजन करे ॥ ३७ ॥

पिबेत् क्षौद्रान्वितञ्चाल्पमाध्वी कानिष्टमम्बुवा । माहेन्द्रं तप्तशी तं वाकौपंसारसमेव वा ॥ ३८ ॥

और शहतसे युक्त वा माध्वीक (महुवेके पुष्पोंकी मदिरा) से युक्त जलको पीवे-इंद्रका तपाया शीतल कूपका तलावका जल, सेवे ॥ ३८ ॥

प्रघर्षोद्वर्त्तनस्नानगन्धमाल्यपरो भ वेत् । लघुशुद्धाम्बरः स्थानं भजे दक्ले दिवार्षिकम् ॥ ३९ ॥

प्रघर्ष ( घिसना ) उवटना स्नान गंध पुष्प इनसे युक्त रहे-लघु-शुद्ध-वस्त्र स्थान इनका सेवन ऐसोंका करे जो वर्षासे गीले नहीं ॥ ३९ ॥

वर्षाशीतोचिताङ्गानां सहसैवार्क रश्मिभिः । तप्तानामाचितं पित्तं प्रायः शरदिकुप्यति ॥ ४० ॥

वर्षाके शीतसे युक्त जिनका अंग है वे शीघ्रही सूर्यकी किरणोंसे तप्त हो जाते हैं तिससे युक्त जो पित्त है वह प्रायः शरद ऋतुमें कुपित हो जाता है ॥ ४० ॥

तत्राक्षपानं मधुरं लघु शीतं सतिक्त कम् । पित्तप्रशमनं सेव्यं मात्रया सुप्रकाङ्क्षितैः ॥ ४१ ॥

उस समयमें ऐसे अन्न पानको करे जो मीठा लघु शीतल और तिक्त सहित हो और बड़ी आकांक्षासे पित्तकी शांतिके कर्ता पदार्थका सेवन करे ॥ ४१ ॥

लावान् कपिञ्जलानेणानुरभान् शरभान् शशान् । शालीनयव गोधूमान् सेव्यानाहुर्धनात्यये ४२

और वर्षाके वीतनेपर लाव कपिञ्जल एण उरभ शरभ शश इनको और शालीन जौ गेहूं इनको सेवन करने योग्य कहते हैं ४२

तिक्तस्य सर्पिषः पानं विरेको रक्त मोक्षणम् । धाराधरात्यये कार्य मातपस्य च वर्जनम् ॥ ४३ ॥

और तिक्त और सर्पि ( घी ) का

पीना विरेचन फस्त और आतपका त्याग  
इनको वर्षाके वीतनेपर करै ॥ ४३ ॥

वसातैलमवश्यायमौदकानूपमा  
मिषम् । क्षारदधिदिवास्वप्नप्राग्वा  
तश्चात्रवर्जयेत् ॥ ४४ ॥

और वसा तेल अवश्याय और जलका  
मांस खारीवस्तु दधि दिनमें शयन पूर्वकी  
पवन इनको वर्जदे ॥ ४४ ॥

दिवासूर्याशसन्ततं निशि चन्द्रां  
शुशीतलम् । कालेन पक्वं निर्दोष  
मगस्तेनाविपीकृतम् ॥ ४५ ॥

जो जल दिनमें सूर्यकी किरणोंसे  
तपाया जाय और रात्रिमें चंद्रमाकी  
किरणोंसे शीतल होजाय और कालसे  
पकाहो निर्दोषहो अगस्तमुनिने विप  
रूप न कियाहो ॥ ४५ ॥

हंसोदकमिति ख्यातं शारदं विमलं  
शुचि । स्नानपानावगाहेषु शस्य  
तेतयथामृतम् ॥ ४६ ॥

उस शरद ऋतुके निर्मल शुद्ध  
जलको हंसोदक कहतेहैं वह स्नान पान  
अवगाहमें ऐसा श्रेष्ठ है जैसा अमृत ४६

शारदानिचमाल्यानिवासांसिवि  
मलानिच । शरत्काले प्रशस्यन्ते  
प्रदोषे चन्द्रश्मयः ॥ ४७ ॥

और शरद ऋतुके पुष्प निर्मल वस्त्र  
और प्रदोषमें चंद्रमाकी किरणयें शरत्का-  
लमें श्रेष्ठ होतेहैं ॥ ४७ ॥

इत्युक्तमृतुसात्म्यं यच्चेष्टाहारव्य  
पाश्रयम् । उपशेतेयदौचित्यादे  
कसात्म्यं तदुच्यते ॥ ४८ ॥

यह ऋतुओंकी सात्म्य अवस्था चेष्टा  
आहारके आश्रयसे वर्णनकी जो उचित  
भावको प्राप्तहो उसको एक सात्म्य  
कहतेहैं ॥ ४८ ॥

दोषाणामामयानाञ्च विपरीतगुणं  
गुणैः । सात्म्यमिच्छन्ति सात्म्य  
ज्ञाश्चेष्टितं चाद्यमेव च ॥ ४९ ॥

दोष और रोगोंको अपने गुणोंसे जो  
विपरीत गुणको करै उसको सात्म्यके  
ज्ञाता सात्म्य कहतेहैं वह चेष्टित हो वा  
भोजन हो अर्थात् प्रकृतिके अनुकूल  
कारीको सात्म्य कहतेहैं इति ॥ ४९ ॥

इति तत्र श्लोकाः । ऋतावृतौ नृभिः  
सेव्यमसेव्यं यच्च किञ्चन । तस्या  
शितीये निर्दिष्टे हेतुमत्सात्म्यमेव  
चेति ॥ ५० ॥

इति अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते  
तस्याशितीयोऽध्यायः ॥ ६ ॥

उसमें यह श्लोकहै ऋतु २ में मनु-  
ष्योंके सेवनके योग्य और अयोग्य जो  
कुछहैं वे सब और हेतु और असात्म्य  
ये सब तस्याशितीय नामके इस अध्या-  
यमें कहेहैं ॥ ५० ॥

इति अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रति संस्कृते  
पं० मिहिरचंद्रकृत भाषा विवृति सहिते  
तस्याशितीयोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातो न वेगान्धारणीय  
मध्यायंव्याख्यास्यामः ।

इति हस्माहभगवानात्रेयः ।

इसके अनंतर न वेगान् धारणीय  
अध्यायका वर्णन करतेहैं—यह भगवान्  
आत्रेय कहतेहैं ॥

नवेगान्धारयेद्धीमान्जातान्मूत्र  
पुरीषयोः । नरेतसोनवातस्यनव  
म्याःक्षवथोर्नच ॥ १ ॥

कि बुद्धिमान् मनुष्य मूत्र और  
मलमें पैदाहुंये वेगोंको धारण न करे  
और रेत ( वीर्य ) वात वमन छिक्का ॥ १ ॥

नोद्गारस्यनजृम्भायानवेगान्क्षुत्पि  
पासयोः । नवाप्पस्यननिद्रायान  
श्वासस्यश्रमेणच ॥ २ ॥

उद्गार जृम्भा क्षुधा तृषा बाष्प निद्रा  
श्रम श्वास इनके वेगोंकोभी न रोकें २ ॥

एतान्धारयतोजातान्वेगान्रोगा  
भवन्तिये। पृथक्पृथक्चिकित्सार्थं  
तन्मेनिगदतःशृणु ॥ ३ ॥

और इन वेगोंको धारण करते हुये  
मनुष्यके जो २ रोग होतेहैं उन सबकी  
पृथक् २ चिकित्साको कहते हुये मुझसे  
सुनो ॥ ३ ॥

वस्तिमेहनयोःशूलमूत्रकृच्छंशिरो  
रुजा । विरामोवङ्गणानाहःस्या  
लिङ्गेमूत्रनिग्रहे ॥ ४ ॥

कि वस्ति और मेहन ( लिंग ) में  
शूल—मूत्र कृच्छ्र शिरमें पीडा—विराम  
अवक्षण अफारा ये लिंगमें मूत्रके निग्र  
हसे होतेहैं ॥ ४ ॥

स्वेदावगाहनाभ्यङ्गान्सर्पिषश्चा  
वपीडकम्। मूत्रेप्रतिहतेकुर्म्यात्त्रि  
विधंवस्तिकर्मच ॥ ५ ॥

मूत्रके नाश होनेपर स्वेद अवगाहन  
अभ्यंग घृतका अव पीडन ( मलना )  
और तीन प्रकारके वस्ति कर्मको करे ५

पक्वाशयशिरःशूलंवातवर्चोनिरो  
धनम् । पिण्डकोद्वेष्टनाध्मानंपु  
रिषेस्याद्विधारिते ॥ ६ ॥

और मलके रोकनेसे पक्वाशय और  
शिरमें शूल वात और विष्टाकीरोक  
पिंडिकाका उद्वेष्टन आध्मान ये रोग  
होतेहैं ॥ ६ ॥

स्वेदाभ्यङ्गावगाहाश्ववर्तयोवस्ति  
कर्मचहितंप्रतिहतेवर्चस्यन्नपानं  
प्रमाथिच ॥ ७ ॥

उस मलकी रोकमें स्वेद अभ्यंग अव  
गाह वर्ति वस्तिकर्म और प्रमाथि अन्न  
पान ये हित होतेहैं ॥ ७ ॥

मेद्रेवृषणयोःशूलमङ्गमर्द्दोहृदिव्य  
था । भवेत्प्रतिहतेशुक्रेविवर्द्धं  
मूत्रमेवच ॥ ८ ॥

और वीर्यके नष्ट होनेपर लिंग और  
अंडकोशोंमें शूल अंगका मर्दन हृद-

यमें पीडा-और मूत्रका बंधन ये रोग होतेहैं ॥ ८ ॥

तत्राभ्यङ्गावगाहाश्चमदिराचरणा  
युधाः । शालिःपयोनिरूहाश्च  
स्तमैथुनमेवच ॥ ९ ॥

उसमें अभ्यंगअवगाह मदिरा-मुरगा  
शालि दूधके झाग और मैथुन ये श्रेष्ठ  
होतेहैं ॥ ९ ॥

वातमूत्रपुरीषाणांसंज्ञोऽध्मानं क्लमो  
रुजाजठरेवातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वा  
तनिग्रहात् ॥ १० ॥

और पवनेके रोकनेसे वात मूत्र मल  
इनका संघ ( मेल ) आध्मान ग्लानि  
खेद और उदरमें वातसे पैदा हुए अन्य  
रोग होतेहैं ॥ १० ॥

स्नेहस्वेदविधिस्तत्रवर्त्तयोभोजना  
निच । पानानिबस्तयश्चैवशस्तं  
वातानुलोमनम् ॥ ११ ॥

उसमें स्नेह और स्वेदकी विधि वर्ति  
और भोजन पान वास्ति ये सब वातके  
अनुलोमसे श्रेष्ठ होतेहैं ॥ ११ ॥

कण्डूकोठाऽरुचिव्यङ्गशोथपा  
ण्ड्यामयज्वराः । कुष्ठहृल्लासवीस  
र्पाश्छर्दिनिग्रहजागदाः ॥ १२ ॥

छर्दिके निग्रहसे ये रोग होतेहैं कि  
खुजली कोष्ठमें अरुचि व्यंगता सूजन  
आमज्वर कुष्ठ हृल्लास वीसर्प ॥ १२ ॥

भुक्त्वाप्रच्छर्दनं धूमोलंघनं रक्तमो  
क्षणम् । रूक्षान्नपानं व्यायामो  
विरेकश्चात्रशस्यते ॥ १३ ॥

उसमें भोजन करके छर्द धूमपान  
लंघन रक्तमोक्षण ( फस्त ) रूक्ष अन्नपान  
व्यायाम विरेचन ये श्रेष्ठ होतेहैं ॥ १३ ॥

मन्यास्तम्भः शिरःशूलमर्दिताव  
र्द्धभेदकौ । इन्द्रियाणाञ्चदौर्व  
ल्यंक्षवथोऽस्याद्विधारणात् १४

और छींकके रोकनेसे मन्याओंका  
स्तम्भन शिरमें शूल मर्दन अर्द्धभेदन  
इन्द्रियोंकी दुर्बलता होतीहै ॥ १४ ॥

तत्रोर्द्धजत्रुकेऽभ्यङ्गः स्वेदोऽधूमं  
सनावनः । हितं वातघ्नमाद्यश्च घृ  
तञ्चोत्तरभाक्तिकम् ॥ १५ ॥

उसमें जत्रुके ऊपरले भागमें अभ्यंग  
स्वेद धूमपान नावन वातनाशक भोजन  
और भोजनके अंतमें घृतका भक्षण हित  
होतेहैं ॥ १५ ॥

हिक्काकासेऽरुचिः कम्पोविबन्धो  
हृदयोरसोः । उद्गारनिग्रहात्तत्र  
हिक्कायास्तुल्यमौषधम् ॥ १६ ॥

उद्गारके रोकनेसे हिचकी कास अरुचि  
कंप हृदय और छातीमें विबन्ध होताहै  
उसमें हिक्काके तुल्य औषधहैं ॥ १६ ॥

विनामाक्षेपसङ्कोचाः सुप्तिः कम्पः  
प्रवेपनम् । जृम्भायानिग्रहात्तत्र



सर्ववातघ्नमौषधम् ॥ १७ ॥

जृम्भाके निग्रहसे विनाम आक्षेप संकोच  
सोना कंप प्रवेपन होतेहैं उससे वात  
नाशक औषध होती है ॥ १७ ॥

कार्श्यदौर्बल्यवैवर्ण्यमङ्गमर्दोऽरु  
चिर्भ्रमः । क्षुद्रेगनिग्रहात्तत्रस्त्रि  
ग्धोष्णलघुभोजनम् ॥ १८ ॥

क्षुधाका वेग रोकनेसे कृशता दुर्बलता  
विवर्ण अंगमर्द अरुचि भ्रम होतेहैं उसमें  
स्निग्ध उष्ण लघु भोजन श्रेष्ठ है ॥ १८ ॥

कण्ठास्यशोषोवाधिर्यश्रमःश्वा  
सोहृदिव्यथा । पिपासानिग्रहा  
त्तत्रशीततर्पणमिष्यते ॥ १९ ॥

प्यासके रोकनेसे कंठ और मुखका  
शोषण-वधिरता-श्रम श्वास हृदयमें  
पीडा होती है उसमें शीतल पदार्थोंसे  
तर्पण इष्ट है ॥ १९ ॥

प्रतिश्यायोऽक्षिरोगश्चहृद्रोगश्चारु  
रुचिर्भ्रमः । बाष्पनिग्रहणास्तत्र  
स्वप्नोमद्यप्रियाः कथाः ॥ २० ॥

बाष्पके निग्रहसे प्रतिश्याय नेत्रोंमें  
रोग हृदयमें रोग अरुचि भ्रम होतेहैं  
उसमें सोना मद्यपान और प्रिय २ कथा,  
हित होतेहैं ॥ २० ॥

जृम्भाङ्गमर्दस्तन्द्राचशिरोरोगा  
क्षिगौरवम् । निद्राविधारणात्  
तत्रस्वप्नःसंवाहनानिच ॥ २१ ॥

निद्राके रोकनेसे जृम्भा अंगमर्द तन्द्रा  
शिरमें रोग नेत्रोंमें गुरुता होतेहैं उसमें  
सोना और संवाहन ( दवाना ) हित  
होतेहैं ॥ २१ ॥

गुल्महृद्रोगसन्मोहाःश्रमनिश्वा  
सधारणात् । जायन्तेतत्रविश्वा  
मोवातघ्नाश्चक्रियाहिताः २२ ॥

श्रमसे श्वासके रोकनेसे गुल्म हृदयमें  
रोग संमोह होतेहैं उसमें विश्राम और  
वात नाशक क्रिया हित होती है ॥ २२ ॥

वेगनिग्रहजारोगाय एतेपरिकीर्त्ति  
ताः । इच्छंस्तेषामनुत्पत्तिवेगा  
नेतान्नधारयेत् ॥ २३ ॥

वेगके निग्रहसे पैदा हुये जो ये रोग  
कहेहैं इनकी अनुत्पत्तिको चाहताहुआ मनु-  
ष्य इन वेगोंको धारण न करे (नरोकै) ॥ २३ ॥

इमांस्तुधारयेद्देगान्निहितैर्प्रीत्य  
चेहच । साहसानामशस्तानामनो  
वाक्कायकर्मणाम् ॥ २४ ॥

परलोक और इस लोकमें हितका  
अभिलाषी इन वेगोंको तो धारण करै कि  
साहस निन्दित मन वाणी कायाके कर्म २४

लोभशोकभयक्रोधमानवेगान्  
निधारयेत् । नैर्लज्जेर्प्यातिरागा  
णामभिध्यायाच्चबुद्धिमान् २५

लोभ शोक भय क्रोध मान इनके  
वेगोंको रोकै-बुद्धिमान् मनुष्य निर्लज्जता  
ईर्ष्या अत्यन्त रोग इनकोभी न करै ॥ २५ ॥

परुषस्यातिमात्रस्यसूचकस्यानृ  
तस्यच । वाक्यस्याकालयुक्तस्य  
धारयेद्वेगमुत्थितम् ॥ २६ ॥

अत्यंत कठोरता चुगलपन झूठ  
अकाल ( असमय ) में कहे वाक्य इनके  
उठे हुए वेगको धारण करै ॥ २६ ॥  
देहप्रवृत्तिर्याकाचित् वर्तते परपी  
डया । स्त्रीभोगस्तेयहंसाद्यातस्या  
वेगान् विधारयेत् ॥ २७ ॥

जो कुछ देहकी प्रवृत्ति पराई पीडासे  
होती है उन पीडाकारी स्त्रीके भोग चोरी  
हिंसा आदिके वेगोंको धारण करै ॥ २७ ॥

पुण्यशब्दो विपापत्वान्मनोवाक्का  
यकर्मणाम् । धर्मार्थकामा  
नृपुरुषः सुखो भुङ्क्ते चिनोति च २८

मन, वाणी कायाके कर्मोंको पाप  
रहित होनेसे जो पुण्य शब्द, धर्म, अर्थ,  
काम, रूप है उसको पुरुष सुखसे भोग-  
ता है और संचित करता है ॥ २८ ॥

शरीरचेष्टायाचेष्टास्थैर्यार्थाबल  
वर्द्धिनी । देहव्यायामसंख्याता  
मात्रयातां समाचरेत् ॥ २९ ॥

लाघवं कर्मसामर्थ्यस्थैर्यक्लेशस  
हिष्णुता । दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च  
व्यायामादुपजायते ॥ ३० ॥

स्थिरता करनेहारी जो शरीरकी चेष्टा  
रूप चेष्टा बलवर्द्धिनी है जिसको देहका  
व्यायाम कहते हैं उसको भी प्रमाणसे करै

क्योंकि व्यायाम करनेसे लाघव मर्क  
करनेमें सामर्थ्य स्थिरता क्लेशका सहना  
दोषका क्षय अग्निकी वृद्धि ये सब  
होते हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥

श्रमः क्लमः क्षयस्तृष्णारक्तपित्तप्र  
तामकः । अतिव्यायामतः कासो  
ज्वरश्छर्दिश्च जायते ॥ ३१ ॥  
व्यायामहास्यभाष्याध्वंशाम्यध  
र्मप्रजागरान् । नोचितानपि सेवे  
तबुद्धिमानतिमात्रया ॥ ३२ ॥

और अत्यंत व्यायाम करनेसे ये  
रोग होते हैं कि श्रम ग्लानि क्षय तृष्णा  
रक्तपित्त प्रतामक कास ज्वर छर्दि  
व्यायाम हँसना भाषण मार्ग मैथुन जाग-  
रण उचित भी इनका प्रमाणसे अधिक  
बुद्धिमान मनुष्य सेवन न करै ३१ ॥ ३२ ॥

एतानेवं विधांश्चान्यान् योऽतिमात्रं  
न सेवते । गजः सिंहमिवाकर्षन् स  
हसासविनश्यति ॥ ३३ ॥

इनको और इसी प्रकारके अन्य  
कर्मोंको जो मात्रासे अधिक सेवन करता  
है वह सिंहको खींचने हारे गजके समान  
शीघ्र नाशको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

उचितादहिताद्धीमान् क्रमशो वि  
रमेन्नरः । हितं क्रमेण सेवेत क्रम  
श्चात्रोपदिश्यते ॥ ३४ ॥

अहित उचितसे भी बुद्धिमान् मनुष्य  
क्रमसे हटजाय और हितका क्रमसे से-  
वन करै वह क्रम यहांपर कहते हैं ॥ ३४ ॥

प्रक्षेपापचयेताभ्यांक्रमःपादांशि  
कोभवेत् । एकान्तरंततश्चोद्ध  
द्वचन्तरं व्यन्तरंतथा ॥ ३५ ॥

उनसे प्रक्षेप और अपचयमें अर्थात् दोषोंके नाशमें पाद२के भागसे क्रम होताहै वह एक अंतरसे और फिर दोदिनके अंतरसे और तीन दिनके अंतरसे होताहै ॥ ३५ ॥

क्रमेणापचितादोषाःक्रमेणोपचि  
तागुणाः । सन्तोयान्त्यपुनर्भाव  
मप्रकम्याभवन्तिच ॥ ३६ ॥

क्रमसे दोषोंका नाश होताहै और क्रमसे गुणोंकी वृद्धि होतीहै और विद्यमानभी दोष पुनः नहीं होते और गुण निश्चल हो जातेहैं ॥ ३६ ॥

समपित्तानिलकफाःकेचिद्रर्भा  
दिमानवाः । दृश्यन्तेवातलाःके  
चित्पित्तलाःश्लेष्मलास्तथा ३७

कोई २ मनुष्य गर्भसे समान पित्त-वात कफ होतेहैं और कोई वातल दीख-तेहैं कोई पित्तप्रकृति और कोई कफ प्रकृति दीखतेहैं ॥ ३७ ॥

तेषामनातुराःपूर्ववातलाद्याःसदा  
तुराः । दोषानुशयिता तेषांदेह  
प्रकृतिरुच्यते ॥ ३८ ॥

उनमें पहिले नीरोग होतेहैं और वातल आदि सदा रोगी होतेहैं-इनके देहकी प्रकृतिके दोषोंसे युक्त कहीहै ३८

विपरीतगुणस्तेपांस्वस्थवृत्तेर्वि  
धिर्हितः । समसर्वरसंसात्म्यंसम  
धातोःप्रशस्यते ॥ ३९ ॥

उनसे विपरीत गुणकी जो स्वस्थ वृत्तिकी विधिहै वह उनकेलिये हितहै समान जिसमें संपूर्ण रसहों ऐसा सात्म्य सम धातुके लिये श्रेष्ठ होताहै ॥ ३९ ॥

द्वेअधःसप्तशिरसिखानिस्वेदमुखा  
निच । मलायनानिवाध्यन्तेदुष्टै  
र्मात्राधिकैर्मलैः ॥ ४० ॥

दो छिद्र देहके नीचेहैं और सात शिरपरहैं और वे स्वेदके मुखहैं-दुष्ट मात्रासे अधिक मलोंसे मलके जो कर्ण आदि स्थानहैं वे बांधे जातेहैं ४० ॥

मलवृद्धिगुणत्वेनलाघवान्मलसं  
क्षयम् । मलायनानांबुद्धयेतस  
ङ्गोत्सर्गादतीवच ॥ ४१ ॥

मलके स्थानोंमें मलकी वृद्धिको गुण और लाघवसे, मलके संक्षयको संग और उत्सर्गसे, भली प्रकार जानै ॥ ४१ ॥

तान्दोषलिङ्गैरादिश्यव्याधीन्  
साध्यानुपाचरेत् । व्याधिहेतुप्रति  
द्वन्द्वैर्मात्राकालौविचारयेत् ४२

उनको दोषोंके लिंगोंसे कहकर साध्य व्याधियोंकी चिकित्साकरै-व्याधिके हेतुके जो विरोधीहैं उनसे मात्राके कालोंको विचारै ॥ ४२ ॥

विषमस्वस्थवृत्तानामेतेरोगास्तथा  
परे । जायन्तेनातुरस्तस्मात्स्व  
स्थवृत्तपरोभवेत् ॥ ४३ ॥

विषम और स्वस्थ वर्तव कर्ताओंको  
ये रोग और तैसेही अन्य रोग होतेहैं  
तिससे अनातुर मनुष्य स्वस्थ आचरणमें  
तत्परहो ॥ ४३ ॥

माधवप्रथमेमासिनभस्यप्रथमेपु  
नः । सहस्यप्रथमेचैवहारयेदोष  
सञ्चयम् ॥ ४४ ॥

वैशाखसे पहिले श्रावणसे पहिले और  
सहस्य ( पौष ) से पहिल मासोंमें  
दोषोंके संचयको दूर करै ॥ ४४ ॥

स्निग्धस्विन्नशरीराणामूर्द्धञ्चाध  
श्चबुद्धिमान् । वस्तिकर्मततःकु  
र्यान्नस्तःकर्मचबुद्धिमान् ४५ ॥

स्निग्ध और स्विन्न जिनका शरीरहै  
उनके ऊपर और नीचेके भागमें बुद्धिमान  
मानव वस्ति कर्म करावै ॥ ४५ ॥

यथाक्रमंयथायोगमतऊर्द्धप्रयो  
जयेत् । रसायनानिसिद्धानिवृण्य  
योगांश्चकालवित् ॥ ४६ ॥

फिर नासिकाके कर्मको करावै इनको  
यथा क्रम और यथा योगसे करके फिर  
सिद्ध रसायन और वीर्यवर्द्धक योगोंको  
समयका ज्ञाता भिषक करै ॥ ४६ ॥

रोगास्तथानजायन्तेप्रकृतिस्थेषु

धातुषु । धातवश्चाभिवर्द्धन्तेजरा  
चान्त्यमुपैतिच ॥ ४७ ॥

तिस प्रकारसे धातुओंके समान प्रकृति  
होनेसे रोग नहीं होतेहैं और धातु बढ-  
तीहैं और जरा नष्ट होजातीहै ॥ ४७ ॥

विधिरेपविकाराणामनुत्पत्तौनि  
दर्शितः । निजानामितरेषान्तु  
पृथगेवोपदिश्यते ॥ ४८ ॥

यह अपने देहमें विकारोंके उत्पन्न  
नहीं होनेकी विधि दिखाईहै—अन्य मनु-  
ष्योंकी तो पृथक्ही कहतेहैं ॥ ४८ ॥

येभूतविषवाय्वग्निसंप्रहारादिसम्भ  
वाः । नृणामागन्तवोरोगाःप्रज्ञा  
तेष्वपराध्यति ॥ ४९ ॥

जो मनुष्योंको भूत विष वायु अग्नि  
इनके संप्रहार आदिसे आगंतुक रोग  
होतेहैं उन सबमें बुद्धिकाही अपराधहै ४९

ईर्ष्याशोकभयक्रोधमानद्वेषादय  
श्चये । मनोविकारास्तेऽप्युक्ताः  
सर्वेप्रज्ञापराधजाः ॥ ५० ॥

ईर्ष्या शोक भय क्रोध मान द्वेष आदि  
जो मनके विकार कहेंहैं वेभी सब बुद्धिके  
अपराधसे पैदा होतेहैं ॥ ५० ॥

त्यागःप्रज्ञापराधानामिन्द्रियोपश  
मःस्मृतिः । देशकालात्मविज्ञानं  
सद्वृत्तस्यानुवर्त्तनम् ॥ ५१ ॥

बुद्धिके अपराधोंका त्याग इंद्रियोंकी

शांति स्मृति देशकाल आत्मा इनका  
विज्ञान सदाचरणसे वर्त्ताव ॥ ५१ ॥

आगन्तूनामनुत्पत्तावेपमार्गोनिद  
र्शितः । प्राज्ञःप्रागेवतत्कुर्व्या  
द्धितंविद्यात्तदात्मनः ॥ ५२ ॥

आगंतु रोगोंके नहीं उत्पन्न होनेकी  
यह विधि दिखाईहै बुद्धिमान् मनुष्य  
पहिलेही उस विधिकी करे और तिससेही  
अपना हित समझे ॥ ५२ ॥

आप्तोपदेशःप्राज्ञानांप्रतिपत्तिश्च  
कारणम् । विकाराणामनुत्पत्ता  
वुत्पन्नानाञ्चशान्तये ॥ ५३ ॥

बुद्धिमानोंको सज्जनोंका उपदेश और  
अपना ज्ञान ये विकारोंकी अनुत्पत्तिके  
और उत्पन्न हुये विकारोंकी शांतिके  
कारण होतेहैं ॥ ५३ ॥

पापवृत्तवचःसत्वाःसूचकाःकलह  
प्रियाः । मर्मोपहासिनोलुब्धाः  
परवृद्धिद्विषःशठाः ॥ ५४ ॥

पापाचारीहै वचन जिनका ऐसे मनुष्य  
जुगल कलहप्रिय मर्मकी हँसीके कर्ता  
लोभी पराई वृद्धिके द्वेषी ॥ ५४ ॥

परापवादरतयःपरनारीप्रवेशिनः  
निर्वृणास्त्यक्तधर्माणःपरिवर्ज्या  
नराधमाः ॥ ५५ ॥

शठ पराईनिदामें रत परस्त्रीगामी  
घृणारहित धर्मके त्यागी ये नरोंमें अधम  
वर्जने योग्यहै ॥ ५५ ॥

बुद्धिविद्यावयःशीलधैर्यस्मृति  
समाधिभिः । वृद्धोपसंविनोवृद्धा  
स्वभावज्ञागतव्यथाः ॥ ५६ ॥

और बुद्धि विद्या अवस्था शील धीरता  
स्मृति समाधि इनसे वृद्धोंके सेवक वृद्ध  
स्वभावके ज्ञाता ॥ ५६ ॥

सुमुखाःसर्वभूतानांप्रशान्ताःशंसि  
तव्रताः । सेव्याःसन्मार्गवक्ताः  
पुण्यश्रवणदर्शनाः ॥ ५७ ॥

दुःखसेहीन सुंदरमुख सब प्राणियों  
पर शांत शंसितव्रत, ऐसे जो श्रेष्ठमार्गके  
वक्ता पुण्यहै श्रवण दर्शन जिनका वे  
सेवन करने योग्यहैं ॥ ५७ ॥

आहाराचारचेष्टासुसुखार्थीप्रेत्य  
चेहचापरंप्रयत्नमातिष्ठेद्बुद्धिमान्  
हितसेवने ॥ ५८ ॥

परलोक और इस लोकमें सुखका  
अभिलाषी मनुष्य आहार आचरण चेष्टा  
इनके विषे हितके सेवनमें परम यत्न  
करे ॥ ५८ ॥

ननक्तंदधिभुञ्जीतनचाप्यघृतश  
र्करम् । नामुद्रसूपनाक्षौद्रंनोष्णं  
नामलकैर्विना ॥ ५९ ॥

रात्रिमें दधिका, और घी खांडके  
विना, और मूंगकी दालके विना और  
शहत विना,और उष्ण दधिका-आंवलोंके  
विना दधिका भोजन न करे ॥ ५९ ॥

अलक्ष्मीदोषयुक्तवान्नक्तनुदधि  
वर्जितम् । श्लेष्मणस्यात्सर्पि  
ष्कंदधिमारुतसूदनम् ॥ ६० ॥

अलक्ष्मीके दोषसे युक्त होनेसे  
रात्रिमें दधि वर्जित है और कफकारी  
होताहै—धी सहित दधि वात नाशक  
होताहै ॥ ६० ॥

नचसन्धूक्षयेत्पित्तमाहारश्चवि  
पाचयेत् । शर्करासंयुतंदद्यात्  
ष्णादाहनिवारणम् ॥ ६१ ॥

पित्तको न जगावै और आहारको  
पकावै—शर्करासे युक्त दधिको देतो तृषा  
दाह इनका निवारण करताहै ॥ ६१ ॥

मुद्रसूपेनसंयुक्तंदद्याद्रक्तानिलाप  
हम् । सुरसश्चाल्पदोषश्चक्षौद्रयु  
क्तंभवेद्दधि ॥ ६२ ॥

मूंगकी दालके संग देतो रक्त वातको  
नाश करताहै—शहतसे युक्त दधि सुरस  
और अल्प दोष कारक होताहै—और  
उष्ण दधि पित्त रक्तके दोषोंको कर-  
ताहै और आंवलोंसे युक्त दधि पित्तरक्तके  
दोषोंको दूर करताहै ॥ ६२ ॥

उष्णपित्तामृकदोषान्धात्रीयुक्त  
न्तुनिर्हरेत् । ज्वरासृक्पित्तवी  
सर्पकुष्ठपाण्ड्यामयभ्रमान् ॥ ६३ ॥

जो मनुष्य विधिको त्यागकर दधिका  
भक्षण करताहै वह ज्वर रक्त पित्त वीसर्प

कुष्ठ पांडुरोगभ्रम और उग्र कामलाके  
रोगोंको प्राप्त होताहै इति ॥ ६३ ॥

प्राप्तुयात्कामलाश्चोष्णविधिहि-  
त्वादधिप्रियइति ॥ अत्रश्लोकाः ॥  
वेगावेगसमुत्थाश्चरोगास्तेपाञ्चभे  
पजम् । येषांवेगाविधार्याश्चम-  
दर्थयद्धिताहितम् ॥ ६४ ॥

इसमें ये श्लोकहैं कि वेग और अवे-  
गसे उत्पन्न जो रोगहैं उनकी औषध और  
जिनका वेग रोकने योग्यहै और भेरे  
(अपने) लिये जो हित अहितहै ॥ ६४ ॥

उचितेचाहितेवर्ज्येसेव्येचानुचि-  
तेक्रमः । यथाप्रकृतिचाहारोम-  
लायनगदौषधम् ॥ ६५ ॥

उचित अहित वर्जित सेवने योग्य  
अनुचित इनमें क्रम और प्रकृतिके अनु-  
कूल भोजन और मलायन (स्थान)  
की औषध वा रोग ॥ ६५ ॥

भविष्यतामनुत्पत्तौरोगाणामौ-  
षधश्चयत् । वर्ज्याःसेव्याश्चपुरु-  
षाधीमतात्मसुखार्थिना ॥ ६६ ॥

और होनेवाले रोगोंकी अनुत्पत्तिकी  
जो औषधहै और बुद्धिमान् अपने सुखार्थी  
मनुष्यको जो पुरुष वर्जित और सेवन  
करने योग्यहै ॥ ६६ ॥

विधिनादधिसेव्यश्चयेनयस्मात्तद

त्रिजः । न वेगान्धारणेऽध्याये  
सर्वमेवावदन्मुनिरिति ॥ ६७ ॥

अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते ।  
न वेगान्धारणीयोऽध्यायः ॥

और जिस विधिसे दधिका सेवन ति-  
ससे अत्रिके पुत्र मुनिने यह पूर्वोक्त सब  
न वेगान् धारणीय इस अध्यायमें वर्णन  
कियाहै ॥ ६७ ॥

इति अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते पं० मिहिर  
चंद्रकृतभाषाविद्युतौ न वेगान्धारणीयोऽध्यायः ७

अष्टमोऽध्यायः ।

अथात इन्द्रियोपक्रमणीयमध्यायं  
व्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

इसके अनंतर इन्द्रियोपक्रमणीय  
अध्यायको कहतेहैं यह भगवान् आत्रेय-  
जीने कहाहै कि:-

इहखलुपञ्चेन्द्रियाणिपञ्चे  
न्द्रियद्रव्याणि ।

पञ्चेन्द्रियाधिष्ठानानिपञ्चेन्द्रिया  
र्थाः । पञ्चेन्द्रियबुद्धयोभवन्ती  
त्युक्तमिन्द्रियाधिकारे अतीन्द्रियं  
पुनःमनःसत्त्वसंज्ञकञ्चेत्याहुरेके  
तदर्थ्यात्मसम्पत्तदायत्तचेष्टम् ॥ १ ॥

इस संसारमें निश्चयसे पांच इंद्रियहैं  
पांच इंद्रियोंके द्रव्यहैं पांच इंद्रियोंके  
अधिष्ठानहैं पांच इंद्रियोंके विषयहैं पांच  
इंद्रियोंकी बुद्धिहैं यह इंद्रियाधिकारमें

कहाहै और कोई यह कहतेहैं कि सत्त्व  
संज्ञक मन अतीन्द्रियहै उसके आधीन  
आत्माकी सब संपदाहैं उसीके आधीन  
चेष्टाहैं ॥ १ ॥

चेष्टाप्रत्ययभूतमिन्द्रियाणाम् ।  
स्वार्थेन्द्रियार्थसङ्कल्पव्यभिचार  
णाच्चानेकमेकस्मिन्पुरुषे सत्त्व  
म् । रजस्तमःसत्त्वगुणयोगाच्चन  
चानेकत्वं नानेकं ह्येककालमनेके  
पुप्रवर्तते ॥ २ ॥

इंद्रियोंकी चेष्टाओंका प्रत्यय (साक्षी)  
भूतहै स्वार्थ इंद्रियार्थ संकल्प व्यभिचार  
इन भेदोंसे एक पुरुषमें अनेक प्रकारका  
सत्त्वहै रजोगुण तमोगुण सत्त्वगुण इनके  
योगसे अनेक प्रकारका नहीं है अनेक  
होनेसे एक पुरुषमें एककालमें नहीं  
वर्तता ॥ २ ॥

तस्माच्चानेककालासर्वेन्द्रियप्रवृ  
त्तिः । यद्गुणंश्चाभीक्ष्णं पुरुषमनु  
वर्तते सत्त्वं तत् सत्त्वमेवोपदिशन्ति  
ऋषयो बाहुल्यानुशयात् ॥ ३ ॥

तिससे संपूर्ण इंद्रियोंकी प्रवृत्ति अनेक  
कालमें होतीहै जिस गुणवाला सत्त्व पुरु-  
षमें निरंतर रहताहै उसकोभी ऋषि बाहु-  
ल्यसे योगसे सत्त्वगुणही कहतेहैं ॥ ३ ॥

मनःपुरःसराणीन्द्रियाण्यर्थग्रहण  
समर्थानिभवन्ति । तत्रचक्षुःश्रो

त्राणारसनस्पर्शनमिति पञ्चेन्द्रियाणि ॥ ४ ॥

मनको आगे करके सब इंद्रिय विषयोंके ग्रहण करनेमें समर्थ होती हैं उसमें चक्षु श्रोत्र घ्राण रसना स्पर्शन ये पांच इंद्रिय हैं ॥ ४ ॥

पञ्चेन्द्रियद्रव्याणि खंवायुर्ज्योतिरापोभूरिति । पञ्चेन्द्रियाधिष्ठानान्यक्षिणीकणौ नासिके जिह्वात्वक्चेति ॥ ५ ॥

और आकाश वायु ज्योती जल भूमि ये पांच इंद्रियोंके द्रव्य हैं और नेत्र कर्ण नासिका जिह्वा त्वचा ये पांच इंद्रियोंके अधिष्ठान हैं ॥ ५ ॥

पञ्चेन्द्रियार्थाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः ॥ पञ्चेन्द्रियबुद्ध्यश्चक्षुर्बुद्ध्यादिकाः स्ताः ॥ ६ ॥

शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये पांच इंद्रियोंके विषय हैं पांच इंद्रियोंकी बुद्धि चक्षु बुद्धि आदि हैं ॥ ६ ॥

पुनरिन्द्रियेन्द्रियार्थस्वत्वात्मसन्निर्कर्षजाः ॥ ७ ॥

फिर इंद्रिय इंद्रियार्थ स्वत्व आत्मा इनके संबंधसे उत्पन्न हैं ॥ ७ ॥

क्षणिकानिश्चयात्मिकाश्चेत्येतत्पञ्चपञ्चकम् । मनोमनोरथो बुद्धिरात्माचेत्यध्यात्मद्रव्यगुणसंग्रहः

शुभाशुभप्रवृत्तिनिवृत्तिहेतुश्च द्रव्याश्रितं कर्म यदुच्यते क्रियेति ॥ ८ ॥

क्षणिक और निश्चयात्मक ये पांच २ होते हैं मन, मनका विषय, बुद्धि, आत्मा यह अध्यात्म द्रव्य गुणोंका संग्रह है और यही शुभ अशुभकी प्रवृत्ति और निवृत्तिका हेतु द्रव्याश्रित कर्म जो कहाता है वह क्रिया है ॥ ८ ॥

तत्रानुमानगन्धानां पञ्चमहाभूतविकारसमुदायात्मकानामपि सतामिन्द्रियाणतिजश्चक्षुषिश्रोत्रेन भः घ्राणेक्षितिरापोरसनेस्पर्शनेऽनिलो विशेषेणोपदिश्यते ॥ ९ ॥

उसमें अनुमानसे जानने योग्य जो पांच महाभूतोंके विकार समुदायरूप इंद्रिय हैं उनमें तेज चक्षुमें श्रोत्रमें आकाश घ्राणमें भूमि जल रसनामें और स्पर्शनमें पवन इनका विशेषकर उपदेश करते हैं ॥ ९ ॥

तत्र यद्यदात्मकमिन्द्रियं विशेषात्तदात्मकमेवार्थमनुधावति । तत्स्वभावाद्बिभृत्वाच्च ॥ १० ॥

उसमें जो इंद्रिय जिसरूप है वह विशेषसे तिसरूपके अर्थकाही अनुधावन तिसका स्वभाव और विभु होनेसे करती है ॥ १० ॥

तदर्थान्तियोगायोगमिथ्यायोगात् समनस्कमिन्द्रियं विकृतिमापद्य



मानं यथास्वबुद्ध्युपधाताय सम्पद्यते ॥ ११ ॥

उस अर्थके अत्यंत यांग अयोग मिथ्या योगसे मनसहित विकारको प्राप्त हुई सब इंद्रिय जैसे अपनी बुद्धिके नाशके अर्थ होती हैं ॥ ११ ॥

समयोगात् पुनः प्रकृतिमापद्यमानं यथास्वबुद्धिमाप्याययति ॥ १२ ॥

समयोग होनेसे पुनः अपनी प्रकृतिको प्राप्त हुई जैसे अपनी बुद्धिकी पुष्टताको करती हैं ॥ १२ ॥

मनसस्तु चिन्त्यमर्थः । तत्र मनसो बुद्धेश्च तएव समानातिहीनमिथ्यायोगाः प्रकृतिविकृतिहेतवो भवन्ति ॥ १३ ॥

मनका तो विषय चिंतन है उसमें मूर्ख और बुद्धिके वेही समान अत्यंत हीन मिथ्यायोग प्रकृति और विकृतिके हेतु होते हैं ॥ १३ ॥

तत्रेन्द्रियाणां समनस्कानामनुपतप्तानामनुपतापाय प्रकृतिभावे प्रयतितव्यमेभिर्हेतुभिः ॥ १४ ॥

उसमें इंद्रियोंके और मनके अनुताप ( दुःख ) होनेपर अनुतापके नाशार्थ प्रकृति भावके लिये इन हेतुओंसे यत्न करना चाहिये ॥ १४ ॥

तद्यथा सात्म्येन्द्रियार्थसंयोगेन बुद्ध्या सम्यगवेक्ष्यावेक्ष्यकर्माणां स

म्यक् प्रतिपादनेन देशकालात्मगुणविपरीतोपसेवेन चेति ॥ तस्मादात्महितं चिकीर्षता सर्वेण सर्वसर्वदा स्मृतिमास्थाय सद्वृत्तमनुष्ठेयम् । तद्धचनुष्ठानं युगपत् सम्पादयत्यर्थं द्वयमारोग्यमिन्द्रियविजयञ्चेति ॥ १५ ॥

वह ऐसे हैं कि साम्य इंद्रिय और अर्थके संयोगसे बुद्धिसे भलीप्रकार देख कर कर्मोंको भलीप्रकार करनेसे और देशकाल आत्मागुण इनके विपरीत उपसेवनसे तिससे अपने हित करनेका अभिलाषी संपूर्ण मनुष्य संपूर्ण रीतिसे सब कालमें स्मृतिमें टिककर सदा चरणको करे—क्योंकि वह अनुष्ठान ( करना ) एक बार दो अर्थोंका संपादन करता है कि आरोग्य और इंद्रियोंका विजय ॥ १५ ॥

तत् सद्वृत्तमखिलेनोपदेक्ष्यामः ।

तद्यथा ॥ देवगोब्राह्मणगुरुवृद्ध

सिद्धाचार्यान् चर्चयेत् । अग्नि

मनुचरेत् । ओषधीः प्रशस्ताधा

रयेत् ॥ द्रौकालावुपस्पृशेत् ॥

मलायतनेष्वभीक्ष्णं पादयोश्च वै

मल्यमादध्यात् । त्रिःपक्षास्य के

शश्मश्रुलोमनखान् संहारयेत् ।

नित्यमनुपहतवासाः सुमनः सुगन्धिः

स्यात् ॥ १६ ॥

उस संपूर्ण सदाचरणका उपदेश करतेहैं—वह ऐसेहैं कि देव गौ ब्राह्मण गुरु वृद्ध सिद्ध आचार्य इनका पूजन करें—अग्निहोत्र करें—प्रशस्त औषधियोंका धारण करें—दोनोंकालमें स्नान करें—मलके स्थान और चरण इनकी निर्मलताकोवारं वार करें—तीन वार एक पक्षमें मुखकेश श्मश्रुलोम नख इनको दूर करावें—नित्य नवीन वस्त्र धारें पुष्पोंसे सुगंधित रहें १६॥

साधुवेशः प्रसाधितकेशोर्मूर्द्धश्रोत्रपादतैलनित्योद्धमपःपूर्वाभिभाषीसुमुखः । दुर्गेष्वभ्युपपत्ता होतायष्टादाताचतुष्पथानांनमस्कृताबलीनामुपहर्ताऽतिथीनां पूजकःपितृणांपिण्डदःकलेहितमितमधुरार्थवादी । वश्यात्मधर्मात्माहेतुवीर्य्यःफलेनेर्षुः । निश्चिन्तोनिर्भीकोधीमान्हीमान्महोत्साहःदक्षःक्षमावान्धार्मिकःआस्तिकःविनयबुद्धिविद्याभिजनवयोवृद्धसिद्धाचार्य्याणामुपासिता । छत्रीदण्डीमौनीसोपानत्कोयुगमात्रदृक्विचरेत् १७

सुंदर वेश रक्खै—केशोंका प्रसाधन ( धोना आदि ) करें मस्तक श्रोत्र पाद इनमें नित्य तेल लगावें—धूम्रपान करें—पहिले भाषण करें—शोभन मुख रहै—दुर्ग

( कठिन ) कार्योंकी प्राप्तिमें होम करें—यज्ञ—करै दान दे—चतुष्पथोंको नमस्कार करें—बलिदान करें—अतिथियोंको पूजें—पितरोंको पिंड दे समयपर हित प्रमित मधुर अर्थको कहें—अपने धर्म आत्माको वशमेंरक्खै—कारणमें बलवान्रहै—फलकी ईर्ष्या न करें—चिंता भय न करें—बुद्धिमान् लज्जावान् महोत्साही चतुर रहै—क्षमा शील धार्मिक आस्तिक नम्र बुद्धि रहै—विद्या कुल आयु इनसे वृद्धोंकी सिद्ध और आचार्योंकी सेवा करें—छत्र दंड मौन उपानह इनको धारें—युगभर आगे दृष्टि रखकर विचरे ॥ १७ ॥

मङ्गलाचारशीलःकुचैलास्थिकण्ठकामेध्यकेशतुपोत्करभस्मकपालस्नानबलिभूमीनांपरिहर्ता प्राक्श्रमाद्व्यायामवर्ज्यस्यात् । सर्वप्राणिपुबन्धुभूतःस्यात्क्रुद्धा नामनुनेताभीतानामाश्वासयिता दीनानामभ्युपपत्ता । सत्यसन्धः । सामप्रधानः । परपरुपवचनसहिष्णुःअमर्षघ्नः । प्रशमगुणदर्शी १८

मंगल आचरणमें शील रक्खै—निंदित वस्त्र अस्थि कंटक अपवित्र केश तुषोंका समूह भस्म कपाल—स्नान बलि इनकी भूमियोंको त्याग दे—श्रमके कामसे पहिले व्यायामको वर्ज दे—संपूर्ण प्राणियोंका बंधु रहै क्रुद्ध मनुष्योंकी प्रार्थना करें—भीतोंको विश्वास दे—दीनोंका पालन करें—

सत्य बोलै—शांतिकों प्रधान समझै—परायं  
कठोर वचनको सहै क्रोधको नष्ट करै—  
शांतिके गुणोंको देखै ॥ १८ ॥

रागद्वेषहेतूनांहन्ता ॥ नानृतं ब्रू-  
यात् ॥ नान्यस्वमादीत। नान्य  
स्त्रियमभिलषेत् । नान्यश्रियं  
न वैररोचयेत् । न कुर्यात् पापं न  
पापेऽपि पापी स्यात् ॥ नान्यदो-  
षान् ब्रूयात् । नान्यरहस्यमाग-  
मयेत् ॥ १९ ॥

रागद्वेषके हेतुओंको नष्ट करै—झूठ  
न बोलै—अन्यके धनको ग्रहण न करै  
न अन्यकी स्त्रीकी इच्छा करै अन्यकी  
लक्ष्मी और वैरमें रुचि न करै—न  
पापको करै न पापमें पापी बनै न अन्यके  
दोषोंको कहै न अन्यके रहस्य ( गुप्त )  
को प्रसिद्ध करै ॥ १९ ॥

नाधार्मिकैर्न नरेन्द्रद्विष्टैः सहासी-  
त । नोन्मत्तैर्न पतितैर्न भ्रूणहन्तृ-  
भिर्न क्षुद्रैर्न दुष्टैः ॥ न दुष्टयाना-  
न्यारोहेत् । न जानुसमंकठिनमा-  
सनमध्यासीत् ॥ २० ॥

अधार्मिक और राजाके वैरियोंके  
संग न बैठै—और उन्मत्त पतित भ्रूण  
हत्यारें क्षुद्र दुष्ट इनके संग न बैठै—न दुष्ट  
यानोंपर चढ़ै—जानुओंके समान उंचे कठिन  
आसनपर न बैठै ॥ २० ॥

नानास्तीर्णमनुपहितमविशाल-  
मसमं वाशयनं प्रपद्येत् । न गिरि-  
विपममस्तकेऽप्यनुचरेत् ॥ न द्रु-  
ममारुहेत् । न जलोग्रवेगमवगा-  
हेत् । कुलच्छायां नोपासीत ।  
नाग्न्युत्पातमभितथरेत् । नो-  
चैर्हसेत् ॥ न शब्दवन्तं मारुतं मु-  
ञ्चेत् ॥ नासंवृतमुखो जृम्भांश्च  
थुंहास्यं वा प्रवर्त्तयेत् । न नासिकां  
कुष्णीयात् । न दन्तान् विधृष्टये-  
त् । न नखान् वा दयेत् ॥ नास्थी-  
न्यभिहन्यात् । न भूमिं विलिखे-  
त् । न छिंध्यात्तृणम् ॥ न लोटं  
भृक्षीयात् ॥ २१ ॥

विछोना रहित—नष्ट—असुंदर अस-  
मान जो शय्या उस पर शयन न करै—  
पर्वतकी विपम शिखरोंपर न विचरै—वृक्ष  
पर न चढ़ै—उग्र वेगके जलमें अवगाहन  
न करै—कुलकी छायाकी उपासना न  
करै—अग्निके उत्पातके चारों तरफ न  
विचरै—उंचे स्वरसे न हंसै—शब्दवाले  
अधो वायुको न छोड़ै—खुले मुखसे  
जुंभा छीक हास्य इनको न करै नासिका  
को न खींचै दांतोंको आपसमें न घिसै—  
न खोंको न वजावै—अस्थियोंका हनन न  
करै—भूमिपर न लिखै—तृणका छेदन न  
करै—ढेलाका मर्दन न करै ॥ २१ ॥

न विगुणसङ्गैश्चेष्टेत् । ज्योतींष्य

द्विध्वामेध्यमशस्तश्चनाभिर्विक्षेत्  
नहुंकुर्याच्छवम् । नचैत्यध्वज  
गुरुपूज्याशस्तच्छायामाक्रामेत्  
नक्षपास्वमरसदनचैत्यचत्वरचतु  
ष्पथोपवनश्मशानायतनान्यासेवे  
त् । नैकःशून्यगृहंनचाटवीमनु  
प्रविशेत् । नपापवृत्तान्स्वीयमित्र  
भृत्यान्भजेत् । नोत्तमैर्विरुध्येत्  
नावरानुपासीतनजिह्वरोचयेत् ।  
नाऽनार्यमाश्रयेत् । नभयमुत्पा  
दयेत् । नसाहसातिस्वप्नप्रजागर  
स्नानपानाशनान्यासेवेत् । नोद्ध  
जानुश्चिरंतिष्ठेत् । नव्यालानुपस  
र्पेन्नदंष्ट्रिणःनविपाणिनः । पुरो  
वातातपावश्ययातिप्रवातान्ज  
ह्यात्कलिनारभेत् । नानिभृतोऽ  
ग्निमुपासीत । नोच्छिष्टोनाथःकृ  
त्वाप्रतापयेत् । नाविगतक्लमोना  
नाप्लुतवदनोननग्रउपस्पृशेत् । न  
स्नानशाट्यास्पृशेदुत्तमाङ्गम् ।  
नकेशाग्राण्यभिहन्यात् । नोपस्पृ  
शेतएववाससीविधृयात् । नास्पृ  
ष्टारत्नाज्यपूज्यमङ्गलसुमनसोऽ  
भिनिष्क्रामेत् । नपूज्यमङ्गला  
न्यपसव्यंगच्छेत् । नेतराण्यनु  
दक्षिणम् ॥ २२ ॥

निगुणोंके संगोंमें चेष्टा न करै—तारागण  
अग्नि अपवित्र प्रशस्तसे भिन्न इनके संमुख  
न देखै—शवको हुंकार शब्द न कहै—  
चैत्य ध्वजा गुरु पूज्य अश्रेष्ठ इनकी छाया  
में न जाय—रात्रिके समयमें देव मंदिर  
चैत्य चत्वर—चतुष्पथ पवन श्मशान इतने  
स्थानोंमें न बसै—एकाकी शून्य घर और  
वनमें प्रवेश न करै और पापी स्त्री मित्र  
भृत्योंका सेवन न करै—उत्तमोंके संग  
विरोध न करै—छोटोंकी सेवा न करै कप-  
टमें रुचि न रखै—अनार्यका आश्रय  
न ले—किसीके लिये भयका पैदा न करै—  
और साहस अत्यंत स्वप्न जागरण स्नान  
पान भोजन इनको अधिक न करै—ऊप-  
रको जानु किये चिरकालतक न बैठै—  
सर्प—दंष्ट्री सींगवाले इनके पीछे न भागै—  
पूर्वकी पवन धूप अवश्यय ( शीत )  
अति प्रवाह ( पवन ) इनको त्याग दे—  
कलहको न करै—अग्निहोत्र धारण  
किये विना अग्निकी उपासना न करै—न  
उच्छिष्ट होकर नीचे रखकर अग्निसे न तापै  
ग्लानिको त्यागे विना मुखको धोये विना  
और नग्नहुआ अग्निका स्पर्श न करै स्नानकी  
धोतीसे उत्तम अंगका स्पर्श न करै केशोंके  
अग्रभागोंको न काटे न स्पर्शकरै दोवस्त्रोंको  
धारणकरै रत्न धी पूज्य मंगलपुष्प इनका  
स्पर्श कियेविना घरसे बाहिर न निकसै  
पूज्य और मंगलकी वस्तुओंके वामभा-  
गसे गमन न करै और अन्योके दक्षिण  
भागकी न जाय ॥ २२ ॥

नारत्नपाणिर्नास्नातो नोपहतवासा

नाऽजपित्वानाहुत्वादेवताभ्योऽना  
रूप्यपितृभ्योनाऽदत्त्वा ॥ गुरुभ्यो  
नातिथिभ्योनोपाश्रितेभ्योनापुण्यग  
न्धोनामालीनाप्रक्षालितपाणिपाद  
वदनोनाऽशुद्धमुखोनोदङ्मुखानविम  
नाभक्ताशिष्टाशुचिशुधितपरिचरो  
नापात्रीष्वमेध्यासुनादेशोनाऽकाले  
नाकीर्णेनाऽदत्त्वाग्रमग्नयेनाप्रोक्षितं  
प्रोक्षणोदकैर्नमन्त्रैरनभिमन्त्रितं  
कुत्सयन्नकुत्सितंनप्रतिकूलोप  
हितमन्नमाददीत । नपर्युषितम  
न्यत्रमांसहरितकशुष्कशाकफल  
भक्ष्येभ्यः ॥ २३ ॥

रत्नोंको हाथमें धारेंदि ॥ स्नानके विना  
फटे वस्त्रोंको धारकर विना जपकिये विना  
होमकिये देवताओंको दियेविना पितर  
गुरु अतिथि आश्रित इनको दियेविना  
पवित्र गंधमाला धारेंविना पाणि पादमुख  
इनको धोयेविना अशुद्ध मुखहुये उत्तरको  
मुखकिये उदासीन हुये भक्तसे शेष  
अशुद्ध शुधित परिवार अपवित्र पात्रोंमें  
देशकालके विना आकीर्ण ( भीड़ ) में  
पहिले अग्रिको दियेविना जो प्रोक्षित  
नहो प्रोक्षणके जल और मंत्रोंसे जो  
अभिमन्त्रित न हो अन्नकी निंदा करता  
हुआ और निंदित अन्नको और अना-  
दरसे दिये अन्नको भक्षण वाग्रहण न करे  
और पर्युषित ( वासी ) अन्नको इनको

छोडकर नखाय कि मांस हरित शुष्क  
शाक फल भक्ष्य ॥ २३ ॥

नाऽशेषभुक्स्यादन्यत्रदधिमधुलव  
णसक्तुसर्पिभ्यः ॥ ननक्तंदधिमुञ्जी  
त । नसक्तूनेकानश्रीयात् ॥ २४ ॥

और दधि मधु लवण सक्तू घी इनको  
छोडकर अशेष (सब)का भक्षण नकरे २४  
ननिशिनभुक्त्वानवहून्नाद्विर्नाद  
कान्तरितान् ॥ २५ ॥

रात्रिमें दधि न खाय और अकेले  
सत्तुओंको न खाय और न रात्रिमें-  
न भोजनके अनंतर-न बहुत न दो बार,  
न जलके अंतरायसे सत्तुओंका भक्षण  
करे ॥ २५ ॥

नछित्वाद्विजैर्भक्षयेत् ॥ नाऽनृ  
जुःक्षुयान्नाद्यान्नशयीत । नवेगि  
तोऽन्यकार्प्यःस्यात् । नवाय्व  
ग्निसलिलसोमार्कद्विजगुरुप्रतिमु  
खंनिष्ठीविकावातवच्चामूत्राण्युत  
सृजेत् ॥ नपन्थानमवमूत्रयेत्  
नजनवतिनान्नकाले । नजप्यहो  
माध्ययनबलिमङ्गलक्रियामुश्ले  
ष्मसिंघानकंमुञ्चेत् । नस्त्रियम  
वजानीत । नातिविश्रम्भयेत् ।  
नगुह्यमनुश्रावयेन्नाधिकुर्ग्यात् ॥  
नरजस्वलांनातुरांनामेध्यांनाश  
स्तांनानिष्टरूपाचारोपचारांनाद

क्षिणांनाकामांनान्यकामांनान्य  
स्त्रियंनान्ययोनिनायोनौनचैत्य  
चत्वरचतुष्पथपवनश्मशानायत  
नसलिलौषधिद्विजगुरुसुरालयेषु  
नसन्ध्ययोर्नातिननिपिद्धतिथि  
पुनाशुचिर्नजग्धभेषजोनाप्रणीत  
सङ्कल्पोनानुपस्थितप्रहर्षानामुक्त  
वान्नात्यशितोनविपमस्थोनमू  
त्रोच्चारपीडितोनश्रमव्यायामोप  
वासकृमाभिहतोनाऽरहसिव्यवा  
यंगच्छेत् ॥ २६ ॥

न छीनकर ब्राह्मणोंके संग भक्षण  
करै और कठोर होकर जलपान भोजन  
शयन इनको न करै और वेगसे अन्य  
कार्यमें आसक्त न हो—और वायु अग्नि  
जल चंद्रमा सूर्य द्विज गुरु इनके सन्मुख  
थूक अधोवायु मल मूत्र इनको न त्यागै—  
मार्गमें मूत्र न करै—मनुष्यवाले देशमें  
अन्नके समयमें जप होम अध्ययन बलि  
मंगलके कार्य इनमें कफ-सिणकका त्याग  
न करै—स्त्रीकातिरस्कार न करै और न  
अत्यंत विश्वासकरै गोप्य वस्तुको न सुनावै  
न आधि(मनसंताप)को करै और रजस्वला  
रोगिन अपवित्र अनुत्तम अनिष्टरूप  
आचरण वाली अचतुर कामनारहित  
अन्यपुरुषकी कामनावती अन्यकी स्त्री  
अन्ययोनि इतनी स्त्रियोंके संग और

योनिसे भिन्नमें चैत्य चत्वर चतुष्पथ  
पवन श्मशान जल औषधि द्विज गुरु देव  
मंदिर इनमें संध्याओंके समय अत्यंत  
अधिक निपिद्ध तिथियोंमें अशुद्ध हुये  
औषधि खाकर संकल्प किये विना आनंद  
हुये विना भोजन किये विना अत्यंत  
भोजन करके विपम अवस्थामें स्थित  
मूत्रके त्यागनेसे पीडित श्रम व्यायाम  
उपवास ग्लानि इनसे पीडित सबके प्रत्यक्ष  
मैथुनको न करै ॥ २६ ॥

नसतो न गुरुन् परिवदेत् । नाशु  
चिरभिचारकर्मचैत्यपूज्यपूजा  
ध्ययनमग्निनिवर्त्तयेत् । न विद्यु  
त्स्वनार्त्तवीपुनाभ्युदितासुदिक्षु  
नागिसंप्लवेन भूमिकम्पेन महोत्स  
वेनोल्कापातेन महाग्रहोपगमनेन  
ष्टचन्द्रायां तिथौ न सन्ध्ययोर्न मु  
खादुरोर्नावपतितं नातिमात्रं न तान्तं  
न विस्वरं नानवस्थितपदं नातिद्रुतं  
विलम्बितं नातिक्लीबं नात्युच्चैर्गा  
तिनीचैः । स्वरैरध्ययनमध्यसे  
त् । नातिसमयं द्रुह्यात् । न नित्य  
मभिन्यात् ॥ २७ ॥

सज्जन और गुरुओंकी निंदा न करै  
अशुद्ध हुआ अभिचार कर्म (मारण) चैत्य  
पूज्यकी पूजा अध्ययन इनको न करै विज  
लीके शब्दसे दुःखित और अभ्युदित दिशा  
ओंके होने पर अग्निके संप्लव(नाश)में भूमि

केकंपमे महान् उत्सवमें उल्काके पड़नेपर  
महान् ग्रहोंके उपगमनमें नष्ट चंद्र तिथिमें  
संध्याओंके समयमें गुरुके मुखसे श्रवण  
क्रिये बिना—और अत्यंत अधिकता जिसके  
अंतमें हो जो स्वरसंहीन हो जिसके पद  
पृथक् २ न हो अत्यंत शीघ्र और विलं-  
वसे और क्लीवरूपसे अत्यंत ऊंचे अत्यंत  
नीचे स्वरसे इतने प्रकारसे अध्ययनको न  
करै—समयका अत्यंत द्रोह न करै (वृथा न  
खोवै ) नियमको न छोडै ॥ २७ ॥

न नक्तं नादेशे चरेत् ॥ न सन्ध्या  
स्वम्यवहाराध्ययनस्त्रीस्वप्नसेवी  
स्यात् । न बालवृद्धलुब्धमूर्खक्लि-  
ष्टक्लीबैः सह सख्यं कुर्यात् ॥ न  
मद्यभूतवेश्याप्रसङ्गरुचिः स्यात् ।  
न गुह्यं निवृणुयात् ॥ न काश्चिदव-  
जानीयात् । नाहंमानी स्यात् ।  
न दक्षो नादक्षिणो नासूयको न दक्षि-  
णान् परिवदेत् ॥ न गवां दण्डमु-  
द्यच्छेत् ॥ न वृद्धान् न गुरुन् न ग-  
णान् न नृपान् वाधिक्षिपेत् न चा-  
तिब्रूयात् ॥ न बान्धवान् रक्तकृच्छ्रा-  
द्वितीयगुह्यज्ञान् बहिः कुर्यात् २८

रात्रिमें और कुदेशमें न विचरै—संध्या-  
ओंमें भोजन अध्ययन स्त्री शयन इनका  
सेवन न करै—बालक वृद्ध लोभी मूर्ख  
क्लेशित नपुंसक इनके संग मित्रता न  
करै, मदिरा जूआ वेश्या इनके प्रसंगमें

रुचि न करै गुह्य वस्तुको छिपावै—किसीका  
तिरस्कार न करै अहंकारी न हो—चतुर  
अचतुर न हो किसीकी असूया (निंदा)  
न करै चतुरोंके संग विवादको न करै  
गौओंपर दंडको न उठावै—और वृद्ध  
गुरु-गण ( पिता आदि ) राजा इनकी  
निंदा न करै न इनके संग अत्यंत बोलै—  
बांधवोंमें अनुरक्तके कष्टके अद्वितीय  
गुह्यके जो ज्ञाताहैं उनको बाहिर न करै २८

नाधीरो नात्युच्छ्रितसत्त्वः स्यात् ।  
नाभृतभृत्यो न विश्रब्धास्वजनानै-  
कः सुखी ॥ न दुःखशीलाचारो  
पचारो न सर्वविश्रम्भी । न सर्वाभि-  
शङ्की ॥ न सर्वकालविचारी ॥  
न कार्ग्यकालमतिपातयेत् ॥ ना-  
परीक्षितमभिनिविशेत् । नेन्द्रि-  
यवशगः स्यात् ॥ २९ ॥

अधीर अत्यंत ऊंचे सत्त्व गुणवान्  
न हो भृत्योंके पालनको न त्यागै जिसका  
अपने जनोंको विश्वास न हो ऐसा और  
एक सुखी न रहे और दुःखशील आच-  
रण उपचार न रहे सबको विश्वास न दे  
ऐसा न रहे जिससे सब शंका मानें सर्व  
कालमें विचारवान् न रहे कार्यके समयका  
अवलंबन न करै बिना परीक्षा क्रिये  
आग्रहको न करै इंद्रियोंके वशमें न रहे २९

न चञ्चलमनो भ्राभयेत् । न बुद्धीन्द्रि-  
याणामतिभारमादध्यात् ॥ न  
चातिदीर्घसूत्रि स्यात् । न क्रोध

हर्षावनुविदध्यात् । नशोकमनु  
वशेत् । नसिद्धावुत्सौक्यंगच्छे  
न्नासिद्धौदन्यम् । प्रकृतिमभी  
क्षणंस्मरेत् । हेतुप्रभावनिश्चितः  
स्यात् ॥ हेतवारंभनित्यश्च ।  
नकृतमित्याश्वसेत् ॥ नवीर्यंज  
ह्यात् । नापवादमनुस्मरेत् ॥ ३० ॥

चंचलतासे मनको न भ्रमावै बुद्धि  
और इंद्रियोंके अत्यंत भारको धारण न  
करै अत्यंत दीर्घसूत्री न हो और क्रोध  
और हर्षको न करै ( सम रहै ) शोकके  
वशमें न हो कार्यकी सिद्धि होनेपर उत्साह  
को प्राप्त नहो असिद्धिमें दीनता न करै  
अपनी प्रकृतिका वारंवार स्मरण करै  
हेतुके प्रभावमें निश्चय रखै हेतुके  
प्रारंभको नित्य करै ऐसा विश्वास न दे  
कि मैं कार्य करादिया वीर्यका त्याग न  
करै निंदाका स्मरण न करै ॥ ३० ॥

नाशुचिरुत्तमाज्याक्षततिलकुश  
सर्पपैरद्भिर्जुहुयात् । आत्मानमा  
शीर्षिराशासानः ॥ अग्निर्सेनाप  
गच्छेच्छरीरात् । वायुर्मेप्राणा  
नादधातु । विष्णुर्मेबलमादधातु ।  
इन्द्रोमेवीर्यंशिवांमांप्रविशंस्त्वा  
पः ॥ आपोहिष्टेत्यपःस्पृशेत् ॥  
द्विःपरिमृजेदोष्ठौपदौचाभ्युक्ष्यमू  
र्ध्निखानिचोपस्पृशेत् । अद्विरा

त्मानंहृदयंशिरश्चब्रह्मचर्यज्ञान  
दानमैत्रीकारुण्यहर्षापेक्षाप्रशमप  
रश्चस्यादिति ॥ ३१ ॥

अशुद्ध होकर उत्तम घी अक्षत तिल  
कुशा सरसों इनसे अग्निमें होम न करै—  
अपने आत्माको आशीर्वाद चाहता हुआ  
अग्नि मेरे शरीरमें से न जाओ—वायु मेरे  
प्राणोंको पुष्ट करो विष्णु मुझे बल दो  
इंद्रमुझे वीर्य दो—कल्याण रूपजल मेरेमें  
प्रवेशकरो आपो हिष्टा० इत्यादि मंत्रोंसे  
जलका स्पर्शकरै—दोवार ओष्ठोंका मार्जन  
करै—चरणोंमें जल छिड़क कर मस्तक  
और छिद्रोंका स्पर्श करै—जलसे आत्मा  
हृदय शिरका स्पर्श करै—ब्रह्मचर्य ज्ञान  
दान मैत्री दया आनंद इनकी अपेक्षा  
और शांतिमें तत्पर रहै ॥ ३१ ॥ इति

अत्र श्लोकाः ।

पञ्चपञ्चकमुद्दिष्टमनोहेतुचतुष्टय  
म् । इन्द्रियोपक्रमेऽध्यायेसद्वृत्त  
मखिलेनच ॥ ३२ ॥

इसमें ये श्लोक हैं कि मन और चारों  
हेतु पांच२ कहे इस इंद्रियोपक्रमआध्या  
यमें संपूर्ण सदाचरणकहा ॥ ३२ ॥

स्वस्थवृत्तयथोद्दिष्टंयःसम्यगनुति  
ष्ठति । ससमाःशतमव्याधिरायु  
षानवियुज्यते ॥ ३३ ॥

यथार्थ कहेहुये स्वस्थ वृत्तको जो भली  
प्रकार करता है वह सौ वर्षतक व्याधि



रहित होकर अवस्थासे हीन नहीं होता ॥ ३३ ॥

नृलोकमापूरयतेयशसासाधुसम्म  
तः । धर्मार्थैवेतिभूतानांबन्धता  
मुपगच्छति ॥ ३४ ॥

सज्जनोंका संमत वह अपने यशसे  
मनुष्य लोकको पूर्ण करताहै—धर्म अर्थ  
जो भूतोंके बंधन को प्राप्त होते हैं । ३४

परान्सुकृतिनोलोकान्पुण्यकर्मा  
प्रपद्यते । तस्माद्वृत्तमनुष्ठेयमिदं स  
र्वेण सर्वदा ॥ ३५ ॥

इससे पुण्य कर्मा मनुष्य उत्तम सुकृति  
योंके लोकको प्राप्त होताहै तिससे सब  
मनुष्य सर्वकालमें इस पूर्वोक्त वर्तावको  
करें ॥ ३५ ॥

यच्चान्यदपिकिञ्चित्स्यादनुक्तमि  
ह पूजितम् । वृत्तं तदपि चात्रेयः स  
दैवाभ्यनुमन्यते ॥ ३६ ॥

इति स्वस्थवृत्तचतुष्कः ॥ अग्निवेशकृ  
ते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते इन्द्रियो  
पक्रमणीयोऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

जो कुछ अन्यभी यहां नहीं कहाहै  
और श्रेष्ठहै उसवर्तावकोभी आत्रेय सदैव  
मानतेहैं ॥ ३६ ॥

इति स्वस्थवृत्तचतुष्कः अग्निवेशकृते तन्त्रे  
चरकप्रति संस्कृते पं० मिहिरचंद्रकृत भाषा  
विवृतौ इन्द्रियोपक्रमणीयो नामाष्टमोऽ  
ध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

अथातः खुड्डाकचतुष्पादमध्या  
यं व्याख्यास्यामः ॥

इति हस्माह भगवानात्रेयः ॥

अब खुड्डाक चतुष्पाद अध्यायका वर्णन  
करतेहैं—यह भगवान् आत्रेयजीने कहाहै

भिषग्द्रव्याण्युपस्थातारोगीपाद  
चतुष्टयम् । गुणवत्कारणं ज्ञेयं वि  
कारव्युपशान्तये ॥ १ ॥

कि, वैद्य द्रव्य उपस्थाता रोगी  
ये चारों पाद गुणवान् होंयतो विकारकी  
शांतिके लिये कारण समझना ॥ १ ॥

विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृति  
रुच्यते । सुखसंज्ञकमारोग्यं वि  
कारो दुःखमेव च ॥ २ ॥

धातुओंकी विषमताको विकार और  
समताको प्रकृति कहतेहैं सुखको आरोग्य  
और दुःखको विकार कहतेहैं ॥ २ ॥

चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानां धातु  
वैकृते । प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्थाच्चि  
किंसेत्यभिधीयते ॥ ३ ॥

उत्तम जो चारों वैद्य आदिहैं उनकी  
जो धातुओंके विकारमें धातुओंकी समता  
के लिये प्रवृत्तिहै उसको चिकित्सा कहतेहैं  
श्रुते पथ्यवदातृत्वं बहुशो दृष्टकर्म

ता । दाक्ष्यंशौचमितिज्ञेयवैद्येगु  
णचतुष्टयम् ॥ ४ ॥

श्रुतकार्प्यवदाता ( निश्चयवान् )  
हो बहुतसे कर्म जिसने देखेहों चतुरता  
औरशौचहोये चारगुण वैद्यमें होतेहैं॥४॥

बहुतातत्रयोग्यत्वमनेकविधकल्प  
ना । सम्पचेतिचतुष्कोऽयं द्र  
व्याणांगुणउच्यते ॥ ५ ॥

अधिकता और उनमें योग्यता और  
अनेक प्रकारकी कल्पना और संपदा ये  
चार द्रव्यों ( औषधिके ) गुण कहेंहैं ५  
उपचारज्ञतादाक्ष्यमनुरागश्चभर्त्त  
रि । शौचश्चेतिचतुष्कोऽयंगुणः  
परिचरेजेने ॥ ६ ॥

उपचार (सेवा)काज्ञान चतुराई स्वामी  
में प्रीति और शौच ये चार गुण सेवक  
मनुष्यमें कहेंहैं ॥ ६ ॥

स्मृतिर्निर्देशकारित्वमभीरुत्वम  
थापिच । ज्ञापकत्वञ्चरोगाणा  
मातुरस्यगुणाःस्मृताः ॥ ७ ॥

स्मरण-आज्ञाको करना और अभी-  
रुता और रोगोंका बोधक ये चार गुण  
आतुरमें कहेंहैं ॥ ७ ॥

कारणषोडशगुणंसिद्धौपादचतुष्ट  
यम् । विज्ञाताशासितायोक्ताप्र  
धानंभिपगत्रतु ॥ ८ ॥

ये सोलह गुण चारों पाद सिद्धिमें  
कारण होते हैं और इनमें विशेष कर  
ज्ञाता शिक्षक योजनकर्ता जो भिषकहैं  
वह प्रधान है ॥ ८ ॥

पक्तौहिकारणंपक्तुर्यथापात्रेन्ध  
नानलाः । विजेतुर्विजयेभूमिश्च  
मूःप्रहरणानिच ॥ ९ ॥

जैसे पाचकके पकानेमें पात्र इंधन  
आगि कारण हैं और विजयकर्ता के  
विजयमें भूमि सेना और शस्त्र कारण  
हैं ॥ ९ ॥

आतुराद्यास्तथासिद्धौपादाःकार  
णसंज्ञिताः । वैद्यस्यातश्चिकित्सा  
यांप्रधानंकारणंभिषक् ॥ १० ॥

तिसी प्रकार आतुरआदि चारों पाद  
सिद्धिमें कारण कहे हैं-इससे वैद्यक  
को चिकित्सामें प्रधान कारण भिषक्  
होताहै ॥ १० ॥

मृदण्डचक्रसूत्राद्याःकुम्भकारा  
दृतेयथा । नावहन्तिगुणंवैद्याद  
तेपादत्रयंतथा ॥ ११ ॥

मिट्टी दंड चक्र सूत्र आदि जैसे  
कुंभ कारके बिना गुणको नहीं देते  
अर्थात् घटको नहीं बनासकते तिसी  
प्रकार वैद्यके बिना तीनों पाद गुणदाय-  
क नहीं होते ॥ ११ ॥

गन्धर्वपुरवन्नाशंयद्विकाराःसुदा  
रुणाः । यान्तियच्चेतरेवृद्धिमाशू  
पायप्रतीक्षिणः ॥ १२ ॥

जिससे महान् दारुणभी विकार गंधर्व  
पुरके समान नाशको और इतर (आरोग्य)  
जोहैं वे वृद्धिको उसके प्राप्त होतेहैं  
जो शीघ्र उपायको करताहै ॥ १२ ॥

सतिपादत्रयेज्ञाज्ञौभिपजावत्रका  
रणम् । वरमात्माहुतोज्ञेननचि  
कित्साप्रवर्त्तिता ॥ १३ ॥

तीन पादोंके होनेपर पंडित और मूर्ख  
वैद्य चिकित्सामें कारणहै—उनमें पंडित  
अपने आत्माकी होमको वर मानताहै  
परंतु चिकित्सामें प्रवृत्त नहीं होता ॥ १३ ॥

पाणिचारायथाचक्षुरज्ञानाद्भीति  
भीतवत् । नौमार्कतवशेवाज्ञोभि  
पक्चरतिकर्मसु ॥ १४ ॥

जलके प्रचारसे जैसे चक्षु तैसे अज्ञा-  
नसे भीतसेभी भीतके समान होताहै और  
पवनके वेगसे जैसे नौका डगमग होतीहै  
इसीप्रकार मूर्ख वैद्य कर्मोंको करताहै ॥ १४ ॥

यदृच्छयासमापन्नमुत्तार्यनिय  
तायुपम् । भिपग्मानौनिहन्त्या  
शुशतान्यनियतायुषाम् ॥ १५ ॥

जिसकी अवस्था नियतहै अकस्मात्  
प्राप्तहुये उसको नीरोग करकेभी अभि-  
मानी वैद्य उन सैकड़ोंको शीघ्र मार  
देताहै जिनकी अवस्थाका निश्चय नहीं  
है ॥ १५ ॥

तस्माच्छास्त्रेऽर्थविज्ञानेप्रवृत्तौक  
र्मदर्शने । भिपक्चतुष्टयेयुक्तःप्रा  
णाभिसरउच्यते ॥ १६ ॥

तिससे शास्त्र अर्थकाविज्ञान प्रवृत्ति  
कर्मदर्शन इन चारोंमें जो युक्त वैद्यहै  
उसको प्राणाभिसर कहतेहैं ॥ १६ ॥

हेतौलिङ्गेप्रशमनेरोगाणामपुनर्भ  
वे । ज्ञानंचतुर्विधंयस्यसराजाहु  
र्भिपक्त्वतमः ॥ १७ ॥

हेतु लिंग शांति रोगोंका फिर न  
होना इनचारों प्रकारोंका जिसको ज्ञानहै  
उस उत्तम भिपक्त्वको राजा कहतेहैं ॥ १७ ॥

शस्त्रंशास्त्राणिसलिलंगुणदोषप्रवृ  
त्तये । पात्रापेक्षीन्यतःप्रज्ञांचि  
कित्सार्थविशोधयेत् ॥ १८ ॥

शस्त्र और शास्त्र और जल ये गुण  
दोषकी प्रवृत्तिके लिये पात्रकी अपेक्षा कर-  
तेहैं इससे चिकित्साके लिये बुद्धिकी  
शुद्धिको करै ॥ १८ ॥

विद्यावितर्काविज्ञानंस्मृतिस्तप्त  
रताक्रिया । यस्यैतेषाङ्गुणास्त  
स्यनसाध्यमतिवर्त्तते ॥ १९ ॥

विद्या वितर्क विज्ञान स्मृति तत्परता  
क्रिया ये छःगुण जिसमें हैं वह साध्यका  
अवलंघन नहीं करताहै ॥ १९ ॥

विद्यामतिःकर्मदृष्टिरभ्यासःसिद्धि  
राश्रयः । वैद्यशब्दाभिनिष्पत्तौ  
बलमेकैकमप्यदः ॥ २० ॥

विद्या बुद्धि कर्ममें दृष्टि अभ्यास  
सिद्धि आश्रय वैद्य शब्दकी सिद्धिमें ये  
एक २ भी समर्थ हैं ॥ २० ॥

यस्यत्वेतेगुणाःसर्वेसन्तिविद्या  
दयःशुभाः । सवैद्यशब्दंसद्भूत  
महन्प्राणिसुखप्रदः ॥ २१ ॥

जिसमें ये विद्या आदि संपूर्ण शोभन गुण हैं वह उत्तम वैद्य शब्दके योग्य होनेसे प्राणियोंके सुखका दाता है २१ ॥

शास्त्रं ज्योतिः प्रकाशार्थदर्शनं बुद्धिरात्मनः । ताभ्यां भिषक् सुयुक्ताभ्यां चिकित्सन् अपराध्यति ॥ २२ ॥

ज्योतिके प्रकाशार्थ शास्त्रका दर्शन और अपनी बुद्धि, योग्य इन दोनोंसे चिकित्सा करता हुआ वैद्य अपराधका भागी नहीं होता ॥ २२ ॥

चिकित्सिते त्रयः पादायस्माद्वैद्यव्यपाश्रयाः । तस्मात्प्रयत्नमा

तिष्ठेद्भिषक् स्वगुणसम्पदि २३

चिकित्साके तीनों पाद जिससे वैद्यके आश्रय हैं तिससे वैद्य अपने गुणोंकी संपदामें महान् यत्न करे ॥ २३ ॥

मैत्रीकारुण्यमार्त्तपुशक्ये प्रीतिरुपेक्षणम् । प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यवृत्तिश्चतुर्विधेति ॥ २४ ॥

मित्रता और रोगियों पर दया शक्य रोगीमें प्रीति और स्वस्थ मनुष्योंकी उपेक्षा यह चार प्रकारकी वैद्योंकी वृत्ति हैं इति ॥ २४ ॥

तत्र श्लोकौ ॥

भिषग्जितां चतुष्पादं पादः पादश्चतुर्गुणः । भिषक् प्रधानं पादेभ्यो यस्माद्वैद्यस्तु यद्गुणः ॥ २५ ॥

इसमें ये दो श्लोक हैं कि भिषक्के जीतने हारोंके चारों पाद हैं और पाद २में चार २ गुण हैं पादोंसे वैद्य प्रधान है जिससे वैद्यभी उसी गुणवान् होता है ॥ २५ ॥

ज्ञानानि बुद्धिर्ब्राह्मी च भिषजां याचतुर्विधा । सर्वमेतच्चतुष्पादे खुड्डके सम्प्रकाशितमिति ॥

खुड्डाकचतुष्पादाध्यायः समाप्तः ॥ ९ ॥

ज्ञान और ब्राह्मी बुद्धि जो वैद्योंकी चार प्रकारकी होती है यह सब इस खुड्डाक चतुष्पाद अध्यायमें भली प्रकार प्रकाशित किया है ॥

खुड्डाक चतुष्पादाध्यायः समाप्तः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।

अथातो महाचतुष्पादमध्यायं व्याख्यास्यामः । इति हस्माद्भगवान्त्रेयः ॥

इसके अनंतर महाचतुष्पाद अध्यायका वर्णन करते हैं, यह भगवान् आत्रेयने कहा है—

चतुष्पादं षोडशकलं भेषजमिति भिषजो भाषन्ते । यदुक्तं पूर्वाध्याये षोडशगुणमितितद्रेषजम् ।

युक्तियुक्तमलमारोग्यायेति भगवान् पुनर्वसुरात्रेयः ॥ १ ॥

कि चतुष्पाद भेषज सोलह कलाका है यह वैद्य कहते हैं जो पहिले अध्यायमें कहा है कि सोलह गुणा है वह भेषज युक्तिसे होय युक्त तो आरोग्यके लिये

समर्थ है यह भगवान् पुनर्वसु आत्रेय कहते हैं ॥ १ ॥

नेतिमैत्रेयः किं कारणं दृश्यन्ते ह्यातुराः केचिदुपकरणवन्तश्च परिचाराः केचिदुपकरणवन्तश्च कुशलैश्च भिषग्भिरनुष्ठिताः समुत्तिष्ठमानास्तथा युक्त्वाश्वापरे भ्रियमाणास्तस्माद्भेषजमकिञ्चित्करं भवति २

आरोग्यके लिये समर्थ नहीं यह मैत्रेय कहते हैं क्या कारण है कि कोई २ आतुर ऐसे दीखते हैं उपकरणवाले—सेवकोंसे संपन्न आत्मवान् और कुशलवैद्योंसे चिकित्सित भली प्रकार उत्तिष्ठमान ( नीरोग ) और तिसी प्रकारसे युक्त भी अन्य भ्रियमाण दीखते हैं तिससे भेषज अकिञ्चित्कर ( निष्फल ) है ॥ २ ॥

तद्यथा ॥ श्वभेसरसिचप्रासिक्तमल्पमुदकम् ॥ नद्यांस्यन्दमानायां पांशुधाने पांशुमुष्टिप्रकीर्ण इति ॥ तथापरे दृश्यन्ते अनुपकरणाश्च परिचारिकाश्चानात्मवन्तश्च कुशलैश्च भिषग्भिरनुष्ठिताः समुत्तिष्ठमानाः । तथा युक्ता भ्रियमाणाश्वापरे यतश्च प्रतिकुर्वन्सिद्धयतिप्रतिकुर्वन् भ्रियते अप्रतिकुर्वन् भ्रियते ततश्चिन्त्यते भेषजमभेषजेनाविशिष्टमिति मैत्रेयः ॥ ३ ॥

सां ऐसे हैं श्वभ्र ( कुंड ) और सरमें सींचा अल्पजल—वहती हुई नदीमें पांशु धानमें पांशुकी मुष्टि प्रकीर्ण करदी तो कुछ नहीं करसकती—तैसेही अपरभी दीखते हैं कि उपकरणसे रहित—परिचारकसे शून्य आत्मवानोंसे भिन्न अकुशल वैद्योंसे चिकित्सित भली प्रकार उत्तिष्ठमान होजाते हैं तैसेही युक्त अपरभ्रियमाण दीखते हैं जिस प्रतीकार करताहुआ सिद्धिकोभी प्राप्त होता है—और प्रतीकार करताहुआ मरताभी है और प्रतीकार नहीं करताभी मरता है तिससे चिंताकी जाती है कि भेषज अभेषजसे विशिष्ट नहीं है यह मैत्रेय कहते हैं ॥ ३ ॥

मिथ्याचिन्त्यत इत्यात्रेयः किं कारणं ये ह्यातुराः षोडशगुणसमुदितेनानेन भेषजेनोपपद्यमाना इत्युक्तं तदनुपपन्नं न हि भेषजसाध्यानां व्याधीनां भेषजमकारणं भवति । येषु रातुराः केवलद्भेषजादृते समुत्तिष्ठन्ते ते पांसम्पूर्णभेषजोपपादानाय समुत्थानविशेषोऽस्ति यथा हि पतितं पुरुषं समर्थमुत्थानायोत्थापयन् पुरुषो बलमस्योपादध्यात् । सक्षिप्रतरमपरिक्लिष्ट एवोत्तिष्ठेत्तद्वत्सम्पूर्णभेषजोपलम्भादातुराः । ये चातुराः केवलद्भेषजादपि भ्रियन्ते न च सर्व एव ते भेषजोपपन्नाः स

मुक्तिप्रेरन् न हि सर्वव्याधयो भव  
तन्युपायसाध्याः ॥ ४ ॥

मिथ्याही चिंता करतेहैं यह आत्रेय  
कहतेहैं क्या कारण है कि जो मनुष्य  
आतुर सोलहगुने संपूर्ण इस भेषजसे युक्त  
भी मरतेहैं इत्यादि जो कहाहै सो ठीक  
नहीं क्योंकि भेषजकी साध्य जा व्याधीहैं  
उनका भेषज अकारण नहीं होता—और  
जो आतुर केवल भेषजके विना भली  
प्रकार उत्तिष्ठ मानतेहैं उनका संपूर्ण  
भेषजके उपपादनके लिये विशेष  
उद्योग नहींहै—जैसे कि पतित समर्थ  
पुरुषको उठानेके लिये उठाता हुआ पुरुष  
उसमें बलका उपाधान (सहारा) करताहै  
वह फिर अत्यंत शीघ्र विनाकेशके उठ  
जाताहै तैसेही संपूर्ण भेषजके उपलंभसे  
आतुर शीघ्र उठ जातेहैं—और जो आतुर  
केवल भेषजसे मरतेहैं वे संपूर्ण, भेषजसे  
उपपन्न नहीं होते और जो उठतेहैं वहां  
कुछ संपूर्ण व्याधि उपाय साध्य नहीं होती ४

न चोपायसाध्यानां व्याधीनामनु  
पायेन सिद्धिरस्ति न चासाध्यानां  
व्याधीनां भेषजसमुदायोऽस्ति न ह्य  
लं ज्ञानवान् भिषङ्मुमुर्षुमातुरमु  
त्थापयितुम् । परीक्ष्य कारिणो  
हिकुशला भवन्ति । यथाहियो  
गजोऽभ्यासनिवृत्त्यश्वा सोधनुरादा  
ये पुमपास्यन्नातिविप्रकृष्टे महति

कार्येनापवाधो भवति । सम्पा  
दयति चेष्टकार्यम् । तथाभि  
पक्स्वगुणसम्पन्न उपकरणवान् बी  
क्ष्य कर्मा रम्भमाणः साध्यरोगमन  
पराधः सम्पादयव्येवातुरमारोग्ये  
ण न तस्मान्न भेषजमभेषजे नावि  
शिष्टं भवति ॥ ५ ॥

और उपायसे साध्य व्याधियोंको विना  
उपायसे सिद्धि नहींहै और असाध्य  
व्याधियोंके लिये कोई भेषजका समुदा-  
य भी नहींहै क्योंकि ज्ञानवान् वैद्य मुमुर्षु  
आतुरके उठानेको समर्थ नहीं परीक्षासे  
जो कार्योंको करतेहैं वे कुशल होतेहैं जैसे  
वाण योगके मार्गका ज्ञाता नित्यका  
अभ्यासी वाणोंका क्षेपक, धनुषको लेकर  
वाणको फेंकता हुआ अत्यंत समीपके  
महान् कार्यमें बाधित नहीं होता और  
इष्ट कार्यका संपादन ( सिद्ध ) करताहै  
तिसी प्रकार अपने गुणोंसे संपन्न उपकर-  
णवान् और देखकर कर्मोंका प्रारंभ  
कर्ता साध्य रोगको अपराधता (नष्ट करता)  
है और आतुरको आरोग्यसे युक्त करताहै  
तिससे यह नहींहै कि भेषज अभेषजसे  
विशिष्ट नहीं ॥ ५ ॥

इदं चेदं च नः प्रत्यक्षं यदनातुरेण भे  
षजेनातुरं चिकित्सामः । क्षाम  
मक्षामेन कंशं दुर्बलमाप्याययामः ६  
और यह हमारे प्रत्यक्षहै कि अनातुर

भेषजसे आतुरकी चिकित्सा करै क्षामकी चिकित्सा अक्षामसे करै और दुर्बल कृशका आप्यायन पुष्टि करै ॥ ६ ॥

स्थूलमेदस्विनमपतर्पयामः ।

शीतेनोष्णाभिभूतमुपचरामः ।

शीताभिभूतमुष्णेनन्यूनान् धा

तूनूपूरयामः । व्यतिरिक्तान्हासय

मः । व्याधीन्मूलविपर्ययेणोपच

रन्तःसम्यक्प्रकृतौस्थापयामः ।

तेषांनस्तथाकुर्वतामयंभेषजसमु

दायः । कान्ततमोभवति ॥ ७ ॥

स्थूलमेदवान्का अपतर्पण करै—उष्णतासे अभिभूतका शीतसे उपचार करै—शीतसे अभिभूतका उष्णसे करै—न्यून धातुओंको पूर्ण करै अधिक धातुओंकी हानिको करै—व्याधियोंका मूलके विपरीत भावसे उपचार करके भलीप्रकार प्रकृतिमें स्थापन करै—तिस प्रकारसे करते हुये हमको यह भेषजका समुदाय अत्यंत कांत होताहै ॥ ७ ॥

भवन्तिचात्र ।

साध्यासाध्यविभागज्ञोज्ञानपूर्वचि  
कित्सकः । कालेचारभतेकर्म  
यत्तत्साधयतिध्रुवम् ॥ ८ ॥

इसमें ये श्लोकहैं कि साध्य असाध्यके विभागका ज्ञाता—बुद्धिसे चिकित्साका कर्ता और समयपर कर्मके प्रारंभका कारी जो है वह निश्चयसे कार्य सिद्धिको करलेताहै ८ ॥

स्वार्थविद्यायशोहानिमुपक्रोशम  
संग्रहम् । प्रामुयान्नियतवैद्योयो  
ऽसाध्यंसमुपाचरेत् ॥ ९ ॥

जो वैद्य असाध्यकी चिकित्सा करताहै वह स्वार्थ विद्या यश इनकी हानि और निंदा और असंग्रह इनको नियमसे प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥

सुखसाध्यंमतंसाध्यंकच्छसाध्य  
मथापिच । द्विविधश्चाप्यसाध्यं  
स्याद्याप्यंयदनुपक्रमम् १०

साध्यरोगी सुखसाध्य और कष्ट साध्यके भेदसे दो प्रकारका और असाध्यभी याप्य ( देखने योग्य ) और अनुपक्रम ( समीप जानेके अयोग्य ) भेदसे दो प्रकारका होताहै ॥ १० ॥

साध्यानांत्रिविधश्चाल्पमध्यमो  
त्कृष्टतांप्रति । विकल्पोनत्वसा  
ध्यानांनियतानांविकल्पना ११

और अल्प मध्यम उत्तम भेदसे साध्योंके तीन भेदोंमें विकल्पहै और नियत असाध्योंमें विकल्प नहींहै ॥ ११ ॥

हेतवःपूर्वरूपाणिरूपाण्यल्पानि  
यस्यच । नचतुल्यगुणोदूष्योन  
दोषःप्रकृतिर्भवेत् ॥ १२ ॥

जिसके हेतु पूर्वरूप रूप येतीनों अल्पहों और दूषणके योग्यमें तुल्य गुण नहीं प्रकृतिमें दोष नहीं ॥ १२ ॥

नचकालगुणस्तुल्योनदोषोदुरूप  
क्रमः । गतिरेकानवत्वश्चरोग  
स्योपद्रवोनच ॥ १३ ॥

कालके गुणभी तुल्य न हों और दोष  
चिकित्साके अयोग्य न हो एकही रोगकी  
गति हो रोग नया हो कोई उपद्रव न हो ॥ १३ ॥

दोषश्चैकःसमुत्पत्तौदेहःसर्वापध  
क्षमः । चतुष्पादोपपत्तिश्चसुख  
साध्यस्यलक्षणम् ॥ १४ ॥

और उत्पत्तिके समयमें एकही दोष हो  
और देह संपूर्ण औषधियोंके योग्य हो  
और चतुष्पाद भेषजकी उपपत्ति हो ये  
सुखसाध्यके लक्षणहैं ॥ १४ ॥

निमित्तपूर्वरूपाणारूपाणामध्यमे  
वले । कालप्रकृतिदुष्टानांसामा  
न्योऽन्यतमस्यच ॥ १५ ॥

निमित्त पूर्वरूप रूप इनका बल  
मध्यम हो काल प्रकृति दोष इनमें किसी  
एककी सामान्यता हो ॥ १५ ॥

गर्भिणीवृद्धवालानानात्युपद्रवपी  
डितम् । शस्त्रक्षाराग्रिकृत्याना  
मनवंरुच्छ्रोदोषजम् ॥ १६ ॥

गर्भिणी वृद्ध बालक इनको अत्यंत  
उपद्रवकी पीडा नहो-शस्त्र क्षार अग्रिका  
कृत्य ये पुराने हों और रुच्छ्र दोषसे  
उत्पन्न हों ॥ १६ ॥

विधादेकपथंरोगंनानातिपूर्णचतु

ष्पदम् । द्विपथंनानातिकालंवाक्क  
च्छ्रसाध्यंद्विदोषजम् ॥ १७ ॥

उसको एकपथ रोग जानै जिसके  
अत्यंत पूर्ण चतुष्पाद न हों और जो  
अतिकालका न हो उस द्विदोषज और  
रुच्छ्र साध्यको द्विपथ जानै ॥ १७ ॥

शेषत्वादायुषोयाप्यमसाध्यपथ्य  
सेवया । लब्ध्वाल्पसुखमल्पेन  
हेतुनाशप्रवर्त्तकम् ॥ १८ ॥

आयुका शेष होनेपर याप्य नामके  
असाध्यका पथ्यके सेवनसे उपचार करे-  
अल्प सुखको प्राप्त होकर अल्पही हेतुसे  
जो शीघ्र प्रवृत्त हो जाताहै ॥ १८ ॥

गम्भीरंबहुधातुस्थंमर्मसन्धिस  
माश्रितम् । नित्यानुशायिनरोगं  
दीर्घकालमवस्थितम् ॥ १९ ॥

गंभीर और बहुत धातु और मर्म-  
संधियोंमें स्थित और नित्य अनुशायी-  
दीर्घकालके टिके ॥ १९ ॥

विधाद्विदोषजंतद्वत्प्रत्याख्ये  
यंत्रिदोषजम् । क्रियापथमति  
क्रान्तंसर्वमार्गानुसारिणम् २०

उस रोगको द्विदोषज जानै वह और  
तिसी प्रकार त्रिदोषज रोग प्रत्याख्यान  
( नांही ) करने योग्य हैं- क्रिया करनेके  
अयोग्य और सबमार्गोंका अनुसारी  
होवे तो ॥ २० ॥



औत्सुक्यारतिसंमोहकरमिन्द्र  
यनाशनम् । दुर्बलस्यसुसंवृद्धं  
व्याधिसारिष्टमेवच ॥ २१ ॥

उत्साह अरति संमोह इनका कर्ता  
और इंद्रियोंका नाशक—और दुर्बलमनु  
ष्यके अत्यंत बढी और अरिष्टसहित  
व्याधि इनकोभी त्यागदे ॥ २१ ॥

भिपजाप्राक्परीक्ष्यैवंविकाराणां  
सुलक्षणम् । पश्चात्कार्यसमा  
रम्भःकार्यःसाध्येपुधीमता २२

इस पूर्वोक्त प्रकारसे विकारोंके लक्षणोंकी  
परीक्षा करके पश्चात् बुद्धिमान् वैद्यसाध्य  
रोगियोंकी चिकित्सा प्रारंभ करे ॥ २२ ॥

साध्यासाध्यविभागज्ञोयःसम्यक्  
प्रतिपत्तिमान् । नसमैत्रेयतुल्या  
नामिथ्याबुद्धिप्रकल्पयेदिति २३

हे मैत्रेय साध्य असाध्यके विभागका  
ज्ञाता जो उत्तमज्ञानवान् वैद्य है वह  
तुल्य रोगोंमें मिथ्या बुद्धिकी कल्पना  
नकरे—इति ॥ २३ ॥

तत्रश्लोकौ ।

इहौषधंपादगुणाःप्रभावौभेषजा  
श्रयः । आत्रेयमैत्रेयमतीमतिद्वै  
विध्यनिश्चयः ॥ २४ ॥

उसमें ये दो श्लोक हैं इसमें औषध पाद  
गुण भेषजका प्रभाव आत्रेय और मैत्रेय  
की बुद्धियोंमें दो प्रकारकी मत्तिका  
निश्चय है ॥ २४ ॥

चतुर्विधविकल्पाश्रव्याधयःस्व  
स्वलक्षणाः । उक्तामहाचतुष्पा  
देयेष्वायत्तंभिपगुजितमिति २५

अग्नीत्यादि ॥ महाचतुष्पादाध्यायःसमाप्तः॥

चार प्रकारके विकल्प, अपने २ लक्ष  
णकी व्याधि ये सब महा चतुष्पाद  
अध्यायमें कही हैं जिनके अधीन वैद्यका  
जय है ॥ २५ ॥

अग्नी दत्यादि ॥ महाचतुष्पादाध्यायःसमाप्तः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातस्तिस्त्रैपणीयमध्यायं व्या  
ख्यास्यामः ॥ इतिहस्माहभग  
वानात्रेयः ।

इसके अनंतर तिस्रैपणीय अध्यायको  
कहते, हैं यह भगवान् आत्रेयने कहा है—  
इहस्वलुपुरुषेणानुपहतसत्त्वबुद्धि  
पौरुषपराक्रमेणहितमिहचामुष्मि  
श्र्लोकेसमनुपश्यतातिस्रैपणाः  
पर्य्येष्टव्याभवन्ति ॥ १ ॥

इस संसारमें जिसके सत्त्व बुद्धि पुरु-  
षार्थ पराक्रम विद्यमानहैं उस पुरुष को  
इस लोक और पर लोकके हितको भली  
प्रकार देखकर तीन एषणा ( इच्छा )  
मानने योग्य हैं ॥ १ ॥

तद्यथा । प्राणैषणाधनैषणापर  
लोकैषणेतिआसान्तुखल्वेषणा  
नांप्राणैषणांतावत्पूर्वतरमापद्येत

कस्मात्प्राणपरित्यागेऽहिंसे  
त्यागः । तस्यानुपालनं स्वस्थ  
स्य स्वस्थवृत्तिरातुरस्य विकारप्र  
शमनेऽप्रमादस्तदुभयमेतदुक्तं व  
क्ष्यते च । तद्यथोक्तमनुवर्त्तमानः  
प्राणानुपालनादीर्घमायुरवाप्नो  
तीति ॥ प्रथमैषणा व्याख्याता  
भवति ॥ २ ॥

वे ऐसे हैं कि प्राणैषणा धनैषणा  
और परलोकैषणा अर्थात् प्राण धन  
परलोक इनकी इच्छा—इन तीनों एषणा-  
ओंमें सबसे पहिले प्राणका एषणा को  
प्राप्त हो ( देखें ) क्योंकि प्राणके परित्या-  
गमें सबका परित्याग होता है—उस प्राणका  
पालन यह है कि स्वस्थकी स्वस्थवृत्ति—  
रोगी को रोगकी शांतिमें अप्रमाद वे दो-  
नों ये कहे और आगे कहेंगे—तिससे  
यथोक्तरीतिसे वर्ताव करता हुआ प्राणों  
के पालनसे दीर्घ अवस्था को प्राप्त हो-  
ता है पहिली एषणा का वर्णन हो चुका ॥

अथ द्वितीयां धनैषणामापद्यते ।  
प्राणैषणो ह्यनन्तरं धनमेव पर्य्यष्टव्यं  
भवति । न ह्यतः पापात् पापीयो  
ऽस्ति यदनुपरकणस्य दीर्घमायुः  
तस्मादुपकरणानि पर्य्यष्टुं यतेत  
तत्रोपकरणोपायाननुव्याख्या  
स्यामः ॥ ३ ॥

अब दूसरी धनकी एषणाको कहते  
हैं—कि प्राणोंके अनन्तर सब प्रकारसे  
धनकी इच्छा करनी क्योंकि इस पापसे  
परे कोई पापी नहीं कि उपकरण (सामग्री)  
से रहित मनुष्य दीर्घ अवस्थाको प्राप्त हो  
तिससे उपकरणोंकी इच्छाके लिये यत्न  
करे उसमें उपकरणोंके उपायोंको कह-  
ते हैं ॥ ३ ॥

तद्यथा । कृपि पाशुपाल्यवाणि  
ज्यराजोपसेवादीनि । यानि चान्या  
न्यान्पिसतामविगर्हितानि कर्मा  
णि वृत्तिपुष्टिकराणि विद्यात्तान्या  
रभेत कर्तुम् । तथा कुर्वन् दीर्घजीवि  
तमनुवसतः पुरुषो भवतीति ॥ द्वि  
तीया धनैषणा व्याख्याता भवति ॥

वे ये हैं कि, कृपि पशुओंकी पालना  
वाणिज्य राजसेवा आदि और जो  
अन्यभी सत्पुरुषोंके अनिन्दित-जीविकाकी  
पुष्टिके कर्ता कर्म समझें उनकेभी करनेका  
प्रारंभ करे—तिस प्रकार करता हुआ दीर्घ  
जीवितको भोगता हुआ पुरुष होता है  
दूसरी धनैषणाको कह चुके ॥ ४ ॥

अथ तृतीयां परलोकैषणामापद्येत  
संशयश्चात्र कथं भविष्याम इतश्च्यु  
तानवेतिकुतः पुनः संशय इति उच्य  
ते सन्ति ह्येके प्रत्यक्षपराः परोक्षत्वा  
त् पुनर्भवस्य नास्ति क्यमाश्रिताः  
सन्ति चागमप्रत्ययादेव पुनर्भवमि

च्छन्तिश्रुतिभेदाच्च । मातरंपि  
तरश्चैकेमन्यन्तेजन्मकारणंस्व  
भावंपरनिर्माणंयदृच्छाञ्चापरेज  
नाइत्यतःसंशयः । किंनुस्वल्वास्ति  
पुनर्भवोनवेति ॥ तत्रबुद्धिमान्ना  
स्तिक्यबुद्धिंजह्यात्विचिकित्  
साश्च । कस्मात्प्रत्यक्षंत्यल्पम  
नल्पमप्रत्यक्षमस्तियदागमानुमा  
नयुक्तिभिरुपलभ्यते ॥ यैरेवता  
वदिन्द्रियैःप्रत्यक्षमुपलभ्यतेतान्ये  
वसन्तिचाप्रत्यक्षाणि ॥ ५ ॥

अब तीसरी परलोकैपणाको प्राप्त हो  
इसमें संशयहै कि इस देहको त्यागकर  
कैसे होंगे वा न होंगे—संशय पुनः क्योंहै  
इसमें कहतेहैं कि कोई मनुष्य प्रत्यक्षको  
मानतेहैं क्योंकि पुनर्जन्म तो परोक्षहै—  
नास्तिकतामेंभी आश्रित कोई है आगम  
( शास्त्र )के प्रमाणसे और श्रुतिके भेदसे  
कोई पुनः जन्मको चाहतेहैं—और  
कोई मनुष्य माता पिताको—कोई स्वभा  
वको—कोई परमेश्वरकी रचना को और  
अपर मनुष्य यदृच्छा ( अकस्मात् )  
को पुनः जन्मका कारण कहते हैं इससे  
संशय है—कि पुनर्भवहै वा नहीं—  
उसमें बुद्धिमान् मनुष्य नास्तिकताकी  
बुद्धिको और संशय को त्यागदे—क्योंकि  
प्रत्यक्ष अल्पहै और अप्रत्यक्ष बहुत है  
जो आगम अनुमान युक्तियोंसे जाना

जाताहै और जिन इंद्रियोंसे प्रत्यक्ष जाना  
जाताहै वे इंद्रियही अप्रत्यक्ष हैं ॥ ५ ॥

सताञ्चरूपाणामतिसन्निकर्पाद  
तिविप्रकर्पादावरणात्करणदौर्ब  
ल्यान्मनोऽनवस्थानात्समाना  
भिहारादभिभावादातिसौक्ष्म्याच्च  
प्रत्यक्षानुपलब्धिः ॥ तस्मादपरी  
क्षितमेतदुच्यतेप्रत्यक्षमेवास्तिना  
न्यदस्तीतिश्रुतयश्चैतानकारणंयु  
क्तिविरोधात् ॥ ६ ॥

और अत्यंत समीप अति दूर आवरण  
इंद्रियों की दुर्बलता मनकी असावधानी  
समानोंका अभिहार ( मेल ) अभिभव  
( तिरस्कार ) अत्यंतसूक्ष्मता इनसे  
विद्यमानभी रूप आदिका प्रत्यक्ष नहीं  
होता तिससे तुम यह परीक्षाको छोड  
कर कहते हो कि प्रत्यक्षहीहै अन्य नहीं  
है—और ये श्रुतिभी हैं कि युक्तिके  
विरोधसे कारण नहीं होता ॥ ६ ॥

आत्मामातुःपितुर्वायःसोपत्यंयदि  
सञ्चरेत् । द्विविधंसञ्चरेदात्मासर्वा  
वावयवेनवा ॥ ७ ॥

माता पिताका जो आत्माहै उसका  
संचार यदि अपत्यमेंहो तो दो प्रकारके  
आत्माका संचार संपूर्ण रूपसे होगा  
वा अवयव रूपसे ॥ ७ ॥

सर्वश्चेत्सञ्चरेन्मातुःपितुर्वामरणं  
भवेत् । निरन्तरंनावयवःकश्चि

तत्सूक्ष्मस्यचात्मनः ॥ ८ ॥

संपूर्ण आत्माका संचार कहेंगे तो माता वा पिताका मरण होजायगा और सूक्ष्मरूप आत्माका कोई निरंतर अवयव नहीं है ॥ ८ ॥

बुद्धिर्मेनश्चनिर्णीतेयथैवात्मातथैवते । येपाञ्चैषामतिस्तेपांयोनिर्नास्तिचतुर्विधा ॥ ९ ॥

और निर्णय किये हुये बुद्धि और मनभी वैसेहीहैं जैसा आत्माहै जिन पुरुषोंकी यहमतिहै तिनके मतमें चार प्रकारकी योनि नहीं है ॥ ९ ॥

विद्यात्स्वाभाविक्पण्णांधातूनांयत्स्वलक्षणम् । संयोगेचवियोगे चतेपांकर्मैवकारणम् ॥ १० ॥

छाओं धातुओंका जो अपना स्वलक्षणहै उसको स्वभावसे उत्पन्न जानें उन धातुओंके संयोग और वियोगमें कर्म ही कारणहै ॥ १० ॥

अनादेश्वेतनाधातोर्नेष्यतेपरनिर्मितिः । परआत्मासचेद्धेतुरिष्टोऽस्तुपरिनिर्मितिः ॥ ११ ॥

अनादि चेतनारूप जो परमेश्वरकी रचनाहै वह धातुओंसे नहीं होसकतीहै परम जो आत्मा वह हेतु परकेनिर्माणमें इष्ट रहो ॥ ११ ॥

नपरीक्षानपरीक्ष्यनकर्त्ताकारणं

नच नदेवानर्पयःसिद्धाःकर्मकर्मफलंनच ॥ १२ ॥

न परीक्षाहै न परीक्षाके योग्य कोई पदार्थहै न कर्त्ताहै न कारणहै न देवताहैं न ऋषिहैं न सिद्धहैं न कर्महै न कर्मका फलहै ॥ १२ ॥

नास्तिकस्यास्तिनैवात्मायदृच्छोपहृतात्मनः । पातकेभ्यःपरञ्चैतत्पातकंनास्तिकग्रहः ॥ १३ ॥

और यहच्छासे नष्टहै बुद्धिजिसकी ऐसे नास्तिककी आत्माभी नहींहै यह नास्तिकका ज्ञान पातकोंसे परे पातकहै १३

तस्मान्मतिविमुच्येताममार्गप्रसूतांबुधः । सतांबुद्धिप्रदीपेनपश्येत्सर्वयथातथमिति ॥ १४ ॥

तिससे बुद्धिमान् मनुष्य कुमारमें फैली इस मतिको छोडकर सत्पुरुषोंकी बुद्धिरूप दीपकसे सबको यथायोग्य देखे ॥ १४ ॥

द्विविधमेवखलुसर्वसच्चासच्चतस्यचतुर्विधापरीक्षा । आतोपदेशः प्रत्यक्षमनुमानंयुक्तिश्चेति १५ ॥

और निश्चयसे सब सत् असत् रूपसे दोप्रकारकाहै उसकी परीक्षा चार प्रकारकीहै कि आत्माका उपदेश प्रत्यक्ष अनुमान और युक्ति ॥ १५ ॥

आंभास्तावत् ।

रजस्तमोभ्यानिर्मुक्तास्तपोज्ञान

बलेनये । येषां त्रिकालममलं ज्ञा  
नमव्याहृतं सदा ॥ १६ ॥

प्रथम आसतों ये हैं कि जो तप ज्ञान  
के बलसे रजोगुण तमोगुणसे रहित हैं  
और जिनका त्रिकाल निर्मल ज्ञान, सदैव  
नाशसे रहित है ॥ १६ ॥

आत्माः शिष्टविबुद्धास्ते ते पांवाक्य  
मसंशयम् । सत्यं वक्ष्यन्ति ते क  
स्मादसत्यं न रजस्तमाः ॥ १७ ॥

शिष्ट और विशेष बुद्धिमान् वे आस  
हैं उनका वाक्य असंशय है वे सत्य कहेंगे  
और रजोगुण तमोगुणसे रहित वे असत्य  
क्यों कहेंगे ॥ १७ ॥

आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानां सन्निकर्षा  
त्प्रवर्तते । व्यक्तात्दात्वेया बु  
द्धिः प्रत्यक्षं सानिरुच्यते ॥ १८ ॥

आत्मा इंद्रिय मन पदार्थ इन चारोंके  
संबंधसे जो प्रकट बुद्धि प्रवृत्त होती है  
उसको प्रत्यक्ष कहते हैं ॥ १८ ॥

प्रत्यक्षपूर्वा त्रिविधं त्रिकालश्चानुमी  
यते । वह्निर्निगूढो धूमेन मैथुनं गर्भ  
दर्शनात् ॥ १९ ॥

और प्रत्यक्ष पूर्व कही तीन प्रकारका  
त्रिकाल अनुमान किया जाता है छिपी  
हुई अग्निको धूमसे गर्भके देखनेसे मैथु-  
नको जानते हैं ॥ १९ ॥

एवं व्यवस्यन्त्यतीतं बीजात्फल  
मनागतम् । दृष्ट्वा बीजात्फलं

जातमिहैव सदृशं बुधाः ॥ २० ॥

ऐसे भूत पदार्थका निश्चय करते हैं  
और बीजसे अनागत ( भविष्यत् ) का  
और इसीके समान बीजसे फलका देख-  
कर बुद्धिमान् जातको जान लेते हैं ॥ २० ॥

जलकर्षणबीजर्तुसंयोगाच्छस्य  
संभवः । युक्तिः पट्टधातुसंयोगा  
द्गर्भाणां संभवस्तथा ॥ २१ ॥

जल कर्षण ( जोतना ) बीज ऋतु  
उनसत्रके संयोगसे शस्यकी उत्पत्ति होती  
है यह युक्ति है तैसेही छः धातुओंके सं-  
योगसे गर्भोंका संभव होता है ॥ २१ ॥

मथ्यमन्थनमन्थानसंयोगादग्निस  
ंभवः । युक्तियुक्ता चतुष्पादस  
म्पद्रव्याधिनिवर्हणी ॥ २२ ॥

और मथने योग्य मंथन मंथान इनके  
संयोगसे अग्निकी उत्पत्ति भी युक्ति है  
युक्तिसे युक्त चतुष्पादकी संपत्त व्या-  
धिको नष्ट करने हारी है ॥ २२ ॥

बुद्धिः पश्यति याभावान् बहुकार  
णयोगजान् । युक्तिस्त्रिकालासा  
ज्ञेया त्रिवर्गः साध्यते यया ॥ २३ ॥

जो बुद्धि अनेक कारणोंके योगसे  
पैदा हुये पदार्थोंको देखती है वह त्रिकाल  
युक्ति जाननी जिससे त्रिवर्ग ( धर्म अर्थ  
काम ) सिद्ध होता है ॥ २३ ॥

एषा परीक्षानास्त्यन्यायया सर्वप  
रीक्ष्यते । परीक्ष्यं सदसच्चैवं तया  
चास्ति पुनर्भवः ॥ २४ ॥

यही परीक्षा है अन्य नहीं जिससे सब की परीक्षा (ज्ञान) होती है और परीक्षा के योग्य सत् असत् हैं और तिससे पुनर्भव (जन्म) है ॥ २४ ॥

तत्राप्तागमस्तावद्वेदोयश्चान्योऽपि कश्चिद्वेदार्थादविपरीतः परीक्षकैः प्रणीतः । शिष्टानुमतोलोकानुग्रहप्रवृत्तः शास्त्रवादः सचाप्तागमः । आप्तागमादुपलभ्यते । दानतपो यज्ञसत्याहिंसाब्रह्मचर्याभ्यामुदयनिःश्रेयसकराणीति न चानतिवृत्तसत्त्वदोषाणामदोषैरपुनर्भवो धर्मद्वारेणैव दर्शयते ॥ २५ ॥

उसमें आप्तागम वेद है और जो अन्यभी कुछ वेदके अर्थके अनुसार परीक्षकों ने रचा है शिष्टों ने माना है लोकके अनुग्रहमें प्रवृत्त शास्त्रवाद है वह भी आप्तागम है और आप्तागमसे दान तप यज्ञ सत्य अहिंसा ब्रह्मचर्य ये सब अभ्युदय (प्रताप) और मोक्षके कारण प्राप्त होते हैं और अत्यंत वर्तमान सत्त्व दोषोंका अदोषोंसे पुनर्जन्मका अभाव धर्मके अनुकूल द्वारोंमें कहीं भी नहीं कहा २५

धर्मद्वारा वहितैश्वर्यपगतभयराग द्वेषलोभमोहमानैर्ब्रह्मपरैरातैः कर्मविद्धिरनुपहतसत्त्वबुद्धिप्रचारैः पूर्वैः पूर्वतरैर्महर्षिभिर्दिव्यचक्षुर्भि

र्दृष्टोपदिष्टपुनर्भवइतिव्यवस्येदेवं प्रत्यक्षमपि चोपलभ्यते ॥ २६ ॥

धर्मके द्वारोंमें जो तत्पर हैं और जिनके भयराग द्वेष लोभ मोह मान ये नहीं हैं और ब्रह्ममें तत्पर आप्त कर्मके ज्ञाता और जिनके सत्त्व बुद्धिका प्रचार वर्तमान है ऐसे पूर्व और उनसे भी पूर्व दिव्य चक्षु महर्षियों ने देखकर ही पुनर्भवका उपदेश किया है यह निश्चय करें ऐसे ही प्रत्यक्ष भी दीखता है ॥ २६ ॥

मातापित्रोर्विसृष्टशान्यपत्यानि तुल्यसम्भवानां वर्णस्वराकृतिसत्त्वबुद्धिभाग्यविशेषाः । प्रवरावरकुलजन्मदास्यैश्वर्यसुखासुखमायुः । आयुषो वैषम्यमिह कृतस्यावाप्तिरशिक्षितानाञ्चरुदितस्तनपानहासत्रासादीनाञ्च प्रवृत्ति लक्षणोत्पत्तिः कर्मसामान्ये फलविशेषो मेधाक्वचित्क्वचित्कर्मण्यमेधाजातिस्मरणमिहागमनमितश्च्युतानाञ्च भूतानां समदर्शने प्रियाप्रियत्वम् अतएवानुमीयते । यत्स्वरुतमपरिहार्यमविनाशिपूर्वदेहिकं देवसंज्ञकमानुबन्धिकं कर्म तस्यैतत्फलमितश्चान्यद्भविष्यतीति फलाद्बीजमनुमीयते । फलञ्च बीजात् ॥ २७ ॥

कि माता पिताके विसदृश (असमान) अपत्य और तुल्य पैदा हुआओंमें वर्ण स्वर आकार सत्व बुद्धि भाग्य इनका विशेष और उत्तम निकृष्ट कुलमें जन्म दासता ऐश्वर्य सुख असुख आयुः आयुःकी विषमता इस लोकमें कियेकी प्राप्ति और नहीं शिक्षितभी रोदन स्तनपान हास त्रास आदिकोंमें प्रवृत्तिरूप उत्पत्ति और सामान्य कर्ममें फलका विशेष किसी कर्ममें मेधा किसीमें अमेधा जातिका स्मरण इसलोकमें आगमन और यहां से जो भूतगयेहैं उनके समदर्शनमें प्रियत्व अप्रियत्वहै इसीसे अनुमान किया जाता है कि अपने किये कर्मका परिहार विनाश इनसे रहितहै वह पूर्व देहका देव नामका आनुवंशिक कर्महैं उसकाही यह फलहै इससे अन्य होगा इस प्रकार फलसे बीजका अनुमान होताहै और बीजसे फलका ॥ २७ ॥

युक्तिश्चैपापङ्धातुसमुदयाद्गर्भज  
न्मकर्तृकरणसंयोगात्क्रियाकृ  
तस्यकर्मणःफलं नाकृतस्य नाङ्कु  
रोत्पत्तिरबीजात् । कर्मसदृशं  
फलं नान्यस्माद्बीजादन्यस्योत्प  
त्तिरित्युक्तिः ॥ २८ ॥

और युक्ति यह है कि छःधातुओंके समुदायसे गर्भका जन्म—कर्ता करणके संयोगसे क्रियासे किये कर्मका फल होताहै बिना कियेका नहीं बिना बीज अंकुरका

जन्म नहीं होता—कर्मके समान फल होताहै क्योंकि अन्य बीजसे अन्यकी उत्पत्ति नहीं होती यह युक्तिहै ॥ २८ ॥

एवंप्रमाणैश्चतुर्भिर्रूपदिष्टैः पुनर्भवो  
धर्मद्वारेणैव नुविधीयते ॥ २९ ॥

इस प्रकार पूर्वोक्त चार प्रमाणोंसे पुनर्जन्मका सिद्ध होनेपर—धर्म द्वारोंके विषय वर्णन करतेहैं ॥ २९ ॥

तद्यथागुरुशुश्रूषायामध्ययनेव्रत  
चर्यायां दारक्रियायामपत्योत्पा  
दनेभृत्यभरणेऽतिथिपूजायां दाने  
नाभिध्यायांतपस्यनसूयायां देह  
वाङ्मनसेकर्मण्यक्लिष्टे देहेन्द्रियमनो  
ऽर्थबुद्ध्यात्मपरीक्षायां मनःसमा  
धाविति । यानि चान्यान्यप्येवं  
विधानिकर्माणिसतामविगर्हिता  
निस्वर्ग्याणिवृत्तिपुष्टिकराणि वि  
द्यात्तान्यारभेतकर्तुम् । तथा  
कुर्वन्निहचवयशोलभतेप्रेत्यचस्व  
र्गमिति । तृतीयापरलोकैपणा  
व्याख्याताभवति ॥ ३० ॥

वह ऐसेहै कि अध्ययनमें गुरुकी सेवामें व्रत करनेमें विवाह करनेमें संतानकी उत्पत्तिमें—भृत्योंके भरणमें—अतिथिकी पूजामें दानमें ध्यानमें तपमें अनसूयामें अर्थात् पराये गुणोंमें दोषोंके न देखनेमें देह वाणी मन इनके अक्लिष्ट

कर्ममें देह इंद्रिय मन अर्थ बुद्धि आत्मा इनकी परीक्षामें मनकी समाधिमें इन धर्मके द्वारोंमें प्रवृत्ति करै—और जो अन्यभी कर्म इसी प्रकारके और सज्जनोंसे अनिन्दितहैं और स्वर्गके दाता जीविकाके पोषक—जानै उनकेभी करनेका प्रारंभ करै—उनको करता हुआ इस जन्ममें यशको और परलोकमें स्वर्गको प्राप्त होताहै—तीसरी परलोकैपणाका वर्णन हो चुका ॥ ३० ॥

अथखलुत्रयउपस्तम्भाः ।

त्रिविधबलम् ॥

त्रीण्यायतनानि । त्रयोरोगाः ।

त्रयोरोगमार्गाःत्रिविधाभिपजःत्रिविधमौषधमिति ॥ ३१ ॥

इसके अनंतर तीन उपस्तंभहैं और तीन प्रकारका बलहै—तीन आयतनहैं तीन रोगहैं तीन रोगोंके मार्गहैं तीन प्रकारके वैद्यहैं तीन प्रकारकी औषधहैं ३१

त्रयउपस्तम्भाइत्याहारःस्वप्नोब्रह्मचर्यमिति एभिस्त्रिभिर्युक्तियुक्तैरुपस्तब्धमुपस्तम्भैःशरीरबलवर्णोपचयोपचितमनुवर्तते । यावदायुषःसंस्कारात् ॥ ३२ ॥

तीन उपस्तंभ ये हैं कि आहार स्वप्न ब्रह्मचर्य—युक्ति सहित इन तीनों उपस्तंभोंसे उपस्तब्ध ( बँधा हुआ ) शरीर बल वर्णवृद्धि इनसे बड़ा हुआ अवस्थाके संस्कार पर्यंत रहताहै ॥ ३२ ॥

संस्कारमहितमनुपसेवमानस्यय इहैवोपदेक्ष्यते । त्रिविधं बलमिति सहजं कालजं युक्तिकृतञ्च सहजं च छरीरसत्त्ववयाः प्राकृतम् । कालकृतञ्चतुर्विभागजं वयःकृतञ्च । युक्तिकृतं पुनस्तदाहारचंष्टा योगजम् ॥ ३३ ॥

संस्कार सहित सेवन नहीं करने वाले के लिये यहांही कहेंगे—सहज कालज और युक्तिकृतके भेदसे तीन प्रकारका बलहै सहज वहहै जो शरीरका सत्त्व अवस्थासे प्राकृत हो कालकृत वहहै जो ऋतुओंके विभागसे वा अवस्थासे हो भोजनकी चेष्टाके योगसे जो हो वह युक्तिकृतहै ३३

त्रीण्यायतनानीति अर्थानां कर्मणः कालस्य चातियोगायोगाभि योगाः । तत्रातिप्रभावतां दृश्यानामतिमात्रं दर्शनमतियोगः सर्वशोऽदर्शनमयोगः । अतिसूक्ष्माति विप्रकृष्टरौद्रभैरवाद्भुतद्विष्टवी भूतसंविभृतादिरूपदर्शनं मिथ्या योगः ॥ ३४ ॥

तीन आयतन ये हैं कि अर्थ कर्म काल इनके अति योग अयोग और अभियोग—उनतीनोंमें अत्यंत प्रभाव वाले दृश्य पदार्थोंका जो अत्यंत दर्शन उसको अति योग कहतेहैं सबका जो अदर्शन उसको अयोग कहतेहैं—अत्यंत सूक्ष्म अत्यंत



दूर रौद्रभैरव अद्भुत द्विष्ट वीभत्स (भयानक) विकृत आदिरूपोंका जो दर्शन उसको मिथ्या योग कहतेहैं ॥ ३४ ॥

तथातिमात्रस्तनितोपहतकुष्टादीनांशब्दानामतिमात्रश्रवणमतियोगः । सर्वशोऽश्रवणमयोगः ।

परुषेष्टविनाशोपघातप्रधर्षणभीषणादिशब्दश्रवणमिथ्यायोगः ३५

तैसेही अत्यंत गर्जन से नष्ट कुष्ठ गाली ) आदि शब्दोंका जो अत्यंत श्रवण वह अतियोग—सबको न सुनना अयोग—कठोर इष्टका विनाश उपघात प्रधर्षण भीषण आदिशब्दोंका जो श्रवण वह मिथ्यायोग—कहाताहै ॥ ३५ ॥

तथातितीक्ष्णोग्राभिष्यन्दिनागन्धानामतिमात्रघ्राणमतियोगः ।

सर्वशोऽघ्राणमयोगः । पूतिद्विष्टामेध्यक्लिन्नविषपवनकुणपगन्धादिघ्राणमिथ्यायोगः ॥ ३६ ॥

तिसी प्रकार अत्यंत तीक्ष्ण उग्र अभिस्यं दी ( फैलती ) गंधोंका जो अत्यंत घ्राण वह अतियोग—सबका अघ्राण अयोग—पूति ( दुर्गंध ) द्विष्ट अपवित्र क्लिन्न विषका पवन—कुणपगंध आदिका जो घ्राण वह मिथ्या योग—कहाता है ॥

तथारसानामत्यादानमतियोगः ।

अनादानमयोगः । मिथ्यायोगो

राशिवर्ज्येष्वाहारविधिविशेषाय तनेपूपादिक्ष्यते ॥ ३७ ॥

तैसेही रसोंका जो अत्यंत आदान वह अतियोग—आदान न करना अयोग—कहाहै—मिथ्या योग को राशिसं भिन्न जो आहार विधिविशेषोंके आयतनोंमें कहेंगे ॥ ३७ ॥

तथातिशीतोष्णानांस्पृश्यानांस्नानान्यङ्गोत्सादनादीनाञ्चात्युपसेवनमतियोगः । सर्वशोऽनुपसेवनमयोगः । विषमस्थानाभिधाता शुचिभूतसंस्पर्शादयश्चेतिमिथ्यायोगः ॥ ३८ ॥

तैसेही अत्यंत शीतल उष्ण स्पर्शके योग्योंका स्नान अभ्यंग उत्सादन आदिकोंका जो अत्यंत सेवन वह अतियोग—सबका असेवन अयोग—विषमस्थान अभिघात अशुद्ध भूतसंस्पर्श यह मिथ्यायोग—कहाताहै ॥ ३८ ॥

तत्रैकंस्पर्शनेन्द्रियमिन्द्रियाणामिन्द्रियव्यापकंततःसमवायिस्पर्शनव्याप्तेर्व्यापकमपिचचेतस्तस्मात्सर्वेन्द्रियाणांव्यापकःस्पर्शकृतोयोभावविशेषःसोऽयमनुपशयात्पञ्चविधस्त्रिविधविकल्पोभवत्यसात्स्येन्द्रियार्थसंयोगः । सात्म्यार्थोऽनुपशयार्थः ॥ ३९ ॥

उनमें एकभी स्पर्शन इन्द्रिय इंद्रियोंमें व्यापकहै क्यों किचित्तके समवायसे स्पर्शनकीव्याप्तिहै औरचित्तभी व्यापकहै तिससे सब इंद्रियोंका व्यापक जो स्पर्शका किया भाव विशेषहै सो यह अनुपशयसे पांच प्रकारका होताहै विकल्पसे तीन प्रकारका असात्म्य इंद्रिय अर्थका संयोग सात्म्य और उपशयके अर्थ होताहै ॥ ३९ ॥

कर्मवाङ्मनःशरीरप्रवृत्तिः । तत्र वाङ्मनःशरीरातिप्रवृत्तिरतियोगः सर्वशोऽप्रवृत्तिरयोगः ॥ ४० ॥

वाणी मन शरीरकी प्रवृत्तिको कर्म कहतेहैं उनमें वाणी मन शरीरकी अत्यंत प्रवृत्तिको अतियोग सबमें अप्रवृत्तिको अयोग ॥ ४० ॥

सूचकानृतताकालकलहाप्रियावद्धानुपचारपरुषवचनादिर्वाङ्मिथ्यायोगः ॥ ४१ ॥

सूचक अनृत अकाल कलह अप्रिय वद्ध अनुपचार कठोरवचन आदिको वाणीका मिथ्या योग कहतेहैं ॥ ४१ ॥

भयशोकक्रोधलोभमोहमानेर्ष्या मिथ्यादर्शनादिर्मानसो मिथ्यायोगः

भय शोक क्रोध लोभ मोह मान ईर्ष्या मिथ्या दर्शन आदि मनका मिथ्या योगहै ॥ ४२ ॥

वेगधारणोदीरणविषमस्खलनपतनाङ्गप्रणिधानाङ्गप्रदूषणप्रहार

मदनप्राणोपरोधसंक्लेशनादिःशारीरो मिथ्यायोगः ॥ ४३ ॥

वेग धारण उदीरण ( कंपन ) विषम स्खलन ( पतन ) अंग प्रणिधान अंग प्रदूषण प्रहार मदन प्राणोंका उपरोध संक्लेशन आदि शरीरका मिथ्या योगहै ४३ संग्रहेणचातियोगायोगवर्जकर्म वाङ्मनःशरीरजमहितमनुपदिष्टं तच्च मिथ्यायोगविद्यादिति । त्रिविधविकल्पं त्रिविधमेव कर्मप्रज्ञा पराध इतिव्यवस्येत् ॥ ४४ ॥

संग्रहसे अतियोग और अयोगसे भिन्न जो कर्म वाणी मन शरीरसे उत्पन्न यहां अहित नहीं कहा उसकोभी मिथ्या योग जानै तीन प्रकार विकल्प (भेद) का तीन प्रकारकाभी कर्म प्रज्ञाका अपराधहै यह निश्चय करै ॥ ४४ ॥

शीतोष्णवर्षालक्षणाः पुनर्हेमन्तग्रीष्मवर्षासंवत्सरः सकालः ॥ तत्रातिमात्रस्वलक्षणः कालः कालाति योगः । हीनस्वलक्षणः कालयोगः । यथास्वलक्षणविपरीतलक्षणस्तु कालो मिथ्यायोगः । कालः पुनः परिणाम उच्यते ॥ ४५ ॥

शीत उष्ण वर्षा हैं लक्षण जिनके और हेमन्त ग्रीष्म वर्षा रूप जो संवत्सर वह कालहै—उसमें अत्यंत जो स्वलक्षण काल वह कालका अतियोग—हीनहैं अपने

लक्षण जिसमें ऐसा काल अयोग जो अपने लक्षण हैं उनसे विपरीत क्षण काल मिथ्यायोग कहाता है और काल परिणाम कहाता है ॥ ४५ ॥

इत्यसात्म्येन्द्रियार्थसंयोगः प्रज्ञा पराधः परिणामश्चेति ॥ ४६ ॥

यह असात्म्य इंद्रिय अर्थका संयोग प्रज्ञा पराध और परिणाम है ॥ ४६ ॥

त्रयस्त्रिविधविकल्पाः कारणां वि काराणाम् ॥ ४७ ॥

ये तीन तीन प्रकारका जो विकल्प हैं वे विकारों के कारण हैं ॥ ४७ ॥

समयोगयुक्तास्तु प्रकृतिहेतवो भवन्ति । सर्वेषामेव भावानां भावाभावौ नान्तरेण योगायोगातियोगा मिथ्यायोगात् समुपलभ्येते । यथा स्वस्वापेक्षिणी हि भावाभावौ ॥ ४८ ॥

और समान योगसे युक्त तो प्रकृतिके हेतु होते हैं—संपूर्ण पदार्थों के भाव अभाव, योग अयोग अतियोग मिथ्या योग इनके बिना नहीं मिल सकते जैसे यथा योग्य युक्तिके अपेक्षी भाव अभाव हैं ॥ ४८ ॥

त्रयो रोगा इति निजागन्तु मानसाः

तत्र निजः शरीरदोषसमुत्थः । आग

न्तु भूतविषवाय्वग्निसम्प्रहारादि

समुत्थः । मानसः पुनरिष्टस्याला

भालाभाच्चानिष्टस्योपजायते ॥ ४९ ॥

तीन रोग निज आगंतु मानस भेद-से हैं उनमें अपने शरीरके दोषसे जो उत्पन्न हो वह निज और भूत विष वायु अग्नि सम्प्रहार आदिसे जो उत्पन्न हो वह आगंतु और इष्टके अलाभ और अनिष्टके लाभसे जो उत्पन्न हो वह मानस होता है ॥ ४९ ॥

तत्र बुद्धिमता मानसव्याधिविपरी तेनापि सता बुद्ध्या हिताहितमवेक्ष्या वेक्ष्य धर्मार्थकामानामहिता नामनुपसेवने हितानाञ्चोपसेवने प्रयतितव्यम् ॥ ५० ॥

उनमें मानस व्याधिसे रहित भी बुद्धिमान् मनुष्यको अपने हित अहितको देख कर अहित धर्म अर्थ कामों के असेवनमें और हितों के सेवनमें यत्न करना चाहिये ॥ ५० ॥

न ह्यन्तरेण लोके त्रयमेतन् मानसं किञ्चिन्निष्पद्यते सुखं वा दुःखं वा तस्मादेतच्चानुष्ठेयम् । तद्विद्यावृद्धा नाञ्चोपसेवने प्रयतितव्यम् । आत्मदेशकालबलशक्तिज्ञाने यथाव चेति ॥ ५१ ॥

क्योंकि इन तीनों के बिना जगत्में कोई भी मानस दुःख उत्पन्न नहीं होता न सुख न दुःख होता है तिससे यह करना चाहिये और त्रिवर्ग की विद्यासे वृद्धों के सेवनमें और आत्मा देश काल

बलशक्ति के ज्ञानमें यथार्थ यत्न करना चाहिये ॥ ५१ ॥

भवतिचात्र ॥ मानसंप्रतिभैपज्यं  
त्रिवर्गस्यान्ववेक्षणम् । तद्विद्या  
सेवाविज्ञानमात्मादीनाञ्चसर्वश  
इति ॥ ५२ ॥

इसमें यह श्लोक है कि धर्म अर्थ  
कामका हूँदना मानस दुःखकी औपधि है  
और त्रिवर्ग की विद्यासे जो वृद्ध हैं  
और आत्मादि उनकी ज्ञानभी औपधि  
है ॥ ५२ ॥

त्रयोरोगमार्गाइति । शाखामर्मा  
स्थिसन्धयःकोष्ठञ्च । तत्रशाखा  
रक्तादयोधातवस्त्वक्चवाह्यरोग  
मार्गः । मर्माणिपुनर्वस्थिहृदय  
मूर्द्धादीन्यस्थिसन्धयोऽस्थिसंयो  
गास्तत्रोपनिबद्धाश्चस्त्रायुकण्डरा  
समध्यमोरोगमार्गः । कोष्ठपुनरुच्य  
तेमहास्रोतःशरीरमध्यमहानिम्न  
मामपक्काशयश्चेतिपर्यायशब्दैः  
सरोगमार्गाभ्यन्तरः ॥ ५३ ॥

तीनरोगके मार्ग हैं कि शाखा मर्म  
अस्थियों कीसंधि, और कोष्ठ उन शाखा  
रक्त आदि धातु और त्वचा यह बाह्य  
रोगका मार्ग है और मर्म वस्ति  
हृदय मूर्द्धा आदि और अस्थियों के  
संयोग रूप अस्थियों की संधि और

उनमें बँधी हुई स्नायुकी नसें हैं वह  
मध्यम रोगका मार्ग है और कोष्ठको  
कहते हैं—महाम्रोत रूप शरीरका मध्य  
और महानिम्न आम और पक्काशय  
इन पर्याय शब्दोंसे कोष्ठ कहा जाताहै  
वह आभ्यन्तर ( भीतर ) का रोग मार्ग  
है ॥ ५३ ॥

तत्रगण्डःपीडकालज्यपचीचर्म  
कीलाधिमांसमसककुष्ठव्यङ्गाद  
योविकारावहिर्मार्गजाः ॥ ५४ ॥

उनमें गंड पिडक अलजी अपची  
चर्म कील अधिमांस अलस कुष्ठ व्यंग  
आदि विकार बाहिरके मार्गोंमें होतेहैं ५४

वीसर्पश्चयथुगुल्मार्शविद्रध्यादयः  
शाखानुसारिणोभवन्तिरोगाः ५५

वीसर्प श्वयथु गुल्म अर्श विद्रधि  
आदिरोग शाखाओंके अनुसारी होतेहैं ५५

पक्षवधग्रहापतानकार्दितशोपरा  
जयक्षमास्थिसंधिशूलगुदभ्रंशाद  
यःशिरोहृद्वस्तिरोगादयश्चमध्यम  
मार्गानुसारिणोभवन्तिरोगाः ५६ ॥

पक्ष वध ग्रह अपतानक अर्दित शोप  
राजयक्षमा अस्थिसंधि शूल गुदभ्रंश  
आदि और शिर हृदय वस्तिरोग आदि  
रोग मध्यम मार्गके अनुसारी होतेहैं ५६

ज्वरातीसारछर्द्यलसकविषूचिका  
श्वासहिकानाहोदरप्लीहादयोऽन्त  
मार्गजाश्च । विसर्पश्चयथुगुल्मा

ज्वरातीसारछर्द्यलसकविषूचिका  
श्वासहिकानाहोदरप्लीहादयोऽन्त  
मार्गजाश्च । विसर्पश्चयथुगुल्मा

शोविद्रध्यादयःकौष्ठानुसारिणोभ  
वन्तिरोगाः ॥ ५७ ॥

ज्वर अतीसार छर्दि अलसक विपू-  
चिका कास श्वास हिक्का आनाह उदर  
प्लीहा आदि रोग अंतमार्गमें पैदा होतेहैं  
वीसर्प श्वयथु गुल्म अर्श विद्रधि आदि  
रोग कोष्ठके अनुसारी होतेहैं ॥ ५७ ॥

त्रिविधाभिषजाइति। भिषक्छ  
न्दचराःसन्तिसन्त्येकेसिद्धाधि  
ताःसन्तिवैद्यागुणैर्युक्तास्त्रिविधा  
भिषजोभुवि ॥ ५८ ॥

तीन प्रकारके भिषज ये हैं कि भिषक्  
छंदानुचुर कोई हैं और कोई सिद्ध  
साधित हैं कोई वैद्य गुणोंसे युक्त हैं ये  
पृथ्वीपर तीन प्रकारके भिषजहैं ॥ ५८ ॥

वैद्यभाण्डौषधैःपुस्तैःपल्लवैरवलो  
कनैः। लभन्तेयेभिषक्शब्दमज्ञा  
स्तेप्रतिरूपकाः ॥ ५९ ॥

वैद्योंके पात्रोंकी औषध पुष्प पत्ते  
देखना इनसे जो भिषक् शब्दको प्राप्त  
होजायवे मूर्ख प्रतिरूपक वैद्य जानना ॥ ५९ ॥

श्रीयशोज्ञानसिद्धानांव्यपदेशाद  
तद्विधाः । वैद्यशब्दलभन्तेयेज्ञे  
यास्तेसिद्धसाधिताः ॥ ६० ॥

श्रीयश ज्ञान इनसे सिद्धोंके उपदेशसे  
जो पंडित वैद्य शब्दको प्राप्त होतेहैं वे  
सिद्ध साधित जानना ॥ ६० ॥

प्रयोगज्ञानविज्ञानसिद्धिसिद्धाःसु  
खप्रदाः । जीविताभिसरास्तेस्यु  
वैद्यत्वंतेष्ववस्थितमिति ॥ ६१ ॥

प्रयोग ज्ञान विज्ञानकी सिद्धिसे जो  
सिद्धहैं सुखके दाता और जीवितके अनु-  
सारी वैद्य जोहैं उनमेंही वैद्यत्व स्थितहै  
अर्थात् वेही यथार्थ वैद्यहैं ॥ ६१ ॥

त्रिविधमौषधमिति । दैवव्यपाश्र  
यंयुक्तिव्यपाश्रयंसत्त्वावजयश्च ।  
तत्रदैवव्यपाश्रयंमन्त्रौषधिमाणि  
मङ्गलनियमप्रायश्चित्तोपवासस्व  
स्त्ययनप्रणिपातगमनादियुक्तिव्य  
पाश्रयंपुनराहारौषधद्रव्याणांयो  
जना । सत्त्वावजयःपुनरहितेभ्यो  
ऽर्थेभ्योमनोनिग्रहः ॥ ६२ ॥

तीन प्रकारके औषध ये हैं कि दैवके  
आश्रय युक्तिके आश्रय और सत्त्वका  
अवजय उनमें मंत्र औषधि मणि मंगल  
नियम प्रायश्चित्त उपवास स्वस्त्ययन  
प्रणिपात तीर्थगमन आदि दैवव्यपाश्रय  
होतीहै आहार औषधको द्रव्योंकी योजना  
युक्ति व्यपाश्रयहै और अहित पदार्थोंसे  
मनके निग्रहको सत्त्वावजय कहतेहैं ॥ ६२ ॥

शरीरदोषप्रकोपेखलुशरीरमेवाश्रि  
त्यप्रायशस्त्रिविधमौषधमिच्छ  
न्ति । अन्तःपरिमार्जनंबहिःपरि  
मार्जनंशास्त्रप्राणिधानञ्चेति ।

तत्रान्तःपरिमार्जनंयदन्तःशरीरम  
नुप्रविश्यौषधमाहारजातव्याधी  
न्प्रतिमार्ष्टि । यत्पुनर्बहिःस्पर्श  
माश्रित्याभ्यङ्गस्वेदप्रदेहपरिपेको  
न्मर्दनाद्यैरामयान्प्रमार्ष्टितद्वहिः  
परिमार्जनम् ॥ ६३ ॥

शरीरमें दोषोंका प्रकोप होनेपरही  
शरीरके आश्रयसे प्रायःतीन प्रकारके  
औषधोंकी इच्छा करतेहैं कि, अंतःपरिमा-  
र्जन बहिःपरिमार्जन शस्त्र प्रणिधान  
उनमें अंतःपरिमार्जन यहहै कि शरी-  
रके भीतर प्रविष्ट होकर औषधि आहा-  
रसे उत्पन्न व्याधियोंका मार्जन ( निवृत्ति )  
करतीहै—और जो शरीरके बाहिर स्पर्शके  
आश्रयसे अभ्यंग स्वेद प्रदेह परिसेक  
उन्मर्दन आदिसे रोगों को दूर करे वह  
बहिःपरिमार्जन कहाताहै ॥ ६३ ॥

शस्त्रप्रणिधानं पुनश्छेदनभेदनव्य  
धनदारणलेखनोत्पादनप्रच्छन्न  
सीवनैषणक्षारजलौकाश्चेति ६४ ॥

शस्त्रप्रणिधान यहहै किछेदन भेदन  
व्यधन ( बीधना ) दारण लेखन उत्पा-  
दन प्रच्छन्न सीवन एषण क्षार जलौका  
इनसे चिकित्सा करनी ॥ ६४ ॥

प्राज्ञोरोगेसमुत्पन्नेवाह्येनाभ्यन्त  
रेणवा । कर्मणालभतेशर्मशस्त्रो  
पक्रमणेनवा ॥ ६५ ॥

रोगके उत्पन्न होनेपर बुद्धिमान् मनुष्य

बाहिर वा भीतरके कर्मसे वा शस्त्रके लगा-  
नेसे सुखको प्राप्त होताहै ॥ ६५ ॥

बालस्तुखलुमोहादाप्रमादाद्वान  
बुध्यते । उमयमानं प्रथमंरोगं  
शत्रुमिवानुधः ॥ ६६ ॥

बालक तो मोहसे वा प्रमादसे उत्पन्न  
होते हुये रोगको प्रथम इस प्रकार नहीं  
जानता जैसे अज्ञानी अपने शत्रुको नहीं  
जानता ॥ ६६ ॥

अग्राहिप्रथमंभूत्वारोगःपश्चाद्विव  
र्द्धते । सजातमूलोमुष्णातिबल  
मायुश्चदुर्मतेः ॥ ६७ ॥

प्रथम रोग सूक्ष्म होकर पीछेसे बढ  
ताहै—वह अपनी जड़को पाकर दुर्मति  
मनुष्यके बल और आयुको नष्टकर  
देताहै ॥ ६७ ॥

नमर्त्योऽलभतेश्रद्धांतावद्यावन्नपी  
क्यते । पीडितस्तुमतिपश्चात्कु  
रुतेव्याधिनिग्रहे ॥ ६८ ॥

मनुष्य इतने रोगसे पीडित नहीं  
होता तबतक श्रद्धाको प्राप्त नहीं होता  
और रोगपीडित मनुष्य पीछेसे व्याधिकी  
चिकित्सामें मतिको करताहै ॥ ६८ ॥

अथपुत्रांश्चदारांश्चजातींश्चाहूय  
भाषते । सर्वस्वेनापिमेकश्चाद्वि  
षगानीयतामिति ॥ ६९ ॥

फिर पुत्र स्त्री और जाति इनको  
बुलाकर कहताहै कि सर्वस्वको देकरभी  
मेरे लिये किसी भिषक्को लाओ ॥ ६९ ॥

तथाविधश्चकःशक्तोदुर्बलंव्याधि  
पीडितम् । कृशंक्षीणेन्द्रियं दीनं  
परित्रातुंगतायुषम् ॥ ७० ॥

उस प्रकारके व्याधिसे पीडित दुर्बल  
कृश क्षीणेन्द्रिय दीन गतायुःकी रक्षा  
करनेको कौन समर्थ है ॥ ७० ॥

सत्रातारमनासाद्यबालस्यजति  
जीवितम् । गोधालांगूलबद्धेवा  
रूप्यमाणाबलीयसा ॥ ७१ ॥

वह रक्षकको न पाकर बाल अव-  
स्थामेंहीं ऐसे जीवितको त्याग देताहै  
जैसे पूंछमें बलवान्ने बांधकर खींची हुई  
गोह त्याग देतीहै ॥ ७१ ॥

तस्मात्प्रागेवरोगेभ्योरोगेपुतरु  
णेषुवा । भेषजैःप्रतिकुर्वीतयद्  
च्छेत्सुखमात्मनः ॥ ७२ ॥

तिससे जो अपने आत्माके सुखकी  
इच्छा करै वह रोगोंसे प्रथम वा रोगोंकी त-  
रुण अवस्थामें औषधोंसे प्रतीकार करै ७२

तत्रश्लोकौ ।

एषणाःसमुपस्तम्भावलकारण  
मामयाः । तिस्रैषणीयेमार्गाश्चभिं  
षजोभेषजानिच ॥ ७३ ॥

त्रित्वेनाष्टौसमुद्दिष्टाःकृष्णात्रेयेण  
धीमता । भावाभावेपुशक्तेनयेषु  
सर्वप्रतिष्ठितमिति ॥ ७४ ॥

अग्नीत्यादि ॥ एक. दशस्तिस्त्रैषणी  
याध्यायःसमाप्तः ।

उसमें ये दो श्लोकहैं कि—एषणा  
समुपस्तम्ब बल कारण रोग मार्ग वैद्य  
औषध ये सब तीन प्रकारसे आठ तिस्रैष-  
णीय अध्यायमें बुद्धिमान् और भाव अभा-  
वमें समर्थ कृष्णात्रेयने कहेंहैं जिनमेंही  
संपूर्ण प्रतिष्ठित ( आधीन ) है ७३ ॥ ७४

इति अग्नीत्यादि तिस्रैषणीयोगाम एकादशोऽ

ध्यायः . पं० मिहिरचंद्रकृत भाषाविशुद्धि

सहितः समाप्तः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

अथातोवातकलाकलीयमध्यायं  
व्याख्यास्यामः । इतिहस्माह  
गवानात्रेयः ।

इसके अनंतर वातकलाकलीय अध्या-  
यकाव्याख्यान करतेहैं । यह भगवान्  
आत्रेयने कहाहै

वातकलाकलाज्ञानमधिकृत्यपर  
स्परमेतानिजिज्ञासमानाः समुप  
विश्यमहर्षयःपप्रच्छुरन्योन्यंकिंगु  
णोवायुःकिमस्यप्रकोपनमुपशम  
नानिवास्यकानि । कथञ्चैनमस  
ङ्घातमनवस्थितमनासाद्यप्रको  
पनप्रशमनानिप्रकोपयन्तिप्रशम  
यन्तिवा । कानिचास्यकुपिता  
कुपितस्यशरीराशरीरचरस्यश  
रीरेषुचरतःकर्माणिबहिःशरीरे  
भ्योवेति ॥ १ ॥

वातकीकला, कलाका ज्ञान इनका  
अधिकार ( प्रस्ताव ) करके परस्पर

इनके ज्ञानके अभिलाषी महर्षि बैठ कर परस्पर पृच्छते भये—कि वायुके क्या गुणहैं—इसका प्रकोप क्या है और इसके उपशमन कौनहैं और समूह रहित अनवस्थित ( डिगमग ) इस वायुके प्राप्त हुये बिना प्रकोपन और प्रशमन ( औपधि ) प्रकोप करतेहैं वा शांति करतेहैं और कुपित और अकुपित शरीर अशरीरमें विचरते और शरीरमें मर्तमान इस वायुके कौन कर्महैं और शरीरसे बाहिर कौनहैं ॥ १ ॥

अत्रोवाचकुशःसांकृत्यायनः ।

रुक्षलघुशीतदारुणस्वरविपदाःप  
डिमेवातगुणाभवन्ति । तच्छु  
त्वावाक्यंकुमारशिराभरद्वाज उ  
वाच ॥ २ ॥

इसमें सांकृत्यायन कुश बोले कि रुक्ष लघु शीत दारुण स्वर विपद ये छः वातके गुण होतेहैं उस वाक्यकी सुनकर कुमारशिराभरद्वाज बोले कि ॥ २ ॥

एवमेतद्यथाभगवानाहएतएववा  
तगुणाभवन्ति । सत्त्वैरेवंगुणैरेवं  
द्रव्यैरेवंप्रभावैश्चकर्मभिरभ्यस्य  
मानैर्वायुःप्रकोपमापद्यतेसमानगु  
णाभ्यासोहिधातूनांवृद्धिकारण  
मिति ॥ ३ ॥

जो आप भगवान्ने येही बातके गुण कहे यह यथार्थमेंऐसेहीहै—इसी प्रभावके

सत्त्व गुण द्रव्य और कर्मोंके अभ्याससे वायु प्रकोपको प्राप्त हो जातीहै क्योंकि समान गुणोंका अभ्यासही धातुओंकी वृद्धिका कारण होताहै ॥ ३ ॥

तच्छुत्वावाक्यकाङ्क्षायनोवा  
ल्हीकभिपगुवाच । एवमेतद्यथा  
भगवानाह । एतान्येववातप्रको  
पनानिभवन्ति । अतोविपरीता  
निस्वत्वस्यप्रशमनानिभवन्ति ।  
प्रकोपनविपर्ययोहिधातूनांप्रशम  
कारणमिति ॥ ४ ॥

उस वाक्यको सुनकर कांक्षायन वाल्हीकभिपक् बोले कि जैसे भगवान्ने कहा वह ऐसेहीहै कि येही वातके प्रकोपन होतेहैं और इनसे विपरीत वातके प्रशमन होतेहैं क्योंकि प्रकोपनका विपर्यय यही धातुओंकी प्रशान्तिका कारणहै ॥ ४ ॥

तच्छुत्वावाक्यंवडिशोधामार्गव  
उवाच । एवमेतद्यथाभगवाना  
ह । एतान्येववातप्रकोपप्रशमना  
निभवन्ति । यथाह्येनमसंघातम  
वस्थितमनासाद्यप्रकोपनप्रशम  
नानिप्रकोपयन्तिप्रशमयन्तिवा ।  
तथानुव्याख्यास्यामः । वातप्र  
कोपनानिखलुरुक्षलघुशीतदारु  
णस्वरविपदंशुषिरकराणिशरीरा  
णांतथाविधेषुशरीरेषुवायुराश्रयं



गत्वा आप्याय्यमानः प्रकोपमा  
पद्यते । वातप्रशमनानि पुनः स्नि-  
ग्धगुरुलक्षणां तदुपिच्छिलघन-  
कराणि शरीराणां तथा विधेः पुशरी-  
रेषु वायुरासज्यमानश्चरन् प्रशा-  
न्तिमापद्यते ॥ ५ ॥

उस वाक्यको सुनकर बडिश धामा-  
गव बोले कि जैसे भगवान् ने कहा वह  
ऐसे ही है यही वातके प्रकोप और प्रशमन  
होते हैं—जैसे समूहसे हीन अनवस्थित इस  
वायुको प्राप्त न होकर प्रकोप-और प्रशमन  
के पदार्थ कुपित और शांत करते हैं उसी  
प्रकारसे वर्णन करते हैं—वातके प्रकोपन तो  
निश्चयसे ये हैं कि रूक्ष लघु शीतल दारुण  
खर विषद शुषिर करनेवाले जो शरी-  
रोंके हैं और तिसी प्रकारके शरीरोंमें  
वायु आश्रयको प्राप्त होकर पुष्टिको  
प्राप्त हुआ प्रकोपको प्राप्त होता है—और  
वातके प्रशमन तो ये हैं कि स्निग्ध गुरु  
उष्ण श्लक्ष्ण कोमल पिच्छिल घन जो  
शरीरोंको करते हैं और तिसी प्रकारके  
शरीरोंमें आसक्त होकर चरता हुआ वायु  
शांतिको प्राप्त होजाता है ॥ ५ ॥

तच्छ्रुत्वा बडिशवचनमवितथम्  
षिगणैरनुमतमुवाच वार्योविदोरा-  
जर्षिः । एवमेतत्सर्वमनपवादं य-  
था भगवानाह । यानितुखलुवायोः  
कुपिताकुपितस्य शरीराशरीरचर-  
स्य शरीरेषु चरतः कर्माणि बहिः श-  
रीरेभ्यो वा भवन्ति ॥ ६ ॥

उस बडिशके सत्यवचनको सुनकर  
ऋषिगणोंकी अनुमतिसे वार्योविद  
राजर्षि बोले कि जो भगवान् ने कहा  
वह सब अपवाद ( निषेध ) से रहित  
ऐसे ही है—और जो कुपित अकुपित शरीर  
अशरीरमें विचरते और शरीरमें वर्तमान  
वायुके कर्म हैं और शरीरसे बाहिरके जो  
लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

तेषामवयवान् प्रत्यक्षानुमानोपमा-  
नैः साधयित्वानमस्कृत्य वायवे य-  
थाशक्तिप्रवक्ष्यामो वायुस्तन्त्रय-  
न्त्रधरः प्राणोदानसमानव्यानापा-  
नात्मा प्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावचा-  
नानियन्ता प्रणेता च मनसः । सर्वे  
न्द्रियाणामुद्योतकः । सर्वेन्द्रिया-  
र्थानामभिवोदा सर्वशरीरधातुव्यू-  
हाकरः सन्धानकरः शरीरस्य प्रव-  
र्तको वाचः प्रकृतिः स्पर्शशब्दयोः  
श्रोत्रस्पर्शनयोर्मूलं हर्षोत्साहयो-  
र्योनिसमीरणोऽग्नेर्दोषसंशोषणः ।  
क्षेमावहिर्मलानां स्थूलाणुस्रोतसां  
भेत्ता कर्त्ता गर्भाकृतीनां आयुषोऽ-  
नुवृत्तिप्रत्ययभूतो भवत्यकुपितः ७

उनके अवयवोंको प्रत्यक्ष अनुमान उप-  
मानोंसे सिद्ध करके वायुको नमस्कार  
करके यथाशक्तिसे कहते हैं कि तंत्र यंत्र  
का धारी वायु प्राण उदान समान व्यान

अपान रूप होकर छोटी बड़ी चेष्टाओंका प्रवर्तक और मनका नियंता और प्रणेतृ संपूर्ण इंद्रियोंका प्रकाश सब इंद्रियोंके विषयोंका प्रापक सब शरीरकी धातुओंके व्यूहका आकर संधान ( मेल ) का कर्ता शरीरका प्रवर्तक वाणीकी प्रकृति स्पर्श शब्द और श्रोत्र स्पर्शनका मूल हर्ष और उत्कर्षकी योनि अग्रिका समीरण ( प्रेरक ) दोषका संशोषण मलोंका बाहिर क्षेपक स्थूल अणु सूक्ष्मोंका भेदक गर्भके आकारोंका कर्त्ता अवस्थाके अनुवर्तनका साक्षी अकुपित ( स्वस्थ ) वायु इनसबका कर्ता होताहै ॥ ७ ॥

कुपितस्तुखलुशरीरेशरीरंनाना विधैर्विकारैरुपतपतिवलवर्णमु स्वायुषामुपधातायमनोव्याहर्षय तिसर्वेन्द्रियाण्यपहन्ति।विहन्ति गर्भान्प्रकृतिमापादयत्यतिका लंधारयति । भयशोकमोहैदन्या तिप्रलापान्जनयतिप्राणांश्चोपरु णद्धि । प्रकृतिभूतस्यखल्वस्यलो केचरतःकर्माणीमानिभवन्ति ८ ॥

और शरीरमें कुपितवायु तो शरीरको नाना प्रकारके विकारोंसे तपाताहै बल वर्ण सुख आयु इनको नष्ट करताहै मनके हर्षको दूर करताहै सब इंद्रियोंको नष्ट करताहै गर्भोंको नाशताहै अतिकाल तक विकारोंको पैदा करताहै और धारता है भय शोक मोह दीनता अतिप्रलाप

इनको पैदा करताहै प्राणोंको रोकताहै प्रकृतिरूपसे लोकमें विचरते इस वायुको तो ये कर्म होतेहैं ॥ ८ ॥

तद्यथा ।

धरणीधारणंज्वलनोज्ज्वालनम् । आदित्यचन्द्रनक्षत्रग्रहगणानांस न्तानगतिविधानंसृष्टिश्चमेधाना म् । अपाञ्चविसर्गःप्रवर्तनंस्त्रोत सांपुष्पफलाज्जात्राभिनिर्वर्तनमु द्भेदनञ्चैद्धिदानामृतूनांप्रविज्ञा गः । विभागोधातूनांधातुमानसं स्थानव्यक्तिः । बीजाभिसंस्कारः शस्याभिवर्द्धनंविद्धेदोपशोषणम वैकारिकविकारश्चेति ॥ ९ ॥

वे ऐसेहैं कि धरणीका धारण अग्रिका ज्वालन-सूर्यचंद्र नक्षत्र ग्रहगण इनको निरंतर गतिको करना और बुद्धियोंकी सृष्टि-जलोंकी रचना सूक्ष्मोंकी प्रवृत्ति-पुष्प फलोंकी रचना और उद्भिदों ( वृक्ष आदिका ) उद्भेदन ऋतुओंका विभाग धातुओंका विभाग धातुओंके प्रमाण और स्थितिकी प्रकटता बीजोंका संस्कार-शस्योंकी वृद्धि-विद्धेद ( गील ) का शोषण और विकारसेरहित विकार ये स्वाभाविक वायुके कार्य हैं ॥ ९ ॥

प्रकुपितस्यखल्वस्यलोकेषुचरतः कर्माणीमानि भवन्ति ॥ १० ॥

और प्रकुपित होकर लोकमें विचरने वाले वायुके तो ये कर्म होतेहैं ॥ १० ॥

तद्यथा ।

उत्पीडनंसागराणामुद्वर्तनंसरसां  
प्रतिसरणमापगानामाकम्पनञ्चभू-  
मेराधमनमम्बुदानांशिखरिशिख-  
रावमथनमुन्मथनमनोकहानानि  
हारनिर्हादपांशुसिकतामत्स्यभे-  
कोरगक्षाररुधिराश्माशानिविसर्गो  
व्यादनञ्चपण्णामृतूनांशस्यानामसं-  
धातोभूतानाञ्चोपसर्गोभावाना-  
ञ्चाभावकरणम् । चतुर्युगान्तक-  
राणामेवसूर्यान्लानांविसर्गःस-  
हिभगवान्प्रभवश्चाव्ययश्चभूता-  
नांभावानामभावाकरः ॥ ११ ॥

वे ऐसेहैं कि—सागरोंका उत्पीडन—सरसों ( तलाव ) का उद्वर्तन ( मर्यादाका भंग ) नदियोंका प्रतिसरण ( विरुद्ध गमन ) भूमिका कंपन—मेघोंका आधमन—पर्वतोंकी शिखरोंका मथना—वृक्षोंका उन्मथन ( उखाड़ना )—नीहार निर्हाद पांशु सिकता मत्स्य भेक सर्प क्षार रुधिर पत्थर वज्र इनकी रचना और नाश—छाओं ऋतुओंके शस्योंका असमूह—भूतोंका नाश भावों ( पदार्थों ) का अभाव करना—चारों युगोंके अंतकारी मेघ सूर्य आग्नि इनकी रचना—सबका उत्पादकअ-

विनाशी, वह भगवान् वायु, भूत और भावोंके अभावका आकरहै ॥ ११ ॥

सुखासुखयोर्विधातामृत्युर्यमोनि-  
यन्ताप्रजापतिरदितिर्विश्वकर्मा-  
विश्वरूपःसर्वगःसर्वतन्त्राणांवि-  
धाता । भावानामणुर्विभुर्विष्णुः  
क्रान्तालोकानांवायुरेवभगवा-  
निति ॥ १२ ॥

सुख और सुखके अभावका कर्ता मृत्यु यम नियन्ता प्रजापति आदिति विश्वकर्मा विश्वरूप सर्वगामी सब तंत्रोंका कर्ता भावोंमें अणु विभु विष्णु लोकोंका कर्ता ( व्यापी ) भगवान् वायुहीहै ॥ १२ ॥

तच्छ्रुत्वावाक्यविद्वचोमारीचिरु-  
वाच । यद्यप्येवमेतत्किमर्थ-  
स्यास्यवचनेविज्ञानेवासामर्थ्य-  
मस्तिभिषग्विद्यायाम् । भिषग्वि-  
द्यांवाधिकृत्यकथाप्रवर्तते । वा-  
र्योविदउवाच । भिषक्पवन-  
मतिबलमतिपरुषमतिशीघ्रकारि-  
णमात्ययिकञ्चेन्नानुनिशम्येत् ॥ १३ ॥

उस वायोंविदके वचनको सुनकर मरीचि बोले कि यद्यपि यह ऐसेही है किस अर्थके लिये इस वायुको कहने वा विज्ञानमें सामर्थ्य है वैद्यविद्यामें वा भिषग्विद्याके अधिकारसे कथा प्रवृत्तहै वायोविद बोले कि यदि वैद्य अति बल-

वान् अति कठोर अति शीघ्रकारी और नाशक वायुकी शांतिको न करेगा तो १३

सहस्राप्रकुपितमतिप्रयतःकथमग्रेऽभिरक्षितुमभिधास्यति । प्रागेवै नमत्ययभयादिति । वायोर्यथा र्थास्तुतिरपिभवत्यारोग्यायवलवर्णद्वयेवर्चस्वित्वायोपचयायच । ज्ञानोपपत्तयेपरमायुःप्रकर्षायचेति । मारीचिरुवाच । अग्निरेव शरीरेपित्तान्तर्गतःकुपिताकुपितः शुभाशुभानिकरोति ॥ १४ ॥

सहसा प्रकोप किये वायुको अत्यंत यत्नसे आगे रक्षा करनेको कैसे समर्थ होगा क्योंकि प्रथमहीं इससे नाशका भय है वायुकी यथार्थ स्तुतिभी आरोग्यके लियेहै और वलवर्णकी वृद्धि तेजस्वी उपचय ज्ञानकी प्राप्ति परम अवस्थाके प्रकर्षताके लियेहै-मरीचि बोले कि अग्निहा शरीरमें पित्तके अंतर्गत होकर कुपित अकुपित हुआ शुभ अशुभोंको करताहै ॥ १४ ॥

तद्यथा ।

पक्तिमपक्तिदर्शनमदर्शनमात्रामात्रत्वमूष्मणःप्रकृतिविकृतिवर्णोऽशौर्ग्यभयक्रोधहर्षमोहप्रसादमित्येवमादीनिचापराणिद्वन्द्वादीनीति । तच्छ्रुत्वामारीचिवचः ।

काश्यपउवाच । सोमएवशरीरे श्लेष्मान्तर्गतःकुपिताकुपितःशुभाशुभानिकरोति ॥ १५ ॥

वह ऐसाहै कि पचना अपचना दर्शन अदर्शन उष्माकी मात्रा अमात्रा प्रकृति विकार वर्ण अशौर्य भय क्रोध हर्ष मोह प्रमाद इत्यादि और इसीप्रकार अन्य द्वंद्व आदि अग्निके कोप और स्वस्थतासे होतंहैं उस मरीचिके वचनको सुनकर काश्यप बोले कि श्लेष्माके अंतर्गत हुआ सोमही कुपित अकुपित होकर शुभ अशुभोंको करताहै वह ऐसेहै ॥ १५ ॥

तद्यथा ।

दाढ्यशैथिल्यमुपचयंकार्श्यमुत्साहमालस्यंवृषतांक्लीवतांज्ञानमज्ञानंबुद्धिमोहमेवमादीनिचापराणिद्वन्द्वादीनीति । तच्छ्रुत्वाकाश्यपवचोभगवान्पुनर्वसुरात्रेयउवाच । सर्वएवभवन्तःसम्यगाहुरन्यत्रैकान्तिकवचनात् ॥ १६ ॥

कि दृढता शिथिलता वृद्धि कृशता साहस आलस्य वृषता ( पुंस्त्व ) नपुंसकता ज्ञान अज्ञान बुद्धि मोह एवंआदि और अन्य द्वंद्वआदि पूर्वोक्त सोमसे होते हैं उस काश्यपके वचनको सुनकर भगवान् पुनर्वसु आत्रेय फिर बोले कि सबही आप सिद्धांतके वचनको छोडकर यथार्थ कहते हो ॥ १६ ॥

सर्वएवखलुवातपित्तश्लेष्मणःप्रकृ-  
तिभूताःपुरुषमव्यापन्नेन्द्रियंवल-  
वर्णसुखोपपन्नमायुषामहतापपाद-  
यन्ति । सम्यगेवाचरिताधर्मार्थ-  
कामानिःश्रेयसेनमहतापुरुषमिह  
चामुष्मिंश्चलोकेविकृतास्त्वेनमह-  
ताविपर्ययेणोपवादयन्ति । ऋ-  
तवस्त्रयइवविकृतिमापन्नालोक-  
मशुभेनोपघातकालेइत्येतद्वचः  
सर्वएवानुमेनिरेवचनमात्रेयस्यभ-  
गवतोऽभिननन्दुश्चेति ॥ १७ ॥

सबही वात पित्त कफ प्रकृतिरूप हुये  
पुरुषको स्वस्थ इंद्रियोंसे युक्त बल वर्ण  
सुखसे उपपन्न महान् आयुसहित करते  
हैं और भली प्रकार आचरण किये धर्म  
अर्थ काम पुरुषको इस लोक और पर-  
लोकमें महान् कल्याणसे युक्त करते हैं  
विकारको प्राप्तहुये इस प्रकार महान्  
विपरीतरूपको करते हैं जैसे विकारको  
प्राप्त हुये तीन ऋतु नाशके समयमें  
जगत्को अशुभसे युक्त करते हैं इस  
आत्रेय भगवान्के वचनको संपूर्णहीं  
ऋषि स्वीकार करते भये और प्रशंसाभी  
करने लगे ॥ १७ ॥

भवतिचात्र ॥ तदात्रेयवचःश्रु-  
त्वासर्वएवानुमेनिरेऋषयोऽभिन-  
नन्दुश्चयथेन्द्रवचनंसुराः ॥ १८ ॥

इसमें यह श्लोकहै कि उस आत्रे-  
यके वचनको सुनकर सब ऋषि मानते  
भये और इस प्रकार प्रशंसा करते भये कि  
जैसे इंद्रके वचनकी देवता करतेहैं इति १८

तत्रश्लोकौ । गुणापद्धिविधाहेतुर्वि-  
विधंकर्मतत्पुनः । वायोश्चतु-  
र्विधंकर्मपृथक्चकफपित्तयोः १९

उसमें ये दो श्लोकहैं कि छःप्रकारके  
गुण—द्विविध हेतु और विविध कर्म वायुका  
चार प्रकारका कर्म—और कफ पित्तका  
पृथक् २ कर्म ॥ १९ ॥

महर्षिणांमतिर्यायापुनर्वसुमतिश्च  
या । कलाकलीयेवातस्यतत्सर्वं  
सम्प्रकाशितमिति ॥ २० ॥

निर्देशचतुष्कम् ॥

अग्नीत्यादिवातकलाकलीयोऽध्यायःसमाप्तः ।

महर्षियोंकी जो २ मति और पुनर्व-  
सुकी जो मति यह सब वात कलाकलीय  
अध्यायमें भली प्रकार प्रकाशित किया  
अग्नीत्यादि० वातकलाकलीयोऽध्यायःसमाप्तः ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातःस्नेहाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माह भगवानात्रेयः ॥

अब स्नेहके अध्यायका वर्णन करतेहैं  
यह भगवान् आत्रेय कहते भये ॥

सांख्यैःसंख्यातसंख्येयैःसहासीनं  
पुनर्वसुम् । जगद्धितार्थपप्रच्छव-  
ह्लिवेशःसुसंशयम् ॥ १ ॥

प्रसिद्धेहं नाम जिनके ऐसे सांख्योके संग बैठे हुये पुनर्वसुको जगतके हितार्थ अग्रिवेश अपने संशयको पूछते भये ॥ १ ॥

किंयोनयःकतिस्नेहाःकेचस्नेहगुणाःपृथक् । कालानुपानेकेकस्य कतिकाश्चविचारणाः ॥ २ ॥

कि कितने स्नेह हैं और उनकी योनि कितनी है स्नेहके पृथक् २ क्या गुण हैं कालके अनुपानमें किसका क्या गुण है और कितनी और कौन विचारणा है ॥ २ ॥

कतिमात्राःकथंमानाकाचकेपूप दिश्यते । कश्चकेऽयोहितःस्नेहः प्रकर्षःस्नेहनेचकः ॥ ३ ॥

मात्रा कितनी हैं और किन स्नेहोंमें कितने मानकी कौन मात्रा कही है और कौन स्नेह किनसे हित है और स्नेहनमें उत्तम कौन है ॥ ३ ॥

स्नेहाःकेकेचनस्निग्धाःस्निग्धाति स्निग्धलक्षणम् । किंपानात्प्रथमं पीतेजीर्णकिञ्चहिताहितम् ॥ ४ ॥

स्नेह कौन है अस्नेह कौन है स्निग्ध अति स्निग्धका लक्षण क्या है पानका क्या फल है प्रथम पीनेमें और जीर्णमें हित अहित कौन स्नेह है ॥ ४ ॥

केमृदुकूरकोठाःकाव्यापदःसिद्ध यश्चकाः । अच्छेसंशोधनेचैवस्नेहेकावृत्तिरिष्यते ॥ ५ ॥

कोमल और कूर कोष्ठ कौन हैं—

आपद कौन हैं सिद्धि कौन हैं—स्वच्छ और संशोधनमें स्नेहके विषे कौन प्रकार इष्ट है ॥ ५ ॥

विचारणाःकेपुयोज्याविधिनाके नतत्प्रभो । स्नेहस्यामितविज्ञानज्ञानमिच्छामिवेदितुम् ॥ ६ ॥

विचार किन स्नेहोंमें युक्त करने योग्य है और हे प्रभो हे अपरिमित ज्ञान-वाले ! वह कौन विधिसे है स्नेहके इस ज्ञानको आपसे में जाना चाहता हूँ ॥ ६ ॥

अथतत्संशयच्छेत्ताप्रत्युवाच पुनर्वसुः । स्नेहानांद्रिविधाचासौ योनिःस्थावरजङ्गमा ॥ ७ ॥

इसके अनंतर उसके संशयका छेदन कर्ता पुनर्वसु उत्तर देता भया कि स्नेहोंकी योनि स्थावर जंगमरूपसे दो प्रकारकी है ॥ ७ ॥

तिलःपियालाभिपुकौविभीतक श्वित्राभयैरण्डमधूकसर्पपाः । कुसुम्भाचिल्वार्भकमूलकातसीनिकोचकाक्षोडकरअशिग्रुकाः ॥ ८ ॥

कि तिल पियाल अभिपुक विभीतक चित्रक अभय ( हरड ) अरंड मधूक सरसों-कुसुंभ बेल अर्भक मूली अतसी निकोच अखरोट करंज सौंहिजना ॥ ८ ॥

स्नेहाश्रयाःस्थावरसंज्ञितास्तथा स्युर्जाङ्गमामत्स्यमृगाःसपक्षिणः तेषां दधिक्षीरघृतामिषं वसास्नेहेषु मज्जाचतथोपदिश्यते ॥ ९ ॥

ये स्थावर नामके स्नेहके आश्रय ( योनि ) हैं तिसी प्रकार ये जंगम हैं कि मत्स्य मृग पक्षी हैं जिनकी दाधि दूध घी मांस वसा मज्जा स्नेहोंमें शास्त्र-कारोंने कही है ॥ ९ ॥

सर्वपातैलजातानांतिलतैलंवाशि  
प्यते । बलार्थेस्नेहेनचाग्र्यमैरण्ड  
न्तुविरेचने ॥ १० ॥

संपूर्ण तैलोंके समूहोंमें तिलका तेल उत्तम है बलके अर्थ और स्नेहन ( चिक-  
नाई ) में मुख्य है—अरण्डका तेल विरे-  
चनमें श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

सर्पिस्तैलंवसामज्जासर्वस्नेहोत्तमा  
मता । एभ्यश्चैवोत्तमंसर्पिःसंस्का  
रस्यानुवर्तनात् ॥ ११ ॥

घी तैल वसा मज्जा ये सब स्नेहोंमें  
उत्तम कहे हैं—इन सबमें उत्तम संस्कारके  
अनुवर्तनसे घृत उत्तम है ॥ ११ ॥

घृतं पित्तानिलहरं रसशुक्रौजसांहि  
तम् । निर्वापणं मृदुकरं स्वरवर्ण  
प्रसादनम् ॥ १२ ॥

घृत पित्त वातका नाशक है—रस शुक्र-  
बल इनको हित है निर्वापण है मृदुकारी  
स्वर वर्णका प्रसादन है ॥ १२ ॥

मारुतघ्नं च श्लेष्मवर्द्धनं बलवर्द्ध  
नम् । त्वच्यमुष्णं स्थिरकरं तैलं  
योनिविशोधनम् ॥ १३ ॥

मारुतका नाशक है कफवर्द्धक

नहीं है बलका वर्द्धक है—और त्वचाको हित  
उष्ण—स्थिरकारी योनिका शोधक तैल  
होता है ॥ १३ ॥

विद्ध भग्नाहत भ्रष्ट योनिकर्णशिरो  
रुजि । पौरुषोपचये स्नेहे व्यायामे  
चेप्यते वसा ॥ १४ ॥

और विद्ध भग्न हत भ्रष्ट ( डिगा )  
योनि कर्ण शिरकी पीडा पुरुषार्थकी  
वृद्धि व्यायाम इनमें स्नेहके लिये वसा  
इष्ट है ॥ १४ ॥

बलशुक्ररसश्लेष्ममेदोमज्जाविवर्द्ध  
नः । मज्जाविशेषतोऽस्थनाञ्च व  
लकृत् स्नेहेनेहितः ॥ १५ ॥

और बल वीर्य रस श्लेष्म मेद  
मज्जा इनका विशेषकर वर्द्धक और  
विशेषकर अस्थियोंका बलकारी स्नेहनमें  
हित मज्जा है ॥ १५ ॥

सर्पिश्शरदिपातव्यं वसामज्जाचमा  
धवे । तैलं प्रावृषिनात्युष्णं शतिस्ने  
हं पिबेन्नरः ॥ १६ ॥

घीको शरद ऋतुमें पीवै वसा और  
मज्जाको वैशाखमें वर्षा में तैलको और  
शीतकालमें अल्प उष्ण स्नेहको मनुष्य  
पीवै ॥ १६ ॥

वातपित्ताधिके रात्रावुष्णे चापि पि  
बेन्नरः । श्लेष्माधिके दिवा शीते  
पिबेच्चा मलभास्करे ॥ १७ ॥

✱ वात पित्तकी अधिकतामें रात्रिमें और उष्णकालमें भी तैलको मनुष्य पीवै— श्लेष्मकी अधिकतामें शीतकालमें दिनमें निर्मल सूर्यके समय स्नेहको पीवै ॥ १७ ॥

अत्युष्णेवादिवापीतिवातपित्ताधि-  
केनच । मूर्च्छापिपासामुन्मादं  
कामलावासमीरयेत् ॥ १८ ॥

अत्यंत उष्णको दिनमें पीवै और वात पित्तकी अधिकतामें पीवै तो मूर्च्छा पिपासा उन्माद वा कमलाको कर ताहै ॥ १८ ॥

शतिरात्रौपिवेत्स्नेहनरः श्लेष्मा  
धिकोऽपिवा । आनाहमरुचिंशूलं  
पाण्डुतांवासमृच्छति ॥ १९ ॥

और शीतके समयमें और कफकी अधिकतामें मनुष्य रात्रिमें भी स्नेहको पीवै तो आनाह अरुचि शूल वा पाण्डुताको करताहै ॥ १९ ॥

जलमुष्णंघृतपेयंयूपस्तैलेऽनुशस्य  
ते । वसामज्जेऽस्तुमण्डः स्यात्  
सर्वपूष्णमथाम्बुवा ॥ २० ॥

घृतमें उष्ण जल पीवै और तैलमें यूपका पीना श्रेष्ठहै—वसा और मज्जामें मंड होताहै वा सबमें उष्ण जल पीवै २०

ओदनश्चविलेपीचरसोमांसंपयो  
दधि । यवागूःसूपशाकीचयूषः  
काम्बलिकःखडः ॥ २१ ॥

और ओदन विलेप रस मांस दूध दधि यवागू सूप शाक यूप काम्बलिक खल ( कंबलका खल ) ॥ २१ ॥

सक्तवस्तिरपिष्टश्चमथलेहास्तथै  
वच । भक्ष्यमभ्यञ्जनं वस्तिस्तथा  
चोत्तरवस्तिस्तयः ॥ २२ ॥

सत्तू तिलकीपीठीमद्य और अवलेह भक्ष्य अभ्यञ्जन वस्ति और उत्तर वस्ति ॥ २२ ॥

गण्डूषःकर्णतैलश्चनस्तःकर्णाक्षि  
तर्पणम् । चतुर्विंशतिरित्येताः  
स्नेहस्यप्रविचारणा ॥ २३ ॥

गण्डूष और कर्णमें तैल और नस्य और कर्ण अक्षिका तर्पण ये चौबीस स्नेहकी विचारणाहैं ॥ २३ ॥

अच्छपेयस्तुयःस्नेहोनतमाहुर्वि  
चारणाम् । स्नेहस्यसन्निपट्टः  
कल्पःप्राथम्यकल्पिकः ॥ २४ ॥

और स्वच्छ जो स्नेह पेयहै उसको विचारणा नहीं कहतेहैं वह वैद्योंका देखा हुआ प्रथम कल्पका स्नेहका कल्पहै २४

रसैश्चोपहतःस्नेहःसमासव्यासयो  
गिभिः । पट्टभिस्त्रिपट्टिधासंख्याः  
प्रानोत्येकश्चकेवलः ॥ २५ ॥

संक्षेप और विस्तारके योगोंसे जो स्नेह रसोंसे उपहत ( मिश्रित ) वह केवल एकभी छः प्रकारकाभी तिरसठ ६३ संख्याको प्राप्त होताहै ॥ २५ ॥



एवमेपाचतुःपष्टिःस्नेहानांप्रविचारणासात्सम्यर्तुव्याधिपुरुषान्प्रयोज्याजानताभवेत् ॥ २६ ॥

और एककेवल २५ इस प्रकार यह ६४ चौसठ-स्नेहोंकी विचारणाहै-सात्सम्य ऋतु व्याधि पुरुष इनको जानकर वे स्नेह प्रयुक्त करने चाहिये ॥ २६ ॥

अहोरात्रमहःकृत्स्नमर्द्धाहश्चप्रतीक्ष्यते । प्रधानामध्यमाहस्वास्त्रेहमात्राजरांप्रति ॥ २७ ॥

अहोरात्र संपूर्णदिन अर्द्धदिनके प्रमाणसे स्नेहकी प्रधान मध्यम ह्रस्व मात्रा क्रमसे जराकी प्रतीक्षा करतीहै ॥ २७ ॥

इतितिस्रःसमुद्दिष्टात्राःस्नेहस्यमानतः । तासांप्रयोगान्वक्ष्यामि पुरुषंपुरुषंप्रति ॥ २८ ॥

ये स्नेहकी तीन मात्रा मानसे करीहै पुरुष २ के प्रति उनके प्रयोगोंको कहताहूँ ॥ २८ ॥

प्रभूतस्नेहनित्यायेक्षुद्रापिपासासहानराः । पावकश्चोत्तमबलोये पांयेचोत्तमाबले ॥ २९ ॥

जो प्रतिदिन अधिक स्नेह खातेहैं क्षुधा और पिपासाको जो मनुष्य नहीं सहतेहैं जिनका आग्रिमें उत्तम बलहै और जिनमें उत्तम बलहै ॥ २९ ॥

गुल्मिनःसर्पदष्टाश्चविसर्पोपहता

श्वये । उन्मत्ताःकृच्छ्रमूत्राश्रयादवर्चसएवच ॥ ३० ॥

गुल्म रोगी सर्पकें डूंसे विसर्पसे उपहत उन्मत्त मूत्रकृच्छ्री जिनका मलगा ढाहै ॥ ३० ॥

पिवेयुरुत्तमांमात्रांतस्याःपानेगुणान्शृणु । विकारान्शमयत्येपाशीघ्रंसम्यक्प्रयोजिता ॥ ३१ ॥

वे सब उत्तम मात्राको पीवें उसके पीनेमें गुणोंको सुनो भलीप्रकार प्रयोगसे पीई यह मात्रा विकारको शीघ्र शांति करतीहै ॥ ३१ ॥

दोषानुकर्षिणीमात्रासर्वमार्गानुसारिणी । बल्यापुनर्नवकरीशरीरेन्द्रियचेतसाम् ॥ ३२ ॥

और मात्रा दोषोंका अनुकर्ष ( खींचना ) करतीहै और संपूर्ण मार्गोंमें पहुंचतीहै बलकीदाता पुनः शरीर इंद्रिय नवीनता कारक चित्तोंकी होतीहै ॥ ३२ ॥

अरुण्कस्फोटपीडकाकण्डुपामाभिरर्दिताः । कुष्ठिनश्चप्रमूढाश्चवातशोणितकाश्वये ॥ ३३ ॥

और जो अरुण्क ( मर्म पीडित ) स्फोट पीडक कण्डु पामा इनसे पीडितहैं कुष्ठी और अत्यन्त मूढ वात शोणितके रोगीहैं ॥ ३३ ॥

नातिबह्वाशिनश्चैवमृदुकोष्ठास्त

थैवच । पिवेयुर्मध्यमांमात्रांम  
ध्यमाश्चापियेवले ॥ ३४ ॥

अत्यंत अधिक भोजन जिनका नहीं  
जिनका कोष्ठ मृदुहो और जो बलमेंभी  
मध्यमहों वे मध्यम मात्राको पीवें ॥ ३४ ॥

मात्रेपामन्दविभंशानचातिबल  
हारिणीसुखेनचस्नेहयतिशोधना  
र्थेचयुज्यते ॥ ३५ ॥

यह मात्रा मंदताको नष्ट करतीहै बलको  
सर्वथा नहीं हरती और सुखसे स्नेह करती  
है और शोधनके लिये युक्त होतीहै ॥ ३५ ॥

येतुवृद्धाश्चबालाश्चसुकुमाराःसु  
खोचिताः । रिक्तकोष्ठत्वमहितं  
येपांमन्दाग्रयश्चये ॥ ३६ ॥

और जो वृद्धहैं बालक सुकुमार सुखके  
भोगी जिनका अहित, रिक्त, कोष्ठहै और  
जो मंदग्राह्यहैं ॥ ३६ ॥

ज्वरातिसारकासश्चयेपांचिरसमु  
त्थिताः । स्नेहमात्रापिवेयुस्तेह  
स्वायेचावरावले ॥ ३७ ॥

और जिनको ज्वर अतिसार कास  
चिरकालके हैं और जो अल्प बलवानहैं  
वे स्नेहकी हस्त मात्राको पीवें ॥ ३७ ॥

परिहारेसुखाचैपामात्रास्नेहनवृंह  
णी । वृण्याबल्यानिरावाधाचि  
रश्चाप्यनुवर्त्तते ॥ ३८ ॥

यह मात्रा परिहार ( अंत ) में

सुखकी दाता स्नेहनकी वर्द्धक वीर्य  
वर्द्धक बलदायक वाधासे रहितहै और  
चिरकालतक गुणदायकहै ॥ ३८ ॥

वातपित्तप्रकृतयोवातपित्तविका  
रिणः । चक्षुःकामाःक्षताःक्षीणा  
वृद्धाबालास्तथाबलाः ॥ ३९ ॥

और जो वात पित्त प्रकृतिहैं और  
जिनके वात पित्तका विकारहै-जिनको  
चक्षुकी कामनाहै जिनके क्षतहै जो क्षीण  
वृद्ध बाल बलहीनहैं ॥ ३९ ॥

आयुःप्रकर्षकामाश्चबलवर्णस्व  
रार्थिनः । पुष्टिकामाःप्रजाकामाः  
सौकुमार्यार्थिनश्चये ॥ ४० ॥

आयुकी अधिकताको चाहतेहैं बल  
वर्ण स्वरके अभिलाषीहैं पुष्टि संतान सुकु-  
मारके जो अर्थीहैं ॥ ४० ॥

दीप्त्योजःस्मृतिमेधाग्निवृद्धीन्द्रि  
यबलार्थिनः । पिवेयुःसर्पिरार्त्ता  
श्चदाहशस्त्रविपाग्निभिः ॥ ४१ ॥

दीप्ति ओज स्मृति मेधा अग्नि बुद्धि  
इंद्रिय बल इनके जो अर्थी हैं और जो  
दाह शस्त्र विष अग्नि इनसे दुखीहैं वे  
घृतको पीवें ॥ ४१ ॥

प्रवृद्धश्लेष्ममेदस्काश्चलस्थूलगलो  
दराः । वातव्याधिभिराविष्टावा  
तप्रकृतयश्चये ॥ ४२ ॥

जिनके कफ मेद वढेहों जिनके  
चंचल स्थूल गल और उदरहों जिनको

वातकी व्याधिहो जो वातप्रकृतिहो ४२॥

बलंतनुवंलघुतांदृढतांस्थिरगात्र  
ताम् । स्निग्धश्लक्ष्णतनुत्वक्कांये  
चकांक्षन्तिदेहिनः ॥ ४३ ॥

और जो देहधारी बल तनुता लघुता  
दृढता स्थिरगात्र और जो स्निग्ध स्वच्छ  
उत्तम तनुको चाहतेहैं ॥ ४३ ॥

कृमिकोष्ठाः क्रूरकोष्ठास्तथानाडी  
भिरर्दिताः । पिवेयुः शीतलेकाले  
तैलतैलोचिताश्वये ॥ ४४ ॥

जिनके कोष्ठमें कृमिहैं जिनका कोष्ठ  
क्रूरहै जिनकी नाडियोंमें पीडाहै जिनको  
तैलका अभ्यासहै वे शीतल कालमें तैल  
को पीवें ॥ ४४ ॥

वातातपसहायेचरूक्षाभाराध्वक  
र्षिताः । संशुष्करेतोरुधिरानि  
ष्फीतकफमेदसः ॥ ४५ ॥

जो वात आतपको सह सकतेहैं जो  
रूक्षहैं जो भार और मार्गसे कुशहैं  
जिनके वीर्य रुधिर शुष्कहैं जिनके कफ  
मेद नष्टहैं ॥ ४५ ॥

अस्थिसन्धिशिरास्नायुर्मर्मकोष्ठ  
महारुजः । बलवान्मारुतोयेषां  
खानिचावृत्यतिष्ठति ॥ ४६ ॥

जिनके अस्थि संधि शिरा स्नायु मर्म  
कोष्ठ इनमें अत्यंत पीडाहै और जिनके  
बलवान् वायु छिद्रोंको रोककरस्थितहो ४६  
महच्चाग्निबलंयेषांवसासात्म्याश्वये

नराः । तेषांस्नेहयितव्यानांवसा  
पानंविधीयते ॥ ४७ ॥

जिनके अग्निका बल अधिकहो और  
जिनकी मनुष्योंकी वसा सात्म्यहो उनको  
स्नेह युक्त करनेकी इच्छा होय तो वसाका  
पान कहाहै ॥ ४७ ॥

दीप्ताग्नयः क्लेशसहायस्मराः स्नेहसे  
विनः । वातार्त्ताः क्रूरकोष्ठाश्चस्ने  
ह्यामज्जानमानुयुः ॥ ४८ ॥

जो दीप्ताग्निहैं क्लेशको सह सकतेहैं  
घस्मर ( पित्ताधिक ) और स्नेहके सेवक  
हैं वातरोगीक्रूर कोष्ठ और स्नेहके योग्य  
हैं वे मज्जाको पीवें ॥ ४८ ॥

येभ्योयेभ्योहितोयोयः स्नेहः सपरि  
कीर्तितः । स्नेहनस्यप्रकर्षौतु  
सप्तरात्रत्रिरात्रकौ ॥ ४९ ॥

जिनको जो २ हित स्नेहहै वह कहा  
स्नेहनकी उत्तमतातो सातरात्रि तीन रात्रि  
तकहै ॥ ४९ ॥

स्वेद्याः शोधयितव्याश्चरूक्षवा  
तविकारिणः । व्यायाममद्यस्त्रीनि  
त्याः स्नेह्याः स्युर्येचचिन्तकाः ५०

और रूक्ष वातके विकारियोंको तो  
स्वेद और शोधन करावै जो व्यायाम  
मद्य स्त्री इनका नित्य सेवन करतेहैं  
जिनको चिन्ताहै उनको स्नेह पिलावै ५०  
संशोधनादृतेयेषांरूक्षणंसंप्रवक्ष्य  
ते । नतेषांस्नेहनंशस्तमुत्सन्नकफ

मेदसाम् ॥ ५१ ॥

संशोधनके विना जिनका रुक्षण कहेंगे  
उनको कफमेदके अभावसे स्नेहन श्रेष्ठ  
नहीं है ॥ ५१ ॥

अभिप्यन्दाननगुदानित्यमन्दाग्र  
यश्चये । तृपामूर्च्छापरीताश्वग  
भिण्यस्तालुशोपिणः ॥ ५२ ॥

जिनके मुख और गुदामें अभिप्यंद  
( जल ) हो जो नित्य मंदाग्रिहों-तृपा  
मूर्च्छासे युक्त हों गर्भिणी जिनका तालु  
शुष्क हों ॥ ५२ ॥

अन्नद्विपश्छर्दयन्तेजठरामगरा  
र्दिताः । दुर्बलाश्चप्रतान्ताश्चस्त्रे  
हग्लानामदातुराः ॥ ५३ ॥

अन्नके बैरी-छर्दकरते हों उदरमें आ-  
मसे पीडितहों-दुर्बलहों प्रतांत ( कुश )  
हों स्नेहसे जिनको ग्लानिहो मदसे आ-  
तुरहों ॥ ५३ ॥

नस्नेह्यावर्त्तमानेपुननस्तोवस्ति  
कर्मसु । स्नेहपानात्प्रजायन्तेते  
पारोगाःसुदारुणाः ॥ ५४ ॥

उनको स्नेह न पिलावै और वस्ति  
कर्मके विषे नासिकासेभी स्नेह न दे  
क्योंकि स्नेहके पीनेसे उनको महादारुण  
रोग होते हैं ॥ ५४ ॥

पुरीपंग्रथितंरुक्षंवायुरप्रगुणोमृ  
दुः । पक्षाखरत्वरौक्ष्यञ्चगात्रस्या  
स्निग्धलक्षणम् ॥ ५५ ॥

जिनका मल गाँठोंसहितहो रुक्ष वा-  
युके गुणनहों मृदुहों पक्षमें खरताहोरूखा  
पनहो ये अस्निग्ध गात्रके लक्षणहैं ॥ ५५ ॥

वातानुलोम्यं दीप्तोऽग्निर्वर्चःस्निग्ध  
मसंहतम् । मार्दवंस्निग्धताचाङ्गे  
स्निग्धानामुपजायते ॥ ५६ ॥

वात अनुकूलहो अग्नि दीप्तहो मल  
स्निग्ध असंहत ( पतला ) हो और  
अंगमें नम्रता और स्नेहहो ये सब स्ने-  
हसे युक्तोंके होते हैं ॥ ५६ ॥

पाण्डुतागौरवंजाड्यंपुरीपस्यावि  
पक्वता । तन्त्रारिरुचिरुत्क्लेशःस्या  
दतिस्निग्धलक्षणम् ॥ ५७ ॥

पाण्डुता गौरव जडता मलका कच्चा-  
पन तंत्री अरुचि अधिकक्लेश ये सब  
अति स्निग्धके लक्षण हैं ॥ ५७ ॥

द्रवोष्णमनभिप्यन्दिभोज्यमन्नं प्र  
माणतः । नातिस्निग्धमसंकीर्णं  
श्वःस्नेहं पातुमिच्छता ॥ ५८ ॥

द्रव उष्ण अभिप्यंदरहित और प्रमाण  
सहित भोजनका अन्नहो और अति  
स्निग्ध असंकीर्ण ( एक ) ऐसा भोजन  
वह करै जो दूसरे दिन स्नेह पियाचाहै  
पिबेत्संशमनंस्नेहमन्नकालेप्रकां  
क्षितः । शुद्धयर्थं पुनराहारैर्न शो  
जीर्णेपिबेन्नरः ॥ ५९ ॥

आकांक्षा सहित मनुष्य अन्नके सम-  
यमें शांतिके कर्ता स्नेहको पीवै और

शुद्धिके लिये रात्रिका भोजन जीर्ण हुये-  
पर मनुष्य स्नेहको पीवै ॥ ५९ ॥

उष्णोदकोपचारीस्याद्ब्रह्मचारी  
क्षपाशयः । शकृन्मूत्रानिलोद्ग्रा  
रानुदीकांश्चनधारयेत् ॥ ६० ॥

उष्णजलका उपचार करै ब्रह्मचारीरहै  
रात्रिमें शयन करै और आते हुये मल  
मूत्र उद्गार इनको न रोकै ॥ ६० ॥

व्यायाममुच्चैर्वचनं क्रोधशोकौहि  
मातपौ । वर्जयेदप्रवातश्च सेवेत  
शयनासनम् ॥ ६१ ॥

व्यायाम ऊँचे स्वरसे वचन क्रोध शोक  
हिम आतप इनको त्याग दे और पवन  
रहित स्थानमें शयन आसनका सेवन  
करै ॥ ६१ ॥

स्नेहं पीत्वानरः स्नेहं प्रतिभुञ्जान एव  
च । स्नेहमिथ्योपचाराद्धिजायन्ते  
दारुणागदाः ॥ ६२ ॥

मनुष्यके स्नेहको पीकर और स्नेह-  
कीही भोजन करनेमें इस प्रकार मिथ्यो-  
पचारसे दारुण रोग होतेहैं ॥ ६२ ॥

मृदुकोष्ठस्त्रिरात्रेण स्निह्यत्यच्छोप  
सेवया । स्निह्यति क्रूरकोष्ठस्तु सप्त  
रात्रेण मानवः ॥ ६३ ॥

जिसका कोष्ठ मृदु हो वह स्वच्छ  
स्नेहकी सेवासे तीन रात्रिमें कृतार्थ हो  
जाताहै और कठोर कोष्ठ मनुष्य सात

रात्रि में स्निग्ध होता है ॥ ६३ ॥

गुडमिश्रसंमस्तुक्षीरमुल्लोडितं द  
धिपायसंकुसरंसर्पिःकाश्मर्यात्रि  
फलारसम् ॥ ६४ ॥

गुड इक्षुकारस मस्तु दूध विलोई  
दधि खीर कुसर धी काश्मर्य ( केशर )  
त्रिफलाकारस द्राक्षा पीलु इनका रस ६४  
द्राक्षारसं पीलुरसं जलमुष्णमथापि  
वा । मद्यं वातरुणं पीत्वामृदुकोष्ठो  
विरिच्यते ॥ ६५ ॥

और उष्णजल और ताजीमदिरा इन  
को पीकर उसको विरेचन हो जाताहै ६५  
विरेचयन्ति नैतानि क्रूरकोष्ठं कदा  
चन । भवति क्रूरकोष्ठस्य ग्रहण्य  
त्युल्वणानिलाः ॥ ६६ ॥

जिसका कोष्ठ मृदु हो-और जिसका  
कोष्ठ क्रूर हो उसको ये कदाचित्भी  
विरेचन नहीं करतेहैं क्रूरकोष्ठ मनुष्यकी  
ग्रहणीमें अत्यंत उल्वण पवन होतीहै ६६

उदीर्णपित्ताल्पकफाग्रहणीमन्द  
मारुता । मृदुकोष्ठस्य तस्मात्सु  
विरिच्योनरः स्मृतः ॥ ६७ ॥

जिससे मृदुकोष्ठ मनुष्यकी ग्रहणीमें  
पित्त अधिक और कफअल्प मारुतमंद  
होते हैं तिससे वह नर भली प्रकार  
विरेचनके योग्य कहाहै ॥ ६७ ॥

उदीर्णपित्ताग्रहणीयस्यचाग्निबलं  
महत् । भस्मीभवतितस्याशुस्ने  
हःपीतोऽग्नितेजसा ॥ ६८ ॥

जिसकी ग्रहणीमें पित्त अधिक है  
अग्निका बल महान् है उसके पीया हुआ  
स्नेह अग्निके तेजसे शीघ्र भस्म हो  
जाता है ॥ ६८ ॥

सजग्ध्वास्नेहमात्रांतामोजःप्रक्षा  
लयन्वली । स्नेहाग्निरुत्तमांतृष्णां  
सोपसर्गामुदीरयेत् ॥ ६९ ॥

वह उस स्नेहकी मात्राको खाकर बल-  
वान् हुआ अपने ओजको उछालता हुआ  
स्नेहसे युक्त है अग्नि जिसकी उपसर्ग (उप-  
द्रव) सहित उत्तम तृष्णाको प्राप्त होता है ६९

नालंस्नेहसमृद्धस्यशमायान्नसुगु  
र्वपि । सचेत्सुशीतंसलिलं नासा  
दयतिदह्यते ॥ ७० ॥

स्नेहसे बड़ेहुये मनुष्यकी शान्तिके  
लिये महागरिष्ठभी अन्न समर्थ नहीं होता  
है यदि वह महा शीतलजलको न पीवै  
तो दग्ध होजाता है ॥ ७० ॥

यथैवाशीविषःकक्षमध्यगःस्ववि  
पाग्निना । अजीर्णैयदितुस्नेहेतृ  
पास्याच्छर्दयेद्विपक् ॥ ७१ ॥

जैसे अपने विषकी अग्निसे कक्षके  
मध्यमें सर्प दग्ध हो जाता है यदि स्नेह  
के जीर्ण होनेसे पहिले तृष्णा होजाय  
तो वैद्य छर्द करादे ॥ ७१ ॥

शीतोदकंपुनःपीत्वाभुक्त्वारूक्षा  
न्नमुल्लिखेत् । नसर्पिःकेवलेपिते  
पेयंसामेविशेषतः ॥ ७२ ॥

फिर शीतल जलको पीकर रूक्ष अ-  
न्नको खाकर उल्लेखन करै केवल पित्तमें  
और विशेषकर आमसहित पित्तमें घीको  
न पीवै ॥ ७२ ॥

सर्वह्यनुचरेदेहंहत्वासंज्ञाश्चमार  
येत् । तन्द्रासोतक्लेशानाहोज्व  
रःस्तम्भोविसंज्ञता ॥ ७३ ॥

वह घृत सब देहमें फैलता है और  
संज्ञाको नष्ट करके मार देता है तन्द्रा  
और अधिक क्लेशसहित अनाह ज्वर  
स्तम्भ संज्ञाका अभाव ये होते हैं ॥ ७३ ॥

कोष्ठानिकण्डुःपाण्डुत्वंशोफार्शा  
स्यरुचिस्तृषा । जठरग्रहणीदो  
षःस्तैमित्यंवाक्यनिग्रहः ॥ ७४ ॥

कोष्ठ कंडु पांडुता सृजन अर्प अरुचि  
तृषा जठर ग्रहणीका दोष स्तैमित्य  
वाक्यका निग्रह ॥ ७४ ॥

शूलमामप्रदोषाश्चजायतेस्नेहवि  
भमात् । तत्राप्युल्लेखनंशस्तंस्वे  
दःकालप्रतीक्षणाम् ॥ ७५ ॥

शूल आमके दोष ये सब स्नेहके  
विभ्रमसे होते हैं उसमेंभी उल्लेखन श्रेष्ठ है  
स्वेद कालकी प्रतीक्षा से ॥ ७५ ॥

प्रतिपत्तिर्व्याधिबलंचुद्धासंसन

मेवच । तक्रारिष्टप्रयोगश्चरुक्षपा  
नान्नसेवनम् ॥ ७६ ॥

प्रतिपत्ति ( ज्ञान ) व्याधिका वल  
जानकर चंसन करावे-तक्रका अरिष्ट  
प्रयोग रूखे पान और अन्नका सेवन ७६  
मूत्राणां त्रिफलायाश्च स्नेहव्यापत्ति  
भेषजम् । अकाले चाहितश्चैवमा  
त्रयानचयोजितः ॥ ७७ ॥

मूत्र त्रिफलासे जो स्नेहके नाशको  
औषध-असमयमें और अहित और मा-  
त्राके विना भक्षण किया स्नेह मिश्र्या ७७  
स्नेहो मिश्र्योपचाराच्च व्यापयेताति  
सेवितः । स्नेहात् प्रस्कन्दनो जन्तु  
स्त्रिरात्रोपरतः पिबेत् ॥ ७८ ॥

प्रचारसे और अत्यंत सेवनसे मार  
देता है-स्नेहसे शुष्क जंतु तीन रात्रिके  
अनंतर स्नेहको पीवै ॥ ७८ ॥

स्नेहश्च द्रवमुष्णश्च व्यहंभुक्त्वार  
सौदनम् । एकाहोपरतस्तद्रत्तु  
क्त्वा प्रच्छर्दनं पिबेत् ॥ ७९ ॥

स्नेह द्रव उष्णको तीन दिन खाकर  
रसौदन भक्षण करै और तैसेही एकदिन  
उपरामसे भोजन करके प्रच्छर्दनको  
पीवै ॥ ७९ ॥

स्यात्तु संशोधनार्थाय वृत्तिः स्नेहे वि  
रिक्तिवत् । स्नेहद्विषः स्नेहनित्या  
मृदुकोष्ठाश्च येनराः ॥ ८० ॥

और संशोधनके लिये स्नेहमें वर्ताव  
विरेचनके समान है जो स्नेहके द्वेषी हैं  
जो स्नेहको नित्य खाते हैं जिन मनुष्योंका  
कोष्ठ मृदु है ॥ ८० ॥

क्लेशासहामयनित्यास्ते पामिष्ठा वि  
चारणा । लावतैर्त्तिरिमायूरसवा  
राहकौक्कुटाः ॥ ८१ ॥

जो क्लेशको सह सकते हैं जो मदिरा  
नित्य पीते हैं उनकी विचारणा इष्ट है-लाव  
तित्तिर मयूर वराह कुक्कुट ॥ ८१ ॥

गव्यजोरभमात्स्याश्च रसाः स्वस्ने  
हनेहिताः । यवकोलकुलत्थाश्च  
स्नेहाः सगुडशर्कराः ॥ ८२ ॥

गौ अज उरभ्र मत्स्य इनके रस  
अपने स्नेहनमें हित हैं-जौ कोल कुलथी  
गुड शर्करा इनके स्नेह ॥ ८२ ॥

दाडिमं दधिसव्योपरससंयोगसंग्र  
हः । स्नेहयन्ति तिलाः पूर्वजग्धाः  
सस्नेहफाणिताः ॥ ८३ ॥

दाडिम दधि व्योष यह रसके संयो-  
गका संग्रह है प्रथम भक्षण किये और  
स्नेहसे फाणित किये तिलभी स्नेहसे युक्त  
करते हैं ॥ ८३ ॥

कृशराश्च बहुस्नेहास्तिलकाम्ब  
लिकास्तथा । फाणितं शृङ्गवेरश्च  
तैलश्च सुरयासह ॥ ८४ ॥

और कृसर और काले तिल तैसेही  
अत्यंत स्निग्ध होते हैं और फाणित  
शृंगवेर और मदिराके संग तैलको ८४

पिवेदूक्षोवृत्तैर्मांसैर्जीर्णऽश्वीयाच्च  
भोजनम् । तैलसुरायामण्डेनव  
सांमज्जानमेववा ॥ ८५ ॥

रुक्षमनुप्य पीवै जीर्ण होनेपर घी मांस  
सहित भोजन करै—सुराके मांडके संग  
तैलको वा वसा और मज्जाको पीवै ॥ ८५ ॥

पिवेत्सफाणितंक्षीरंनरःस्निह्यति  
वातिकः । धारोष्णस्नेहसंयुक्तं  
पीत्वासलवणंपयः ॥ ८६ ॥

और फाणित दूधको पीकर वातिक  
मनुप्य स्नेह युक्त होताहै—धारोष्ण  
स्नेहसे और लवणसे युक्त दूधको  
पीकर ॥ ८६ ॥

नरःस्निह्यतिपीत्वावासरंदध्नःसफा  
णितम् । पाञ्चप्रसृतिकीपेयापा  
यसोमापमिश्रकः ॥ ८७ ॥

वा फाणित दधि केसर ( तोड़ )  
को पीकर मनुप्य स्नेहसे युक्त होताहै  
दूधकी पांच प्रसृति पीने योग्यहैं और  
उडद युक्त ॥ ८७ ॥

क्षीरसिद्धोबहुस्नेहःस्नेहयेदचिरा  
न्नरम् । सर्पिस्तैलवसामज्जातण्डु  
लप्रसृतैःकृता ॥ ८८ ॥

दूधकी सिद्ध ( मावा ) अतिस्नेहसे  
युक्त होकर शीघ्रही मनुप्यको स्नेह युक्त  
करतीहै सर्पि ( घी ) तैल वसा मज्जा  
इनको प्रसृतिभर तंडुलोंमें बनाकर ॥ ८८ ॥

पाञ्चप्रसृतिकीपेयापेयास्नेहनमि  
च्छता । ग्राम्यानुपोदकंमांसंगुडं  
दधिपयस्तिलान् ॥ ८९ ॥

पांच प्रसृति स्नेहनका अभिलाषी  
मनुप्य पीवै—ग्रामका अनुपजल मांस गुड़  
दधि दूध तिल ॥ ८९ ॥

कुष्ठीशोपीप्रमेहीचस्नेहनेनप्रयो  
जयेत् । स्नेहैर्यथास्वंतान्सिद्धैः  
स्नेहयेदविकारिभिः ॥ ९० ॥

इनको कुष्ठी शोपी प्रमेही स्नेहनके  
लिये भक्षण न करै यथास्व ( स्वाभा-  
विक ) सिद्ध स्नेह जो अविकारीहैं उनसे  
उनको स्नेहसे युक्त करै ॥ ९० ॥

पिप्पलीभिर्हरीतक्यासिद्धैस्त्रिफ  
लयापिवा । द्राक्षामलकयूपाभ्यां  
दध्नाचाम्लेनसाधयेत् ॥ ९१ ॥

अथवा पीपल हरड़ त्रिफला इनसे  
सिद्ध स्नेहोंसे स्नेहित करै द्राक्षा आंवले  
इनके यूषोंसे दधि वा अम्लसे साधन  
करै ॥ ९१ ॥

व्योषगर्भंभिषक्स्नेहंपीत्वास्निह्य  
तितन्नरः । यवलोककुलत्थानां  
साःक्षीरसुरादधि ॥ ९२ ॥

व्योषहै गर्भमें जिसके ऐसे स्नेहको  
भिषक् मिलाकर मनुप्यको स्निग्ध करता  
है जो लौका कुलथी इनके रस दूध  
मदिरा दधि ॥ ९२ ॥



क्षीरःसर्पिश्चतत्सिद्धंस्नेहनीयंघृतो  
त्तमम् । तैलमज्जावसासर्पिर्वदर  
त्रिफलारसैः ॥ ९३ ॥

और दूध घी इनसे सिद्ध जो उत्तम  
घृतहैं स्नेहन करने योग्य है तैल मज्जा  
वसा घीको बेर त्रिफलाके रसोंमें सिद्ध  
करके ॥ ९३ ॥

योनिशुक्रप्रदोपेपुसाधयित्वाप्रयो  
जयेत् । गृह्णात्यम्बुयथावस्त्रंप्रस्त्र  
वत्यधिकंयथा ॥ ९४ ॥

योनि शुक्रके दोषोंमें दे जैसे वस्त्र  
जलको ग्रहण करले जैसे अधिक जल  
निकसे ॥ ९४ ॥

यथाग्निर्जीर्ण्यतिस्नेहस्तथास्रवति  
चाधिकः । यथावाक्लेद्यमृत्पि  
ण्डमासिकंत्वरयाजलम् ॥ ९५ ॥

और जैसे अग्निजीर्ण होतीहै और  
स्नेह अधिक करताहै जैसे आर्द्र मिट्टीका  
पिंड सींचनेसे शीघ्र जलको झरताहै ९५

स्रवतिस्रंसतेस्नेहस्तथात्वारितसे  
वितः । लवणोपहिताःस्नेहाःस्ने  
हयन्त्यचिरान्नरम् ॥ ९६ ॥

तैसे शीघ्रतासे सेवन किया स्नेहपतित  
होजाताहै लवणसे युक्त स्नेह शीघ्रही  
मनुष्यको क्षिण्य करतैहैं ॥ ९६ ॥

तद्धयमिष्यन्त्यरूक्षञ्चसूक्ष्ममुष्णं  
व्यवायिच । स्नेहमग्रेप्रयुजीतत

तःस्वेदमनन्तरम् ॥ स्नेहस्वेदो  
पपन्नस्यसंशोधनमथेतरमिति ९७

उस स्नेहको अभिष्यंदी और अरूक्ष  
मनुष्य सूक्ष्म उष्ण व्यवायी स्नेहको प्रथम  
खा फिर स्वेदन करे स्नेह और स्वेद से  
युक्त को इतर संशोधनहै ॥ ९७ ॥ इति ॥

तत्रश्लोकः ॥

स्नेहविधिःकृत्स्नव्यापत्तिः  
समेपजा । यथाप्रश्नंभगवताव्या  
हंतंचान्द्रभागिना ॥ ९८ ॥

स्नेहाध्यायःसमाप्तः ।

उसमें यह श्लोकहै कि सब स्नेहोंकी  
विधि भेषजसहित व्यापत्तिकी सिद्धि यह  
सब भगवान् चांद्रभागीने प्रश्नके अनु-  
सार वर्णन कियाहै ॥ ९८ ॥

स्नेहाध्यायःसमाप्तः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथातःस्वेदाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब स्वेदाध्यायका वर्णन करतेहैं  
यह भगवान् आत्रेय कहतेहैं ॥

अतःस्वेदाःप्रवक्ष्यन्तेयैर्यथावत्

प्रयोजितैः । स्वेदसाध्याःप्रशाम्य

न्तिगदावातकफात्मकाः ॥ १ ॥

इसके अनंतर स्वेदोंको कहते हैं  
जिनके यथावत् प्रयोग करनेसे वात  
कफके वे रोग शांत होतेहैं जो स्वेदसे  
साध्य हैं ॥ १ ॥

स्नेहपूर्वप्रयुक्तेनस्वेदेनावर्जितेऽनि  
ले । पुरीषमूत्ररेतांसिनसज्जन्ति  
कथञ्च ॥ २ ॥

स्नेह पूर्वक स्वेदसे जब वायु नष्ट  
होजाता है तब किसीप्रकार भी मल मूत्र  
वीर्य आसक्त नहीं होते ॥ २ ॥

शुष्काण्यपिहिकाष्ठानिस्नेहस्वेदो  
पपादतैः । नमयन्तियथान्यायं  
किंपुनर्जीवतोनरान् ॥ ३ ॥

शुष्काकाष्ठभी स्नेह और स्वेदके कर-  
नेसे यथा योग्य नव जातेहैं तो जीवते  
मनुष्य क्यों नहीं नष्ट होंगे ॥ ३ ॥

रोगर्तुव्याधितापेक्षोनात्युष्णोऽति  
मृदुर्नच । द्रव्यवान्कल्पितोदेशे  
स्वेदःकार्यकरोमतः ॥ ४ ॥

रोग ऋतु व्याधि इनके अनुसार अति  
उष्ण अति मृदुसे अच्छे देशमें द्रव्योंसे  
किया स्वेद कार्य कारी कहाहै ॥ ४ ॥

व्याधौशीतेशरीरेचमहान्स्वेदो  
महाबलो । दुर्बलेदुर्बलःस्वेदोमध्य  
मेमध्यमोहितः ॥ ५ ॥

व्याधि शीत शरीर ये तीनों महा  
बलवान् होयतो महान् स्वेद—इनके दुर्बल  
होनेपर दुर्बल और मध्यममें मध्यम हित  
होताहै ॥ ५ ॥

वातश्लेष्मणिवातेवाकफेवास्वेद  
इष्यते । स्निग्धरूक्षस्तथास्निग्धो  
ऽरूक्षश्चाप्युपकल्पितः ॥ ६ ॥

वात श्लेष्ममें वा वातमें वा कफमें  
वह स्वेद इष्टहै जो स्निग्ध रूक्ष वा स्निग्ध  
वा अरूक्ष द्रव्योंसे कियाहो ॥ ६ ॥

आमाशयगतेवातेकफेपक्काशया  
श्रिते । रूक्षपूर्वोहितःस्वेदःस्नेहपू  
र्वस्तथैवच ॥ ७ ॥

आमाशयमें तो वातहो और कफ  
पक्काशयमें होयतो रूक्ष पूर्वक और तैसेही  
स्नेह पूर्वक स्वेद हित होताहै ॥ ७ ॥

वृषणौहृदयंदृष्टीस्वेदयेन्मृदुनैववा ।  
मध्यमंवक्ष्णौशेषमङ्गावयवमिष्ट  
तः ॥ ८ ॥

वृषण हृदय दृष्टि इनमें स्वेद मृदु  
द्रव्यसे करै वक्ष्णोंमें मध्यम स्वेद और  
शेष अंगमें यथेष्ट करै ॥ ८ ॥

सुशुद्धैर्नक्तकैःपिण्ड्यागोधूमानाम  
थापिवा । पद्मोत्पलपलाशैर्वा  
स्वेद्यःसंवृत्यचक्षुषी ॥ ९ ॥

शुष्क तिक्तोंसे भलीप्रकार स्वच्छ  
जीर्ण वस्त्रोंसे वा गेहूंकी पिंडीसे वा पद्म  
उत्पल पलाशोंसे नेत्रोंको मीचकर स्वेद  
करावै ॥ ९ ॥

मुक्तावलीभिःशीताभिःशीतलैर्भा  
जनैरपि । जलाद्रैर्जलजैर्हस्तैःस्वि  
द्यतोहृदयंस्पृशेत् ॥ १० ॥

शीतल मोतियोंकी मालाओंसे वा  
शीतल पात्रोंसे जलसे आर्द्रकमल और

हंस्तोंसे स्वेद लेते हुए मनुष्यके हृदयका स्पर्श करे ॥ १० ॥

शीतलव्युपरमेस्तम्भगौरवनिग्रहे । सञ्जातेमार्दवेस्वेदेस्वेदनाद्विरतिर्मता ॥ ११ ॥

शीतल स्तम्भ गौरव इनकी शांति और नाश होनेपर और स्वेदमें मृदुताके होनेपर स्वेदनसे विराम कहाँ है ॥ ११ ॥

पित्तप्रकोपोमूर्च्छाचशरीरसदनं तृपा । दाहस्वेदाङ्गदौर्बल्यमतिस्निग्धस्यलक्षणम् ॥ १२ ॥

पित्तका प्रकोप और मूर्च्छा शरीरका सदन ( जकड़ना ) तृपा दाह स्वेद किये अंगोंमें दुर्बलता ये अत्यंत स्निग्धके लक्षण हैं ॥ १२ ॥

उक्तस्तस्याश्रितेयोऽग्रैष्मिकः सर्वशोविधिः । सोऽतिस्निग्धस्यकर्तव्योमधुरःस्निग्धशीतलः ॥ १३ ॥

उसके आश्रयसे जो ग्रीष्म कालमें संपूर्ण कही है वह मधुर स्निग्ध शीतल विधि अति स्निग्धके लिये करनी ॥ १३ ॥

कषायमद्यनित्यानांगर्भिण्यारक्तपित्तिनाम् । पित्तिनांसातिसाराणांरूक्षाणांमधुमेहिनाम् ॥ १४ ॥

जो मनुष्य कषाय मदिराको नित्य पीत है गर्भिणी रक्तपित्ती पित्ती अतिसारी रूक्ष मधुमेही है ॥ १४ ॥

विदग्धभ्रष्टनाडीनांविपमयविका

रिणाम् । श्रान्तानानष्टसंज्ञानां स्थूलानांपित्तमेहिनाम् ॥ १५ ॥

विदग्धसे जिनकी नाडी भ्रष्ट है विपमयका जिनको विकार है जो श्रान्त हैं जिनकी संज्ञा नष्ट है जो स्थूल है जिनको पित्तसे प्रमेह रोग है ॥ १५ ॥

तृप्यतांक्षुधितानाञ्चक्रुद्धानांशोचतामपि । कामल्युदरिणाञ्चैव क्षतानामाढ्यरोगिणाम् ॥ १६ ॥

तृपित और क्षुधित हैं क्रुद्ध और शोचते हुये हैं—कामला उदर रोगी जो हैं जो क्षत हैं आढ्य रोगी हैं ॥ १६ ॥

दुर्बलातिविशुष्काणामुपक्षीणौजसांतथा । भिषक्तैर्मिरिकाणाञ्चनस्वेदमवतारयेत् ॥ १७ ॥

दुर्बल अति शुष्क हैं जिनका ओज क्षीण है—जिनको तिमिर रोग है इतने मनुष्योंको वैद्य स्वेद न करावे ॥ १७ ॥

प्रतिश्यायेचकासेचहिक्राश्वासेष्वलाघवे । कर्णमण्यांशिरःशूलेस्वरभेदेगलग्रहे ॥ १८ ॥

प्रतिश्यायमें कासहिका और श्वासमें अलाघवमें—कर्णकी मणि शिरका शूल स्वरभेद गल ग्रह ॥ १८ ॥

अदितैकाङ्गसर्वाङ्गपक्षाघातेविनामके । कोष्ठानाहविवन्धेषुशुक्राघातेविजृम्भके ॥ १९ ॥

एक अंगमें पीडित और सर्वांग और पक्षके आघातमें विनामकमें कोष्ठ आनाह विवंध शुक्राघात-विजृम्भकमें ॥ १९ ॥

पार्श्वपृष्ठकटीकुक्षिसंग्रहेगृध्रसीपु च । मूत्रकृच्छ्रेमहत्वेचमुष्कयो रङ्गमर्दके ॥ २० ॥

पार्श्व पृष्ठ कटि कुक्षी इनके संग्रहमें गृध्रसीमें मूत्रकृच्छ्रेमें अंडकोशोंकी वृद्धिमें अंगमर्दमें ॥ २० ॥

पादोरुजानुजङ्घातिंसंग्रहेश्वयथा वपि । खर्लीप्वामेपुशीतेचवेपथौ वातकण्टके ॥ २१ ॥

पाद उरु जंघा जानु इनके अत्यंत संग्रहमें श्वयथुमें-खली आम शीत कंप वात कंटक इनमें ॥ २१ ॥

सङ्कोचायामशूलेपुस्तम्भगौरवसु तिपु । सर्वाङ्गेपुविकारेपुस्वेदनं हितमुच्यते ॥ २२ ॥

संकोच आयाम शूलमें-स्तम्भ गौरव सुप्तिमें संपूर्ण अंगोंके विकारमें स्वेदन हित कहाहै ॥ २२ ॥

तिलमापकुलत्थाम्लघृततैलामि पौदनैः । पायसैःकृसरैर्मांसैःपिण्ड स्वेदंप्रयोजयेत् ॥ २३ ॥

तिलमाप कुलथी अम्ल तैल मांस ओदन पायस कृसर मांस ये उसको दे जिसकी पिंडसे स्वेद करना हो ॥ २३ ॥

गोखरोट्ट्वराहाश्वशरुद्धिःसतुषै

र्यवैः । सिकतापांशुपापाणकरी पायसपूटकैः ॥ २४ ॥

गौ खर ऊंट वराह अश्व इनका मल और तुषों सहित जो सिकता पांशु पापाण शुष्क गोमय लोहके पुट ॥ २४ ॥

श्लैष्मिकान्स्वेदयेत्पूर्वैर्वातिका नृसमुपाचरेत् । द्रव्याण्येतानि शस्यन्तेयथास्वंप्रस्तरेष्वपि ॥ २५ ॥

इनसे कफवालोंको स्वेद करावे और वातरोगियोंकी पहिलेसे चिकित्साकरे- यही द्रव्य यथायोग्य प्रस्तरणोंमेंभी श्रेष्ठ है ॥ २५ ॥

भूगृहेपुचजेन्ताकेपूष्णगर्भगृहेपुच । विधूमाङ्गारतप्तेष्वभ्यक्तःस्वि द्यतिनासुखम् ॥ २६ ॥

और भूगृहों ( गर्त ) में जेन्ताकोंमें और उष्ण गर्भके गृहोंमेंभी विधूम अं- गारोंसे तपायेहुयोंमें अभ्यंगकर्ता मनुष्य सुखसे स्वेदित होता है ॥ २६ ॥

ग्राम्यानूपौदकंमांसंपयोवस्तशिर स्तथा । वराहमध्यपित्तासृक्स्नेह वत्तिलतण्डुलान् ॥ २७ ॥

ग्रामका अनूपजल मांस दूध भेडका शिर वराहकेमध्य पित्तका रुधिर स्नेहके तिल तंडुल ॥ २७ ॥

इत्येतानिसमुत्क्राथ्यनाडीस्वेदंप्र योजयेत् । देशकालविभागज्ञो युक्त्यपेक्षोभिषक्तमः ॥ २८ ॥

इन सबका काथ करके नाडी स्वेद  
को करावे—देशकालके विभागका ज्ञाता  
युक्तिमान् उत्तम वैद्य ॥ २८ ॥

वारणाघृतकैरण्डशिग्रुमूलकसर्प  
पैः । वासावंशकरञ्जार्कपत्रैरश्मा  
न्तकस्यच ॥ २९ ॥

वारण अमृतके ( गिलोय ) एरंड  
सहिंजना सरसों वासा तुलसी वंश करंज  
अर्कपत्र अश्मांतक ( बहेडा ) ॥ २९ ॥

शोभाञ्जनकशैरीयमालतीसुरसा  
र्जकैः । पत्रैरुत्काथ्यसलिलं ना  
डीस्वेदं प्रयोजयेत् ॥ ३० ॥

शोभाञ्जन कसेरु मालती सुरसा  
अर्जक इनके पत्तोंके जलको पकाकर  
नाडी स्वेदको करावे ॥ ३० ॥

भूतीकपञ्चमूलाभ्यां सुरयादधिम  
स्तुना ॥ पत्रैरम्लैश्च स्नेहैर्नाडीस्वेदं  
प्रयोजयेत् ॥ ३१ ॥

भूतीक पंचमूलोंसे सुरासे दधिके  
मस्तुसे और स्नेहसहित अम्लके पत्तोंसे  
नाडीस्वेदको करावे ॥ ३१ ॥

एतएवचनिर्यूहाः प्रयोज्या जाल  
कोष्ठके । स्वेदनार्थं घृतक्षीरतैल  
कोष्ठांश्च कारयेत् ॥ ३२ ॥

यही निर्यूह जालकोष्ठमें प्रयोग करने  
स्वेदनके लिये घृत दूध तैल इनके कोष्ठ  
बनवावे ॥ ३२ ॥

गोभूमशकलैश्चूर्णैर्यवानामम्लसं  
युतैः । सस्नेहकिण्वलवणैरुपना  
हः प्रशस्यते ॥ ३३ ॥

गेहूंके टुकड़ोंसे और अम्लसे मिले  
जौके चूर्णोंसे स्नेह सहित किराव ( मदिरा-  
का बीज द्रव्य ) लवण इनसे उपनाह  
( लेप वा बंधन ) उत्तम होता है ॥ ३३ ॥

गन्धैः सुरायाः किष्टेन जीवन्त्याश  
तपुष्पया । उमयाकुष्ठतैलाभ्यां  
युक्तया चोपनाहयेत् ॥ ३४ ॥

गंधोंसे सुराके कीटसे जीवन्ती ( हरड़े )  
सौंफ उमा ( हलदी वा अलसी ) कूट  
तैल मिलाकर उपनाह करे ॥ ३४ ॥

चर्मभिश्चोपनद्धव्यः सलोमभिरपू  
तिभिः । उष्णवीर्यैरलाभेतुको  
शेयाविकशाटकैः ॥ ३५ ॥

और लोमसहित अपवित्र चर्मोंसे भी  
उपनाह करावे—वह न मिलै तो कौशेय  
( रेशम ) और ऊनकी शाडीसे करे ३५

रात्रौ बद्धं दिवामुञ्चेत् मुञ्चेद्रात्रौ  
दिवा कृतम् । विदाहपरिहारार्थं  
स्यात् प्रकर्षस्तु शीतले ॥ ३६ ॥

रात्रिमें बंधे हुयेको दिनमें खोल दे  
और दिनमें कियेको रात्रिमें खोल दे—  
विदाहके दूर करनेके लिये शीतलमें प्रकर्ष  
करे अर्थात् अधिक सेवन करे ॥ ३६ ॥

सङ्कुरः प्रस्तरा नाडीपरिषेकोऽवगा

हनम् । जेन्ताकोशमवनःकर्पुकु  
टीतुःकुम्भिकैवच ॥ ३७ ॥

शंकर, प्रस्तर, नाडी स्वेद-परिसेक,  
अवगाहन, जेन्ताक, पत्थर धन, कर्प,  
कुटी, भू, कुम्भिका ॥ ३७ ॥

कूपोहोलाकइत्येतेस्वेदयन्तित्र  
योदश । तान् यथावत्प्रवक्ष्या  
मिसर्वानेवानुपूर्वशः । इति ॥ ३८ ॥

कूप, होलाक, ये तेरह स्वेद करातेहें  
इन सबको यथार्थ रीतिसे क्रम पूर्वक  
कहताहूं-इति ॥ ३८ ॥

तत्रवस्त्रान्तरितेरवस्त्रान्तरितैर्वा  
पिण्डैर्यथोक्तैरुपस्वेदनंशङ्करस्वे  
दइतिविद्यात् ॥ ३९ ॥

ऊनमें वस्त्रके भीतर किये हों वा न  
किये हों ऐसे पूर्वोक्त पिण्डोंसे जो उपस्वेदन  
वह शंकरस्वेद जानना ॥ ३९ ॥

शूकशमीधान्यपुलाकानांवेशवा  
रायसकृशरोत्कारिकादीनांवाप्र  
स्तरैकौशेयाविकोत्तरप्रच्छेदेषच्चा  
ङ्गुलोरुबुकार्कपत्रप्रच्छेदेवास्व  
न्यक्तसर्वगात्रस्यशयानस्योपरि  
स्वेदनंप्रस्तरस्वेदइतिविद्यात् ४०

शूक शमी धान्य पुलाक इनके वा  
वेशवार लोहा कृशर उत्कारिका आदिके  
ऐसे विस्तरपर जो रेशम उनसे ढका हो वा  
पंचांगुल रुबुक अर्कके पत्ते इनसे ढका हो

उसपर सब गात्रमें अभ्यंग कराकर शयन  
कर्ताके ऊपर जो स्वेदन वह प्रस्तरस्वेद  
जानना ॥ ४० ॥

स्वेदनद्रव्याणांपुनर्मूलफलपत्रभ  
ङ्गादीनां मृगशकुनपिशितशिरः  
स्पदादीनामुष्णस्वभावानांवाय  
थार्हमल्ललवणस्नेहोपसंहितानां  
मूत्रक्षीरादीनांवाकुम्भ्यांवाष्पम  
नद्वमन्त्यामुत्कथितानांनाड्या  
शरेपीकावंशदलकरञ्जार्कपत्रान्य  
तमरुतयागजाग्रहस्तसंस्थानया  
व्यामदीर्घयाव्यामार्द्धदीर्घयावा  
व्यामचतुर्भागाष्टभागमूलाग्रपरि  
णाहस्रोतसासर्वतोवातहरपत्रसंवृ  
तच्छिद्रयाद्विस्त्रिर्वाविनामितया  
वातहरसिद्धस्नेहाभ्यक्तगात्रोवा  
ष्पमपहरेत् । वाष्पोह्यनृद्धगामी  
विहलचण्डवेगस्त्वचमविदहन्सु  
खंस्वेदयतीतिनाडीस्वेदः ॥ ४१ ॥

स्वेदनके जो मूल फल पत्र भंग  
आदि द्रव्य हैं वा मृगपक्षी मांस शिरस्पद  
आदि जो उष्णस्वभाव हैं जो यथायोग्य  
अम्ल लवण स्नेहसे युक्त हैं उन मूत्र दूध  
आदिकोंको ऐसी कुम्भीमें कथित करै  
जिसमेंसे वाष्प न निकले और शर ईषीका  
वंशदल करंजअर्कपत्र इनमेंसे किसीएककी  
बनाई ऐसी नाडीसे जो हाथीकी सूंडकी

बराबरहो और व्यामभर लंबीहो वा व्या-  
मार्द्धलंबीहो व्यामके चतुर्भागा जिसका  
मूलहो मूलाग्रके प्रमाणका जिसमें स्रोत  
( छिद्र ) हों और जिसका छिद्र चारों-  
तरफसे वातके नाशकपत्रोंसे ढकाहो जो  
दो वा तीन बार नवाई हो उस नाडीसे  
ऐसे स्नेहसे गात्रमें अभ्यंग करके जो  
वातनाशक प्रसिद्धहों वाष्पको ग्रहण  
करै—वह वाष्प ऊपरको न जाकर नष्ट  
चंड वेग ( शनैः ) त्वचाको नहीं दग्ध  
करता हुआ सुखसे स्वेद करता है यह  
नाडीस्वेद है ॥ ४१ ॥

वातिकोत्तरवातिकानांपुनर्मूलादी  
नामुत्क्राथैःसुखोष्णैःकुम्भीर्वापु  
लिकाःप्रनाडीवापूरयित्वायथार्ह  
सिद्धस्नेहाभ्यक्तगात्रंवस्त्रावच्छन्नं  
परिपेचयेदितिपरिपेकः॥ ४२ ॥

जो वातिकहैं वा अधिक वातिकहैं  
उन मूल आदिकोंके सुखोष्ण काथोंसे  
कुंभी वायुलिका वा प्रनाडी इन पात्रोंको  
पूर्ण करके यथोक्त सिद्ध स्नेहसे अभ्यक्त  
गात्रको वस्त्रोंसे ढककर सेचन करावै यह  
परिपेकहै ॥ ४२ ॥

वातहरोत्क्राथक्षीरतैलघृतपिशि  
तरसोष्णसलिलकोष्ठकावनाहस्तु  
यथोक्तएवावगाहः ॥ ४३ ॥

और वात हारी काथ किये दूध—  
तेल घी मांस—रसोष्णजल—इनके कोष्ठ-  
कमें जो स्नान वह यथार्थ अवगाहहै ४३

अथजेन्ताकंचिकीर्पुर्भूमिंपरीक्षे  
त । तत्रपूर्वस्यांदिश्युत्तरस्यांवा  
गुणवतिप्रशस्तेभूमिभागेऋष्ण  
मृत्तिकेसुवर्णमृत्तिकेवापरीवापपु  
ष्करिण्यादीनांजलाशयानामन्य  
तमस्यकूलेदक्षिणेपश्चिमेवासूपती  
र्थसमसुविभक्तभूमिभागेसप्ताष्टौवा  
अरत्नीमुपक्रम्योदकात्प्राङ्मुखमु  
दङ्मुखंवाभिमुखतीर्थंकूटागारं  
कारयेत् ॥ ४४ ॥

इसके अनन्तर जेन्ताक स्वेदको  
चाहता हुआ मनुष्य भूमिकी परीक्षा करै  
उसमें पूर्व वा उत्तर दिशामें वर्तमान गुण-  
वाले श्रेष्ठकाली व सुवर्णकी मट्टीके भूभा-  
गमें और परीवाप पुष्करणी आदि जल  
स्थानोंमें किसी एकके कूलपर दक्षिण व  
पश्चिमके सुन्दर उप तीर्थपर सम विभाग  
किये भूमिभागमें जलसे सात व आठ  
अरत्नी ( हाथ ) भर दर पर पूर्वाभि  
मुख वा उत्तराभिमुखका तीर्थके सन्मुख  
कूटागार अर्थात् गुप्त घेर बनवावै ॥ ४४ ॥

उत्सेधविस्तारतःपरमरत्नीहिपोडश  
समन्तात्सुवृत्तंमृत्कर्मसम्पन्नमने  
कवातायनम् । अस्यकूटागार  
स्यान्तःसमन्ततोभित्तिमरत्नीवि  
स्तारोत्सेधांपिण्डिकांकारयेत्क  
पाटवर्जम् । मध्येचास्यकूटागा

रस्यचतुष्किष्कुमात्रपुरुषप्रमाणं  
मृण्मयंकन्दुसंस्थानंबहुसूक्ष्मच्छि  
द्रमङ्गारकोष्ठकान्तंसपिधानंका  
रयेत् ॥ ४५ ॥

उँचाईके विस्तारसे अधिकसे अधिक  
सोलह हाथभर गोल मिट्टीके ऐसे पर  
क्रीठेसे युक्त हो जिसमें अनेकझरोखे  
होंय इसकूटागारकेभीतर चारोंतरफ  
हाथभर ऊंची भीतकी पिंडी बनवावे  
उसमें क्वाड़ न लगवावे और इस कू-  
टागारके मध्यमें चार किष्कुमात्र पुरु-  
षके प्रमाणका मिट्टीका कन्दके आकारका  
जिसमें बहुत छिद्रहों और ऐसे जलकी  
ढकने सहित अगारकोष्ठको बनवावे ४५

तश्चस्वादिराणामाश्वकर्णादीनां  
वाकाष्ठानांपूरयित्वाप्रदीपयेत् ।  
सथदाजानीयात्साधुदग्धानिका  
ष्ठानिगतधूमानिअवतप्तश्चकेवलम  
ग्निनातदग्निगृहंस्वेदयोग्येनचोष्म  
णायुक्तमिति ॥ ४६ ॥

उसमें खैर वच अश्वकर्ण आदि  
पवित्र काष्ठोंको भरकर अग्नि लगादे जब  
उसको ऐसा जानले कि काष्ठ भली  
प्रकार जल चुके और धूम नहीं रहा  
वह अग्निका घर केवल अग्निसे तप्त है  
और स्वेदके योग्य उष्णसे युक्त है ॥ ४६

तत्रैनंपुरुषंवातहराभ्यक्तगात्रं वस्त्रा  
वच्छन्नंप्रवेशयेत्प्रवेशयंश्चैनमनुशि

प्यात् । सौम्यप्रविशकल्याणा  
यारोग्यायचेति । प्रविश्यचैनां  
पिण्डिकामधिरुह्यपार्श्वपरपार्श्व  
भ्यांयथासुखंशयीथाःनचत्वया  
स्वेदमूच्छांपरीतेनापिसतापिण्डि  
कैपाविमोक्तव्यात्माआप्राणो  
च्छासात् । भ्रश्यमानोह्यतःपि-  
ण्डिकावकाशात्द्वारमनधिगच्छ  
न्स्वेदमूच्छांपरीततयासद्यःप्राणा  
न्जह्याः ॥ ४७ ॥

तब उसमें इस पुरुषको वातहारी  
अभ्यंगको कराकर और वस्त्रोंसे ढककर  
प्रवेश करावे और प्रवेश कराता हुआ  
इसको यह शिक्षा दे कि हे सौम्य कल्याण  
और आरोग्यके लिये इस घरमें प्रवेश  
कर और प्रविष्ट होकर इस पिंडीपर बैठ  
कर सुखपूर्वक दोनों पार्श्वोंमें शयनकर  
और स्वेदकी मूच्छा होनेपरभी प्राणोंके  
स्वास आने पर्यंत यह पिंडिका न छोडनी  
क्योंकि इस पिंडिकाके स्थानसे भ्रष्ट  
हुआ यदि दूर पर न जायगा तो स्वेद  
की मूच्छासे युक्त होनेसे शीघ्रही प्राणोंको  
त्याग देगा ॥ ४७ ॥

तस्मात्पिण्डिकामेनानंकथञ्चन  
मुञ्चेथाःत्वंयदाजानीयाःविगता  
भिष्यन्दमात्मानंसम्यक्प्रसृतस्वे  
दपिच्छंसर्वस्रोतोविमुक्तंलघुभूत



मपगतविवन्धस्तम्भसुतिवेदनागौरवमिति । ततस्तांपिण्डिकामनुसरन्द्वांरंप्रपद्येथाः । निष्क्रम्यच नसहसाचक्षुषोःपरिपालनार्थशीतोदकमुपस्पृशेथाः । अपगतसन्तापक्लमस्तुमुहूर्त्तात्सुखोष्णेनवारिणायथान्यायंपरिपिक्तोऽश्वीया इतिजेन्ताकस्वेदः ॥ ४८ ॥

तिससे इस पिण्डिकाको कदाचित् न छोड़िये और जब तू अपने देहको ऐसा जाने कि स्वेद नहीं है और स्वेदका जल झर चुके किसी स्रोतमें न रहै और देह लघु होजाय और विवंध स्तम्भ सुति वेदना गौरव ये नष्ट होजाय फिर उस पिण्डिकाका अनुसरण करताहुआ द्वारमें प्राप्त होजाइयो और निकस कर चक्षुओंकी रक्षाके लिये शीघ्रही शीतल जल का स्पर्श न करियो और जब संतापका खेद दूर होजाय तब मुहूर्त्तके अनंतर सुखोष्ण जलसे यथा योग्य सेचन करके स्नान करियो यह जेन्ताकस्वेदहै ॥ ४८ ॥

शयानस्यप्रमाणेनघनामश्वमर्या शिलाम् । तापयित्वामारुतघ्नैर्दारुभिःसंप्रदीपितैः ॥ ४९ ॥

प्रमाणसे शयन करते हुये मनुष्यको पत्थरकी घनशिला को वात नाशक जलते हुये काष्ठोंसे तैयारकर ॥ ४९ ॥

व्यपोह्यसर्वानङ्गारान्प्रोक्ष्यचै

वोष्णवारिणा।तांशिलामथकुर्वीतकौपेयाविकसंस्तराम् ॥ ५० ॥

सब अंगोंको छोड़कर उष्ण जलसे छिड़ककर उस शिला पर रेशम ऊनका विस्तरकरके ॥ ५० ॥

तस्यांस्वाभ्यक्तमूर्वाङ्गःशयानःस्विद्यतेसुखम् । रौरवाजिनकौपेयप्रावाराद्यैस्सुसंवृतः ॥ ५१ ॥

उस पर सब अंगोंमें अभ्यंग करके शयन करै तौ सुखसे स्वेदको प्राप्त होताहै और उस समय रुरुमृगका चर्म रेशम प्रावार इनसे आच्छादित रहै ५१ ॥

इत्युक्तोऽश्मघनस्वेदःकर्पूस्वेदःप्रवक्ष्यते । खानयेच्छयनस्याधःकर्पूस्थानविभागवित् ॥ ५२ ॥

यह अश्म घन स्वेदकहा अब कर्पू स्वेदको कहते हैं कि स्थानके विभागका ज्ञाता शयन करते हुयेके नीचे कर्पू(गढा) खुदवावे ॥ ५२ ॥

दीप्तैरधूमैरङ्गारैस्तांकर्पूपूरयेत्ततः । तस्यामुपरिशय्यायांस्वपन्स्विद्यतिनासुखम् ॥ ५३ ॥

जलतेहुये निर्धूम अंगारोंसे उस कर्पूको भरदे उसके ऊपर शय्यापर सोताहुआ मनुष्य सुखसे स्वेदको प्राप्त होताहै ॥ ५३ ॥

अनत्युत्सेधविस्तारांवृत्ताकारा

मलोचनाम् । घनभित्तिकुटीरं  
त्वाकुट्टाद्यैः सम्प्रलेपयेत् ॥ ५४ ॥

और जिसका अत्यंत ऊंचा विस्तार  
नहो गोल आकारहो जिसमें झरोखा नहो  
जिसकी भित्ति सघन हो ऐसी कुटी बना-  
कर त्रिकुटाआदिसे लेपन करा दे ॥ ५४ ॥

कुटीमध्येभिषक्शय्यांस्वातीर्णा  
ञ्चोपकल्पयेत् । प्रावाराजिन  
कौपेयकुत्थकम्बलगोलकैः ॥ ५५ ॥

और कुटीके मध्यमें सुंदर बिछौना  
जिसका ऐसी शय्याको बिछादे जो शय्या  
प्रावार मृगछाला रेशमीवस्त्र कुत्थकंबल  
गोलक इनसे युक्तहो ॥ ५५ ॥

हसन्तिकाभिरङ्गारपूर्णाभिस्ता  
ञ्चसर्वशः । परिवार्यान्तरारोहे  
दक्ष्यक्तःस्विद्यतेसुखम् ॥ ५६ ॥

और शय्याके चारों तरफ अंगारोंसे  
पूर्ण अँगोठी रखदे अभ्यंग करके उस  
शय्यापर स्थित मनुष्य सुख स्वेदको  
प्राप्त होताहै ॥ ५६ ॥

यएवाश्मघनस्वेदविधिभूमौसएवतु ।  
प्रशस्तायांनिवातायांसमायामुप  
दिश्यते ॥ ५७ ॥

जो अश्म घन स्वेदकी विधिहै वही  
स्वेदकी विधि प्रशस्त और पवन रहित  
समान भूमिमें कहतेहैं ॥ ५७ ॥

कुम्भीवातहरकाथपूर्णाभूमौनिखा  
तयेत् । अर्द्धभागंत्रिभागंवाशय  
नंतत्रचोपरि ॥ ५८ ॥

वातके नाशके द्रव्योंक काथसे पूर्ण  
कुम्भीको भूमिमें गाडदे उसके ऊपर अर्द्ध  
भाग वा त्रिभागपर शय्याको स्थापन  
कर दे ॥ ५८ ॥

स्थापयेदासनंवापिनातिसान्द्रप  
रिच्छदम् । अथकुम्भ्यांसुसन्त  
मान्प्रक्षिपेदयसोगुडान् ॥ ५९ ॥

वा ऐसा आसन रखदे जिसका बिछौना  
अत्यंत गीला न हो फिर कुम्भीमें भली  
प्रकार तपाकर लोहा और गुडको पत्थ-  
रोंको डालदे ॥ ५९ ॥

पाषाणान्बोष्मणातेनतत्स्थःस्वि  
द्यतिनासुखम् । सुसंवृताङ्गस्त्व  
भ्यङ्गःश्लेहैरनिलनाशनैः ॥ ६० ॥

उस शय्यापर स्थित मनुष्य सुखसे  
स्वेदको प्राप्त होताहै और वह मनुष्य  
वातनाशक स्नेहोंसे अभ्यंग करे और  
अंगोंको भलीप्रकार ढककर बैठे ॥ ६० ॥

कूपंशयनविस्तारंद्विगुणञ्चापिवे  
धतः । देशेनिवातेशस्तेचकुर्व्या  
दन्तःसुमार्जितम् ॥ ६१ ॥

शय्याके विस्तारका वा वेधसे द्विगुण  
कूप वातरहित सुंदर देशमें भीतरसे  
मार्जन सहित बनवावे ॥ ६१ ॥

हस्त्यश्वगोखरोष्ट्राणांकरिषैर्दग्ध  
पूरिते । स्ववच्छन्नःससंस्तीर्णऽ  
भ्यक्तस्विद्यतिनासुखम् ॥ ६२ ॥

हाथी अश्व गौ खर ऊंट इनके जले

हुये करीबोंसे पूर्ण कूपमें भली प्रकार  
विछोना करके गात्रोंको वस्त्रोंसे ढककर  
अभ्यंग करनेसे मनुष्य सुखसे स्वेदको  
प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥

धीतिकान्तुकरीपाणांयथोक्तानां  
प्रदीपयेत् । शयनान्तःप्रमाणेन  
शय्यामुपरितत्रच ॥ ६३ ॥

पूर्वोक्त करीबोंको धीतिका ( ढेरी )  
को शय्याके भीतर ले प्रमाणसे जलावै  
वह जब भली प्रकार जलजाय और  
विधूम होजाय तब उसके ऊपर शय्या-  
को विछावै ॥ ६३ ॥

सुदग्धायांविधूमायांयथोक्तामुप  
कल्पयेत् । स्ववच्छन्नःस्वपंस्त  
त्राभ्यक्तःस्विद्यतिनासुखम् ६४ ॥

भली प्रकार गात्रको ढककर अभ्यंग  
करके उस शय्यापर सोताहुआ मनुष्य  
सुखसे स्वेदको प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥

होलाकस्वेदइत्येपसुखःप्रोक्तोमह  
र्षिणेति । इतित्रयोदशविधःस्वे  
दोऽग्निगुणसंश्रयः ॥ ६५ ॥

यह सुखदायी होलाकस्वेद मह-  
र्षिने कहा है यह अग्निके गुणोंके आश्रयसे  
तेरह प्रकारका स्वेद है ॥ ६५ ॥

व्यायामउष्णसदनंगुरुप्रावरणंक्षु  
धा । बहुपानंभयक्रोधावुपनाहा  
हवातपाः ॥ ६६ ॥

और व्यायाम उष्ण स्थान भारी  
प्रावरण क्षुधा अधिकपान भय क्रोध  
उपनाह संग्राम आतप ॥ ६६ ॥

स्वेदयन्तिदशैतानिनरमग्निगुणाद्  
ते । इत्युक्तोद्विविधःस्वेदःसंयुक्तो  
ऽग्निगुणैर्नच ॥ ६७ ॥

ये दश अग्निगुणोंके विनाभी मनु-  
ष्यको स्वेदसे युक्त करते हैं अग्निके  
गुणोंसे युक्त और अयुक्त यह दो प्रका-  
रका स्वेद कहा ॥ ६७ ॥

एकाङ्गसर्वाङ्गतःस्निग्धोरुक्षस्त  
थैवच । इत्येतत्त्रिविधंद्वन्द्वंस्वे  
दमुद्दिश्यकीर्तितम् ॥ ६८ ॥

एक अंगमें वां सर्वांगमें स्निग्ध और  
रूक्ष यह दो प्रकारका द्वंद्व स्वेदका  
कहा है ॥ ६८ ॥

स्निग्धःस्वेदैरुपक्रम्यःस्विन्नःप  
थ्याशनोभवेत् । तदहःस्विन्नगा  
त्रस्तुव्यायामंवर्जयेन्नरइति ॥ ६९ ॥

स्निग्ध स्वेदोंसे युक्त होकर स्विन्न  
मनुष्य पथ्य भोजन करके सुखी होता है  
स्वेदको प्राप्त हुआ मनुष्य उसदिन  
व्यायामको वर्ज दे इति ॥ ६९ ॥

तत्र श्लोकाः ।

स्वेदोयथाकार्यकरोहितोयेभ्यश्च  
यद्विधः । यत्रदेशेयथायोग्योदेशो  
रक्ष्यश्चयोयथा ॥ ७० ॥

उसमें ये श्लोक हैं जैसे स्वेद कार्य-  
कारी होता है जिनसे और जैसा हित है  
जिस देशमें जैसा योग्य है जो देश जैसे  
रक्षाके योग्य है ॥ ७० ॥

स्विन्नातिस्विन्नरूपाणितथातिस्वि  
न्नभेषजम् । अस्वेद्याः स्वेदयोग्या  
श्चस्वेदद्रव्याणिकल्पना ॥ ७१ ॥

स्विन्न अतिस्विन्नके रूप और अति  
स्विन्नकी औषध स्वेदके अयोग्य और  
स्वेद योग्य स्वेदके द्रव्योंकी कल्पना ७१  
त्रयोदशविधः स्वेदो विना दशविधो  
ऽग्निना । संग्रहेण च षट्स्वेदाः स्वे  
दाध्याये निदर्शिताः ॥ ७२ ॥

और संग्रहसे तेरह प्रकारके स्वेद-  
और अग्निके विना दश प्रकारका स्वेद  
और संग्रहसे छः प्रकारका स्वेद स्वेदा-  
ध्यायमें दिखाये हैं ॥ ७२ ॥

स्वेदाधिकारैर्यद्वाच्यमुक्तमेतन्म  
हर्षिणा । शिष्यैस्तु प्रतिपत्तव्यमु  
पदेष्टा पुनर्वसुरिति ॥ ७३ ॥

अग्नीत्यादि ॥ स्वेदाध्यायः समाप्तः ।

ये सब स्वेदाधिकारमें कहने योग्य-  
महर्षि ने कहे हैं और शिष्योंको जानने  
चाहिये सबके उपदेष्टा पुनर्वसु हैं ॥ ७३ ॥  
इति अग्नीत्यादि स्वेदाध्यायः समाप्तः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथात उपकल्पनीयमध्यायं व्या

ख्यास्यामः । इति हस्माह भग  
वानात्रेयः ।

इसके अनंतर उपकल्पनीय अध्या-  
यका वर्णन करते हैं यह भगवान् आत्रेय  
कहते हैं

इह खलु राजानं राजमात्रमन्यं वा  
विपुलद्रव्यं संनृतसम्भारं वमनं वि  
रेचनं वा पाययितुं कामेन भिषजा  
प्रागेवौषधपानात्सम्भारा उपक  
ल्पनीया भवन्ति । सम्यक् चैव  
हि गच्छत्यौषधे प्रतिभोगार्थाः व्या  
पन्ने चौषधे व्यापदः परिसंख्याय  
प्रतीकारार्थाः । न हि सन्निरुद्धे  
काले प्रादुर्भूता यामापदिसत्यपि  
क्रयाक्रये सुकरमागुसम्भरणमौष  
धानां यथावदित्येवंवादिनं भगव  
न्तमात्रेयमग्निवेश उवाच ॥ १ ॥

कियहां निश्चयसे राजाको नामके  
राजाको वा अधिक धनाढ्य अन्य संभा-  
रवान् को वमन वा विरेचनके द्रव्य पिला-  
नेके अभिलाषी वैद्यको औषधके पीनेसे  
पहिले ही सामग्रियोंका संचय करना  
चाहिये जो संभार भली प्रकार औषधके  
पेटमें जानेसे प्रतिभोगके अर्थ होते हैं  
और औषधके पचनेपर आपत्तिका ज्ञान  
होनेसे विशेषकर आपत्तिके निवारक  
होते हैं अर्थात् चिकित्साके अर्थोंको  
संपादन करते हैं क्योंकि समीपके कालमें

आपत्तिके प्रकट होनेपर क्रय अक्रयके होनेपरभी शीघ्रही औषधोंका संभरण ( संचय ) यथायोग्य सुकर नहीं होता इस प्रकार कहते हुये भगवान् आत्रेयको अग्निवेश बोले कि ॥ १ ॥

ननुभगवन्नादावेवज्ञानवतातथा।  
प्रतिविधातव्यंयथाप्रतिविहितेसि  
द्धयेदेवौषधमेकान्तेन । सम्यक्  
प्रयोगनिमित्ताहिसर्वकर्मणांसि  
द्धिरिष्टाव्यापचासम्यक्प्रयोगनि  
मित्ता । अथसम्यगसम्यक्चस  
मारब्धकर्मसिद्धयतिव्यापयतेवा  
नियमेन । तुल्यंभवतिज्ञानमज्ञा  
नेनेति ॥ २ ॥

हे भगवन् पहिलेही ज्ञानवान् भिषक् तिस प्रकार चिकित्साको करे जिस प्रकार करनेसे निश्चयसे औषध सिद्धही हो क्योंकि संपूर्ण कर्मोंकी सिद्धि भली प्रकार प्रयोगके निमित्तसे इष्ट है और आपत्ति ( रोग ) असम्यक् प्रयोगसे होती है और सम्यक् असम्यक् रीतिसे प्रारंभ किया कर्म नियमसे सिद्धि असिद्धिको क्रमसे प्राप्त होताहै क्योंकि ज्ञान अज्ञानके तुल्य होता है ॥ २ ॥

तमुवाचभगवानात्रेयः । शक्यं त  
थाप्रतिविधातुमस्माभिरस्मद्विधै  
र्वाप्यग्निवेषयथाप्रतिविहितेसि  
द्धयेदेवौषधमेकान्तेनतच्चप्रयोगसौ

ष्ठवमुपदेष्टुंयथावन्नहिकश्चिदस्ति।  
यएतदेवमुपदिष्टमुपधारयितुमुत्  
सहेत ॥ ३ ॥

उस अग्निवेशको भगवान् आत्रेय बोले कि—हे अग्निवेश तिस प्रकार करनेको हम वा हमारी-तुल्य अन्य समर्थहैं कि जैसे कियेसे नियमसे औषध अवश्य सिद्धही हो उस प्रयोगकी सुष्ठुताका उपदेश यथार्थ करनेको कोई नहींहै कि जो इसके धारण करनेको समर्थ यह औषध इस प्रकारसे हमको उपदेश किईहै ॥ ३ ॥

उपधार्य वा तथाप्रतिपत्तुंप्रयोजुं  
वा । सूक्ष्माणिहिदेशभेषजदेश  
कालबलशरीराहारसात्म्यसत्त्वप्र  
कृतिवयसामवस्थान्तराणि ४

और सुनकर उस प्रकारके जाननेको वा प्रयोग करनेको दीहै—क्योंकि दोष भेषज देशकालबल शरीर आहार सात्म्य सत्त्व प्रकृति आयु इनकी भिन्न अवस्था अति सूक्ष्महैं ॥ ४ ॥

यान्यनुचिन्त्यमानानिविमलवि  
पुलबुद्धेरपिबुद्धिमाकुलीकुर्युः  
किंपुनरल्पबुद्धेः ॥ ५ ॥

जो अनुचितन कियेभी निर्मल अधिक बुद्धिमान् की बुद्धिकोभी व्याकुलकर देतेहैं अल्प बुद्धिकी बुद्धिको तो व्याकुल क्यों न करेंगे ॥ ५ ॥

तस्मादुभयमेतद्यथावदुपदेक्ष्या  
मः । सम्यक्प्रयोगञ्चौपधानां  
व्यापन्नानाञ्चव्यापत्साधनानिसि  
द्धिपृत्तरकालम् । इदानीं तावत्  
संभागान्विविधानपिसमासेनोप  
देक्ष्यामः ॥ ६ ॥ तद्यथा ॥

तिससे इन दोनोंका यथार्थ उपदेश  
करेंगे और औपधोंके भली प्रकार प्रयो-  
गका और व्यापनोंकी व्यापत्तिके साध-  
नोंका सिद्धियोंको उत्तरकालमें कहेंगे  
अब तो प्रथम अनेक प्रकारके संभारोंको  
संक्षेपसे कहतेहैं ॥ ६ ॥

दृढनिवातप्रवातकदेशंसुखप्रवि  
चारमनुपत्यकंधूमातपरजसामन  
भिगमनीयमनिष्टानाञ्चशब्दस्पर्श  
रसरूपगन्धानांसोपानोदूखलमुस  
लवर्चःस्थानस्नानभूमिमहानसोपे  
तंवास्तुविद्याकुशलःप्रशस्तंगृह  
मेवतावत्पूर्वमुपकल्पयेत् ॥ ७ ॥

वे ऐसेहैं कि—दृढ वात रहित प्रवातका  
एकदेश सुखसे विचरने योग्य पर्वतके समी  
प न हो धूम आतपरज ये जिसमें न जाते  
हों और अनिष्टशब्द स्पर्श रस रूप  
गंध जिसमें नहों—जिसमें सोपान( सीढ़ी )  
ऊँचा ऊँखल मुसल मलस्थान स्नान  
भूमि महानस ये सब होय वास्तु विद्यामें  
कुशल मनुष्य प्रथम श्रेष्ठ ग्रहकीही सिद्धि  
करे ॥ ७ ॥

ततःशीलशौचाचारानुरागदाक्ष्य  
प्रादक्षिण्योपपन्नानुपचारकुशला  
न्सर्वकर्मसुपर्य्यवदातान्सूपौद  
नपाचकस्नापकसंवाहकोत्थापक  
संवेशकौपधपेपकांश्चपरिचारका  
न्सर्वकर्मस्वप्रतिकूलान्तथागी  
तवादित्रोल्लापकश्लोकगाथाख्या  
यिकेतिहासपुराणकुशलानभिप्रा  
यज्ञनानुभतांश्चदेशकालविदःप  
रिषयांश्च । तथालावकपिञ्जल  
शशहरिणैकालपुच्छकमृगमा  
तृकोरभान् ॥ ८ ॥

फिर शील शौच आचार—अनुराग  
चतुरता—श्रेष्ठता इनसे युक्त सब कुशल  
कर्मोंमें शुद्ध, द्विदला ओदनके पाचक  
स्नापक संवाहक उत्थापक संवेशक अर्थात्  
न्हाने उठाने ढवाने और सुलाने वाले और  
औपधियोंके पीसनेवाले सब कर्मोंमें  
अनुकूल सेवकोंकी और गीत वादित्र  
उल्लापक श्लोक गाथा आख्यायिका इति  
हास पुराण इनमें कुशल अभिप्रायके  
जाननेवाले और अनुमत देश कालके  
ज्ञाता सभासदोंको और लाव कर्पिजल  
शश हरिण एण कालपुच्छ मृग मातृक  
उरभ्र इनको ॥ ८ ॥

गांदोग्रशीलवतीमनातुरांजीवद्र  
त्सांसुप्रतिविहिततृणशरणपानी

याम् । पात्र्याचमनीयोदकोष्ठम  
णिकघटपिठरपय्योगकुम्भीकुम्भ  
कुण्डशरावदर्वीकटोदञ्चनपरिपच-  
नमन्थानचर्मचेलसूत्रकार्पासो  
र्णादीनिचशयनासनादीनिचोपन्य  
स्तभृङ्गारप्रत्रिगृहाणिसुप्रयुक्ता  
स्तरणोत्तरप्रच्छदोपधानानिस्वा  
पाश्रयाणिसंवेशनस्नेहस्वेदाभ्यङ्ग  
प्रदेहपरिषेकानुलेपनवमनविरेच  
नास्थापनानुवासनशिरोविरेचन  
मूत्रोच्चारकर्मणामुपचारसुखानि  
सुप्रक्षालितोपधानाश्चसुश्लक्ष्णख  
रमध्यमादृषदःशस्त्राणिचोपकर  
णार्थानि । धूमनेत्रंबचोस्तिनेत्र  
ओत्तरवस्तिकञ्च । कुशहस्तक  
ञ्चतूलाञ्चमानभाण्डञ्चघृततैलव  
सामज्जक्षौद्रफाणितलवणेन्धनोद  
कमधुसीधुसुरासौवीरकतुषोदकमै  
रेयमेदकदधिदधिमण्डोदस्विच्चा  
न्यम्लमूत्राणिच ॥ ९ ॥

और दूध देती सुशील, अरोगिन  
जीवितवत्सा ऐसी गौरख्खे जिसके तृण  
स्थान, जल, उत्तम होय, और पात्र  
आचमनी, जल, कोष्ठ, मणि, घट, पिठर  
कुम्भी, कुम्भ, कुण्ड, शराव वदनी, (कलली  
कट, उदञ्चन परिपचन मन्थान चर्म

वस्त्र कार्पास ऊर्णा आदिकी और ऐसे  
शय्या आसन आदि होय जिनमें शृंगार  
की सामग्री होय और जिनमें उत्तम  
आस्तरण प्रच्छादन उपधान होय और  
शयनके योग्य होय और शयन स्नेह  
स्वेद अभ्यंग प्रदेह परिषेक अनुलेपन  
वमन विरेचन अनुवासन शिरका विरे-  
चन मूत्रोच्चार इन कर्मोंके उपचारका  
जिनमें सुख होय और भली प्रकार  
धुलेहैं उपधान जिनके, और चिकने और  
मध्यमें कठोर पत्थरोंको और प्रकार  
शस्त्रोंको और धूमनेत्र वस्तीनेत्र और  
उत्तरवस्तीनेत्र और कुशहस्तको और  
तुला और मान भांडको और घी, तैल-  
बसा- मज्जा- शहत- फाणित-लवण-  
इन्धन-जल-मधु, सीधु-सुरा-वेर-तुसो  
दकमैरेय- मेदक- दधि- दधिमण्ड-  
तक्र-अम्ल-मूत्र इनको ॥ ९ ॥

तथाशालिषट्टिकमुद्रमापयवति  
लकुलत्थवदरमृद्धीकाश्मर्यपरू  
पाभयामलकविभीतकानिनाना  
विधानिचस्नेहस्वेदोपकरणानि  
द्रव्याणितथैवोद्धृहरानुलोमिको  
भयभाजिसंग्रहणीयदीपनीयपा  
चनीयोपशमनीयवातहराणि  
समाख्यातानिचौपधानियच्चान्य  
दपिकिञ्चिद्व्यापदःपरिसंख्यायो  
पकरणंविद्यात् । यच्चप्रतिभोगा  
र्थतत्तदुपकल्पयेत् ॥ १० ॥

और तिसीप्रकार चावल-सांठी-मूंग  
डड़द-जौ-कुलथी-तिल-वेर-मुनक्का-  
अस्मरी-अपरुपा-(फालसा)हरडे-वहंडे  
आवले-इनको और नानाप्रकारके स्नेह  
और स्वेदके उपकारी द्रव्योंको और  
तैसेही उर्द्धहर आनुलोमिक और उभय  
मुख-संग्रहणीय दीपनीय पाचनीय उप-  
शमनीय वातहर जो औषधकहीहैं और  
जो अन्यभी किंचित् आपत्तिकी संख्यासे  
उपकरण जानै और जो भोग के लियेहों  
उसको एकत्र करै ॥ १० ॥

ततस्तंपुरुषं यथोक्ताभ्यां स्नेहस्वेदा-  
भ्यां यथार्हमुपपादयेत् । तश्चेद-  
स्मिन्नन्तरे मानसः शारीरो वा व्या-  
धिः कश्चित्तीव्रतरः सहसाभ्याग-  
च्छेत्तमेव तावदस्योपावर्त्तयितुं य-  
तेत । ततस्तमुपावर्त्य तावन्तमे-  
वेन कालं तथा विधेनैव कर्मणोपाच-  
रेत् । ततस्तंपुरुषं स्नेहस्वेदोपपन्न-  
मनुपहतमानसमभिसमीक्ष्य सुखो-  
पितं प्रजीर्णभक्तं शिरःस्नातमनुलि-  
प्तगात्रं स्रग्विणमनुपहतवस्त्रसंवी-  
तं देवताग्निद्विजगुरुवृद्धवैद्यानिर्चि-  
तवन्तमिष्टेन क्षेत्रेतिथिकरणमुहू-  
र्त्तेकारयित्वा ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच-  
नं प्रयुक्ताभिराशीर्भिरभिमन्त्रितां

मधुमधुकसैन्धवफाणितोपहितां  
मदनफलकपायमात्रांपाययेत् ११

फिर उस पुरुषको शास्त्रोक्त स्नेह  
स्वेदसे यथायोग्य युक्त करै-यदि उसको  
उसी समय मन वा शरीरकी कोई तीव्र  
व्याधि शीघ्र होजाय तो प्रथम उसके ही  
निवर्तन करनेमें यत्न करै-फिर उस  
व्याधिको दूर करके उतने काल पर्यंत  
उसकी वैसेही कर्मसे चिकित्सा करै-फिर  
स्नेह स्वेदसे युक्त और मानसव्याधिसे  
रहित उस पुरुषको देखकर सुखसे वास  
जीर्ण भोजन-शिरसे स्नान लियाहै गात्र  
जिसका माला धारण किये नवीन पस्त्रोंसे  
आच्छादित-देवता अग्नि द्विज गुरु वृद्ध  
वैद्य इनका पूजक ऐसे उस पुरुषको इष्ट  
नक्षत्र तिथि करण मुहूर्तमें ब्राह्मणोंसे  
स्वस्तिवाचन कराकर उन ब्राह्मणोंकी  
दीहुई आशीर्वादोंसे अभिमन्त्रित और  
मधु मधुक सैन्धव फाणित इन समुदित  
( युक्त ) हो ऐसी भैन फलके कषायकी  
मात्राको पिलावै ॥ ११ ॥

मदनफलकपायमात्राप्रमाणन्तु ख-  
लुसर्वसंशोधनमात्राप्रमाणानि च ।  
प्रतिपुरुषमपेक्षितव्यानि भवन्ति ।  
यावद्ध्रियस्य संशोधनं पीतवैकारि-  
कदोषहरणायोपपद्यते ॥ १२ ॥

और मदन फलके कषायकी मात्राका  
प्रमाणतो और संपूर्ण शोधनकी मात्रा-  
ओंके प्रमाण प्रत्येक पुरुषकी अपेक्षासे



होतेहैं जिसको जितना संशोधन पीया  
हुआ विकारके दोष नाशार्थ योग्यहो १२॥  
नचातियोगायोगायतावदस्यसा  
त्राप्रमाणंवेदितव्यंभवति ॥ १३॥  
और अतियोग और अयोगके लिये  
इसको मात्राका प्रमाण जानने योग्य  
नहींहैं ॥ १३ ॥

पीतवन्तन्तुखल्वेनमुहूर्तमनुकांक्षे  
त् । तस्ययदाजानीयात्स्वेदप्रा  
दुर्भावेणदोषप्रविलयनमापद्यमानं  
लोमहर्षेणचस्थानेभ्यःप्रचलितं  
कुक्षिसमध्मानेनचकुक्षिमनुगतं  
हृल्लासास्यश्रवणाभ्यामपचितोर्द्ध्व  
मुखीभूतमथास्मैजानुसममसम्बा  
धंसुप्रयुक्तास्तरणोत्तरप्रच्छदोप  
धानंस्वापाश्रयमासनमुपवेष्टुंप्रय  
च्छेत् ॥ १४ ॥

पीनेके अनंतर इसकी मुहूर्तमात्र  
प्रतीक्षा करे जिस समय स्वेदके पैदा  
होनेसे दोषोंके नाशको हुआ जानै और  
स्वेद रोमोंके हर्षसे स्थानोंमें प्रचलित  
और कुक्षिके सम्यक् आध्मानसे कुक्षिमें  
प्राप्त हृल्लास ( हृत्पीडा ) मुखका श्रवण  
इनसे अपचित ऊर्द्धमुख बैठे हुयेको फिर  
जानु समान करावै और बाधासे रहित  
आस्तरण आच्छादन उपधान इनको  
अच्छी तरह लगाकर शयनके आसनको  
बैठनेके लिये दे ॥ १४ ॥

प्रतिग्रहांश्चोपचारयेत् । ललाट  
प्रतिग्रहेपाश्वोपग्रहणेनाभिप्रपीड  
नेपृष्ठोन्मर्दनेचअव्युपक्रमनीयाः  
सुहृदोऽनुमताःप्रवर्तेरन् । अथैन  
मनुशिष्यात् । विवृतौष्ठतालुकण्ठो  
नातिमहताव्यायामेनवेगानुदीर्णा  
नुदीरयन्किञ्चिदवनम्यग्रीवामूर्द्ध  
शरीरमुपवेगमप्रवृत्तान्प्रवर्तय  
न्सूपलिखितनखाभ्यामङ्गुलीभ्या  
मुत्पलकुमुदसौगन्धिकनालैर्वाक  
ण्ठमनभिस्पृशन्सुखंप्रवर्तयस्वे  
ति ॥ १५ ॥

और अतिग्रहोंसे उपचार ( सेवा )  
करावै मस्तकके पकडने पार्श्वोंके ग्रहण  
करने नाभीके पीडनमें पृष्ठके उन्मर्दनमें  
ऐसे मित्रोंको यत्नमें लगावै जो वहांसे  
पृथक् न हों और अनुमत हों—फिर  
इसको यह शिक्षा दे कि ओष्ठ तालु कंठ  
इनको न ढकना और अत्यंतमहान्  
व्यायामसे ऊपरको वेगोंको न बढाइयो—  
किंचित् ग्रीवाको नवाकर उर्द्ध शरीरकी  
तरफ वेगको न प्राप्त हुयी रखियो—सुंदर  
लिखितहैं नख जिनके ऐसी अंगुलीयोंसे  
और उत्पल कुमुद सौगंधिक इनकी  
नालोंसे कंठका स्पर्श न करियो—इस  
प्रकार सुखसे वर्ताव करियो ॥ १५ ॥

सतथाविधंकुर्प्यात्ततोऽस्यवेगा  
न्प्रतिग्रहगतान्वेक्षेतावहितःवेग

विशेषदर्शनाद्विकुशलोयोगायोगा-  
तियोगविशेषानुपलभेतवेगवि-  
शेषदर्शीपुनःकृत्यं यथार्हमवबुद्धये  
तलक्षणेन । तस्माद्वेगानवेक्षेता  
वहितः ॥ १६ ॥

वह उसी प्रकार करै—फिर इस रोगी-  
के प्रतिग्रहको प्राप्त हुये वेगोंको देखै  
क्योंकि वेग विशेषोंके दर्शनमें सावधान  
कुशल वैद्य योग अयोग अतियोगोंके  
विशेषोंको जान लेताहै और वेग विशेष-  
पका दर्शी यथायोग्य कृत्यको लक्षणसे  
जान लेता है तिससे सावधान होकर  
वेगोंको देखै ॥ १६ ॥

तत्र अत्यतियोगातियोगविशेषज्ञा-  
नाभिभवन्ति । तद्यथा अपवृत्ति  
कुतश्चित् । केवलस्य वाप्यौषध-  
स्य विभ्रंशो विवन्धो वेगानां योगल-  
क्षणानि भवन्ति ॥ १७ ॥

वहां अत्यंत अतियोग योग अतियो-  
गोंके विशेषज्ञान होते हैं वे ऐसे हैं कि  
किसीमें तो अपवृत्ति करै वा केवलभी  
औषधका विभ्रंश वेगोंका बंधन ये योगके  
लक्षण होते हैं ॥ १७ ॥

काले प्रवृत्तिरतिमहती वयथास्वं  
दोषहरणं स्वयञ्चावस्थानमिति यो-  
गलक्षणानि भवन्ति । योगेन तु दो-  
षप्रमाणविशेषेण तीक्ष्णमृदुमध्य

विभागोज्ञेयः । योगाधिक्येन तु  
फेणिलरक्तचन्द्रिकोपगमनमित्य-  
तियोगलक्षणानि भवन्ति । तत्रा-  
तियोगायोगानिमित्तानि मानुषद्रवा-  
न्विद्यात् । आध्मानं परिकर्त्ति-  
कापरिस्रावो हृदयोपशरणमङ्ग-  
होजीवादानं विभ्रंशः स्तंभकृम उप-  
द्रव इति ॥ १८ ॥

समयपर अत्यंत महाप्रवृत्ति न होनी  
अर्थात् अल्प उपचार करना यथायोग्य  
दोषोंको हरना और स्वयं स्थिति रखना  
ये योगके लक्षण होते हैं और योगसे  
दोष प्रमाणके विशेषसे तीक्ष्ण मृदु मध्य  
विभाग जानना—और योगकी अधिकतासे  
फेणिल रक्तचन्द्रिकोपगमन ये अति-  
योगके लक्षण होते हैं—उसमें अतियो-  
गके योगसे हुये इन उपद्रवोंको जानै  
कि आध्मान परिकर्त्तिका परिस्राव हृद-  
यका उपरोध अंगका ग्रह जीवादान विभ्रंश  
स्तंभ कृम उपद्रव ॥ १८ ॥

योगेन तु खल्वेनं छर्दितवन्तमभि-  
समीक्ष्य सुप्रक्षालितपाणिपादास्यं  
मुहूर्तमाश्वास्य स्नैहिकवैरेचणिको-  
पशमनीयानां धूमानामन्यतनं साम-  
र्थ्यतः पाययित्वा पुनरेवोदकमुप-  
स्पर्शयेत् । उपस्पृष्टोदकञ्चैनं नि-  
वातमगारमनुप्रवेश्य संवेश्य चानु-  
शिष्यात् ॥ १९ ॥

और योगसे इस छर्दितवान्को देख-  
कर भली प्रकार हाथ पाद मुख इनको  
धुलाकर मुहूर्तमात्र विश्वास देकर स्नेह  
विरेचन उपशमन इनके कारक धूमोंमेंसे  
कोईसे धूमको सामर्थ्यके अनुसार पिला-  
कर फिरभी जलका स्पर्श करावै जब  
यह जलका स्पर्श कर चुकै तब निर्वात-  
स्थानमें प्रवेश करके और शयन कराकर  
यह शिक्षादे कि ॥ १९ ॥

उच्चैर्भाष्यमत्यासनमतिस्थानम-  
तिचक्रमणंक्रोधशोकहिमातपा-  
वश्यायातिप्रवातान् । यानयानं  
ग्राम्यधर्ममस्वपनंनिशिदिवास्वप्न-  
म् । विरुद्धाजीर्णासात्म्याकाला-  
प्रमितातिहीनगुरुविषमभोजनवेग-  
सन्धारणोदीरणमितिभावानेतान्  
मनसाप्यसेवमानःसर्वमाहारमद्या-  
दिति । सतथाकुर्यात् ॥ २० ॥

ऊंचे स्वरसे भाषण अत्यंत बैठना  
अत्यंत खड़ा रहना अत्यंत चलना क्रोध  
शोक शीत आतप अवश्याय ( कोल )  
अति प्रवात—यानमें गमन मैथुन रात्रिमें  
शयन न करना दिनमें शयन करना और  
विरुद्ध अजीर्ण असात्म्य अकाल अप्रमित  
अति हीन गुरु विषम ये सब भोजन वेगको  
धारना इन सब पदार्थोंको मनसेभी न  
सेवन करता हुआ संपूर्ण आहारोंका भक्षण  
करियो—वह उसी प्रकार करै ॥ २० ॥

अथैनंसायाह्निपरेवाहिसुखोदक-  
परिपिक्तंपुराणानांलोहितशालि-  
तण्डुलानांस्ववक्त्रिन्नानांमण्डपूर्वा-  
सुखोष्णांयवागूंपाययेदग्निलम्  
भिसमीक्ष्यचैवंद्वितीयेतृतीयेचा-  
न्नकालेचतुर्थेत्वन्नकालेतथावि-  
धानामेवशालितण्डुलानामुत्स्वि-  
न्नाविलेपीमुष्णोदकद्वितीयामस्ने-  
हलवणामल्पस्नेहलवणांवाभोज-  
येत् । एवंपञ्चमेषष्ठेचान्नकाले  
सप्तमेत्वन्नकालेतथाविधानामेव  
शालीनांद्विप्रसृतंसुस्विन्नमोदनमु-  
ष्णोदकानुपानंतनुमातनुस्नेहलव-  
णोपपन्नेनमुद्रयूषेणभोजयेत् ।  
एवमष्टमेनवमेचान्नकालेदशमेत्व-  
न्नकालेलावकपिञ्जलादीनामन्य-  
तमस्यमांसरसेनौदकलावणिके-  
नापिसारवताभोजयेत् । उष्णो-  
दकानुपानमेवमेकादशेद्वादशेचा-  
न्नकाले ॥ २१ ॥

इसके अनंतर इसको सायान्हके समय  
वा परदिनमें सुखोदकसे परिषेचन करा-  
कर पुराने जो लाल शालि चावलहैं  
उनकी भली प्रकार पकाकर मंडपूर्वक  
सुखोष्ण यवागूको पिलावै और अग्निके  
बलको देखकर इसी प्रकार दूसरे तीसरे

अन्नकालमें पिलावै चौथे अन्नकालमें तो  
वैसेही शालितंडुलोंकी मांड उतारी वि-  
लेपीको उष्णजल समेत और जिसमें  
स्नेह लवण न हों वा उसको भोजन  
करावै-इसी प्रकार पांचमें छठे अन्न-  
कालमें करावै-सातमें तो अन्नकालमें  
वैसेही शालियोंको दो प्रसृति मांड  
निकासे ओदनको उष्ण जलके अनुपानसे  
और अल्प जिसमें स्नेह लवण हों ऐसे  
अल्प मूंगके यूपके संग भोजन करावै  
ऐसेही आठमें नवमें कालमें करावै-  
दशमें अन्नकालमें तो लाव कर्पिजल  
आदिमेंसे किसी एकके मांसरसके संग  
वा उदक लवण जो उत्तम हैं उनके साथ  
पूर्वोक्त भोजन करावै उष्ण जलके अनु-  
पानको दे-ऐसेही एकादश द्वादश अन्न  
कालमें करावै ॥ २१ ॥

अत ऊर्ध्वमन्नगुणान्क्रमेणोपभु  
ज्जानिसमरात्रेणप्रकृतिभोजनमा  
गच्छेत् ॥ २२ ॥

इसके अनंतर सात रात्रतक क्रमसे  
अन्न गुणोंको भोजन करै तो प्रकृतिके  
भोजनपर आजायगा ॥ २२ ॥

अथैनपुनरेवस्नेहस्वेदाभ्यामुपवा  
द्यानुपहतमनसमभिसामीक्ष्यसु  
खोषितंसुप्रजीर्णभक्तंकृतहोमव  
लिमङ्गलजप्यप्रायश्चित्तमिष्टति  
थिनक्षत्रकरणमुहूर्तेब्राह्मणान्स्व  
स्तिवाचयित्वात्रिवृतकल्कमक्ष

मात्रांयथार्हालोडमप्रतिविनतिंपा  
ययेत् ॥ २३ ॥

इसके अनंतर फिर इसको स्नेह स्वेद  
कराकर अनुवहन गमनमें समर्थ देखकर  
सुखसे वास भली प्रकार भोजनके पाकको  
देखकर होम बलि मंगल जप प्रायश्चित्त  
इनके करनेके अनंतर इष्ट तिथि नक्षत्र  
करण मुहूर्तमें ब्राह्मणोंसे स्वस्ति वाचन  
कराकर निसोथके चूर्णकी अक्षमात्राको  
यथायोग्य शुद्ध लोहसार सहित दध्मतासे  
पान करावै ॥ २३ ॥

प्रसमीक्ष्यदोषभेषजदेशकालबल  
शरीराहारासात्म्यसत्त्वप्रकृतिवय  
सामवस्थान्तराणिविकारांश्चस  
म्यक्विरिक्तश्चैनं वमनोक्तेनधूमव  
र्जेनविधिनोपपादयेदाबलवर्णमति  
लाभात् ॥ २४ ॥

और दोष भेषज देश काल बल शरीर  
आहार असात्म्य सत्त्व प्रकृति वय  
( आयुः ) इनकी अन्य अवस्थाओंको  
भलीप्रकार विकारोंको देखकर और  
भलीप्रकार विरेचन कराये इसको वम-  
नमें कहै हुये धूम वर्जित विधिसे चिकि-  
त्सा तबतक करै जबतक बल वर्ण पूर्वके  
समान आवें ॥ २४ ॥

बलवर्णोपपन्नश्चैनमनुपहतमनस  
मभिसमीक्ष्यसुखोषितंसुप्रजीर्णभ  
क्तंशिरःस्नातमनुलिप्तगात्रंस्नग्नि

णमनुपहतवस्त्रसंवीतमनुरूपाल  
ङ्कारालंकृतं सुहृदां दर्शयित्वा ज्ञाती  
नां दर्शयेदथैनं कामेष्वेव सृजे ॥ २५ ॥

जब यह बल वर्णसे युक्त हो जाय  
मनमें व्याधि न हो ऐसेको देखकर सुखसे  
निवास भोजनके पाकसहित शिरसे  
स्नात गात्रमें सुगंधका लेप मालाका  
धारण नवीनवस्त्रसे आच्छादित अनुरूप  
भूषणोंसे भूषित एवं रूपको मित्रोंको  
दिखाकर जातिके मनुष्योंको दिखावै  
फिर इसको यथेच्छ कामभोगोंकी आज्ञा  
दे दे ॥ २५ ॥

भवंति चात्र ।

अनेन विधिनाराजाराजमात्रोऽथ  
वा पुनः । यस्य वा विपुलं द्रव्यं ससं  
शोधनमर्हति ॥ २६ ॥

इसमें ये श्लोक हैं कि इस पूर्वोक्त  
विधिसे राजा वा राजमात्र वा जिसके  
अधिक द्रव्य हो वह संशोधनके योग्य  
है ॥ २६ ॥

दरिद्रस्त्वापदं प्राप्य प्राप्तकालं विरे  
चनम् । पिबेत्काममसंभृत्य सम्भ्रा  
रानपि दुर्लभान् ॥ २७ ॥

दरिद्री तो आपत्तिको प्राप्त होकर  
प्राप्तकाल है जिसका ऐसे विरेचनको  
दुर्लभ सम्भारोंके संचय किये बिना भी  
यथेच्छ पीवै ॥ २७ ॥

न हि सर्वमनुप्याणां सन्ति सर्वपरि

च्छदाः । न च रोगान् बाधन्ते दरि  
द्रानपि दारुणाः ॥ २८ ॥

क्योंकि सब मनुष्योंके यहां सब  
प्रकारकी सामग्री नहीं होती और  
दरिद्रियोंको दारुण रोगभी नहीं  
बाधते ॥ २८ ॥

यद्यच्छक्यं मनुष्येण कर्तुमौषधमा  
पदि । तत्तत्सेव्यं यथाशक्ति वस  
नान्यशनानि च ॥ २९ ॥

आपत्तिके समय मनुष्य जिस औषध  
को कर सकता है वह २ और वस्त्र भोजन  
सेवन करने योग्य है ॥ २९ ॥

मलापहं रोगहरं बलवर्णप्रसादनम् ।  
पीत्वा संशोधनं सम्यगायुषायुज्य  
ते चिरम् ॥ ३० ॥

मलका नाशक रोगहारी बल वर्णकी  
प्रसन्नताका कारक ऐसी औषधको पीकर  
भली प्रकार संशोधनके योग्य होता है  
और चिरकाल तक अवस्थाको भोगता  
है ॥ ३० ॥

तत्र श्लोकाः ।

ईश्वराणां वसुमतां वमनं स विरेचन  
म् । सम्भारायेयदर्थं च समानीय  
प्रयोजयेत् ॥ ३१ ॥

उसमें ये श्लोक हैं—राजा और धन-  
वानोंका वमन और विरेचन और जो  
संभार हैं और जिस लिये हैं आनकर  
रक्खै ॥ ३१ ॥

यथाप्रयोज्ययामात्रायदयोगस्य  
लक्षणम् । योगातियोगयोर्यच्चदो  
पायेचाप्युपद्रवाः ॥ ३२ ॥

जैसे प्रयोग करे जो मात्रा है योगका  
जो लक्षण है अतियोगका जो दोष है और  
उपद्रव है ॥ ३२ ॥

यदसेव्यं विशुद्धेन यश्च संसर्जनक्र-  
मः । तत्सर्वकल्पनाध्याये व्याज-  
हारपुनर्वसुः ॥ ३३ ॥

इति कल्पनाचतुष्के उपकल्पनीयोऽध्यायः ।

और विशुद्ध मनुष्यको जो सेवने  
योग्य है और जो रचनाका क्रम है वह  
सब कल्पनाध्याय में पुनर्वसु ने कहा है ३३ ॥  
इति कल्पनाचतुष्के उपकल्पनीयोऽध्यायः ॥ १५ ॥

### पोडशोऽध्यायः ।

अथातः चिकित्साप्राभृतीयमध्यायं  
व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

इसके अनंतर चिकित्साप्राभृतीय  
अध्यायका वर्णन करते हैं—भगवान् आत्रे-  
य ने ऐसे कहा है ॥

चिकित्साप्राभृतो विद्वान् शास्त्र-  
वान् कर्मतत्परः । नरं विरेचयति यं  
स योगात् सुखमश्नुते ॥ १ ॥

कि चिकित्साके कुशल बुद्धिमान् शास्त्र  
का ज्ञाता कर्म में तत्पर वैद्य जिस मनुष्य  
को विरेचन करावे वह योगसे सुखको  
भोगता है ॥ १ ॥

यं वैद्यमानीत्व बुधो विरेचयति मान-  
वम् । सोऽतियोगादयोगाच्च मान-  
वो दुःखमश्नुते ॥ २ ॥

वैद्यका अहंकारी मूर्ख जिस मनुष्य  
विरेचन कराता है वह मनुष्य अतियोग  
और अयोगसे दुःखको भोगता है ॥ २ ॥  
दौर्बल्यलाघवग्लानिर्व्याधीनाम  
णुतारुचिः । हृद्गर्णशुद्धिः शुचृष्णा  
काले वेगप्रवर्तनम् ॥ ३ ॥

दुर्बलता लाघव ग्लानि—व्याधियोंकी  
अणुता रुचि हृदय—और वर्णकी शुद्धि  
समयपर क्षुधा और तृप्ति और वेगकी  
प्रवृत्ति ॥ ३ ॥

बुद्धीन्द्रियमनःशुद्धिर्मारुतस्यानु-  
लोमता । सम्यग्विरिक्तलिङ्गा-  
निकायाग्रेथानुवर्तनम् ॥ ४ ॥

बुद्धि—इन्द्रिय—मनकी शुद्धि पवनकी  
अनुकूलता—और जठराग्निका अनुवर्तन  
ये सम्यग्विरेचनके लक्षण हैं ॥ ४ ॥

ष्ठीवनं हृदयाच्छुद्धिरुक्लेशः श्लेष्म-  
पित्तयोः । आध्मानमरुचिच्छ-  
र्दिरदौर्बल्यमलाघवम् ॥ ५ ॥

और ष्ठीवन हृदयकी अशुद्धि कफ  
पित्तका अधिकृश आध्मान अरुचि छर्दि  
दुर्बलताका अभाव अलाघव ॥ ५ ॥

जंघोरुसादनं तन्द्रास्तैमित्यपानसा-  
गमः । लक्षणान्यविरिक्तानां मारु-  
तस्य च निग्रहः ॥ ६ ॥

जंघा और उरुका-जकडना-स्तैमित्य पीनसका आगम पवनकी रुकावट ये अविरेचनके लक्षणहैं ॥ ६ ॥

विट्पित्तश्लेष्मवातानामागतानां यथाक्रमम् । परंस्त्वतियद्रक्तं मे दोमांसोदकोपमम् ॥ ७ ॥

मल पित्त कफ वात क्रमसे आये हुये इनके संग मेदा मांसके जलके समान रुधिर निकसै ॥ ७ ॥

निःश्लेष्मपित्तमुदकंशोणितं कृष्णमेववा । तृप्यतोमारुतार्त्तस्यसो-  
तियोगप्रमुह्यतः ॥ ८ ॥

श्लेष्मके विना पित्तका जल निकसै वा काला रुधिर निकसै तृपित होय मारुतसे दुःखी होय अतियोगको प्राप्त हुये मनुष्यके ये लक्षणहैं ॥ ८ ॥

वमनातिरुतेलिङ्गान्येतान्येवमवन्तिहि । ऊर्ध्वगावातरोगाश्चवा-  
गग्रहश्चाधिकोपमः ॥ ९ ॥

वमनके अत्यंत करनेके ये लक्षण होतेहैं वातके रोग ऊर्ध्वगामी होय अधिक वाणीकर बंधन होय ॥ ९ ॥

चिकित्साप्राभृतंतस्मादुपेयात्  
करणं नरः । युञ्ज्याद्य एनमत्यन्त  
मायुषाचसुखेनच ॥ १० ॥

तिससे मनुष्य चिकित्सा आदिके उस उस कारणको करै जो कारण इसको अत्यंत आयु और सुखसे युक्त करै ॥ १० ॥

अविपाकोऽरुचिःस्थौल्यं पाण्डु-  
तागौरवं क्लमः । पित्तकाकोठक  
ण्डूनांसम्भवोऽरतिरेवच ॥ ११ ॥

और अन्नका अविपाक अरुचि स्थूलता पाण्डुता गौरव पित्त-कोष्ठक खुजली-इनका होना और अरति ॥ ११ ॥

आलस्यं श्रमदौर्बल्यं दौर्गन्ध्यमव-  
मादकः । श्लेष्मपित्तसमुत्क्रेशो  
निद्रानाशोऽतिनिद्रता ॥ १२ ॥

आलस्य-श्रमकी दुर्बलता-दुर्गन्धि-जकडना-श्लेष्मपित्तका-अत्यंत क्लेश-अत्यंत निद्रा ॥ १२ ॥

तन्द्राक्लेश्व्यमबुद्धित्वमशस्तस्वप्न-  
दर्शनम् । बलवर्णप्रणाशश्चतृप्य-  
तोवृंहणैरपि ॥ १३ ॥

तन्द्रा क्लीवता-बुद्धिका नाश निन्दित स्वप्नोंका दर्शन बल और वर्णका नाश ॥ १३ ॥

बहुदोषस्य लिङ्गानितस्मै संशोधनं  
हितम् । ऊर्ध्वश्चैवानुलोमश्चय-  
थादोषं यथाबलम् ॥ १४ ॥

ये अनेक दोषोंके लक्षणहैं उसके लिये संशोधन हितहै और वह ऊर्ध्व और अनुलोम क्रमसे दोष और बलके अनु-सार कराना चाहिये ॥ १४ ॥

एवं विशुद्धकोष्ठस्य कायाभिरभि-  
वर्द्धते । व्याधयश्चोपशम्यन्ति  
प्रकृतिश्चानुवर्तते ॥ १५ ॥

इस प्रकार विशुद्ध है कोष्ठ जिसका  
ऐसे मनुष्यकी कायाग्रि बढ़ती है व्याधि-  
शांति होती है और प्रकृति यथावस्थित  
रहती है ॥ १५ ॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिर्वर्णश्चास्य  
प्रसीदति । बलं पुष्टिरपत्यञ्च वृष  
ताचास्य जायते ॥ १६ ॥

और इन्द्रिय-मन-बुद्धि-वर्ण-प्रसन्न  
रहते हैं बल पुष्टी संतान होती है और  
उस मनुष्यकी नपुंसकता भी दूर होती है ॥ १६ ॥

जरां कृच्छ्रेण लभते चिरं जीवत्यना-  
मयः । तस्मात्संशोधनं काले युक्ति-  
युक्तं पिबेन्नरः ॥ १७ ॥

बृद्ध अवस्था भी कष्टसे आती है चिर-  
काल तक रहता है तिससे युक्तिसे युक्त  
संशोधनको मनुष्य समयपर पीवे ॥ १७ ॥

दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति जिता लं-  
घनपाचनैः । जिताः संशोधनैर्य-  
त्नते पापुनरुद्भवः ॥ १८ ॥

और लंघन पाचनसे जीते हुये भी  
दोष कदाचित् कोषको प्राप्त हो जाते हैं  
और संशोधनसे जीते हुये दोषोंकी फिर  
उत्पत्ति नहीं होती ॥ १८ ॥

दोषाणाञ्च दुष्माणाञ्च मूलेऽनुपहते  
सति । रोगाणां प्रसवाणाञ्च गता-  
नामागतिर्ध्रुवा ॥ १९ ॥

दोष और वृक्षोंकी जड़ काटेविना  
रोग और प्रसव गये हुये भी इनका आना  
ध्रुव है ॥ १९ ॥

भेषजक्षपिते पथ्यमाहारैरेव बृंहण-  
म् । घृतमांसरसक्षीरहृदयूपोपसा-  
धितैः ॥ २० ॥

औषधिसे दोषके दूर होजानेपर  
वृद्धि घृत-मांस-रस-दूध-और हृद-  
यकी प्रिय यूप इनके साधनसे ही  
होती है ॥ २० ॥

अभ्यङ्गोत्सादनैः स्नानैर्निरुहैः सा-  
नुवासनैः । तथा सलभतेशर्मथु-  
ज्यते चायुपाचिरम् ॥ २१ ॥

अभ्यंग उत्सादन-स्नान-निरुह-  
अनुवासन-इनसे वह सुखको प्राप्त होता है  
और चिरकाल तक अवस्थासहित हो  
ता है ॥ २१ ॥

अतियोगानुबद्धानां सर्पिः पानं प्र-  
शस्यते । तैलमधुकरैः सिद्धमथ-  
वाप्यनुवासनम् ॥ २२ ॥

अतियोगसे जो युक्त है उनको घी-  
का पान कराना श्रेष्ठ है अथवा मधुका-  
रक पदार्थोंसे सिद्ध तैलका मलना  
श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥

यस्य त्वयोगस्तं सिद्धं पुनः संशोध-  
येन्नरम् । मात्राकालबलापेक्षी-  
स्मरन् पूर्वमिति क्रमम् ॥ २३ ॥



जिस मनुष्यके अयोग हो सिद्धभी उस मनुष्यका पुनः संशोधन वह वैद्य करे जो मात्राके काल बलकी अपेक्षा करे इस क्रमका स्मरण करता हुआ २३

स्नेहेनस्वेदनेशुद्धौरोगाःसंसर्जनेच ये । जायन्तेऽमार्गविहितेतेषांसि द्विषुसाधनम् ॥ २४ ॥

स्नेहन-स्वेदन शुद्धि-संसर्ग-इनके यथावत् मार्गके करनेपरभी जो रोग होतेहैं-उनकी सिद्धियोंमें साधन करे २४

जायन्तेहेतुवैषम्याद्विषमादेहधा तवः । हेतुसाम्यात्समास्तेषांस्व भावोपरमःसदा ॥ २५ ॥

हेतुकी विषमतासे देहकी धातु विषम और हेतुकी समतासे समता हो जातीहैं उनके स्वभावका उपराम सदा होताहै २५

प्रवृत्तिहेतुर्भावानांनिरोधेऽस्ति कारणम् । केचित्त्वत्रापिमन्यन्तेहेतुहेतोरवर्त्तनम् ॥ २६ ॥

भावोंकी प्रवृत्तिका न हेतुहै न कोई निरोधमें कारणहै-कोई तो इसमेंभी हेतुकी अप्रवृत्तिकी हेतु मानतेहैं ॥ २६ ॥

एवमुक्तार्थमाचार्य्यमग्निवशोऽभ्यभाषत । स्वभावोपरमेकर्म चिकित्साप्राप्तस्यकिम् ॥ २७ ॥

इस प्रकार कहते हुये आचार्यकी अग्निवेश बोले कि स्वभावही जब सर्वोपरिहै कर्म और चिकित्सा आदि किस-लियेहैं ॥ २७ ॥

भेषजैर्विषमान्धातून्कान्समी कुरुतेभिषक् । कावाचिकित्सा भगवन् ? किमर्थवाप्रयुज्यते २८ ।

और वह वैद्यकीनसी विषम धातुओंकी औषधोंसे समान करेहै भगवन् चिकित्सा क्याहै और किस लिये की जातीहै २८ ॥

तच्छिष्यवचनंश्रुत्वाव्याजहारपु नर्वसुः । श्रूयतामत्रयासौम्ययुक्ति र्दृष्टामहर्षिभिः ॥ २९ ॥

उस शिष्यके वचनको सुनकर पुनर्वसु बोले कि-हे सौम्य! सुनो इसमें जो युक्ति महर्षियोंने देखी है ॥ २९ ॥

ननाशकारणाभावाद्भावानांनाश कारणम् । ज्ञायतेनित्यगस्येवका लस्यात्ययकारणम् ॥ ३० ॥

कि नाश कारणके अभावसे भावोंके नाशका कारण कोई ऐसे ज्ञान नहीं है जैसे नित्यकालके नाशका कारण नहीं जाना जाता है ॥ ३० ॥

शीघ्रगत्वायथाभूतस्तथाभावोवि पद्यते । विरोधकारणंतस्यनास्ति नैवान्यथाक्रिया ॥ ३१ ॥

शीघ्रगामी होनेसे जैसे भूत ( हुआ ) है तिसी प्रकार भाव विपत्तिको प्राप्त होताहै उसके न कोई विरोधका कारण है न अन्यथा क्रिया है ॥ ३१ ॥

याभिःक्रियाभिर्जायन्तेशरीरेधा तवःसमाः । साचिकित्साविका

राणां कर्म तद्विपजां स्मृतम् ॥ ३२ ॥

जिन क्रियाओंसे शरीरमें धातु समान होती हैं वह चिकित्सा विकारोंकी हैं और शरीरमें धातुओंकी विषमता कैसे न होय और वही वैद्योंका कर्म है ॥ ३२ ॥

कथं शरीरे धातूनां विषम्यं न भवेदिति । समानाश्चानुबन्धः स्यादित्यर्थं कुरुते क्रिया ॥ ३३ ॥

और समधातुओंका अनुबन्ध (स्थिति) हो जाय इस लिये क्रियाको करते हैं ॥ ३३ ॥ त्यागाद्विषमहेतूनां समानाश्चोपसेवनात् । विषमानानुबन्धन्ति जायन्ते धातवः समाः ॥ ३४ ॥

विषमधातुओंके त्यागसे और समधातुओंके सेवनसे विषमोंका अनुबन्धन करके समधातु हो जाती हैं ॥ ३४ ॥

समैस्तु हेतुभिर्न्यस्माद्धातून्सज्जनयेत्समान् । चिकित्साप्राभृतस्तस्माद्दाता देहसुखायुषम् ॥ ३५ ॥

जिससे समहेतुओंसे समधातुओंकी उत्पत्ति हो तिससे चिकित्साका प्रारंभ देह सुख आयु इनका दाता है ॥ ३५ ॥

धर्मस्यार्थस्य कामस्य त्रिलोकस्याभयस्य च । दाता सम्पद्यते वैद्यो दाना देहसुखायुषाम् ॥ ३६ ॥

धर्म अर्थ काम त्रिलोकी, अभय इनका दाता वैद्य इससे है कि वह देहसुख अवस्थाका दाता है ॥ ३६ ॥ इति ।

तत्र श्लोकाः ।

चिकित्साप्राभृतगुणोदोषोयश्चेतनाश्रयः । योगायोगातियोगानां लक्षणं शुद्धिसंश्रयम् ॥ ३७ ॥

उसमें ये श्लोक हैं कि चिकित्साका प्रारंभ गुण दोष जो चेतनके आश्रयसे हैं योग अतियोग अयोग इनका जो लक्षण शुद्धिके आश्रयसे है ॥ ३७ ॥

बहुदोषस्य लिङ्गानि संशोधनगुणाश्रये । चिकित्सासूत्रमात्रश्च सिद्धिव्यापत्तिसंश्रयम् ॥ ३८ ॥

बहुत दोषी मनुष्यके लक्षण और जो संशोधनके गुण हैं—चिकित्साका सूत्र मात्र और सिद्धि जो व्यापत्तिके आश्रयसे हैं ॥ ३८ ॥

याचयुक्तिश्चिकित्सायां यंचार्थं कुरुते भिषक् । चिकित्साप्राभृते ध्यायेत्तत्सर्वमवदन् मुनिः ॥ ३९ ॥

इति भग्नवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृतकल्पनाचतुष्कंचिकित्साप्राभृतीयोनाम षोडशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १६ ॥

और चिकित्सा में जो युक्ति है और वैद्य जिस अर्थको करता है उस सबको चिकित्साप्राभृत अध्याय में मुनिने वर्णन किया ॥ ३९ ॥

इति कल्पनाचतुष्के चिकित्साप्राभृतीयोऽध्यायः १६ समाप्तः कल्पनाचतुष्कं चतुर्थम् ॥

सप्तदशोऽध्यायः ।

अथातःक्रियन्तःशिरसीयमध्या  
यंव्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब क्रियन्तःशिरसीय अध्यायका वर्णन  
करतेहैं—यह भगवान् आत्रेय कहतेहैं ॥

क्रियन्तःशिरसिप्रोक्तरोगाहृदि  
चदेहिनाम् ॥ १ ॥

देहधारियोंके शिरमें और हृदयमें  
कितने रोग कहेहैं ॥ १ ॥

कतिचाप्यनिलादीनारोगामान  
विकल्पजाः । क्षयाःकतिसमा  
ख्याताःपिडकाःकतिचानघ ॥ २ ॥

और अग्नि आदिके रोग और मानकी  
कल्पना कितनीहैं और क्षय कितने कहेहैं  
और हे अनघ पिटिका कितनी हैं ॥ २ ॥

गतिःकतिविधाचोक्तादोपाणांदो  
पसूदन । हुताशवेशस्यवचःत  
च्छ्रुत्वागुरुब्रवीत् ॥ ३ ॥

हे दोषोंके नाशक ! दोषोंकी गति  
कितने प्रकारकीहै इस अग्निवेशके वच-  
नको सुनकर गुरु बोले ॥ ३ ॥

पृष्ठवानसियत्सौम्य ! तन्मेशृणु  
मुविस्तरम् । दृष्टाःपञ्चशिरोरो  
गाःपञ्चैवहृदयामयाः ॥ ४ ॥

कि हे सौम्य ! जो तैं पृछाहै उसको  
विस्तारपूर्वक मेरेसे श्रवण कर कि शिरके

रोग पांच और पांचही हृदयके रोग  
देखेंहैं ॥ ४ ॥

व्याधीनांद्रचधिकापटिर्दोषमान  
विकल्पजा । दशाष्टौचक्षयाःस  
प्तपिडकामधुमेहिकाः ॥ ५ ॥

और दोष और मानके विकल्पसे  
पैदा हुई व्याधि वासठ ६२ कहीहै अठ-  
रह प्रकारके क्षय हैं मधुमेहकी सात  
पिटकाहैं ॥ ५ ॥

दोषाणांत्रिविधाचोक्तागतिर्विस्त  
रतःशृणु । सन्धारणादिवास्वना  
द्रात्रौजागरणान्मदात् ॥ ६ ॥

दोषोंकी गति तीन प्रकारकी हैं उसको  
तु विस्तारसे श्रवण कर—साधारणसे  
दिनमें सोना रात्रिमें जागरण मद ॥ ६ ॥

उच्चैर्भाष्यादवश्यायात्प्राग्वाताद  
तिमैथुनात् । गन्धादसात्म्यादाव्रा  
ताद्रजोधूमहिमातपात् ॥ ७ ॥

ऊंचेभाषण अवश्याय पूर्वकी पवन  
अत्यंत मथुन गंध असात्म्य ऊर्ध्वस्वेद  
रज धूम हिम आतप ॥ ७ ॥

गुर्वम्लहरितादानादतिशीताम्बुसे  
वनात् । शिरोऽभितापाहुष्टामा  
द्रोदनाद्वाष्पनिग्रहात् ॥ ८ ॥

गुरु अम्ल हरित इनका भक्षण  
अत्यंत शीतल जलका सेवन—शिरमें  
अभिघात ( चोट ) दूषित आम रोदन  
वाष्पका निग्रह ॥ ८ ॥

मेघागमान्मनस्तापादेशकालवि  
पर्ययात् । वातादयः प्रकुप्यन्ति  
शिरस्यसंप्रदुप्यति ॥ ९ ॥

मेघका आगमन मनका ताप देश  
कालका विपर्यय इतने कारणोंसे वात  
आदि कोपको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ९ ॥

ततः शिरसि जायन्ते रोगा विविध  
लक्षणाः । प्राणाः प्राणभृतां यत्र श्रि  
ताः सर्वेन्द्रियाणि च ॥ १० ॥

और शिरका रुधिर दूषित हो जाता  
है—फिर शिरमें अनेक लक्षणके रोग  
हो जाते हैं जिसमें प्राणधारियोंके प्राण  
टिके हुये हैं और सब इंद्रिय टिकी हैं ॥ १० ॥

यदुत्तमाङ्गमङ्गानां शिरस्तदभिधी  
यते । अर्द्धावभेदको वास्यात्सर्व  
वारुज्यते शिरः ॥ ११ ॥

और जो अंगोंमें उत्तम है उसको  
शिर कहते हैं अर्द्धका अव भेदक हो  
जाता है वा संपूर्ण शिरमें पीडा हो जाती  
है ॥ ११ ॥

प्रतिश्यामुखनासाक्षिकर्णरोगाः

शिरोग्रमाः । अर्दितं शिरसः क  
म्पोगलमन्याहनुग्रहः ॥ १२ ॥

और प्रतिश्याय मुख नासिका अक्षि  
कर्ण इनमें रोग शिरमें भ्रम हो जाता  
है शिरकी पीडा कंप गलमन्था हनुका  
ग्रह ॥ १२ ॥

विविधाश्चापरे रोगावातादिक्रिमि

सम्भवाः । पृथग्दृष्टास्तु ये पञ्चसं  
ग्रहे परमर्पिणा । शिरोगदांस्तान्  
शृणु मे यथास्वैर्हेतुलक्षणैः ॥ १३ ॥

और अनेक प्रकारके वात आदिकी  
सृतिसे उत्पन्न अन्य रोग होते हैं—और  
संग्रहमें महर्षिने जो पांच देखे हैं उन  
शिरके रोगोंको यथायोग्य हेतु और  
लक्षणोंसे तू श्रवण कर ॥ १३ ॥

उच्चैर्भाष्यातिभाष्याभ्यां तीक्ष्ण  
पानात् प्रजागरात् । शीतमारुत  
संस्पर्शाद्व्यवायाद्वेगानिग्रहात् ।  
उपवासाच्चाभिघाताद्विरेकाद्वमना  
दपि ॥ १४ ॥

ऊँचे भाषणसे अभिभाषणसे तीक्ष्ण  
पान जागरण शीतल पवनके स्पर्श  
व्यवाय वेगका निग्रह उपवास अभिघात  
विरेचन वमन ॥ १४ ॥

वाष्पशोकपरित्रासाद्भारमार्गाति  
कर्षणात् । शिरोगताः शिरावृद्धो  
वायुराविश्यकुप्यति ॥ १५ ॥

वाष्प शोक परित्रास भार मार्ग  
अत्यंत कर्षण इन हेतुओंसे शिरमें विद्य-  
मान नाडियोंमें प्रविष्ट होकर वृद्धिको  
प्राप्त हुआ वायु कोपको प्राप्त हो जाता है ॥ १५ ॥

ततः शूलं महत्स्यवातात्समुपजा  
यते । निस्तुयेते भृशं शंसौघादास  
म्भिद्यते तथा ॥ १६ ॥

उससे उस मनुष्यके वातसे महान् शूल हो जाता है और शंखोंमें अत्यंत खेद आता है और घाटा नामकी नाडी भेदन होती है और पीडा होती है ॥ १६ ॥

भ्रुवोर्मध्यंललाटंचतपतीवातिवेदनम् । वाध्येतेस्वनतःश्रोत्रेनिष्कप्येतेइवाक्षिणी ॥ १७ ॥

और भ्रुकुटीके मध्य सहित ललाट अत्यंत वेदनासे मानो पडा जाता है और स्वन ( शब्द ) से श्रोत्रोंमें बाधा होती है नेत्र मानो निकसे जाते हैं ॥ १७ ॥

घूर्णतीवशिरःसर्वसन्धियश्चवमुच्यते । स्फुरत्यतिशिराजालंतुच्यते चशिरोधरा ॥ १८ ॥

मानो सब शिरमें घूर्णन होता है और मानो संधियोंसे पृथक् होता है और नाडियोंके जालमें कंप होता है शिरकी धरा ( ग्रीवा ) में स्तम्भन होता है ॥ १८ ॥

स्निग्धोष्णमुपसेवेतशिरोरोगेऽनिलात्मके ॥ १९ ॥

और उपशीतके और वात जन्य शिरके रोगमें स्निग्धोष्ण भोजन करे ॥ १९ ॥

कटुम्ललवणक्षारमद्यक्रोधातपानलैः । पित्तशिरसिसन्दुष्टशिरो रोगायकल्पते ॥ २० ॥

और कटु अम्ल लवण क्षार मद्य क्रोध आतप अग्नि इनसे दूषित हुआ शिरका पित्त शिरके रोग का दाता होता है ॥ २० ॥

दह्यतेरुज्यतेतेनशिरःशीतेनशूयते । दह्यतेचक्षुषीतृष्णाभ्रमःस्वेदश्चजायते ॥ २१ ॥

उससे शिरमें दाह पीडा होती है और शीत पैदा होजाता है-नेत्रोंमें दाह होता है तृष्णा भ्रम स्वेद हो जाते हैं ॥ २१ ॥

आस्यासुखैःस्वप्नसुखैर्गुरुस्निग्धातिभोजनैः । श्लेष्माशिरसिसन्दुष्टशिरोरोगायकल्पते ॥ २२ ॥

मुखके असुख दाई और प्रमुख ( प्रिय ) जो गुरु स्निग्धोंका अतिभोजन उनसे शिरमें अत्यंत दुष्ट कफ शिरके रोगको करता है ॥ २२ ॥

शिरोमन्दरुजंतेनसुपुतिस्तिमिराराहकम् । भवत्युत्पद्यतेतन्द्रातथालस्यमरोचकः ॥ २३ ॥

उससे शिरके मर्मोंमें पीडा सुपुति तिमिर रोग तन्द्रा और आलस्य अरुचिये उत्पन्न होते हैं ॥ २३ ॥

वाताच्छूलंभ्रमःकम्पःपित्ताद्वाहोमदस्तृषा । कफाद्गुरुत्वंतन्द्रा चशिरोरोगेऽत्रिदोषजे ॥ २४ ॥

वातसे शूल भ्रम कंप और पित्तसे मान मद तृषा कफसे गुरुता और तन्द्रा त्रिदोषसे पैदा हुये शिरके रोगमें होते हैं ॥ २४ ॥

तिलक्षीरगुडाजीर्णपूर्णिसंकीर्णभो

जनात् । क्लेदोऽसृक्कफमांसानां  
दोषश्चास्योपजायते ॥ २५ ॥

तिल दूध गुड अजीर्ण, पूर्ण संकीर्ण  
भोजन इनसे क्लेद रुधिर कफ मांस  
इनमें उस मनुष्यके दोष पैदा होजा-  
ताहैं ॥ २५ ॥

ततःशिरसिसंक्लेदात्किमयःपाप  
कर्मणः । जनयन्तिशिरोरोगंजा  
तवीभत्सलक्षणम् ॥ २६ ॥

तिससे शिरमें संक्लेदसे पापकर्मा  
मनुष्यके क्रिमि होकर भयानक शिरके  
रोगोंको पैदा कर देतेहैं ॥ २६ ॥

व्यवच्छेदरुजाकण्डूशोफदौर्गन्ध्य  
दुःखितम् । क्रिमिरोगातुरंविद्या  
त्किमीणालक्षणेनच ॥ २७ ॥

व्यवच्छेद ( काटना ) के रोग कंडू  
शोफ दुर्गतिता दुःखको करतेहैं और  
क्रिमियोंके देखनेसे क्रिमिरोगसे आतुरको  
जानले ॥ २७ ॥

शोकोपवासव्यायामशुष्करूक्षा  
ल्पभोजनैः । वायुराविश्यहृदयंज  
नयत्युत्तमारुजम् ॥ २८ ॥

शोक उपवास व्यायाम शुल रूक्ष  
अल्पभोजन इनसे वायु हृदयमें प्रवि-  
ष्टहोकर अधिकरोगको पैदा करती है २८

वेपथुर्वेष्टनंस्तम्भःप्रमोहःशून्यता  
द्रवः । हृदिवातातुरेरूपंजीर्णचा  
त्यर्थवेदना ॥ २९ ॥

वेपथु ( कंप ) वेष्टन स्तंभ प्रमेह  
शून्यता द्रव ये सब हृदयमें वातरोगीके  
रूपहैं और जीर्णमें अत्यंत वेदना  
होतीहैं ॥ २९ ॥

उष्णाम्ललवणक्षारकटुकाजीर्णभो  
जनैः । मद्यक्रोधातपैश्चाशुहृदिपि  
त्तंप्रकुप्यति ॥ ३० ॥

उष्ण-अम्ल-लवण क्षार कटु अजीर्ण  
भोजनोंसे और मद्य क्रोध आतपसे हृद-  
यमें शीघ्रही पित्त कुपित होजाताहै ३० ॥  
हृद्वाहस्तित्ततावक्त्रेक्लमःपित्ताम्ल  
कोद्वरः। तृष्णामूर्च्छाभ्रमःस्वेदः  
पित्तहृद्रोगलक्षणम् ॥ ३१ ॥

उससे हृदयमें दाह मुखमें तित्तता  
श्लानि पित्ताम्ल उद्गार तृष्णा मूर्च्छा भ्र-  
मस्वेद ये पित्तसे हृदयमें रोगके लक्षण  
होतेहैं ॥ ३१ ॥

अत्यादानंगुरुस्निग्धमचिन्तनमचे-  
ष्टनम् । निद्रासुखंचाभ्यधिकंक-  
फहृद्रोगलक्षणम् ॥ ३२ ॥

और अत्यंत भोजन गुरु स्निग्धका  
अचिन्तन अचेष्टन निद्राका अधिक सुख  
ये कफसे उत्पन्नहृद्रोगके लक्षणहैं ॥ ३२ ॥

हृदयंकफहृद्रोगेसुप्तंस्तिमितभारि-  
कम् । तन्द्रारुचिपरीतस्यभवत्य-  
श्मावृतंयथा ॥ ३३ ॥

और कफके हृद्रोगमें हृदयका स्तंभ  
स्तिमित भारी होता है और तन्द्रा अरु-

चिसे युक्तमनुप्यका हृदय ऐसा हो जाता है जैसा पत्थरसे टका हो ॥ ३३ ॥

हेतुलक्षणसंसर्गादुच्यते सान्निपा-  
तिकः । त्रिदोषजेतुहृद्रोगोदुरा-  
त्मानिपेवते । तिलक्षारगुडादीनि  
ग्रन्थिस्तस्योपजायते ॥ ३४ ॥

हेतु और लक्षणके संसर्गसे सान्निपात के हृद्रोगको कहते हैं जो दुरात्मा त्रिदोष-  
ज हृद्रोगमें तिलक्षार गुड आदिको भक्षण करता है उसके हृदयमें ग्रन्थि हो जाती है ॥ ३४ ॥

मर्मैकदेशे संक्लेदं रसश्चास्योपगच्छ-  
ति । संक्लेदात्क्रिमयश्चास्य भव-  
न्त्युपहृतात्मनः ॥ ३५ ॥

और मर्मके एक देशमें संक्लेद और  
रस यह चले जाते हैं और इस दुष्टात्मा  
के संक्लेदसे क्रिमि हो जाते हैं ॥ ३५ ॥

मर्मैकदेशे ते जाताः सर्पन्तो भक्षय-  
न्ति च । तुद्यमानं स्वहृदयं सूची-  
भिरिव मन्यते ॥ ३६ ॥

मर्मके एक देशमें वे जीव चलते हुये  
भक्षण करते हैं सूचियोंसे पीड़ितके समान  
अपने हृदयको ऐसा मानता है जैसे सूचि-  
ओंसे छेदन किया जाता है ॥ ३६ ॥

छिद्यमानं यथा शस्त्रैर्जातकण्डुम-  
हारजम् । हृद्रोगं क्रिमिजन्तुवै-  
लिङ्गैर्बुद्ध्वासुदारुणम् । त्वरेत जे-  
तुतं विद्वान्विकारं शीघ्रकारिणम् ॥ ३७ ॥

शस्त्रोंसे छेदन कियेके समान खुजली  
और महापीडाकारी क्रिमियोंसे पैदा  
हुये हृद्रोगोंके इन लिंगोंको जानकर  
महादारुण शीघ्रकारी उस विकारको  
जीतनेके लिये बुद्धिमान् मनुष्य  
शीघ्रता करे ॥ ३७ ॥

द्युल्वणैः कोल्वणैः पटस्युर्हीनम-  
ध्याधिकैश्च पटसमैश्चैके विकारा-  
स्ते सान्निपाते त्रयोदश ॥ ३८ ॥

कफ-वात-पित्तोंके मध्यमें दो, की  
अधिकतासे और एककी अधिक-  
तासे छः और एक २ के हीन मध्य  
अधिकहोनेसे छः तीनोंकी समानतासे  
एक ये त्रयोदश विकार सान्निपातमें  
होते हैं ॥ ३८ ॥

संसर्गेण च पट्तेभ्यः एकवृद्ध्या स-  
मैस्त्रयः । पृथक् त्रयश्च तैर्वृद्धैर्व्या-  
धयः पञ्चविंशतिः ॥ ३९ ॥

और उनमेंसे एककी वृद्धिसे संसर्गसे  
छः समानतासे तीन और पृथक् २ तीन  
और उनकी वृद्धि होनेपर पञ्चीस व्याधि  
सान्निपातकी होती हैं ॥ ३९ ॥

यथा वृद्धेस्तथा क्षीणैर्दोषैः स्युः प-  
ञ्चविंशतिः । वृद्धिक्षयकृतश्चा-  
न्यो विकल्प उपदेक्ष्यते ॥ ४० ॥

जैसे वृद्ध दोषोंसे होते हैं तैसेही क्षीण  
दोषोंसे पञ्चीस व्याधि होती हैं और वृद्धि  
क्षयके किये अन्यभी विकल्पको कह-  
ते हैं ॥ ४० ॥

वृद्धिरेकस्यसमताचैकैकस्यचसं-  
क्षयः । द्वन्द्ववृत्तिःक्षयश्चैकस्यै-  
कावृद्धिर्द्वयोःक्षयः ॥ ४१ ॥

कि एककी वृद्धि एककी समता  
एक २ का संक्षय और दोका क्षय एककी  
वृद्धि दोका क्षयहो ॥ ४१ ॥

प्रकृतिस्थंयदापित्तमारुतःश्लेष्म-  
णःक्षये । स्थानादादायगात्रेपुत-  
त्रतत्रविसर्पति ॥ ४२ ॥

जब पित्ततो प्रकृतिस्थहो वायु और  
कफका क्षयहो स्थानमेंसे लेकर गात्रोंमें  
तहां २ फैले ॥ ४२ ॥

तदाभेदश्चदाहश्चतत्रतत्रानवस्थि-  
ताः । गात्रदेशेभवेत्तस्यश्रमोदौ-  
र्बल्यमेवच ॥ ४३ ॥

तब भेद और दाह तिस २ स्थानमेंसे  
स्थितिको छोड़कर मनुष्यको होतेहैं श्रम  
और दुर्बलता होतीहै ॥ ४३ ॥

साम्येस्थितंकफवायुःक्षीणेपित्ते  
यदावली । कर्पेत्कुर्व्यात्तदाशूलं  
सशैत्यस्तम्भगौरवम् ॥ ४४ ॥

साम्यमें स्थित कफको पित्तके  
क्षीण होनेपर बलवान् वायु जब खींचताहै  
तब शीत स्तंभ गौरव सहित शूलको  
करताहै ॥ ४४ ॥

यदानिलंप्रकृतिगंपित्तंकफपरिक्ष-  
ये । संरुणद्धितदादाहःशूलंचा-  
स्योपजायते ॥ ४५ ॥

जब वायु प्रकृतिस्थ होकर कफके  
नाश होनेपर पित्तको रोकताहै तब इस  
मनुष्यके दाह और शूल होजाताहै ४५  
श्लेष्माणंहिसमंपित्तंयदावातपरि-  
क्षये । निपीडयेत्तदाकुर्व्यात्सत-  
न्द्रागौरवंज्वरम् ॥ ४६ ॥

जब समानहुआपित्त वातके नाश  
होनेपर कफको पीडित करताहै तब  
तंद्रा गौरव सहित ज्वरको करताहै ॥ ४६ ॥  
प्रवृद्धोहियदाश्लेष्मापित्तेक्षीणेस-  
मीरणम् । रुन्ध्यात्तदाप्रकुर्वीत  
शीतकंगौरवंज्वरम् ॥ ४७ ॥

जब कफ प्रवृद्ध होताहै तब पित्तके  
क्षीणहोनेपर वातको रोक देताहै तब शीत  
गौरव पीडाको करताहै ॥ ४७ ॥

समीरणेपरिक्षीणेकफःपित्तंसमत्व-  
गम् । कुर्वीतसन्निरुन्धानोमृद्वग्नि-  
त्वंशिरोग्रहम् ॥ ४८ ॥

जब वायुके क्षीण होनेपर कफपित्त  
समान होतेहैं तब रुका हुआ वायु मंदाग्नि  
और शिरोग्रहको करताहै ॥ ४८ ॥

निद्रांतन्द्रांप्रलापश्चहृद्रोगंगात्रगौ-  
रवम् । नखादीनाञ्चपीतत्वंष्टीव-  
नंकफपित्तयोः ॥ ४९ ॥

और निद्रा तंद्रा प्रलाप हृद्रोग गात्र  
गौरव नख आदिको पीले कफ पित्तका  
थूक, ये होतेहैं ॥ ४९ ॥



हीनवातस्यतुकफःपित्तेनसहित  
श्चरन् । करोत्यरोचकापाकौस-  
दनंगौरवंतथा ॥ ५० ॥

वातहीन मनुष्यका कफ, पित्तसहित  
फैलता हुआ अरुचि अपाक सदन गौरव  
करताहै ॥ ५० ॥

हृल्लासमास्यस्त्रवणंदूयनंपाण्डुतां  
मदम् । विरेकस्यहि वैषम्यं वैप-  
म्यमनलस्यच ॥ ५१ ॥

हृल्लास और मुखका स्त्रवण कंप  
पाण्डुता मद विरेचनकी विषमता अग्निकी  
विषमता इनको करताहै ॥ ५१ ॥

क्षीणपित्तस्यतुश्लेष्मामारुतेनोप-  
संहितः । स्तम्भंशैत्यंचतोदश्चज-  
नयत्यनवस्थितम् ॥ ५२ ॥

क्षीणपित्त मनुष्यका कफ, मारुतसे  
युक्त होकर स्तम्भ शीत तोद अनवस्थिति  
इनको करताहै ॥ ५२ ॥

गौरवंमृदुतामग्नेर्भक्ताश्रद्धांप्रवेप  
नम् । नखादीनाञ्चशुक्लत्वंगात्र  
पारुष्यमेवच ॥ ५३ ॥

और गौरव मृदाग्नि भोजनमें अश्रद्धा  
कंप नखादिमें सपेदी-गात्रमें कठोरता  
इनको करताहै ॥ ५३ ॥

हीनेकफेमारुतस्तुपित्तंतुकुपितंद्व  
यम् । करोतियानिलिङ्गानिश्च  
णुतानिसमासतः ॥ ५४ ॥

कफके हीन होनेपर मारुत पित्त  
दोनों कुपित होकर जिन लिंगोंको कर-  
तेहैं उनको तू संक्षेपसे सुन ॥ ५४ ॥

भ्रममुद्वेष्टनन्तोदंदाहंस्फोटनवेप  
नम् । अङ्गमर्दपरीशोपंदूयनंधू  
पनंतथा ॥ ५५ ॥

भ्रम उद्वेष्टन तोद दाह अधिक स्फोटन  
अंगमर्द परिशोप कंप और धूपन ये  
होतेहैं ॥ ५५ ॥

वातपित्तक्षयेश्लेष्मास्रोतांस्यभिद  
धृद्दृशम् । चेष्टाप्रणाशंमूर्च्छाञ्च  
वाक्सङ्गञ्चकरोतिहि ॥ ५६ ॥

वात पित्तके क्षय होनेपर कफ स्रोतोंको  
अत्यंत ढकता हुआ चेष्टाका नाश मूर्च्छा  
वाणीका संग इनको करताहै ॥ ५६ ॥

श्लेष्मवातक्षयेपित्तदेहेऽजस्रमथो  
चरन् । ग्लानिमिन्द्रियदौर्बल्यं  
तृष्णांमूर्च्छाक्रियाक्षयम् ॥ ५७ ॥

कफ और वातके क्षय होनेपर देहमें  
निरंतर विचरता हुआ पित्त, ग्लानि इंद्रि-  
योंकी दुर्बलता तृष्णा मूर्च्छा क्रियाका  
क्षय इनको करताहै ॥ ५७ ॥

पित्तश्लेष्मक्षयेवायुर्मर्माण्यतिनि  
पीडयन् । प्रणाशयतिसंज्ञांचवे  
पयत्यथवानरम् ॥ ५८ ॥

पित्त और कफके क्षय होनेपर मर्माँको  
अत्यंत पीडित करता हुआ वायु संज्ञाको  
नष्ट करताहै अथवा मनुष्यको कंपितकर  
देताहै ॥ ५८ ॥

दोषाः प्रवृद्धाः स्वंलिङ्गं दर्शयन्तिय  
थावलम् । क्षीणाजहतिलिङ्गं  
स्वंसमाः स्वङ्गुर्म्मकुर्वते ॥ ५९ ॥

प्रवृद्धहुये दोष अपने लिंगोंको बलके  
अनुसार दिखातेहैं और क्षीणहुये अपने  
लिंगोंको छोड़ देतेहैं समहुये अपने २  
कामको करतेहैं ॥ ५९ ॥

वातादीनां रसादीनां मलानामोजस  
स्तथा । क्षयस्तत्रानिलादीनामु  
क्तं संक्षीणलक्षणम् ॥ ६० ॥

वातआदि रसआदि मल और  
ओज इनके जो क्षयहैं उनमें अनिल  
आदिके सम्यक् क्षीणका लक्षण यह  
कहाहै ॥ ६० ॥

घट्टते सहते शब्दं नोच्चैर्द्रवति दूयते ।  
हृदयं ताम्यति स्वल्पचेष्टस्यापिरस  
क्षये ॥ ६१ ॥

कि घट्टशब्द करताहै ऊंचेशब्दको  
नहीं सहताहै द्रवताहै शूल होताहै और  
अल्प चेष्टा करनेपरभी हृदयग्लानिको  
प्राप्त होताहै ये रसक्षयके लक्षणहैं ॥ ६१ ॥

परुषास्फुटिता मलानां त्वग्रूक्षारक्त  
संक्षये । मांसक्षये विशेषेण स्फि  
ग्ग्रीवोदरशुष्कता ॥ ६२ ॥

रक्तके भलीप्रकार क्षय होनेपर त्वचा  
कठोर स्फुटित मैली रूखी हो जातीहै—  
मांसके क्षय होनेपर विशेषकर स्फिक्  
ग्रीवा उदर ये शुष्क होजातेहैं ॥ ६२ ॥

सन्धीनां स्फुटनं ग्लानिरक्ष्णोराया  
स एव च । लक्षणं मेदसि क्षीणे तनु  
त्वं चोदरत्वचः ॥ ६३ ॥

मेदके क्षीण होनेपर ये लक्षण होते  
हैं कि संधियोंमें स्फोट ग्लानि नेत्रोंमें  
श्रम होताहै—उदर त्वचा दोनों, तनु हो-  
जातेहैं ॥ ६३ ॥

केशलोमनखश्मश्रुद्विजप्रपतनं श्र  
मः । ज्ञेयमस्थिक्षयरूपं सन्धिशै  
थिल्यमेव च ॥ ६४ ॥

अस्थियोंके क्षयमें यह रूप जानना  
कि केश रोम नख श्मश्रु दंत इनका पतन  
और श्रम ये होते हैं संधियोंमें शिथिल-  
ता होती है ॥ ६४ ॥

शीर्ग्यन्त इव चास्थीनि दुर्बलानि  
लघूनि च । प्रततं वातरोगी च क्षी  
णे मज्जनि देहिनाम् ॥ ६५ ॥

मज्जाके क्षीण होनेपर देह धारियोंके  
मानों अस्थि गिरे पड़तेहैं और दुःखसे  
चलते हैं और लघुहैं—निरंतर वातरोग  
होता है ॥ ६५ ॥

दौर्बल्यं मुखशोषश्च पाण्डुत्वं सद-  
नं क्लमः । क्लेवं शुक्राविसर्गश्च क्षीण  
शुक्रस्य लक्षणम् ॥ ६६ ॥

दुर्बलता मुखका शोष पाण्डुता सदन  
श्रम ग्लानि शुक्रका नाश क्षीणशुक्रके  
ये लक्षण हैं ॥ ६६ ॥

क्षीणेशकृतिचान्त्राणिपीडयन्नि  
वंमारुतः । रूक्षस्योन्नमयन्कुक्षिं  
तिर्य्यगूर्ध्वंश्चगच्छति ॥ ६७ ॥

मलके क्षीण होनेपर पवन मानो  
आंतोंको पीडता हुआ और रूक्ष मनुष्य  
की कुक्षिको ऊपरको नवाता हुआ  
तिरछा और ऊपरको जाता है ॥ ६७ ॥

मूत्रक्षयेमूत्रकृच्छ्रंमूत्रवैवर्ण्यमेव  
च । पिपासाबाधतेचास्यमुखश्च  
परिशुष्यति ॥ ६८ ॥

मूत्रके क्षय होनेपर मूत्रकृच्छ्र और  
मूत्रमें विवर्णता होती है और पिपासा  
बाधती है और इसका मुख शुष्क हो  
जाता है ॥ ६८ ॥

मलायनानिचान्यानिशून्यानिच  
लघूनिच । विशुष्काणिचलक्ष्य  
न्तेयथास्वंमलसंक्षये ॥ ६९ ॥

और मलका क्षय होनेपर अन्य जो  
मलके स्थान हैं वे शून्य लघु सूखे,  
यथायोग्य दीखते हैं ॥ ६९ ॥

विभेतिदुर्बलोऽभीक्ष्णंध्यायतिव्य  
थितेन्द्रियः । दुश्छायोदुर्मनारू  
क्षःक्षामश्चैवोजसःक्षये ॥ ७० ॥

और ओजके क्षय होनेपर भय करता  
है दुर्बल हुआ वारंवार ध्यान करता है  
इंद्रिय व्यथित रहती हैं छाया नष्टरहती  
है उदासमन रूखा और थका हो  
जाता है ॥ ७० ॥

हृदितिष्ठतियच्छुद्धंरक्तमीपत्सपी

तकम् । ओजःशरीरेसंख्यातं  
न्नाशान्नाविनश्यति ॥ ७१ ॥

हृदयमें जो शुद्ध कुष्ठ पीतता सहित  
रक्त टिकताहै वह शरीरमें ओज कहाता  
है उसके नाशसे मनुष्य नष्ट नहीं  
होता ॥ ७१ ॥

व्यायामोऽनशनंचिन्तारूक्षाल्प  
प्रमिताशनम् । वातातपौभयंशो  
कोरूक्षपानंप्रजागरः ॥ ७२ ॥

व्यायाम भोजनका अभाव चिन्ता रूक्ष  
अल्प प्रमित भोजन वात आतप भय  
शोक रूक्षपान अति जागरण ॥ ७२ ॥

कफशोणितशुक्राणामलानांचा  
तिवर्त्तनम् । कासोभूतोपघातश्च  
ज्ञातव्याःक्षयहेतवः ॥ ७३ ॥

और कफ शोणित शुक्र और मल  
इनकी अधिकता काल भूतोंको उपघात  
ये सब क्षयके हेतु जानने ॥ ७३ ॥

गुरुस्निग्धांमललवणंभजतामतिमा  
त्रशः । नवमन्त्रंचपानंचनिद्रामा  
स्यासुखानिच ॥ ७४ ॥

जो मनुष्य गुरु स्निग्ध अम्ल लवण  
इनको मात्रासे अधिक खातेहैं नवीन  
अन्न पान निद्रा मुखके असुखदायी  
पदार्थोंको खातेहैं ॥ ७४ ॥

त्यक्तव्यायामचिन्तानांसंशोधन  
मकुर्वताम् । श्लेष्मापित्तश्चमेदश्च  
मांसंचातिप्रवर्द्धते ॥ ७५ ॥

व्यायामकी चिंताको नहीं करते और संशोधन नहीं करते हैं उनके कफ पित्त मेदा मांस अत्यंत बढ जाते हैं ॥ ७५ ॥  
तैरावृतः प्रसादं हि गृहीत्वा याति मारुतः । यदा वस्ति तदा कृच्छ्रो मधु मेहः प्रवर्तते ॥ ७६ ॥

उनसे युक्त वायु प्रसाद ( सार ) को ग्रहण करके जब वस्तिमें जाता है तब दुःखदाता मधुमेह हो जाता है ॥ ७६ ॥

समारुतस्य पित्तस्य कफस्य च मुहुर्मुहुः । दर्शयत्याकृतिं कृत्वा क्षयमाप्न्याद्यते पुनः ॥ ७७ ॥

वह मारुत पित्त कफ इनकी बारंवार आकृतिको करके फिर क्षयको प्राप्त हो जाता है ॥ ७७ ॥

उपेक्षया स्य जायन्ते पिडकाः सप्तदा रुणाः । मांसलेप्त्ववकाशेषु मर्मस्वपि च सन्धिषु ॥ ७८ ॥

उस मनुष्यके उपेक्षा करनेसे सात दारुण पिडका हो जाते हैं वे मांसल अवकाशोंमें मर्मोंमें और संधियोंमें होते हैं ॥ ७८ ॥

शराविका कच्छपिका जालिनी सर्पपीतथा । अलजीविनताख्या च विद्रधी चेति सप्तमी ॥ ७९ ॥

वे ये हैं कि शराविका कच्छपिका जालिनी सर्पपी अलजी विनता और सातवीं विद्रधी ॥ ७९ ॥

अन्तोन्नता मध्यनिम्ना श्यावा क्लेदरुजान्विता । शराविका स्यात्पिडका शरावाकृतिसंस्थिता । अवगाढार्त्तिनिस्तोदामहावास्तु परिग्रहा ॥ ८० ॥

जो अंतमें ऊंची मध्यमें नीची श्यावरंग क्लेद पीडासे युक्त पिडका है वह शरावके आकारसे स्थित होनेसे शराविका होती है जो अवगाढ हो अत्यंत पीडाकारक हो महावस्तुका परिग्रह हो ॥ ८० ॥

श्लक्षणा कच्छपपृष्ठाभा पिडका कच्छपीमता । स्तब्धा शिराजालवती स्निग्धस्त्रावामहाशया ॥ ८१ ॥

चिकनी कच्छपकी पीठके समान जिसकी कांति हो वह पिडका कच्छपी कही है—जो स्तब्ध हो शिराओंका जिसमें जाल हो जिसका स्त्राव चिकना हो महान् आशय हो ॥ ८१ ॥

रुजानिस्तोदवहलामूक्षमच्छिद्रा च जालिनी । पिडकानातिमहती क्षिप्रपाकामहारुजा ॥ ८२ ॥

जिसमें पीडा निस्तोद अधिक हो छिद्र सूक्ष्म हो वह जालिनी होती है—जो पिडका अत्यंत बड़ी न हो शीघ्र पकजाय पीडा अधिक हो ॥ ८२ ॥

सर्पपी सर्पपाभाभिः पिडकाभिश्च ताभवेत् । दहतित्वचमुत्थाने तृष्णामोहज्वरप्रदा ॥ ८३ ॥

जिसके आसपास सरसोंके समान पिडकाहों वह सर्षपी होती है—जो उठने के समय त्वचाको दग्ध करदे तृष्णा मोह ज्वरको करै ॥ ८३ ॥

विसर्पत्यनिशंदुःखादहत्यग्निरिवा लजी । अवगाढसजाक्लेदापृष्ठेवा प्युदरेऽपिवा ॥ ८४ ॥

और रात्रिदिन दुःखसे फैले अग्निके समान दग्ध करै वह अलजी होती है जिसमें अतिगाढ़ रोगहो क्लेदहो पीठपर हो वा उदरमें हो ॥ ८४ ॥

महतीविनतानीलापिडकाविनता मता । विद्रधिंद्विविधामाहुर्वाह्या माभ्यन्तरीतथा ॥ ८५ ॥

महती ( बड़ी ) विनत ( नम्र ) नीलीहो वह पिडका विनता कहीहै बाहिर और भीतरके भेदसे विद्रधीको दो प्रकारकी कहते हैं ॥ ८५ ॥

बाह्यात्वक्स्नायुमांसोत्थाकण्डरा भामहारुजा । शीतकान्त्रविदा ह्युष्णरूक्षशुष्कातिभोजनात् ॥ ८६ ॥

त्वचा स्नायु मांसमें जो उठै वह बाह्या काँडरके समान महापीडाको करती है—शीतल आंतोंमें विदाही उष्ण रूक्ष शुष्क अति भोजनसे ॥ ८६ ॥

विरुद्धाजीर्णसंक्लिष्टविषमासात्म्य भोजनात् । व्यापन्नबहुमद्यत्वा द्वेगसन्धारणाच्छ्रमात् ॥ ८७ ॥

विरुद्ध अजीर्ण संक्लिष्ट विषम असात्म्य भोजनसे व्यापन्न ( निंदित ) अधिक मदिरासे वेगोंके धारण और श्रमसे ॥ ८७ ॥

जिह्मव्यायामशयनादतिभाराध्व मैथुनात् । अन्तःशरीरेमांसासृ गाविशान्तियदामलाः ॥ ८८ ॥

जिह्म ( कपट ) व्यायाम शयन अतिभार मार्ग मैथुन इनसे जब शरीरके भीतर मांस रुधिर रूप मल प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ ८८ ॥

तदासञ्जायतेग्रन्थिर्गम्भीरस्थःसु दारुणः । हृदयेक्लोमनिरुतिष्ठी ह्लिकुक्षौचवृक्कयोः ॥ ८९ ॥

तब गंभीरस्थानमें महा दारुण ग्रंथि हो जातीहै हृदयमें क्लोममें यकृतमें ग्रीहामें कुक्षिमें वृषणोंमें ॥ ८९ ॥

नाभ्यांवक्ष्णयोर्वापिवस्तौवाती व्रवेदनः । दुष्टरक्तगतिमात्रत्वात् सवैशीघ्रंविदह्यते ॥ ९० ॥

नाभिमें वक्ष्णोंमें वस्तिमें होकर तीव्र वेदना करतीहै दुष्ट रक्तका अत्यंत प्रमाण होनेसे वह शीघ्र होजातीहै ॥ ९० ॥

ततःशीघ्रविदाहित्वाद्विद्रधीत्यभि धीयते । व्यवच्छेदभ्रमानाहश ब्दस्फुरणसर्पणैः ॥ ९१ ॥

तिससे शीघ्र विदाही होनेसे उसको

विद्रधि कहतेहैं व्यवच्छेद भ्रम आनाह  
शब्दका स्फुरण-सर्पण ॥ ९१ ॥

वातिकीपित्तकीतृष्णादाहमोह  
मदज्वरैः । जृम्भोत्केशारुचिस्त  
म्भशीतकैः श्लैष्मिकीगिदुः । स  
र्वास्वासुमहच्छूलंविद्रधीषूषजा  
यते ॥ ९२ ॥

तृष्णा-दाह-मोह-मद-ज्वर-इनसे  
वात और पित्तकी विद्रधिको जानै जृम्भा  
उत्केश-अरुचि-स्तम्भ-शीत-इनसेकफ  
की विद्रधि होतीहै सब विद्रधियोंमें महान्  
शूल होताहै ॥ ९२ ॥

तप्तैः शस्त्रैर्यथामथ्येतोल्मुकैरिवद  
ह्यते । विद्रधीव्यम्लतांयातावृश्चि  
कैरिवदश्यते ॥ ९३ ॥

जैसे तपाये हुए शस्त्रोंसे मथा जाता  
है और उल्मुकोंके समान दग्ध किया  
जाताहै व्यग्रताको प्राप्त हुई विद्रधि  
विच्छिन्नओंके समान दग्ध करतीहै ॥ ९३ ॥

तनुरूक्षारुणंस्त्रावंफेनिलंवातविद्र  
धी । तिलमाषकुलत्थोदसन्निभं  
पित्तविद्रधी ॥ ९४ ॥

वातकी विद्रधि-तनु-रूक्ष-अरुण  
शोणित उस स्त्रावकी जो तिल-उड़द-  
कुलथीके जलकी तुल्यहो देतीहै ॥ ९४ ॥

श्लैष्मिकीस्रवतिश्वेतंबहुलंपिच्छि  
लंबहु । लक्षणंसर्वमेवैतद्भजतेसा  
न्निपातिकी ॥ ९५ ॥

और कफकी विद्रधि श्वेत अधिक  
पिच्छिल और बहुतसे रुधिरकी देतीहै  
येही सब लक्षण सन्निपातकी विद्रधिमें  
होतेहैं ॥ ९५ ॥

अथासांविद्रधीनांसाध्यासाध्य  
विशेषज्ञानार्थस्थानरुतंलिङ्गवि  
शेषमुपदेक्ष्यामः । तत्रप्रधानमर्म  
जायांविद्रध्यांहृद्घटनतमकप्रमोह  
कासाः क्लोमजायांपिपासामुखशो  
षगलग्रहाः । यकृज्जायांश्वासः ।  
प्लीहाज्यामुच्छ्वासोपरोधः । कु  
क्षिजायांकुक्षिपार्श्वान्तरांसशूल  
म् । वृक्ज्जायांपार्श्वपृष्ठकटिग्रहः  
नाभिजायांहिका । वंक्षणजायां  
सन्निधिसादः । वस्तिजायांकृच्छ्र  
सूत्रपूतिवर्चस्त्वंचेति ॥ ९६ ॥

इसके अनन्तर उन विद्रधियोंके साध्य  
असाध्य विशेषके ज्ञानार्थ स्थानसे हुए  
विशेष लिंगको कहतेहैं उनमें प्रधान  
मर्ममें पैदा हुई विद्रधिमें हृदयमें घटन  
तमक प्रमोह काश श्वास होतेहैं क्लोममें  
उत्पन्न हुईमें पिपासा मुखशोष और  
गलग्रह होतेहैं यकृत् के विषे उत्पन्नमें  
श्वास प्लीहाके विषे उत्पन्नमें ऊर्ध्वश्वासका  
उपरोध होताहै कुक्षिके विषे उत्पन्नमें  
कुक्षि पार्श्व अंश इनमें शूल वृषणोंके  
विषे उत्पन्नमें पीठका ग्रह नाभिके विषे  
उत्पन्नमें हिका वङ्क्षणोंके विषे उत्पन्नमें

सक्थियोंका जकडना वस्तिके विषे उत्पन्नमें कृच्छ्र और मूत्रके संग मलत्याग होताहै ॥ ९६ ॥

पक्वामभिन्नासुऊर्ध्वजासुमुखात्  
स्रावःस्रवति । अधोजासुगुदात्  
उभयतस्तुनाभिजायाम् ॥ ९७ ॥

पकी और आमसे भिन्न ऊर्ध्व भागमें पैदा हुई विद्रधियोंमें मुखसे रुधिर जाताहै—और अधोभागकी विद्रधियोंमें गुदासे—और नाभिसे पैदा हुईमें मुख और गुदा दोनोंसे रुधिर जाताहै ॥ ९७ ॥

तासांहन्नाभिवस्तिजाःपरिपक्वाः  
सान्निपातिकीचमरणाय । अव  
शिष्टाःपुनःकुशलमाशुप्रतिकारि  
णंचिकित्सकमासाद्योपशाम्य  
न्ति । तस्मादचिरोत्थितांविद्र  
धींशस्त्रसर्पविद्युदग्नि तुल्यांस्नेहस्वे  
दविरेचनैश्चोपक्रामेत् । सर्वशो  
गुल्मवच्चेतिचात्र ॥ ९८ ॥

उनमें हृदय नाभि वस्तिमें उत्पन्न हुई विद्रधि और परिपक्व सान्निपातकी विद्रधि मरणके लिये होतीहै और शेष विद्रधि कुशल शीघ्रकारी वैद्यके आश्रयसे शान्त होजातीहैं तिससे तत्काल उठी विद्रधि जो शस्त्र सर्प विजली अग्निके संतुल्यहैं उसका स्नेह विरेचनोंसे सम्पूर्ण गुल्मोंके समान शीघ्रही चिकित्सा करनेका प्रारम्भ करे ॥ ९८ ॥

विनाप्रमेहमप्येताजायन्तेदुष्टमेद  
सः । तावच्चेतानलक्ष्यन्तेयावद्र  
स्तुपरिग्रहः ॥ ९९ ॥

इसमें ये श्लोकहैं कि प्रमेहके विनाभी दुष्ट मेदावाले पुरुषके ये विद्रधि होतीहैं और ये इतने नहीं दीखती जबतक वस्तु स्थानका परिग्रहहो ॥ ९९ ॥

शराविकाकच्छपिकाजालिनी  
चेतिदुःसहाः । जायन्तेताह्यति  
बलाःप्रभूतश्लेष्ममेदसाम् १०० ॥

शराविका कच्छपी जालिनी ये विद्रधि दुस्सह होतीहैं और जिनके अधिक कफ और मेदाहैं उनके ये अत्यन्त बलवान् होतीहैं ॥ १०० ॥

सर्पपीचालजीचैवविनताविद्रधी  
चयाः । सद्यःपित्तोल्बणास्ताहि  
सम्भवन्त्यल्पमेदसाम् ॥ १०१ ॥

और सर्पपी अलजी और विधिता नामकी जो विद्रधिहैं वे शीघ्र पित्तोल्बण अल्पमेदावाले पुरुषोंके होती हैं ॥ १०१ ॥

मर्मस्वसेगुदेपाल्योःस्तनेसन्धिपु  
पादयोः । जायन्तेयस्यपिडकाः  
सप्रमेहीनजीवति ॥ १०२ ॥

मर्म स्कन्ध गुदा हाथ स्तन चरणों की सन्धि इनमें जिसके पिडका होतीहैं वह प्रमेही नहीं जीताहै ॥ १०२ ॥

तथान्याःपिडकाःसन्तिरक्तपीता

सितारुणाः । पाण्डुराःपाण्डुवर्णा  
श्वन्नस्मान्नामेचकप्रभाः ॥ १०३ ॥

तिसी प्रकार रक्त पित्त असित अरुण  
पाण्डुर पाण्डुवर्ण भस्मके समान काली  
अन्यभी पिडिका होतीहैं ॥ १०३ ॥

मृद्वथकठिनाश्वान्याःस्थूलाः

सूक्ष्मास्तथापराः । मन्दवेगाम

हावेगाःस्वल्पशूलामहारुजाः १०४

और अन्य कोमल और कठिन और  
अपर पिडिका स्थूल और सूक्ष्म होती  
हैं मंदवेग और महावेग अल्पशूल और  
महापीडा कारक होतीहैं ॥ १०४ ॥

तावुद्धामारुतादीनांयथास्वैर्हेतुल

क्षणैः । ब्रूयादुपाचरेच्चाशुप्रागुपद्र

वदर्शनात् ॥ १०५ ॥

उनको यथायोग्य वात आदिके हेतु  
और लक्षणोंसे जानकर वात आदिसे  
उत्पन्न कहै और उपद्रवके होनेसे पूर्वही  
चिकित्सा करै ॥ १०५ ॥

तृदश्वासमांससंकोथमेहहिक्राम

दज्वराः । वीसर्पमन्दसंरोधाः

पिडिकानामुपद्रवाः ॥ १०६ ॥

तृष्णा श्वास मांसका संकोथ (पाक)  
मोह हिका मद् ज्वर वीसर्प मंदसंरोध  
ये पिडिकाओंके उपद्रव होतेहैं ॥ १०६ ॥

क्षयःस्थानंचवृद्धिश्चदोपाणांत्रिवि

धागतिः । ऊर्द्धश्चाधश्चतिर्यक्

चविज्ञेयात्रिविधापरा ॥ १०७ ॥

संक्षय स्थिति और वृद्धि यह दोषोंकी  
तीन प्रकारकी गतिहैं और दूसरी तीन  
प्रकारकी यह गति जाननी कि ऊर्द्ध  
नीचे और तिरछी हो ॥ १०७ ॥

त्रिविधाचापराकोष्ठशाखामर्मा

स्थिसन्धिषु । इत्युक्ताविधिभेदे

नदोपाणांत्रिविधागतिः ॥ १०८ ॥

और अपर तीन प्रकारकी यहहैं कि  
कोष्ठकी शाखा मर्म अस्थियोंकी संधियोंमें  
हो विधिके भेदसे यह दोषोंकी तीन  
प्रकारकी गति कहीहै ॥ १०८ ॥

चयप्रकोपप्रशमाःपित्तादीनांयथा

क्रमम् । भवन्त्येकैकशःपट्सुका

लेप्त्वभागमादिषु ॥ १०९ ॥

पित्त आदियोंका क्रमसे एक एकका  
चय कोप और उपशम मेधोंके आगमन  
आदि छः कालमें होताहै ये कालकी  
गतिहैं ॥ १०९ ॥

गतिःकालकृताचैपाचयाद्यापुन

रुच्यते । गतिश्चद्विविधादृष्टाप्रा

कृतावैकृताचया ॥ ११० ॥

संचय से जा होतीहै उसको कहते  
हैं प्रकृती वैकृती दो प्रकारकी गति  
देखीहै ॥ ११० ॥

पित्ताद्धचूष्मोष्मणःपक्तिर्नराणा

मुपजायते । तच्चपित्तंप्रकुपितंवि

कारान्कुरुतेबहून् ॥ १११ ॥



पित्तसे ऊष्मा और ऊष्मासे पाक मनुष्योंके होताहै—वह पित्त जब कुपित होताहै तब बहुतसे विकारोंको करताहै॥ १११॥

प्राकृतस्तुबलंश्लेष्माविकृतोमल उच्यते । सचैवौजःस्मृतःकायेस चपाप्मोपदिश्यते ॥ ११२ ॥

श्लेष्मा ( कफ ) प्राकृत मलहै और विकृतको मल कहतेहैं वही कफ कायामें ओज कहाहै और उसीको पापी कहतेहैं

सर्वाहिचेष्टावातेनसप्राणःप्राणि नांस्मृतः । तेनैवरोगाजायन्तेते नचैवोपरुध्यते ॥ ११३ ॥

सब चेष्टा वातसे होतीहैं वही प्राणी-योंका प्राण कहाहै उसीसे रोग कहेंहैं और उसीसे उपरोध होताहै ॥ ११३ ॥

नित्यंसन्निहितामित्रंसमीक्ष्यात्मानमात्मवान् । नित्यंयुक्तःपरिचरेत्विच्छिन्नायुरभित्वरम् ॥ ११४ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य अपने नित्य समीपमें स्थित वातरूपी शत्रुको देखकर नित्य युक्तिसे अवस्थाका अभिलाषी शीघ्र चिकित्साको करे ॥ ११४ ॥

तत्रश्लोकौ ।

शिरोरोगाःसहद्रोगारोगामानविकल्पजाः । क्षयाःसपिडकाश्चोक्तादोषाणांगतिरेवच ॥ ११५ ॥

उसमें ये दो श्लोकहैं कि शिरके रोग हृद्रोग—मान विकल्पसे उत्पन्न रोग क्षय और पिडिका और दोषोंकी गति॥ ११५॥

क्रियन्तःशिरसीयेऽस्मिन्नध्याये तत्त्वदर्शिना । ज्ञानार्थंभिपजाश्च वप्रजानाश्चहितैपिणा ॥ ११६ ॥  
इति रोगचतुष्टके क्रियन्तः शिरसीयो नाम सप्तदशोऽध्यायः समाप्तः॥

इस क्रियन्तः शिरसीय—अध्यायमें वैद्योंके ज्ञानके लिये प्रजाओंके हितकारी तत्त्वके द्रष्टा आत्रेयने वर्णन कियेहैं॥ ११६॥  
इति रोगचतुष्टके क्रियन्तःशिरसीयोऽध्यायःसमाप्तः ॥

अष्टादशोऽध्यायः ।

अथातस्त्रिशोफीयमध्यायं

व्याख्यास्यामः ।

इतिहस्महभगवानात्रेयः ।

इसके अनंतर त्रिशोफीय अध्यायका वर्णन करते हैं यह भगवान् आत्रेय कहते हैं ॥

त्रयःशोथाभवन्ति । वातपित्तश्लेष्मनिमित्ताः । तेपुनर्द्विविधाःनि जागन्तुभेदेन । तत्रागन्तवः । छेदनभेदनक्षणनभञ्जनपिच्छनोत्पेषणप्रहारवधबन्धनवेष्टनव्यधनपीडनादिभिर्वा । भल्लातकपुष्पफलरसात्मगुप्ताशूकक्रिमिशूकाहितपत्रलतागुल्मसंस्पर्शनैर्वास्वेदनपरिसर्पणावमूत्रणैर्वाविषिणाम् । सविषाविषप्राणिदंष्ट्रादन्तविषाण

नखनिपातैर्वा । सगरविपवातहि  
मदहनसंस्पर्शनैर्वाशोथाःसमुपजा  
यन्ते । तेयथास्वहेतुजैर्व्यञ्जनैरा  
दावुपलभ्यन्ते । निजव्यञ्जनैकदे  
शविपरीतैःव्रणवन्धमन्त्रागदप्र  
लेपप्रवातनिर्वापणादिभिश्चोपक्र  
मैरुपक्रम्यमाणाःप्रशान्तिमापद्य  
न्ते । निजास्तुपुनःस्नेहस्वेदनवम  
नविरेचनास्थापनानुवासनशिरो  
विरेचनानामयथावत्प्रयोगात्मि  
थ्यासंसर्जनाद्वा । छर्द्यलसकवि  
सूचिकाश्वासकासातीसारशोप  
पाण्डुरोगज्वरोदरप्रदरभगन्दरा  
शोर्विकारातिकर्षणैर्वा । कुष्ठक  
ण्डूपिडकादिभिर्वाछर्दिक्ष्वथूद्वा  
रशुक्रवातमूत्रपुरीषवेगधारणैर्वा  
चर्मरोगोपवासकर्पितस्यवा । सह  
सातिगुर्वल्लवणपिष्टान्नफलशा  
करागदधिहरीतकमद्यमन्दकवि  
रूढयावशूकशमीधान्यानुपौदक  
पिशितोपयोगात्प्लुप्तप्लुतलोष्ट्रभक्ष  
णाल्लवणातिभक्षणाद्वागर्भसम्पीड  
नादामगर्भप्रपतनात्प्रजातानाञ्च  
मिथ्योपचारादुदीर्णदोषत्वाच्छो  
थाःप्रादुर्भवन्ति । इत्युक्तःसामा

न्योहेतुः । अयंत्वत्रविशेषः ।  
शीतरूक्षलघुविपदश्रमोपवासाति  
कर्षणक्षेपणादिभिर्वायुःप्रकुपितः  
त्वङ्मांसशोणितादीन्यभिभूय  
शोथञ्जनयति । साक्षिप्रोत्थापन  
प्रशमोभवति । श्यावारुणवर्णः  
प्रकृतिवर्णोवाचलःस्पन्दनःस्वरपरु  
पभिन्नत्वग्लोमाच्छिद्यतइवभिद्य  
तइवपीड्यतइवसूचीभिरिवतुद्यते  
पिपीलिकाभिरिवसंसृप्यतेसर्पपक  
ल्कालिप्तइवचिमिचिमायतेसंकु  
च्यतेआयम्यतेइतिवातशोथः ।  
उष्णतीक्ष्णकटुकक्षारलवणाम्ला  
जीर्णभोजनैरग्न्यातपप्रतापैश्चपि  
त्तंप्रकुपितंत्वङ्मांसशोणितान्य  
भिभूयशोथञ्जनयति । साक्षिप्रो  
त्थानप्रशमोभवति । कृष्णपीत  
नीलताम्रकावभासउष्णोमृदुःक  
पिलताम्रलोमाउप्यतेदूयतेधूप्य  
तेऊष्मायतेस्विद्यतेक्लिद्यतेनचस्प  
र्शमुष्णंवासुपूयतेइतिपित्तशोथः ।  
गुरुमधुरशीतस्निग्धैरतिस्वप्नव्या  
यामादिभिश्चश्लेष्माप्रकुपितःत्व  
ङ्मांसशोणितादीन्यभिभूयशोथ  
ञ्जनयति । स कृच्छ्रोत्थानप्रश

मोक्षवति । पाण्डुःश्वेतावभासः  
स्निग्धःश्लक्ष्णःगुरुःस्थिरःस्त्यानः  
शुक्लाग्रोमास्पर्शोष्णसहश्चेतिश्ले  
ष्मशोथः । यथास्वकारणाकृति  
संसर्गाद्विदोषजास्त्रयःशोथाःभव  
न्ति । तथास्वकारणाकृतिस  
न्निपातात्सान्निपातिकएकः ।  
एवंसप्तविधोभेदः । प्रकृतिभिस्ता  
भिर्भिद्यमानोद्विविधस्त्रिविधश्चतु  
र्विधःसप्तविधश्चशोथउपलभ्यते ।  
पुनश्चैकएवोत्सेधसामान्यादिति १

कि तीन शोफ होते हैं वात  
पित्त कफके निमित्तसे उत्पन्न फिर वे  
निज और आगंतुके भेदसे दो प्रकारके  
हैं उनमें आगंतु छेदन भेदन क्षणन  
भंजन पिच्छन उपेपण ग्रहार अवबंधन  
वेष्टन व्यधन पीडन इनसे होते हैं वा  
भिलायेके पुष्प फल रस आत्मगुप्त अशूक  
क्रिमि शूक अहित पत्रलता गुल्म इनके  
संपादनोसे वा स्वेदन परिसर्पण आदि-  
के सूचनोसे वा विपाण अंस विप अ-  
विपके प्राणियोंकी दंष्ट्रा दंत विपाण नख  
इनके लगनेसे वा सागर विप वात हिम  
अग्नि इनके स्पर्शसे शोफ हो जाते हैं वे  
ऐसे हैं कि अपने हेतुसे उत्पन्न व्यंज-  
नोसे प्रथम हो जाय अपने व्यंजनोके  
एक देशसे विपरीत जो बंधन मंत्र

औपधका लेप प्रवात निर्वापण आदि  
चिकित्साओसे उपक्रम किये शांतिको  
प्राप्त हो जाते हैं और जो निजहें वे स्नेह  
स्वेद वमन विरेचन आस्थापन अनुवासन  
शिरके विरेचन इनके अयथार्थ करनेसे  
वा मिथ्या संसर्जनसे वा छर्द आलस्य  
विसृचिका श्वास कास अतिसार शोष  
पांडुरोग ज्वर उदर प्रदर भगंदर अर्श  
अत्यंत तृषा इनसे वा कुष्ठ कंडु पिडका  
आदिसे वा छर्द क्षवधु ( शूक ) उद्गार  
शूक वात मूत्रमल इनके वेग धारणसे  
वा चर्म रोग उपवास इनसे कृशको वा  
शीघ्र अतिगुरु अम्ल लवण पिष्टकेअन्न-  
फल शाक राग दधि हरित मद्य  
मंदैक याव शूक शमी धान्य अन्न मांस  
इनके भक्षणसे वा अधिकलवणके भक्ष-  
णसे-गर्भके संपीडनसे आमगर्भके पतनसे  
और उत्पन्न हुये गर्भोके मिथ्योपचारसे  
अधिक दोषसे शोफ प्रकट होजातेहैं-यह  
सामान्य हेतु कहा-यह तो इसमें विशेष-  
पहै कि शीतल रूक्ष लघु विपके दाता,  
श्रम उपवास कर्पण क्षपण आदिसे वायु  
प्रकुपित होकर त्वचा मांस शोणित  
आदिकोंका तिरस्कार करके शोफको  
पैदा करताहै उस शोफका शीघ्रही  
उठना, और शांति, होतेहैं, वह श्याम  
अरुण वर्ण वा प्रकृति वर्ण होताहै और  
चल स्पंदन खर कठोर त्वचा लोमका  
भेदक मानो छेदन भेदन पीडित करताहै  
सूचीयोके समान तोद होताहै और पिपी-

लिका ( चेंटी ) आंके समान उसपर चल-  
तीहैं सरसोंकी खलसेलिपेके समान  
चिमरकरताहै संकोश और विस्ता-  
रको प्राप्त होताहै यह वात शोफ  
कहा-और उष्ण तीक्ष्ण कटुक्षार लवण  
अम्ल अजीर्ण इन भोजनोंसे आग्नि और  
आतपके अधिक तापनेसे कुपित हुआ  
पित्त त्वचा मांस शोणित इनका अभि-  
भव ( तिरस्कार ) करके शोफको पैदा  
करताहै उसका उठना और शांति शीघ्र  
होतेहैं वह कृष्ण पीत नील तांवा इन  
के वर्णका होता है उष्ण कोमल कपिल  
ताम्र अलोम वह ऐसा होता है और  
उष्ण दहन धूम ऊष्मास्वेद क्लेद ये मानो  
उसमें होते हैं और उष्ण स्पर्श उसका  
नहीं होता यह पित्तका शोफहै और गुरु  
मधुर शीतल स्निग्ध अति स्वप्न और  
व्यायाम आदिसें कुपित हुआ कफ  
त्वचा मांस शोणित आदिका अभिभव  
करके शोफको पैदा करता है वह कष्टसे  
उठता है और शांत होताहै वह पांडुरश्चेत  
कांतिका होताहै-स्निग्ध श्लक्ष्ण गुरु स्थिर  
स्त्यान ( बड़ा ) उसकी रोमोंके अग्र  
भाग शुक्ल होतेहैं स्पर्श उष्णको सह  
सकताहै यह कफका शोफहै-जैसे अपने  
कारण और आकृतिके संसर्गसे तीन  
शोफाद्वि दोषोंसे उत्पन्न होते हैं तैसेही  
कारण आकृतिके संनिपातसे एक शोफ  
संनिपातका होताहै इस प्रकार सात  
प्रकारका होताहै-भेदकी प्रकृतियोंसे  
भिन्न २ हुआ दो तीन चार सात प्रका-

रका शोफ मिलता है और फिर ऊँचा-  
ईकी सामान्यतासे एकही है ॥ १ ॥

भवतिचात्र ।

शून्यन्तेयस्यगात्राणिस्वपन्तीवरुज  
न्तिच। निपीडितान्युन्नमन्तिवा  
तशोथन्तमादिशेत् ॥ २ ॥

इसमें ये श्लोकहैं कि जिसके गात्र  
मानो चलायमान, सोते, पीडित, हों  
और दवानेंसे फिर ऊपरको उठ जाय  
उसे वात शोफकहै ॥ २ ॥

यश्चाप्यरुणवर्णाभःशोथोनक्तं प्र  
णश्यति । स्नेहोष्णमर्दनाभ्याश्च  
प्रणश्येत्सचवातिकः ॥ ३ ॥

और जो रक्तवर्ण हो रात्रिको नष्ट  
हो जाय और स्नेह उष्णके मलनेसे नष्ट  
हो जाय वहभी वातिकहै ॥ ३ ॥

यःपिपासाज्वरार्तस्यदूयतेऽथवि  
दह्यते । स्विद्यतेक्लियतेगन्धीसपि  
त्तश्चयथुःस्मृतः ॥ ४ ॥

जो पिपासा ज्वरसे आर्तके हो जिसमें  
पीडा विशेष दाहहो स्वेद क्लेद गंध हो  
वह शोफ पित्तका कहाहै ॥ ४ ॥

यःपीतनेत्रवक्रत्वक्पूर्वमध्यात्प्र  
सूयते । तनुत्वक्चातिसारीचपि  
त्तशोथःसउच्यते ॥ ५ ॥

जो पहिले नेत्र मुख त्वचा इनमें  
पीतहो मध्यमें बहता हो त्वचा जिसकी

सूक्ष्म हो और अतिसारको करै-वहभी पित्त शोफ कहाहै ॥ ५ ॥

यःशीतलःसक्तगतिःकण्डूमान्पा  
ण्डुरेवच । निपीडितो नोन्नमति  
श्वयथुःस कफात्मकः ॥ ६ ॥

जिसकी गतिमें शीत हो सुजली हो पीला हो और दवानेसे ऊपरको उठजाय वह शोथ कफात्मक होताहै ॥ ६ ॥

यस्यशस्त्रकुशच्छेदाच्छोणितनप्र  
वर्तते । कृच्छ्रेणपिच्छान्स्त्रव  
तिसचापिकफसम्भवः ॥ ७ ॥

और शस्त्र कुशासे छेदन किये जिस-  
मेंसे रुधिर न निकसे और कण्टसे पिच्छ  
जिसमेंसे निकसे वहभी कफसे उत्पन्नहै ७

निदानाकृतिसंसर्गात्श्वयथुःस्या  
द्विदोषजः । सर्वाकृतिःसन्निपा  
ताच्छोथोव्यामिश्रहेतुजः ॥ ८ ॥

निदान और आकृतिके संसर्गसे दो  
दोषोंसे उत्पन्न शोथ होताहै सब आकार  
हों मिलेहुये हेतु हों वह शोफ सन्निपा-  
तसे होताहै ॥ ८ ॥

यस्तुपादाभिनिर्वृत्तःशोथःसर्वाङ्ग  
गोभवेत् । जन्तोःसचसुकटःस्या  
त्प्रसृतःस्त्रीमुखाच्चयः ॥ ९ ॥

जो शोफ पादोंसे चलकर सर्वाङ्ग  
गामी हो जाय वह शोफ जंतुको आति-  
कट देताहै और स्त्रीके मुखसे लेकर  
फैला हो ॥ ९ ॥

यश्चापिगुह्यप्रभवःस्त्रियोवापुरुषस्य  
वा । सचकटतमोज्ञेयोयस्यचस्यु  
रुपद्रवाः ॥ १० ॥

और जो लिंग वा योनिमें स्त्री वा पुरु-  
षके हो और जिसमें उपद्रवहों वह अत्यंत  
कट दाता जानना ॥ १० ॥

छर्दिःश्वासोऽरुचिस्तृष्णाज्वरोऽ  
तीसारएवच । सप्तकोऽयंसदैर्वा  
ल्यःशोथोपद्रवसंग्रहः ॥ ११ ॥

छर्दिश्वास अरुचि तृष्णा, ज्वर अती-  
सार दुर्बलता ये सात शोकके उपद्रव  
होतेहैं ॥ ११ ॥

यस्यश्लेष्माप्रकुपितःजिह्वामूलेऽव  
तिष्ठते । आशुसञ्जनयच्छोथं क  
रोतिगलशुण्डिकाम् ॥ १२ ॥

जिसका कुपित हुआ कफ काक पर  
टिक जाताहै वह शीघ्र शोफको पैदाकरता  
हुआ, गल शुण्डिकाको पैदा करताहै १२।

यस्यश्लेष्माप्रकुपितस्तिष्ठत्यन्तर्गले  
स्थितः । आशुसञ्जनयच्छोथं  
गलगण्डोऽस्यजायते ॥ १३ ॥

और जिसका कुपित कफ गलके  
भीतर टिकजाय वह शीघ्र शोफको पैदा  
करके गल गंड कर देताहै ॥ १३ ॥

यस्यश्लेष्माप्रकुपितोगलवाह्येऽव  
तिष्ठते । शनैःसञ्जनयच्छोथंजा  
यतेऽस्यगलग्रहः ॥ १४ ॥

जिसका कुपित कफ गलेके बाहि-  
रहीं टिकजाय वह शनैः २ शोफको  
पैदा करके गलग्रह कर देताहै ॥ १४ ॥

यस्यपित्तप्रकुपितंसरकंत्वाचिस  
पति । शोथंसरागंजनयन्विसर्प  
स्तस्यजायते ॥ १५ ॥

जिसका कोपको प्राप्त हुआ पित्त  
रुधिर सहित त्वचामें फैल जाय वह  
राग सहित शोफको पैदाकरके विसर्पको  
करताहै ॥ १५ ॥

यस्यपित्तप्रकुपितंत्वचिरक्तेऽवति  
ष्ठते । रागंसशोथंजनयन्पिडका  
तस्यजायते ॥ १६ ॥

जिसका कुपित पित्त रुधिर सहित  
त्वचामें टिक जाय वह शोफ और  
रागको पैदा करके पिडकाओंको कर-  
ताहै ॥ १६ ॥

यस्यपित्तप्रकुपितंशंखयोरवति  
ष्ठते । श्वयथुःशंखकोनामदारुण  
स्तस्यजायते ॥ १७ ॥

जिसका कुपित पित्त शंखोंके विषे  
टिकजाय उसके शंखक नामका शोथ  
दारुण होजाताहै ॥ १७ ॥

यस्यपित्तप्रकुपितंकर्णमूलेऽवति  
ष्ठते । ज्वरान्तेदुर्जयोऽन्तायशो  
थस्तस्योपजायते ॥ १८ ॥

जिसका कुपित पित्त कर्णमूलमें

टिक जाय उसके ज्वरके अंतमें मरणका  
दाता दुर्जय शोफ होजाताहै ॥ १८ ॥

वातःप्लीहानमुद्धूयकुपितोयस्यति  
ष्ठति । शूलैःपरितुदन्पार्श्वप्लीहा  
तस्याभिवर्द्धते ॥ १९ ॥

जिसके प्लीहाका ऊर्द्ध धमन करके  
कुपित वात टिक जाता है उसके शूलोंसे  
पार्श्वको पीडित करती हुई प्लीहा होजा-  
तीहै ॥ १९ ॥

यस्यवायुःप्रकुपितोगुल्मस्थाने  
चतिष्ठति । शोथंसशूलंजनयन्गु  
ल्मस्तस्योपजायते ॥ २० ॥

जिसकी कुपित वायु गुल्मस्थानोंमें  
टिकतीहै वह शूलसहित शोफको पैदा  
करके गुल्मरोगको करतीहै ॥ २० ॥

यस्यवायुःप्रकुपितःशोथशूलकर  
श्वरन् । वंक्षणाद्वृषणौयातिब्रध्नं  
तस्योपजायते ॥ २१ ॥

जिसके कुपित वायु शोफ शूल  
करता और विचरता हुआ वंक्षणांमेंसे  
वृषणोंमें चलाजायैः उसके वर्ष्म हो  
जाताहै ॥ २१ ॥

यस्यवातःप्रकुपितःत्वङ्मासान्तर  
माश्रितः । शोथंसजनयन्कुक्षा  
वुदरंतस्यजायते ॥ २२ ॥

जिसका कुपित वात त्वचा मांसके  
भीतर टिककर शोफको पैदा करै उसकी  
कुक्षिमें उदर रोगको करता है ॥ २२ ॥

यस्यवातःप्रकुपितःकुक्षिमाश्रित्य  
तिष्ठति । नाधोव्रजतिनाप्यूर्ध्वंश्चा  
नाहस्तस्यजायते ॥ २३ ॥

जिसका कुपित वात कुक्षिके आश्रय  
से टिके न नीचे जाय न ऊपर जाय  
उसके आनाह ( अफरा ) होजाताहै ॥ २३ ॥

रोगाश्चोत्सेधसामान्यादधिमांसा  
र्बुदादयः । विशिष्टानामरूपाभ्यां  
निर्देश्याःशोथसंग्रहे ॥ २४ ॥

और उंचाईके सामान्यसे अधिमांस  
अर्बुद आदि रोग वे होतेहैं जो विशिष्ट  
नाम रूपसे शोक संग्रहमें कहेंहैं ॥ २४ ॥

वातपित्तकफास्ययुगपत्कुपिता  
स्त्रयः । जिह्वामूलेऽवतिष्ठन्तेविद  
हन्तःसमुच्छ्रिताः ॥ २५ ॥

जिसके वात पित्त कफ तीनों एकवार  
कुपित हों और जिह्वाके मूलमें टिकें  
विदाह करते हुए बढ़जाय वे अत्यंत  
शोफको पैदा करतेहैं ॥ २५ ॥

जनयन्तिभृशंशोथंवेदनाश्चपृथ  
ग्विधाः । तंशीघ्रकारिणरोगरौहि  
णीकेतिनिर्दिशेत् ॥ २६ ॥

और अतिशोथ और अनेक प्रकारकी  
वेदना करतेहैं उस शीघ्र कारी रोगको  
रौहिणीका कहतेहैं ॥ २६ ॥

त्रिरात्रंपरमंतस्यजन्तोर्भवतिजी  
वितम् । कुशलेनत्वनुप्रातःक्षिप्रं  
सम्पद्यतेसुखी ॥ २७ ॥

उस जंतुका परेसे परे तीन रात्रि  
जीवन होताहै और कुशल वैद्य प्राप्त  
होजाय तो शीघ्र सुखी होजाताहै ॥ २७ ॥

सन्तिह्येवंविधारोगाःसाध्यादारु  
णसम्मताः । येहन्युरनुपक्रान्ता  
मिथ्यारम्भेणवापुनः ॥ २८ ॥

इस प्रकारके दारुण संमत(माने)साध्य  
रोगहैं जो चिकित्साके न करनेसे वा  
मिथ्या चिकित्सा करनेसे मार देतेहैं ॥ २८ ॥

साध्याश्चाप्यपरेहन्तिव्याधयोमृ  
दुसम्मताः । यत्नायत्नकृतंयेषुक  
र्मसिध्यत्यसंशयम् ॥ २९ ॥

और अपर मृदु संमत साध्य व्याधि  
भी हैं जिनमें यत्न अयत्नसे किया कर्म  
निःसंदेह सिद्ध होताहै ॥ २९ ॥

असाध्याश्चापरेसन्तिव्याधयोया  
प्यसंज्ञिताः । सुसाध्येऽपिकृतंये  
षुकर्मयाप्यकरंभवेत् ॥ ३० ॥

और जिस मनुष्यके असाध्य नामकी  
अपरव्याधि व्याप्यहै सुसाध्य होनेपरभी  
जिनमें किया हुआ कर्म याप्य सिद्धिका  
कारक होताहै ॥ ३० ॥

सन्तिचाप्यपररोगाःकर्मयेषुनसि  
ध्यति । अपियत्नकृतंवचैर्नतान्वि  
द्वानुपाचरेत् ॥ ३१ ॥

और अपर रोग ऐसेभीहैं जिनमें कर्म  
सिद्ध नहीं होता चाहि वह यत्नसेभी  
किया जाय विद्वान् मनुष्य उनकी  
चिकित्सा न करै ॥ ३१ ॥

साध्याश्चैवाप्यसाध्याश्चव्याधयो  
द्विविधाः स्मृताः । मृदुदारुणभेदे  
न ते भवन्ति चतुर्विधाः ॥ ३२ ॥

साध्य और असाध्य दो प्रकारकी  
व्याधि कही हैं मृदु और दारुणके भेदसे  
वे चार प्रकारकी होती हैं ॥ ३२ ॥

त एवापरिसंख्येयाभिद्यमाना भव  
न्ति हि । निदानवेदनावर्णस्थान  
संस्थाननामभिः ॥ ३३ ॥

वही भेदको प्राप्त हुई अपरनामकी  
हो जाती हैं—निदान वेदना वर्ण स्थान  
संस्थान नाम इनसे ॥ ३३ ॥

व्यवस्थाकारणं ते पांयथास्थूलेषु  
संग्रहः । तथा प्रकृतिसामान्यं वि  
कारेषूपदिश्यते ॥ ३४ ॥

उनकी व्यवस्थाका कारण वह है  
जैसा स्थूल व्याधियोंमें संग्रह है जैसी  
सामान्य प्रकृति विकारोंमें कही हैं ॥ ३४ ॥

विकारनामा कुशलो न जिहीयात्  
कदाचन । न हि सर्वविकारणानां  
मतोऽस्ति ध्रुवगतिः । ३५ ॥

विकारोंके नामोंमें अकुशल वैद्य  
कदाचित् भी लज्जित न हो क्योंकि संपूर्ण  
विकारोंके नामसे ध्रुव गति (ज्ञान)  
नहीं है ॥ ३५ ॥

स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशे  
षतः । स्थानान्तरगतश्चैव जनय

यत्यामयान्वहून् ॥ ३६ ॥

वही कुपित दोष समुत्थानके विशेषसे  
और स्थानान्तरमें जानेसे बहुतसे रोगोंको  
पैदा कर देता है ॥ ३६ ॥

तस्माद्विकारप्रकृतीरधिष्ठानान्त  
राणि च । समुत्थानविशेषां श्वबु  
द्धाकर्म समाचरेत् ॥ ३७ ॥

तिससे विकारोंकी प्रकृति और  
अन्य अधिष्ठान और समुत्थानोंके विशेष  
इनको जानकर चिकित्सा करे ॥ ३७ ॥

यो ह्येतद्विविधं ज्ञात्वा कर्माण्यारभ  
ते भिषक् । ज्ञानपूर्वयथान्यायं स  
कर्मसु न मुह्यति ॥ ३८ ॥

जो वैद्य इन तीनोंको जानकर कर्मोंका  
प्रारंभ करता है वह ज्ञान पूर्वक न्यायसे  
कर्मोंमें मोहको प्राप्त नहीं होता ॥ ३८ ॥

नित्याः प्राणभृता देहे वातपित्तक  
फास्त्रयः । विकृताः प्रकृतिस्था वा  
तान्बुभुत्सेत पण्डितः ॥ ३९ ॥

प्राणधारियोंके देहमें वात पित्त  
कफ ये तीनों नित्य हैं वे विकृत हैं वा  
प्रकृतिस्थ हैं इस प्रकार उनको पण्डित  
जाननेकी इच्छा करे ॥ ३९ ॥

उत्साहोच्छ्वासनिःश्वासचेष्टा धा  
तुगतिः समा । समो मोक्षो गतिमतां  
वायोः कर्माविकारजम् ॥ ४० ॥

उत्साह, ऊर्ध्वश्वास निश्वास चेष्टा धातु  
समानगति सममोक्ष ये गतिमानोंमें  
वायुके अविकारी कर्म हैं ॥ ४० ॥



दर्शनं पक्तिरुष्माचक्षुत्तृष्णादेह  
मार्दवम् । प्रभाप्रसादो मेधाचपि  
तत्कर्माविकारजम् ॥ ४१ ॥

दर्शन पाक क्षुधा या स्नेह मृदुता  
प्रभा प्रसाद मेधा ये पित्तके अविकारी  
कर्महे ॥ ४१ ॥

स्नेहो बद्धः स्थिरत्वञ्च गौरवं वृषता  
बलम् । क्षमाधृतिरलोभश्च कफ  
कर्माविकारजम् ॥ ४२ ॥

स्नेह बंध स्थिरता गौरव वृषता बल  
क्षमा धैर्य अलोभ ये अविकारी कफके  
कर्महे ॥ ४२ ॥

वातपित्तकफैश्चैव न्यूनैः लक्षणमु  
च्यते । कर्मणां प्रकृतेर्हानिर्वृद्धि  
र्वापि विरोधिनाम् ॥ ४३ ॥

वात पित्त कफ इनकी न्यूनतामें  
लक्षण कहा जाता है कर्मोंकी प्रकृतिमें  
हानि हो वा विरोधियोंकी उत्पत्ति हो ४३

दोषप्रकृतिवैशेष्यं नियतं वृद्धि ल  
क्षणम् । दोषाणां प्रकृतिर्हानिर्वृ  
द्धिर्वापि परीक्ष्यते इति ॥ ४४ ॥

दोषोंकी प्रकृतिकी विषमता हो ये  
नियमसे वृद्ध दोषके लक्षण हैं दोषोंकी  
प्रकृति हानि वा वृद्धि इनकी परीक्षाकी  
जाती है इति ॥ ४४ ॥

तत्र श्लोकौ ।

संख्यानिमित्तं रूपाणि शोथानां सा

ध्यतान च । तेषां तेषां विकाराणां  
त्रिविधं बोध्य संग्रहम् ॥ ४५ ॥

उसमें ये श्लोक हैं कि संख्याका निमित्त  
रूप शोफोंकी असाध्यता तिन २ विकारों  
के तीन प्रकारके ज्ञानका संग्रह ४५

प्राकृतं कर्म दोषाणां लक्षणं हानि वृ  
द्धिषु । वीतमोहरजो दोषमोहमा  
नमदस्पृहः । व्याख्यातवांस्त्रिशो  
फीये रोगाध्याये पुनर्वसुः ॥ ४६ ॥

इति रोगचतुष्के त्रिशोफीयोऽष्टादशोऽ  
ध्यायः समाप्तः ॥ १८ ॥

दोषोंका प्राकृत कर्म हानि वृद्धियोंके  
लक्षण इन सबका वर्णन त्रिशोफीय  
रोगाध्यायमें मोद रजो दोष मोह मान  
मद स्पृहा इनसे रहित पुनर्वसुने किया ४६  
इति रोगचतुष्के त्रिशोफीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ १८ ॥

अथ विंशोऽध्यायः ।

अथातोऽष्टोदरीयमध्यायं व्या  
ख्यास्यामः ।

इति हस्माह भगवान् आत्रेयः ।

इसके अनंतर अष्टोदरीय अध्यायका  
वर्णन करते हैं यह भगवान् आत्रेय  
कहते हैं

इह खल्वष्टावुदराणि अष्टौ मूत्रावा  
ताः अष्टौ क्षीरदोषा अष्टौ रेतोदोषाः  
सप्तकुष्ठानि सप्तपिडकाः सप्तवीस  
पाः षडतीसाराः षडुदावर्ताः पञ्चगु

ल्माःपञ्चर्षीहृदोपाःपञ्चकासाःप  
 ञ्चश्वासाःपञ्चहिक्राःपञ्चतृष्णाः  
 पञ्चछर्दयःपञ्चभक्तस्यानशनस्था  
 नानिपञ्चशिरोरोगाःपञ्चहृद्रोगाः  
 पञ्चपाण्डुरोगाःपञ्चोन्मादाःचत्वारो  
 ऽस्माराःचत्वारोऽक्षिरोगाःचत्वारः  
 कर्णरोगाःचत्वारःप्रतिश्यायाःच  
 त्वारोमुखरोगाःचत्वारोग्रहणीदो  
 पाःचत्वारोमदाःचत्वारोमूर्च्छाः  
 चत्वारःशोपाःचत्वारिक्लेश्यानि  
 त्रयःशोथाःत्रीणिकिलासानित्री  
 विधंलोहितपित्तद्वौज्वरौद्वौव्रणौ  
 द्वावायामौद्वैगृध्रस्यौद्वैकामलेद्वि  
 विधमामंद्विविधवातरक्तद्विविधा  
 न्यशांसि एकःऊरुस्तम्भःएकःस  
 न्यासःएकोमहागदःविंशतिःक्रि  
 मिजातयःविंशतिःप्रमेहाःविंशति  
 र्योनिव्यापदः । इत्यष्टाचत्वारिं  
 शद्रोगाधिकरणान्यस्मिन्संग्रहेभ  
 वन्ति । उद्दिष्टानि एतानि यथोद्दि  
 शमभिर्निर्देक्ष्यामः । अष्टाबुदरा  
 णीति वातपित्तकफसन्निपातप्ली  
 हबद्धच्छिद्रोदकोदरानीति । अष्टौ  
 मूत्राधाता इति वातपित्तकफसन्नि  
 पाताश्मरिशर्कराशुक्रशोणितजाः

अष्टौक्षीरदोषा इति वैवर्ण्यवैगन्ध्यं  
 वैरस्यं पैच्छित्यं फेनसङ्घातं रौक्ष्यं  
 गौरवमतिस्नेहश्चेति । अष्टौ  
 रेतोदोषा इति तनुशुष्कं फेनिलम  
 श्वेतं पृतिपिच्छिलमन्यधातूपहि  
 तमवसादिचेति । सप्तकुष्ठानी  
 तिकपालोदुम्बरमण्डलर्ष्यजिह्व  
 पुण्डरीकसिध्मकाकणकानि ।  
 सप्तपिडका इति शराविकाकच्छ  
 पिकाजालिनी सर्पप्यलजीविनता  
 विद्रधीच । सप्तवीसर्पा इति वात  
 पित्तकफाग्रिकर्दमग्रन्थिसन्निपा  
 ताख्याः । पडतीसाराख्या इति  
 वातपित्तकफसन्निपातभयशोक  
 जाः । पडुदावर्त्ता इति वातमूत्र  
 पूरीपशुकच्छर्दिक्षवथुजाः । पञ्च  
 गुल्मा इति वातपित्तकफसन्निपात  
 रक्तजाः । पञ्चर्षीहृदोषा इति गु  
 ल्मैर्व्याख्याताः । पञ्चकासा इति  
 वातपित्तकफक्षतक्षयजाः । पञ्च  
 श्वासा इति महोर्द्ध्वच्छिन्नतमकक्षु  
 द्राः । पञ्चहिक्रा इति महतीगम्भी  
 राव्यपेताक्षुद्राचान्नजाच । पञ्च  
 तृष्णा इति वातपित्तामक्षयोपसर्गा  
 त्तिकाः । पञ्चछर्दय इति द्विष्टान्न

संयोगजावातपित्तकफसन्निपातो  
 द्वेकात्मिकाश्च । पञ्चभक्तस्यान  
 शनस्थानानीतिवातपित्तकफद्वेपा  
 यासाः । पञ्चशिरोरोगादितिपूर्वादेश  
 मभिसमस्यवातपित्तकफसन्निपा  
 तक्रिमिजाः । पञ्चहृद्रोगादिति  
 शिरोरोगैर्व्याख्याताः । पञ्चपा  
 ण्डुरोगादितिवातपित्तकफसन्निपा  
 तमृद्रक्षणजाः । पञ्चोन्मादादिति  
 वातपित्तकफसन्निपातागन्तुनि  
 मिताः । चत्वारोऽपस्मारादिति  
 वातपित्तकफसन्निपातनिमित्त  
 जाः । चत्वारोक्षिरोगाः चत्वारः  
 कर्णरोगाः चत्वारः प्रतिश्यायाः च  
 त्वारोमुखरोगाः चत्वारोग्रहणीदो  
 षाः चत्वारोमदाः चत्वारोमूर्च्छाद  
 तिअपस्मारैर्व्याख्याताः । चत्वा  
 रः शोषादितिसाहससन्धारणक्षय  
 विषमाशनजाः । चत्वारिक्लेश्या  
 नीतिवीजोपघाताद्धजभङ्गाज्ज  
 रायाः शुक्रक्षयाच्च । त्रयः शोथा  
 श्वेतिवातपित्तश्लेष्मनिमिताः ।  
 त्रीणिकिलासानीतिरक्तताम्रशु  
 क्लानि । त्रिविधलोहितपित्तमि  
 त्यूर्द्ध्वभागमधोभागमुभयभागश्च ।

द्वौज्वरौइतिउष्णाभिप्रायः शीत  
 समुत्थश्चशीताभिप्रायश्चोष्णसमु  
 त्थः द्वौव्रणौइतिनिजश्चागन्तुजश्च ।  
 द्वावायामावितिवाहश्चाभ्यन्तरश्च  
 द्वेगृध्रस्यावितिवाताद्वातकफाच्च ।  
 द्वेकामलेइतिकोष्ठाश्रयाशाखाश्च  
 याच । द्विविधमाममित्यलसको  
 विसूचिकाचेति । द्विविधंवातर  
 क्तमितिगम्भीरमुत्तानश्च । द्विवि  
 धान्यशांसीतिआर्द्राणिशुष्काणि  
 च । एकऊरुष्कंभइतिआमत्रि  
 दोपसमुत्थानः । एकः संन्यासइ  
 ति । त्रिदोषात्मकोमनःशरीरा  
 धिष्ठानसमुत्थः । एकोमहागद  
 इतिअतत्त्वाभिनिवेशः । विंशतिः  
 क्रिमिजातयइतियूकाः पिपीलि  
 काश्चेतिद्विविधावहिर्मलजाः के  
 शादाः लोमादालोमद्वीपाः सौरसा  
 औदुम्बराजन्तुमातरश्चेतिषट्शो  
 णितजाः अन्त्रादाउदरादाहृदयच  
 राः चुरवोदर्भपुष्पाः सौगन्धिकाम  
 हागुदाश्चेतिसप्तकफजाः ककेरुका  
 मकेरुकालेलिहाः सशूलकाः सौसु  
 रादाश्चेतिपञ्चपुरीषजाइति । विं  
 शतिः क्रिमिजातयः । विंशतिः

प्रमेहादिति उदकमेहश्चेक्षुमेहश्चरस  
मेहश्चसान्द्रमेहश्चसान्द्रप्रसादमेह  
श्चशुक्लमेहश्चशुक्लमेहश्चशीतमेह  
श्चशनैर्महश्चासिकतामेहश्चलाला  
मेहश्चेति दशश्लेष्मनिमिताः ।  
आग्नेहश्चकालमेहश्चनीलमेहश्च  
लोहितमेहश्चमज्जिष्ठमेहश्चहरिद्रा  
मेहश्चेति पट्पित्तनिमिताः । वसा  
मेहश्चमज्जमेहश्चहस्तिमेहश्चमधुमे  
हश्चेति चत्वारो वातनिमिता इति  
विंशतिः प्रमेहाः । विंशतिर्योनि  
व्यापद इति वातिकीपैत्तिकीश्ले  
ष्मिकी सान्निपातिकी चेति चतस्रः  
दोषजाः । दूष्यसंसर्गप्रकृतिनिर्दे  
शैरवशिष्टाः षोडशनिर्दिश्यन्ते ।  
तद्यथारक्तयोनिश्चारजस्काचाच  
रणाचातिचरणाचप्राक्चरणाचो  
प्लुताचोदावर्तिनीचकर्णिनीचपु  
त्रघ्नीचान्तर्मुखीचसूचीमुखीच  
शुष्काचवामिनीचपण्डयोनिश्च  
महायोनिश्चेति विंशतिर्योनिव्याप  
दः केवलश्चायमुद्देशः । यथोद्देश  
मभिनिर्दिष्ट इति ।

भवति चात्र ।

विंशकाश्चैककाश्चैव त्रिकाश्चोक्ता

स्य सन्त्रयः । द्विकाश्चाष्टौ चतुष्का  
श्च दशद्वादशपञ्चकाः ॥ चत्वार  
श्चाष्टकावर्गाः पट्कौ द्वौ सप्तकाश्च  
यः । अष्टोदरीये रोगाणामध्याये  
सम्प्रकाशितः ॥ १ ॥

किं यहाँ आठ उदर, आठ  
मूत्राघात, आठ दूधके दोष, आठ वीर्यके  
दोष, सात कुष्ठ, सात पिडका, सात  
वीसर्प, छः अतीसार, छः उदावर्त, पांच  
गुल्म, पांच ग्रीहाके दोष, पांच कास,  
पांचश्वास, पांचहिक्का, पांचतृष्णा, पांच  
छर्द्दी, पांच भोजनके अनशनस्थान,  
पांच शिरके रोग, पांच हृद्रोग, पांच  
पांडुरोग, पांच उन्माद, चार अपस्मार,  
चार अक्षिरोग, चार कर्णरोग, चार  
प्रतिश्याय, चारमुखरोग, चार ग्रहणी  
दोष, चारमद, चारमूर्च्छा, चार शोष,  
चार क्लेब्य,—तीन शोफ, तीन किलास,  
तीन प्रकारका लोहित पित्त,—दो ज्वर,  
दो व्रण, दो आयास, दो गृध्रसी, दो कामला,  
दो प्रकारका आम, दो प्रकारका वातरक्त,  
दो प्रकारके अर्श, एक ऊरुस्तंभ, एक  
सन्यास, एक महागद, बीस प्रकारकी  
क्रिमि जाति, बीस प्रमेह, बीस योनिकी  
व्यापद, ये अड़तालीस रोगाधि करण  
इस संग्रहमें होते हैं उद्दिष्ट किये इनको  
उद्देशके क्रमसे दिखाते हैं कि आठ उद-  
र ये हैं कि वात पित्त कफ सन्निपात ग्रीहा-  
वद्ध छिद्र जलोदर—आठ मूत्राघात ये हैं  
कि वात पित्त कफ सन्निपात अश्मरी

शर्करा शुक्र शोणित इनसे उत्पन्न-आठ दूधके दोष ये हैं कि विवर्ण विगंध विरस पिच्छिल फेनसंघात रूखा गुरु अति-स्निग्ध, आठ वीर्य दोष ये हैं कि तनु शुष्क फेनिल अस्वेत पिच्छिल अन्य धातु मिश्रित अवसादि-सातकुष्ठ ये हैं कि कपाल उदुंबर मण्डल ऋष्य जिह्व पुंडरीक सिध्मकाकणिक-सात पिङ्काये हैं कि शराविका कच्छपिका जालिनी सर्पपी अलजी विनता विद्रधी-सात विसर्प ये हैं कि वात पित्त कफ अग्नि कर्दम ग्रंथि सन्निपात-छः अतीसार ये हैं कि वात पित्त कफ सन्निपात-भय शोफसे पैदा हुये, उदावर्त ये हैं वात मूत्र पुरीष शुक्र छर्दि श्वथु इनसे उत्पन्न-पांच गुल्म ये हैं कि वात पित्त कफ सन्निपात रक्त इनसे उत्पन्न पांच प्लीहाके दोष गुल्म नामके कहे हैं पांच कास ये हैं कि वात पित्त कफ क्षत क्षय इनसे उत्पन्न-महान् ऊर्ध्व छिन्न तमक क्षुद्र ये पांच श्वास हैं-पांच प्रकारकी हिक्का ये हैं-कि महती गंभीरा व्यपेता क्षुद्रा अन्नसे उत्पन्न, ये पांच तृषा हैं-कि वात पित्त आम क्षय उपसर्ग रूप, और पांच छर्दि ये हैं कि द्विष्ट अन्नके संयोगसे और वात पित्त कफ सन्निपात इनकी वृद्धिसे होती हैं, पांच भोजनके अनशनस्थान ये हैं कि वात पित्त कफ द्वेष आयास पांच शिरो-रोग ये हैं कि पूर्व उद्देशकी समस्यासे वात पित्त कफ सन्निपात क्रिमि इनसे उत्पन्न, पांच हृद्रोग शिरो रोगके समान

जानने और पांच पांडुरोग वात पित्त कफ सन्निपात मिट्टिके भक्षणसे होते हैं पांच उन्माद ये हैं कि वातपित्त कफ सन्निपात आगंतु निमित्तसे होते हैं चार अपस्मार वात पित्त कफ सन्निपातसे होते हैं चार अक्षिरोग चार कर्णरोग चार प्रतिश्याय चार मुखरोग चार ग्रहणी दोष चार मद चार मूर्च्छा ये सब अप-स्मारोंसे व्याख्यात हैं चार शोष साहस संधारण क्षय विषम भोजनसे होते हैं चार क्लैव्य ये हैं कि वीर्यका नाश ध्वजा-का भंग जरा शुक्रका क्षय इनसे होते हैं तीन शोफ ये हैं कि वात पित्त कफ निमित्तसे होते हैं-रक्त ताम्र शुक्ल भेदसे तीन किलास हैं-ऊर्ध्वभाग अधोभाग दोनोंभागके भेदसे तीन प्रकारका लोहितपित्त है दो ज्वर ये हैं कि उष्णाभिप्राय, और शीतिसे उत्पन्न, शीताभिप्रायभी उष्णसे उत्पन्न है-दो व्रण ये हैं कि निज और आगंतुसे उत्पन्न-दो आयाम ये हैं कि बाह्य-और आभ्यन्तर-दो गृध्रसी ये हैं कि वातसे और वातकफसे, दो कामला ये हैं कि कोष्ठकी और शाखाश्रय-दो प्रकारका आम यह है कि अलसक और विमूचिका और गंभीर उत्तान भेदसे दो प्रकारका वातरक्त है और आर्द्र शुष्क भेद से दो प्रकारका अर्श होता है-एक ऊरुस्तंभ यह है कि आम त्रिदोषसे उत्पन्न एक संन्यास यह है कि त्रिदोषरूप जो मन शरीर अधिष्ठानसे होता है-एक

महागद यहै कि तत्वोंमें अभि निवे-  
शका न होना—बीस क्रिमियोंकी जाति-  
ये हैं कि यूका और पिपीलिका ये दो  
प्रकारकी बाहरके मलसे होती हैं, केशाद,  
लोमाद, लोमद्वीपा, सौरसा, औदुवरा  
जंतुमातर ये छःशोणितसे पैदा होतेहैं—  
अंत्राद उदराद हृदयचरा चुरवदर्भ  
पुष्प सौगंधिक महा गुद ये सात कफसे  
उत्पन्न होतेहैं—ककेरुक मकेरुक लल्लिह  
सशूलका सौसुराद ये पांच विष्टामें  
उत्पन्न होतेहैं ये बीस क्रिमियोंकी जातिहैं  
बीस प्रमेह ये हैं कि उदक मेह इधुमेह  
रसमेह सांद्रमेह सांद्रप्रसादमेह शुक्ल-  
मेह शुक्रमेह शीतमेह शनैर्मेह सिकतामेह  
लालामेह ये दश कफके निमित्तसे  
होतेहैं—और क्षारमेह कालमेह नील मेह  
लोहित मेह मंजिष्ठामेह हरिद्रामेह ये छः  
पित्तके निमित्तसे होतेहैं और वसामेह  
मज्जामेह हस्तिमेह मधुमेह ये चार वातके  
निमित्तसे होतेहैं—ये बीस प्रमेह हैं—  
बीस योनिकी व्यापद ये हैं कि वातिकी  
पैत्तिकी श्लैष्मिकी सांनिपातिकी, ये  
चार और दोषोंसे दूषितके संसर्ग  
होनेपर प्रकृतिके निर्देशोंसे अवशिष्ट  
सोलहको दिखाते हैं वे ऐसेहैं कि रक्त  
योनि अरजस्का अचरणा अतिचरणा  
ग्राक्चरणा उपश्रुता उदावर्तिनी कर्णिनी  
सुतग्री अंतर्मुखी सूचीमुखी शुष्का  
वामिनी पंडयोनि महायोनि ये बीस  
योनिकी व्यापदहैं यह उद्देश केवल उप-  
देशके अनुसार दिखायाहै इसमें ये

श्लोकहैं कि विंशक एक त्रिक ये तीन २  
कहेंहैं आठ द्विक २ दश चार २—द्वादश  
पांच २ चार अष्टकोंके वर्ग दोषट्क—  
तीन सप्तकोंका अष्टोदरीय रोगाध्याय  
इन रोगोंका प्रकाशकहै ॥ १ ॥

सर्वएवनिजविकारानान्यत्रवात  
पित्तकफेभ्योनिवर्तन्ते । यथा  
शकुनिःसर्वादिशमपिपरिपतन्स्वां  
छायांनातिवर्ततेतथास्वधातुवैष-  
म्यनिमित्ताःसर्वविकारावातपित्त  
कफान्नातिवर्तन्ते । वातपित्तश्ले-  
ष्मणांपुनःसमुत्थानस्थानसंस्थान  
प्रकृतिविशेषानभिसमीक्ष्यतदा  
त्मकानपिचसर्वविकारांस्तानेवोप-  
दिशन्तिबुद्धिमन्त इति ॥ २ ॥

संपूर्णही विकार वात पित्त कफ इनके  
विना नहीं होते हैं जैसे पक्षी संपूर्ण  
दिवसभर उड़ता हुआ अपनी छायाका  
अवलंबन नहीं करता तिसीप्रकार अपनी  
धातुके विषमत्तरूप निमित्तसे हुए संपूर्ण  
विकार वात पित्त कफ इनको नहीं त्याग  
सकते और वात पित्त कफ इनका सम्यक्  
उत्थान स्थान संस्थान वेदना अर्थ नाम  
प्रभाव चिकित्सित विशेषोंको देखकर  
तिनके रूपकेभी संपूर्ण विकारोंको उन्हीं  
नामके बुद्धिमान् कहतेहैं इति ॥ २ ॥

तत्रश्लोकौ ।

स्वधातुवैषम्यनिमित्तजायेविकार

संघावहवःशरीरे। नतेपृथक्पित्त  
कफानिलेभ्यआगन्तवस्त्वेवततो  
विशिष्टाः ॥ ३ ॥

उसमें ये दो श्लोक हैं कि अपनी  
धातुकी विषमताके निमित्तसे जो बहुतसे  
विकारोंके समूह होते हैं वे सब शरीरमें  
पित्त कफ वातसे पृथक् नहीं हैं केवल  
आगंतुही उनसे विशिष्ट हैं ॥ ३ ॥

अगान्तुरन्वेतिनिजंविकारंनिज  
स्तथागंतुरतिप्रवृद्धः। तत्रानुबन्धं  
प्रकृतिंचसम्यक्ज्ञात्वाततःकर्मस  
मारभेत ॥ ४ ॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेरो  
गचतुष्केअष्टोदरीयोनामोऽविंशोऽ  
ध्यायः ॥ १९ ॥

आगंतु अपने विकारका अनुयायी  
होता है और अत्यंत बड़ा हुआ निज-  
विकार आगंतुका अनुयायी होजाता है  
उसमें अनुबन्ध ( संसर्ग ) और प्रकृतिको  
भली प्रकार जानकर उसके अनंतर  
कर्मका प्रारंभ करे ॥ ४ ॥

इति रोगचतुष्केअष्टोदरीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः ।

अथातो महारोगाध्यायं

व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माहभगवानात्रेयः ।

अब महारोगाध्यायका वर्णन करते हैं  
यह भगवान् आत्रेय कहते हैं

चत्वारो रोगा भवन्ति आगन्तुवात  
पित्तश्लेष्मानिमित्ताः । तेषां चतुर्णां  
मपि रोगाणां रोगत्वमेकविधं रूक्  
सामान्यात् । द्विविधा पुनः प्रकृ-  
तिरेषामागन्तुनिजविभागाद्वि-  
विधं चैषामधिष्ठानं मनःशरीरविशे-  
षात् । विकाराः पुनरेषामपरिसं-  
ख्येयाः प्रकृत्यधिष्ठानलिङ्गाय तन-  
विकल्पविशेषाणामपरिसंख्येय-  
त्वात् । मुखानितुखल्वगन्तोः  
नखदशनपतनाभिचाराभिशापा  
भिषङ्गव्यध्वन्धपीडनरज्जुदहन  
मन्त्राशनिभूतोपसर्गादीनि । निजस्य तु  
मुखं वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्यम् । द्व-  
योस्तु खलु आगन्तुनिजयोः प्रेरणसा-  
त्म्येन्द्रियार्थसंयोगः प्रज्ञापपराधः प-  
रिणामश्चेति । सर्वे पितुखल्वेतेऽभि-  
प्रवृद्धाश्चत्वारो रोगाः परस्परमनुबन्ध-  
न्ति न चान्योन्यसन्देहमापद्यन्ते ।  
आगन्तुर्हिव्यथा पूर्वसमुत्पन्नोज-  
घन्यं वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्यमा-  
पादयति । निजे तु वातपित्तश्लेष्मा-  
णः पूर्ववैषम्यमापद्यन्ते जघन्यं व्य-  
थामभिनिर्वर्तयन्ति । तेषां त्रया-  
णामपि दोषाणां शरीरे स्थानविभा-

गउपेक्ष्यते । तद्यथावस्तिःपुरी  
पाथानंकटिःसक्थिनीपादावस्थी  
निवातस्थानानि । तत्रापिपक्का  
शयोविशेषेणवातस्थानं । स्वेदो  
रसोलसीकारुधिरमामाशयश्चपित्त  
स्थानानितत्रापिआमाशयौविशे  
पेणपित्तस्थानम् । उरःशि  
नेर्ग्रीवापर्वाण्यामाशयोमेदश्चश्ले  
ष्मणःस्थानानि । तत्रापिउदरो  
विशेषेणश्लेष्मणःस्थानम् । स  
र्वशरीरचारास्तुवातपित्तश्लेष्मा  
णोहिसर्वस्मिन्शरीरेकुपिताकु  
पिताःशुभाशुभानिकुर्वन्ति । प्रकृ  
तिभूताःशुभानिउपचयवलवर्ण  
प्रसादादीनि । अशुभानिपुनः  
विकृतिमापन्नानिविकारसंज्ञ  
कानितत्रविकाराःसामान्यजाना  
नात्मजाश्चतत्रसामान्यजाःपूर्वम  
ष्टोदरीयेव्याख्याताः । नानात्म  
जास्तिवहाध्यायेऽनुव्याख्यास्या  
मः । तद्यथाअशीतिर्वातविकाराः  
चत्वारिंशत्पित्तविकाराःविंश  
तिःश्लेष्मविकाराः । तत्रादौवा  
तविकाराननुव्याख्यास्यामः ।  
तद्यथानखभेदश्चविपादिकाचपा

दशूलश्चपादभ्रंशश्चसुप्तपादताच  
वातखुडुताचगुल्फग्रहश्चपिण्ड  
कोद्वेष्टनश्चगृध्रसीचजानुभेदश्च,  
जानुविश्लेषश्च, ऊरुस्तम्भश्च, ऊ  
रुसादश्च, पाङ्गुल्यश्च, गुदभ्रंशश्च,  
गुदार्त्तिश्च, वृषणोत्क्षेपश्च, शेफ  
स्तम्भश्च, वङ्गणानाहश्च, श्रोणि  
भेदश्च; विड्भेदश्च, उदावर्त्तश्च,  
खञ्जत्वश्च, कुञ्जत्वश्च, वामनत्व  
श्च, त्रिकग्रहश्च, पृष्ठग्रहश्च, पा  
र्श्वामर्दश्च, उदरवेष्टश्च, हन्मोहश्च  
हृदद्रवश्च, वक्ष-उपरोधश्च, वक्ष-उद्ध  
र्पश्चबाहुशोपश्च, ग्रीवास्तम्भश्च, म  
न्यास्तम्भश्च, कण्ठोद्ध्वंसश्च, हनु  
स्तम्भश्च, ओष्ठभेदश्च, दन्तभेदश्च,  
दन्तशैथिल्यश्च, मूकत्वश्च, वा  
क्सङ्गश्च, कपायास्यताच, मुख  
शोपश्च, अरसज्ञताच, घ्राणनाश  
श्च, कर्णशूलश्च, अशब्दश्रवण  
श्च, उच्चैःश्रुतिश्च, बाधिर्ग्यश्च, व  
र्त्मस्तम्भश्च, वर्त्मसङ्कोचश्च, ति  
मिरश्च, अक्षिशूलश्च, अक्षिव्यु  
दासश्च, भ्रूव्युदासश्च, शंखभेदश्च,  
ललाटभेदश्च, शिरोरुक्च, केश  
भूमिस्फुटनश्च, अर्दितश्च, एका



ङ्गरोगश्च, सर्वाङ्गरोगश्च, पक्षवध  
श्च, आक्षेपकश्च, दण्डकश्च, श्रम  
श्च, भ्रमश्च, वेपथुश्च, जृम्भाच,  
विषादश्चातिप्रलापश्च, ग्लानिश्च,  
रौक्ष्यञ्च, पारुष्यञ्च, श्यावारुणा  
वभासताच, अस्वप्नश्च, अनवस्थि  
तत्वञ्चेत्यशीतिर्वातविकाराः १

किं चार रोग होतेहैं आगंतु वात पित्त कफ  
इननिमित्तोंसे उत्पन्न उन चारों प्रकारकेभी  
रोगोंमें रोगत्व एक प्रकारका रोग  
सामान्य ( जाति ) रूप है—और इनकी  
प्रकृति दो प्रकारकी आगंतु और निजके  
विभागसे होतीहै इनके अधिष्ठानभी मन  
और शरीरके विशेषसे दो प्रकारकेहैं—  
और इनकेविकार तो गिनतीके अयोग्यहैं  
क्योंकि प्रकृति अधिष्ठानभी लिंग आयु  
तन विकल्प इनके विशेष असंख्यहैं  
और आगंतुके मुख ( कारण ) तोयेहैं  
कि नख डसना पतन अभिचार अभि-  
शाप अभिपंग बंधना बंध पीडन रज्जु  
निश्चित दहन मंत्र वज्र भूतोपसर्ग  
आदिहैं निजका मुखतो वात पित्त कफकी  
विषमता है और दोनों आगंतु निजके  
निमित्ततो प्रेरण असात्म्य इंद्रिय अर्थका  
संयोग प्रज्ञापराध और परिणामहै—  
और संपूर्णभी अत्यंत वृद्ध ये चारों  
रोग परस्पर अनुबंध करतेहैं और पर-  
स्पर संदेहको प्राप्त नहीं होते आगंतु  
तो यथा पूर्वक उत्पन्न होकर वात पित्त  
कफ इनकी सूक्ष्म विषमताको करताहै

निज रोगमें तो वात पित्त कफ ये पहिले  
विषमताको प्राप्त होतेहैं और सूक्ष्मही  
पीडाको करतेहैं उन तीनोंभी दोषोंके  
शरीरमें स्थानके विभागको कहतेहैं वह  
ऐसे हैं कि वास्ति मलका स्थान कटि  
सक्थि पाद अस्थि ये वातके स्थानहैं  
इसमेंभी विशेषकर पक्वाशय वातका  
स्थानहै स्वेद रस लसीका रुधिर आमा-  
शय ये पित्तके स्थानहैं इसमेंभी आमाशय  
विशेषकर पित्तका स्थान है उस शिर  
ग्रीवा पर्व आमाशय मेदा ये श्लेष्माके  
स्थानहैं इसमेंभी उदर विशेषकर कफका  
स्थानहै सब शरीरमें विचरनेहारे वात  
पित्त कफ सब शरीरमें कुपित अकुपित  
हुए शुभ अशुभोंको करतेहैं और प्रकृति  
भूत हुए उपचय बल वर्ण प्रसाद आदि  
शुभोंको और विकारको प्राप्त हुये  
विकार संज्ञक अशुभोंको करते हैं  
उनमें विकार सामान्यज और नानात्मज  
भेदसे दो प्रकारके हैं उनमें सामान्यज  
तो पहिले अष्टोदरीय अध्यायमें कह आये  
नानात्मजोंको तो इस अध्यायमें वर्णन  
करतेहैं वे ऐसे हैं अस्सी वातके विकारहैं  
चालीस पित्तके विकारहैं—बीस कफके  
विकारहैं—उनमें प्रथम वातके विकारोंका  
वर्णनकरतेहैं कि वे ये हैं नखभेद विषादिका  
पादशूल पादभ्रंश सुप्तपादता वात खुड्कुता  
गुल्फग्रह पिंडिकोद्वेष्टन गृध्रसी जानुभेद  
जानुविश्लेष ऊरुस्तंभ ऊरुसाद पांगुल्य  
गुदभ्रंश गुदार्ति वृषणोत्क्षेप शेफस्तंभ  
वंक्षण आनाह श्रोणिभेद विड्भेद उदावर्त  
खंजत्व कुब्जत्व वामनत्व त्रिकग्रह पृष्ठ

ग्रह पार्श्वमर्द—उदर वेष्ट हन्मोह ह-  
द्राव छातीका उपरोध और उद्धर्ष—बाहु  
शोष ग्रीवास्तंभ मन्यास्तंभ कंठोद्धंस  
हनुताडन ओष्ठभेद दंतभेद और शैथिल्य  
मूकत्व वाक्संग कषायास्यता मुखशोष  
रसकी अज्ञता गंधकी अज्ञता घ्राण नाश  
कर्णशूल अशब्द श्रवण ऊंचा श्रवण  
बधिरता वत्सस्तंभ वत्स संकोच तिमिर  
अक्षिशूल अक्षिव्युदास भ्रूव्युदाह शंख  
भेद ललाटभेद शिरपीडा केश भूमिका  
स्फुटन अर्दित एकांग रोग सर्वांग रोग  
पक्षवध आक्षेपक दंडक श्रम भ्रम कंप  
जृम्भा विषाद अतिप्रलाप ग्लानि रूक्षता  
पारुष्य श्याव और अरुण कांति अस्वप्न  
और अनवस्थिति—ये अस्सी वातके  
विकारहैं ॥ १ ॥

वातविकाराणामपरिसंख्येयाना  
माविष्कृततमाव्याख्याताःसर्वेष्व  
पिखल्वेतेषुवातविकारेषुअन्येषु  
चानुक्तेषुवायोरिदमात्मरूपमपरि  
णामिकर्मणश्चस्वलक्षणंयदुपल  
भ्यतदवयववाविमुक्तसन्देहावात  
विकारमेवाध्यवस्यन्तिकुशलाः २

वातके विकार गिननेके अयोग्यहैं  
इससे वे वर्णन कियेहैं जो अत्यंत प्रगटहैं  
और संपूर्णोंभी इन वातके विकारोंमें  
और अनुक्त अन्योमें वायुका यह जो  
अपरिणामि रूपहै और कर्मका स्वल-  
क्षण रूपहै जिसको जानकर वा उसके

अवयवको देखकर संदेह रहित कुशल  
वैद्य वात विकारकोही निश्चय करतेहैं २॥

तद्यथा ।

रौक्ष्यंलाघवंवैषद्यं, शैत्यंगतिरमू  
र्तत्वञ्चेतिवायोरात्मरूपाणि । ए  
वंविधत्वाच्चकर्मणश्चस्वलक्षणमिद  
मस्यभवति तंतंशरीरावयवमा  
विशतःस्रंसंभंशव्यासाङ्गभेदसाद  
हर्ष—तर्षावर्त्त—मर्दकम्पचालतो  
दव्यध्वेष्टभङ्गास्तथाखरपरुष  
विषदसुषिरतारुणकषायविरस  
ता—शोषशूलसुप्तिसंकुचनस्तम्भ  
नानिवायोःकर्माणितैरन्वितंवात  
विकारमेवाध्यवस्येत् ॥ ३ ॥

वह ऐसे हैं कि रूक्षता लाघव विश-  
दता शीतता गमन अमूर्तता ये वायुके  
आत्म ( अपने ) रूपहैं और इसी प्रका-  
रके होनेसे कर्मकेभी येहीहैं यह इस  
वायु वा कर्मका स्वलक्षणहै कि तिस २  
शरीरके अवयवमें प्रविष्ट होनेसे स्रंस  
भ्रंश व्यास अंग भेदसाद हर्ष तृषा आवर्त  
मर्दन कंप चलन तोद व्यध वेष्टन भंग  
और तैसेही खर परुष विषद सुषिर  
अरुण कषाय विरस शोष शूल सुप्ति  
संकोच स्तंभन ये वायुके कर्म हैं इनसे  
युक्त मनुष्यको देखकर वात विकारकाही  
निश्चय करै ॥ ३ ॥

तमधुराम्ललवणस्निग्धोष्णैरुपक्रमैरुपक्रमेत । स्वेदस्नेहास्थापनानुवासननस्तःकर्मभोजनाभ्यङ्गोत्सादनपरिषेकादिभिर्वीर्यहरैर्मात्राकालश्च प्रमाणीकृत्यास्थापनानुवासनन्तुसर्वथोपक्रमेभ्योवातेप्रधानतममन्यन्तेभिषजः ॥ ४ ॥

उसका मधुर अम्ल लवण स्निग्धोष्णकी चिकित्सासे उपक्रम करे स्वेदस्नेहास्थापन अनुवासन और नासिकासे कर्म भोजन अभ्यंग उत्सादन परिषेकादि जो वातहरहैं उनसे करै मात्राके कालको प्रमाण करके आस्थापन और अनुवासनको तो सर्वथा उपक्रमोंसे वातमें वैद्य प्रधान मानते हैं ॥ ४ ॥

तद्ध्यादितएवपकाशयमनुप्रविश्य केवलवैकारिकं वातमूलं छिनत्ति । तत्रावजिते वातेऽपिशरीरान्तर्गता वातविकाराः प्रशान्तिमापद्यन्ते । यथावनस्पतेर्मूलेच्छिन्नेस्कन्धशाखावरोहकुसुमफलपलाशादीनां नियतोविनाशस्तद्वत् ॥ ५ ॥

तिससे आदिमें ही वह औषध पकाशयमें प्रवेश करिके—केवल वैकारिक वातके मूलको छेदन करताहै—और तब वात विकारके नष्ट होनेपर शरीरके अन्तर्गत सब वातके विकार शान्तिको

प्राप्त होतेहैं—जैसे वनस्पतिका मूल छेदन होनेपर—स्कन्ध—शाखा—शाखाओंका अवरोह—पुष्प—फल—आदिका विनाश नियमसे होताहै ॥ ५ ॥

पित्तविकाराश्चत्वारिंशदतऊर्ध्वं व्याख्यास्यन्ते । तद्यथा—ओषध्, पुषध्, दाहध्, दवध्, धूमकध्, अम्लकध्, विदाहध्, अन्तर्दाहध्, अंसदाहध्, उष्माधिक्यध्, अतिस्वेदध्, अङ्गगन्धध्, अङ्गावयवदरणध्, शोणितक्लेदध्, मांसक्लेदध्, त्वग्दाहध्, मांसदाहध्, त्वङ्मांसदरणध्, चर्मदरणध्, रक्तकोठाध्, रक्तविस्फोटाध्, रक्तपित्तध्, रक्तमण्डलानिच, हरितत्वध्, हारिद्रत्वध्, नीलिकाच, कक्षाच, कायलाच, तिक्तास्यताच, पूतिमुखताच, तृष्णायाआधिक्यध्, अतृप्तिध्, आस्यपाकध्, गलपाकध्, अक्षिपाकध्, गुदपाकध्, मेदूपाकध्, जीवादानध्, तमःप्रवेशध्, हरितहारिद्रमूत्रनेत्रवर्चस्त्वश्चेतिचत्वारिंशत्पित्तविकाराः । पित्तविकाराणामपरि-

संख्ययानामाविष्कृततमाव्या

ख्याताभवन्ति ॥ ६ ॥

तैत्तिरीय पित्तके चालीस विकार इससे आगे वर्णन करतेहैं वे ऐसे हैं कि श्लेष्म-दाह-क्षवथु-धूमक-अम्लक विदाह-अन्तर्दाह-अंशदाह-ऊष्माकी अधिकता-अतिस्वेद-अंगगंध-अङ्गावयव कारण-शोणित-क्लेद, मांसक्लेद-त्वचाका दाह-मांस दाह-त्वचा और मांसका-दरण-चर्मका दरण-रक्तको-रक्तविस्फोट-रक्तपित्त-रक्तमण्डल-हरितता-हरिद्रत्व-नीलीका कक्षा-कामला-तिक्तमुख-मुखमें दुर्गन्ध-तृष्णाकी अधिकता अतृप्ति मुखका पाक-गलपाक-अक्षिपाक-गुरुपाक-लिङ्गपाक-जीवादान-तमकाप्रवेश हरित हृलदीके समान नेत्र मूत्र मल इनका होना, ये चालीस-पित्तके विकारहैं असंख्य पित्त विकारोंके मध्यमें जो प्रकटहैं वे वर्णन कियेहैं ॥ ६ ॥

सर्वेष्वपि खल्वेतेषु पित्तविकारेष्वन्येषु चानुक्तेषु पित्तस्येदमात्मरूपमपरिणामिकर्मणश्च स्वलक्षणं यत्तदुपलभ्यतदवयवं वा विमुक्तसन्देहाः पित्तविकारमेवाध्यवस्यन्ति कुशलाः ॥ ७ ॥

संपूर्णभी इन पित्तोंके विकारोंमें और अन्योमें पित्तका यह अपरिणामी आत्मरूप-और कर्मका-स्वलक्षण रहताहै-जिसको उसके अवयवको-जानकर-

संदेह रहित कुशल वैद्य-पित्त विकारकाही निश्चय करतेहैं ॥ ७ ॥

तद्यथा ।

औष्ण्यं तैक्ष्ण्यं लाघवमनतिस्नेहो वर्णश्च शुक्लारुणवर्जगन्धश्च विस्रो रसौ च कटुकाम्लौ पित्तस्यात्मरूपाणि । एवं विधत्वा च कर्मणः स्वलक्षणमिदमस्य भवति । तंतं शरीरावयवमाविशतो दाहोष्मपाकस्वेदक्लेदकोथस्त्रावरागाः यथास्वश्च गन्धवर्णरसादिभिर्निर्वर्तनं पित्तस्य कर्माणि तैरन्वितं पित्तविकारमेवाध्यवस्येत् ॥ ८ ॥

वह ऐसे हैं कि उष्णता-तीक्ष्णता-लघुता अत्यन्त-स्नेहका अभाव-शुक्ल-रक्तसे भिन्न-वर्ण-और विस्रगंध कटुक-अम्ल-रसहों-ये पित्तके आत्मरूप हैं-इस प्रकार-कर्मके होनेपर-यह पित्तका स्वलक्षण होताहै-कि तिस तिस शरीरके अवयवमें-प्रविष्ट हुए पित्तसे दाह-ऊष्मा-पाक-स्वेद-क्लेद-कोथ-कण्डू-स्त्राव-राग और यथायोग्य-गन्धवर्ण-रसोंका होना ये पित्तके कर्म हैं इनके सम्बन्धसे-पित्त विकार काही निश्चय करै ॥ ८ ॥

तं धुरतिक्रपायशीतैरुपक्रमैरुपक्रमे तस्नेहविरेकप्रदेहपरिषेकाभ्यङ्गावगाहादिभिः पित्तहरैर्मात्रां

कालञ्चप्रमाणीकृत्य। विरेचनन्तु  
सर्वोपक्रमेभ्यः पित्ते प्रधानतमं मन्य  
न्ते भिषजः ॥ ९ ॥

उसकी-मधुर-तिक्त-कषाय-शीतके  
उपक्रमोंसे चिकित्सा करे-और स्नेह विरे-  
चन-प्रदेह-परिपेक अभ्यंग-आदि पित्त  
हारक पदार्थोंसे मात्रा और कालके  
प्रमाणसे विरेचनको तो सब उपक्रमोंसे  
पित्तके विषे अत्यन्त प्रधान वैद्य-मानते  
हैं ॥ ९ ॥

तद्ध्यादित एवामाशयमनुप्रविश्यके  
वलंवैकारिकं पित्तमूलञ्चापकर्षति  
तत्रावजिते पित्तेऽपिशरीरान्तर्ग-  
ताः पित्तविकाराः प्रशान्तिमापद्य-  
न्ते । यथा श्रौव्यपोढेकेवलमग्नि  
गृहञ्च शीतं भवति तद्वत् ॥ १० ॥

वह आदिसेही आमाशयमें प्रविष्ट  
होकर केवल विकारके पित्तमूलको नष्ट  
करताहै आमाशयमें पित्तके नाश होनेपर  
शरीरके अन्तर्गत पित्तके विकार उस  
प्रकार शान्तिको प्राप्त होते हैं-जैसे अ-  
ग्निके नाश होनेपर केवल अग्निका घर  
शीतल हो जाताहै ॥ १० ॥

श्लेष्मविकाराश्च विंशतिरत ऊर्ध्व-  
व्याख्यास्यन्ते । तद्यथा-तृप्ति  
श्च, तन्द्राच, निद्राधिक्यश्च, स्तै-  
मित्वश्च, गुरुगात्रताच, आलस्य  
श्च, मुखमाधुर्यश्च, मुखस्त्रावश्च,

उद्गारश्च, श्लेष्मोद्गरणश्च, मल  
स्याधिक्यश्च, कण्ठोपलेपश्च, व-  
लाशश्च, हृदयोपलेपश्च, धमनी  
प्रतिचयश्च, गलगण्डश्च, अतिस्थौ-  
ल्यश्च, शीताग्निताच, उदरदश्च,  
श्वेतावभासताच, श्वेतमूत्रनेत्रव-  
र्चस्त्वञ्चेति विंशतिः श्लेष्माधिका-  
राः ॥ ११ ॥

कफके विकारतो- बीस इससे आगे  
कहते हैं वे ऐसे हैं कि तृप्ति-तन्द्रा-  
निद्राका अधिक होना-स्तैमित्य-शरीरका  
भारीपन-आलस्य-मुखमीठा रहना-  
मुखस्ताव-उद्गार-श्लेष्मोद्गार-अधिकमल  
कंठका उप लेप वलास हृदयोपलेप-  
धमनीका प्रतिचय ( वृद्धि ) गलगण्ड  
अतिस्थूलता शीताग्नि उदरद श्वेतावभासता  
मूत्र नेत्र मल इनका स्वेद होना ये बीस  
कफके विकार हैं ॥ ११ ॥

श्लेष्मविकाराणामपरिसंख्येया  
नामा विष्कृततमा व्याख्याताः ।  
सर्वेष्वपि तु खल्वेतेषु श्लेष्मविकारे-  
ष्वन्येषु चानुक्तेषु श्लेष्मण इदमा-  
त्मरूपमपरिणामिकर्मणश्च स्वल-  
क्षणं यदुपलभ्यते तदवयवं वा विमु-  
क्तसन्देहाः श्लेष्मविकारमध्यवस्य-  
न्ति कुशलाः ॥ १२ ॥

गणनाके अयोग्य कफके विकारोंमें  
वे वर्णन किये हैं जो अत्यन्त प्रकट हैं-

संपूर्ण इन कफके विकारोंमें और अन्य जो नहीं कहें उनमें कफका यह अप-  
रिणामि अपना रूप और कर्मका स्वल-  
क्षण जो वह मिले वा उसका अवयव  
मिले उसको मुक्त संदेह वैद्य श्लेष्म  
विकारही निश्चय करतेहैं ॥ १२ ॥

नचथा—श्वेत्यशैत्यगौरवमाधुर्य  
मात्सर्ग्याणिश्लेष्मणआत्मरूपा  
ण्येवंविधत्वाच्चकर्मणःस्वलक्षण  
मिदमस्यभवति । तंतंशरीरावय  
वमाविशतः श्वेत्यशैत्यकण्डूस्थै  
र्यगौरवस्नेहस्तम्भसुतिक्लेदोपदेह  
बन्धमाधुर्यचिरकारित्वानिश्ले  
ष्मणःकर्माणितैरन्वितंश्लेष्मवि  
कारमेवाध्यवस्येत् ॥ १३ ॥

वह ऐसेहैं कि स्नेह शीत शुक्लता  
गौरव मधुरता मंदता ये कफके आत्म  
रूपहैं इसी प्रकारका होनेसे कर्मका  
स्वलक्षण यही होताहै तिस २ शरीरके  
अवयवमें प्रविष्ट होते हुये कफके श्वेत  
शीत कंडू स्थिरता गौरव स्नेह स्तंभ  
सुप्ति क्लेद उपदेह बंध माधुर्य चिर  
कारी ये कर्म होतेहैं उनसे युक्त रोगमें  
कफके विकारकाही निश्चय करतेहैं ॥ १३ ॥

तंकटुकतिककषायतीक्ष्णोष्णरू  
क्षैरुपक्रमैरुपक्रमेतस्वेदनवमनशि  
रोविरेचनव्यायामादिभिःश्लेष्म

हरैर्मात्रांकालश्चप्रमाणीकृत्य ।  
वमनन्तुसर्वोपक्रमेभ्यःश्लेष्मणिप्र  
धानतममन्यन्तेभिपजः ॥ १४ ॥

उसकी कटु तिक्त कषाय तीक्ष्ण उष्ण  
रूक्ष इन उपक्रमोंसे चिकित्साकरै—स्वेद  
वमन शिरका विरेचन व्यायाम आदि  
जो कफहारीहैं उनसे मात्रा कालके  
प्रमाणसे करै—संपूर्ण उप क्रमोंसे वम-  
नको तो वैद्य अत्यंत प्रधान कफमें  
मानतेहैं ॥ १४ ॥

तद्ध्यादितएवामाशयमनुप्रविश्य  
केवलवैकारिकंश्लेष्ममूलमपकर्ष  
ति । तत्रावजितेश्लेष्मण्यपिशरी  
रान्तर्गताःश्लेष्मविकाराःप्रशा  
न्तिमापद्यन्ते । यथाभिन्नेकेदा  
रसेतौशालियवपष्टिकादीन्यभि  
ष्यन्त्यमानानिअम्भसाप्रशोपमा  
पद्यन्तेतद्वदिति ॥ १५ ॥

वह आदिसे ही आमाशयमें प्रविष्ट  
होकर केवल विकारकेही कफके  
मूलको नष्ट करताहै उसमें श्लेष्मके  
नष्ट होनेपर शरीरके अंतर्गत कफके  
विकार ऐसे शांतिकी प्राप्त होतेहैं जैसे  
केदार ( खेत ) के सेतुके भेद होनेपर  
शालि यव सांठी आदि जलसे तरीकी  
पायकर जलसे सूख जातेहैं इति ॥ १५ ॥

भवन्तिचात्र ।

रोगमादौपरीक्षेतततोऽनन्तरमौष

धम् । ततःकर्मभिपक्षश्चाज्ज्ञान  
पूर्वसमाचरेत् ॥ १६ ॥

इसमें ये श्लोक हैं कि पहिले रोगकी  
परीक्षा करै फिर औषध फिर कर्म  
फिर वैद्य ज्ञानपूर्वक चिकित्सा करै १६

यस्तुरोगमविज्ञायकर्माण्यारभते  
भिपक्ष । अप्यौषधविधानज्ञस्त  
स्यसिद्धिर्यदृच्छया ॥ १७ ॥

जो रोगके बिना जाने कर्मका प्रारंभ  
करता है औषधियोंकी विधिके ज्ञाताभी  
उस वैद्यकी सिद्धि यदृच्छासे होती है  
अर्थात् हो वा न हो ॥ १७ ॥

यस्तुरोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोवि  
दः । देशकालप्रमाणज्ञस्तस्य  
सिद्धिरसंशयम् ॥ १८ ॥

जो रोग विशेषका ज्ञाता है और सब  
वैद्यके कर्मोंको जानता है और देश काल  
प्रमाणका ज्ञाता है उसकी सिद्धि निस्सं-  
देह होती है ॥ १८ ॥

तत्रश्लोकाः ।

संग्रहः प्रकृतिर्देशो विकारमुखमी  
रणम् । असन्देहोऽनुबन्धश्चरोगा  
णांसम्प्रकाशितः ॥ १९ ॥

उसमें ये श्लोक हैं कि संग्रह प्रकृति  
देश विकार मुख ईरण असंदेह अनुबन्ध  
ये सब रोगोंके कहे हैं ॥ १९ ॥

दोषस्थानानि रोगाणां गणानाना

त्मजाश्रये । रूपं पृथक्का दोषाणां  
कर्मचापरिणामियत् ॥ २० ॥

दोषोंके स्थान रोगोंके समूह और  
जो नाना प्रकारसे होते हैं वे पृथक् २  
दोषोंका रूप अपरिणामि जो कर्म हैं २०

पृथक्तेन च दोषाणां निर्दिष्टाः समुप  
क्रमाः । सम्यक्महतिरोगाणाम  
ध्यायेत त्वदर्शना ॥ २१ ॥

इति अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते  
रोगचतुष्के महारोगाध्यायो नाम विं  
शोऽध्यायः समाप्तः ।

और पृथक् दोषोंकी चिकित्सा ये सब  
महारोगाध्यायमें तत्त्वके द्रष्टा पुनर्वसुने  
भलीप्रकार वर्णन किये हैं ॥ २१ ॥

इति रोगचतुष्के महारोगाध्यायः समाप्तः ॥ २० ॥  
समाप्तम्, रोगचतुष्कम् ।

एकविंशोऽध्यायः ।

अथातोऽष्टौ निन्दितीयमध्यायं  
व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माह भगवान् आत्रेयः ।

इसके अनंतर अष्टौ निन्दितीय  
अध्यायका वर्णन करते हैं यह भग-  
वान् आत्रेय कहते हैं ॥

इह खलु शरीरमधिकृत्याष्टौ पुरुषा  
निन्दिता भवन्ति । तद्यथा—अति  
दीर्घश्चातिह्रस्वश्चातिलोमाचालो

मात्रातिकृष्णश्चातिगौरश्चातिस्थूलश्चातिकृशश्चेति ॥ १ ॥

किं यहां निश्चयसे शरीरके अधिकारके विषय, आठ पुरुष निन्दित कियेहैं वे ये हैं कि अतिदीर्घ अतिह्रस्व अतिलोम अलोम अतिकृष्ण अतिश्वेत अतिस्थूल अतिकृश ॥ १ ॥

तत्रातिस्थूलकृशयोर्भूयएवापरे निन्दितविशेषाभवन्ति । अतिस्थूलस्य तावदायुपोहासः जरोपरोधः कृच्छ्रव्यवायतादौर्बल्यदौर्गन्ध्यस्वेदाबाधः क्षुदतिमात्रपिपासातियोगश्चेति भवन्त्यष्टौ दोषाः २

उनमें अतिस्थूल और अतिकृशमें फिर अन्यभी निर्माणके विशेष होतेहैं अति स्थूलके तो अवस्थाका हास वेगका उपरोध कष्टसे व्यवाय दुर्बलता दुर्गन्ध स्वेदोंका होना क्षुधा अधिक अत्यंत पिपासाका योग ये आठ दोष होतेहैं ॥ २ ॥

तदतिस्थौल्यमतिसंपूरणादुरुमधुरशीतस्निग्धोपयोगादव्यायामादव्यवायाददिवास्वप्नाद्धर्षनित्यत्वादचिन्तनाद्रीजस्वभावाच्चोपजायन्ते ॥ ३ ॥

वह अतिस्थूलता, अतिसंपूरणतासे और गुरु मधुर शीत स्निग्ध इनके

उपयोगसे अव्यायामसे अव्यवायसे दिनमें शयन और आनंद इनके नित्य करनेसे चिंताके अभावसे बीजके स्वभावसे होतीहै ॥ ३ ॥

तस्यातिमात्रमेदस्विनोमेदएवोपचीयतेनेतरेधातवस्तस्मादस्यागुपोहासः, शैथिल्यात्सौकुमार्याद्गुरुत्वाच्चमेदसो जरोपरोधः, शुक्रावहुत्वान्मेदसावृतमार्गत्वात्कृच्छ्रव्यवायतादौर्बल्यमसमत्वाद्धातूनां, दौर्गन्ध्यमेदो दोषान्मेदसः स्वभावत्वात्स्वेदलत्वाच्चमेदसः, श्लेष्मसंसर्गाद्विष्यन्दित्वाच्च बहुत्वाद्व्यायामासहत्वात्स्वेदाबाधः, तीक्ष्णाग्नित्वात्प्रभूतकोष्ठवायुत्वाच्चक्षुदतिमात्रपिपासातियोगश्चेति ॥ ४ ॥

अत्यंत मेदासे युक्त उसके शरीरमें जैसे मेदाही बढ़तीहै वैसे अन्य धातु नहीं बढ़ते तिससे इसकी अवस्थाका हास (अल्पता) होताहै शिथिलता सुकुमारता गुरुतासे मेदाकी जराका उपरोध होताहै शुक्रकी अधिकता न होनेसे मेदासे मार्गोंके रुकनेसे कृच्छ्रसे व्यवायता होतीहै धातुओंकी विषमता होनेसे दुर्बलता और मेदाके दोषसे स्वभावसे स्वेदल होनेसे दुर्गन्धि मेदामें कफके संसर्गसे विष्यादि होनेसे अधिक और व्यायामको न सहने



हारी होनेसे स्वेदका आबाध और तीक्ष्ण अग्नि होनेसे कोष्ठमें वायुके विस्तारसे अत्यंत क्षुधा अत्यंत पिपासा होतीहै ५॥

भवन्तिचात्र ।

मेदसावृतमार्गत्वाद्वायुःकोष्ठेविशेषतः । चरन्सन्धुक्षयत्यग्निमाहारंशोपयत्यपि ॥ ५ ॥

इसमें ये श्लोकहैं कि मेदासे मार्गोंके रुकनेसे विशेषकर कोष्ठमें चरता हुआ वायु अग्निका अधिक ज्वलन करताहै और आहारकोभी शुष्क कर देताहै ५

तस्मात्सशीघ्रंजनयत्याहारश्चावकांक्षति । विकारांश्चाश्नुतेघोरान्किञ्चित्कालव्यतिक्रमात् ॥ ६ ॥

तिससे वह शीघ्र क्षुधाको करताहै और भोजनको चाहताहै और कुछ काल तक व्यतिक्रम करनेसे घोर विकारोंको भोगता है ॥ ६ ॥

एतावुपद्रवकरौविशेषादग्निमारुतौ । एतौहिदहतःस्थूलंवनदावोवनंयथा ॥ ७ ॥

जिससे ये अग्नि और वात दोनों विशेषकर उपद्रवके कर्ताहैं ये स्थूलको इस प्रकार दग्ध करतेहैं जैसे वनकी अग्नि वनकी दग्ध करतीहै ॥ ७ ॥

मेदस्यतीवसंवृद्धेसहसैवानिलाद

यः । विकारान्दारुणान्कृत्वानाशयन्त्याशुजीवितम् ॥ ८ ॥

मेदाके अत्यंत बढ़नेपर वात आदि शीघ्रही दारुण विकारोंको करके जीवितको नष्ट कर देतेहैं ॥ ८ ॥

मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिगुदरस्तनः । अयथोपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूलउच्यते ॥ ९ ॥

मेदा और मांसके अत्यंत बढ़नेसे चलायमान है स्फिक् उदरका शब्द जिसका और वृथा बढ़ाहै उत्साह जिसका ऐसा मनुष्य अति स्थूल कहाताहै ॥ ९ ॥

इतिमेदस्विनोदोपाहेतवोरूपमेव च । निर्दिष्टवक्ष्यतेवाच्यमतिकाश्च्योऽप्यतःपरम् ॥ १० ॥

ये मेदस्वीके दोष हेतु और रूप दिखायेहैं इससे परे अति कृशतामें जो वक्तव्य है उसको कहतेहैं ॥ १० ॥

सेवारूक्षान्नपानानांलंघनंप्रमिताशनम् । क्रियातियोगःशोकश्चवेगनिद्राविनिग्रहः ॥ ११ ॥

कि रूक्ष अन्न जलका सेवन लंघन प्रमित भोजन क्रियाओंका अभियोग शोक-वेग और निद्राका विनिग्रह ॥ ११ ॥

रूक्षस्योद्वर्त्तनंस्नानस्याभ्यासःप्रकृतिर्जरा । विकारानुशयःक्रोधःकुर्वन्त्यतिकृशंनरम् ॥ १२ ॥

रूक्षका उद्वर्तन स्नानका अभ्यास  
प्रकृति जरा विकारोंका होना क्रोध-ये  
सब मनुष्योंको अत्यंत कृश करते हैं ॥ १२ ॥

व्यायाममति सौहित्यं क्षुत्पिपासा  
मथौषधम् । कृशोनसहतेतद्वदति  
शीतोष्णमैथुनम् ॥ १३ ॥

व्यायाम अत्यंत तृप्ति क्षुधा पिपासा  
मद शीत उष्ण मैथुन इनको कृश मनुष्य  
नहीं सह सकता ॥ १३ ॥

प्लीहाकासः क्षयः श्वासो गुल्मार्शा  
स्फुटदराणि च । कृशं प्रायोऽभिधा  
वन्ति रोगाश्च ग्रहणीगताः ॥ १४ ॥

प्लीहा कास क्षय श्वास गुल्म अर्श  
उदरके रोग और ग्रहणीके रोग ये सब  
कृश मनुष्यमें दौड़ते हैं ॥ १४ ॥

शुष्कस्फिगुदरग्रीवो धमनीजालस  
न्ततः । त्वगस्थिशोषोऽतिकृशः  
स्थूपलवर्नरोमतः ॥ १५ ॥

स्फिक् ( नितंब ) उदर ग्रीवा ये  
जिसके शुष्क हों धमनीयोंके जालका  
विस्तार हो त्वचा अस्थि शोष हों-पर्वस्थूल  
हों वह नर अत्यंत कृश कहाता है ॥ १५ ॥

सततव्याधितावेतावतिस्थूलक  
शौनरौ । सततंचोपचर्ष्याहिक  
र्षणैर्वृहणैरपि ॥ १६ ॥

ये अतिस्थूल अतिकृश मनुष्य-निरं-  
तर व्याधित रहते हैं और कर्षण और  
वृंहणसे निरंतर उपचार करने योग्य हैं ॥ १६ ॥

स्थौल्यकार्श्यवरं कार्श्यसमोपकर  
णौहितौ । यद्युभौ व्याधिरागच्छे  
त्स्थूलमेवातिपीडयेत् ॥ १७ ॥

स्थूलता और कृशतामें कृशता  
अच्छी है क्योंकि समान है उपकरण जिनके  
ऐसे उन दोनोंको व्याधि आवै तो स्थूल-  
कोही अत्यंत पीडा देती है ॥ १७ ॥

सममांसप्रमाणस्तु समसंहननो  
रः । दृढेन्द्रियत्वाद्वाधीनानव  
लेनाभिभूयते ॥ १८ ॥

जिस मनुष्यके मांसका प्रमाण समा-  
न है और संहनन ( देहकी बनावट ) भी  
समान हो और इंद्रियोंकी दृढता होनेसे  
उस मनुष्यको व्याधि बलसे नहीं दबा  
सकती ॥ १८ ॥

क्षुत्पिपासातपसहः शीतव्यायाम  
संसहः । समपक्ता समजरः सममां  
सचयोमतः ॥ १९ ॥

क्षुधा पिपासा आतप इनको सहसकै  
शीतल व्यायाम इनका संग्रह करै-सम-  
पाक हो समजरा हो सम मांसका समूह  
उस पूर्वोक्त नरमें होता है ॥ १९ ॥

गुरुचातर्पणंचेष्टं स्थूलानां कर्षणं प्र  
ति । कृशानां वृंहणार्थं च लघु सन्त  
र्पणञ्च यत् ॥ २० ॥

स्थूल मनुष्योंके कर्षणके लिये गुरु  
अपतर्पण इष्ट है और कृश मनुष्योंकी  
वृद्धिके लिये लघु जो संतर्पण वह इष्ट है ॥ २० ॥

वातघ्नान्यन्नपानानि श्लेष्ममेदोह  
राणि च । रूक्षोष्णावस्तयस्तीक्ष्णा  
रूक्षाण्युद्वर्तनानि च ॥ २१ ॥

और वातनाशक अन्नपान और कफ-  
मेदाके नाशक और रूक्ष उष्ण वस्ति  
रूक्ष उद्वर्तन ॥ २१ ॥

गुडूची भद्रमुस्तानां प्रयोगस्त्रैफल  
स्तथा । तक्रारिष्टप्रयोगस्तु प्रयो  
गो माक्षिकस्य च ॥ २२ ॥

गिलोह भद्र ( कदंब ) मोथा इनका  
और त्रिफलाका प्रयोग मट्ठा और  
मदिराका प्रयोग-शहतका प्रयोग ॥ २२ ॥

विडङ्गनागरं क्षारः काललोहरजोम  
धु । यवामलकचूर्णश्च प्रयोगः श्रेष्ठ  
उच्यते ॥ २३ ॥

वायविडंग सोंठ क्षार-कंकोल-लोहे-  
की भस्म मधु ( शहत ) जौ आंवले  
इनका चूर्ण मिलाकर-श्रेष्ठ प्रयोग कहा  
है ॥ २३ ॥

विल्वादिपञ्चमूलस्य प्रयोगः क्षौद्र  
संयुतः । शिलाजतु प्रयोगस्तु सा  
ग्रिमन्थरसाशिला ॥ २४ ॥

बेल आदि पांच मूलका जो शहतसे  
युक्त प्रयोग है और अग्रिमन्थ ( अरणी )  
के रस-सहित शिलार्जातका प्रयोग  
उत्तम है ॥ २४ ॥

प्रसातिका प्रियंगुश्च श्यामा कायव

कायवाः । जूर्णाद्वाः कोद्रवामुद्रा  
कुलत्थाश्च कर्मदकाः ॥ २५ ॥

प्रसातिका ( निवार ) प्रियंगु ( राई )  
श्यामाक यवक, यव, जूर्णाहू ( जुवार )  
कोदों मूंग कुलथीचक्रमुद्रके ( मूंगके  
भले ) ॥ २५ ॥

आढकीनाश्च बीजानि पटोलाम  
लकैः सह । भोजनार्थं प्रयोज्यानि  
पानश्चानुमधूदकम् ॥ २६ ॥

आढकी ( अरहर ) के बीज पटोल  
आंवले ये भोजनके लिये देना और  
मधूदकका अनुपान देना ॥ २६ ॥

अरिष्टांश्चानुपानार्थं मेदोमांसक  
फापहान् । अतिस्थौल्यविनाशा  
यसं विभज्य प्रयोजयेत् ॥ २७ ॥

और अरिष्ट ( नींव ) को और मेदां  
मांस कफ इनके नाशकोंको, अनुपानके  
अर्थ पृथक् २ करके अति स्थूलताके  
विनाशके लिये दे ॥ २७ ॥

प्रजागरं व्यवायश्च व्यायामं चिन्त  
नानि च । स्थौल्यमिच्छन् परि  
त्यक्तुं क्रमेणाभिप्रवर्द्धयेत् ॥ २८ ॥

अति जागरण व्यवाय व्यायाम  
चिन्ता इनकी स्थूलताके त्यागका अभि-  
लाषी क्रमसे बढ़ावै ॥ २८ ॥

स्वप्नोर्हर्षः सुखाशय्यामनसो निर्वृ  
तिः शमः । चिन्ता व्यवाय व्या  
यामविरामः प्रियदर्शनम् ॥ २९ ॥

स्वप्न-हर्ष सुखकी शय्या मनकी निर्वृति ( संतोष ) शांति-चिन्ता व्यवय व्यायाम इन तीनोंका विराम-प्रिय वस्तु-ओंका दर्शन ॥ २९ ॥

नवान्नानिनवमयंग्राम्यानूपौदका रसाः । संस्कृतानिचमांसानिदधि सर्पिःपयांसिच ॥ ३० ॥

नवीन अन्न और मद्य ग्रामके रसीले जल-संस्कृत किये मांस दधि घी दूध ३० इक्षवःशालयोमांसागोधूमागुडवै कृतम् । वस्तयःस्निग्धमधुरास्तै लाभ्यङ्गश्चसर्वदा ॥ ३१ ॥

इक्षु शालि मांस गोधूम गुडके विकार स्निग्ध और मधुर वस्ति सर्वदा तैलका अभ्यंग ॥ ३१ ॥

स्निग्धमुद्वर्तनस्नानगन्धमाल्यानिषे वणम् । शुक्लोवासोयथाकालंदो पाणामवसेचनम् ॥ ३२ ॥

स्निग्ध उद्वर्तन-स्नान-गंध माल्यका सेवन शुक्ल वस्त्र और यथाकाल दोपोंका अवसेचन ॥ ३२ ॥

रसायनानांवृष्याणांयोगानामुपसे वनम् । हत्वातिकार्ष्यमादत्तेनृ णामुपचयंपरम् ॥ ३३ ॥

और रसायन और वृष्य पदार्थोंके योगोंका सेवन इन सबका प्रयोग-अत्यंत कृशताको नष्ट करके मनुष्योंकी उत्तम पुष्टिकी करताहै ॥ ३३ ॥

अचिन्तनाच्चकार्य्याणांभ्रुवंसन्त र्पणेनच । स्वप्नप्रसङ्गाच्चनरोवरा हृद्वपुष्यति ॥ ३४ ॥

और अचिन्तन कार्योंके अकस्मात् तर्पणसे और स्वप्नके प्रसंगसे मनुष्य-वराहके समान पुष्ट होताहै ॥ ३४ ॥

यदातुमनसिक्लान्तेकर्मात्मानःक्ल मान्विताः । विषयेभ्योनिवर्त्तन्ते तदास्वपितिमानवः ॥ ३५ ॥

जब मन ग्लानिमें होताहै तब ग्लानिसे युक्त कर्मात्मा ( जीव ) विषयोंसे निवृत्त होतेहैं तब मनुष्य सोताहै ॥ ३५ ॥

निद्रायत्तंसुखंदुःखंपुष्टिःकार्ष्यं व लाबलम् । वृषताक्लीविताज्ञानम ज्ञानंजीवितंनच ॥ ३६ ॥

सुख-दुःख-पुष्टि-कृशता-बल-अबल वृषता-क्लीविता-ज्ञान-अज्ञान-और जी-वित ये सब निद्राके अधीनहैं ॥ ३६ ॥

अकालेऽतिप्रसङ्गाच्चनचनिद्रानि षेविता । सुखायुपीपराकुर्व्या त्कालरात्रिरिवापरा ॥ ३७ ॥

अकालमें और अतिप्रसंगसे-सेवन-नकीहुई निद्रा उत्तम सुख और अवस्थाको दूसरी कालरात्रिके समान नहीं करतीहै ३७

सैवयुक्तापुनर्युङ्क्तेनिद्रादेहंसुखा युषा । पुरुषयोगिनंसिद्ध्यासत्या बुद्धिरिवागता ॥ ३८ ॥

और वही युक्तिसे कीहुई निद्रा-देहमें-  
सुख और अवस्थाको इसप्रकार करतीहै  
जैसे बुद्धि-योगी पुरुषको सिद्धि सहित  
अपने समागमसे करतीहै ॥ ३८ ॥

गीताध्ययनमद्यस्त्रीकर्मभाराध्व  
कर्षिताः । अजीर्णिनःक्षताःक्षी

णावृद्धावालास्तथाबलाः ॥ ३९ ॥

गाना अध्ययन-मदिरा-स्त्रीका भोग-  
भार और मार्ग-इनसे कर्षित मनुष्य अजी-  
र्णी-क्षत-क्षीण-वृद्ध-बाल-निर्वल ॥ ३९ ॥

तृष्णातीसारशूलार्त्ताःश्वासिनः -  
शूलिनःकृशाः । पतिताभिहतो  
न्मत्ताःक्लान्तायानप्रजागैरः ॥ ४० ॥

तृष्णा-अतीसार-शूल-इनके रोगी श्वास  
और शूलरोगी-कृश-पतित-अभिहत  
और उन्मत्त-गमन-और जागरणसे ४०

क्रोधशोकभयक्लान्तादिवास्वभो  
चिताश्वये । सर्वएतेदिवास्वभंसे  
वेरन्सर्वकालिकम् ॥ ४१ ॥

और क्रोध-शोक-भयसे-तथा मोह-  
से ग्लानिको प्राप्त हुए और दिनमें  
शयनके अभ्यासी-इतने मनुष्य दिनमें  
सब कालमें शयन करें ॥ ४१ ॥

धातुसाम्यात्तथाह्येषांबलश्चा  
प्युपजायते । श्लेष्मापुण्यतिचा  
ज्ञानिस्थैर्यभवतिचायुषः ॥ ४२ ॥

जिनके धातुकी समानता है और

जिनके बलहै-और कफसे अंग जिनके  
पुष्ट हैं और अवस्थामें धीरता है ॥ ४२ ॥

श्लेष्माचादानरूक्षाणांवर्द्धमाने  
चमारुते । रात्रीणांचातिसंक्षे  
पादिवास्वभःप्रशस्यते ॥ ४३ ॥

और रूक्ष पदार्थोंके सेवनसे पवनकी  
वृद्धि है और कफ-स्थिर है रात्रियोंका  
संक्षेप है ऐसे समयमें दिनका सोना  
उत्तम है ॥ ४३ ॥

ग्रीष्मवर्ज्येपुकालेपुदिवास्वभात्  
प्रकुप्यतः । श्लेष्मपित्तेदिवास्वभ  
स्तस्मात्तेपुनःप्रशस्यते ॥ ४४ ॥

ग्रीष्मसे भिन्न कालोंमें दिनके सोनेसे  
कफ और पित्त कुपित होते हैं तिससे  
उन कालोंमें दिनका सोना श्रेष्ठ नहीं ४४

मेदस्विनःस्नेहनित्याःश्लेष्मलाः  
श्लेष्मरोगिणः । दूषीविषार्त्ताश्च  
दिवानशयीरन्कदाचन ॥ ४५ ॥

मेदस्वी-नित्य स्नेहके अभ्यासी श्ले-  
ष्मल-श्लेष्मरोगी-दूषी-और विषसे  
आर्त ये दिनमें कदाचित् न सोवें ॥ ४५ ॥

हलीमकःशिरःशूलंस्तैमित्यंगुरुगा  
त्रता । अङ्गमर्दोऽग्निनाशश्चप्रले  
पोहृदयस्यच ॥ ४६ ॥

हलीमक-शिरकाशूल-स्तैमित्य गात्रों  
में गुरुता अंगमर्द अग्निका नाश हृदय  
का प्रलेप ॥ ४६ ॥

शोथारोचकहृष्टासपीनसार्द्धविभे  
दकाः । कोठाश्चपिडकाःकण्डू  
स्तन्द्राकासोगलामयाः ॥ ४७ ॥

शोफ अरोचक हृष्टास पीनस अर्द्धवि  
भेदक, कोठाक पिडक कंडू तन्द्रा कास  
गलेके रोग ॥ ४७ ॥

स्मृतिबुद्धिप्रमोहाश्चसंरोधःस्रोत  
सांज्वरः । इन्द्रियाणामसामर्थ्यं  
विपवेगप्रवर्तनम् ॥ ४८ ॥

स्मृति और बुद्धिका प्रमोह-स्रोतों-  
का संरोध ज्वर-इन्द्रियोंका असामर्थ्य  
विपके वेगकी प्रवृत्ति ॥ ४८ ॥

भवेन्नृणांदिवास्वप्नस्याहितस्यनि  
पेवणात् । तस्माद्धिताहितंस्वप्नं  
बुद्ध्यास्वप्यात्सुखंबुधः ॥ ४९ ॥

ये सब मनुष्योंको अहितकारी दिवा  
स्वप्नके करनेसे होते हैं तिससे बुद्धिमान  
मनुष्य हित अहित स्वप्नको जानकर  
शयन करै ॥ ४९ ॥

रात्रौजागरणंरूक्षंस्निग्धमस्वपनं  
दिवा । अरूक्षमनभिष्यन्दित्वा  
सीनप्रचलायितम् ॥ ५० ॥

रात्रिमें जागरण दिनमें न सोना रूक्ष  
भोजन स्निग्ध भोजन और बैठना और  
अति चलना, अरूक्ष और अनभिष्यंदी  
भोजन ॥ ५० ॥

देहवृत्तौयथाहारःतथास्वप्नःसुखो

मतः । स्वमाहारसमुत्थेचस्थौ  
ल्यकार्श्यविशेषतः ॥ ५१ ॥

देहकी वृत्तिमें यथायोग्य आहार  
और संक्षेपसे स्वप्न करै क्योंकि स्थूलता  
और कृशता विशेषकर स्वप्न और आ-  
हारसे होते हैं ॥ ५१ ॥

अभ्यङ्गोत्सादनंस्नानंग्राम्यानूपौ  
दकारसाः । शाल्यन्नंसदधिक्षीरं  
स्नेहोमधंमनःसुखम् ॥ ५२ ॥

अभ्यंग आच्छादन स्नान ग्रामके  
अनूप ( सजल देशके ) जल और  
रस दधिसहित चावल दूध स्नेह मदिरा  
मनका सुख ॥ ५२ ॥

मनसोऽनुगुणागन्धाःशब्दाःसंवाह  
नानिच । चक्षुपस्तर्पणंलेपःशिर  
सोवदनस्यच ॥ ५३ ॥

मनके अनुकूल गंध और शब्द और  
यान चक्षुका तर्पण शिर और मुखका  
लेप ॥ ५३ ॥

स्वास्तीर्णशयनंवेश्मसुखंकालस्त  
थोचितः । आनयन्त्यचिरान्नि  
द्राप्रनष्टायानिमित्ततः ॥ ५४ ॥

सुंदर बिछौनेकी शय्या समय २ में  
यथायोग्य घरका सुख ये सब शीघ्रही  
निमित्तसे नष्ट हुई निद्राको ले आतेहैं ५४  
कायस्यशिरसश्चैवविरेकश्छर्दनं  
भयम् । चिन्ताक्रोधस्तथाधूमो  
व्यायामो रक्तमोक्षणम् ॥ ५५ ॥

देह और शिरका विरेचन छर्द भय  
चिंता क्रोध धूम व्यायाम रक्तमो  
क्षण ॥ ५५ ॥

उपवासः सुखाशय्यासत्त्वौदार्यत  
मोजयः । निद्राप्रसङ्गमहितं वार  
यन्तिसमुत्थितम् ॥ ५६ ॥

उपवास सुखकी शय्या सत्वगुणकी  
वृद्धि तमोगुणका जय ये सब अहित-  
कारी आते हुये निद्राके प्रसंगको वारण  
कर देते हैं ॥ ५६ ॥

एतएवचविज्ञेयानिद्रानाशस्यहेत  
वः । कार्यकालोविकारश्चप्रकृ  
तिर्वायुरेवच ॥ ५७ ॥

येही निद्राके नाशके हेतु जानना-  
कि कृशता कालके विकार प्रकृति  
और वायु ॥ ५७ ॥

तमोभवाश्लेष्मसमुद्भवाचमनःश  
रीरश्रमसम्भवाच । आगन्तुकी  
व्याध्यनुवर्तिनीचरात्रिस्वभावप्र  
भवाचनिद्रा ॥ ५८ ॥

तमो गुणसे उत्पन्न कफसे उत्पन्न-  
मन शरीर श्रम इनसे उत्पन्न-आगन्तुकी  
व्याधिकी अनुवर्तिनी-रात्रिके प्रभावसे  
उत्पन्न इतने प्रकारकी निद्रा होतीहै ५८

रात्रिस्वभावप्रभवामतायातांभू  
तधात्रीप्रवदन्तिनिद्राम् । तमो  
भवामाहुरघस्यमूलंशेषंपुनर्व्याधि  
पुनिर्दिशन्ति ॥ ५९ ॥

जो रात्रिके प्रभावसे उत्पन्न निद्राहै  
उस निद्राको भूत धात्री कहतेहैं तमसे  
उत्पन्न निद्रापापका मूलहै शेष निद्रा-  
ओंको व्याधियोंमें कहतेहैं-इति ॥ ५९ ॥

तत्र श्लोकाः ।

निन्दिताः पुरुषास्तेषां यौविशेषेण  
निन्दितौ । वक्ष्यामि कारणं दोषा  
स्तयोर्निन्दितभेषजम् ॥ ६० ॥

उसमें ये श्लोकहैं कि जो पुरुष निन्दि-  
तहैं उनमें ये दो विशेषकर निन्दितहै-  
उनका कारण कहूंगा उनके दोष-निन्दि-  
तोंकी औषध ॥ ६० ॥

येभ्योयदाहितानिद्रायेभ्यश्चाप्य  
हितायदा । अतिनिद्रानिद्रयोश्च  
भेषजं यद्वाचसा ॥ ६१ ॥

जिनको जब, निद्राहितहै और जिनको  
जब अहित अतिनिद्रा और अनिद्राकी  
औषध-निद्रा जिससे होतीहै ॥ ६१ ॥

यायायथाप्रभावाचनिद्रातत्सर्व  
मत्रिजः । अष्टौनिन्दितसंख्याते  
व्याजहारपुनर्वसुः ॥ ६२ ॥

इति योजनाचतुष्के अष्टौनिन्दितीयो  
नाम एकविंशोऽध्यायः ।

जो २ और जैसे उत्पन्न और प्रभा-  
वकी निद्राहै उस सबको अत्रिज भगवान्  
पुनर्वसु अष्टौ निर्मित नामके अध्यायमें  
वर्णन करते भये ॥ ६२ ॥

इति योजनाचतुष्के अष्टौनिन्दितीयोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथातो लंघनवृंहणीयमध्यायं

व्याख्यास्यामः

इसके अनंतर लङ्घन वृंहणीय अध्यायको कहते हैं—

तपःस्वाध्यायनिरतानात्रेयःशिष्य  
सत्तमान् । पडग्निवेशप्रमुखानुक्त  
वान्परिचोदयन् ॥ १ ॥

कि तप और स्वाध्यायमें तत्पर-प्रधान  
हैं अग्निवेश जिनमें ऐसे उत्तम शिष्योंको  
अत्रिके पुत्र पुनर्वसु प्रेरते हुए कहते  
भये ॥ १ ॥

लंघनं वृंहणं कालेरुक्षणं स्नेहनं त  
था । स्वेदनं स्तम्भनञ्चैव जानीते  
यः स वै ज्ञिपक् ॥ २ ॥

कि समयपर लंघन और वृंहण  
रुक्षण और स्नेहन-स्वेदन और स्तम्भन  
इनको जो जानता है वही वैद्य है ॥ २ ॥

इतितमेवमुक्तवन्तं भगवन्तमात्रेय  
मग्निवेश उवाच । भगवँ लंघनं किं  
स्विलंघनीयाश्च कीदृशाः । वृंहणं  
वृंहणीयाश्च रुक्षणीयाश्च रुक्षणम् ३

इस प्रकार कहते हुए भगवान्  
आत्रेयको अग्निवेश बोले कि हे भगवन्  
लंघन किसको कहते हैं और लंघनके  
योग्य कौन हैं और वृंहण क्या है वृंहणके  
योग्य कौन हैं रुक्षण और रुक्षणके  
योग्य कौन हैं ॥ ३ ॥

स्नेहनं स्नेहनीयाश्च स्वेदाः स्वेद्याश्च  
केमताः । स्तम्भनं स्तम्भनीयाश्च  
वक्तुमर्हसि तद्गुरो ॥ ४ ॥

स्नेहन और स्नेहनके योग्य-स्वेद और  
स्वेदके योग्य स्तम्भन और स्तम्भनके  
योग्य कौन हैं इन सबको हे गुरो हमारे  
प्राति वर्णन करो ॥ ४ ॥

लंघनप्रभृतीनाञ्च पण्णामेपांसमास  
तः । कृताकृतातिवृत्तानां लक्षणं  
वक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥

और लंघन आदि इन छः ओंकाकृत  
अकृत-और अतिवृत्तोंका लक्षण हमारे  
प्राति आप कहनेके योग्य हो ॥ ५ ॥

गुरु उवाच ।

यत्किञ्चिद्वाधवकरं देहेतल्लङ्घनं  
स्मृतम् । वृंहत्त्वं यच्छरीरस्य ज  
नयेत्तच्च वृंहणम् ॥ ६ ॥

गुरु बोले कि-जो देहमें किञ्चित्  
लाघव करे उसे लंघन कहते हैं और  
जो शरीरकी वृद्धिको करे उसे वृंहण  
कहते हैं ॥ ६ ॥

रौक्ष्यं खरत्वं वैषद्यं तत्कुर्व्यात्तद्धि  
रुक्षणम् । स्नेहनं स्नेहनिःप्यन्दमा  
र्दवक्लेदकारकम् ॥ ७ ॥

और जो रुक्षता खरता वैषद्य (फुटना)  
इनको करे-उसे रुक्षण कहते हैं जो-स्नेह  
निःप्यन्द-मार्दव-क्लेदनको करे-उसे-  
स्नेहन कहते हैं ॥ ७ ॥



स्तम्भगौरवशीतघ्नस्वेदनस्वेदका  
रकम् । स्तम्भनस्तम्भयति यद्  
तिमन्तंचलं ध्रुवम् ॥ ८ ॥

जो—स्तम्भ—गौरव—शीत—इनके नाशको  
और स्वेदको करे उसे—स्वेदन कहते हैं—  
जो गतिमान्का स्तम्भन—और चलको  
ध्रुव करे उसे स्तम्भन कहते हैं ॥ ८ ॥

लघूष्णतीक्ष्णविषदं रूक्षं सूक्ष्मं ख  
रं सरम् । कठिनश्चैव यद्द्रव्यं प्राय  
स्तल्लङ्घनं स्मृतम् ॥ ९ ॥

जो द्रव्य, लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, विषद  
रूक्ष, सूक्ष्म, खर, सर, और कठिन हों  
वहभी प्रायः लङ्घनहीं कहा है ॥ ९ ॥

गुरुशीतमृदुस्निग्धं बहुलं सूक्ष्मपि  
च्छिलम् । प्रायोमन्दं स्थिरं सू  
क्ष्मं द्रव्यं बृंहणमुच्यते ॥ १० ॥

गुरु, शीत, मृदु, स्निग्ध, बहुल, सूक्ष्म  
पिच्छिल, मन्द, स्थिर, सूक्ष्म, जो द्रव्य  
प्रायः हों उसेभी बृंहण कहते हैं ॥ १० ॥

रूक्षं लघुखरं तीक्ष्णमुष्णं स्थिरम्  
पिच्छिलम् । प्रायशः कठिनश्चैव  
यद्द्रव्यं तद्विरूक्षणम् ॥ ११ ॥

रूक्ष, लघु, खर, तीक्ष्ण उष्ण, स्थिर  
अपिच्छिल, और कठिन जो हों, वह  
द्रव्यभी प्रायः रूक्षण होता है ॥ ११ ॥

द्रवं सूक्ष्मं सरं स्निग्धं पिच्छिलं गुरु  
शीतलम् । प्रायोमन्दं मृदुचयद्द्र  
व्यं तत्स्नेहनं मतम् ॥ १२ ॥

द्रव, सूक्ष्म, सर, स्निग्ध, पिच्छिल,  
गुरु, शीतल, मन्द, मृदु, जो द्रव्य है  
वहभी प्रायः स्नेहन होता है ॥ १२ ॥

उष्णं तीक्ष्णं सरं स्निग्धं रूक्षं सूक्ष्मं द्र  
वं स्थिरम् । द्रव्यं गुरुचयत्प्रायः त  
द्विरस्वेदनमुच्यते ॥ १३ ॥

उष्ण, तीक्ष्ण, सर, स्निग्ध रूक्ष, सूक्ष्म  
द्रव, स्थिर, और गुरु जो द्रव्य हैं उसेभी  
प्रायः स्वेदन कहते हैं ॥ १३ ॥

शीतं मन्दं मृदु श्लक्ष्णं रूक्षं सूक्ष्मं द्र  
वं सरम् । यद्द्रवं लघुचोदितं प्रा  
यस्तत्स्तम्भनं स्मृतम् ॥ १४ ॥

शीतल, मन्द, मृदु, श्लक्ष्ण, रूक्ष, सूक्ष्म  
द्रव, सर लघु जो द्रव्य हो उसको प्रायः  
स्तम्भन कहते हैं ॥ १४ ॥

चतुष्प्रकारांशुद्धिः पिपासामारु  
तातपौ । पाचनान्युपवासश्च व्या  
यामश्चेति लङ्घनम् ॥ १५ ॥

चार प्रकारकी संशुद्धि होती है पिपासा  
मारुत आतप पाचन उपवास और  
व्यायाम ये लङ्घन हैं ॥ १५ ॥

प्रभूतश्लेष्मपित्तास्रमलाः संदुष्टमा  
रुताः । बृहच्छरीरावलिनो लङ्घ  
नीया विशुद्धिभिः ॥ १६ ॥

बड़े हुए हैं कफ पित्त रुधिर मल  
जिनके दुष्ट वातके स्पर्शसे बड़ा है शरीर  
जिनका और बलवान् होय तो विशो-  
धनसे लङ्घन करने योग्य हैं ॥ १६ ॥

येषां मध्यबलरोगाः कफपित्तस  
मुत्थिताः । वम्यतीसारहृद्रोगवि  
सूच्यलसकज्वराः ॥ १७ ॥

और जिनके कफ, पित्तसे उठे हुए  
रोग मध्यबलहैं और वमन अतीसार  
हृद्रोग, विसृचि, अलसक, ज्वर ॥ १७ ॥

विवन्धगौरवोद्गारहृद्वासारोचका  
दयः । पाचनैस्तान्निपक्वप्राज्ञः  
प्रायेणादावुपाचरेत् ॥ १८ ॥

वीबन्ध, उद्गार, हृद्वास, अरुचि आदि  
हैं, उन सबको बुद्धिमान् वैद्य, प्रथम,  
प्रायः पाचनोंसे चिकित्सित करे ॥ १८ ॥

अतएव यथोद्दिष्टयेषामल्पबला  
गदाः । पिपासानिग्रहस्तेषामुपै  
वासश्चतान् जयेत् ॥ १९ ॥

और येही पूर्वोक्त रोग जो अल्पबल  
होंय तो उनको पिपासाके निग्रह और  
उपवासोंसे जीतै ॥ १९ ॥

रोगान् जयेन्मध्यबलान् व्याया  
मातपमारुतैः । बलिनां किंपुनर्ये  
षारोगाणामवरं बलम् ॥ २० ॥

मध्यबल, रोगोंको, व्यायाम, आतप  
मारुतसे जीतै और बलवानोंको तौ  
जिन रोगोंमें छोटाभी बलवालाहै क्या  
कथा है ॥ २० ॥

त्वग्दोषिणां प्रमीढानां स्निग्धाभि  
प्यन्दिबृंहिणाम् । शिशिरेलंघनं  
शस्तमपि वातविकारिणाम् ॥ २१ ॥

त्वचाओंके दोषी प्रमीढ ( स्त्रीमें अति  
रमण ) स्निग्ध अभिष्यंदी और बृंहणवान्  
जन और वातके विकारी इनको शिशिर  
अवस्थामें लंघन श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥

अदिग्धविद्धमक्लिष्टं वयःस्थं सात्म्य  
चारिणाम् । मृगमत्स्यविहङ्गा  
नामांसं बृंहणमुच्यते ॥ २२ ॥

अदिग्ध ( कुश ) विद्ध अक्लिष्ट और  
वयस्थ ( नवीन ) जो सात्म्यचारी मृग  
मत्स्य विहंगोंका मांस उसे बृंहण कहते  
हैं ॥ २२ ॥

क्षीणाः क्षताः रुशावृद्धा दुर्बलानि  
त्यमध्वगाः । स्त्रीमद्यनित्याग्नीष्मे  
च बृंहणीयानराः स्मृताः ॥ २३ ॥

जो मनुष्य, क्षीण, क्षत, वृद्ध दुर्बल  
नित्य मार्गगामी, नित्य स्त्रीभोगी हैं वे  
अग्नीष्म ऋतुमें बृंहणके योग्य कहें ॥ २३ ॥

शोपाशौ ग्रहणीदोषैर्व्याधिभिः क  
र्षिताश्च ये । तेषां क्रव्यादमांसा  
नां बृंहणालाघवोरसाः ॥ २४ ॥

शोक अर्श, ग्रहिणी दोष, इन व्याधि-  
योंसे जो कुश हैं, उनको मांसके भक्षकके  
मांसके रसही बृंहण और लाघव कहें ॥ २४ ॥

स्नानमुत्सादनं स्वप्नो मधुराः स्नेहव  
स्तयः । शर्कराक्षीरसर्पिषि सर्पेषां  
विद्धि बृंहणम् ॥ २५ ॥

और स्नान उत्सादन ( वर्द्धन ) मधुर

स्नेह और वस्ति शर्करा घी दूध ये  
सभके लिये वृंहण जानना ॥ २५ ॥

कटुतिक्तकषायाणांसेवनंस्त्रीष्व  
संयमः । खलीपिण्याकतक्राणां  
मध्वादीनांचरूक्षणम् ॥ २६ ॥

और कटु तिक्त कषाय इनका सेवन  
स्त्रियोंमें अधिक प्रवृत्ति खल पिण्याक  
तक्र, मधु आदिका सेवन रूक्षण, कहा-  
ताहै ॥ २६ ॥

अभिष्यन्दामहादोषामर्मस्थाव्या  
धयश्चये । ऊरुस्तम्भप्रभृतयोरूक्ष-  
णीयानिदर्शिताः ॥ २७ ॥

और अभिष्यन्द जो महादोषहैं और  
मर्मकी जो व्याधि ऊरुस्तम्भ आदिहैं वे  
रूक्षणके योग्य कहीहैं ॥ २७ ॥

स्नेहाःस्नेहयितव्याश्चस्वेदाःस्वेद्या  
श्चयेनराः । स्नेहाध्यायेमयोक्तास्ते  
स्वेदाख्येचसविस्तराः ॥ २८ ॥

स्नेह, स्नेहके योग्य स्वेद स्वेदके  
योग्य जो नर हैं, वे मैं स्नेहाध्याय और  
स्वेदाध्यायमें विस्तारसे कहेहैं ॥ २८ ॥

द्रवंतनुसरंयावच्छीतौकरणमौष-  
धम् । स्वादुतिक्तकषायश्चस्तम्भ  
नंसर्वमेवतत् ॥ २९ ॥

द्रव, तनु, सर, शीत्कारी, औषध, और  
स्वादु, तिक्त कषाय ये सब स्तम्भन कहा-  
ताहै ॥ २९ ॥

पित्तक्षाराग्निदग्धायेवम्यतीसार  
पीडिताः । विपस्वेदातियोगार्त्ताः  
स्तम्भनीयास्तथापराः ॥ ३० ॥

जो पित्त क्षार अग्निसे दग्धहैं वमन  
और अतिसारसे पीडितहैं विप और  
स्वेदके अत्यन्त योगसे दुःखीहैं ऐसे नर  
स्तम्भनके योग्यहैं ॥ ३० ॥

वातमूत्रपुरीपाणांविसर्गेगात्रलाघ-  
वे । हृदयोद्गारकण्ठास्यशुद्धौत-  
न्द्राक्लमेगते ॥ ३१ ॥

और यहां लाघवमें, वात मूत्र, पुरी,  
पका होना हृदय उद्गार, कण्ठ, मुख,  
इनकी शुद्धि, और तन्द्राकी ग्लानिका  
नाश ॥ ३१ ॥

स्वेदेजातेरुचौचैवक्षुत्पिपासासहो  
दये । कृतलंघनमादेश्यनिर्व्यथे  
चान्तरात्मनि ॥ ३२ ॥

स्वेद और रुचिका होना, क्षुधा  
और पिपासाकी अधिकता, और अन्त-  
रात्मामें पीडाका अभाव इन कारणोंसे  
वैद्य कियेहुए लंघनोंको कहे ॥ ३२ ॥

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्चकाशःशोषोमुख  
स्यच । क्षुत्प्रणाशोऽरुचिस्तृष्णा  
दौर्बल्यंश्रोत्रनेत्रयोः ॥ ३३ ॥

पर्वका भेदन, अंगमर्द, काश, मुखका  
शोष, क्षुधाकानाश, अरुचि, तृष्णा,  
श्रोत्र और नेत्रोंमें दुर्बलता ॥ ३३ ॥

मनसःसम्भ्रमोऽभीक्ष्णमूर्द्धवायु  
स्तमोहदि । देहाग्निबलनाशश्चलं  
घनेऽतिकृतेभवेत् ॥ ३४ ॥

मनमें बारंवार भ्रम, ऊर्द्धगामीवायु,  
हृदयमें तम, देह, और अग्निके बलका  
नाश, ये सब अत्यंत लंघन करनेसे  
होतेहैं ॥ ३४ ॥

बलंपुष्ट्युपलम्भश्चकार्ष्यदोषविव  
र्जितम् । लक्षणंवृंहितेस्थौल्यम  
तिचात्यर्थंवृंहिते ॥ ३५ ॥

बल—और पुष्टिका लाभ, और दोषोंसे  
रहित कृशता, ये वृंहणके लक्षणहैं और अ-  
त्यन्त वृंहणका लक्षण अति स्थूलताहै ३५

कृताकृतस्यचिह्नंयलंघितेतद्विरु  
क्षिते । स्तम्भितःस्याद्वलेलब्धेय  
थोक्तैश्चामयैर्जितैः ॥ ३६ ॥

कृत और अकृत लंघनके जो चिन्हहैं  
वेही रूक्षितके हैं स्तम्भन किया मनुष्य  
बलके लाभसे यथोक्त रोगोंके जीतने  
पर ॥ ३६ ॥

श्यावतास्तब्धगात्रत्वमुद्वेगोहनुसं  
ग्रहः । हृद्र्चोनिग्रहश्चस्यादतिस्त  
म्भितलक्षणम् ॥ ३७ ॥

श्यामरंग ( कृष्ण ) गात्रका स्तम्भन  
उद्वेग हनुसंग्रह हृदय और मलका निग्रह  
ये अतिस्तम्भितके लक्षणहैं ॥ ३७ ॥

लक्षणंचकृतानांस्यात्पण्णामेषांस

मासतः । तदौषधीनांव्याधीनाम  
शमोवृद्धिरेववा ॥ ३८ ॥

और नहीं किये हुए इन छःओंका  
संक्षेपसे ये लक्षणहैं कि उनकी औषधि  
होनेपर व्याधियोंकी अशान्ति और वृद्धि  
होना ॥ ३८ ॥

इतिषट्सर्वरोगाणांप्रोक्ताःसम्य  
गुपक्रमाः । साध्यानांसाधनेसि  
द्धामात्राकालानुरोधिनइति ३९ ॥

सब रोगोंके ये उपक्रम जो साध्योंके  
साधनमें सिद्ध मात्रा और कालके अनु-  
रोधसे सिद्धहैं कहे इति ॥ ३९ ॥

भवति चात्र ।

दोषाणांबहुसंसर्गात्सङ्कीर्ण्यन्ते  
ह्युपक्रमाः । षट्त्वंतुनातिवर्तन्ते  
त्रित्वंवातादयोयथा ॥ ४० ॥

इसमें ये श्लोकहैं कि—बहुत दोषोंके  
संसर्गसे उप क्रमोंकाभी संक्रम होजाताहै  
परन्तु छः का अति वर्तन इसप्रकार  
नहीं करते जैसे वात आदि तीनका  
अवलंघन नहीं करते ॥ ४० ॥

द्रव्यस्मिंलंघनाध्यायेव्याख्याताः  
षडुपक्रमाः । यथाप्रश्नंभगवता  
चिकित्सायैःप्रवर्तिता ॥ ४१ ॥

इति योजनाचतुष्केलंघनवृंहणीयो नाम  
द्वाविंशोऽध्यायः समाप्तः ।

ये छः उपक्रम-इस अध्यायमें भगवान्ने प्रश्नके अनुसार वर्णन किये जिनसे चिकित्साकी प्रवृत्ति है ॥ ४१ ॥

इति योजनाचतुष्के लघन बृहणीयोऽध्यायः समाप्तः २२

### त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथातः सन्तर्पणीयमध्यायं

व्याख्यास्यामः ।

इसके अनन्तर सन्तर्पणीय अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

सन्तर्पयति यः स्निग्धैर्मधुरैर्गुरुपि  
च्छिलैः । नवाच्चैर्नवमयैश्चमांसै  
श्चानूपवारिजैः ॥ १ ॥

जो मनुष्य, स्निग्ध, मधुर, गुरु, पिच्छिल, नवीन अन्न और नवीन मदिरा और अनूप जलसे उत्पन्न मांस ॥ १ ॥

गोरसैर्गौडिकैश्चान्नैः पिष्टकैः श्चाति  
मात्रशः । चेष्टाद्वेषीदिवास्वप्नश  
य्यासनसुखेरतः ॥ २ ॥

इनसे अपनी आत्माको तृप्त करता है और गोरस, गुडसहित अन्न, पुष्टिके पदार्थ, इनको अत्यंत सेवन करै है-चेष्टा का द्वेषी-दिनमें शयन और शय्या आसनके सुखमें रत जो है ॥ २ ॥

रोगास्तस्योपजायन्ते सन्तर्पणनि  
मित्तजाः । प्रमेहकण्डूपिडकाः को  
ठपाण्डू मयज्वराः ॥ ३ ॥

उस मनुष्यको संतर्पणके निमित्तसे ये रोग होते हैं कि प्रमेह कंडू पिडका कोठ पांडुरोग ज्वर ॥ ३ ॥

कुष्ठान्यामप्रदोपाश्च मूत्रकृच्छ्रम  
रोचकम् । तन्द्राक्लैव्यमतिस्थौ  
ल्यमालस्यंगुरुगात्रता ॥ ४ ॥

कुष्ठ और आमप्रदोष, मूत्रकृच्छ्र अरुचि, तन्द्रा क्लैव्य, अतिस्थूलता, आलस्य, गुरुगात्र ॥ ४ ॥

इन्द्रिये स्तोतसारो धोबुद्धेर्मोहः प्रमी  
लकः । शोफाश्चैवं विधाश्चान्येशी  
घ्रमप्रतिकुर्वतः ॥ ५ ॥

इंद्रिय और स्तोत्रोंमें रोध बुद्धिकामोह, प्रमीलक, शोफ और इसी प्रकारके अन्य रोग उसके होते हैं जो शीघ्र चिकित्सा नहीं करता है ॥ ५ ॥

शस्तमुल्लेखनं तेषां विरेको रक्तमो  
क्षणम् । व्यायामश्चोपवासश्च धू  
माश्च स्वेदनानि च ॥ ६ ॥

उनके शस्त्रका उल्लेखन विरेचन रक्तमो-  
क्षण व्यायाम उपवास धूम स्वेदन ॥ ६ ॥

सक्षौद्रश्चाभयाप्रासः प्रायो रूक्षान्न  
सेवनम् । चूर्णप्रदेहाये चोक्ताः क  
ण्डूकोठविनाशनाः ॥ ७ ॥

और शहत मिलाकर हरडेका भक्षण और प्रायः रूक्ष अन्नका सेवन करै और कंडू कोठके विनाशक जो चूर्ण प्रदेह कहे हैं ॥ ७ ॥

त्रिफलारग्वधंपाठांसमर्पणसवत्स  
कम् । मुस्तंनिम्बंसमदनंजलेनो  
त्कथितंपिबेत् ॥ ८ ॥

उनमें त्रिफला अमलतास पाठा सप्त  
पर्ण वत्सक मोथा नीम मदन इनका  
जलमें काथ करके पीवै ॥ ८ ॥

तेनमोहादयोयान्तिनाशमभ्यस्य  
तांश्रुवम् । मात्राकालप्रयुक्तेनस  
न्तर्पणसमुत्थिताः ॥ ९ ॥

उससे अभ्यासी मनुष्योंके मोह आदि  
वे अवश्य नष्ट होते हैं जो मात्रा और  
कालके प्रमाणसे संतर्पणसे हुये हैं ॥ ९ ॥

मुस्तमारग्वधःपाठात्रिफलादेवदा  
रुच । श्वदंष्ट्राखदिरोनिम्बोहरि  
द्रात्वक्चवत्सकात् ॥ १० ॥

मोथा अमलतास पाठा त्रिफला देव-  
दारु श्वदंष्ट्रा ( गोखरू ) खदिर नीम  
हरिद्रा त्वक् वत्सक ( इंद्रजौ ) ॥ १० ॥

रसमेषांयथादोषंप्रातःप्रातःपिबे  
न्नरः । सन्तर्पणकृतैःसर्वैर्व्याधिभि  
र्विप्रमुच्यते ॥ ११ ॥

इनके रसको दोषके अनुसार मनुष्य  
प्रातःकालके समय नित्य पीवै तो संत-  
र्पणकी की हुई व्याधियोंसे विशेषकर छुट-  
ताहै ॥ ११ ॥

एभिश्चोद्वर्तनोद्धर्षस्नानयोगोपयो  
जितैः । त्वग्दोषाःप्रशमयान्ति  
तथास्नेहोपसंहितैः ॥ १२ ॥

इनके उबटने उद्धर्ष स्नान इनके  
स्नेहसहित उपयोगसे त्वचाके दोष शांत  
होते हैं ॥ १२ ॥

कुष्ठंगोमेदकंहिङ्गुकौश्चास्थिव्यूष  
णंवचाम् । वृषकैलेश्वदंष्ट्रांचखरा  
ह्वाश्चाश्मभेदिकम् ॥ १३ ॥

कूट गोमेद हींग कौंचके अस्थि उषक  
( खारीनोन ) वच वृष ( वांसा )  
इलायची गोखरू खाराश्वा ( मोरकी  
शिखा ) पाषाणभेद ॥ १३ ॥

तक्त्रेणदधिमण्डेनवदराम्लरसेन  
वा । मूत्रकृच्छ्रंप्रमेहश्चपीतमेत  
द्वचपोहति ॥ १४ ॥

इनको मट्टा दधिका मंड वेर और  
अमलीके रससे पीवै तो मूत्रकृच्छ्र और  
प्रमेहको नष्ट करते हैं ॥ १४ ॥

तक्त्राभयाप्रयोगैश्चत्रिफलायास्त  
थैवच । अरिष्टानांप्रयोगैश्चया  
न्तिमेहादयःशमम् ॥ १५ ॥

मट्टा और हरडेके प्रयोगोंसे और  
त्रिफलासे अरिष्टा ( कुटकी ) के प्रयो-  
गोंसे प्रमेह आदि शांतिको प्राप्त होते  
हैं ॥ १५ ॥

व्यूषणंत्रिफलाक्षौद्रंकिमिध्नंसाज  
मोदकम् । मन्थोऽयंसक्तवःस  
पिहितोलोहोदकाप्लुतः । व्योषं  
विडङ्गंशिग्रूणित्रिफलाकटुरोहि  
णी ॥ १६ ॥

ऽयूपण त्रिफला शहत वायविडंग  
अजमोद यह मंथ सत्तू तैल लोहेके  
जलसे युक्त हित होता है व्योप वाय  
विडंग संहंजना त्रिफला कटु रोहिणी १६  
बृहत्यौ द्वे हरिद्वे पाठासातिविपा  
स्थिरा । हिङ्गुके वुक मूलानियवा  
नी धान्यचित्रकम् ॥ १७ ॥

दोनों कटेहली दोनों हलदी पाठा  
अतिविपा ( अतीस ) स्थिरा हिङ्गु केवुक  
( कवुक वृक्ष ) के मूल अजमायन  
धनियां चीता ॥ १७ ॥

सौवर्चलमजार्जीश्वहवुषांचेति चू  
र्णयेत् । चूर्णतैलघृतक्षौद्रभागाः  
स्युर्मानतः समाः ॥ १८ ॥

सौवर्चल ( कालानोन ) अजार्जी  
( जीरा ) हवुषी ( हाउवेर ) इनका  
चूर्ण करे और चूर्ण तैल घी शहत ये  
सब प्रमाणसे समभाग ले ॥ १८ ॥

सक्तूनां षोडशगुणो भागः सन्तर्पणं  
पिबेत् । प्रयोगादस्य शाम्यन्ति  
रोगाः सन्तर्पणोत्थिताः ॥ १९ ॥

और सक्तूओंका सोलहवां भाग इस  
संतर्पणको पीवै, इस प्रयोगसे संतर्पणसे  
पैदा हुये रोग शांतिको प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥

प्रमेहामूढवाताश्वकुष्ठान्यर्शांसि  
कामलाः । पीहापाण्ड्वामयः शो  
फो मूत्रकृच्छ्रमरोचकः ॥ २० ॥

और प्रमेह मूढवात कुष्ठ अर्श का-

मला पीहा पांडुरोग शोफ मूत्रकृच्छ्र  
अरुचि ॥ २० ॥

हृद्रोगो राजयक्ष्मा च कासः श्वासो  
गलग्रहः । क्रिमयो ग्रहणी दोषाः  
श्वैत्र्यं स्थौल्यमतीव च । नराणां  
दीप्यते चाग्निः स्मृतिर्बुद्धिश्च वर्द्धते ॥ २१ ॥

हृद्रोग राजयक्ष्मा कास श्वास गल-  
ग्रह क्रिमि ग्रहणीके रोग श्वित्र अतिस्थू-  
लता ये नष्ट होते हैं और अग्निदीपन  
होती है स्मृति और बुद्धि बढ़ती है ॥ २१ ॥

व्यायामनित्यो जीर्णाशीयवगो धू  
मभोजनः । सन्तर्पणकृतैर्दापैर्मु  
क्तास्थौल्यादिमुच्यते ॥ २२ ॥

जो मनुष्य व्यायाम नित्य करे,  
जीर्ण अर्श जिसके हो यव गोधूमका  
भोजन करे तो संतर्पणके किये दोषोंसे  
और चंचलतासे छुटता है ॥ २२ ॥

उक्तसन्तर्पणोत्थानामपतर्पणमौ  
षधम् । वक्ष्यन्ते सौषधाश्चोद्धर्म  
पतर्पणजागदाः ॥ २३ ॥

संतर्पणसे हुयोंके अपतर्पणकी औषध  
यह कही, अब औषध सहित ऊपरके  
अपतर्पणसे भये रोगोंको कहते हैं ॥ २३ ॥

देहाग्निबलवर्णौजः शुक्रमांसबल  
क्षयः । ज्वरः कासानुबन्धश्च पा  
र्श्वशूलमरोचकः ॥ २४ ॥

देह अग्निबल वर्ण ओज शुक्र मांस  
बल इनका क्षय ज्वर कासका योग  
पार्श्वशूल अरोचक ॥ २४ ॥

श्रोत्रदौर्बल्यमुन्मादः प्रलापाहृदय  
व्यथा । विण्मूत्रसंग्रहः शूलजंघो  
रुत्रिकसंश्रयम् ॥ २५ ॥

श्रोत्रोंमें दुर्बलता उन्माद प्रलाप  
हृदयकी व्यथा विण्मूत्रका संग्रह जंघा-  
ऊरुत्रिक इनमें शूल ॥ २५ ॥

पर्वास्थिसन्धिभेदश्चयेचान्येवात  
जागदाः । ऊर्ध्ववातादयः सर्वे  
जायन्तेतेऽपतर्पणात् ॥ २६ ॥

पर्व अस्थि संधि इनका भेद और  
जो अन्य वातसे उत्पन्न रोग ऊर्ध्ववात  
आदि जो हैं वे सब अपतर्पणसे पैदा  
होते हैं ॥ २६ ॥

तेषांसन्तर्पणंतज्ज्ञैः पुनराख्यात  
मौपधम् । यत्तदात्वेसमर्थस्याद  
भ्यासेवातदिष्यते ॥ २७ ॥

-- उनकी फिर औषध शास्त्रके ज्ञाता-  
ओंने संतर्पण कही है जो तत्कालमें  
समर्थ है और अभ्यासमें जितना इष्ट  
है ॥ २७ ॥

सद्यः क्षीणोहिसद्योवैतर्पणेनोपची  
यते । नर्त्तसन्तर्पणाभ्यासाच्चि  
रक्षीणस्तुपुण्यति ॥ २८ ॥

जो सद्यः क्षीण मनुष्य है वह सद्यः  
संतर्पणसे वृद्धिको प्राप्त होताहै तिससे

संतर्पणके अभ्याससे चिरकालका क्षीण  
मनुष्य पुष्ट होताहै ॥ २८ ॥

देहाग्निदोषभैषज्यमात्राकालानु  
वर्त्तिना । कार्ग्यमत्वरमाणेनभे  
पजंचिरदुर्वले ॥ २९ ॥

देह अग्नि दोष औषध मात्रा काल  
इनके जो अनुवर्ती हैं वे चिर दुर्बलतामें  
शनैः औषधको करें ॥ २९ ॥

हितामांसरसास्तस्मैपयांसिचवृ  
तानिच । स्नानानिबस्तयोऽभ्य  
ङ्गास्तर्पणास्तर्पणाश्वये ॥ ३० ॥

उसको मांसके रस दूध घृत स्नान  
वस्ति अभ्यंग और तर्पण अपतर्पण ये  
सब हितहैं ॥ ३० ॥

ज्वरकासप्रसक्तानांकृशानामूत्र  
कृच्छ्रिणाम् । तृण्यतामूर्ध्ववाता  
नांहितंवक्ष्यामितर्पणम् ॥ ३१ ॥

ज्वरकासमें जो प्रसक्तहैं कृश मूत्र  
कृच्छ्री हैं तृणित ऊर्ध्ववात हैं उनके  
हितकारी तर्पणको कहताहूं ॥ ३१ ॥

शर्करापिप्पलीतैलघृतक्षौद्रसमां  
शकैः । सक्तुद्विगुणितोवृण्यस्ते  
षामन्थः प्रशस्यते ॥ ३२ ॥

शर्करा पीपलामूल घी शहत ये सम-  
भागहों दूना सक्तुहो उनको इनका मंथ  
श्रेष्ठ होता है ॥ ३२ ॥

सक्तवोमदिराक्षौद्रशर्कराचेतित



र्पणम् । पिवेन्मारुतविण्मूत्रक  
फपित्तानुलोमनम् ॥ ३३ ॥

सत्तू मदिरा शहत शर्करा यह तर्पण  
है मारुत कफ पित्त विण्मूत्र इन सबके  
अनुलोम कारक इसको पीवै ॥ ३३ ॥

फाणितंसक्तवःसर्पिर्दधिमण्डोऽ  
म्लकाञ्जिकम् । तर्पणंमूत्रकच्छू  
घ्नमुदावर्तहरंपिवेत् ॥ ३४ ॥

फाणित सत्तू घी दधि मंड अम्ल  
कांजी, मूत्रकच्छू उदावर्तके नाशक  
इस तर्पणको पीवै ॥ ३४ ॥

मन्थःखर्जूरमृद्वीकावृक्षाम्लाम्ली  
कदाडिमैः । परूपकैःसामलकैर्यु  
क्तोमद्यविकारनुत् ॥ ३५ ॥

खजूर मुनक्का वृक्ष अम्ल इमली  
अनार इनके मंथको परूपक ( फालसा )  
आंवले मिलाकर मदिराके विकारवान  
पीवें ॥ ३५ ॥

स्वादुरम्लोजलकृतःसस्त्रेहोरुक्षए  
ववा । सद्यःसन्तर्पणोमन्थःस्थै  
र्यवर्णवलप्रदः ॥ ३६ ॥

जलमें बनाया स्वादु अम्ल स्त्रेह  
सहित हो वा रुक्षहो या तो यह सद्यः  
संतर्पण मंथ स्थैर्य बल वर्ण इनका  
दाताहै ॥ ३६ ॥ इति—

तत्रश्लोकः ।

सन्तर्पणोत्थायरोगारोगायेचापत  
र्पणात् । सन्तर्पणीयेतेऽध्याये

सोपधाःपरिकीर्तिताः ॥ ३७ ॥

उसमें यह श्लोकहै जो रोग संतर्पण  
के योग्य हैं और जो अपतर्पणसे होते  
हैं वे सब संतर्पण अध्यायमें औपधां  
सहित कहे हैं ॥ ३७ ॥

इति संतर्पणीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथातोविधिशोणितीयमध्यायं

व्याख्यास्यामः ।

अब विधिशोणितीय अध्यायका  
वर्णन करते हैं कि

विधिनाशोणितंजातंशुद्धंभवतिदे  
हिनाम् । देशकालौकसात्म्यानां  
विधिर्यःसंप्रदर्शितः ॥ १ ॥

विधिसे शोधन किया मनुष्योंका  
रुधिर शुद्ध होजाता है, देशकाल सात्म्य  
इनकी जो विधि भली प्रकार दिखाई है ॥

तद्विशुद्धंरुधिरंवलवर्णसुखायु  
पा । युनक्तिप्राणिनंप्राणःशोणि  
तंन्यनुवर्तते ॥ २ ॥

वह रुधिर विशुद्धहै और प्राणीको  
बल वर्ण सुख अवस्था इनसे युक्त  
करताहै और प्राण, शोणितके अनुकूल  
होताहै ॥ २ ॥

प्रदुष्टबहुतीक्ष्णोष्णैर्मथैरन्यैश्चत  
द्विधैः । तथातिलवणक्षारैरम्लैः  
कटुभिरेवच ॥ ३ ॥

जो शोणित अधिक तीक्ष्ण उष्ण मद्य और तेसेही अन्नोसे दूषितहै और तेसेही अति लवण क्षार अम्ल और कटु इनसे दूषितहै ॥ ३ ॥

कुलत्थमापनिष्पावतिलतैलनिपे वणैः । पिण्डालुमूलकादीनांहरि तानाञ्चसर्वशः ॥ ४ ॥

कुलथी उडुद निष्पाव तिल तैल इनके सेवनसे पिण्डाल मूली आदि और संपूर्ण हरितोंके सेवनसे ॥ ४ ॥

जलजानूपवैलानांप्रसहानांचसेव नात् । दध्यम्लमस्तुसक्तूनांसुरा सौवीरकस्यच ॥ ५ ॥

जलसे उत्पन्न और जलके समी पके पर्वत और प्रसही ( सहन योग्य ) पदार्थोंके सेवनसे दधि अम्ल मस्तोंसे मदिरा और सौवीरके ॥ ५ ॥

विरुद्धानामुपक्लिन्नपूतीनांभक्षणे नच । भुक्तादिवाप्रस्वपतांद्रवस्त्रिं ग्धगुरुणिच ॥ ६ ॥

विरुद्ध उपक्लिन्न दुर्गंध इनके भक्षणसे भोजनके अनंतर दिनमें शयन द्रव स्निग्ध गुरु पदार्थोंका भक्षण ॥ ६ ॥

अत्यादानंतथाक्रोधंभजतांचात पानलौ । छर्दिवेगप्रतीघातात्का लेचानवसेचनात् ॥ ७ ॥

अति भोजन क्रोध आतप अग्निका

सेवन छर्दिके वेगका प्रतिघात और समय पर सेचनका अभाव ॥ ७ ॥

श्रमाभिघातसन्तापैरजीर्णाध्यश नैस्तथा । शरत्कालस्वभावाच्च शोणितंसंप्रदुष्यति ॥ ८ ॥

श्रम, अभिघात, संताप, अजीर्ण अध्यशन और शरत्के कालके स्वभावसे शोणित दूषित होजाताहै ॥ ८ ॥

ततःशोणितजारोगाःप्रजायन्ते पृथग्विधाः । मुखपाकोऽक्षिरो गश्चपूतिघ्राणास्यगन्धता ॥ ९ ॥

उस शोणितसे पैदा हुए अनेक प्रकारके रोग होजातेहैं कि, मुखका पाक अक्षिरोग घ्राण मुखमें दुर्गंध ॥ ९ ॥

गुल्मोपदंशवीसर्प रक्तपित्तप्रमील काः । विद्रधीरक्तमेहश्चप्रदरोवा तशोणितम् ॥ १० ॥

गुल्म उपदंश वीसर्प, रक्त पित्त, प्रमीलक विद्रधि रक्त मेह, प्रदर, वात शोणित ॥ १० ॥

वैवर्ण्यमग्निनाशश्चपिपासागुरुगा त्रता । सन्तापश्चातिदौर्बल्यमरु चिःशिरसश्चरुक् ॥ ११ ॥

विवर्णता अग्निका नाश पिपासा गुरु गात्रता, संताप अति दुर्बलता अरुचि शिरमें पीडा ॥ ११ ॥

विदाहश्चान्नपानस्यतिक्ताम्लोद्

रणंक्लमः । क्रोधप्रचुरताबुद्धेःसं  
मोहोलवणास्यता ॥ १२ ॥

अन्न और पानका विदाह तिक्त और  
अम्ल, उद्गार, क्लम, अधिक क्रोध बुद्धि-  
का मोह लवण के समान मुख ॥ १२ ॥

स्वेदःशरीरदौर्गन्ध्यमदःकम्पःस्व  
रक्षयः । तन्द्रानिद्रातियोगश्चत  
मसश्चातिदर्शनम् ॥ १३ ॥

स्वेद, शरीरमें दुर्गंधि, मद, कंप,  
स्वरका क्षय, तन्द्रा, अधिक निद्राका  
योग, तमका अत्यंत दर्शन ॥ १३ ॥

कण्डूरुक्कोठपिडकाः कुष्ठचर्मद  
लादयः । विकाराःसर्वण्वैतेवि  
ज्ञेयाःशोणिताश्रयाः ॥ १४ ॥

कण्डू, रोग, कोठ, पिडक, कुष्ठ, चर्म  
दल, आदि ये सम्पूर्ण विकार शोणितके  
आश्रयसे जानने ॥ १४ ॥

शीतोष्णस्निग्धरूक्षार्थैरुपक्रान्ता  
श्वयेगदाः । सम्यक्साध्यानासि  
ध्यन्तिरक्तजांस्तान् विभावयेत् १५

और जो शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष  
आदिसे चिकित्सा किये रोगहैं और भली  
प्रकारकी साधनासे सिद्ध नहीं होते उनको  
रक्तसे उत्पन्न जानै ॥ १५ ॥

कुर्व्याच्छोणितरोगेषुरक्तपित्तहरीं  
क्रियाम् । विरेकमुपवासंवासा  
वणंशोणितस्यवा ॥ १६ ॥

शोणितके रोगोंमें रक्त पित्त हरनेहारी  
क्रियाको करै किं विरेचन, उपवास,  
रुधिरका स्नाव ॥ १६ ॥

बलदोषप्रमाणाद्वाविशुद्ध्यारुधि  
रस्यवा । रुधिरंस्नावयेज्जन्तोरा  
शयंप्रसमीक्ष्यवा ॥ १७ ॥

वा बलदोषके प्रमाणसे वा रुधिरकी  
संशुद्धिसे वा मनुष्यके आशयको देखकर  
मनुष्यके रुधिरका स्नाव करावै ॥ १७ ॥

अरुणाभंभवेद्वातात्पिच्छिलंफे  
निलंतनु । पितात्पीतासितंरक्तं  
सौण्ड्यात्स्त्यायतिवैचिरात् १८ ॥

वातसे अरुणरंग, पिच्छिल, फेनिल  
सूक्ष्म रुधिर होताहै, पित्तसेपीत, काला  
रक्त होताहै, और उष्णहोनेसे चिरकालमें  
गाढा होताहै ॥ १८ ॥

ईषत्पाण्डुकफाद्दुष्टंपिच्छिलंत  
न्तुमदनम् । द्विदोषलिङ्गंसंसर्गा  
त्त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ॥ १९ ॥

किंचित्पाण्डु, पिच्छिल, तारबन्ध, सघन  
कफसे दूषित होताहै संसर्गसे दो दोषोंके  
लिंगका और सन्निपातसे त्रिलिङ्ग होता  
है ॥ १९ ॥

तपनीयेन्द्रगोपाभंपद्मालककस  
न्निभम् । गुञ्जाफलसवर्णश्चविशु  
द्धंविद्धिशोणितम् ॥ २० ॥

तपनीय इंद्र गोपके समान कमल और

लासकी तुल्य गुंजा फलकी समान जो  
हो उसे विशुद्ध रुधिर जानना ॥ २० ॥

नात्युष्णशीतलघुदीपनीयरक्तेऽप  
नीतेहितमन्नपानम् । तदाशरीरं ह्य  
नवस्थितासृगग्निर्विशेषेण चरक्षि  
तव्यम् ॥ २१ ॥

रक्तके निकसनेपरन अत्यंत शीत लघु  
और दीपनीय अन्नपान हित है जब शरी-  
रमें रुधिर नहीं रहता है तब अग्निकी  
विशेषकर रक्षाकरनी योग्य है ॥ २१ ॥

प्रसन्नवर्णेन्द्रियमिन्द्रियार्थानि  
च्छन्तमव्याहतपक्त्वैवम् । सु  
खान्वितमुष्टिवलोपपन्नं विशुद्धर  
क्तं पुरुषं वदन्ति ॥ २२ ॥

जिस मनुष्यके वर्ण इंद्रिय प्रसन्न हों  
और शब्द आदि इंद्रियके अर्थोंकी  
इच्छा हो, पाकका वेग यथार्थ हो, सुख,  
पुष्टि बलसे युक्त हो, उस पुरुषको विशुद्ध  
वर्ण कहते हैं ॥ २२ ॥

यदातुरक्तवाहीनिरससंज्ञावहानि  
च । पृथक् पृथक् समस्ता वास्रोतां  
सिकुपितामलाः ॥ २३ ॥

और जब रक्तवाह और रसवाह  
स्रोत पृथक् २ वा समस्त कुपित हों, तो  
मलकोप जाँने ॥ २३ ॥

मलिनाहारशीलस्य रजोभोहावृता  
त्मनः । प्रतिहत्यावतिष्ठन्ते जाय  
न्ते व्याधयस्तदा ॥ २४ ॥

मलिन, भोजनमें शील रजोभोहसे  
युक्त पुरुषके वे मल स्रोतोंको नष्ट  
करिके टिकते हैं तब ये व्याधि पैदा  
होती हैं ॥ २४ ॥

मदमूर्च्छासंन्यासास्तेषां विद्या  
द्विचक्षणः । यथोत्तरं बलाधिक्यं  
हेतुलिङ्गोपशान्तिषु ॥ २५ ॥

मद, मूर्च्छा, संन्यास, बुद्धिमान्  
मनुष्य हेतु, लिंग और शान्तिमें उनको  
उत्तरोत्तर, बलवान्, जानै ॥ २५ ॥

दुर्बलश्चेतसः स्थानं यदा वायुः प्रप  
द्यते । मनोविक्षोभयन्जन्तोः सं  
ज्ञासंमोहयेत्तदा ॥ २६ ॥

जब, वायु, दुर्बल चित्तके स्थानमें  
प्राप्त होता है, तब, मनको विक्षोभ कर-  
ता हुआ, मनुष्यकी संज्ञाका विक्षोभ कर-  
ता है ॥ २६ ॥

पित्तमेवं कफश्चैवं मनोविक्षोभय  
न्मृणाम् । संज्ञानयत्याकुलतां वि  
शेषश्चात्र वक्ष्यते ॥ २७ ॥

इसी प्रकार पित्त और कफ मनुष्यके  
मनको विक्षोभ करिके संज्ञाको व्याकुल  
कर देते हैं इसमें विशेषताका वर्णन  
करते हैं कि ॥ २७ ॥

सक्तानल्पदुताभाषंचलस्खलित  
चेष्टितम् । विद्याद्वा तमदाविष्टं  
क्षयावारुणाकृतिम् ॥ २८ ॥

सक्त अत्यन्त दुःखसे भाषण चेष्टाका  
चलन, और स्खलन, रुक्षः स्याद् और  
अरुण, आकार, इनसे युक्त मनुष्यको  
वातके मदसे युक्त जानै ॥ २८ ॥

सक्रोधपरुषाभापंसंप्रहारकलिप्रि  
यम् । विद्यात्पित्तमदाविष्टं रक्त  
पीतसिताकृतिम् ॥ २९ ॥

क्रोधसे युक्त, कठोर भाषण, प्रहार,  
और कलहसे प्रसन्न, रक्त, पीत, श्वेत,  
आकारके मनुष्यको पित्तके मदसे युक्त  
जानै ॥ २९ ॥

स्वल्पसम्बन्धवचनंतन्द्रालस्यस  
मन्वितम् । विद्यात्कफमदाविष्टं  
पाण्डुप्रध्यानतत्परम् ॥ ३० ॥

अल्प संबंधसे बोले तन्द्रा और  
आलस्यसे युक्त हो पाण्डु और ध्यानमें  
तत्पर मनुष्यको कफके मदसे युक्त जानै

सर्वाण्येतानिरूपाणिसन्निपातकृ  
तेमदे । जायतेशाम्यतित्वाशुम  
दोमद्यमदाकृतिः ॥ ३१ ॥

ये संपूर्ण रूप सन्निपातके किये मदमें  
होतेहैं मदिराके मदके समान जो मदहै  
वह शीघ्र शान्त होताहै ॥ ३१ ॥

यश्चमद्यमदःप्रोक्तोविषजोरौधि  
रश्चयः । सर्वएतेमदानर्त्तेवातपि  
त्तकफश्रयात् ॥ ३२ ॥

जो मद, मदिरासे विषसे, और रुधि  
रसे उत्पन्नहै ये सम्पूर्ण मद, वात, पित्त,  
कफ, इन तीनोंके बिना नहीं होतेहैं ३२

नीलंवायदिवाकृष्णमाकाशमथ  
वारुणम् । पश्यंस्तमःप्रविशति  
शीघ्रश्चप्रतिबुध्यते ॥ ३३ ॥

नील, वा कृष्ण, वा जलके रंगके  
आकाशको देखता हुआ मनुष्य मोहमें  
प्रविष्ट होजाताहै और शीघ्रही बोधको  
प्राप्त होजाताहै ॥ ३३ ॥

वेपथुश्चाङ्गमर्दश्चपीडाहृदयस्य  
च । काश्यस्यावारुणाछायामृ  
च्छीयेवातसम्भवे ॥ ३४ ॥

कम्प अंगका मर्दन हृदयमें पीडा  
कृशता श्याव और अरुण कान्ति होय तो  
वातके मदमें मूर्च्छा और आयहोतेहैं ३४

रक्तंहरितवर्णंवावियत्पीतमथापि  
वा । पश्यंस्तमःप्रविशतिसस्वेद  
श्चप्रबुध्यते ॥ ३५ ॥

रक्त, हरिद्वर्ण वा पीत, रंगके आका-  
शको देखता हुआ मोहमें प्रविष्ट होजाता  
है और बोधके समयमें स्वेदसे युक्त हो  
जाताहै ॥ ३५ ॥

सपिपासःससन्तापोरक्तपित्ताकु  
लेक्षणः । संभिन्नवर्चाःपीताभो  
मूर्च्छीयेपित्तसम्भवे ॥ ३६ ॥

पिपासा और संताप सहित, रक्तपि-  
त्तसे व्याकुल नेत्र, भिन्न मल पीली  
कांति ये सब पित्तके मदमें मूर्च्छा और  
आयके लिये होतेहैं ॥ ३६ ॥

मेघसङ्काशमाकाशमावृतं वातमो  
घनैः । पश्यंस्तमः प्रविशति चिरा  
च्च प्रतिबुध्यते ॥ ३७ ॥

मेघके समान और अंधकार मेघोंसे  
आच्छादित आकाशको देखता हुआ  
मनुष्य मोहमें प्रविष्ट होता है और चिर-  
कालमें बोधको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥

गुरुभिः प्रावृत्तैरङ्गैर्यथैवार्द्रणचर्म  
णा । सप्रसेकः सहृष्टासो मूर्च्छायेक  
फसम्भवे ॥ ३८ ॥

आर्द्र चर्मके समान गुरु अंगोंसे  
आच्छादित प्रसेक और हृष्टाससे युक्त  
होय तो कफसे उत्पन्न मदमें मूर्च्छा  
आयके लिये होते हैं ॥ ३८ ॥

सर्वाकृतिः सन्निपातादपस्मारइवा  
गतः । सजन्तुं पातयत्याशुविना  
बीभत्सचेष्टितैः ॥ ३९ ॥

सन्निपातसे सब आकार होते हैं और  
मानो अपस्मार हो गया तो वह जंतुको  
भयानक चेष्टाके विनाभी पतन करा  
देता है ॥ ३९ ॥

दोषेषु मदमूर्च्छायाः हतवेगे पुदेहि  
नाम् । स्वयमेवोपशाम्यन्ति सं  
न्यासो नौषधैर्विना ॥ ४० ॥

मद और मूर्च्छाके हेतु दोषोंका जब  
देह धारियोंको वेग होता है तब वे औष-  
धोंके विना स्वयंही शांत हो जाते हैं तो  
संन्यास रोग तो औषधोंके विना नहीं  
जाता है ॥ ४० ॥

वाग्देहमनसांचेष्टामाक्षिप्यति व  
लामलाः । संन्यस्यन्त्ववलंजन्तु  
प्राणायतनसंश्रिताः ॥ ४१ ॥

अत्यंत बलवान् मल, वाणी देह मन  
इनकी चेष्टाको दूर करके और प्राणके  
स्थानमें प्रविष्ट होकर निर्वल जंतुको  
संन्यास रोग कर देते हैं ॥ ४१ ॥

सनासंन्याससंन्यस्तः काष्ठभूतो मृ  
तोपमः । प्राणैर्वियुज्यते शीघ्रं मु  
क्तासद्यः फलांक्रियाम् ॥ ४२ ॥

संन्याससे युक्त वह मनुष्य काष्ठभूत  
मृतकके समान हुआ, शीघ्र फलके  
दाता क्रियाकोभी छोड़कर प्राणोंसे वियुक्त  
हो जाता है ॥ ४२ ॥

दुर्गंऽम्भसियथामज्जद्राजनन्तवर  
याबुधः । गृहीयात्तलमप्राप्तं तथा  
संन्यासपीडितम् ॥ ४३ ॥

दुर्गम, जलमें डूबते हुए पात्रको,  
नीचे बैठनेसे पहिले जैसे बुद्धिमान्  
मनुष्य ग्रहण करे, तिसी प्रकार संन्या-  
ससे पीडित मनुष्यको वैद्य ग्रहण करें ॥ ४३ ॥

अञ्जनान्यवपीडाश्च धूमः प्रथमना  
निच । सूचीभिस्तोदनं शस्त्रैर्दाहः  
पीडानखान्तरे ॥ ४४ ॥

अंजन अत्यंत पीडा धूम प्रथमन  
सूचीयोंसे तोद, शस्त्रोंसे दाह नखोंके  
मध्यमें पीडा ॥ ४४ ॥

लुञ्चनंकेशलोम्भांचदन्तैर्दशनमेव  
च । आत्मगुप्तावधर्पाश्चहन्तास्त  
स्यावबोधने ॥ ४५ ॥

केश और लोमोंका लुञ्चन दांतोंसे  
दशन अपने गुप्तका घिसना ये सब  
उसके बोधनके लिये नष्ट कहें ॥ ४५ ॥

संमूर्च्छितानितीक्ष्णानिमयानि  
विविधानिच । प्रभूतकटुतिक्ता  
नितस्यास्येगालयेन्मुहुः ॥ ४६ ॥

और तीक्ष्ण संमूर्च्छित नानाप्रकारके  
मद्य अत्यंतकटु, तिक्त ये पदार्थ उसके  
मुखमें बारंवार डारें ॥ ४६ ॥

मातुलुङ्गरसंतद्वन्महौषधसमायु  
तम् । तद्वत्सौवीरकंदद्यायुक्तंम  
द्याम्लकाञ्जिकैः ॥ ४७ ॥

और मातुलुंग ( विजोरा ) का रस  
सूंठी सहित और मदिरा अम्ल कांजी  
सहित सौवीर (सहजना) को दे ॥ ४७ ॥

हिङ्गूषणसमायुक्तंयावत्संज्ञाप्रबो  
धनात् । प्रबुद्धसंज्ञमन्त्रैश्चलघु  
भिस्तमुपाचयेत् ॥ ४८ ॥

और हींग ऊषण मिलाकर दे, ये तब  
तक दे जबतक संज्ञाका बोध हो, और  
जब संज्ञाका प्रबोध हो जाय तब लघु  
अन्त्रोंसे उपचार करें ॥ ४८ ॥

विस्मापनैःस्मारणैश्चप्रियश्रुतिभि  
रेवच । पटुभिर्गीतवादित्रशब्दै  
श्चित्रैश्चदर्शनैः ॥ ४९ ॥

और विस्मयकारी स्मरणके कर्ता,  
प्रिय शब्दोंका श्रवण और उत्तम गीत  
वादित्रोंके शब्द चित्रोंके दर्शन ॥ ४९ ॥

संसनोल्लेखनैर्धूमरञ्जनैःकवलग्र  
हैः । शोणितस्यावसेकैश्चव्या  
यामोद्धर्पणैस्तथा ॥ ५० ॥

संसन उल्लेखन धूम अंजन कवलका  
ग्रहण, शोणितका अवसेचन व्यायाम  
उद्धर्पण ॥ ५० ॥

प्रबुद्धसंज्ञमतिमाननुबद्धमुपाचरे  
त् । तस्यसंरक्षितव्यंहिमनःप्र  
लयहेतुतः ॥ ५१ ॥

इनसे जब संज्ञा बढजाय तब अनु-  
बुद्ध उसकी बुद्धिमान् वैद्य चिकित्सा  
करे, उसके मनकी प्रलयके हेतुओंसे  
रक्षा करे ॥ ५१ ॥

स्नेहस्वेदोपपन्नानांयथादोषंयथा  
बलम् । पञ्चकर्माणिकुर्वीतमू  
र्च्छायेषुमदेपुच ॥ ५२ ॥

स्नेह स्वेदसे उपयुक्तोंकी दोष और  
बलके अनुसार जिन मर्दोंमें मूर्च्छा आय  
होतेहैं उनमें पांच कर्मोंको करे ॥ ५२ ॥

अष्टाविंशत्यौषधस्योद्धर्मथवाति  
क्तसर्पिषः । प्रयोगःशस्यतेतद्वन्म  
हतःषट्पलस्यवा ॥ ५३ ॥

अष्टादस औषधोंसे पीछे तिक्त घीका  
प्रयोग श्रेष्ठ होताहै और तैसेही बडे षट्  
पलका प्रयोग ॥ ५३ ॥

त्रिफलायाःप्रयोगोवासघृतक्षौद्र  
शर्करः । शिलाजतुप्रयोगोवाप्र  
योगःपयसोऽपिवा ॥ ५४ ॥

त्रिफलाका प्रयोग घी शहत शर्करा  
सहित श्रेष्ठहै, शिलाजीतका प्रयोग वा  
दूधका प्रयोग ॥ ५४ ॥

पिप्पलीनांप्रयोगोवाप्रयोगःश्चित्र  
कस्यवा । रसायनानांकौम्भस्य  
सर्पिषोवाप्रशस्यते ॥ ५५ ॥

और वा पिप्पलियोंका प्रयोग वा  
चित्रकका प्रयोग श्रेष्ठ होताहै और  
कौम्भ (काय फल) का वा घीका रसायन  
श्रेष्ठहै ॥ ५५ ॥

रक्तावसेकाच्छास्त्राणांसतांसत्त्व  
वतामपि । सेवनान्मदमूर्च्छायाः  
प्रशाम्यन्तिशरीरिणाम् इति ५६ ॥

शस्त्रोंसे रुधिरके अवसेकसे सत्ववाले  
सज्जनोंके सेवनसे देहधारियोंके मद  
मूर्च्छा आय शांत होतीहैं, इति॥ ५६ ॥

तत्रश्लोकौ ।

विशुद्धश्चाविशुद्धंचशोणितंतस्य  
हेतवः । रक्तप्रदोषजारोगास्तेषु  
रोगेषुचौषधम् ॥ ५७ ॥

उसमें ये दो श्लोकहैं कि विशुद्ध और  
अविशुद्ध रुधिर और उसके हेतु, रक्तके  
दोषसे उत्पन्न हुये रोग और उन रोगोंकी  
औषध ॥ ५७ ॥

मदमूर्च्छायसंन्यासहेतुलक्षणभेद  
जम् । विधिशोणितकेऽध्यायेसर्व  
मेतत्प्रकाशितम् ॥ ५८ ॥

इतियोजनाचतुष्केविधिशो  
णिताध्यायःसमाप्तः ।

मद मूर्च्छा आय संन्यास हेतु लक्षण  
औषध यह सब विधि शोणित अध्यायमें  
प्रकाशित किया ॥ ५८ ॥

इति योजनाचतुष्के विधिशोणिताध्यायः समाप्तः २४

पञ्चविंशोऽध्यायः ।

अथातोयज्जःपुरुषीयमध्यायं

व्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

इसके अनंतर यज्जःपुरुषीय अध्या-  
यका वर्णन करतेहैं यह भगवान् आत्रेय  
कहतेहैं ॥

पुराप्रत्यक्षधर्माणंभगवन्तंपुनर्व  
सुम् । समेतानांमहर्षीणांप्रादुरा  
सीदियंकथा ॥ १ ॥

पहिले समयमें प्रत्यक्ष धर्मवान्  
भगवान् पुनर्वसुके सामने इकट्ठे हुये मह-  
र्षियोंमें यह कथा प्रकट हुई कि ॥ १ ॥

आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानांयोऽयंपुरु  
षसंज्ञकः । राशिरस्यामयानाञ्च  
प्रागुत्पत्तिविनिश्चये ॥ २ ॥

आत्मा इंद्रिय मन अर्थ इनकी राशि  
जो यह पुरुषसंज्ञकहै इसकी और रोगोंकी



उत्पत्तिका क्या निश्चय है यह प्रथम विचारना चाहिये ॥ २ ॥

अथकाशिपतिर्वाक्यंवामकोऽर्थ  
वदन्तरा । व्याजहारपिसमितिम  
भिसृत्याभिवायच ॥ ३ ॥

इसके अनंतर काशीपति नामक अर्थवान् वाक्यको ऋषियोंकी संमतिके अनुसार नमस्कार करके बीचमेंही कहते भये ॥ ३ ॥

किञ्चुस्यात्पुरुषोयजस्तज्जास्त  
स्यामयाःस्मृताः । नवेत्युक्तेनरे  
न्द्रेणप्रोवाचपीन्पुनर्वसुः ॥ ४ ॥

क्या पुरुष जिससे उत्पन्नहै उस-  
सेही उत्पन्न उसके आमय ( रोग ) कहेंहैं  
वा नहीं कहेंहैं? राजाके इसप्रकार कहने-  
पर ऋषियोंके प्रति पुनर्वसु बोलेकि ॥ ४ ॥

सर्वण्वामितज्ञानविज्ञानच्छिन्नसं  
शयाः । भवन्तश्चेत्तुमर्हन्तिका  
शिराजस्यसंशयम् ॥ ५ ॥

तुम सब अमित ज्ञान विज्ञानसे छिन्न  
संशय हो इससे तुम काशिराजके संश-  
यका छेदन करने योग्य हो ॥ ५ ॥

पारीक्षिस्तत्परीक्ष्याग्नेमौद्गल्यो  
वाक्यमब्रवीत् । आत्मजःपुरुषो  
रोगाश्चात्मजाःकारणंहिसः ॥ ६ ॥

उनकी परीक्षाके पहिले परीक्षिनामके  
मौद्गल्य वचन बोले कि आत्मासे उत्पन्न

पुरुषहैं और आत्मासे उत्पन्न रोगहैं वही  
आत्मा कारणहै ॥ ६ ॥

सचिनोत्पुपुभुङ्क्तेचकर्मकर्म  
फलानिच । नहृतेचेतनाधातोः  
प्रवृत्तिःसुखदुःखयोः ॥ ७ ॥

वही कर्म और कर्मके फलोंका संचय  
करताहै वही भोगताहै उसके विना धातुकी  
चेतना नहीं होती और न सुख दुःखकी  
प्रवृत्ति होतीहै ॥ ७ ॥

शरलोमातुनेत्याहनह्यात्मात्मान  
मात्मना । योजयेद्व्याधिभिर्दुःखै  
र्दुःखद्वेपीकदाचन ॥ ८ ॥

इसमें शरलोमा यह कहते भये कि  
यह नहींहै क्योंकि आत्मा आत्माकी  
व्याधि और दुःखोंसे युक्त कदाचित्  
नहीं कर सकता क्योंकि वह दुःखका  
द्वेपीहै ॥ ८ ॥

रजस्तमोभ्यांतुमनःपरीतंसत्त्व  
संज्ञकम् । शरीरस्यसमुत्पत्तौवि  
काराणाञ्चकारणम् ॥ ९ ॥

सत्त्वसंज्ञक मन जब रजो गुणतमो  
गुणसे युक्त हो जाताहै तब शरीरकी और  
विकारोंकी उत्पत्तिका कारण होताहै ॥ ९ ॥

वाय्योविदस्तुनेत्याहवह्येकंकार  
णंमनः । नर्त्तेशरीरंशारीरारोगा  
नमनसःस्थितिः ॥ १० ॥

वाय्योविदतो इसमें यह कहतेहैं कि  
यह बात नहीं क्योंकि एक मनहीं कारण

नहीं क्योंकि शरीरके बिना शरीर नहीं, न शरीरके रोगहैं, न मनकी स्थिति है ॥ १० ॥

रसजानितुभूतानिव्याधयश्चपृथ

ग्विधाः। आपोहिव्याधिवत्यस्ताः

स्मृतानिर्वृतिहेतवः ॥ ११ ॥

भूत सब रससे उत्पन्न हैं और पृथक् २ व्याधि रसजहैं व्याधिवाले जलहैं पेही निर्माण ( रचना ) के हेतु कहेहैं ॥ ११ ॥

हिरण्याक्षस्तुनेत्याहनद्यात्मारस

जःस्मृतः। नातीन्द्रियं मनः सन्ति

रोगाः शब्दादिजास्तथा ॥ १२ ॥

हिरण्याक्ष यह कहते हैं कि, यह बात नहीं है क्योंकि आत्माको रस जो नहीं कहा मन अतीन्द्रिय नहीं इससे रोग शब्द आदिसे उत्पन्न नहीं है ॥ १२ ॥

षड्धातुजस्तुपुरुषोरोगाः षड्धातु

जास्तथा । राशिः षड्धातुजो

ह्येषसांख्यैराद्यः परीक्षितः ॥ १३ ॥

तिससे पुरुष छः धातुओंसे उत्पन्नहैं और रोगभी छः धातुओंसे उत्पन्नहैं और यह देह राशि भी, छः धातुओंसे उत्पन्न और सनातन सांख्योंने परीक्षित कीहै ॥ १३ ॥

तथाब्रुवाणं कुशिकमाह तन्नेति शौ

नकः । कस्मान्मातापितृभ्यां हि

विना षड्धातुजो भवेत् ॥ १४ ॥

तिस प्रकार कहते हुए, कुशिकको, तब शौनक यह बोले कि माता पिताके बिना छः धातुसे उत्पन्न कैसे होसकताहै ॥ १४ ॥

पुरुषः पुरुषाद्गौर्गोश्वादश्वः प्रजा

यते । पैत्र्यामेहादयश्चोक्तारोगा

स्ताएव कारणम् ॥ १५ ॥

पुरुषसे पुरुष गौसे गौ अश्वसे अश्व उत्पन्न होताहै, इससे पिताके मेह आदि कारण कहेहैं रोग आदि कारण नहीं ॥ १५ ॥

भद्रकाप्यस्तुनेत्याहनद्यान्धोऽन्धा

त्प्रजायते । मातापित्रोश्च ते पूर्व

मुत्पत्तिर्नोपपद्यते ॥ १६ ॥

भद्रकाप्य तो यह कहते भये कि यह बात नहीं कि अंधसे अंध नहीं होता क्योंकि तेरे मनमें प्रथम माता पिताकी उत्पत्ति नहीं होसकैगी ॥ १६ ॥

कर्मजस्तुमतोजन्तुः कर्मजास्त

स्यचामयाः । न ह्यृते कर्मणोजन्म

रोगाणां पुरुषस्य च ॥ १७ ॥

तिससे जन्तु, कर्मसे उत्पन्न मानाहै, और उसके रोगभी कर्मज मानेहैं, क्योंकि कर्मके बिना रोग पुरुषका जन्म नहीं होसकता ॥ १७ ॥

भरद्वाजस्तुनेत्याह कर्ता पूर्वहिक

र्मणः । दृष्टं चाकृतं कर्म यस्य

स्यात्पुरुषः फलम् ॥ १८ ॥

भरद्वाज तो यह कहते भये कि यह बात नहीं, क्यों कि पहिले कर्मसे कर्ता होताहै, और बिना किया हुआ कर्म

नहीं देखा उस कर्मकाही पुरुषरूप फल होता है ॥ १८ ॥

भावहेतुःस्वभावस्तुव्याधीनांपुरुषस्य च । खरद्रवचलोष्णत्वतेजोऽन्तानांयथैवहि ॥ १९ ॥

व्याधि और पुरुषोंके कर्मका हेतु स्वभावहै, जैसे, तेज, पर्यन्तोंका, खार द्रव चर, स्वभाव हैं ॥ १९ ॥

काङ्कायनस्तुनेत्याहनह्यारम्भेफलंभवेत् । भवेत्स्वभावाद्भावानामसिद्धिःसिद्धिरेववा ॥ २० ॥

कांकायनतो यह कहते हैं कि यह बात नहीं क्योंकि आरंभमें फल नहीं होसकता तिससे स्वभावसेही भावोंकी सिद्धि और असिद्धि होती है ॥ २० ॥

स्रष्टात्वमतिसङ्कल्पोब्रह्मापत्यंप्रजापतिः । चेतनाचेतनास्यास्य जगतःसुखदुःखयोः ॥ २१ ॥

अमतिसे संकल्पवान् ब्रह्माका अपत्य प्रजापति रचता है वह निरंतर इसकी चेतनता और अचेतनता इस जगतके सुखदुःखका हेतु है ॥ २१ ॥

तथेतिभिक्षुरात्रेयो न ह्यपत्यंप्रजापतिः । प्रजाहितैषी स ततंदुःखैर्युज्ज्यान्नसाधुवत् ॥ २२ ॥

आत्रेय भिक्षु यह कहते हैं कि ऐसा नहीं क्योंकि प्रजाका हितैषी प्रजापति

अपने अपत्यको कदाचित्भी दुःखसे युक्त न करता ॥ २२ ॥

कालज्ञस्त्वेवपुरुषःकालजास्तस्य चामयाः । जगत्कालवशंसर्वकालः सर्वत्रकारणम् ॥ २३ ॥

कालका ज्ञाता पुरुष है, और कालसे उसके रोग उत्पन्न होते हैं, संपूर्ण जगत् कालके वश है, और सबका कारण काल है ॥ २३ ॥

तथर्षीणां विवदतामुयाचेदंपुनर्वसुः । मैवं वोचत तत्त्वं हि दुष्प्रापं पक्षसंश्रयात् ॥ २४ ॥

तिस प्रकार विवाद करते हुए ऋषियोंके मध्यमें पुनर्वसु यह बोले कि इस प्रकार मत कहो, अपने २ पक्षके आश्रयसे तत्वकी प्राप्ति दुर्लभ है ॥ २४ ॥

वादासप्रतिवादान्हिवदन्तो निश्चितानि च । पक्षान्तं नैव गच्छन्ति तिलपीडकवद्वतौ ॥ २५ ॥

वाद, और प्रतिवादको कहते हुए मनुष्य निश्चित और तिल पीडकके समान, पक्षके अन्तको प्राप्त नहीं होते ॥ २५ ॥

मुक्तैर्न वादसंघट्टमध्यात्ममनुचिन्त्यताम् । नाविधूते तमःस्कन्धे ज्ञेये ज्ञानं प्रवर्तते ॥ २६ ॥

तिससे इस वादके समूहको त्याग कर, अध्यात्मका चिन्तन करो इस

क्योंकि तमोगुणके स्कंधके नाश हुये  
विना ज्ञेयके ज्ञानकी प्रवृत्ति नहीं  
होती ॥ २६ ॥

येपामेवहिभावानांसम्पत्सञ्जनये  
न्नरम् । तेषामेवविपद्रव्याधीन्व  
विधान्समुदीरयेत् ॥ २७ ॥

जीव भावोंकी सम्पदा, मनुष्यको  
पैदा करती है, उनकीही विपत्ति, नाना-  
प्रकारकी व्याधियोंको पैदा करती है ॥ २७ ॥

अथात्रेयस्य भगवतो वचनमनुनि  
शम्यपुनरेव वामकः काशिपतिरु  
वाच भगवन्तमात्रेयम् । भगवन्  
सम्पन्निमित्तजस्य पुरुषस्य विप  
न्निमित्तजानां च रोगाणां किमभि  
वृद्धिकारणमिति । तमुवाच भग  
वानात्रेयो हिताहारोपयोगः एक ए  
व पुरुषस्य अभिवृद्धिकरो भवति अ  
हिताहारोपयोगः पुनर्व्याधीनानि  
मित्तमिति ॥ २८ ॥

इसके अनन्तर, आत्रेय भगवान् के  
वचनको सुनकर, फिरभी वामक, का-  
शिपति भगवान् आत्रेयको बोले, स-  
म्पदाके निमित्तसे उत्पन्न हुए पुरुषको  
और विपत्तिके निमित्तसे उत्पन्न हुए  
रोगोंकी वृद्धिका क्या कारण है, उसको  
भगवान् आत्रेय बोले कि एक हित  
आहारका उपयोगही पुरुष की वृद्धि

कारक होता है और अहित आहारका  
उपयोग व्याधियोंका कारण है ॥ २८ ॥

एवंवादिनं भगवन्तमात्रेयमग्निवेश  
उवाच । कथमिह भगवन् ! हि  
ताहितानामाहारजातानां लक्षणम  
नपवादमभिजानीयाहितसमाख्या  
तानांचैव आहारजातानामहितस  
माख्यातानां मात्राकालक्रिया  
भूमिदेहदोषपुरुषावस्थान्तरेषु वि  
परीतकारित्वमुपलभामहे इति २९

इस प्रकार कहते हुए भगवान् आत्रे-  
यको अग्निवेश बोले कि, हे भगवन् हित  
अहित आहारोंके समूहका लक्षण विना  
अपवाद ( दोष ) हम कैसे जाने, अहित  
नामके जो आहारके समूह हैं और हित  
नामके जो हैं उनके मात्रा, काल, क्रिया  
भूमि, देह, दोष, पुरुषकी अवस्था  
इन सबके मध्यमें विपरीत कार्यको हम  
देखते हैं ॥ २९ ॥

तमुवाच भगवानात्रेयः । यदाहार  
जातमग्निवेश ! स्यांश्चैव शरीरथा  
तून् प्रकृतौ स्थापयति विपमांश्च स  
मीकरोति इत्येतद्धितं विद्धि विपरी  
तमहितमिति एतद्धिताहितलक्षण  
मनपवादं भवति ॥ ३० ॥

उसके प्रति भगवान् आत्रेय बोले  
कि हे अग्निवेश—जो आहार समूहोंके  
मध्यमें समान शरीरकी धातुओंको

प्रकृतिमें स्थापन करें और विषम धातुओंको समान करें, उस आहारको हित जानें और उससे विपरीतको अहित जानें यह हित अहितका अनुपवादी लक्षण है ॥ ३० ॥

एवंवादिनश्च भगवन्तमात्रेयमग्नि-  
वेश उवाच । भगवन् ! नन्वेतदे-  
वमुपदिष्टं भूयिष्ठकल्पाः सर्वभिषजो-  
विज्ञास्यन्ति ॥ ३१ ॥

इस प्रकार कहते हुए भगवान् आत्रे-  
यको अग्निवेश बोले कि, हे भगवन् इस  
उपदेशको बहुतसे समस्त वैद्य नहीं जान  
सक्ते ॥ ३१ ॥

तमुवाच भगवान् आत्रेयः । येषां वि-  
दितमाहारतत्त्वमग्निवेश ! गुणतो-  
द्रव्यतः कर्मतः सर्वावयवतो मात्रा-  
दयोभावास्त एतदेवमुपदिष्टं विज्ञा-  
तुमुत्सहन्ते । यथा तु खल्वेतदुप-  
दिष्टं भूयिष्ठकल्पाः सर्वभिषजो वि-  
ज्ञास्यन्ति तथैतदुपदेक्ष्यामः । मा-  
त्रादीन् भावानुदाहरन्तः तेषां हि ब-  
हुविधविकल्पा भवन्ति । आहार-  
विधिविशेषास्तु खलु लक्षणतश्चा-  
वयवतश्चानुव्याख्यास्यामः ३२ ॥

उसके प्रति, भगवान् आत्रेय बोले,  
कि, हे अग्निवेश जो गुण, द्रव्य, कर्म  
संपूर्ण अवयव मात्रा आदि भाव रूपसे

आहारके तत्वको जानते हैं वेही इस उप-  
देशको जान सक्ते हैं, और, जैसे इस उप-  
देशको बहुतसे संपूर्ण जान सकें तिस-  
प्रकारका उपदेश करते हैं कि मात्रा आदि  
भावोंको जो नहीं कहसक्ते उनको बहुत  
प्रकारके विकल्प होते हैं—इससे आहार  
विधिके विशेषोंको लक्षण और अवयवसे  
कहते हैं ॥ ३२ ॥

आहारत्वम् । आहारस्यैकविधम-  
र्थाभेदात् सपुनर्द्रियोनिः स्थावरज-  
ङ्गमात्मकत्वात् । द्विविधः प्रभा-  
वोहिताहितोदकविशेषाच्चतुर्विधो-  
पयोगः पानाशनभक्ष्यलेत्थोपयो-  
गात् । षडास्वादोरसभेदतः षड्-  
विधत्वाद्विंशतिगुणो गुरुलघुशी-  
तोष्णस्निग्धरूक्षमन्दतीक्ष्णास्थि-  
रसरमृदुकठिनविशदपिच्छिल-  
श्लक्ष्णखरसूक्ष्मस्थूलसान्द्रद्रवा-  
नुगमनात् । अपरिसंख्येयविक-  
ल्पो द्रव्यसंयोगकरणबाहुल्यात्  
स्य ये ये विकारावयवा भूयिष्ठमुपयु-  
ज्यन्ते । भूयिष्ठकल्पनाश्च मनुष्या-  
णां प्रकृत्यैव हिततमाश्चाहिततमा-  
श्च तांस्तान्यथावदनुव्याख्यास्या-  
मः । तद्यथा लोहितशालयः शूक-  
धान्यानां पथ्यतमत्वे श्रेष्ठतमाः ।

मुद्गाःशमीधान्यानाम्, आन्तरी  
क्ष्यमुदकानांसैन्धवंलवणानांजी  
वन्तीशाकंशाकानाम्। ऐण्यंमृग  
मांसानांलावःपक्षिणांगोधाविलेश  
यानांरोहितोमत्स्यानांगव्यंसर्पिःस  
र्पिषांगोक्षीरंक्षीराणांतिलतैलंस्था  
वरजातानांस्नेहानांवराहवसाआनू  
पमृगवसानांचुलुकीवसामत्स्यव  
सानांहंसवसाजलचरविहङ्गवसा  
नांकुक्कुटवसाविष्किरशकुनिवसा  
नामाजमेदःशाखादमेदसांशृङ्ग  
वेरंकन्दानांमृद्वीकाफलानांशर्क  
राइक्षुविकाराणाम् । इतिप्र  
कृत्यैवहिततमानामाहारविकारा  
णांप्राधान्यतोद्रव्याणिव्याख्या  
तानि । अहिततमानामप्युप  
देक्ष्यामः । यवकःशूकधान्याना  
मपथ्यत्वेप्रकृतमाभवन्ति ।  
माषाःशमीधान्यानांवर्षानादेयमु  
दकानामौषरंलवणानांसर्षपशा  
कंशाकानांगोमांसंमृगमांसानांका  
लकपोतःपक्षिणाभिकोविलेशया  
नांचिलिचिमोमत्स्यानामाविकं  
सर्पिःसर्पिषामाविक्षीरंक्षीराणां  
कुसुमस्नेहःस्नेहानांस्थावराणांम

हिषवसाआनूपमृगवसानांकुम्भी  
रवसामत्स्यवसानांकाकमद्भुवसा  
जलचरविहङ्गवसानांमूलकंकन्दा  
नांचाटकवसाविष्किरशकुनिव  
सानांहस्तिमेदःशाखादमेदसांलि  
कुचंफलानांफाणितमिक्षुविकारा  
णामितिप्रकृत्यैवअहिततमाना  
माहारविकाराणांनिकृष्टतमानिद्र  
व्याणिव्याख्यातानि । हिताहि  
तावयवानामाहारविकाराणाम्  
अतोभूयःकर्मौषधानांप्राधान्यतः  
सानुबन्धानिद्रव्याणिअनुव्याख्या  
स्यामः । तद्यथाअन्नंवृत्तिकराणां  
श्रेष्ठम्। उदकमाश्वासकराणांसुराश्र  
महराणांक्षीरंजीवनीयानांमांसंवृ  
हणीयानांसस्तर्पणीयानांलवण  
मन्त्रद्रव्यरुचिकराणामंम्लंहृद्या  
नांकुक्कुटोवल्यानांनक्ररेतोवृ  
ष्याणांमधुश्लेष्मपित्तप्रशमनानां  
सर्पिर्वीतपित्तप्रशमनानांतैलंवात  
श्लेष्मप्रशमनानांवमनंश्लेष्महरा  
णांविरेचनंपित्तहराणांबस्तिर्वा  
तहराणांस्वेदोमार्दवकराणांव्या  
यामःस्थैर्यकराणांक्षारःपुस्तवो  
पघातिनांतिन्दुकमनन्त्रद्रव्यरुचि

कराणामामं कपित्थमकण्ठ्या  
 नामाविकं सर्पिरहृद्यानामजाक्षी  
 रंशोषघ्नस्तन्यसात्म्यरक्तसांघ्रा  
 हिकरक्तपित्तप्रशमनानामविक्षी  
 रंश्लेष्मपित्तोपचयकराणामहि  
 पीक्षीरंस्वप्नजननानांमन्दकंदध्य  
 भिष्यन्दकराणांगवेधुकाञ्चकर्ष  
 णीयानामदालकान्नं विरूक्षणी  
 यानामिक्षुर्मूत्रजननानांयवाःपुरी  
 शजननानांजाम्बवंवातजननानां  
 शण्कुल्यःश्लेष्मपित्तजननानां  
 कुलुत्थाअम्लपित्तजननानांमा  
 षाःश्लेष्मपित्तजननानांमदनफलं  
 वसनास्थापनानुवासनोपयोगि  
 नांत्रिवृत्सुखविरेचनानांचतु  
 रङ्गलंमृदुविरेचनानांस्तुक्पयस्ती  
 क्षणविरेचनानांप्रत्यक्पुष्पीशिरो  
 विरेचनानांविडङ्गंक्रिमिघ्नानांशि  
 रीषोविषघ्नानांखदिरःकुष्ठघ्नानां  
 रास्त्रावातहराणामामलकंव्रयः  
 स्थापनानांहरीतकीपथ्यानामे  
 रण्डमूलंवृष्यवातहराणांपिप्पली  
 मूलंदीपनीयपाचनीयानाहप्रशम  
 नानांचित्रकमूलंदीपनीयगुदशूल  
 शोथहराणांपुष्करमूलंहिक्राश्वा  
 सकासपार्श्वशूलहराणांमुस्तंसंघ्रा  
 हकदीपनीयपाचनीयानामुदी

च्यंनिर्वापणीयदीपनीयच्छर्द्यती  
 सारहराणांकङ्कजंसंघ्राहकदीपनी  
 यपाचनीयानाम् । अनन्तासंघ्रा  
 हिकदीपनीयरक्तपित्तप्रशमनाना  
 ममृतासंघ्राहिकवातहरदीपनी  
 यश्लेष्मशोणितविवन्धप्रशमना  
 नांबिल्वंसंघ्राहिकदीपनीयवातक्र  
 फप्रशमनानामतिविपादीपनी  
 यपाचनीयसंघ्राहिकसर्वदोषहरा  
 णामुत्पलकुमुदपद्मकिञ्जल्काः  
 संघ्राहकरक्तपित्तप्रशमनानांदुरा  
 लभापित्तश्लेष्मोपशोषणानांगन्ध  
 प्रियङ्गुःशोणितपित्तातियोगप्रश  
 मनानांकुटजत्वक्श्लेष्मपित्तरक्त  
 संघ्राहकोपशोषणानांकाशमर्ष्यफ  
 लंरक्तसंघ्राहकरक्तपित्तप्रशमनानां  
 पृश्निपर्णीसंघ्राहकवातहरदीपनी  
 यवृष्याणांविदारिगन्धावृष्यसर्व  
 दोषहराणांबलासंघ्राहकबल्यवा  
 तहराणांगोक्षुरकोमूत्रकच्छानिल  
 हराणांहिङ्गुनिर्व्यासःछेदनीयदी  
 पनीयभेदनीयानुलोमिकवातकफ  
 प्रशमनानांअम्लवेतसोभेदनीयदी  
 पनीयानुलोमिकवातश्लेष्मप्रशम  
 नानांयावशूकःसंसनीयपाचनीया

शोधानांतक्राभ्यासोग्रहणीदोषा  
 शोघृतव्यापत्प्रशमनानांक्रव्याद  
 मांसाव्यासोग्रहणीदोषशोषार्शो  
 घ्नानांघृतक्षीराभ्यासोरसायनानां  
 समघृतसक्तुकाभ्यासोवृष्योदा  
 वर्तहराणांतैलगण्डूपाभ्यासोदन्त  
 बलरुचिकराणांचन्दनोदुम्बरंदाह  
 निर्वापणानांरत्नागुरुणीशीतापन  
 यनप्रलेपनानलामज्जकोशीरेदाह  
 त्वग्दोषस्वेदापनयनप्रलेपनानांकु  
 ष्ठांवातहराभ्यङ्गोपनाहयोगिनांम  
 धुकंचक्षुष्यवृष्यकेश्यकण्ठ्यवर्ण्य  
 बल्यविरजनीयरोपणीयानांवायुः  
 प्राणसंज्ञाप्रधानहेतूनामग्निराम  
 स्तम्भशीतशूलोद्वेपनप्रशमनानां  
 जलंस्तम्भनीयानांमृदुष्टलोष्ट  
 निर्वापितमुदकंतृष्णातियोगप्रश  
 म्भनानायतिमात्राशनमामप्रदो  
 पहेतूनांयथाग्न्यभ्यवहरणोऽग्नि  
 सन्धुक्षणानांयथासात्म्यंचेष्टा  
 भ्यवहारःसेव्यानांकालभोजन  
 मारोग्यकराणांवेगसन्धारणमना  
 रोग्यकराणांतृप्तिराहारगुणानांम  
 द्यंसौमनस्यजननानांमद्याक्षेपोधी  
 धृतिस्मृतिहराणांगुरुभोजनंदुर्वि

पाकानामेकाशनभोजनंसुखप  
 रिणामकराणांस्त्रीपुअतिप्रसङ्गः  
 शोषकराणांशुक्रवेगनिग्रहःशा  
 ण्ड्यकराणांपरायतनमन्नमश्र  
 द्वाजननानामनशनमायुषोहा  
 सकराणांप्रमिताशनंकर्षणीयाना  
 मजीर्णाध्यशनग्रहणीदूषणा  
 नांविपमाशनमग्निवैपम्यकराणां  
 विरुद्धवीर्य्यशनंनिन्दितव्याधि  
 कराणांप्रशमःपथ्यानामाया  
 सःसर्वापथ्यानांमिथ्यायोगोव्या  
 धिसुखानांरजस्वलाग्निगमनमल  
 क्ष्मीकाणांब्रह्मचर्य्यमायुष्यकरा  
 णांसङ्कल्पोवृष्याणांदौर्मनस्यम  
 वृष्याणामयथाबलप्रारम्भःप्रा  
 णोपरोधिनांविषादोरोगवर्द्धनानां  
 स्नानंश्रमहराणांहर्षःप्रीणनानांशो  
 कःशोपणानांनिर्वृतिःपुष्टिकरा  
 णामतिस्वमस्तन्द्राकराणांसर्व  
 रसाभ्यासोबलकराणामकरसा  
 भ्यासोदौर्बल्यकराणांगर्भशल्य  
 मनाहाय्याणामजीर्णमुद्धार्या  
 णांवालोमृदुभेषजीयानांवृद्धोया  
 प्यानांगर्भिणीतीक्ष्णौषधव्याघ्रा  
 मवर्जनीयानांसौमनस्यंगर्भधार



काणांसन्निपातोदुश्चिकित्स्याना  
 मामोविषमचिकित्स्यानाञ्च  
 रोरोगाणांकुष्ठदीर्घरोगाणाराज्य  
 क्षमारोगसमूहानांप्रमेहोऽनुपङ्गिनां  
 जलौकसोऽनुशङ्खाणांबस्तिस्त  
 न्त्राणांहिमवानौषधिभूमीनांमरु  
 भूरारोग्यदेशानामनूपमहितदे  
 शानांनिर्देशकारित्वमातुरगुणानां  
 भिषक्चिकित्साज्ञानानास्तिको  
 वज्यानांलौत्यङ्केशकराणाम  
 निर्देशकारित्वमरिटानामनिर्व  
 दआर्त्तलक्षणानांयोगोवैद्यगुणानां  
 विज्ञानमौषधीनांशास्त्रसहितस्त  
 र्कःसाधनानांसम्प्रतिपत्तिःकाल  
 ज्ञानप्रयोजनानामनुद्योगोव्यव  
 सायकालातिपत्तिहेतूनांदृष्टकर्म  
 तानिःसंशयकराणामसमर्थता  
 भयकराणांतद्विद्यसम्भाषाबुद्धिव  
 र्द्धनानामाचार्य्यःशास्त्राधिगम  
 हेतूनामायुर्वेदोऽमृतानांसद्वचन  
 मनुष्ठयानामसम्बद्धवचनसंग्र  
 हणंसर्वाहितानांसर्वसंन्यासःसुखा  
 नामिति ॥ ३३ ॥

अर्थका भेद न होनेसे आहार एक प्रकारका है और वह स्थावर, जंगम-रूप होनेसे दो २ प्रकारका है, दो प्रभा-

वकाभी हित अहितकी अधिकताके विशेषसे ४चार प्रकारका उपयुक्त होता है, कि पान, अशन, भक्ष्य, लेह्यके उपयोगसे उसका आस्वाद छः प्रकारका और छः रसोंके भेदसे बीस प्रकारका गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मंद, तीक्ष्ण, अस्थिर है. शर, मृदु, कठिन, विषद, पिच्छिल, श्लक्ष्ण, खर, सूक्ष्म, स्थूल, सान्द्र, द्रव, अनुगमन, इन भेदोंसे है, उसके असंख्य विकल्प द्रव्य, संयोग करणकी बहुलतासे हैं उसके जो जो विकारावयव अधिक उपयोगी होते हैं और अधिकताकी कल्पनाभी मनुष्योंकी प्रकृतिसे होती है, और अत्यंत हित और अत्यंत अहित जो आहार है उनका यथार्थ रीतिसे वर्णन करते हैं, शूक धान्योंके मध्यमें, लोहितशाली ( साठी ) पथ्यमें अत्यंत उत्तम है, शमी धान्योंके मध्यमें, मूंग और जलोमें मेघका जल, लवणोंमें सैंधव, शाकोंमें जीवन्तीका शाक, मृगके मांसोंमें ऐणका मांस, पक्षियोंमें लावका मांस, विलेश्योंमें गोधा, मत्स्योंमें रोहित, घृतोंमें गौका घृत, दूधोंमें गौका दूध, स्थावर स्नेहोंमें तिलका तेल, बाराह की वसा, अनूप मृगोंकी वसाओंमें चुल्लुकी वसा, मत्स्योंकी वसाओंमें हंसकी वसा, जलचर विहंगोंकी वसाओंमें कुक्कुटकी वसा, विष्किर शकुनियोंकी वसाओंमें, शाखादि मेदाओंमें अजाका भेद, कंदोंमें शृंगवेर, ( अदरख ) फलोंमें

मुनक्का, इक्षुके विकारोंमें शर्करा ये सब प्रकृतिसे अत्यंत हित आहार विकारोंके मध्यमें प्राधान्यसे द्रव्य वर्णन कियेहैं अब अत्यंत अहितों काभी उपदेश करतेहैं कि अपथ्यमें शूकधान्योंमें यवक अत्यंत अपथ्य होतेहैं, शमी धान्योंमें उड़द अत्यंत अपथ्यहै, अग्राह्य जलोंमें वर्षाकी नदी काजल, लवणोंमें ऊपर लवण, शाकोंमें सरसोंका शाक, मृगमांसोंमें गौका मांस, पक्षियोंमें काला कपोत, विलेश्योंमें भेडक, मत्स्योंमें चिलिचिम, घृतोंमें भेडका घृत, दूधोंमें भेडका दूध, स्थावर स्नेहोंमें कुसुंभका स्नेह, उप मृगोंकी वसामें भैंसेकी वसा, मत्स्योंकी वसाओंमें कुंभीरकी वसा, जलचर विहंगोंकी वसाओंमें काक मद्गुकी वसा, कंदोंमें मूली, विष्किर शकुनियोंकी वसाओंमें चाटक की वसा, शाखाभक्षकोंकी मेदाओंमें हस्तिकी मेदा, फलोंमें लिखुच, इक्षुके विकारोंमें फाणित ये सब प्रकृतिसेही अत्यंत अहित आहारके विकारोंमें अति श्रेष्ठ २ वर्णन किये और हित अहितहैं अवयव जिनके ऐसे आहार विकारोंमें फिर भूयः कामकी औषधियोंमें प्राधान्यसे शास्त्रोक्त अनुबंध सहित द्रव्योंका वर्णन करतेहैं, कि वृत्तिके कारणोंमें अन्न श्रेष्ठहै, आश्वासके कारियों में जल, श्रमहारियोंमें सुरा, जीवनीयोंमें दूध, वृंहणीयोंमें मांस, अन्न द्रव्यके रोचकोंमें लवण, हृद्योंमें अम्ल द्रव्य, बल्यों में मुरगा, वृष्योंमें नक्रकारेत, कफपित्तके प्रशमनोंमें मधु, वातपित्तके प्रशमनोंमें घृत,

वात कफके प्रशमनोंमें तैल, कफहारकोंमें वमन, पित्तहारकोंमें विरेचन, वातहारकोंमें वस्ति, मृदुताके कारकोंमें स्वेद, स्थिरताके कारकोंमें व्यायाम, पुंस्त्वके उपधातियोंमें क्षार, अन्नभिन्न रुचिकारी द्रव्योंमें तिंदुक, कंठके अहितोंमें आमका पित्त, अहृद्योंमें भेडका घी और शोक नाशक स्तन्य सात्म्य रक्त संग्राही प्रशमन इनके मध्यमें बकरीका दूध, कफ पित्तके वर्द्धकोंमें भेडका दूध, स्वप्नके उत्पन्न कर्ताओंमें भैंसका दूध, अभिष्यंदके कर्ताओंमें मंदकदधि, कुशनीयोंमें गवेधुक, (गेंहूं अन्न) विरुक्षणीयोंमें उद्दालक अन्न, मूत्रजनकोंमें इक्षु, पुरीषजननोंमें जौ, वातजनकोंमें जामन, कफ पित्तके जनकोंमें पूरी, अम्लपित्तके जननोंमें कुलथी—कफपित्तके जनकोंमें उड़द, वमन आस्थापन अनुवासन इनके उपयोगियोंमें मैनफल, सुख विरेचनोंके मध्य निसोथ, मृदु विरेचनोंके मध्यमें चतुरंगुल, तीक्ष्ण विरेचनोंके मध्यमें स्नुहीका ( थोहड ) दूध, शिर विरेचनोंके मध्यमें प्रत्यक् पुष्पा, क्रिमिनाशकोंमें वायविडंग, विषनाशकोंमें शिरस, कुष्ठनाशकोंमें खदिर, वातहारकोंमें रायसन, वयःस्थापकोंमें आमलक, पथ्योंमें हरीतकी, वृष्य और वातहारकोंमें एरंडकी जड, दीपनीय पाचनीय आनाहके प्रशमन इनतीनोंके मध्यमें पीपलामूल, दीपनीय गुदाका शूल शोफनाशक इनमें चीतेकी जड हिक्का श्वास कास पार्श्वशूल इनके नाशकोंमें पोहकर-

मूल, संग्राही दीपनीय पाचनीयोंमें मोथा, निर्वापण, दीपनीय, छादि और अतीसार नाशक इनमें उदीच्य, ( वाला ) संग्राहक दीपनीयोंमें कट्वंग, ( सोनापाठा ) संग्राहक रक्तपित्तप्रशमनोंमें गिलोह वा पीपल, संग्राहक, दीपनीय, कफ, शोणित, विबंध इनके प्रशमनोंमें अमृता, ( गिलोह ) संग्राहक दीपनीय वातकफप्रशमनोंमें बिल्व, दीपनीय पाचनीय संग्राहक सर्व दोषहर इनमें अतिविषा, ( अतीस ) किंजल्क संग्राहक रक्त पित्तके प्रशमनोंमें उत्पल, ( कुमुदपद्म ) पित्त कफके शोषणोंमें दुरालभा, ( जवासा ) शोणित अत्यंत पित्त योगके प्रशमनोंमें गंधप्रियंगु, कफ पित्तरक्त संग्राहक उपशोषणोंमें कूटकी त्वचा, रक्तसंग्राहक प्रशमनोंमें काश्मर्यफल, संग्राहक वातहर दीपनीय वृष्य इनमें पृश्निपर्णी, ( पिठवन ) वृष्य सर्व दोष हरोंमें विदारीकंद, संग्राहक बंध वातहरोंमें बला, मूत्रकृच्छ्रवातहरोंमें गोखरू, निर्यास छेदनीय दीपनीय आनुलोमिक वातकफके प्रशमन इनमें हींग, भेदनीय दीपनीय आनुलोमिक वात कफप्रशमनोंमें अमलवेत, संसनीय पाचनीय अशोघ्न इनमें यावजूक, ग्रहणी दोष अर्श घृतकी आपत्ति इनके प्रशमनोंमें तक्रका अभ्यास, ग्रहणी दोष अशोघ्नोंमें मांसके भक्षकोंका मांस, रसायनोंमें घृत दूधका अभ्यास, वृष्य उदावर्तहर इनमें समान घृतके संतृओंका अभ्यास, दंतवलय रुचिकरोंमें तैलके

गंडूषोंका अभ्यास, दाह निर्वापणों आलेपनोंमें चंदन, गूलर शीतापनयन प्रलेपन इनमें रायसन और अगर दाह त्वचाके दोष स्वेदापनयन प्रलेपन इनमें लामज्जक उसीर ( खस ) वातहर अभ्यंजन उपानहके योगी इनमें कूट, चक्षु केश कंठवर्ण इनके हितकारी, विरजनीय रोपणीय इनमें महुआ, प्राण संज्ञा इनके प्रधान हेतुओंमें वायु, आमस्तंभ शीतशूलोद्वेपनके प्रशमनोंमें अग्नि, स्तंभनीयोंमें जल आति तृष्णाके प्रशमनोंमें भुनी मिट्टीसे और लोष्ठसे बुझाया जल दोषके हेतुओंमें आति भोजन, अग्निके संधुक्षणोंमें अग्निके अनुसार भोजन, चेष्टा अभ्यवहार, उपसेव्योंमें सात्म्यके अनुसार रहना, आरोग्यकारकोंमें समयपर भोजन, अनारोग्यके कारणोंमें वेगका संधारण, भोजनके गुणोंमें तृप्ति, सौमनस्यके उत्पादकोंमें मद्य, बुद्धि धैर्य स्मृति इनके नाशकोंमें मद्यका आक्षेप, दुर्विपाकोंमें गुरुभोजन, सुख परिणामके कर्ताओंमें एक काल भोजन शोकके द्वारोंमें स्त्रीका प्रसंग, नपुंसक होनेके कारणोंमें शुक्रके वेगका निग्रह और अश्रद्धा आदि उत्पादकोंमें पराये आयतन ( गृह ) का अन्न, आयुकी न्यूनताके कारणोंमें अनशन, कृशकारी योंके मध्यमें प्रमित भोजन, गृहिणीके दूषणोंमें अजीर्ण और अध्यशन, अग्निकी विषमताके कारकोंमें विषमभोजन, निन्दित व्याधिकारकोंमें विरुद्ध वीर्यका

भोजन, पथ्योंमें शान्ति, संपूर्ण अपथ्योंमें आयास, ( श्रम ) व्याधिके मुखोंमें मिथ्यायोग, लक्ष्मीके नाशकारकोंमें रजस्वलाका गमन, आयुष्यके कर्ताओंमें ब्रह्मचर्य, वृष्योंमें संकल्प, अवृष्योंमें दौर्मनस्य प्राणके उपरोधियोंमें अयोग्य बलसे प्रारंभ, रोगवर्द्धकोंमें विपाद, श्रमके हारकोंमें स्रान, प्रीतिके कारणोंमें हर्ष, शोषके कर्ताओंमें शोक पुष्टिके कारणोंमें निर्वृति, तन्द्राके कारणोंमें अति स्वप्न, बलके कारणोंमें सर्व रसोंका अभ्यास, दुर्बलताके कारणोंमें एक रसका अभ्यास, अनाहार्योंमें गर्भ शल्य, उद्धार करने योग्योंमें अजीर्ण, मृदु औषधि करने योग्योंमें बालक, वापन करने योग्योंमें वृद्ध, तीक्ष्ण औषधि व्यायाम, इनके वर्जन कर्ताओंमें गर्भिणी, गर्भके धारकोंमें सौमनस्य, कठिनतासे चिकित्साके योग्योंमें सन्निपात, विषम चिकित्साके योग्योंमें आम, रोगोंमें ज्वर, दीर्घ रोगोंमें कुष्ठ, रोगके समूहोंमें राज-यक्ष्मा, अनुषंगके रोगोंमें प्रमेह अनु-शस्त्रोंमें जलके जीवतन्त्रोंमें वस्ति, औषधिकी भूमियोंमें हिमाचल, आरोग्य देशोंमें मरुस्थल, अहित देशोंमें अधिक जलका देश, आतुरके गुणोंमें आज्ञाका करना, चिकित्साके अंगोंमें वैद्य, वर्जनके योग्योंमें नास्तिक, कुशके कर्ताओंमें चपलता, अनिष्टोंमें आज्ञाका न करना, वान्तके लक्षणोंमें अनिवेद, वैद्यके गुणोंमें योग, औषधियोंमें विज्ञान,

साधनोंमें शास्त्रसहित तर्क काल-ज्ञानके प्रयोजनोंमें संप्रतिपत्ति, व्यवसाय कालके अवलंघनके हेतुओंमें अनुयोग, निस्संशयके कारणोंमें धृष्टकर्मता, भयके कारणोंमें असमर्थता बुद्धिके वर्द्धकोंमें बुद्धिमानोंके साथ संभाषण, शास्त्रकी प्राप्तिके हेतुओंमें आचार्य, अमृतोंमें आयुर्वेद, अनुष्ठान करने योग्योंमें सद्बचन संपूर्ण अहितोंमें असंबद्ध वचनका संग्रह, सुखोंमें सबका सन्यास इति ॥ ३३ ॥

भवन्तिचात्र ।

अध्याणांशतमुद्दिष्टं दूद्विपञ्चाशदुत्तरम् । अलमेतद्विकाराणां विधातायोपदिश्यते ॥ ३४ ॥

इसमें ये श्लोक हैं कि ये १५२ एकसौ वामन, अध्या ( मुख्य ) वर्णन किये हैं विकारोंके विधातके लिये ये समर्थ कहे हैं ॥ ३४ ॥

समानकारणायैऽर्थास्तेषां श्रेष्ठस्य लक्षणम् । ज्यायस्त्वं कार्यकारित्वेऽवरत्वं चाप्युदाहृतम् ॥ ३५ ॥

और समान कारण जो अर्थ हैं उनमें श्रेष्ठका लक्षण उपदेश किया कार्यके कर्ताओंमें अत्यंत श्रेष्ठता और अश्रेष्ठता कही ॥ ३५ ॥

वातपित्तकफेभ्यश्च यद्यत्प्रशमने हितम् । प्राधान्यतश्च निदिष्टं द्व्याधिहरमुत्तमम् ॥ ३६ ॥

वात, पित्त, कफ इनकी शान्तिमें जो हितहै और जो व्याधिके हारकोंमें उत्तम है वहभी प्रधानतासे वर्णन किया ३६

एतन्निशम्यनिपुणंचिकित्सांसम्प्र  
योजयेत् । एवंकुर्वन्सदावैद्यो धर्म  
कामौसमश्नुते ॥ ३७ ॥

इन सबको निपुणतासे जानकर चिकित्साके प्रयोगको करे इस प्रकार करता हुआ वैद्य सदैव धर्म कामको भोगताहै ॥ ३७ ॥

पथ्यंयथानपेतंयद्यच्चोक्तंमनसःप्रि  
यम् । यच्चाप्रियमपथ्यश्चनियतं  
तन्नलक्षयेत् ॥ ३८ ॥

जो मार्गके अनुसार है और जो मन को प्रिय कहाहै वह पथ्य और जो नियमसे अप्रियहै वह अपथ्यहै उसको न देखे ॥ ३८ ॥

मात्राकालक्रियाभूमिदेहदोषगुणा  
न्तरम् । प्राप्यतत्तद्धिदृश्यन्तेत  
तोभावास्तथातथा ॥ ३९ ॥

मात्रा, काल, क्रिया, भूमि, देह, दोष और गुणान्तर इनमें जिस तिसको प्राप्त होकर तिस तिस प्रकारके भाव देखतेहैं ३९

तस्मात्स्वभावोनिर्दिष्टस्तथामा  
त्रादिराश्रयः । तदपेक्ष्योभयंकर्म  
प्रयोज्यंसिद्धिमिच्छता ॥ ४० ॥

तिससे स्वभाव और मात्रा आदिका आश्रय वर्णन कियाहै इन दोनोंकी

अपेक्षासे सिद्धिका अभिलाषी वैद्य चिकित्साको करे ॥ ४० ॥

तदात्रेयस्यभगवतोवचनमनुनिश  
म्यपुनरपिभगवन्तमात्रेयमग्निवेश  
उवाच । यथोद्देशमग्निनिर्दिष्टः  
केवलोऽयमर्थोभगवताश्रुतस्तव  
स्माग्निः । आसवद्रव्याणामिदा  
नीलक्षणमनतिसंक्षेपेणोपदिश्य  
मानंश्रुश्रूपामहेइतितमुवाचभगवा  
नात्रेयः । धान्यफलसारपुष्पका  
ण्डपत्रत्वचोत्तवन्यासवयोनयः  
अग्निवेश ! संग्रहेणाष्टौशर्करानव  
मास्तासुद्रव्यसंयोगकरणतोऽपरि  
संख्येयासुयथापथ्यतमानासवामा  
नांचतुरशीतिनिबोधसुरासौवीर  
तुषोदकमैरेयमेदकधान्याम्लपङ्  
धान्यावासवाः । मृद्वीकाखर्जूर  
काश्मर्यधन्वनराजादनतृणशूल्य  
परूपाभयामलकमृगलण्डिकाजाम्ब  
वकपित्थ-बकुल-बदरकर्कन्धुपीलु  
पियालपनसन्त्यग्रोधाश्वत्थपुक्षक  
पीतनोदुम्बराजमोदशृङ्गाटकशं  
खिनीतिफलासवाःषड्विंशतिः ।  
विदारिगन्धाश्वगन्धाकृष्णगन्धा  
शतावरीश्यामात्रिवृद्धन्तीद्रवन्ती

विल्वोरुमुकचित्रमूलैरेकादशमू  
लासवाः । शालप्रियकाश्वकर्ण  
चन्दनस्यन्दनखदिरकदरसप्तप  
र्णाजुनासनारिमेदतिन्दुककिणि  
हीशमीशुक्तिशिशपाशिरीपवञ्जु  
लधन्वनमधूकसारासवाविंशतिः ।  
पद्मोत्पलनलिनकुमुद-सौगन्धिक  
पुण्डरीकशतपत्रमधूक-प्रियङ्गु  
धातकीपुष्पैर्दशमाः पुष्पासवाः ।  
इक्षुकाण्डेशुद्धक्षुवालिकापुण्ड्रक  
चतुर्थाः काण्डासवाः । पटोलता  
डौपत्रासवौ द्वौ भवतः । तिलक  
लोध्रैलवालुकक्रमुकचतुर्थास्त्व  
गासवा भवन्ति । शर्करासव एक  
एव । इत्येपामासवानामासुत  
त्वादासवसंज्ञा एवमेपामासवानां  
चतुरशीतिः परस्परेणासंस्पृष्टा  
नामासवद्रव्याणामुपनिर्दिष्टाः ।  
द्रव्यसंयोगविभागस्त्वेषां बहुविक  
ल्पसंस्कारश्च यथास्वयोनिसंस्कार  
संस्कृताश्चासवाः स्वं कर्म कुर्वन्ति  
संयोगसंस्कारदेशकालमात्रादय  
श्च भावास्तेषां तेषामासवानां तै  
समुपदिश्यन्ते तत्तत्कार्यमभिसमी  
क्ष्येति ॥ ४१ ॥

इस आत्रेयके वचनको सुनकर फिर  
भी अग्निवेश भगवान् आत्रेयको बोले-  
कि यह अर्थ भगवानने केवल उद्देश  
के अनुसार वर्णन किया, अब हम  
आसवद्रव्योंके अत्यन्त विस्तारसे, लक्ष-  
णको आपके उपदेशद्वारा सुना चाहते हैं,  
उस अग्निवेशके प्रति भगवान् आत्रेय  
बोले, कि धान्य, फल, सार, पुष्प, काण्ड,  
पत्र, त्वचा ये आसवकी योनि हैं, हे  
अग्निवेश, संग्रहसे ये आठ और नवभी  
शर्करा उनमें होती हैं, उनमें द्रव्यके संयोग  
करनेसे संख्याके अयोग्य जिस प्रकार  
अत्यन्त पथ्य आसवोंकी चौरासी ८४  
संख्या है उसको तुम, सुनो मुरा, सौवीर,  
तुपोदक, मैरेय, मेदक, धान्य, अम्ल  
पष्ठ ६ धान्यके आसव हैं. मुनक्का, खजूर,  
काश्मर्य, ( केशर ) धन्वन, राजादन,  
तृण, शूल्य, ( मांस ) परुष, हरड,  
आमले, मृगलिण्डिका, जामुन, केंत,  
वकुल, वेर, कर्कन्धु, पीलु प्रियाल,  
पनस, बट, पीपल, पिलखन, कपीतन,  
गूलर, अजमोद, सिंघाडा, शंखिनीका  
फल, इनके २६ छव्वीस, आसव हैं  
और विदारगंधा, अश्वगंधा, कृष्णगंधा,  
शतावर, इयामा, त्रिवृत्, दन्ती, द्रवन्ती,  
विल्व, उरुक, चित्रक ये ग्यारह मू-  
लासव हैं, शाल, प्रियक अश्वकर्ण  
चंदन, स्यन्दन, खदिर, कन्दर, सप्तपर्ण,  
अर्जुन, असन, अरिमेध, ( खैर ) तिन्दुक,  
किणही, ( ओंगा ) शमी, शुक्ति, शिशपा,  
शिरस, बंजुल, धन्वन, मधुक ये बीस सारा

सर्वहैं, पद्म, उत्पल, नलिन, कुमुद, सौगंधिक, पुंडरीक, शतपत्र, मधूक, प्रियंगु, धाईके पुष्प ये दश पुष्पोंके आसव, इक्षु कांड, इक्षु, इक्षुवालिका, पौंडा ये काण्ड के आसवहैं, पटोल ताड ये दो पत्रासवहैं तिल्लक, लोध, एल, बालुक, क्रमुक ये चार त्वचाके आसव होतहैं, शर्कराका आसव एकहीहै इन आसवोंको इन औषधियोंमें होनेसे आसव संज्ञाहै इस प्रकार ये आसव चौरासी हैं, वे परस्पर विना मिले आसव द्रव्योंके दिखायेंहैं इनका द्रव्य संयोग विभागतो अनेक विकल्पसे युक्तहै और संस्कारभी बहु विकल्प और यथा योनि संस्कारसे संस्कृत आसव अपने कर्मको करतेहैं, संयोग, संस्कार, देश, मात्राकाल आदि स्वभाव उन आसवोंके जो २ हैं वे २ तिसं २ कार्यको देखकर भली प्रकार उपदेश किये जातहैं ॥ ४१ ॥

भवंतिचात्र ।

मनःशरीराग्निबलप्रदानामस्वप्न शोकारुचिनाशनानाम् । संहर्षणानांप्रवरासवानामशीतिरुक्ताच तुरुत्तरैषा ॥ ४२ ॥

इसमें यह श्लोक हैं कि मन, शरीर, अग्नि इनके बल दाताओंकी अस्वप्न शोक अरुचिके नाशकोंकी संहर्षणोंकी और प्रवर आसवोंकी यह चौराशी कही ४२ शरीरयोगप्रकृतौ मतानितत्त्वेन

चाहारविनिश्चयोयः । उवाच यज्जः पुरुषादिकेऽस्मिन्मुनिस्तथा ग्याणिवरासवांश्च इति ॥ ४३ ॥

इति अन्नपानचतुष्के यज्जः पुरुषीयोऽध्यायः समाप्तः ।

शरीर योगकी प्रकृतिमें जो संमतहै और तत्त्वसे जो आहारका विनिश्चयहै मुख्य द्रव्य और उत्तम २ आसव ये सब मुनिने यज्जः पुरुषादिके इस अध्यायमें वर्णन कियेहैं इति ॥ ४३ ॥ अन्न पानचतुष्के यज्जः पुरुषाध्यायः समाप्तः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः ।

अथातो आत्रेय भद्रकाप्यीयम्

ध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

इसके अनंतर आत्रेय भद्रका पीय अध्यायका वर्णन करतेहैं यह भगवान् आत्रेय कहतेहैं कि ॥

आत्रेयो भद्रकाप्यश्च शाकुन्तेय

स्तथैव च । पूर्णस्व्यश्चैव मौद्गल्यो

हिरण्याक्षश्च कौशिकः ॥ १ ॥

आत्रेय भद्रकाप्य और शाकुन्तेय पूर्ण मौद्गल्य हिरण्याक्ष कौशिक ॥ १ ॥

यः कुमारशिरानामभरद्वाजः स चा

नघः । श्रीमान्वाप्योविदश्चैवरा

जामतिमतांवरः ॥ २ ॥

और जिसका कुमार शिरानामहै वह पापोंसे रहित भरद्वाज और बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ और श्रीमान् वायोंविद राजा ॥ २ ॥

निमिश्वराजवैदेहोवडिशश्चमहा मतिः । काङ्कायनश्चवाहीकोवा हीकभिपजावरः ॥ ३ ॥

राजा निमि, वैदेह और महामति वडिश और कांकायन और भिपजोंमें श्रेष्ठ वालहीक ॥ ३ ॥

एतेश्रुतवयोवृद्धाजितात्मानोमहर्षयः । वनेचैत्ररथेरम्येसमीयुर्वि जिहीर्षवः ॥ ४ ॥

शास्त्र और अवस्थामें वृद्ध ये सब महर्षि संदेहके दूर करनेके अर्थ रमणीक चैत्ररथवनमें आते भये ॥ ४ ॥

तेपांतत्रोपविष्टानामियमर्थवती कथा । बभूवार्थविदांसम्यक् संहारविनिश्चये ॥ ५ ॥

वहां बैठे हुये उनके मध्यमें यह अर्थ-वाली कथा अर्थके ज्ञाताओंमें हुई कि भलीप्रकार रस और आहारका विनिश्चय क्याहै किं ॥ ५ ॥

एकएवरसइत्युवाचभद्रकाप्योयं पञ्चानामिन्द्रियार्थानामन्यतमं जिह्वावैषयिकंभावमाचक्षतेकुशलाः । सपुनरुदकादनन्यइति ६

एकही रसहै यह भद्रकाप्यने कहा जो पांचों इंद्रियोंके विषयोंमें कोईसे

जिह्वाका विषय भाव कुशल कहतेहैं और वह जलसे अन्य नहीं है ॥ ६ ॥

द्वौरसावितिशाकुन्तेयोब्राह्मणश्छेदनीयश्चोपशमनीयश्चेति ॥ ७ ॥

दो रसहैं यह शाकुन्तेय ब्राह्मण कहते भये कि छेदनी और उपशमनीय ॥ ७ ॥

त्रयोरसाइतिपूर्णाक्षःमौद्गल्यश्छेदनीयोपशमनीयौसाधारणाश्च ८

तीन रसहैं यह पूर्णाक्षमौद्गल्यने कहा कि छेदनीय, उपशमनीय और साधारण ॥ ८ ॥

चत्वारोरसाइतिहिरण्याक्षःकौशिकःस्वादुर्हितश्चस्वादुरहितश्च

अस्वादुरहितश्चास्वादुर्हितश्चेति ९

चार रसहैं यह हिरण्याक्ष कौशिकने कहा कि स्वादु अहित स्वादुहित अस्वादुअहित अस्वादुहित ॥ ९ ॥

पञ्चरसाइतिकुमारशिराभरद्वाजो भौमोदकाग्नेयवायवीयान्तरिक्षाः १०

पांच रसहैं यह कुमारशिरा भरद्वाजने कहा कि भूमि, जल, अग्नि, वायु आकाश इन पांचोंसे उत्पन्न ॥ १० ॥

षड्रसाइतिवाय्व्योविदोराजर्षिःगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षाः ११

छः रसहैं यह वायोंविदोराजर्षिने कहा किगुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष ॥ ११ ॥



सप्तरसाइतिनिमिवैदेहोमधुराम्लल

वणकटुकतिक्तकपायक्षाराः १२

सात रसहैं यह वैदेह निमिने कहा  
कि मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कपाय,  
तिक्त, क्षार ये प्रकटहैं ॥ १२ ॥

अष्टौरसाइतिबडिशोधामार्गवोम

धुराम्ललवणकटुतिक्तकपायक्षा

राव्यक्ताः ॥ १३ ॥

आठ रसहैं यह बडिशोधामार्गव कहते  
हैं कि मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त,  
कपाय, क्षार ॥ १३ ॥

अपरिसंख्येयारसाइतिकाङ्कायनो

वाह्लीकभिषगाश्रयगुणकर्मसंस्का

रविशेषाणामपरिमेयत्वात् १४ ॥

असंख्य रसहैं यह कांकायन वाह्लीक  
कहते भये क्योंकि वैद्य आश्रय गुण  
कर्म संस्कार ये विशेष अपरिमितहैं १४

षडेवरसाइत्युवाचभगवानात्रेयः

पुनर्वसुःमधुराम्ललवणकटुतिक्त

कपायाः । तेषांपण्णारसानांयो

निरुदकम् । छेदनोपशमनेद्वेक

र्मणी । तयोर्मिश्रीभावात्साधार

णत्वंस्वादस्वादुताभक्तिः । द्वौ

हिताहितौप्रभावौ । पञ्चमहामूत

विकारास्त्वाश्रयाः ॥ १५ ॥

छःहीरसहैं यह भगवान् आत्रेय,  
पुनर्वसु कहते भये कि मधुर, अम्ल,

लवण, कटु, तिक्त, कपाय इन छःओंकी  
योनिजलहैं छेदन, उपशमन दो कर्म हैं,  
उनके मिलानेसे साधारणताहैं और  
स्वादु, अस्वादुता, भक्ति, हित, अहित,  
नामके दो प्रभाव, पांच महामूतोंके  
विकारतो आश्रयहैं ॥ १५ ॥

प्रकृतिविकृतिविचारदेशकालवशा

स्तेपुआश्रयेपुद्रव्यसंज्ञकेपुगुणागुरु

लघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्याः १६ ॥

जो प्रकृति, विकृति, विचार, देश, काल  
इनके वशहैं उन द्रव्यसंज्ञक आश्रयोंमें  
गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष आदि  
गुणहैं ॥ १६ ॥

क्षरणात्क्षारोनासौरसोद्रव्यंतदने

करससमुत्पन्नमनेकरसंकटुकलव

णभूयिष्ठमनेकेन्द्रियार्थसमन्वितं

करणाभिनिर्वृत्तम् ॥ १७ ॥

क्षरणसे क्षार होताहै, वह रस नहीं है, वह  
द्रव्य अनेक रसोंसे उत्पन्न, अनेक रस  
कटु, लवण की अधिकतासे अनेक  
प्रकारका अनेक इन्द्रिय और अर्थसे  
युक्त करणसे निर्वृत्त ( पैदा ) होताहै १७

अव्यक्तीभावस्तुखलुरसानांप्रकृ

तावनुरसेअनुरससमन्वितेवाद्रव्ये

और रसोंका अव्यक्त होना तो प्रकृति  
अनुरस वा अनुरससे समन्वितद्रव्यमेंहै १८

अपरिसंख्येयैत्वंपुनरेतेषामाश्रया

दीनांभावानांविशेषान्नाश्रयतेन

चतस्मादन्यत्वमुपपद्यते ॥ १९ ॥

और इन आश्रय आदिभावोंकी परि-  
संख्या नहीं है द्रव्य विशेषोंका आश्रय  
नहीं लेती है उससे अन्य नहीं हो जाता १९

परस्परसंसृष्टभूयिष्ठत्वान्नचैषाम  
निवृत्तिर्गुणप्रकृतीनामपरिसंख्येय  
त्वंभवति । तस्मान्नसंसृष्टानारसा  
नां कर्मोपदिशन्तिबुद्धिमन्तः २०

और परस्पर मेल की अधिकतासे  
इनकी अनिवृत्ति ( उत्पत्ति ) नहीं है गुण  
प्रकृतियोंके भेदसे असंख्येय द्रव्य होता है  
तिससे बुद्धिमान् मनुष्य संसृष्ट रसोंके  
कर्मका उपदेश नहीं करते ॥ २० ॥

तच्चैवकारणमपेक्षमाणाः पण्यारसा  
नां परस्परेणासंसृष्टानां लक्षणपृथ-  
क्कमुपदेक्ष्यामः । अग्रे तु तावद्द्र-  
व्यभेदमभिप्रेत्य किञ्चिदभिधास्या-  
मः । सर्वद्रव्यं पाञ्चभौतिकमस्मि-  
न्नेवार्थे तच्चेतनावदचेतनञ्च । त-  
स्य गुणाः शब्दादयोगुर्वाद्यश्च द्रवा-  
न्ताः । कर्मपञ्चविधमुक्तं वमनादि २१

उसी कारणकी अपेक्षा करते हुए  
हम परस्पर नहीं मिले हुए छःओं र-  
सोंका पृथक् २ लक्षण उपदेश करते हैं  
फिर आगे तो द्रव्य भेदके अभिप्राय  
किञ्चित् कहेंगे सब द्रव्य पञ्चभूतोंसे  
उत्पन्न है इसी अर्थमें वह चेतन है और  
अचेतन है उसके गुण शब्द आदि और

गुरु आदि द्रव पर्यंत हैं—वमन आदि  
पांच प्रकारका कर्म कहा है ॥ २१ ॥

तत्र द्रव्याणि गुरु खर कठिन मन्द स्थि-  
र विषद सान्द्र स्थूल गन्ध गुण बहुला  
निपार्थिवानितान्युपचयसङ्घात  
गौरवस्थैर्यकराणि ॥ २२ ॥

उसमें गुरु, खर, कठिन, मंद, स्थिर,  
विषद, सान्द्र, स्थूल, गंध ये गुण जिनमें  
अधिक हों पार्थिव द्रव्य हैं वे उपचय  
संघात, गौरव, स्थिरता इनके कारक हैं २२

द्रव स्निग्ध शीत मन्द मृदु पिच्छि-  
ल रस गुण बहुलान्याप्यानितान्यु-  
त्क्लेदस्नेहबन्धविप्यन्दप्रह्लादकरा-  
णि ॥ २३ ॥

और द्रव स्निग्ध, शीत, मंद, मृदु  
पिच्छिल, रसोंके गुण जिनमें अधिक हैं  
वे आप्य ( जलीय ) हैं वे उत्क्लेद, स्नेह  
बंध, विप्यन्द, आनंदके कर्ता हैं ॥ २३ ॥

उष्ण तीक्ष्ण सूक्ष्म लघु रूक्ष  
पगुण बहुलानि आग्नेयानितानि दा-  
हपाकप्रभाप्रकाशवर्णकराणि २४

और उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, लघु, रूक्ष,  
विषद, रूप, गुण जिनमें अधिक है, वे  
आग्नेय हैं, वे दाह, पाक, प्रभा, प्रकाश,  
वर्ण इनके कारक हैं ॥ २४ ॥

लघु शीतरूक्ष खर विषद सूक्ष्म स्पर्श  
गुण बहुलानि वायव्यानितानि रौ-

क्ष्यग्लानिविचारवैषद्यलाघवकराणि ॥ २५ ॥

और लघु, शीत, खर, विषद, सूक्ष्म, स्पर्श ये गुण जिनमें अधिकहैं वे वायु वीर्यहैं, वे रूक्षता, ग्लानि, विचार, वैषद्य, लाघव, इनको करतेहैं ॥ २५ ॥

मृदु लघु सूक्ष्म श्लक्ष्णशब्दगुणबहुलान्याकाशात्मकानितानि मार्दवसौषिर्ग्यलाघवकराणि ॥ २६ ॥

और मृदु लघु सूक्ष्म श्लक्ष्ण, शब्द, ये गुण जिनमें, अधिकहैं वे आकाशात्मक हैं वे मार्दव, सौषिर्ग्य लाघवके कारकहैं ॥ २६ ॥

अनेनोपदेशेनानौषधिभूतं जगति किञ्चिद्द्रव्यमुपलभ्यते। तां युक्तिमर्थञ्च तंतमभिप्रेत्य न च गुणप्रभावादेव कार्मुकाणि भवन्ति ॥ २७ ॥

इस उपदेश से नाना औषधि रूपसे जगत्में किञ्चित् द्रव्य मिलताहै, उस युक्ति और तिस २ अर्थके अभिप्रायसे कुछ गुणके प्रभावसेही कारककारी नहीं होते ॥ २७ ॥

द्रव्याणि हि द्रव्यप्रभावाद्गुणप्रभावाच्च तस्मिन् तस्मिन्काले तत्तदाधिष्ठानमासाद्य तां तां च युक्तिं यत्कुर्वन्ति तत्कर्म येन कुर्वन्ति तद्दीर्घ्यं, यत्र कुर्वन्ति तदधिकरणं यदा कुर्वन्ति सकालो यथा कुर्वन्ति स उपायो यत्साध्यन्ति तत्फलम् ॥ २८ ॥

क्योंकि द्रव्य द्रव्यके प्रभावसे गुणके प्रभावसे द्रव्यगुणके प्रभावसे, तिस तिसकालमें तिस तिस अधिष्ठान और तिस तिस युक्तिको प्राप्त होकर, जिसको करतेहैं वह कर्महै जिससे करतेहैं—वह वीर्य जिसमें करते हैं वह अधिकरण जब करतेहैं वह काल जैसे करतेहैं वह उपाय, जिसको, करतेहैं वह फल, होताहै ॥ २८ ॥

भेदश्चैषां त्रिषष्टिविधिविकल्पोऽत्र व्यदेशकालप्रभावात्तदुपदेक्ष्यामः ॥ २९ ॥

और इनका भेद द्रव्य, देश, कालके प्रभावसे ६३ तिरसठ प्रकारके विकल्पका जोहैं उसका उपदेश करतेहैं कि ॥ २९ ॥

स्वादुरम्लादिभिर्योगं शेषैरम्लादयः पृथक् । यानि पञ्चदशैतानि द्रव्याणि हिरसानितु ॥ ३० ॥

स्वादुका अम्ल आदिके संग योग, पृथक् २ अम्ल आदिका शेष रसोंके संग योग ये पंद्रह द्रव्य जो द्विरस होतेहैं ॥ ३० ॥

पृथगम्लादियुक्तस्य योगः शेषैः पृथग्भवेत् । मधुरस्य तथा म्लस्य लवणस्य कटोस्तथा ॥ ३१ ॥

पृथक् २ अम्ल आदिसे युक्तका जो शेष रसोंके संग पृथक् २ योग होताहै, मधुरका, अम्लका, लवणका और कटुका ॥ ३१ ॥

त्रिरसानियथासंख्यंद्रव्याण्युक्ता  
निर्विंशतिः । वक्ष्यन्तेतुचतुष्के  
णद्रव्याणिदशपञ्चच ॥ ३२ ॥

ये यथा संख्य वीस २० द्रव्य, त्रिरस  
कहेहें, अव चतुष्क रसके पंद्रह द्रव्योंको  
कहतेहें ॥ ३२ ॥

स्वादाम्लौसहितौयोगंलवणाथैः  
पृथग्गतौ । योगंशेषैःपृथक्क्रयातः  
चतुष्करससंख्यया ॥ ३३ ॥

कि मिले हुए स्वादु, अम्ल, लवण  
आदिके संग पृथक् २ योगको प्राप्त होकर  
शेषोंके संग पृथक् योगको प्राप्त होकर  
संख्यासे चाररस होतेहें ॥ ३३ ॥

सहितौस्वादुलवणौतद्वत्कद्वादि  
भिःपृथक् । युक्तौशेषैःपृथग्योगं  
यातःस्वादूपणौयथा ॥ ३४ ॥

तिसीप्रकार मिलेहुए स्वादु और लवण  
कटु आदिसे शेषोंके संग पृथक् योगोंको  
प्राप्त होकर और तिसी प्रकार मिले हुए  
स्वादु और ऊषणभी शेषोंके संयोगसे  
चार प्रकारके होतेहें ॥ ३४ ॥

कद्वाद्यैरम्ललवणौसंयुक्तौसहितौ  
पृथक् । यातःशेषैःपृथग्योगंशेषैः  
रम्लकटूतथा ॥ ३५ ॥

कटु आदिसे संयुक्त अम्ल और  
लवण दोनों पृथक् २ रसोंसे सहित होकर  
शेषोंके संग पृथक् २ योगको प्राप्तहोकर  
और तिसीप्रकार शेषोंके संग अम्ल कटु  
चार २ होतेहें ॥ ३५ ॥

युज्यतेतुकपायेणसतिक्तौलवणो  
पणौ । पटुपञ्चरसान्याहुरेकैक  
स्यापवर्जनात् ॥ ३६ ॥

कपायके योगसे तिक्तसहित लवण  
ऊषण चार २ कहेहें छःरसोंमें एक एक  
रसके अपवर्जनसे कोई आचार्य पांच  
रसोंको कहतेहें ॥ ३६ ॥

पटुचैवैकरसानिस्युरेकंपटुसमेव  
तु । इतित्रिपष्टिर्द्रव्याणानिर्दिष्टा  
रससंख्यया ॥ ३७ ॥

पटु एकरसके और एक पटुसका  
इसप्रकार सातरस कोई कहतेहें यह  
रसोंकी संख्यासे ६३ तिरसठ द्रव्य कहे ३७

त्रिपष्टिःस्यात्त्वसंख्येयारसानुरस  
कल्पनात् । रसास्तरतमाभ्यां  
तांसंख्यामभिपतन्तिहि ॥ ३८ ॥

रस और अन्नरसकी कल्पनासे ये तिर-  
सठ असंख्य होतेहें तारतम्यसे अभ्यास  
किये रस संख्याको प्राप्त होतेहें ॥ ३८ ॥

संयोगाःसप्तपञ्चाशत्कल्पनातुत्रिप  
ष्टिधा । रसानांतत्रयोग्यत्वात्क  
ल्पितारसचिन्तकैः ॥ ३९ ॥

इनके संयोग ५७ सत्तावनहें और  
कल्पनातो उनमें रसोंकी योग्यतासे रसके  
चिन्तकोंने ६३तिरसठ प्रकारकी कीहै ३९ ॥

कचिदेकोरसःकल्प्यःसंयुक्ताश्वर  
साःकचित् । दोषौषधादीनसञ्चि  
न्त्यभिपजासिद्धिमिच्छता ४० ॥

सिद्धिका अभिलाषी वैद्य कहीं एक रसकी कई संयुक्त रसोंकी दोष और औषध आदिके विचारसे कल्पना करे ४०

द्रव्याणिद्विरसादीनिसंयुक्तांश्चर  
सान्वुधः । रसानेकैकशश्चैवक  
ल्पयन्तिगदान्प्रति ॥ ४१ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य द्विरस आदि द्रव्योंकी और संयुक्त रसोंकी और एक २ रसोंकी रोगके भेदसे कल्पना करतेहैं ॥ ४१ ॥

यःस्याद्रसविकल्पज्ञःस्याच्चदोष  
विकल्पवित् । नसमुद्द्योद्विकाराणां  
हेतुलिङ्गोपशान्तिषु ॥ ४२ ॥

जो वैद्य रसके विकल्पको और दोषके विकल्पको जानताहै वह विकारोंके हेतु लिंग और उपशान्तियोंमें मोहको प्राप्त नहीं होता ॥ ४२ ॥

व्यक्तःशुक्तस्यचादौचरसौद्रव्य  
स्यलक्ष्यते । विपर्ययेणानुरसो  
रसोनास्तिहिसप्तमः ॥ ४३ ॥

और प्रथम प्रकटतासे भुक्त द्रव्यमें द्रव्यका रस दीखताहै और विपर्ययसे अनुरस होताहै सप्तम रसकोई नहींहै ४३

परापरत्वयुक्तिश्चसंख्यासंयोगएव  
च । विभागश्चपृथक्त्वपरिमाण  
मथापिच ॥ ४४ ॥

परत्व, अपरत्व, युक्ति, संख्या, संयोग, विभाग, पृथक्त्व और परिमाण ॥ ४४ ॥

संस्कारोऽभ्यासइत्येतेगुणाज्ञेयाः  
परादयः । सिद्ध्युपायश्चिकित्सा  
यालक्षणैस्तान्प्रवक्ष्यते ॥ ४५ ॥

संस्कार अभ्यास ये पर आदि गुण जानना, यही सिद्धिका उपायहै और चिकित्साके लक्षणोंसे उनका वर्णन करतेहैं ॥ ४५ ॥

देशकालवयोमानपाकवीर्यरसा  
दिषु । परापरत्वयुक्तिस्तुयोजना  
याचयुज्यते ॥ ४६ ॥

देश, काल, अवस्थामान, पाक, वीर्य, रस आदिकोंमें परापरत्वयोजनामें जो युक्त होतीहै वह युक्तिहै ॥ ४६ ॥

संख्यास्याद्गणितंयोगःसहसंयोग  
उच्यते । द्रव्याणांद्वन्द्वसर्वैकक  
र्मजोनित्यएवच ॥ ४७ ॥

गणितको संख्या, सह संयोगको योग कहतेहैं वह द्रव्योंके द्वन्द्व, सर्व और एकके कर्मसे उत्पन्नहै और नित्यहै ४७ ॥

विभागस्तुविभक्तिस्तुवियोगोभा  
गशोग्रहः । पृथक्त्वंस्यादसंयो  
गोवैलक्षण्यमनेकता ॥ ४८ ॥

विभक्तिको विभाग और भाग के ग्रहणको वियोग कहतेहैं असंयोगको पृथक्त्व अनेकताको वैलक्षण्य ४८ ॥

परिमाणंपुनर्मानंसंस्कारःकरणं

मतम् । भावाभ्यसनमभ्यासः  
शीलनंसततक्रिया ॥ ४९ ॥

और मानको परिमाण और करणको संस्कार कहते हैं. भावोंके अभ्यासको और निरंतरक्रियाको शीलन कहते हैं ॥ ४९ ॥

इतिस्वलक्षणैरुक्तागुणाःसर्वेपरा  
दयः । चिकित्सायैरविदितैर्नय  
थावत्प्रवर्तते ॥ ५० ॥

ये संपूर्णपरआदि गुण अपने २ लक्षणोंसे कहे जिनके जाने बिना यथार्थ चिकित्सा प्रवृत्त नहीं होती ॥ ५० ॥

गुणागुणाश्रयानोक्तास्तस्माद्रस  
गुणान्निपक्व । विद्याद्रव्यगुणा  
न्कर्तुरभिप्रायाःपृथग्विधाः॥ ५१ ॥

गुण, गुणोंके आश्रय नहीं कहे हैं. तिससे वैद्य रसके गुणोंको द्रव्यके गुण जानै, क्योंकि कर्ताके अभिप्राय भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं ॥ ५१ ॥

अतश्चप्रकृतिबुद्धादेशकालान्त  
राणिच । तन्त्रकर्तुरभिप्रायानु  
पायांश्चार्थमादिशेत् ॥ ५२ ॥

इससे प्रकृति, देश, कालान्तरोंको जानकर और उनमें कर्ताके अभिप्राय और उपायोंको जानकर चिकित्साको कहे ॥ ५२ ॥

परञ्चातःप्रवक्ष्यन्तेरसानांषड्विभि

क्तयः। पट्पञ्चभूतप्रभवाःसंख्या  
ताश्चयथारसाः ॥ ५३ ॥

इससे पर रसोंके छः विभागोंको कहते हैं. जैसे छः रस पांच भूतोंसे उत्पन्न कहे हैं—इति ॥ ५३ ॥

सौम्याःखल्वापोऽन्तरिक्षप्रभवाः  
प्रकृतिशीतालव्यश्चअव्यक्तर  
साश्चतास्त्वन्तरिक्षाद्भक्ष्यमाना  
भट्टाश्चपञ्चमहाभूतविकारगुणस  
मन्विताजङ्गमस्थावराणांभूतानां  
मूर्त्तिरभिप्रीणयन्तितासुमूर्त्तिषुप  
ड्भिर्मृच्छन्तिरसाः ॥ ५४ ॥

अन्तरिक्षसे उत्पन्न जल सौम्य हैं प्रकृतिसे शीतल, लघु और अव्यक्त रस हैं वे अन्तरिक्षसे पड़नेके समय और पड़कर पांच महाभूतोंके गुणोंसे युक्त होकर जंगम, स्थावर भूतोंकी मूर्तियोंको उत्पन्न करते हैं जिन मूर्तियोंमें छः और रस प्रतिविम्बित होते हैं ॥ ५४ ॥

तेपांपण्णारसानांसोमगुणातिरेका  
न्मधुरोरसः, पृथिव्यग्निभूयिष्ठत्वा  
दम्लःसलिलाग्निभूयिष्ठत्वाल्लवणो  
वाय्वग्निभूयिष्ठत्वात्कटुकोवाय्वा  
काशातिरेकात्तिक्तःपवनपृथिव्य  
तिरेकात्कषायः । एवमेषारसानां  
षट्त्वमुत्पन्नम् ॥ ५५ ॥

उन छः औरसोंके मध्यमें चंद्रमाके गुणकी अधिकतासे मधुर रस होता है, पृथ्वी और अग्निकी अधिकतासे अम्ल, जलकी अधिकतासे लवण, वायु और अग्निकी अधिकतासे कटु, वायु और आकाशकी अधिकतासे तिक्त, पवनके कषायकी अधिकतासे कषाय, रस उत्पन्न होता है ऐसे उन रसोंका षट्त्व (६भेद) उत्पन्न हुए ॥ ५३ ॥

न्यूनातिरेकविशेषान्महाभूतानां भिवजङ्गमस्थावराणानानावर्णा कृतिविशेषाः षड्ऋतुकत्वाच्च कालस्य उत्पन्नो महाभूतानां न्यूनातिरेकविशेषः ॥ ५६ ॥

न्यूनता और अधिकताके विशेषसे जैसे जंगम, स्थावर महा भूतोंको नाना वर्ण और आकार विशेष होतेहैं और छः ऋतुरूप कालसेभी महाभूतोंका न्यून और अधिक विशेष उत्पन्न होताहै ५६

तत्राग्निमारुतात्मकारसाः प्रायेणोर्द्ध्वभाजोलाघवात्प्लवकत्वाच्च वायोरूर्द्ध्वज्वलनत्वाच्च वह्नेः सलिल पृथिव्यात्मकास्तु प्रायेणाधोभाजः पृथिव्यागुरुत्वान्निम्नगत्वाच्चोदकस्य व्यामिश्रात्मकास्तु पुनरुभयतो भागभाजः ॥ ५७ ॥

उनमें अग्निमारुतात्मक ( रूप ) जो रसहैं, वे प्रायः ऊपरके भागी होतेहैं,

क्योंकि वायु लघु और चलनकर्मीहै और अग्निका ज्वलन ऊपरकोहै, जल और पृथिवी आत्मकतो प्रायः अधोभागी होतेहैं क्योंकि पृथिवी गुरुहै और जल, निम्नस्थलगामिहै और जो रस व्यामिश्र ( मिले ) रसात्मकहैं वे उभयभाजीहैं ॥ ५७ ॥

तेषां पण्णारसानामेकैकस्य यथाद्रव्यगुणकर्माण्यनुव्याख्यास्यामः । तत्र मधुरोरसः शरीरसात्म्याद्रसरुधिरमांसमेदोऽस्थिमज्जाजः शुक्रा भिवर्द्धन आयुष्यः पटिन्द्रियप्रसादनो बलवर्णकरः पित्तविषमारुतघ्नस्तृष्णाप्रशमनस्त्वच्यः केश्यः कण्ठ्यः प्रीणनो जीवनस्तर्पणः स्नेहनः स्थैर्यकरः क्षीणक्षतसन्धानरोघ्राणमुखकण्ठौष्ठतालुप्रहादनो दाहमूर्च्छाप्रशमनः षट्पदापिपीलिकानामिष्टतमः स्निग्धः शीतो गुरुश्च ॥ ५८ ॥

उन छः रसोंमें एक२ के द्रव्य गुणके अनुसार कर्मोंका वर्णन करतेहैं उनमें मधुर, रस शरीरका सात्म्य होनेसे रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि मज्जा और शुक्र इनका वर्द्धक आयुका दाता छः इंद्रियोंका प्रसादक वर्ण, बलकारी पित्त, विष और मारुतका नाशक, तृष्णाका प्रशमन, त्वचा, केश, कंठ इनका हितकारी प्रीणन, जीवन,

तर्पण, स्नेहन, स्थिरताकारक, क्षीण और क्षतका भेलकारी, घ्राण, मुख, ओष्ठ, कंठ तालु इनका आनंदक दाह मूर्च्छाका प्रशमन पदपद (भ्रमर) और पिपीलि-काओंको अत्यंत इष्ट, स्निग्ध, शीतल और गुरु होता है ॥ ५८ ॥

सएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपयु-  
ज्यमानःस्थैर्यमार्दवमालस्यम-  
तिस्वमंगौरवमनन्नाभिलापमग्नेर्दौ-  
र्वल्यमास्यकण्ठमांसाभिवृद्धिश्चा-  
सकासप्रतिश्यायासकशीतज्व-  
रानाहास्यमाधुर्यवमथुसंज्ञास्वर-  
प्रणाशगलगण्डमालाश्लीपदगल-  
शोफवस्तिधमनीगुदोपलेपाक्ष्या-  
मयानमभिप्यन्दमित्येवंप्रभृतीन्क-  
फजान्विकारानुपजनयति ॥ ५९ ॥

वह इस प्रकारके गुणोंसे युक्तभी एकही अर्थके उपयोगको प्राप्त होताहै और स्थूलता, मृदुता, आलस्य, अत्यंत सोना, गौरव, अन्नकी अभिलाषाका अभाव, अग्निकी दुर्बलता, आस्य, कंठ, मांसकी अत्यंत वृद्धि, श्वास, काश, प्रतिश्याय, आलस्य, शीत ज्वर, आनाह, आस्यकी मधुरता, उद्गार, संज्ञा और स्वरका नाश, गलेमें गंडमाला,

गलशोफ, वस्ति, धमन, गुदाका उपलेप, नेत्रके रोग, अनन्द इत्यादि कफसे पैदाहुए विकार पूर्वोक्त रस पैदा करते हैं ॥ ५९ ॥

अम्लोरसोभक्तंगेचयति, अग्निं दीपयति, देहंवृंहयति, जर्जरयति, मनोबोधयति, इन्द्रियाणिदृढीकरोति, बलंवर्द्धयति, वातमनुलोमयति, हृदयंतर्पयति, आस्यंसंज्ञायति, भुक्तमपकर्षयति, क्लेदंजनयति, प्रीणयतिलघुरूपः स्निग्धश्च ॥ ६० ॥

अम्लरस, भोजनमें रुचि करता है, अग्निका दीपन, देहका वर्द्धक, मनका जीवन, इंद्रियोंको बाधन करताहै, बलको बढ़ाता है, वातको अनुलोम करताहै, हृदयका तर्पण, आस्यमें संज्ञाव, भुक्तका अनुकर्षण, क्लेदको उत्पन्न करताहै, लघु, उष्ण और स्निग्ध है ॥ ६० ॥

सएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपयु-  
ज्यमानोदन्तान्हर्षयतितर्पयति,  
संमीलयतिअक्षिणी, संवीजयति  
लोमानि, कफंचिलापयति, पित्तम-  
भिवर्द्धयति, रक्तंदूषयति, मांसंवि-  
दहति, कायंशिथिलीकरोति, क्षी-  
णक्षतकृशदुर्बलानांश्वयथुमापाद-  
यति । अपिचक्षताभिहतदृष्टभ-  
ग्नशूलिच्युतावमृदितपरिसर्पित-  
मर्दितच्छिन्नविद्धोत्पिष्टादीनिपा-  
चयत्याग्नेयस्वभावात्परिदहतिक-  
ण्ठमुरोहृदयश्च ॥ ६१ ॥



वह उन गुणोंका एकभी अत्यंत उपयोग किया हुआ दांतोंको आनन्द और तृप्त करताहै, नेत्रोंका समीलन, लोमोंका सम्बीज करताहै, कफका विलापन, (गलाना) पित्तका वर्द्धन करताहै, रक्तको दूषित करताहै, मांसका दाह, कायाको शिथिल, क्षीण, कृश, दुर्बलोंके शोथकी वृद्धिको करताहै और क्षत, अभिहत, दष्ट, भग्न, शूल, च्युत, अवमृदित, परि सर्पित, मर्दित, छिन्न, विद्ध, उत्पिष्ट आदिको पचाताहै और अग्निके स्वभावसे कण्ठ उर हृदयको दग्ध करताहै ॥ ६१ ॥

लवणोरसःपाचनःक्लेदनोदीपन  
श्रयावनश्छेदनोभेदनस्तीक्ष्णःस  
रोविकास्यधःसंस्यवकाशकरो  
वातहरःस्तम्भवन्धसंघातविधम  
नःसर्वरसप्रत्यनीकभूतआस्यंवि  
स्त्रावयति, कफंविष्यन्दयति, मा  
र्गाञ्छोधयति, सर्वशरीरावयवा  
न्मृदुकरोति, रोचयत्याहारमाहा  
रयोगीचात्यर्थगुरुःस्निग्धउष्णश्च

लवणरस पाचन, क्लेदन, दीपन, च्यावन, छेदन, भेदन और तीक्ष्ण, सर, विकाशि, अधःसंसी, अवकाशका कारक, वातहारी, स्तम्भ, बंध, संघात इनका नाशक, सब रसोंका विरोधी यह आस्यका स्त्रावण, कफका विष्यन्दन,

मार्गोंका शोधन, सब शरीरोंके अवयवोंका मृदुकरण, आहारका रोचन करताहै, आहारका योगी, अत्यंत गुरु नहीं, स्निग्ध, उष्णहै ॥ ६२ ॥

सएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपयु  
ज्यमानः पित्तंकोपयति, रक्तंवर्द्ध  
यति, तर्पयति, मूर्च्छयति, ताप  
यति, दाहयति, कुष्णातिमांसानि,  
प्रगालयतिकुष्ठानि, विषंवर्द्धयति,  
शोफान्स्फोटयति, दन्ताञ्छयावति  
पुंस्त्वमुपहन्ति, इन्द्रियाण्युपरुण  
द्धि, वलीपलितखालित्यमापाद  
यतिच, लोहितपित्ताम्लपित्तवीस  
र्पवातरक्तविचर्च्चिकेन्द्रलुप्तप्रभृ  
तीन्विकारानुपजनयति ॥ ६३ ॥

एवं गुणका एकभी लवणरस, अत्यंत उपयोग, किया हुआ—पित्तको कुपित करताहै, रक्तको बढ़ाताहै, तृषाकारकहै मूर्च्छा, ताप, दाह इनको करताहै, मांसोंको सुखाताहै, कुष्ठोंको गालताहै, विषकी वृद्धि करताहै, शोफोंको फोड़ताहै, दांतोंको काले करताहै, पुंस्त्वका नाश करताहै, इन्द्रियोंको रोकताहै, वली (पालित्य) और खालित्य, अर्थात्—त्वचाका गिराना और गंजकरना करताहै, इनको और लोहितपित्त, अम्लपित्त, वीसर्प, वातलोहित, विचर्चिका, इन्द्रलुप्त आदि विकारोंको उत्पन्न करताहै ॥ ६३ ॥

कटुकोऽसौवक्रंशोधयति, अग्निं दीपयति, भुक्तंशोषयति, घ्राणमात्रावयति, चक्षुर्विरेचयति, स्फुटीकरोतीन्द्रियाणि, अलसकश्चयथूपचयोददाभिप्यन्दस्नेहस्वेदक्लेदमलानुपहन्ति, रोचयत्यशनं, कण्डूर्विनाशयति, व्रणानवसादयति, क्रिमीन्निहन्ति, मांसं विलिखति, शोणितसङ्घातं भिनत्ति, बन्धांश्छिनत्ति, मार्गान् विवृणोति, श्लेष्माणशमयति, लघुरुष्णोरुक्षश्च ॥ ६४ ॥

कटुकरस मुखको शुद्ध करताहै, अग्निका दीपन करताहै, भोजनका शोषण करताहै, घ्राणका मात्रावण करताहै, चक्षुका विरेचन, इंद्रियोंका स्फोटन करताहै, अलस, श्वयथु, उपचय, उदर, अभिप्यन्द, स्नेह, स्वेद, क्लेद, मल इनका नाश करताहै, अन्नमें रुचि करताहै, कण्डू, व्रण, कृमि इनको नष्ट करताहै, मांसका भेदन, शोणितके समूहका भेदन करताहै, बन्धोंका छेदन, मार्गोंका खोलना, कफकी शान्ति इनको करताहै, लघु, उष्ण और रूक्ष होताहै ॥ ६४ ॥

सएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपयुज्यमानोविपाकप्रभावात् । पौंस्त्वमुपहन्ति, रसवीर्यप्रभावा

न्मोहयतिग्लापयतिसादयतिकर्षयति, मूर्च्छयतिनमयतितमयतिभ्रमयतिकण्ठपरिदहतिशरीरतापमुपजनयतिबलंक्षिणोतिवृष्णांजनयतिवायव्यग्निबाहुल्याद्भ्रममददवथुकम्पतोदभेदैश्चरणभुजपार्श्वपृष्ठप्रभृतिपुमारुतजान्विकारानुपजनयति ॥ ६५ ॥

एवं गुणका एकभी रस, अत्यंत उपयोग किया विपाकके प्रभावसे पुंस्त्वका नाश करता है, रस और वीर्यके प्रभावसे मोह, ग्लानि, साधन, कर्षण, मूर्च्छन नमन तम, भ्रम इनको करता है, कण्ठको दग्ध करता है, शरीरमें ताप पैदा करता है, बलको क्षीण करताहै, वृष्णाको जनमाताहै, वायु और अग्निकी अधिकतासे भ्रम, मद, उपताप कम्प, तोद, भेद इनके होनेसे चरण, भुजा, पार्श्व, पृष्ठ आदि स्थानोंमें वातके विकारोंको पैदा करता है ॥ ६५ ॥

तिक्तोरसःस्वयमरोचिष्णुररोचकघ्नोविपन्नःकृमिघ्नोमूर्च्छादाहकण्डूकुष्ठतृष्णाप्रशमनःत्वङ्मांसयोःस्थिरीकरणोज्वरघ्नोदीपनःपाचनःस्तन्यशोधनोलेखनःक्लेदमेदोवसामज्जालसिकापूयस्वेदमूत्रपुरीषपित्तश्लेष्मोपशोषणोरुक्षशीतोलघुश्च ॥ ६६ ॥

तिक्तारस स्वयं रुचिके क्षीण करने-  
वाला है, अरोचक, विष और कृमि इन-  
का नाशक है, मूर्च्छा, दाह, कण्डू,  
कुष्ठ, तृष्णा इनका, प्रशमन और त्वचा  
मांसको स्थिर करता है, ज्वरनाशक,  
दीपन, पाचन और स्तन्यका शोधन  
और लेखन है और क्लेद, मेदा, वसा,  
मज्जा, लसीका, पूय, स्वेद, मूत्र, पुरीष,  
पित्त, कफ इनको सुखाता है और रूक्ष,  
शीत लघु होता है ॥ ६६ ॥

सएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपयुज्य  
मानोरौक्ष्यात्खरविषदस्वभावा-  
च्चरसरुधिरमांसमेदोऽस्थिमज्जशु-  
क्राण्युच्छोपयतिस्रोतसांखरत्व  
मुपपादयतिबलमादत्तेकर्षयतिमो-  
हयतिवदनमुपशोषयतिअपरांश्च  
वातविकारानुपजनयति ॥ ६७ ॥

एवं गुणका वह एकभी रस अत्यंत  
उपयोग करनेसे रूक्ष, खर, विषद  
स्वभावका होकर, रस, रुधिर, मांस,  
मेदा, अस्थि, मज्जा शुक्र इनको, अत्यंत,  
सुखाता है, स्रोतोंकी खरताको करता है  
बलकारक, कर्षण मोह करता है और  
वदनका शोषण करता है और अन्यभी  
वातविकारोंको करता है ॥ ६७ ॥

कषायोरसःसंशमनःसंग्राहीसन्धा-  
रणःपीडनोरोपणःशोषणःस्तम्भ-  
नःश्लेष्मरक्तपित्तप्रशमनःशरीर

क्लेदस्योपयोक्ता रूक्षःशीतोगुरु  
श्च ॥ ६८ ॥

कषाय रस संशमन, संग्राही, संधारण,  
पीडन, रोपण, शोषण, स्तंभन करता है,  
कफ और रक्तपित्तका प्रशमन है, शरी-  
रमें क्लेद करे है, रूक्ष, शीतल और  
गुरु है ॥ ६८ ॥

सएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपयु-  
ज्यमानआस्यंशोषयति, हृदयंपी-  
डयति, उदरमाध्मापयति, वाचं  
निगृह्णाति, स्रोतांस्यववध्नाति,  
श्यावत्वमापादयति, पौष्ट्वमुपह-  
न्ति, विष्टब्धजरांगच्छति, वात  
मूत्रपुरीषाण्यवगृह्णाति, कर्षय-  
ति, ग्लापयति, तर्पयति, स्तम्भ-  
यति, खरविषदरूक्षत्वात्पक्षवध  
ग्रहापतानकार्दितप्रभृतींश्चवातवि-  
कारानुपजनयतीति ॥ ६९ ॥

एवं गुणका वह एकभी रस, अत्यंत उप-  
योग, करनेसे मुखका शोषण, हृदयका पी-  
डन, उदरमें आध्मान, वाणीका ग्रहण, स्रोतों  
का बन्धन, कृष्णताका करना, पुंस्त्वकानाश  
इनको करता है और बलात्कारसे जराको  
प्राप्त करता है वात, मूत्र, मल इनका  
बन्धन करता है और कृशता, ग्लानि, तृषा,  
स्तम्भ इनको करता है और खर, विषद,  
रूक्ष होनेसे पक्षत्व, ग्रह, अपतानक,  
ार्दित आदि, वातके विकारोंको पैदा  
करता है ॥ ६९ ॥

एवमेतेषां पृथक्केन वामात्रशः  
सम्यगुपयुज्यमाना उपकारकरा  
अध्यात्मलोकस्यापकारकराः पृ  
नरतोऽन्यथोपयुज्यमानांस्तान्  
विद्वानुपकारार्थमेवमात्रशः सम्य  
गुपयोजयेदिति ॥ ७० ॥

इस प्रकार ये छः ओं रस पृथक् २  
वा मात्रासे भली प्रकार उपयोग किये  
अध्यात्मलोकके उपकारके कर्ता हैं।  
अपकारके कर्ता इससे अन्यथा, उप-  
योग किये हुए होते हैं, उनको बुद्धिमान्  
वेद्य उपकारके लिये मात्रासेही भली  
प्रकार उपयोग करावे ॥ ७० ॥

भवन्ति चात्र ।

शीतं वीर्यं णयद्रव्यं मधुरं रसपा  
कयोः । तयोर्मलं दुष्णं च यच्चो  
ष्णं कटुकं तयोः ॥ ७१ ॥

इसमें ये श्लोक हैं कि जो द्रव्य  
वीर्यसे शीतल है और रस पाकमें मधुर  
है, - उनमें जो अम्ल है और उष्ण है  
और जो उष्ण और कटुक, उनमें हैं ७१

तेषां रसोपदेशेन निर्देश्यो गुणसंग्र  
हः । वीर्यतो विपरीतानां पाकत  
श्चोपदेक्ष्यते ॥ ७२ ॥

उन सबके गुणोंका संग्रह रसोंके  
उपदेशसे दिखाने योग्य है और वीर्यसे  
जो विपरीत हैं उनका पाकसे उपदेश  
करते हैं ॥ ७२ ॥

यथापयो यथा सर्पि र्यथा वाचव्य  
चित्रकौ । एवमादीनि चान्यानि  
निर्दिशेद्रसतो भिपक् ॥ ७३ ॥

जैसे दुग्ध और घी और जैसे चव्य  
और चीता एवं आदि अन्योकोभी  
रससे उपदेश करे ॥ ७३ ॥

मधुरं किञ्चिदुष्णं स्यात्कषायंति  
क्तमेव च । यथामहत्पञ्चमूलं यथा  
चानूपमामिषम् ॥ ७४ ॥

और जो मधुर किञ्चित् उष्ण है और  
जो कषाय तिक्त है जैसे बड़ा पंचमूल  
और जैसे जलका मांस ॥ ७४ ॥

लवणं सैन्धवं नोष्णमम्लमामलकं  
तथा । अर्का गुरुगुडुचीनां तिक्ता  
नामुष्णमुच्यते ॥ ७५ ॥

जैसे सैन्धव, लवण, उष्ण नहीं और  
आमला, अम्ल है आख अगर गिलाह ये  
तिक्तभी उष्ण कही हैं ॥ ७५ ॥

किञ्चिदम्लं हि संग्राहिकिञ्चिदम्लं  
भिन्नत्तिच । यथा कपित्थं संग्राहि  
भेदिचामलकं तथा । पिप्पलीना  
गरंवृष्यं कटुचावृष्यमुच्यते ॥ ७६ ॥

कोई अम्ल संग्राही है कोई अम्ल  
भेदक है जैसे कैथ संग्राही है और आम  
लक भेदक है पीपल, सोंठ, ये वृष्य (वीर्य  
वर्द्धक) हैं और कटु अवृष्य हैं ॥ ७६ ॥

कषायः स्तम्भनः शीतः सोऽभया

त्वन्वयथामता । तस्माद्रसोपदेशे  
ननसर्वद्रव्यमादिशेत् ॥ ७७ ॥

कषाय स्तम्भन, अतिहै, वह हरडेमें  
अन्यथा मानाहै तिससे रसके उपदेशसे  
सब द्रव्यका उपदेश न करै ॥ ७७ ॥

दृष्टेतुल्यरसेऽप्येवंद्रव्येद्रव्येगुणा  
न्तरम् । रौक्ष्यात्कषायोरुक्षाणा  
मुत्तमोऽध्यमःकटुः ॥ ७८ ॥

क्योंकि तुल्य रसके देखने परभी  
इसप्रकार द्रव्यका भिन्न गुणहै रूक्ष होनेसे  
कषाय रूक्षोंमें उत्तम और मध्यम कटु  
है ॥ ७८ ॥

तिक्तोऽवरस्तथोष्णानामुष्णत्वा  
लवणःपरः । मध्योऽम्लःकटुक  
श्चान्त्यःस्निग्धानांमधुरःपरः । म  
ध्योऽम्लोलवणश्चान्त्योरसःस्नेहा  
न्निरुच्यते ॥ ७९ ॥

उष्णोंमें तिक्त अवरहै और उष्ण  
होनेसे लवणपर उत्तमहै अम्ल मध्य है  
और कटु अंतमेंहै स्निग्धों में मधुर श्रेष्ठ  
है और अम्ल मध्यहै और लवण अन्त्य  
है ये दोनोंरस स्नेहमें कहतेहैं ॥ ७९ ॥

मध्यःकृष्टावराःशैत्यात्कषायस्वा  
दुतिक्तकाः । तिक्तात्कषायोम  
धुरःशीताच्छीततरःपरः । स्वादु  
गुरुत्वादधिकःकषायालवणोऽ  
वरः ॥ ८० ॥

शीततासे मध्यम और कर्षणमें अवर,  
कषाय, स्वादु, तिक्तक हंतहैं तिक्तसे  
कषाय मधुरहै और शीतसे अतिशीत  
श्रेष्ठ है कषायसे गुरु हानसे स्वादु अधिक  
है और लवण अवरहै ॥ ८० ॥

अम्लात्कटुस्ततस्तिक्तोलघुत्वाद्  
त्तमोमतः । केचिल्लघूनामवरमि  
च्छंतिलवणंरसम् ॥ ८१ ॥

अम्लसे कटु और उससे तिक्त लघु  
होनेसे उत्तम मानाहै कोई तो लघुरसोंमें  
लवण रसको अवर मानते हैं ॥ ८१ ॥

गौरवेलाघवेचैवसोऽवरस्तूभयोर  
पि । परश्चातोविपाकानांलक्षणं  
सम्प्रवक्ष्यते ॥ ८२ ॥

और वह गौरव और लाघवमें  
दोनों अवरहैं, इससे आगे विपाकोंके लक्ष-  
णोंको कहतेहैं ॥ ८२ ॥

कटुतिक्तकषायाणांविपाकःप्रा  
यशःकटुः । अम्लोऽम्लंपच्यते  
स्वादुमधुरंलवणस्तथा ॥ ८३ ॥

कटु, तिक्त, कषाय इनका विपाक  
प्रायः कटु होताहै, अम्ल का पाक  
अम्ल, स्वादु और लवणका मधुर  
होताहै ॥ ८३ ॥

मधुरोलवणाम्लौचस्निग्धभावास्त्र  
योरसाः । वातमूत्रपुरीषाणांप्रा  
योमोक्षेसुखामताः ॥ ८४ ॥

मधुर और लवण, अम्ल ये तीनों रस स्निग्धस्वभावहैं और प्रायः वात, मूत्र और मल इनके मोक्षमें मुखके दाना कहेंहैं ॥ ८४ ॥

कटुतिक्तकपायास्तुरुक्षभावास्त्रयोरसाः । दुःखाविमोक्षेदृश्यन्ते वातविण्मूत्ररेतसाम् ॥ ८५ ॥

कटु, तिक्त, कपाय, येतीनों रस रुक्ष स्वभावहैं और वात, मल, मूत्र, वीर्य इनके मोक्षमें, दुःख दाताहैं ॥ ८५ ॥

शुक्रहावद्धविण्मूत्रोविपाकोवातलःकटुः । मधुरःसृष्टविण्मूत्रोविपाकेकफशुक्रलः ॥ ८६ ॥

कटुरस शुक्रका नाशक, मल, मूत्रका बन्धक, विपाकमें वातलहै, मधुरस मलमूत्रका स्रष्टा, विपाकमें कफ शुक्रका वर्द्धकहै ॥ ८६ ॥

पित्तकृत्सृष्टविण्मूत्रःपाकेऽम्लःशुक्रनाशनः । तेषांगुरुःस्यान्मधुरः कटुकास्लावतोऽन्यथा ॥ ८७ ॥

अम्लरस पित्तकारी, मलमूत्रका, स्रष्टा और पाकमें शुक्रनाशकहै, इन सबके मध्यमें मधुररस गुरुहै और कटुक और अम्ल इससे अन्यथा ( लघु )है ॥ ८७ ॥

विपाकलक्षणस्याल्पमध्यभूयस्त्वमेवच । द्रव्याणांगुणवैशेष्यात्तत्रतत्रोपलक्षयेत् ॥ ८८ ॥

विपाकके लक्षणका अल्प, मध्य और अधिकताको द्रव्यके गुणोंकी विशेषतासे तहां तहां देखे ॥ ८८ ॥

तीक्ष्णरुक्षंमृदुस्निग्धंलघुपुष्पंगुरुशीतलम् । वीर्यमष्टविधंकेचि त्केचिद्विविधमास्थिताः ॥ ८९ ॥

और तीक्ष्ण, रुक्ष, मृदु, स्निग्ध, लघु, उष्ण, गुरु, शीतल यह आठ प्रकारका वीर्य कोई कहतेहैं और कोई शीत उष्ण के भेदसे दो प्रकारका कहतेहैं ॥ ८९ ॥

शीतोष्णमितिवीर्यन्तुक्रियतेयेनयाक्रिया । नावीर्यं कुरुतेकिंचित्सर्वावीर्यकृताक्रिया ॥ ९० ॥

जिससे जो क्रिया कियी जाय वह वीर्य होताहै वीर्यके बिना बीज कुछ नहीं करसक्ता सब क्रिया वीर्यकी की हुई होतीहै ॥ ९० ॥

रसोनिपातद्रव्याणांविपाकःकर्मनिष्ठया । वीर्ययावदधीवासान्निपाताच्चोपलभ्यते ॥ ९१ ॥

द्रव्योंके निपातमें रस और कर्ममें टिककर विपाक जबतक अधिवास और निपातसे वीर्यको प्राप्त होतेहैं ॥ ९१ ॥

रसवीर्यविपाकानांसामान्यं स्यलक्ष्यते । विशेषःकर्मणाञ्चैव प्रभावस्तस्यचस्मृतः ॥ ९२ ॥

रस, वीर्य, विपाक इनमें जिसकी सामान्यता दीखे और कर्मोंका विशेष जो दीखताहै वह उसका प्रभाव कहाहै ॥

कटुकःकटुकःपाकेवीर्योष्णश्चि  
त्रकोमतः । तद्रदन्तीप्रभावानुवि  
रेचयतिमानवम् ॥ ९३ ॥

कटुक पाकमें कटु और वीर्यमें उष्ण  
चित्रक मानाहै तिसीप्रकार(दन्ती जमाल  
गोटाकी जड़ ) प्रभावसे मनुष्यको विरे-  
चन करतीहै ॥ ९३ ॥

विषंविषघ्नमुक्तंयत्प्रभावस्तत्रकार  
णम् । ऊर्ध्वानुलोमनंयच्चतत्प्रभा  
वप्रभावितम् ॥ ९४ ॥

और विषको विषनाशक जो कहाहै  
उसमें प्रभाव कारणहै ऊर्ध्व अनुलोमन  
जोहै वहभी प्रभावकाही प्रभावहै ॥९४॥

मणीनांधारणीयानांकर्मयद्विविधा  
त्मकम् । तत्प्रभावकृततेषांप्रभा  
वोऽचिन्त्यइष्यते ॥ ९५ ॥

धारण करने योग्य मणियोंका जो  
नाना प्रकारका कर्महै वहभी प्रभावका  
किया है तिससे प्रभाव चिन्ता करने  
अयोग्य है ॥ ९५ ॥

किञ्चिद्रसेनकुरुतेकर्मवीर्येण  
चापरम् । द्रव्यगुणेनपाकेनप्रभा  
वेणचकिञ्चन ॥ ९६ ॥

कोई द्रव्यइससे कर्मको करै है और  
अपर वीर्यसे कोई गुणसे पाकसे और  
कोई प्रभावसे करताहै ॥ ९६ ॥

रसंविपाकस्तौवीर्यप्रभावस्तान

पोहति । गुणसाम्येरसादीनामि  
तिनैसर्गिकंवलम् ॥ ९७ ॥

रस और विपाकका वीर्य नष्ट करताहै  
और इनतीनोंका प्रभाव नष्ट करताहै रस  
आदिके गुणसाम्यमें यह स्वाभाविक  
बलहै ॥ ९७ ॥

सम्यग्विपाकवीर्याणिप्रभावश्चा  
प्युदाहृतः ॥ ९८ ॥

भलीप्रकार विपाक, वीर्य, प्रभाव,  
वर्णन किये ॥ ९८ ॥

पण्णारसानांविज्ञानमुपदेक्ष्याम्यतः  
परम् । स्नेहनप्रीणनाह्लादमार्दवै  
रुपलाभ्यते ॥ ९९ ॥

इससे आगे छः औरसोंके विज्ञानका  
वर्णन करतेहैं स्नेहन, प्रीणन, आह्लाद,  
मार्दव इनसे मुखमें स्थित होताहै॥९९॥

मुखस्थोमधुरश्चास्यंव्यानुवल्लि  
म्पतीवच । दन्तहर्षात्मुखस्त्रावा  
त्स्वेदनात्मुखबोधनात् । विदा  
हाचास्यकण्ठस्यप्राश्यैवाम्लरसं  
वदेत् ॥ १०० ॥

मधुररस मुखको व्याप्त कर्ता और  
मानो लेप कर्ता हुआ प्रतीत होताहै  
दातोंके हर्षसे मुखके स्त्रावसे और  
स्वेदन औ मुखके बोधनसे और मुख  
और कण्ठके विदाहसे भक्षण किये हुए  
अम्लरसको कहै ॥ १०० ॥

प्रलीयन्क्लेदविष्यन्दलाघवंकुरुते

मुखे। यःशीघ्रंलवणोज्ञेयःसविदा  
हान्मुखस्यच ॥ १०१ ॥

जो मुखमें गलता हुआ क्लेदः विप्यन्द  
लाघव शीघ्रतासे करै, वह मुखके विदा  
हसे लवण रस जानना ॥ १०१ ॥

संवेजयेद्योरसानानिपातेतुदतीव  
च । विदहन्मुखनासाक्षिसंस्त्रावी  
सकटुःस्मृतः ॥ १०२ ॥

जो जिह्वामें पीडाकरै और निपातमें  
तांद करताहो और दग्धमुख करताहुआ  
नासिका, अक्षि इनका स्वाव करै वह कटु  
रस कहाहै ॥ १०२ ॥

प्रतिहन्तिनिपातेयोरसनंस्वदते  
नच । सतिक्तोमुखवैषद्यशोषप्र  
ह्लादकारकः ॥ १०३ ॥

जो निपातमें रसनाको नष्ट करै  
और स्वादु नहो मुखका वैषद्य ( भेदन )  
शोष प्रह्लादका कारण वह तिक्त  
कहाहै ॥ १०३ ॥

वैषद्यस्तम्भजाड्यैर्योरसनंयोजये  
द्रसःवध्वातीवचयःकण्ठकषायः  
सविकास्यपिइति ॥ १०४ ॥

जो रस रसनामें वैषद्य, स्तम्भ,  
जड़ताको करै और मानो कण्ठको बांधले  
विशेषकर काशकारी वह रस कषाय  
कहाहै इति ॥ १०४ ॥

एवंवादिनंभगवन्तमात्रेयमग्निवेश  
उवाच । भगवन् । श्रुतमेतद्वि

तथमर्थसम्पद्युक्तंभगवतोयथाव  
द्रव्यकर्माधिकारेवचःपरन्तवाहा  
रविकाराणांवैरोधिकानालक्षणम  
नतिसंक्षेपेणोपदिश्यमानंशुश्रूषाम  
हेति ॥ १०५ ॥

इस प्रकार कहते हुए भगवान् आत्रे  
यको अग्निवेश बोलेकि, हे भगवन् !  
सत्य अर्थकी सम्पदासे युक्त द्रव्य,  
कर्माधिकारके विषे यथार्थ यह आपका  
वचन सुना परन्तु विरोधीजो आहारके  
विकारहैं उनके लक्षणको विस्तारसे उप  
देश किये हुएको आपसे सुना चाह-  
तहैं ॥ १०५ ॥

तमुवाचभगवानात्रेयः । देहधा  
तुप्रत्यनीकभृतानिद्रव्याणिदेहधा  
तुविरोधमापाद्यन्तेपरस्परविरुद्धा  
निकानिचित्संयोगात्संस्कारादप  
राणिदेशकालमात्रादिभिश्चापरा  
णितथाम्बभावादपराणि १०६ ॥

उसके प्रति भगवान् आत्रेय बोले  
कि देह धातुके प्रत्यनीक विपरीत जो  
द्रव्य हैं वह देह और धातुके विरोधको  
प्राप्त करते हैं और कोई संयोगसे परस्पर  
विरुद्ध हैं कोई संस्कारसे कोई देश काल  
मात्रा आदिसे और तैसेही कोई स्वभावसे  
विरोधी, होजाते हैं ॥ १०६ ॥

तत्रयान्याहारमधिकृत्यभूयिष्ठमु



पयुज्यन्तेतेषामेकदेशंवैरोधिकम  
धिकृत्योपदेक्ष्यामः ॥ १०७ ॥

उनमें जो भोजनके विषय अधिकतर  
उपयोगी हैं उनका जो विरोधी एक देश  
उसके अधिकारसे उपदेश करते हैं १०७ ॥

नमत्स्यान्पयसासहाभ्यवहरेदुभ  
यंहेतन्मधुरंमधुरविपाकान्महाभि  
प्यन्दिशीतोष्णत्वाद्विरुद्धवीर्यं  
विरुद्धवीर्यत्वाच्छोणितप्रदूषणा  
यमहाभिप्यन्दिवात्मारोगोपरोधा  
यच ॥ १०८ ॥

दूधके संग मत्स्योंको भक्षण न  
करें क्योंकि ये दोनों मधुर मधुर हैं  
विपाकसे शीतोष्ण महाअभिप्यन्दी  
हैं विरुद्धवीर्य होनेसे विरुद्धवीर्य हैं  
शोणितको दूषित करनेके लिये महाअभिप्य  
न्दी होनेसे मार्गोंके उपरोधकारी हैं १०८

तदनन्तरमात्रेयवचनमनुनिशम्य  
भद्रकाप्योऽग्निवेशमुवाच। सर्वा  
नेवमत्स्यान्पयसासहाभ्यवहरेत्  
अन्यत्रैकस्माच्चिलिचिमात् । स  
पुनःशकलीसर्वतोलोहितराजिः  
रोहितप्रकारःप्रायोभूमौचरतित  
श्चेत्पयसासहाभ्यवहरेन्निःसंशयं  
शोणितजानांविबन्धजानांवाव्या  
धीनामन्यतमंअथवामरणंप्राप्नुया  
दिति ॥ १०९ ॥

उसके अनन्तर आत्रेयकी अनुमतिसे  
भद्रकाप्य अग्निवेशको बाले, कि-एक  
चिलिचिम मत्स्यको छाड़कर संपूर्ण  
मत्स्योंको दूधके संग भोजन करें, क्योंकि  
कि वह शाकलि और सर्वतः लोहित  
राजि ( पंक्ति ) और लोहितप्रकार-  
रको शाकलि कहते हैं और वह प्रायः  
भूमिमें विचरताहै यदि उसको दूधके  
संग भक्षण करें तो शोणितसे उत्पन्न वा  
विबन्धसे उत्पन्न व्याधियोंके मध्यमें कोईसी  
व्याधिको अवश्य प्राप्त होताहै ॥ १०९ ॥

नेतिभगवानात्रेयः । सर्वानेवम  
त्स्यान्पयसासहाभ्यवहरेद्विशेषतस्तु  
चिलिचिमंसहिमहाभिप्यन्दिम  
त्वात्स्थूललक्षणतरानेतान्व्या  
धीनुपजनयत्यामविपमुदीरयति  
च ॥ ११० ॥

यह बात नहीं यह भगवान् आत्रेय  
कहते हैं, कि-सबही मत्स्योंको दूधके  
संग न खाय और चिलिचिमको विशे-  
पकर भक्षण न करें, क्योंकि वह अत्यन्त  
महाअभिप्यन्दी होनेसे स्थूललक्षणवाली  
इन व्याधियोंको पैदा करताहै और  
अत्यन्त आमविषको बढ़ाताहै ॥ ११० ॥

ग्राम्यान्पौदकपिशितानिमधुति  
लगुडपयोमापमूलकविसौर्विरूढ  
धान्यैश्चनैकधाअद्यात् । तन्मूल  
श्चबाधिर्ग्यान्ध्यवेपथुजाद्यविक

लमूकतामैन्मिण्यमथवामरणमा  
भोति ॥ १११ ॥

ग्राम्य और अनूप जलके मांसको मधु, तिल, गुड, दुग्ध, उड़द, मूलक, विष इनके संग और स्वयं उत्पन्न अन्नोके संग मिलाकर, न खाय उसका मूल यह है, कि बाधिरता, अन्धता, वेपथु, (कंप) जड़ता, वाणीकी मूकता, मैन्मिण्य, अथवा मरणको प्राप्त होता है ॥ १११ ॥

नपौष्करंरोहिणीकंवाशाकंनक  
पोतान्सार्पपतैलभृष्टान्मधुपयो  
भ्यांसहान्यवहरेत् । तन्मूलंहि  
शोणिताभिप्यन्दधमनीप्रतिचया  
पस्मारशंखकगलगण्डरोहिणीका  
नामन्यतमंप्राप्नोत्यथवामरणमि  
ति ॥ ११२ ॥

पौष्कर वा रोहिणीके शाकको वा कपोतोको सरसोके तैलमें भूनकर मधु वा दुग्धके संग भक्षण न करे, उसका मूल यह है, कि शोणितका अभिप्यन्द, धमनिका नाश, अपस्मार, शंखक, गलगण्ड, रोहिणीक, इनमेंसे कोईसी व्याधिको वा मरणको प्राप्त होता है ॥ ११२ ॥

नमूलकलशुनकृष्णगन्धार्जकसु  
मुखसुरसादीनिभक्षयित्वापयःसे  
व्यंकुष्टावाधभयात् ॥ ११३ ॥

और मूली, लहसन, कृष्णगन्धा, अर्जक, सुमुख, सुरसा आदिको भक्षण करिके, दूधको कुछ होनेके भयसे न पीवै ॥ ११३ ॥

नवास्तुशाकंनलिकुचंपक्कंमधुपयो  
भ्यांसहोपयोज्यम् । एतद्धिमर  
णायाथवावलवर्णतेजोवीर्योपरो  
धायालवुव्याधयेपाण्ड्यायच ॥ ११४ ॥

वथुएके शाकको पके हुए लिकुचको मधु और दूधके संग भक्षण न करे क्योंकि यह मरणके लिये अथवा बलवर्ण, वीर्य, तेज इनके उपरोधके लिये महाव्याधि और पंडताके लिये होता है ॥ ११४ ॥

तदेवलिकुचपक्कंनमापसूपगुडस  
पिर्भिःसहोपयोज्यवैरोधकत्वात् ॥

और उसी पके हुए लिकुचको उड़दकी दाल गुड, घीके संग न खाय क्योंकि वे परस्पर विरोधी हैं ॥ ११५ ॥

तथाप्रातकमातुलुङ्गलिकुचकर  
मर्दमोचदन्तशठवदरकोशाम्रभ  
व्यजाम्बवकपित्थतिन्तिडीकपा  
रावताक्षोटपनसनालिकेरदाडिमा  
मलकान्येवम्प्रकाराणिचान्यानि  
सर्वचाम्लंद्रव्यमद्रवंचपयसासह  
विरुद्धम् ॥ ११६ ॥

तिसी प्रकार आम्रातक, मातुलुङ्ग, लिकुच, करमंद, मोचदन्त, शठवदर, कोशाम्रभव्य, जाम्बव, कैत, तित्तिनीक, पारावत, अकरोट, पनस, नालिकेर, दाडिम, आमले-ये और इस प्रकारके

अन्यपदार्थ और सब प्रकारका द्रव,  
अद्रव, अम्ल, दुग्धके संग विरुद्ध हैं ११६  
कंगुवरकमकुष्ठककुलथमापनि  
प्पावाःपयसासहविरुद्धाःपद्मोत्त  
रिकाशाकंशार्करोमरेयोमधुचस  
होपयुक्तं विरुद्धं वातश्चातिकोपय  
ति ॥ ११७ ॥

कंगु, वरकम, कुष्ठक, कुलथी, उडुद,  
निप्पाव ये दूधके संग विरुद्ध हैं, पद्मो-  
त्तरिकाका शाक शर्कराका मैरेय और  
मधु-ये संग भोजन किये हुए विरुद्ध हैं  
और वातके अत्यन्त कोपकारी हैं ११७ ॥

हारिद्रकः सर्पपतैलभृष्टो विरुद्धपि  
तश्चातिकोपयति पायसोमन्था  
नुपानो विरुद्धः । उपोदिकातिल  
कल्कसिद्धाहेतुरतीसारस्य ११८

सरसोंके तेलमें भुनी हलदी विरुद्ध  
पित्तको कुपित अतीव करती है, मंथके  
अनुपानसे पायस विरुद्ध है और पोईके  
शाक तिलके कल्कमें सिद्ध हुए अतिसारके  
हेतु होते हैं ॥ ११८ ॥

बलाका वारुण्याकुल्माषैरपि वि-  
रुद्धा । सैव शूकरवसापरिभृष्टास  
द्यो व्यापादयति ॥ ११९ ॥

वारुणी और कुल्माषोंके संग, बला-  
काभी विरुद्ध है और वही शूकरकी  
वसामें भुनी हुई शीघ्रही मरण करती  
है ॥ ११९ ॥

मायूरमांसमेरुण्डसीसकासक्तमेरु  
ण्डाग्निष्ठुष्टंसद्यो व्यापादयति १२०

मयूरका मांस एरण्डके सीसकमें  
मिलकर और एरण्डकी अग्निमें पककर  
शीघ्र मरण करता है ॥ १२० ॥

तदेव भस्मपांसुपरिध्वस्तं सक्षौद्रं  
मरणाय ॥ १२१ ॥

और वही भस्म और पांशुसे भ्रष्ट  
( भुना ) हुआ सहत सहित मरणके  
लिये होता है ॥ १२१ ॥

हारीतकमांसं हारिद्राग्निष्ठुष्टंसद्यो  
व्यापादयति । मत्स्यतैलनिस्ता  
डनसिद्धाः पिप्पल्यस्तथाकाकमा  
चीमधुचमरणाय ॥ १२२ ॥

मत्स्यके तेलमें पकाई पीपल और  
काकमाची और मधु मरणके लिये  
होती है ॥ १२२ ॥

मधुचोष्णमुष्णार्तस्य च मधुमर-  
णाय ॥ १२३ ॥

उष्ण मधु और उष्णके रोगीको  
मधु मरणके लिये होते हैं ॥ १२३ ॥

मधुसर्पिषीतुल्ये मधुवारिचान्तरि  
क्षंसमधृतं मधुपुष्करबीजं मधुपीत्वो  
ष्णोदकं भल्लातकोष्णोदकम् १२४

और तुल्य घृत और मधु और  
आकाशका जल ये तुल्य हों और मधु,  
पुष्करबीज, मधुपीकर उष्णोदक, भल्ला-  
तक और उष्णोदक ॥ १२४ ॥

तक्रमिद्धःकम्पिलकःपर्युपिताका  
चमाचीअङ्गारशूल्योभासइति  
विरुद्धानीत्येतद्यथाप्रश्नमभिनि  
दिष्टम् ॥ १२५ ॥

मष्टमें सिद्ध कम्पिलक और वासीका  
क्रमाची अंगारका शूल्य ( मांस ) भास-  
पक्षी ये विरुद्ध पदार्थ प्रश्नके अनुसार  
दिखायें ॥ १२५ ॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः ।

यत्किञ्चिदोपमासाद्यननिर्हरति  
कायतः । आहारजातंतत्सर्वम  
हितायोपपद्यते ॥ १२६ ॥

इसमें ये श्लोक हैं जो कोई पदार्थ  
दूषित होकर कायामेंसे आहारके समू-  
हको न निकाले, वह सब अहितको प्राप्त  
होता है ॥ १२६ ॥

यच्चापिदेशकालाग्निसात्म्यासात्म्य  
निलादिभिः । संस्कारतोवीर्य  
तत्त्वकोष्ठावस्थाक्रमैरपि ॥ १२७ ॥

और जो देशकाल, अग्नि सात्म्य,  
असात्म्य-वात आदिसे संस्कार, और  
वीर्यसे कोष्ठकी अवस्था और ग्लानिसे १२७

परिहारोपचाराभ्यांपाकात्संयोग  
तोऽपि च । विरुद्धंतच्चनहितंह  
त्संपद्विधिभिश्चयत् ॥ १२८ ॥

परिहार और उपचारसे पाक और  
संयोगसे जो विरुद्ध हैं और जो हृदय

संपादकी विधिसे विरुद्ध हैं वह हित नहीं  
होता ॥ १२८ ॥

विरुद्धदेशतस्तावद्रूक्षतीक्ष्णादि  
धन्वनि । आनूपेस्निग्धशीतादि  
भेषजंयन्निपेक्ष्यते ॥ १२९ ॥

देशसे विरुद्ध तो यें हैं कि रूक्ष और  
तीक्ष्ण पदार्थ धन्वदेशमें और अनूप-  
देशमें, स्निग्ध, शीत आदि औषधका  
जो सेवन है वह विरुद्ध है ॥ १२९ ॥

कालतोऽपिविरुद्धंयच्छीतरूक्षा  
दिसेवनम् । शीतिकालेतथोष्णेच  
कटुकोष्णादिसेवनम् ॥ १३० ॥

और जो शीत रूक्ष आदिका सेवन  
और शीतकाल और उष्णकालमें कटु  
उष्ण आदिका सेवन वह कालविरुद्ध  
है ॥ १३० ॥

विरुद्धमनलेतद्वन्नानुरूपंचतुर्वि  
धे । मधुसर्पिःसमधृतमात्रयातद्वि  
रुध्यते ॥ १३१ ॥

चार प्रकारकी अग्निमें जो अग्निके  
अनुरूप नहो वह अग्निविरुद्ध होती है  
समान तुले हुए मधु और सर्पिं मात्रासे  
विरुद्ध है ॥ १३१ ॥

कटुकोष्णादिसात्म्यस्यस्वादुशी  
तादिसेवनम् । यत्तत्सात्म्यविरु  
द्धन्तुविरुद्धंवनलादिभिः ॥ १३२

कटु और उष्ण प्रकृतिके मनुष्यको  
स्वादु शीत आदिकाजो सेवन वह और

अग्नि आदिसे विरुद्ध सात्म्य विरुद्ध कहाताहै ॥ १३२ ॥

यासमानगुणाभ्यासविरुद्धाऔषध क्रिया।संस्कारतोविरुद्धन्तद्यद्भो ज्यंविषधद्वजेत् ॥ १३३ ॥

समान गुण और अभ्यासके विरुद्ध जो अन्त और औषधकी क्रिया वह और जो भोजनके अनन्तर विषकी समान होजाय वह संस्कारविरुद्ध कहाताहै ॥ १३३ ॥

ऐरण्डसीसकासक्तंशिखिमांसंत थैवहि । विरुद्धंवीर्य्यतोज्ञेयंवी र्य्यतःशीतलात्मकम् ॥ १३४ ॥

और एरण्डके शीसक ( तेलमें ) मिलाहुआ मयूरका मांसभी तिसीप्रकार संस्कार विरुद्ध होताहै और वीर्यसे शीतल रूप पदार्थको ॥ १३४ ॥

तत्संयोज्योष्णवीर्य्येणद्रव्येणस हसेव्यते । क्रूरकोष्ठस्यचात्यल्पं मंदवीर्य्यमभेदनम् ॥ १३५ ॥

उष्ण वीर्य्य द्रव्यके संग मिलाकर जो सेवन किया जाय वह वीर्य्यमें मन्द वीर्य्यसे विरुद्ध जानना और क्रूर कोष्ठ मनुष्यको अत्यंत अल्पवीर्य्यमें मन्द और अभेदक ॥ १३५ ॥

मृदुकोष्ठस्यगुरुचभेदनीयंतथाव हु । एतत्कोष्ठविरुद्धन्तुविरुद्धं स्यादवस्थया ॥ १३६ ॥

औषध और मृदुकोष्ठको गुरु भेदक औषध का जो सेवन वह कोष्ठको विरुद्ध होताहै ॥ १३६ ॥

श्रमव्यपायव्यायामसक्तस्यानिल कोपनम् । निद्रालसस्यालसस्य भोजनंश्लेष्मकोपनम् ॥ १३७ ॥

श्रम, व्यवाय, व्यायाम इनमें आसक्त मनुष्यको वातकोपन औषधिका निद्राके अलसको और अलस मनुष्यको श्लेष्म, कोपन औषधिका जो भक्षण वह अवस्थासे विरुद्ध होताहै ॥ १३७ ॥

यच्चानुत्सृज्यविण्मूत्रंभुक्तेयश्चानु भुक्षितः । तच्चकर्मविरुद्धंस्याद्य चातिक्षुद्रशानुगः ॥ १३८ ॥

और जो मलमूत्र, किये विना भोजन करताहै और जो क्षुधाके विना खाताहै जो अत्यंत क्षुधाके वश होकर खाताहै वह कर्म विरुद्ध होताहै ॥ १३८ ॥

परहारविरुद्धन्तुवराहादीन्निषेव्य यत् । सेवेतोष्णंघृतादींश्चपीत्वा शीतंनिषेवते ॥ १३९ ॥

वराह आदिको भक्षण करिके उष्णका सेवन करे और घृत आदिको पीकर शीतका सेवन करे, वह आहारके विरुद्ध होताहै ॥ १३९ ॥

विरुद्धंपाकतश्चापिदुष्टदुर्दारुसा धितम् । अपक्वतण्डुलात्यर्थपक्व दग्धंचयद्भवेत् ॥ १४० ॥

और जो दुष्ट हो और दुष्ट, काष्ठ में पका हो, और बिना पके तण्डुल, और अन्यन्तपक्क और जला हुआ पदार्थ जो हो, वह पाकसे विरुद्ध होता है ॥ १४० ॥

संयोगतो विरुद्धं तद्यथा म्लंपयसा सह । अमनोरुचितं यच्च हृद्विरुद्धं तदुच्यते ॥ १४१ ॥

और दुग्ध के साथ अम्ल, संयोग विरुद्ध होता है जो मन को न रुचै वह हृद्विरुद्ध कहाता है ॥ १४१ ॥

सम्पद्विरुद्धं तद्विद्यादसंजातरसन्तुतत् । अतिक्रान्तरसंवापिविपक्षरसमेव वा ॥ १४२ ॥

और जिसमें रस, पैदा न होय वह और जो गतरस होगया हो, वा जिसका रस नष्ट होगया हो वह सम्पद्विरुद्ध होता है ॥ १४२ ॥

ज्ञेयं विधिविरुद्धं न तु भुज्यते निभृते न यत् । तदेवं विधमन्नस्याद्विरुद्धं मुपयोजितम् ॥ १४३ ॥

और निभृत (तृप्त) हुआ जो भोजन करै वह विधि विरुद्ध जानना तिससे एवम्प्रकारके पूर्वोक्त अन्न भक्षण करनेसे विरुद्ध होते हैं ॥ १४३ ॥

सात्म्यतोऽल्पतया वापि दीप्ताग्नेस्तृणस्य च । स्नेहव्यायामबलिनो विरुद्धं वितथं भवेत् ॥ १४४ ॥

और सात्म्यसे अल्पतासे और दीप्ता-

ग्निकी और युवाको स्नेह और व्यायामी-की बलवान्की विरुद्ध भी झूठा होजाता है.

पाण्ड्यान्ध्यवीसर्पदकोदराणां विस्फोटकोन्मादभगन्दराणाम् । मूर्च्छामदाध्मानगलग्रहाणां पाण्ड्वामयस्यामविपस्यचैव ॥ १४५ ॥

नपुंसकता, अन्धता, वीसर्प, जलोदर विस्फोट, उन्माद, भगंदर, मूर्च्छा मद, आध्मान, गलग्रह, पाण्डुरोग, आम विप ॥ १४५ ॥

किलासकुष्ठग्रहणीगदानां शोषास्त्रपित्तज्वरपीनसानाम् । सन्तानदोषस्य तथैव मृत्योर्विरुद्धमन्नं प्रवदन्ति हेतुम् ॥ १४६ ॥

किलास, कुष्ठ, ग्रहणीरोग, शोष अस्त्र, पित्त, ज्वर, पीनस इन रोगोंका और सन्तानके दोषका और मृत्युका विरुद्ध अन्न हेतु आचार्योंने कहा है १४६

एषाश्च खलु परेषाश्च वैरोधिकनिमित्तानां व्याधीनमिमेभावाः प्रतिकाराः । यथा वमनं विरेचनञ्च तद्विरोधिनाश्च द्रव्याणां संशमनार्थमुपयोगस्तथा विधैश्च द्रव्यैः पूर्वमाभि संस्कारः शरीरस्येति ॥ १४७ ॥

विरोधके निमित्तसे हुई इनके और अन्य व्याधियोंके ये भाव प्रतिकार हैं जैसे वमन, और विरेचन और उनके

विरोधी द्रव्योंका शान्तिके लिये उपयोग  
और वैसेही द्रव्योंसे पहिले शरीरका  
संस्कार ॥ १४७ ॥

भवतिचात्र ।

विरुद्धाशनजान् रोगान् प्रतिहन्ति  
विरेचनम् । वमनं शमनञ्चैव पूर्वं  
वाहितसेवनम् ॥ १४८ ॥

इसमें ये श्लोक हैं विरुद्ध भोजनसे  
पैदाहुए रोगोंको विरेचन, वमन, और  
शमन वा पहिलेही हितका सेवन नष्ट  
करता है ॥ १४८ ॥

तत्र श्लोकाः ।

मतिरासीन्महर्षीणां यायारसवि  
निश्चये । द्रव्याणि गुणकर्मभ्यां  
द्रव्यसंख्या रसाश्रयाः ॥ १४९ ॥

उसमें ये श्लोक हैं कि रसके निश्च-  
यमें महर्षियोंकी जो मति हुई, द्रव्य,  
गुण, और कर्मसे द्रव्योंकी संख्या रसके  
आश्रय ॥ १४९ ॥

कारणं रससंख्या च रसानुरसलक्ष-  
णम् । परादीनां गुणानाञ्च लक्षणा  
निपृथक् पृथक् ॥ १५० ॥

कारण, रसोंकी संख्या, रस, और  
अनुरसका लक्षणपर आदि गुणोंके पृथक्  
२ लक्षण ॥ १५० ॥

पञ्चात्मकानां षट्त्वञ्च रसानां येन  
हेतुना । ऊर्ध्वानुलोमभाजश्च यद्गु-  
णातिशयाद्रसाः ॥ १५१ ॥

पांच प्रकारके रस जिस प्रकार छः  
प्रकारके होते हैं जैसे गुणोंकी अधिक-  
तासे रस— ऊर्ध्व, अनु लोमके भागी  
होते हैं ॥ १५१ ॥

पण्णारसानां षट्त्वैव सुविभक्ता वि-  
भक्तयः । उद्देशश्चापविद्धश्च द्रव्या-  
णां गुणकर्मणि ॥ १५२ ॥

और छःओं रसोंको भली प्रकार,  
छः प्रकारके विभाग, गुण, कर्ममें द्रव्यों  
का उद्देश और अपविद्ध ॥ १५२ ॥

प्रवरावरमध्यत्वं रसानां गौरवादि  
पु । पाकप्रभावयोर्लिङ्गं वीर्य्यसं-  
ख्याविनिश्चयः ॥ १५३ ॥

और गौरव आदिमें रसोंका प्रवर  
अवर मध्य पाक और प्रभावका लिंग,  
वीर्य्यकी संख्याका निश्चय ॥ १५३ ॥

पण्णामास्वाद्यमानानां रसानां यत्  
स्वलक्षणम् । यद्यद्विरुध्यते यस्मा-  
द्येन यत्कारि चैव यत् ॥ १५४ ॥

और भक्षण किये हुए रसोंका जो  
स्वलक्षण जिससे जिसके संग जो विरुद्ध है  
और जो जिस रोगको करता है ॥ १५४ ॥

वैरोधिकनिमित्तानां व्याधीनामौ-  
षधश्च यत् । आत्रेयभद्रकाप्यीये  
तत्सर्वमवदन्मुनिः ॥ १५५ ॥

इत्यत्र पानचतुष्के आत्रेयभद्रकाप्यीयोनाम  
षड्विंशोऽध्यायः समाप्तः ॥ २६ ॥

और विरोधके, निमित्तसे पैदा हुई व्याधियोंकी जो औषध है, इस संपूर्णका आत्रेय भद्रकाप्यय अध्यायमें मुनिने वर्णन किया ॥ १५५ ॥

इत्यन्नपानचतुष्के आत्रेयभद्रकाप्ययोऽध्यायः ॥ २६ ॥

**सप्तविंशोऽध्यायः ।**

**अथातोऽन्नपानविधिमध्यायं**

**व्याख्यास्यामः ।**

**इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।**

इसके अनंतर अन्नपान विधि अध्यायका वर्णन करते हैं यह भगवान् आत्रेय कहते हैं

इष्टवर्णगन्धरसस्पर्शविधिविहित मन्त्रपानंप्राणिनांप्राणसंज्ञकानां प्राणमाचक्षतेकुशलाः । प्रत्यक्ष फलदर्शनात्तदिन्धनाह्यन्तराग्नेः स्थितिस्तदेवसत्त्वमूर्जयति । तच्छरीरधातुव्यूहबलवर्णेन्द्रिय प्रसादकरंयथोक्तमुपसेव्यमानंवि परैतमहितायसम्पद्यते ॥ १ ॥

इष्ट वर्णके गंधरस स्पर्श और विधिसे किया अन्नपान प्राणसंज्ञाके प्राणियोंका कुशलोंने प्राण कहा है, प्रत्यक्ष फल देखनेसे अन्तराग्निकी स्थितिका वही इन्धन है वह सत्त्वको बढ़ाता है वही शरीरकी धातुओंके व्यूह, वर्ण, बल, इन्द्रिय, इनको यथार्थ सेवन किया हुआ

प्रसन्न करता है, और विपरीत सेवनसे अहितकारी होता है ॥ १ ॥

तस्माद्धिताहितावबोधनार्थमन्न पानविधिमखिलेनोपदेक्ष्यामोऽग्नि वेश ॥ २ ॥

तिससे, हे अग्निवेश, हित, अहितके ज्ञानके लिये संपूर्ण अन्नपान विधिका उपदेश करते हैं ॥ २ ॥

तत्स्वभावादुदकंक्लेदयति, लवणं विप्यन्दयति, क्षारःपाचयति, मधुसन्दधाति, सर्पिःस्नेहयति, क्षीरं जीवयति, मांसंवृंहयति, रसःप्री णयति, सुराजर्जरीकरोति, शी धुअवधमयति, द्राक्षारसोदीपय ति, फाणितंमाचिनोति, दधिशो फंजनयति, पिण्याकशावंग्लपय ति, प्रभूतान्तर्मलोमाषसूपः, दृष्टि शुकन्नःक्षारः, प्रायःपित्तलमम्ल मन्यत्रमधुनःपुराणाच्चशालियव गोधूमात्, प्रायःसर्वतिकंवातल मवृष्यश्चान्यत्रवेत्राग्रपटोलात्, प्रायःकटुकंवातलमवृष्यश्चान्यत्र पिप्पलीविश्वभेषजात् ॥ ३ ॥

तिस अन्नपानमें जल, स्वभावसे क्लेदकारी है, लवण विप्यन्द करता है, क्षार पचाता है मधु, संधान करता है, घी,



स्निग्ध करताहै, दूध, जीवनकारीहै, मांस वृद्धिकारीहै, रस प्रसन्न करताहै, सुरा जर्जर करतीहै, शीघ्र, अवधमन करतीहै, द्राक्षारस, दीपनकारीहै, फाणित आचयन ( संचय ) करताहै, दधि शोफको पैदा करताहै पिण्याकका शाक ग्लानिकारीहै, उड़दकी दाल प्रभूत ( अधिक ) अंतर्मलहै, क्षार, दृष्टि और शुक्रका नाशकहै और, प्रायः अम्लरस, मधु, और पुराने, शालि, जौ और, गेहूंको छोड़कर पित्तकारीहै, और प्रायः संपूर्ण, तिक्त, वेंटका अग्र, और पटोलको छोड़कर, वातल और अवृष्य ( वीर्य नाशक ) हैं और प्रायः कटुकरस, पीपल, और सांठको छोड़कर, वातल और अवृष्यहैं ॥ ३ ॥

परमतोवर्गसंग्रहेणाहारद्रव्याण्युव्याख्यास्यामः ॥ ४ ॥

इससे आगे वर्गके संग्रहसे द्रव्योंका व्याख्यान करतेहैं ॥ ४ ॥

शूकधान्यशमीधान्यमांसशाक फलाश्रयान् । वर्गान्हरितमद्याम्बुगोरसेक्षुविकारिकान् ॥ ५ ॥

शूकधान्य, शमीधान्य, मांस, शाक, फल, और हरित, मद्य, अम्बु, गोरस, इक्षुके विकार ॥ ५ ॥

दशद्वौचपरौवर्गौकृतान्नाहारयो गिनाम् । रसवीर्यविपाकैश्चप्रभावैश्चोपदेक्ष्यते ॥ ६ ॥

इन दश वर्गोंको और कृतान्न और आहार योग इन दो अन्य वर्गोंको रसवीर्य विपाकोंसे और प्रभावसे उपदेश करते हैं ॥ ६ ॥

अथ शूकधान्यवर्गः ।

रक्तशालिर्महाशालिःकलमःशकुनाहतः । चूर्णकोदीर्घशूकश्चगौरःपाण्डुकलांगुलौ ॥ ७ ॥

रक्तशालि, महाशालि, कलम शकुनाहत तूर्णक, दीर्घशूक, गौर, पाण्डुक लांगल ॥ ७ ॥

सुगन्धिकालोहवालाःशालिवाख्याःप्रमोदकाः । पतङ्गास्तपनीयाश्चयेचान्येशालयःशुभाः ॥ ८ ॥

सुगंधिक लोहवाल शालिव प्रमोदक पतंग और तपनीय और जो अन्य उत्तम शालिहैं ॥ ८ ॥

शीतारसेविपाकेचमधुराःस्वल्पमारुताः । वद्धाल्पवर्चसःस्निग्धा बृंहणाःशुक्रमूत्रलाः ॥ ९ ॥

वे शीतल-रस और विपाकमें मधुर और अल्पमारुत और मलके अल्पबंधक स्निग्ध, बृंहण शुक्ल, मूत्रल, हैं ॥ ९ ॥

रक्तशालिर्वरस्तेषांतृष्णाघ्नस्त्रिमलापहः । महास्तस्यानुकलमस्तस्याप्यनुततःपरं ॥ १० ॥

उन सबमें रक्तशालि श्रेष्ठ है तृष्णा और तीनों मलोंका नाशकहै और उससे

नीचे महाशालि उससे नीचे कलम  
औरभी उससे नीचे अन्यशालि होतेहैं १०

यवकाहायनाःपांशुवाप्योनैपध  
कादयः । शालीनांशालयःकुर्व  
न्त्यनुकारंगुणागुणैः ॥ ११ ॥

और यवक हायन पांशुवाप्य, नैप-  
धक आदि जो शालिहैं वे गुण और  
अगुणसे शालियोंका अनुकरण करतेहैं ११

शीतःस्निग्धोगुरुःस्वादुस्त्रिदोषघ्नः  
स्थिरात्मकः । षष्टिकःप्रवरोगौ  
रःकृष्णगौरस्ततोऽनुच ॥ १२ ॥

उनमें षष्टिक शीतल स्निग्ध गुरु  
स्वादु त्रिदोषनाशक स्थिर आत्मक  
होनेसे श्रेष्ठहै और गौर और कृष्णरूप  
होताहै ॥ १२ ॥

वरकोद्दालकौचीनशारदोज्ज्वल  
दर्दुराः । गन्धलाःकुरुविन्दाश्वष  
ष्टिकाल्पान्तरागुणैः ॥ १३ ॥

उसके अनुयायी वरक उद्दालक चीन  
शालक उज्ज्वल दर्दुर गंधन कुर्विन्द ये  
सब शालि षष्टिकसे गुणोंमें अत्यंत  
अल्पहैं ॥ १३ ॥

मधुरश्चाम्लपाकश्चव्रीहिःपित्तक  
रोगुरुः । बहुमूत्रपुरीषोष्मात्रिदो  
षस्त्वेवपाटलः ॥ १४ ॥

मधुर और अम्लपाक जो व्रीहिहै वह  
पित्तकारक और गुरुहै और पाटल बहु  
मूत्र मल, कारीहै ऊष्ण और त्रिदोषको  
करताहै ॥ १४ ॥

सकोरदूषःश्यामाकःकषायमधुरो  
लघुः । वातलःकफपित्तघ्नःशीत  
संग्राहिशोषणः ॥ १५ ॥

कोरदूषक औ श्यामक ये, कसैले  
मधुर लघु वातल कफ पित्तके नाशक  
शीतल संग्राही शोषण, होतेहैं ॥ १५ ॥

हस्तिश्यामाकनीवारतोयपर्णी  
वेधुकाः । प्रशातिकाम्भःश्यामा  
कलौहित्याणुप्रियङ्गवः ॥ १६ ॥

और हस्ति श्यामाक नीवार तोय-  
पर्णी गवेधुक प्रशातिका जल श्यामाक  
लोहित्या अणुप्रियंगु ॥ १६ ॥

मुकुन्दझिण्टिगर्मूटीचरुकावरका  
स्तथा । शिविरोत्कटजूर्णाहः  
श्यामाकसदृशागुणैः ॥ १७ ॥

मुकुंद झिंटी गर्मूटी चरुक और आव-  
रक शिविर उत्कट जूर्णा ये सब गुणोंमें  
श्यामाकके सदृशहैं ॥ १७ ॥

रूक्षःशीतोगुरुःस्वादुःबहुवातश  
लघवः । स्थैर्यकृत्सकषायस्तु  
बल्यःश्लेष्मविकारनुत् ॥ १८ ॥

जो रूक्ष शीतल गुरु स्वाद जिसका  
मल बहुत वातल हो वह यव होताहै,और  
स्थिरताका कर्ता कषाय सहित बल्य  
कफके विकारका नाशक जौ है ॥ १८ ॥

रूक्षःकषायानुरसोमधुरःकफपि

तहा । मेदःक्रिमिविषघ्नश्चल्यो  
वेणुयवोमतः ॥ १९ ॥

और वेणुयव रूक्ष कषायके समान रस  
मधुर, और कफ पित्त नाशक, मेदा क्रिमि  
विषका नाशक बलकारक होता है ॥ १९ ॥

सन्धानकृद्वातहरोगोधूमःस्वादु  
शीतलः । जीवनोबृंहणोवृष्यःस्नि  
ग्धःस्थैर्यकरोगुरुः ॥ २० ॥

संधान ( मल ) काकारी वातहर  
स्वादु शीतल गेहूं होता है और जीव-  
दाता बृंहण वृष्य स्निग्ध स्थिरताका  
कारी गुरुभी गेहूं है ॥ २० ॥

नान्दीमुखीमधूलीचमधुरस्निग्ध  
शीतले । इत्ययंशूकधान्यानां  
पूर्वोवर्गःसमाप्यते ॥ २१ ॥

और नांदीमुखी मधूली ये दोनों  
मधुर स्निग्ध शीतल हैं यह सब शूक  
धान्य ( चालवाले ) धान्योंका प्रथम वर्ग  
समाप्त करते हैं ॥ २१ ॥

इति शूक धान्य वर्गः ॥

इतिशूकधान्यवर्गः ।

अथशमीधान्यवर्गः ।

कषायमधुरोरूक्षःशीतःपाकेकटु  
लघुः । विषदःश्लेष्मपित्तघ्नोमुद्रः  
सूप्योत्तमोमतः ॥ २२ ॥

मूंग कसैला, मधुर, रूक्ष, पित्त,  
पाकमें कटु, लघु, विषद, कफ, पित्तका,

नाशक सूप ( दाल ) में अत्यंत उत्तम  
कहा है ॥ २२ ॥

रूक्षश्चैवकषायश्चवातलःश्लेष्मपि  
तहा । विष्टम्भीचाप्यवृष्यश्चरा  
जमापःप्रकीर्तितः ॥ २३ ॥

और राजमाप ( रवाश ) रूक्ष कषाय  
वातल कफ पित्तनाशक विष्टम्भी अवृष्य  
कहा है ॥ २३ ॥

वृष्यःपरंवातहरःस्निग्धोष्णमधु  
रोगुरुः । वल्योबहुमलःपुंस्त्वमा  
पःशीघ्रंददातिच ॥ २४ ॥

और माप ( उड़द ) अतिवृष्य वात-  
हारक, स्निग्ध, उष्ण, मधुर, गुरु, वल्य  
बहुमल और शीघ्र पुंस्त्वको देता है २४

उष्णाःकषायाःपाकेऽम्लाःकफशु  
क्रानिलापहाः । कुलत्थाग्राहिणः  
कासहिक्काश्वासार्षांसांहिताः ॥ २५ ॥

और कुलत्थ, उष्ण, कषाय, पाकमें,  
अम्ल, कफ शुक्र, वात, इनके नाशक  
ग्राही, कास हिचकी, श्वास, अर्श, इनको  
हित होते हैं ॥ २५ ॥

मधुरामधुराःपाकेग्राहिणोरूक्षशी  
तलाः । मकुष्ठकाःप्रशस्यन्तेरक्त  
पित्तज्वरादिषु ॥ २६ ॥

और मकुष्ठक ( मोठ ) मधुर,  
पाकमेंभी मधुर, ग्राही, रूक्ष, शीतल हैं  
और रक्त, पित्त, ज्वर, आदिमें श्रेष्ठ  
होते हैं ॥ २६ ॥

चणकाश्चमसूराश्चखण्डिकाःसह  
रेणवः । लघवःशीतमधुराःसक  
षायाविरूक्षणाः ॥ २७ ॥

चणक और मसूर खंडिका और रेणु  
ये सब लघु, शीतल, मधुर, कषाय,  
विरूक्षण होतेहैं ॥ २७॥

पित्तश्लेष्मणिशस्यन्तेसूपेष्वाले  
पनेपुचा तेषामसूरःसंग्राहीकशा  
योवातलःपरम् ॥ २८ ॥

और पित्त, श्लेष्ममें सूप और आले-  
पनमें श्रेष्ठ होतेहैं उनमें मसूर, संग्राही,  
कषाय, अत्यंत वातलहै ॥ २८ ॥

स्निग्धोष्णमधुरस्तीक्ष्णःकषायः  
कटुकस्तिलः । त्वच्यःकेश्यश्चव  
त्यश्चवातघ्नःकफपित्तहृत् २९

और तिल, स्निग्ध उष्ण, मधुर, तीक्ष्ण  
कषाय, कटु होताहै त्वचा केशको हित  
बल्य, वातनाशक, कफ, पित्तकारी,  
होताहै ॥ २९ ॥

गुर्व्योऽथमधुराःशीताबलघ्नारूक्ष  
णात्मिकाः । सस्नेहाबलिभिर्भो  
ज्याविविधाःशिम्विजातयः३०

और संपूर्ण शिम्विजाति, गुरु, मधुर,  
शीतल, बलनाशक, रूक्षणात्मक स्नेह  
सहित बलवानोंको भोगने योग्य और  
अनेक प्रकारकी होतीहैं ॥ ३० ॥

आढकीकफपित्तघ्नीवातलाकफ

वातनुत् । अवलगुजःसैडगजोनि  
प्पावावातपित्तलाः ॥ ३१ ॥

और आढकी ( अरहर ) कफ, पित्तकी  
नाशक वातल कफ वात नाशक होतीहै  
और अवलगुज सैडगज निप्पाव ये वात  
पित्तल हैं ॥ ३१ ॥

काकाण्डोलात्मगुप्तानामाषवत्फ  
लमादिशेत् । द्वितीयोऽयंशमी  
धान्यवर्गःप्रोक्तोमहर्षिणा ३२

और काकाण्डोल आत्मगुप्त इनका  
फल माषके समान कहै यह दूसरा शमी  
( फली ) धान्योंका वर्ग महर्षिने कहा  
है ॥ ३२ ॥ इतिशमीधान्यवर्गः ॥

इतिशमीधान्यवर्गः ।

अथमांसवर्गः ।

गोखराश्वतरोष्ट्राश्वद्वीपिसिंहर्क्ष  
वानराः । वृकोव्याघ्रस्तरक्षुश्च  
भुमार्जारमूषिकाः ॥ ३३ ॥

गौ, खर, अश्वतर, ऊंट, द्वीपि, सिंह,  
ऋक्ष, वानर, वृक, व्याघ्र, तरक्षु, वधु  
मार्जार, मूषिक, ॥ ३३ ॥

लोपाकोजम्बुकःश्येनोवान्तादश्वा  
षवायसौ । शशघ्नीमधुहाभासो  
गृध्रोऽलूककुलिङ्गकाः ॥ ३४ ॥

लोपाक, जंबुक, श्येन, वांताद चाष  
वायस, शशघ्न मधुहा भास, गृध्र, उलूक  
कुलिङ्ग ॥ ३४ ॥

धूमीकाकुररश्चेतिप्रसहामृगपक्षि  
णः । श्वेतःश्यामश्चित्रपृष्ठःकाल  
कःकाकुलीमृगः ॥ ३५ ॥

धूमीक कुरर ये मृग और पक्षी प्रसह  
कहातेहैं श्वेत और श्याम, चित्रपृष्ठ,  
कालक, काकुलीमृग, ॥ ३५ ॥

कुचीकाचिल्लकोभेकोगोधाशल्ल  
कगण्डकौ । कदलीनकुलःश्वावि  
दितिभूमिशयाःस्मृताः ॥ ३६ ॥

कुचीका चिल्लड भेक गोधा शल्लक,  
गंडक कदली नकुल श्वावित् ( सेह )  
ये भूमिशय कहेहैं ॥ ३६ ॥

सृमरश्चमरःखड्गोमहिषोगवयोग  
जः । न्यङ्कुर्वराहश्चानूपामृगाः  
सर्वरुरुस्तथा ॥ ३७ ॥

सृमर, चमर, खड्ग, महिष, गवय,  
गज, न्यङ्कु, वराह, संपूर्ण मृग और रुरु  
ये अनूप कहातेहैं ॥ ३७ ॥

कूर्मःकर्कटकोमत्स्यःशिशुमार  
स्तिमिङ्गिलः । शुक्तिशंखोद्रकु  
म्भीरचुलुकीमकरादयः ॥ ३८ ॥

कूर्म, कर्कटक, मत्स्य, शिशुमार,  
तिमिङ्गिल शुक्तिशंख, उद्रकुम्भीर, उलूपी  
मकर, आदि ॥ ३८ ॥

इतिवारिशयाःप्रोक्तावक्ष्यन्तेवा  
रिचारिणः । हंसःक्रौञ्चोबलाका  
चवकःकारण्डवःप्लवः ॥ ३९ ॥

ये वारिशय, कहेहैं अबजल, चारि-  
योंको कहतेहैं हंस क्रौञ्च बलाका चक,  
कारण्डव, प्लव ॥ ३९ ॥

शरारीपुष्कराहश्चकेशरीमानतु  
ण्डिकः । मृणालकण्ठोमद्गुश्च  
कादम्बःकाकतुण्डकः ॥ ४० ॥

शरारी पुष्कराह केशरी मानतुण्डिक  
मृणालकंठ मद्गु कादंब काकतुण्डक ४०  
उत्क्रोशःपुण्डरीकाक्षोमेघरावोऽ  
म्बुकुक्कुटी । आरानन्दीमुखीवा  
टीसुमुखाःसहचारिणः ॥ ४१ ॥

उत्क्रोश पुण्डरीकाक्ष, मेघराव, अंबु  
कुक्कुटी आरानन्दी मुखीवाटी सुमुख ये  
सहचारी हैं ॥ ४१ ॥

रोहिणीकामकालीचसारसोरक्त  
शीर्षकः । चक्रवाकास्तथान्ये  
चखगाःसन्त्यम्बुचारिणः ॥ ४२ ॥

रोहिणी कामकाली, सारस, रक्तशी-  
र्षक, चक्रवाक और, तैसेही अन्यभी  
पक्षी जलचारी होतेहैं ॥ ४२ ॥

पृषतःशरभोवामःश्वदंष्ट्रामृगमा  
तृकाः । शशोरणौकुरङ्गश्चगोक  
र्णःकोट्टकारकः ॥ ४३ ॥

और पृषत शरभ वाम, श्वदंष्ट्री, मृग-  
मातृका शश उरण कुरंग गोकर्ण कोट्ट  
कारक ॥ ४३ ॥

चारुष्कोहरिणैणौचशम्बरःका

लपुच्छकः । ऋष्यश्वतरपोतश्च  
विज्ञेयाजाङ्गलामृगाः ॥ ४४ ॥

चारुष्क, हरिण, एण, शंवर काल,  
पुच्छक, ऋष्य तरपोत, ये सब जंगलके  
मृग जानने ॥ ४४ ॥

लावोवर्तीरकश्चैववार्तीकः सकपि  
अलः । चकोरश्चोपचक्रश्चकुक्कु  
टोरक्तवर्त्तकः ॥ ४५ ॥

और लाव वर्तीरक वार्तीक कर्पिजल,  
चकोर उपचक्र कुंकुट, रक्तवर्त्तक ॥ ४५ ॥

लावाद्याविष्किरास्त्वेतेवक्ष्यन्ते  
वर्त्तकादयः । वर्त्तकोवर्त्तिकाचै  
ववर्हीतितिरिकुक्कुटौ ॥ ४६ ॥

ये लाव आदि विष्किर कहातेहैं अवव-  
र्त्तक आदिको कहतेहैं, वर्त्तक वर्त्तिका  
वर्ही-तितिरि कुक्कुट ॥ ४६ ॥

कङ्कसारपदेन्द्राभगोनर्दगिरिवर्त्त  
काः । ऋकरोऽवकरश्चैववराहश्चै  
तिविष्किराः ॥ ४७ ॥

कंक शारपद इन्द्राभ गोनर्द गिरिवर्त्तक  
ऋकर अवकर वराह ये भी विष्किर कहा-  
तेहैं ॥ ४७ ॥

शतपत्रोभृङ्गराजः कोयष्टीजीव  
जीवकः । कैरातः कोकिलोऽत्यू  
होगोपापुत्रः प्रियात्मजः ॥ ४८ ॥

और शतपत्र भृङ्गिराज कोयष्टी जीव  
जीवक कैरात, कोकिल, अत्यूह, गोपापुत्र  
प्रियात्मज ॥ ४८ ॥

लङ्गालट्टपकोवभ्रुवटहाडिण्डिमा  
नकः । जटीदुन्दुभिवाक्कावलोह  
पृष्ठकुलिङ्गकाः ॥ ४९ ॥

लङ्गालट्टपक, वभ्रु वटहा डिण्डिमा-  
नक जटी दुंदुभी वाक्काव लोहपृष्ठ कुलिं-  
गक ॥ ४९ ॥

कपोतशुकसारङ्गाश्चिरिटीकंकुय  
ष्टिकाः । सारिकाकलविङ्कश्च  
टकोऽङ्गारचूडकः ॥ ५० ॥

कपोत शुक, सारंग, चिरटी कंकुयष्टिक  
सारिका कलर्विक चटक अंगारचूडक ५०

पारावतः पाण्डविकइत्युक्ताः प्रतु  
दाद्विजाः । प्रसह्यभक्षयन्तीति  
प्रसहास्तेनसंज्ञिताः ॥ ५१ ॥

पारावत, पांडविक, ये पक्षी प्रतुद  
कहातेहैं जो प्रसह्य अर्थात् बलात्कारसे  
भक्षण करतेहैं इससे प्रसह कहातेहैं ५१

भूशयाविलवासित्वादानूपानूपसं  
श्रयात् । जलेनिवासाज्जलजाज  
लचर्ग्याज्जलेचराः । स्थलजाजा  
ङ्गलाः प्रोक्तामृगाजाङ्गलचारि  
णः ॥ ५२ ॥

विलमें बसनेसे भूशय और अनूपके  
संश्रयसे अनूप जलमें निवाससे जलज  
और जलमें विचरनेसे जलचर होतेहैं  
और स्थलमें पैदा हुए जो जंगलमें  
विचरें वे जांगल कहेहैं ॥ ५२ ॥

विकीर्यविष्किराश्चेतिप्रतुद्यप्रतु

दाःस्मृताः । योनिरष्टविधात्वेषां

मांसानांपरिकीर्त्तिताः ॥ ५३ ॥

और विकीर्य ( खोदकर ) भक्षण करनेसे विष्किर और चांचसे तोड़ ( तोड़ ) कर खानेसे प्रतुद कहेहैं यह आठ प्रकारकी मांसोंकी योनि कही ॥ ५३ ॥

प्रसहाभूशयानूपवारिजावारिचा

रिणः । गुरुष्णस्निग्धमधुरावलो

पचयवर्द्धनाः ॥ ५४ ॥

प्रसह भूशय अनूप वारिज जलचारी ये सब गुरु, उष्ण, स्निग्ध, मधुरहैं, और बलवृद्धिको करतेहैं ॥ ५४ ॥

वृष्याःपरंवातहराःकफपित्ताभि

वर्द्धिनः । हिताव्यायामनित्यानां

नरादीताग्रयश्चये ॥ ५५ ॥

अधिक वृष्यहैं वातहरहैं और कफ पित्तके अत्यंत वर्द्धकहैं जो नित्य व्यायाम करतेहैं उनको और जो दीप्ताग्रिहैं उनको हित हैं ॥ ५५ ॥

प्रसहानांविशेषेणमांसंमांसाशिनां

भिषक् । जीर्णार्शोग्रहणीदोष

शोषार्त्तानांप्रयोजयेत् ॥ ५६ ॥

प्रसहोंके मांसको वैद्य मांस भक्षकको और जीर्ण अर्श ग्रहणी दोष शोषसे आर्तोंको दे ॥ ५६ ॥

लावाद्यवैष्किरोवर्गःप्रतुदाजाङ्ग

लामृगाः । लघवःशीतमधुराःस

कपायाहितानृणाम् ॥ ५७ ॥

लाव आदि जो विष्किर पक्षियोंकी वर्ग है प्रतुद जो जंगलके मृगहैं ये लघु शीतल, मधुर, कपायहैं, और मनुष्योंकी हितहैं ॥ ५७ ॥

पित्तोत्तरेवातमध्येसन्निपातेकफा

नुगे।विष्करावर्तकाद्यास्तुप्रसहा

ल्पान्तरागुणैः ॥ ५८ ॥

पित्त जिसमें अधिक हो वात मध्यम हो कफका अनुयायी जो सन्निपात उसमें विष्किर वर्तका आदि गुणोंमें प्रसहसे कुछही अल्पहैं ॥ ५८ ॥

नातिशीतगुरुस्निग्धमांसमाज्मदो

षलम् । शरीरधातुसामान्यादन

भिष्यन्दिबृंहणम् ॥ ५९ ॥

और अजाका मांस अति शीत नहींहै, गुरु स्निग्ध दोषोंका अजनक शरीर धातुओंके सामान्यसे अभिष्यंदी नहींहै, और बृंहणहै ॥ ५९ ॥

मांसंमधुरशीतत्वादुरुबृंहणमावि

कम् । योनावजाविकेमिश्रगोच

रत्वादनिश्चिते ॥ ६० ॥

भेडका मांस मधुर शीतल होनेसे गुरु और बृंहणहै, अजा, और अवि ( भेड ) मिले हुये गोचर होनेसे अनिश्चित होतेहैं ॥ ६० ॥

सामान्येनोपदिष्टानामांसानांस्व

गुणैः पृथक् । केषाञ्चिद्गुणवैशेष्याद्विशेष उपदेक्ष्यते ॥ ६१ ॥

प्रथम सामान्यसे उपदेश किये मांसांका अपने २ गुणोंसे पृथक् २ और किन्ही २ के गुणोंकी विशेषतासे विशेष ६१ दर्शन श्रोत्रमेधाग्नि वयोवर्णस्वरायुषाम् । बर्हीहिततमो बल्यो वातघ्नो मांसशुक्रलः ॥ ६२ ॥

दर्शन श्रोत्र बुद्धि अग्नि वायु वर्णस्वरकी अवस्था इनके लिये उपदेश करते हैं, वही अत्यंत हित और बलका दाता वात नाशक, मांस और शुक्र वर्द्धक होता है ॥ ६२ ॥

गुरुष्णस्निग्धमधुराः स्वरवर्णबलप्रदाः । बृंहणाः शुक्रलाश्चोक्ताहंसाः मारुतनाशनाः ॥ ६३ ॥

और हंस गुरु स्निग्ध मधुर स्वरवर्णबल इनके दाता, बृंहण ( पोषक ) शुक्र वर्द्धक उत्तम स्वरके नाशक होते हैं ॥ ६३ ॥

स्निग्धाश्चोष्णाश्च वृष्याश्च बृंहणाः स्वरबोधनाः । बल्याः परं वातहराः स्वेदनाश्च रणायुधाः ॥ ६४ ॥

और चरणायुध ( मुरगे ) स्निग्ध उष्ण वृष्य बृंहण स्वरके बोधक, बलके दाता अत्यंत वातहर और स्वेदकारी होते हैं ॥ ६४ ॥

गुरुष्णमधुरो नातिधन्वानूपनिषेवणात् । तित्तिरिः सञ्जयेच्छीघ्रं

त्रीन्दोपाननिलो लवणान् ॥ ६५ ॥

और गुरु उष्ण मधुर जो तित्तिरि है वह अधिकतासे जलके समीपके धान्योंके सेवनसे शीघ्रही, वातहै अधिक जिनमें ऐसे तीन दोषोंको पैदा करता है ॥ ६५ ॥

पित्तश्लेष्मविकारे पुसरक्तेषु कपिजलाः । मन्दवातेषु शस्यन्तेशैत्यमाधुर्यलाघवात् ॥ ६६ ॥

शीतल मधुर लघु होनेसे कपिजल रुधिर सहित पित्त श्लेष्मके विकारोंमें और मंद वातोंमें श्रेष्ठ होते हैं ॥ ६६ ॥

लावाः कषायमधुराः लघवोऽग्निविबर्द्धनाः । सन्निपातप्रशमनाः कटुकाश्च विपाकतः । कषायमधुराः शीतारक्तपित्तनिबर्हणाः ॥ ६७ ॥

और लाव, कषाय मधुर लघु अग्नि वर्द्धन सन्निपातके प्रशमन और विपाकमें कटु होते हैं और कषाय में मधुर शीतल रक्तपित्तके नाशक ॥ ६७ ॥

विपाके मधुराश्चैव कपोता गृहवासिनः । तेभ्यो लघुतराः किञ्चित् कपोता वनवासिनः ॥ ६८ ॥

और विपाकमें मधुर गृहवासी कपोत होते हैं और उनसे कुछ लघु वनके वासी कपोत होते हैं ॥ ६८ ॥

शीताः संग्राहिणश्चैव स्वल्पयूषाश्च तेमताः । शुक्रमांसं कषायाम्लं विपाके रूक्षशीतलम् ॥ ६९ ॥



और वे शीतल संग्राही अल्पयूपवान् माने हैं और शुक्रका मांस कसेला अम्ल पाकमें रुक्ष शीतल होता है ॥ ६९ ॥

शोषकासक्षयहितसंग्राहिलघुदीपनम् । कपायविशदोरुक्षःशीतः पाकेकटुर्लघुः ॥ ७० ॥

और शोक कास क्षय इनमें हित संग्राही लघु दीपन लघु होता है और कपायमें विशद रुक्ष शीतल पाकमें कटु लघु ॥ ७० ॥

शशःस्वादुःप्रशस्तश्चसन्निपातेऽनिलावरे । चटकामधुराःस्निग्धा बलशुक्रविवर्द्धनाः ॥ ७१ ॥

स्वादु और वात है अल्प जिसमें ऐसा सन्निपातमें श्रेष्ठ, शश होता है, और चटका ( चिड़ा ) मधुर स्निग्ध और बल शुक्रके विवर्द्धन होते हैं ॥ ७१ ॥

सन्निपातप्रशमनाःशमनामारुतस्यच । मधुराःकटुकाःपाकेत्रिदोषशमनाःशिवाः ॥ ७२ ॥

और शिव ( गीदड़ ) सन्निपातके प्रशमन और मारुतके और त्रिदोषके शमन मधुर और पाकमें कटु होते हैं ७२

लघवोबद्धविण्मूत्राःशीताश्चैणाः प्रकीर्तिताः । गोधाविपाकेमधुराः कपायकटुकारसे ॥ ७३ ॥

और एण ( मृग ) लघु मल मूत्र

के बंधक, शीतल कहे हैं, और गोधा, पाकमें मधुर, रसमें कपाय कटु ॥ ७३ ॥

वातपित्तप्रशमनीवृंहणीबलवर्द्धिनी । शल्लकोमधुराम्लस्तुविपाकेकटुकःस्मृतः । वातपित्तकफघ्नश्चकासश्वासहरस्तथा ॥ ७४ ॥

और वात पित्तनाशक, वृंहण और बल वर्द्धक होती है, और शल्यक ( सेह ) मधुर अम्ल, पाकमें कटु कहा है, और वातपित्त कफका नाशक और कासश्वास का हारक होता है ॥ ७४ ॥

शैबलाहारभोजित्वात्स्वप्नस्यचविवर्जनात् ॥ ७५ ॥

और शैबल आहारका भोजी और स्वप्नका त्यागी होनेसे ॥ ७५ ॥

रोहितोदीपनीयश्चलघुपाकोमहाबलः । गुरुष्णमधुराबल्यावृंहणाःपवनापहाः ॥ ७६ ॥

रोहितमृग, दीपन, पाकमें लघु, महाबली होता है और गुरु उष्ण मधुर बलके दाता वृंहण वातनाशक ॥ ७६ ॥

मत्स्याःस्निग्धाश्चवृष्याश्चबहुदोषाःप्रकीर्तिताः । स्नेहनंवृंहणंवृष्यश्रमघ्नमनिलापहम् ॥ ७७ ॥

मत्स्य स्निग्ध, वृष्य, बहुत दोषवाले कहे हैं और इनका स्नेह युक्त मांस वृंहण वृष्य श्रमको हरनेवाला वातका नाशक कहा है ॥ ७७ ॥

बल्योवातहरोवृष्यश्वशुष्योबलवर्द्धनः । मेधास्मृतिकरः पथ्यः शोषघ्नः कूर्म उच्यते । वराहपिशितं बल्यं रोचनं स्वेदनं गुरु ॥ ७८ ॥

और कूर्म बलकारी वातहारी वीर्यवर्द्धक नेत्रोंको हित बलवर्द्धन, मेधास्मृतिकारक पथ्य और शोषनाशक कहा है और वराहका मांस, बलदायी रोचन, स्वेदन गुरु होता है ॥ ७८ ॥

गव्यं केवलवातेपुपीनसे विषमज्वरे ! शुष्ककासश्रमात्यग्निमांसक्षयहितश्च यत् ॥ ७९ ॥

गौकामांस, केवल वातमें पीनस और विषमज्वरमें और शुष्ककास श्रम अत्यंत अग्निमांसका क्षय, इनमें हित है ॥ ७९ ॥

स्निग्धोष्णमधुरं वृष्यं माहिपंगुरुतर्पणम् । दार्ढ्यं बृहत्त्वमुत्साहं स्वप्नश्च जनयत्यपि ॥ ८० ॥

भैंसका मांस स्निग्ध उष्ण मधुर वृष्य गुरु तृप्तिका कर्ता है और दृढता बृंहण उत्साह और शयन इनको भी पैदा करता है ॥ ८० ॥

धार्तराष्ट्रचकोराणां दक्षाणां शिखिनामपि । चटकानां च यानि स्युरण्डानि च हितानि च ॥ ८१ ॥

धार्तराष्ट्र ( सपेद चरण हंस ) चकोर दक्ष ( मुरगा ) मयूर चटक इनके अंड और हित कारी जो अन्य अंड हैं ॥ ८१ ॥

रेतः क्षीणे पुकासे पुहद्रोगे पुक्षते पुच । मधुराण्यवपाकी निसर्घो बलकराणि च ॥ ८२ ॥

वे सब वीर्यक्षीण कास हृद्रोग क्षतमें हित होते हैं मधुर हैं शीघ्रपाक हैं और तत्काल बलकारी हैं ॥ ८२ ॥

शरीरबृंहणे नान्यत् दार्ढ्यं मांसाद्धिशिष्यते । इति वर्गस्तृतीयोऽयं मांसानां परिकीर्तितः ॥ ८३ ॥

इति मांसवर्गः ।

शरीरकी वृद्धि करनेमें मांससे अन्य कोई दृढ नहीं है, यह तीसरा वर्ग मांसोंका वर्णन किया ॥ ८३ ॥ इति मांसवर्गः ॥

अथ शाकवर्गः ।

पाठा तुषा शठी शाकं वास्तुकं सुनिपण्णकम् । विद्याद्ग्राहि त्रिदोषघ्नं मित्रवर्चस्तु वास्तुकम् ॥ ८४ ॥

पाठा तुषा शठी वास्तुक सुनिपण्णक ये शाक ग्राही त्रिदोषके नाशक हैं मल भेदक तो वास्तु ( बथुआ ) होता है ॥ ८४ ॥

त्रिदोषशमनी वृष्याकाकमाचीरसायनी । नात्युष्णशीतवीर्या च भेदनी कुष्ठनाशिनी ॥ ८५ ॥

और काकमाची ( काय फललता ) त्रिदोष नाशक वृष्य रसायन अति उष्ण और शीतल वीर्य नहीं, भेदक कुष्ठ शमनी होती है ॥ ८५ ॥

राजक्षवकशाकन्तुत्रिदोषशमनं  
लघु । ग्राहिशस्तंविशेषेणग्रहण्य  
शौविकारिणाम् ॥ ८६ ॥

राजक्षवक ( राई ) का शाक तो  
त्रिदोषका शमन लघु ग्राही और विशेष-  
कर ग्रहणी अर्शके रोगियोंको उत्तम है ॥ ८६ ॥

कालशाकन्तुकटुकंदीपनंगरशो  
फजित् । लघूष्णवातलरूक्षकं  
रालंशाकमुच्यते ॥ ८७ ॥

कालका शाक तो कटु दीपन गलके  
शोफका नाशक है, और करालका शाक  
लघु उष्ण वातल रूक्ष कहा है ॥ ८७ ॥

दीपनीचोष्णवीर्याचग्राहिणीक  
फमारुते । प्रशस्यतेऽम्लचाङ्गेरी  
ग्रहण्यशौहिताचसा ॥ ८८ ॥

और अम्लचांगेरी, दीपन वीर्यमें  
उष्ण ग्राही कफ वातमें श्रेष्ठ और ग्रहणी  
और अर्शमें हित है ॥ ८८ ॥

मधुरामधुरापाकेभेदनीश्लेष्मवर्द्धि  
नी । वृष्यास्निग्धाचशीताचमद  
घ्नीचाप्युपोदका ॥ ८९ ॥

और उपोदकी ( पोई ) मदघ्नी जो हैं,  
वे मधुर, पाकमें मधुर भेदक कफ वर्द्धक  
वृष्य, स्निग्ध और शीतल हैं ॥ ८९ ॥

रूक्षोमदविषघ्नश्चप्रशस्तोरक्तपि  
त्तिनाम् । मधुरोमधुरःपाकेशीत  
लस्तण्डुलीयकः ॥ ९० ॥

और तंडुलीयकका शाक रूक्ष, मद  
और विष नाशक, रक्तपित्तियोंको हित  
मधुर, पाकमें मधुर और शीतल होता है ९०

मण्डूकपर्णीवेत्राग्रकुचेलावनति  
क्तकम् । कर्कोटकावलगुजकौप  
टोलंशकुलादनी ॥ ९१ ॥

मंडूकपर्णी, वेत्रकाअग्र, कुचेला वन-  
तिक्तक, कर्कोटका वलगुजक, पटोल  
शकुलादनी ॥ ९१ ॥

वृषपुष्पाणिशार्ङ्गठाकेवृकंसकटि  
लकम् । नाडीकलायंगोजिह्वा  
वार्त्ताकंतिलपर्णिका । कुलकंक  
र्कशंनिम्बंशाकंपर्पटकश्चयत् ९२

वृषकेपुष्प, शार्ङ्गठा केवुक कटिलक  
नाडी कलाय गोभी वैंगन तिलपर्णी, कु-  
लक कर्कश निंब पर्पटका शाक ॥ ९२ ॥

कफपित्तहरंतिकंशीतंकटुविप  
च्यते । सर्वाणिसूप्यशाकानिफ  
ञ्जीचिल्लीकतुम्बुकः ॥ ९३ ॥

ये सब कफ पित्तहर, तिक्त शीतल  
और पाकमें कटु होते हैं, और संपूर्ण  
सूप्यशाक, फंजी चिल्ली कतुंबुक ॥ ९३ ॥

आलुकानिचसर्वाणिसपत्राणिक  
टिञ्जरः । शणशाल्मलिपुष्पाणि  
कर्बुदारःसुवर्चला ॥ ९४ ॥

संगूर्ण आलु और उनके पत्ते कुटिंजर  
शण और संभलके पुष्प कर्बुदार सुव-  
र्चला ॥ ९४ ॥

निष्पावःकोविदारश्चपत्तुरश्चाखु  
पर्णिका । कुमारजीवोलोद्वाकपा  
लङ्घ्यामारिपस्तथा ॥ ९५ ॥

निष्पाव कोविदार पत्तुर आखुपर्णिका  
कुमारजीव लङ्घ्याक पालंकी और  
मारिप ॥ ९५ ॥

कलम्बोनालिकास्मर्युःकुसुम्भ  
वृक्षधूमकौ । लक्ष्मणश्चप्रपुन्नाडो  
नलिनीकाकुवेरकः ॥ ९६ ॥

कलंब नालिका स्मर्यु कुसुंभ वृक्ष-  
धूम, लक्ष्मण, प्रपुन्नाड नलिनीका कु-  
वेरक ॥ ९६ ॥

लोणिकायवशाकश्चकूष्माण्डक  
मवल्गुजः । यातुकःशालकल्या  
णीत्रिपर्णीपीलुपर्णिका ॥ ९७ ॥

लोणिका, यवशाक, कूष्माण्डक अव-  
ल्गुज यातुक शालकल्याणी त्रिपर्णी  
पीलुपर्णी ॥ ९७ ॥

शाकंगुरुचरुक्षश्चप्रायोविष्टभ्य  
जीर्यति । मधुरंशीतवीर्य्यश्चपु  
रीपस्यचभेदनम् ॥ ९८ ॥

ये शाक गुरु रुक्ष और विष्टभ करके  
जीर्ण होते हैं, और मधुर हैं शीतल वीर्य्य  
हैं, मल भेदक हैं ॥ ९८ ॥

स्विन्नंनिष्पीडितरसंस्नेहाढ्यंतप्र  
शस्यते । शणस्यकोविदारस्यक  
र्बुदारस्यशाल्मलेः ॥ ९९ ॥

और स्वेदन किये इनका निष्पीडित  
रस स्नेह युक्त होनेसे श्रेष्ठ कहा है, और  
शणकोविदार कर्बुदार, संभल ॥ ९९ ॥

पुष्पग्राहिप्रशस्तश्चरक्तपित्तविशेष  
तः । न्यग्रोधोदुम्बराश्चत्थपुक्षप  
आदिपल्लवाः ॥ १०० ॥

इनके पुष्प ग्राही और विशेष कर  
रक्त पित्तमें श्रेष्ठ होता है, वट गूलर पीपल  
पिलखन पन्न आदिके पत्ते ॥ १०० ॥

कपायाःस्तम्भनाःशीताहिताःपि  
त्तातिसारिणाम् । वायुंवत्सादनी  
हन्यात्कफगण्डीरचित्रकौ १०१

कपाय स्तम्भन शीतल, और पित्तके  
अतिसारियोंको हित होते हैं, और व-  
त्सादिनी वायुको कंडीर्यचित्रक, कफको  
नाश करते हैं ॥ १०१ ॥

श्रेयसीविल्वपर्णीचिविल्वपत्रन्तु  
वातनुत् । भाण्डीशतावरीशाकं  
बलाजीवन्तिजञ्चयत् ॥ १०२ ॥

और उत्तम विल्वपर्णी, और विल्व-  
पत्र ये वातको नष्ट करते हैं, और भांडी  
शतावरकाशाक बलाजीवन्ती ॥ १०२ ॥

पर्वण्याःपर्वपुण्याश्चवातपित्तहरं  
स्मृतम् । लघुभिन्नशक्तिकंला  
ङ्गुलक्युरुवुकयोः ॥ १०३ ॥

पर्वणी पर्वपुष्पी इनका शाक वातहर  
कहा है लांगुलकी उरुवुक इनका शाक  
लघु तिक्त और मल भेदक होता है ॥ १०३ ॥

तिलवेतसशाकश्चशाकंमञ्चांगुल  
स्यवा । वातलंकटुतिकाम्लमधो  
मार्गप्रवर्तकम् ॥ १०४ ॥

और तिलवेतस और पंचांगुलका  
शाक वातल कटु तिक्त अम्ल है और  
अधोमार्गका प्रवर्तक है ॥ १०४ ॥

रूक्षाम्लमुष्णकौसुम्भकफघ्नपित्त  
वर्द्धनम् । त्रपुसैर्वारुकंस्वादुगुरु  
विष्टम्भिशीतलम् ॥ १०५ ॥

कुसुम्भका शाक रूक्ष अम्ल उष्ण है  
कफनाशक और पित्त वर्द्धक है, त्रपुस  
एवारुकका शाक स्वादु गुरु विष्टम्भि  
शीतल है ॥ १०५ ॥

मुखप्रियश्चरूक्षश्चमूत्रलंत्रपुसंत्व  
ति। एवारुकश्चसंपकंदाहतृष्णाक्ल  
मार्त्तिनुत् । वर्चोभेदीन्यलावूनि  
रूक्षशीतगुरुणिच ॥ १०६ ॥

और त्रपुसका तो मुखमें प्रिय रूक्ष अति  
मूत्रल होता है, और अलावू (मीठीतुंबी)  
मलकीभेदक रूक्ष शीतल गुरु होती है ॥ १०६ ॥

चिर्भित्थेर्वारुकेतद्वर्चोभेदहिते  
तुते । कूष्माण्डमुक्तंसक्षारंमधुरा  
म्लंतथालघु ॥ १०७ ॥

और चिर्भिट एवारुक ( ककडीके  
भेद ) येदो और पका हुआ एवारुक दाह तृ  
ष्णाग्लानि इनको नष्ट करता है तिसी प्रकार  
मलभेदनमें हितकारी होते हैं और कु-  
ष्माण्ड क्षार मधुर अम्ल लघु कहा है ॥ १०७ ॥

स्रष्टमूत्रपुरीपश्चसर्वदोषनिवर्हण  
म् । केलूटश्चकदम्बश्चनदीमाप  
कमैन्दुकम् ॥ १०८ ॥

और मूत्र पुरीषका उत्पादक, सर्व  
दोषनाशक होता है और केलूट, कदंब,  
नदीमापक, ऐन्दुक, इनको ॥ १०८ ॥

विपदंगुरुशीतंचसमभिष्यन्दिचो  
च्यते ॥ १०९ ॥

विपद, गुरु शीतल, भली प्रकार  
अभिष्यन्दी कहते हैं ॥ १०९ ॥

उत्पलानिकपायाणिपित्तरक्तहरा  
णिच । तथातालप्रलम्बश्चउरः  
क्षतरुजापहम् । खर्जूरंतालशस्य  
श्चरक्तपित्तक्षयापहम् ॥ ११० ॥

उत्पल, कसेले पित्तरक्तनाशक  
होते हैं तैसेही तालप्रलंब, उरःक्षतकी  
पीडाका नाशक है खजूर और तालशस्य  
ये रक्तपित्त क्षय इनका नाशक हैं ॥ ११० ॥

भरुटंबिसशालूकक्रौञ्चादनकशेरु  
कम् । शृङ्गाटकंकलोड्यश्चगुरु  
विष्टम्भिशीतलम् । कुमुदोत्पल  
नालास्तुसपुष्पाःसफलाःस्मृताः ॥ १११ ॥

भरुट, बिस, शालूक, क्रौंचादन  
कसेरु, सिंघाड़ा, कलोड्य, ये गुरु, वि-  
ष्टम्भी, और शीतल, होते हैं, और कुमुद  
उत्पलके, नाल, पुष्प और फल सहित  
ये ॥ १११ ॥

शीताःस्वादुकपायास्तुकफमारु  
तकोपनाः । कपायमीषद्विष्टम्भि  
रक्तपित्तहरंस्मृतम् ॥ ११२ ॥

शीतल, स्वादु, कपाय, होते हैं,  
और, कफ, वातको कुपित, करते हैं,  
इनका, कपाय, किंचित् विष्टम्भी, और  
रक्त, पित्त, नाशक, कहाँ है ॥ ११२ ॥

पौष्करन्तुभवेद्विजिम्भधुरंरसपाक  
योः । वल्यःशीतोगुरुःस्निग्धस्त  
र्पणोवृंहणात्मकः ॥ ११३ ॥

और पुष्करका बीज, रस, और  
पाकमें मधुर होता है, और, वल्य,  
शीतल, गुरु, स्निग्ध, तर्पण वृद्धिका-  
रक ॥ ११३ ॥

वातपित्तहरःस्वादुर्वृष्योमुजात  
कःस्मृतः । जीवनोवृंहणोवृष्यः  
कण्ठ्यःशस्तोरसायने ॥ ११४ ॥

वात पित्तनाशक, स्वादु, और अत्यंत  
वृष्य मुंजातक होता है, और जीवन  
वृंहणवृष्य, कण्ठको हित, और रसायनमें  
श्रेष्ठ होता है ॥ ११४ ॥

विदारीकन्दोवल्यश्चमूत्रलःस्वादु  
शीतलः । अम्लीकायाःस्मृतः  
कन्दोग्रहण्यर्शोहितोलघुः ॥ ११५ ॥

विदारीकन्द, वल्य, मूत्रल, स्वादु,  
और शीतल होता है, अम्लीकाका कन्द,  
ग्रहणी और अर्शमें हित और, लघु  
कहाँ है ॥ ११५ ॥

नात्युष्णःकफवातघ्नोऽग्राहीशस्तो  
मदात्यये । त्रिदोषंवद्धविण्मूत्रं  
सार्पपंशाकमुच्यते ॥ ११६ ॥

और अत्यन्त उष्ण नहीं, कफ, वात  
नाशक, ग्राह्य, और मदात्ययमें श्रेष्ठ  
सरसोंका शाक कहाँ है ॥ ११६ ॥

तद्वत्पिण्डालुकंविद्यात्कन्दत्वा  
च्चमुखप्रियम् । सर्पच्छत्रकवर्ज्या  
स्तुबद्धचोन्यच्छत्रजातयः ११७

और त्रिदोष और मलमूत्रका बन्धक  
कहाँ है, तिसी प्रकार पिंडालुकको कन्द  
होनेसे मुखमें प्रिय जानें और सर्पछ-  
त्रकको छोड़कर बहुतसी अन्य छत्रकी  
जाति ॥ ११७ ॥

शीताःपीनसकर्च्यश्चमधुरागुर्व्यण्  
वच । चतुर्थःशाकवर्गोऽयंपत्रक  
न्दफलाश्रयः ॥ ११८ ॥

इतिशाकवर्गः ।

शीतल पीनसकारक मधुर और  
गुर्वी ( भारी ) कही हैं पत्र, कन्द, फल-  
के आश्रयसे चौथा यह शाक वर्ग है ११८

इति-शाकवर्गः

अथफलवर्गः ।

तृष्णादाहज्वरश्चासरक्तपित्तक्षत  
क्षयान् । वातपित्तमुदावर्तस्वरभे  
दंमदात्ययम् ॥ ११९ ॥

तृष्णा, दाह, ज्वर श्वास, रक्त, पित्त, क्षत, क्षय, वात पित्त उदावर्त, स्वरभेद, मदात्यय ॥ ११९ ॥

तिक्तास्यतामास्यशोपंकाशश्चा  
शुव्यपोहति । मृद्वीकावृंहणीवृ  
ष्यामधुरस्निग्धशीतला ॥ १२० ॥

तिक्तमुखता, मुखकाशोप, काश, इनको; मुनक्का शीघ्र नष्ट करतीहै और वृंहण, वृष्य, मधुर, स्निग्ध, शीतल, होतीहै ॥ १२० ॥

मधुरंवृंहणंवृष्यंस्वर्जूरंगुरुशीतल  
म् । क्षयेऽभिघातेदाहेचवातपित्ते  
चतद्धितम् ॥ १२१ ॥

मधुर, वृंहण, वृष्य, गुरु, शीतल, खजूर, होताहै, क्षय, अविघात, दाह, वात, पित्त, इनमें हितहै ॥ १२१ ॥

तर्पणंवृंहणंफल्गुगुरुविष्टम्भिशीत  
लम् । परूपकंमधूकश्चवातपित्ते  
चशस्यते ॥ १२२ ॥

तर्पण, वृंहण फल्गु गुरु, विष्टम्भी, शीतल, फालसा महुआ होताहै और वात, पित्तमें श्रेष्ठ होता है ॥ १२२ ॥

मधुरंवृंहणंबल्यमाभ्रातंतर्पणंगुरु।  
सस्नेहंश्लेष्मलंशीतंवृष्यंविष्टभ्य  
जर्ग्यति ॥ १२३ ॥

और आम्रातक, ( अवाडा ) मधुर, वृंहण बलकारी, तर्पण और गुरु, होता है स्नेह युक्त और कफकारी, शीतल,

वृष्य होताहै, और विष्टम्भ करिके पच-  
ताहै ॥ १२३ ॥

तालशस्यानिसिद्धानिनारिकेल  
फलानिच । वृंहणस्निग्धशीता  
निबल्यानिमधुराणिच ॥ १२४ ॥

और सिद्ध किये तालशस्य ( तालम-  
खाने ) और नारियलके फल ए वृंहण  
स्निग्ध शीतल, बल्य और मधुर, होते  
हैं ॥ १२४ ॥

मधुराम्लकपायश्चविष्टम्भिगुरुशी  
तलम् । पित्तश्लेष्महरंभग्यग्राहि  
वक्त्रविशोधनम् ॥ १२५ ॥

और भव्य मधु, अम्ल, कपाय, वि-  
ष्टम्भी, गुरु, शीतल, पित्त, कफ, नाशक,  
ग्राह्य, मुखका शोधक होता है ॥ १२५ ॥

अम्लंपरूपकंद्राक्षावदग्याण्यारु  
काणिच । पित्तश्लेष्मप्रकोपीणि  
कर्कन्धुलकुचान्यपि ॥ १२६ ॥

और अम्ल, परूपक, द्राक्षा, वेर और  
आरुक, और कर्कन्धु और लिकुच, ये  
पित्तश्लेष्मको कुपित करतेहै ॥ १२६ ॥

नात्युष्णंगुरुसम्पक्कंस्वादुप्रायंमुख  
प्रियम् । वृंहणंजीर्ग्यतिक्षिप्रं  
तिदोषलमारुकम् ॥ १२७ ॥

और आरुक तो अत्यंत उष्ण नहीं है  
और पकाहुआ गुरु और प्रायः स्वादु  
और मुखको प्रिय होताहै, वृंहणहै और

शीघ्र जीर्ण होताहै अत्यंत दोषकारी होताहै ॥ १२७ ॥

द्विविधंशीतमुष्णश्चमधुरश्चांम्ल मेवच । गुरुपाकेचतंज्ञेयमरुच्य त्यग्निनाशनम् ॥ १२८ ॥

और दो प्रकारकाभी शीतल और उष्ण, मधुर, अम्ल होताहै और पाकमें गुरु, अग्निका अत्यंत नाशक होताहै ॥ १२८ ॥

भक्ष्यादल्पान्तरगुणंकाश्मर्ग्यफल मुच्यते । तथैवाल्पान्तरगुणन्तू दमम्लंपरूपकम् ॥ १२९ ॥

और भक्ष्यसे किञ्चित्, अल्प गुणका श्मर्ग्य फल होताहै, और तिसीप्रकार किञ्चित् अल्पगुण, तूद, अम्ल, परूपक होतेहैं ॥ १२९ ॥

कपायमधुरंढङ्गंवातलंगुरुशीतलम् । कपित्थंविपकण्ठघ्नमामंसं ग्राहिवातलम् ॥ १३० ॥

और टंकका फल, कपाय, मधुर, वातल, और गुरु शीतल होताहै, और कपित्थ विप, और कंठका नाशकहै, और कच्चा वह संग्राही, और वातल होताहै ॥ १३० ॥

मधुराम्लकपायत्वात्सौगन्ध्याच्च रुचिप्रदम् । परिपक्वंसदोषघ्नंवि पन्नग्राहिगुर्वपि ॥ १३१ ॥

और मधुर अम्ल कपाय, सुगन्धित होनेसे रुचिकारक होताहै और पका हुआ दोष और विपका नाशक ग्राही और गुरु होताहै ॥ १३१ ॥

दुर्जरंविल्वसिद्धन्तुदोषलंपूतिमा रुतम् । स्निग्धोष्णतीक्ष्णतद्वालंदी पनंकफवातजित् ॥ १३२ ॥

विल्वका सिद्ध, फल दुर्जर, दोषल, पवनमें दुर्गन्ध, कारकहै स्निग्ध, उष्ण, तीक्ष्ण होताहै और कच्चा वह दीपन, और कफ, वातको जीतताहै ॥ १३२ ॥

वातपित्तकरंवालमापूर्णपित्तवर्द्ध नम् । पक्वमांजयेद्रायुमांसशु क्रवलप्रदम् ॥ १३३ ॥

और वाल(कच्चा)आम्र वात, पित्तकारी, और अत्यन्त पित्तवर्द्धक होताहै और पक्वआम्रका फल, वायुको जीतताहै, मांस शुक्र, वलका दाताहै ॥ १३३ ॥

कपायमधुरप्रायंगुरुविष्टम्भिशीत लम् । जाम्बवंकफपित्तघ्नग्राहि वातकरंपरम् ॥ १३४ ॥

कपाय, मधुर, प्रायःगुरु, विष्टम्भी, और शीतल कफ, पित्त नाशक, ग्राही, अत्यन्त, वातकारी जामुन होतीहै ॥ १३४ ॥

मधुरंवदरंस्निग्धंभेदनंवातपित्तजि त् । तच्छुष्कंकफवातघ्नंपित्तेन चविरुध्यते । कपायमधुरंशीतं ग्राहिसिञ्चितिकाफलम् ॥ १३५ ॥

वेर, मधुर, स्निग्ध भेदक, होताहै और वात, पित्तको जीतताहै शुष्क वह कफ वातनाशक और पित्तविरोधी होताहै



सिञ्चितिकाका फल, कषाय मधुर शीतल,  
और ग्राही होता है ॥ १३५ ॥

गाङ्गेरुकी करीर अविम्बी तोदन  
धन्वनम् । मधुरं सकषायश्च शीतं पि  
त्तकफापहम् ॥ १३६ ॥

गाङ्गेरुकी, करीर विम्बी, तोदन,  
धन्वन, ये, मधुर, कषाय, शीतल, पित्त,  
कफके नाशक हैं ॥ १३६ ॥

क्षीरिकं पनसं मोचं राजादन फला  
निच । स्वादूनि सकषायाणि स्नि  
ग्धशीतगुरुणि च ॥ १३७ ॥ -

क्षीरिक, पनस, मोच राजादन के फल,  
ये स्वादु, कषाय, स्निग्ध, शीतल, गुरु,  
होते हैं ॥ १३७ ॥

कषायविषदत्वाच्च सौगन्ध्याच्च रु  
चिप्रदम् । अवदंशक्षमं रुक्षं वात  
लं लवलीफलम् ॥ १३८ ॥

और लवलीका फल, कषाय, विषद  
होनेसे, सुभग, रुचिकारक, होता है,  
और अवदंशमें समर्थ, और वातमें  
वातल होता है ॥ १३८ ॥

नीपं सभार्गकं पीलुतृणशून्यं विक  
ट्कृतम् । प्राचीनामलकं चैव दोष  
घ्नं गरहारिच ॥ १३९ ॥

और नीप, क्षताक्ष, पीलु, और तृणसे  
रहित, विकट और प्राचीन आमलक,  
ये, दोष नाशक, विषहारी, होते हैं ॥ १३९ ॥

इंगुदं तिक्तमधुरं स्निग्धोष्णं कफ  
वातजित् । तिन्दुकं कफपित्तघ्नं  
कषायमधुरं लघु ॥ १४० ॥

और इंगुद, तिक्त, मधुर, स्निग्ध,  
उष्ण, होता है, कफ, वातको, जीतै है,  
और तिन्दुक, कफ, पित्तनाशक, कषाय  
लघु मधुर होता है ॥ १४० ॥

विद्यादामलके सर्वांश्च रसान् लवण  
वर्जितान् । स्वेदमेदः कफोत्क्लेद  
पित्तरोगविनाशनम् ॥ १४१ ॥

और आमलेमें लवण वर्जित, सब  
रसोंको जानै, और स्वेदमेदा, कफ,  
उत्क्लेद, पित्तरोगको नष्ट करता है ॥ १४१ ॥

रुक्षं स्वादुकषायाम्लं कफपित्तहरं  
परम् । रसासृङ्मांसमेदोजान्दो  
षान् हन्ति विभीतकम् ॥ १४२ ॥

और बहेड़ा, रुक्ष, स्वादु, कषाय,  
अम्ल, अत्यंत कफ पित्त नाशक है,  
और रस रुधिर, मांस, मेदा, इनमें  
पैदा हुए दोषोंको नष्ट करता है ॥ १४२ ॥

अम्लं कषायमधुरं वातघ्नं ग्राहि दीप  
नम् । स्निग्धोष्णं दाडिमहृद्यं कफ  
पित्ताविरोधि च ॥ १४३ ॥

और दाडिम, ( अनार ) स्निग्ध,  
उष्ण, अम्ल, कषाय, मधुर, वात ना-  
शक, ग्राही, दीपन, हृद्यको प्रिय, और  
कफ, पित्तका अविरोधी होता है ॥ १४३ ॥

रूक्षाम्लंदाडिमंयुतुत्तपित्तानिल  
कोपनम् । मधुरंपित्तनुत्तेपान्त  
द्विदाडिममुत्तमम् ॥ १४४ ॥

और रूक्षाम्ल जो अनार है, वह तो  
पित्त, वातको कोप करता है, उनके  
मध्यमें मधुर, पित्तका नाशक, पहिला,  
दाडिम उत्तम होता है ॥ १४४ ॥

वृक्षाम्लं ग्राहीरूक्षोष्णं वातश्लेष्म  
णिशस्यते । अम्लिकायाः फलं  
शुष्कं तस्मादल्पान्तरं गुणैः ॥ १४५ ॥

और वृक्षाम्ल, ग्राही रूक्ष उष्ण है  
और वात कफमें श्रेष्ठ होता है, और  
शुष्क, इमलीका फल, गुणोंमें उससे अल्प  
होता है ॥ १४५ ॥

गुणैस्तैरेव संयुक्तं भेदनन्त्वम्लवेत  
सम् । शूलेऽरुचौ विवन्धे च मन्दे  
ऽग्रामय विक्षये ॥ १४६ ॥

और उन्ही गुणोंसे संयुक्त अम्लवेत,  
भेदन होता है शूल, अरुचि, विवन्ध,  
मन्दाग्नि, मद्य विक्षय ॥ १४६ ॥

हिक्काकासे चश्वासे च वम्यां वर्चो  
देपुच । वातश्लेष्मसमुत्थे पुसर्वेष्वे  
तेपुदिश्यते ॥ १४७ ॥

हिक्का, श्वास, कास, वमन, मलके  
रोग, जो वात, कफसे उत्पन्न हैं, इन  
सबमें दिया जाता है ॥ १४७ ॥

केशरं मातुलुङ्गस्य लघुशीतमतो  
ऽन्यथा । रोचनो दीपनो हृद्यः सु

गन्धिस्त्वग्निवर्जितः ॥ १४८ ॥

मातुलुङ्ग (विजोरा) की, केशर, लघु,  
शीतल, होती है, केशरके बिना तो वह  
रोचन, दीपन, हृद्यको, प्रिय, सुगन्धि  
और अग्निसे वर्जित है ॥ १४८ ॥

कर्चूरः कफवातघ्नः श्वासहिक्काश  
सांहितः । मधुरं किञ्चिदम्लञ्च ह  
द्यं भक्षकप्ररोचनम् ॥ १४९ ॥

और कर्चूर, कफ, वातका नाशक,  
श्वास, हिक्का, अर्शमें हित, मधुर, किञ्चित्  
अम्ल हृद्य, भोजनमें रोचक होता है ॥ १४९ ॥

दुर्जरं वातशमनं नागरङ्गफलं गुरु ।

वातामाप्तिपुकाक्षोटमकूलकनि

कोचकाः ॥ १५० ॥

और नारंगीका फल, दुर्जर, वात-  
का प्रशमन, गुरु, होता है वाताम, अभि-  
पुक, अकरोट अकूलक, निकोच ॥ १५० ॥

गुरुष्णस्निग्धमधुराः सौरुमाणा

वलप्रदाः । वाताग्नावृंहणा वृष्या

कफपित्ताग्निवर्द्धनाः ॥ १५१ ॥

ये, गुरु, उष्ण, स्निग्ध, मधुर और पके  
हुए फल देते हैं, वातके नाशक, वृंहण,  
वृष्य, कफ, पित्तके वर्द्धक होते हैं ॥ १५१ ॥

पियालमेपांसदृशं विद्यादौष्णं वि

नागुणैः । श्लेष्मलं मधुरं शीतं श्ले

ष्मातकफलं गुरु ॥ १५२ ॥

उष्णताके बिना पियालभी, गुणोंसे  
इनके ही तुल्य है, श्लेष्मातक (बहेड़ाका)

फल, कफकारी मधुर, शीतल, गुरु, होताहै ॥ १५२ ॥

श्लेष्मलगुरुविष्टम्भिचाङ्कोटफल  
मयिजित् । गुरुष्णमधुररूक्षकै  
शघ्नंचशमीफलम् ॥ १५३ ॥

और अङ्कोटका फल, कफकारी, गुरु, विष्टम्भी(मलबंधक)होताहै और अग्निको जीतताहै, शमीका फल, गुरु, उष्ण, मधुर रूक्ष केशोंका नाशक होताहै ॥ १५३ ॥

विष्टम्भयतिकारअपित्तश्लेष्मावि  
रोधिच । आम्रातकंदन्तशठमम्लं  
सकरमर्दकम् ॥ १५४ ॥

और करंज, विष्टम्भकारी है, पित्त और कफका, अविरोधी है, आम्रातक, दन्तशठ, अम्ल, करमर्द, ये ॥ १५४ ॥

रक्तपित्तकरंविद्यादैरावतकमेव  
च । वातघ्नदीपनश्चैववार्ताकं  
टुत्तिककम् ॥ १५५ ॥

और ऐरावतक, ये रक्त पित्तको करते हैं, और वार्ताक ( वैंगन ) वात नाशक, दीपन, कटु, और, तिक्त, होताहै ॥ १५५ ॥

वातलंकफपित्तघ्नंविद्यात्पर्पटी  
फलम् । पित्तश्लेष्मघ्नमम्लश्चवा  
तिकश्चाक्षिकीफलम् ॥ १५६ ॥

और पर्पटीका फल, वातल और कफ, पित्त, नाशक जानना, और आक्षिकीका फल, पित्त कफका नाशक, अम्ल, और वातल होता है ॥ १५६ ॥

मधुराण्यविपाकीनिवातपित्तहरा  
णिच । अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षन्य  
शोधनांफलानिच ॥ १५७ ॥

और पीपल, गूलर, पिलखन, वड़, इनके फल, मधुर, पाकमें अहित, वात, पित्तके नाशक ॥ १५७ ॥

कषायमधुराम्लानिवातलानिगुरु  
णिच । भल्लातकास्थ्यग्निसमंत्व  
इमांसंस्वादुशीतलम् ॥ १५८ ॥

कषाय, मधुर, अम्ल, वातल, और गुरु होते हैं, भिल्लविकी अस्थि-अग्निके समानहै, त्वचा और मांस, स्वादु और शीतल, होते हैं ॥ १५८ ॥

पञ्चमःफलवर्गोऽयमुक्तःप्रायोप  
योगिकः ॥ १५९ ॥

इति फलवर्गः ।

प्रायः उपयोगी, यह पांचवा, फल वर्ग कहा ॥ १५९ ॥

इति फलवर्गः ।

अथ हरितवर्गः

रोचनंदीपनंवृष्यमार्द्रकंविश्वभेष  
जम् । वातश्लेष्मविबन्धेपुरस  
स्तस्योपदिश्यते ॥ १६० ॥

आर्द्रक, और सूँठ रोचन, दीपन, वृष्य, और इसका रस, वात, पित्त, कफ, विबन्धमें श्रेष्ठ कहाहै ॥ १६० ॥

रोचनोदीपनस्तीक्ष्णःसुगन्धिर्मुख

बोधनः । जम्बीरःकफवातघ्नः  
क्रिमिघ्नोभूक्तपाचनः ॥ १६१ ॥  
और जम्बीर, ( जंभीरी ) रोचन, दीपन,  
तीक्ष्ण, सुगन्धी, मुखबोधक, कफ, वात,  
कृमि, इनका नाशक, और भोजनका  
पाचन होता है ॥ १६१ ॥

वालंदोपहरंवृद्धं त्रिदोषमारुताप  
हम् । स्निग्धसिद्धं विशुष्कन्तुम्  
लकंकफवातजित् ॥ १६२ ॥  
और वालमूलक ( नई मूली )  
दोषहारक और वृद्धमूली, त्रिदोष, कारी  
है और वातको नष्ट करती है और स्निग्धमें  
पकाई और शुष्क मूली कफवातको जीत  
ती है ॥ १६२ ॥

हिक्काकासविपश्वासपार्श्वशूल  
विनाशनः । पित्तकृत्कफवातघ्नः  
सुरसः पृतिगन्धनुत् ॥ १६३ ॥  
और सुरसमूली हिक्का, काश, विप  
श्वास, पार्श्वशूल, कफ, वात, दुर्गन्धि,  
इनको नष्ट करती है, और पित्तकारक है ॥ १६३ ॥

यवानीचार्जकश्चैव शिशुशालेय  
मृष्टकम् ॥ हृद्यान्यास्वादनीया  
निपित्तमुत्क्लेशयन्ति च ॥ १६४ ॥  
और यवानी ( अजमान ) अर्जक,  
शिशु, शालेय, मृष्टक, ये हृद्य, स्वादके  
योग्य, पित्तके नाशक होते हैं ॥ १६४ ॥

गण्डीरोजलपिप्पल्यस्तुम्बुरुःशृ  
ङ्गवेरिका ॥ तीक्ष्णोष्णकटुरू

क्षाणिकफवातहराणि च ॥ १६५ ॥

और मण्डीर, जलपीपल्य, तुम्बुरु,  
शृंगवेर, ये तीक्ष्ण, उष्ण, कटु, रूक्ष,  
होते हैं, कफ और वातको हरते हैं ॥ १६५ ॥

पुंस्त्वघ्नः कटुरूक्षोष्णोभूतृणोव  
क्रशोधनः ॥ खराश्वाकफवात  
घ्नीवस्तिरोगरुजापहा ॥ १६६ ॥

और भूतृण, पुंस्त्वका नाशक, कटु-  
रूक्ष, उष्ण, मुखका शोधन है और  
खराश्वा, ( अजमोदा ) कफ वात और  
वस्ति रोगकी पीडाको नष्ट करती है ॥ १६६ ॥

धान्यकं चाजगन्धाचमुमुखाश्चे  
तिरोचनाः ॥ सुगन्धानातिकटु  
कादोषानुत्क्लेशयन्ति तु ॥ १६७ ॥

धान्यक ( धनियां ) अजगन्धा  
( अजमायन ) सुमुखा ( तुलसी ) ये,  
रोचक हैं और सुगन्धा ( रायसन )  
अत्यंत कटु नहीं हैं और ये सब दोषोंको  
नष्ट करती हैं ॥ १६७ ॥

ग्राहीगृञ्जनकस्तीक्ष्णोवातश्ले  
ष्मार्शसांहितः ॥ स्वेदनेऽभ्यवहा  
र्येचयोजयेत्तमपित्तिनाम् ॥ १६८ ॥

और गाजर, ग्राही, तीक्ष्ण, वात, कफ  
अर्श रोगोंमें, हित है और स्वेदन, भोज-  
नमें, उनको, बतावै, जिनके पित्त रोग  
नहो ॥ १६८ ॥

श्लेष्मलोमारुतघ्नश्च पलाण्डुर्नच

पित्तनुत् । आहारयोगीबल्यश्च गु  
रुर्वृष्योऽथ रोचनः ॥ १७९ ॥

पलांडु, ( प्याज ) श्लेष्मल, वात  
नाशक, है और पित्तहारी नहीं है भोज-  
नमें युक्त बलदाता, गुरु, वृष्य और रो-  
चन है ॥ १७९ ॥

क्रिमिकुष्ठकिलासघ्नो वातघ्नो गुल्म  
नाशनः । स्निग्धश्चोष्णश्च वृष्यश्च  
लशुनः कटुको गुरुः ॥ १८० ॥

और लहसुन, कृमि, कुष्ठ, किलास,  
इनका और वातका और गुल्मका नाशक  
स्निग्ध, उष्ण, वृष्य, कटु, गुरु होता है ॥ १८० ॥

शुष्काणिकफवातघ्नान्येतान्येषां  
फलानितु । हरितानामयंचैषां  
षष्ठो वर्गः समाप्यते ॥ १८१ ॥

इति हरितवर्गः ।

शुष्क ये और इनके फल, कफ,  
वातके नाशक होते हैं इन हरितोंके इस  
छठे वर्गको समाप्त करते हैं ॥ १८१ ॥

इति हरित-वर्गः ।

अथ मद्यवर्गः ।

प्रकृत्या मद्यमम्लोष्णमम्लंचोक्तं  
विपाकतः । सर्वसामान्यतस्तस्य  
विशेष उपदेक्ष्यते ॥ १८२ ॥

मदिरा, स्वभावमें अम्ल, उष्ण, और  
विपाकमें अम्ल, सामान्यसे सब प्रकार  
की कही है, उसके विशेषका उपदेश करते  
हैं ॥ १८२ ॥

कृशानां सक्तमूत्राणां ग्रहण्य शो वि  
कारिणाम् । सुराप्रशस्ता वातघ्नी  
स्तन्यरक्तक्षये पुच ॥ १८३ ॥

कृश, मूत्रके अवरोधी ग्रहणी और  
अर्शके विकारियोंको वातकी नाशक  
सुरा श्रेष्ठ है और स्तन्य, रक्त, क्षय, इनमें  
भी हित है ॥ १८३ ॥

हिक्काश्वासप्रतिश्यायका सवर्चा  
ग्रहारुचौ ॥ वम्यानाहविवन्धे  
पुवातघ्नी मदिराहिता ॥ १८४ ॥

और हिक्का, श्वास, प्रतिश्याय, कास,  
मलका ग्रह, अरुचि, वमन, आनाह,  
विवन्ध, इनमें भी वातनाशक, मदिरा,  
हित है ॥ १८४ ॥

शूलप्रवाहिकाटोपकफवातार्श  
सांहितः ॥ जगलो ग्राही रूक्षोष्णः  
शोफघ्नो भुक्तपाचनः ॥ १८५ ॥

शूल, प्रवाहिका, आटोप, कफ, वात,  
अर्श, इनमें भी, हित है, जगल, ( मदि-  
राका कल्क ) ग्राही, रूक्ष, उष्ण, शोफ-  
नाशक भुक्तका पाचक, होता है ॥ १८५ ॥

शोफार्शो ग्रहणीदोषपाण्डुरोगारु  
चिज्वरान् ॥ हन्त्यरिष्टः कफकृ  
तान् रोगान् रोचनदीपनः ॥ १८६ ॥

और शोफ, अर्श, ग्रहणी, दोष,  
पाण्डुरोग और अरुचि, ज्वर, इनको नष्ट  
करता है और रोचन, दीपन, अरिष्टनामकी,  
मदिरा, कफसे उत्पन्न रोगोंको नष्ट कर-  
ती है ॥ १८६ ॥

मुखप्रियःसुखमदःसुगन्धिर्वस्ति  
रोगनुत् ॥ जरणीयःपरिणतो  
हृद्योवर्ण्यश्चशार्करः ॥ १७७ ॥

और सुखमदः, मुखमें प्रिय सुगन्धि,  
वस्तिरोगकी नाशक, जरणके योग्यहै  
और परिणामको प्राप्त हुआ शर्करा सहित  
जो है वह हृदय और वर्णको हितहै ॥ १७७ ॥

रोचनोदीपनोहृद्यःशोषशोफार्श  
सांहितः ॥ स्नेहश्लेष्मविकारघ्नो  
वर्ण्यःपक्करसोमतः ॥ १७८ ॥

और पक्क इसका रस, रोचन दीपन  
हृदयको प्रिय शोष शोफ अर्श इनमें  
हित, स्नेह कफ इनके विकारका नाशक  
वर्णको हित मानाहै ॥ १७८ ॥

जरणीयोविवन्धघ्नःस्वरवर्णवि  
शोधनः ॥ लेखनःशीतरसिको  
हितःशोफोदरार्शसाम् ॥ १७९ ॥

और शीतरसवाली मदिरा जरणके  
योग्य, विवन्धनाशन, स्वर, वर्णका  
शोधनहै, लेखन, और शोफ, उदरके  
विकार अर्शको हितहै ॥ १७९ ॥

मृष्टोभिन्नशकृद्वातोगौडस्तर्पण  
दीपनः ॥ पाण्डुरोगव्रणहितादी  
पनीचाक्षिकीमता ॥ १८० ॥

और गौड मदिरा स्वच्छ, मद,  
वातका भेदक, तर्पण और दीपन होतीहै  
अक्ष ( बहेडाकी ) वनाई, मदिरा, पाण्डु-  
रोग, व्रण, इनमें हित, और दीपनीय  
कहीहै ॥ १८० ॥

सुरासवस्तीव्रमदोवातघ्नोवदनप्रि  
यः । छेदीमध्वासवस्तीक्ष्णोभैरे  
योमधुरोगुरुः ॥ १८१ ॥

और सुराका आसव, तीव्रमद, वात  
नाशक, मुखको प्रिय होताहै, मधुका  
आसव, छेदक, और तीक्ष्ण होताहै, और  
भैरेयका आसव मधु, गुरु, होताहै ॥ १८१ ॥

धातक्यभिपुतोहृद्योरुक्षोरोचन  
दीपनः । माध्वीकवन्नचात्युष्णो  
मृद्वीकेशुरसासवः ॥ १८२ ॥

धातकीका आसव जीर्ण, रूक्ष, रोचन,  
दीपन, होताहै मुनक्का और इक्षुके रसका  
आसव माध्वीकके समान अति उष्ण  
नहीं होताहै ॥ १८२ ॥

रोचनंदीपनंहृद्यंबल्यंपित्ताविरोधि  
च । विवन्धघ्नंकफघ्नश्चमधुलघ्व  
ल्पमारुतम् ॥ १८३ ॥

और रोचन, दीपन, हृदयकोप्रिय,  
बल्य, और, पित्तका अविरोधी, होताहै  
और मधु विवन्ध कफको नष्ट करताहै,  
और लघु, बल्य, वातल होताहै और  
जौकी सुरा और मांड, रूक्ष, उष्ण, वात  
पित्तकारी होतीहै ॥ १८३ ॥

सुरासमण्डारुक्षोष्णायवानांवात  
पित्तला । गुर्वीजीर्ण्यतिविष्टभ्य  
श्लेष्मलस्तुमधूलकः ॥ १८४ ॥

मण्ड सहित जौवांकी मदिरा रूक्ष  
उष्ण वात पित्तकी करने वाली और  
गरिष्ठ विष्टम्भ करके जीर्ण, होनेवाली है  
और मधूलक, कफकारी, होता है ॥ १८४ ॥

दीपनंजरणीयश्चहृत्पाण्डुकिमिरो  
गनुत् । ग्रहण्यशोहितंभेदिसौवी  
रक्तुपोदकम् ॥ १८५ ॥

और सौवीरकके तुपका जल, दीपन,  
जरणके योग्य, हृदय, पाण्डु, कृमि, रोग,  
इनको नष्ट करताहै ग्रहणी और अर्शमें  
हित भेदन होताहै ॥ १८५ ॥

दाहज्वरापहंस्पर्शात्पानाद्वातक  
फापहम् । विबन्धघ्नमविसंसिदी  
पनश्चांम्लकाञ्चिकम् ॥ १८६ ॥

दाह, ज्वरका नाशक स्पर्शसे करताहै  
और पीनेसे वात, कफको नष्ट करताहै  
और अम्ल, कांजिक विबन्धका नाशक,  
और अभेदक, दीपन, होताहै ॥ १८६ ॥

प्रायशोऽग्निनवंमद्यंगुरुदोषसमीर  
णम् ॥ स्रोतसांशोधनंजीर्णदीप  
नंलघुरोचनम् ॥ १८७ ॥

और प्रायः नवीन मद्य, बहुतसे रो-  
गोंको करताहै और जीर्ण ( पुरानी )  
मदिरा स्रोतोंका शोधक, दीपन, लघु  
रोचन ॥ १८७ ॥

हर्षणंप्रीणनंबल्यंभयशोकश्रमा  
पहम् ॥ प्रागल्भ्यवीर्य्यप्रतिभा  
तुष्टिपुष्टिवलप्रदम् ॥ सात्त्विकै  
र्विधिवद्युक्त्यापीतंस्यादमृतं  
यथा ॥ १८८ ॥

हर्षकारी, प्रीणन, बल्य, शोक और  
श्रमका नाशक होती है प्रागल्भ्यता वीर्य्य,

प्रतिभा, संतोष, तुष्टि, बल, इनको  
देती है ॥ १८८ ॥

वर्गोऽयंसप्तमोमद्यमधिकृत्यप्रकी  
र्तितः ॥ १८९ ॥

इतिमद्यवर्गः ॥

सात्त्विक मनुष्य, विधिपूर्वक, पीवै  
तो अमृतके समान होताहै यह सातवां  
वर्ग, मदिराके अधिकारसे कहा ॥ १८९ ॥  
इति मद्यवर्गः ।

अथजलवर्गः ॥

जलमेकविधंसर्वपतत्यैन्द्रंनभस्त  
लात् ॥ तत्पतत्पतितश्चैवदेश  
कालावपेक्षते ॥ १९० ॥

संपूर्ण जल, इन्द्रसम्बन्धी है और  
आकाशसे गिरता है औ एक प्रकारका  
है, पडनेके समय और पडा हुआ, देश  
कालको अपेक्षा करताहै ॥ १९० ॥

खात्पतत्सोमवाय्वर्कैःस्पृष्टंका  
लानुवर्त्तिभिः ॥ शीतोष्णस्निग्ध  
रूक्षाद्यैर्यथासन्नंमहीगुणैः १९१ ॥

आकाशसे गिरता हुआ चन्द्रमा वायु,  
सूर्य जो कालके अनुयायी हैं उनके  
स्पर्शसे शीत उष्ण स्निग्ध रूक्ष आदि  
भूमिके गुणोंसे युक्त होकर ॥ १९१ ॥

शीतंशुचिशिवंमृष्टंविमलंलघुप  
ङ्गुणम् ॥ प्रकृत्यादिव्यमुदकंभ  
ष्टपात्रमपेक्षते ॥ १९२ ॥

शीतल शुचि शिव मृष्ट विमल लघु इन छः गुणवान् हो जातेहैं, प्रकृतिसे दिव्य जो जल है वह पडकर पात्रकी अपेक्षा करता है ॥ १९२ ॥

श्वेतकपायंभवतिपाण्डुरेचैवतिक्तकम् । कपिलेकटुकंतोयंमूपरेलवणान्वितम् । कटुपर्वतविस्त्रावेमधुरंरुष्णमृत्तिके ॥ १९३ ॥

कि श्वेतपात्रमें कसैला पाण्डुरमें तिक्त होताहै कपिला भूमिमें कटु ऊपरमें लवण संयुक्त हो जाता है पर्वतके स्त्रावसे कटु, काली भूमिमें मधुर होता है ॥ १९३ ॥

एतत्पङ्गुण्यमाख्यातंमहीस्थस्य जलस्यहि । तथाव्यक्तरसंविद्यादैन्द्रंकारंहिमश्चतत् ॥ १९४ ॥

ये छः गुण पृथिवीमें स्थित जलके कहे हैं, तैसेही ऐंद्र जल अव्यक्तरस और कामनासे वह हिम ( शीतल ) होता है ॥ १९४ ॥

यदन्तरीक्षात्पततीन्द्रसृष्टश्चोक्तैश्चपात्रैःपरिगृह्यतेऽम्भः । तदैन्द्रमित्येववदन्तिधीरानरेन्द्रपेयंसलिलंप्रधानम् ॥ १९५ ॥

जो जल इंद्रका रचा हुआ आकाशसे गिरे और पूर्वोक्त पात्रोंमें ग्रहण करा जाय उसको धीर मनुष्य राजाओंके पीने योग्य, जलोंमें प्रधान ऐंद्र इस नामका कहते हैं ॥ १९५ ॥

ऋतावृताविहाख्याताःसर्वएवाम्भसोगुणाः । ईषत्कपायमधुरंसुसूक्ष्मंविषदंलघु ॥ १९६ ॥

यहां ऋतु २ में संपूर्णही जलके गुण कहे हैं, किंचित् कसैला मधुर अति सूक्ष्म विषद लघु ॥ १९६ ॥

अरूक्षमनभिष्यन्दि सर्वपानीयमुत्तमम् ॥ गुर्वभिष्यन्दिपानीयंवापिकंमधुरंलघु ॥ १९७ ॥

अरूक्ष अनभिष्यंदी उत्तमरूप सब प्रकारका जल होताहै, और वर्षा कालका जल गुरु अभिष्यन्दी मधुर लघु होताहै ॥ १९७ ॥

तनुलघ्वनभिष्यन्दिप्रायःशरदिवर्षति ॥ तत्तुयेसुकुमाराःस्युःस्निग्धभूयिष्ठभोजिनः ॥ १९८ ॥

शरद ऋतुमें सूक्ष्म लघु अनभिष्यन्दी जल प्रायः वर्षताहै और वह जल, जो सुकुमार स्निग्ध और अधिक भोजी हैं ॥ १९८ ॥

तेषांभक्ष्येचभोज्येचलेह्येपेयेचशस्यते ॥ हेमन्तेसलिलंस्निग्धंवृष्यंबल्यंहितगुरु ॥ १९९ ॥

उनके भक्ष्य भोज्य लेह्य पेय में श्रेष्ठ होताहै हेमंतमें जल स्निग्ध वीर्य वर्द्धक बलकारी हित गुरु होताहै ॥ १९९ ॥

किञ्चित्तोलघुतरंशिशिरेकफवातजित् ॥ कपायमधुरंरूक्षंवि



याद्वासन्तिकंजलम् ॥ त्रैष्मिकं  
त्वनभिष्यन्दिजलमित्येवनिश्च  
यम् ॥ २०० ॥

उससे किंचित् लघु कफ वातका  
नाशक जल शिशिरमें होताहै और  
वसंतका जल कसैला मधुर रूक्ष जानना  
ग्रीष्मका जल अनभिष्यंदी है यह  
निश्चित है ॥ २०० ॥

विभ्रान्तेष्णुतुकालेपुयत्प्रयच्छ  
न्तितोयदाः ॥ सलिलंतत्तुदोषा  
ययुज्यतेनात्रसंशयः ॥ २०१ ॥

विभ्रान्त(अनिश्चित)ऋतु कालमें जिस  
जलको मेघ वर्षाते हैं वह जल दोषका  
योगी होताहै इसमें संशयनहीं है ॥ २०१ ॥

राजभीराजमात्रैश्चसुकुमारैश्चमा  
नवैः ॥ संगृहीताःशरद्यापःप्रयो  
क्तव्याविशेषतः ॥ २०२ ॥

जो राजाहें वा राजमात्रहें और  
जो सुकुमार मनुष्य हैं वे विशेषकर  
शरदऋतुमें जलोंका संग्रह करलें ॥ २०२ ॥

नयःपाषाणविच्छिन्नविक्षुब्धा  
विमलोदकाः ॥ हिमवत्प्रभवाः  
पथ्याःपुण्यादेवर्षिसेविताः २०३

पत्थरोंसे छेदन विक्षोभित हैं निर्मल जल  
जिनके ऐसी हिमाचलसे पैदा हुई और  
देवता ऋषियोंसे सेवित करी पुण्य नदी  
पथ्य होती है ॥ २०३ ॥

नयःपाषाणसिकतावाहिन्योवि  
मलोदकाः । मलयप्रभवायाश्चज  
लंतास्वमृतोपमम् ॥ २०४ ॥

और मलयाचलसे बहती नदी पाषा-  
णकी सिकता ( रेत ) की बहतीहैं और  
निर्मल जलहै और उनका जल अमृतके  
समानहै ॥ २०४ ॥

पश्चिमाभिमुखायाश्चपथ्यास्तानि  
मलोदकाः । प्रायोमृदुवहागुर्व्या  
याश्चपूर्वसमुद्रगाः ॥ २०५ ॥

और जो पश्चिमके सन्मुख गयीं हैं  
वे निर्मल जल पथ्यहैं और जो पूर्वके  
समुद्रमें गयी हैं वे मृदु गुरुहैं ॥ २०५ ॥

पारियात्रभवायाश्चविन्ध्यसह्यभ  
वाश्चयाः । शिरोहृद्रोगकुष्ठानांता  
हेतुःश्लीपदस्यच ॥ २०६ ॥

पारियात्रकी और विन्ध्य और सह्य-  
की जो नदी हैं वे शिर और हृद्रोग  
कुष्ठ श्लीपदका हेतु हैं ॥ २०६ ॥

वसुधाकीटसर्पाखुमलसंदूषितोद  
काः । वर्षाजलवहानयःसर्वदोष  
समीरणाः ॥ २०७ ॥

वसुधाके कीट सर्प मूषक मल इनसे  
उनका जल दूषित रहताहै, और वर्षाके  
जलसे बहनेवाली नदी सब दोषोंको  
करतीहैं ॥ २०७ ॥

वापीकूपतडागोत्थसरःप्रस्रवणा

दिपु । आनूपशैलधन्वानांगुण  
दोषैर्विभावयेत् ॥ २०८ ॥

वापी कूप तडागसे उत्पन्नसर प्रस्त्र-  
वण आदिकोमें अनूपदेशः पर्वत धन्व  
( मरु ) इनके गुण दांपोसे विचारकरै ॥ २०८ ॥

पिच्छिलं किमिलं क्लिन्नं पर्णशैवा  
लकट्टमैः । विवर्णविरसं सान्द्रं दु-  
र्गन्धिनहितं जलम् ॥ २०९ ॥

कि पिच्छिल कृमियुक्त क्लिन्न जल,  
पत्त शैवाल कट्टमोसे होजाता है, और  
वह विवर्ण विरस सांद्र ( सघन ) दुर्गंधि  
और अहित होताहै ॥ २०९ ॥

विस्त्रिदोषं लवणमम्बुयद्वरुणा  
लयम् । इत्यम्बुवर्गः प्रोक्तोऽयम्  
ष्टमः सुविनिश्चितः ॥ २१० ॥

इति अम्बुवर्गः ।

यह और समुद्रका जल आमगांधि  
त्रिदोष लवण होताहै निश्चयसे आठवां  
अम्बुवर्ग कहाहै ॥ २१० ॥

इत्यम्बुवर्गः ।

अथ दुग्धवर्गः ।

स्वादुशीतं मृदुस्निग्धं वहलं श्लक्ष्णं  
पिच्छिलम् । गुरुमन्दप्रसन्नञ्च  
व्यंशगुणंपयः ॥ २११ ॥

स्वादु शीतल मृदु स्निग्ध वहल  
श्लक्ष्ण और पिच्छिल है गुरुमंद प्रसन्न  
दशगुणोंसे युक्त गौकादूध होताहै ॥ २११ ॥

तदेवं गुणमेवौजः सामान्यादभिव-  
र्द्धयेत् । प्रवरं जीवनीयानां क्षीर-  
मुक्तरसायनम् ॥ २१२ ॥

वह इसप्रकार ओजकी सामान्यतासे  
गुणोंको बढ़ाताहै, और जीवनीयोंमें प्रवर  
और रसायनदूध कहाहै ॥ २१२ ॥

महिषीणां गुरुतरंगव्याच्छीततरं  
पयः । स्नेहन्यूनमनिद्रायहितम्  
त्यग्रे च तत् ॥ २१३ ॥

महिषियोंका दूध अत्यंत गुरु और  
गौके दूधसे अत्यंत शीतलहै और वह  
स्नेहसे ऊन और निद्राके अभाव, अग्रिकी  
अधिकताकेलिये हितहै ॥ २१३ ॥

रूक्षोष्णं क्षीरमुद्रीणामीपत्सलव-  
णं लघु । शस्तं वातकफानाहं क्रि-  
मिशोफोदरार्शसाम् ॥ २१४ ॥

ऊंटनीयोंका दूध रूक्ष उष्ण किंचित्  
लवण और लघुहै और वात कफ आनाह  
क्रिमि शोफ उदर अर्श इन रोगोंमें  
हितहै ॥ २१४ ॥

बल्यं स्थैर्यकरं सर्वमुष्णञ्चैकश-  
फंपयः । साम्लं सलवणं रूक्षं शा-  
खावातहरं लघु ॥ २१५ ॥

और संपूर्ण एक खुरोंका दूध बल्य  
स्थिरताका हेतु, अम्लसहित लवणयुक्त  
रूक्ष शाखाओंके वातका हारी लघु  
होताहै ॥ २१५ ॥

छागंकपायमधुरंशीतंग्राहिपयो  
लघु । रक्तपित्तातिसारघ्नंक्षयका  
सज्वरापहम् ॥ २१६ ॥

छागीकादूध कसैला मधुर शीतल  
ग्राही लघु है, और रक्तपित्त अतीसार  
क्षय कास ज्वर इनको नष्ट करता है ॥ २१६ ॥

हिक्राश्वासकरन्तूष्णं पित्तश्लेष्म  
लमाविकम् । हस्तिनीनांपयोव  
ल्यंगुरुस्थैर्यकरंपरम् ॥ २१७ ॥

और भेडका दूध हिक्रा श्वासकारी  
उष्ण पित्त कफका हेतु होता है, हथिनि-  
योंका दूध बल्य गुरु स्थिरताकारी,  
और उत्तम होता है ॥ २१७ ॥

जीवनं वृंहणं सात्म्ये स्नेहनं मानुषं प  
यः । लावणं रक्तपित्ते च तर्पणञ्चा  
क्षिशूलिनाम् ॥ २१८ ॥

और मनुष्यका जीवन, वृंहण सात्म्य  
स्नेहन लावणरसवान् है और रक्तपित्तमें  
और अक्षिके शूलवानोंको तृप्तिकारक  
है ॥ २१८ ॥

रोचनं दीपनं वृष्यं स्नेहनं बलवर्द्धन  
म् । पाकेऽम्लमुष्णं वातघ्नं मङ्गलं  
वृंहणं दधि ॥ २१९ ॥

और दधि, रोचन दीपन वृष्य स्नेहन  
बलवर्द्धन, पाकमें अम्ल, वातनाशक  
मङ्गल, वृंहण होता है ॥ २१९ ॥

पीनसेचातिसारे च शीतके विषमज्व

रे । अरुचौ मूत्रकृच्छ्रे च काशैश्च  
दधिशस्यते ॥ २२० ॥

पीनस अतीसार शीत विषमज्वर  
अशुचि मूत्रकृच्छ्र कृशता इनमें दधि  
श्रेष्ठ होता है ॥ २२० ॥

शरद ग्रीष्म वसन्ते पुष्याशो दधि  
गर्हितम् । रक्तपित्तकफोत्थेषु वि  
कारेष्वहितञ्च तत् ॥ २२१ ॥

शरद ग्रीष्म वसन्त इनमें प्रायः दधि  
निंदित है, और रक्तपित्त और कफके  
विकारोंमें दधि अहित है ॥ २२१ ॥

त्रिदोषमन्दकं जातं वातघ्नं दधिशु  
क्रलम् ॥ सरः श्लेष्मानिलघ्नस्तु  
मण्डः स्रोतोविशोधनः ॥ २२२ ॥

मंदक (मथी) की हुई दधि, त्रिदोष,  
है वातनाशक और शुक्रवर्द्धक है, और  
दधिका मंड स्रोतोंको शुद्ध करे है और  
सर ( तोड़ ) कफ वात नाशक होता  
है ॥ २२२ ॥

शोफार्शोग्रहणीदोषमूत्रकृच्छ्रोद  
रारुचि ॥ स्नेहव्यापदिपाण्डुत्वे  
तक्रंदयाद्रेषु च ॥ २२३ ॥

शोफ अर्श ग्रहणीका दोष मूत्रकृच्छ्र  
उदर अरुचि स्नेहरोग पाण्डु और विष  
इनमें तक्रको दे ॥ २२३ ॥

संग्राहि दीपनं हृद्यं नवनीतं नवोद्धृत  
म् ॥ ग्रहण्यर्शो विकारघ्नमर्दिता  
रुचिनाशनम् ॥ २२४ ॥

नवीन निकास नवनीत संग्राही  
दीपन हृदयको प्रिय है और ग्रहणी  
अर्शका विकार, अर्दित अरुचि इनको  
नष्ट करता है ॥ २२४ ॥

स्मृतिबुद्ध्यग्निशुक्रौजःकफमेदो  
विचर्द्धनम् ॥ वातपित्तविपोन्मा  
दशोपालक्ष्मीज्वरापहम् ॥ २२५ ॥

और स्मृति बुद्धि अग्नि शुक्र ओज  
कफ मेदा इनको विशेष बढ़ता है और  
वात पित्त विष उन्माद शोष अलक्ष्मी  
ज्वर इनको नष्ट करता है ॥ २२५ ॥

सर्वस्नेहोत्तमंशीतंमधुरंरसपाक  
योः ॥ सहस्रवीर्यविधिभिर्घृतं  
कर्मसहस्रकृत् ॥ २२६ ॥

और सब स्नेहोंमें उत्तम शीतल रस  
और पाकमें मधुर, विधिसे सहस्र वीर्य-  
घृत सहस्र कर्मोंको करता है ॥ २२६ ॥

मदापस्मारमूर्च्छायशोपोन्माद  
गरज्वरान् ॥ योनिकर्णशिरःशू  
लंघृतंजीर्णमपोहति ॥ २२७ ॥

और जीर्ण ( पुराना ) घृत मद  
अपस्मार मूर्च्छा आय और शोफ उन्माद  
गर ज्वर इनको और योनि कर्ण शिरके  
शूलको नष्ट करता है ॥ २२७ ॥

सर्पीप्यजाविमहिर्षाक्षीरवत्स्वा  
निनिर्दिशेत् ॥ पीयूषोमोरटश्चै  
वकिलाटाविविधाश्चये ॥ २२८ ॥

और अजा भेड़ महिषी इनके घृत,  
इनके दूधके समान गुणवाले होते हैं,  
और पीयूष मोरट और अनेक प्रकारके  
किलाट ( खोआ ) जो है ॥ २२८ ॥

दीप्ताग्नीनामनिद्राणांसर्वएतेसुख  
प्रदाः ॥ गुरवस्तर्पणावृष्यावृंहणाः  
पवनापहाः ॥ २२९ ॥

वे दीप्ताग्नियोंको और निद्रारहितोंको  
सुखके दाता हैं; और गुरु तर्पण वृष्य  
वृंहण और वात नाशक होते हैं ॥ २२९ ॥

विषदागुरवोरुक्षाग्राहिणस्तक्र  
पिण्डकाः । गोरसानामयंवर्गान  
वमःपरिकीर्तितः ॥ २३० ॥

इति गोरसवर्गः ।

और तक्रके पिंड विषके दाता गुरु  
रुक्ष ग्राही होते हैं, यह गोरसोंका नववां-  
वर्ग कहा ॥ २३० ॥

इति गोरसवर्गः ।

अथेक्षुवर्गः ।

वृष्यःशीतःस्थिरःस्निग्धोवृंहणोम  
धुरोरसः । श्लेष्मलोभक्षितस्येक्षो  
र्यान्त्रिकस्तुविदह्यते ॥ २३१ ॥

भक्षणकिये इक्षुकारस, वृष्य शीतल  
स्थिर स्निग्ध वृंहण मधुर कफकारी  
होता है और यांत्रिकरस तो विदाही  
होता है ॥ २३१ ॥

शैत्यात्प्रसादान्माधुर्यात्पौण्ड्र

काद्वंशकोवरः । प्रभूतक्रिमिम  
ज्जामृद्मेदोमांसकरोगुडः ॥ २३२ ॥

शीतलता प्रसाद मधुरतासे पौंडसे  
वंशकडधु श्रेष्ठ होताहै और 'गुडप्रभूत'  
( अधिक ) क्रिमि मज्जारुधिर मेदा मांस  
इनको करताहै ॥ २३२ ॥

क्षुद्रोगुडश्चतुर्भागस्त्रिभागार्द्धाश्च  
पितः । रसोगुरुर्यथापूर्वधौतंस्व  
ल्पमलगुडः ॥ २३३ ॥

चारभाग त्रिभाग अर्द्धभाग शुष्क  
कियारस क्षुद्रगुड होताहै वह पूर्व २  
क्रमसे गुरु होताहै और धौत गुडमें  
अल्पमल होताहै ॥ २३३ ॥

ततोमत्स्यण्डिकाखण्डशर्करा  
विमलाः परम् । यथायथैपांवैम  
ल्यं भवेच्छैत्यंतथातथा ॥ २३४ ॥

उससे मत्स्यण्डिका ( राव ) खांड  
शर्करा ये अति निर्मल होतीहैं, जैसा २  
इनका वैमल्य ( निर्मलता ) होतीहै वैसी  
२ ही इनमें शीतलता होतीहै ॥ २३४ ॥

वृष्याः क्षीणक्षतहिताः सस्नेहागुड  
शर्कराः । कषायमधुराः शीताः  
सतिक्तायाः सशर्कराः ॥ २३५ ॥

गुडकी शर्करा वृष्य, क्षीण और क्ष-  
तमें हित, स्नेहसे युक्त होतीहैं, और  
शर्करा ( रेत ) मिली जो सक्कर है वह  
कषाय मधुर शीतल तिक्त होतीहैं ॥ २३५ ॥

रूक्षावम्यतिसारघ्नीछेदनीमधुश  
र्करा । तृष्णासृक्पित्तदाहेपुप्रश  
स्ताः सर्वशर्कराः ॥ २३६ ॥

मधुकी शर्करा रूक्ष, वमन अतीसार  
नाशक और छेदन कारी होतीहै और  
संपूर्ण शर्करा तृष्णा रुधिर पित्त दाह  
इनमें श्रेष्ठ होतीहै ॥ २३६ ॥

माक्षिकं भ्रामरं क्षौद्रं पौत्तिकं मधुजा  
तयः । माक्षिकं प्रवरं तेषां विशेषा  
द्भ्रामरं गुरु ॥ २३७ ॥

माक्षिक और भ्रामर क्षौद्र पौत्तिक  
ए चार मधुकी जातिहैं उनमें माक्षिक  
प्रवर होताहै और विशेष कर भ्रामर गुरु  
होताहै ॥ २३७ ॥

माक्षिकं तैलवर्णं स्याच्छैतं भ्रामरमु  
च्यते । क्षौद्रन्तुकपिलं विद्याद्घृ  
तवर्णन्तु पौत्तिकम् ॥ २३८ ॥

तैलके समान जिसका वर्ण हो वह  
माक्षिक और श्वेत वर्णका भ्रामर कहाता  
है और कपिल ( पीला ) वर्णका क्षौद्र  
होताहै और घीके रंगका पौत्तिक होता  
है ॥ २३८ ॥

वातलं गुरु शीतं रक्तपित्तकफापह  
म् । सन्धातृछेदनं रूक्षं कषाय  
मधुरं मधु ॥ २३९ ॥

और मधु, वातल गुरु शीत रक्तपित्त  
कफका नाशक संधान ( मेल ) कारी  
छेदन रूक्ष कषाय मधुर होताहै ॥ २३९ ॥

हन्यान्मधूष्णमुष्णार्त्तमथवासवि  
पान्वयात् । गुरुरूक्षकषायत्वा  
च्छैत्याच्चाल्पंहितंमधु ॥ २४० ॥

और उष्ण मधु उष्णके आर्त्त (रोगी)  
को सविपाके संबंधसे नष्ट करता है गुरु  
रूक्ष कषाय और शीतलतासे अल्पही  
हित होताहै ॥ २४० ॥

नातःकष्टतमंकिञ्चिन्मध्वामा  
त्तद्धिमाधवम् । उपक्रमविरोधि  
त्वात्सद्योहन्याद्यथाविषम् २४१

और मधु जो आम है उससे अन्य-  
किञ्चित् कष्टतम नहींहै और वह माधव  
( चेतमें उत्पन्न ) है उपक्रम ( चिकित्सा )  
के विरोधसे वह मनुष्यको विषके समान  
शीघ्र नष्ट करताहै ॥ २४१ ॥

आमेसोष्णाक्रियाकार्यासाम  
ध्वामेविरुध्यते । मध्वामंदारुणं  
तस्मात्सद्योहन्याद्यथाविषम् २४२

आममें उष्णसहित क्रिया करनी  
और वह क्रिया मध्वाममें विरुद्ध होतीहै,  
तिससे मध्वाम दारुणहै वह विषके  
समान सद्यः नष्ट करताहै ॥ २४२ ॥

नानाद्रव्यात्मकत्वाच्चयोगवाहि  
हिमंमधु । इतीक्षुविकृतिप्रायोव  
र्गोऽयं दशमोमतः ॥ २४३ ॥

इतिइक्षुवर्गः ।

नाना द्रव्यात्मक होनेसे योगवाही

और हिम मधु होताहै, यह प्रायः इक्षुके  
विकृतियोंका दशवां वर्ग मानाहै २४३  
इतीक्षु वर्गः ।

अथकृतान्नवर्गः ।

क्षुत्तृष्णाग्लानिदौर्बल्यकुक्षिरोग  
विनाशिनी । स्वेदाग्निजननीपेया  
वातवर्चोऽनुलोमनी ॥ २४४ ॥

और विलेपिका क्षुधा तृषा ग्लानि  
मंदाग्नि दौर्बल्य कुक्षिरोग इनका नाशक,  
स्वेद अग्निकी उत्पादक पीने योग्य वात  
और मलकी अनुलोमक ॥ २४४ ॥

तर्पणीग्राहिणीलघ्वीहयाचापि  
विलेपिका । शृतःपिप्पलिशुण्ठी  
भ्यांयुक्तोलाजाम्लदाडिमैः २४५

तर्पणी ग्राहिणी लघु हृदयकी प्रिय  
होती है पीपल शुठियोंसे पकाया और  
लाजा अम्ल अनारसे युक्त ॥ २४५ ॥

मण्डस्तुदीपयत्यग्निंवातञ्चाप्यनु  
लोमयेत् ॥ मृदूकरोतिस्रोतांसि  
स्वेदं संजनयत्यपि ॥ २४६ ॥

मंड अग्निकी दीपन करताहै और  
वातको अनुलोम करता है और स्रोतोंको  
मृदु करताहै, स्वेदको पैदा करताहै २४६

लंघितानां विरिक्तानां जीर्णस्नेहे च  
तृप्यताम् ॥ दीपनत्वाद्दधुत्वाच्च

मण्डः स्यात्प्राणधारणः २४७ ॥

लंघन, विरेचन, जिनोंने किया हो और स्नेहके जीर्ण होनेपर, जिनको तृपाहो, उनको, दीपन, और लघु होनेसे मण्ड प्राणधारणहै ॥ २४७ ॥

तृष्णातीसारशमनोधातुसाम्यकरः शिवः ॥ लाजमण्डोऽग्निजनो दाहमूर्च्छानिवारणः ॥ २४८ ॥

खीलोंका मण्ड, तृष्णा, अतीसारका शमन, धातुओंका, साम्यकारक, कल्याणरूप अग्निका जनक, दाह, और मूर्च्छाका निवारक होता है ॥ २४८ ॥

मन्दाग्निविपमाग्नीनां बालस्थविर्योपिताम् ॥ देयश्च सुकुमाराणां लाजमण्डः सुसंस्कृतः ॥ क्षुत्पिपासासहः पथ्यः शुद्धानान्तुमलापहः ॥ २४९ ॥

मन्दाग्नि और विपमाग्नियोंको, बाल, वृद्ध, स्त्रियोंको, और सुकुमारोंको, खीलोंके मण्डको भलीप्रकार संस्कारकरके दे, वह, क्षुधा, पिपासाको सहता है और शुद्ध मनुष्योंके तो मलको नष्ट करता है ॥ २४९ ॥

सुधौतः प्रसृतः स्विन्नः सन्तप्तश्चौदनो लघुः ॥ भृष्टतण्डुलमिच्छन्ति गरश्लेष्मामयेष्वपि ॥ २५० ॥

भलीप्रकार धौत प्रसृत स्विन्न ओदनका मांड ( पतला ) संतप्त किया लघु होता है, भुने हुये चावलोंको गर और कफके विकारोंमें इच्छा करते हैं ॥ २५० ॥

अधौतः प्रसृतः स्विन्नः शीतश्चाप्योदनो गुरुः ॥ २५१ ॥

और अधौत प्रसृत स्विन्न ओदन ( भात ) शीतल गुरु होता है ॥ २५१ ॥

मांसशाकवसातैलघृतमज्जाफलौ दनाः । बल्याः सन्तर्पणा हृद्या गुरो ब्रुंहयन्ति च ॥ २५२ ॥

मांस वसा शाक तैल घृत मज्जा फल इनसे बनाये ओदन बलके दाता, संतर्पण हृद्य, गुरु और ब्रुंहणकारी होते हैं ॥ २५२ ॥

तदन्मापतिलक्षीरमुद्रसंयोगसाधिताः । कुल्मापा गुरो रूक्षा वातला भिन्नवर्चसः ॥ २५३ ॥

तिसीप्रकार उड़द तिल दूध मूंग इनके संयोगसे सिद्ध किये ओदन भी वैसे ही होते हैं और कुल्माप, गुरु रूक्ष वातल मल भेदक होते हैं ॥ २५३ ॥

स्विन्नभक्ष्यास्तु ये केचित्सौप्यगेधूमयावकाः । भिषक्तेषां यथा द्रव्यमादिशेद्गुरुलाघवम् ॥ २५४ ॥

और पकाकर मांड उतारे भक्षणके योग्य जो कोई सौम्य गोधूम याव कहें उनके गुरु और लाघवको वैद्य द्रव्यके अनुसार कहें ॥ २५४ ॥

अकृतं कृतयूपश्च तनुसंस्कारितं रसम् । सूपमम्लमनम्लश्च गुरुं विद्याद्यथोत्तरम् ॥ २५५ ॥

और बिना किया और यूप किया  
सूक्ष्म, रस, सूप, अम्ल और अनम्ल,  
इनको उत्तरोत्तर गुरु जानना ॥ २५५ ॥

सक्तवोवातलारूक्षावहुवर्चोऽनु  
लोमिनः । तर्पयन्तिनरंसद्यःपी  
ताःसद्योबलाश्वते ॥ २५६ ॥

सत् वातल रूक्ष अधिक मलके अनु-  
लोमी होतेहैं और वे मनुष्यकी पीनेसे  
सद्यः तृप्त करते हैं और सद्यः बलका-  
रक होतेहैं ॥ २५६ ॥

मधुरालघवःशीताःसक्तवःशालि  
सम्भवाः । ग्राहिणोरक्तपित्तघ्ना  
स्तृपाछर्दिज्वरापहाः ॥ २५७ ॥

और शालीके सत् मधुर लघु शीतल  
होतेहैं ग्राही रक्तपित्तके नाशक तृपा  
छर्दि ज्वर इनको नष्ट करतेहैं ॥ २५७ ॥

हन्याद्व्याधीन्यवापूपोयावकोवा  
व्यएवच । उदावर्तप्रतिश्यायका  
समेहगलग्रहान् ॥ २५८ ॥

जौका अपूप वा वात्य ( वाटी )  
उदावर्त प्रतिश्याय कास मेह गलग्रह  
इन व्याधियोंको नष्ट करताहै ॥ २५८ ॥

धानासंज्ञास्तुयेभक्ष्याःप्रायस्तेले  
खनात्मकाः । शुष्कत्वान्तर्पणा  
श्वैवविष्टम्भित्वाच्चदुर्जराः ॥ २५९ ॥

धानानामके जो भक्ष्य हैं वे प्रायः  
लेखन आत्मकहैं और शुष्क होनेसे  
तर्पण और विष्टम्भी होनेसे दुर्जरहैं ॥ २५९ ॥

विरूढधानाःशष्कुल्योमधुक्रोडाः  
सपिण्डिकाः । सूपाःपूपुलिका  
द्याश्वगुरवःपैष्टिकाःपरम् ॥ २६० ॥

विरूढ ( उपजे ) हुये धान शष्कुली  
( पूरी ) मधुक्रोड और पिण्डक सूप पूपु-  
लिका ए गुरु हैं और पीठीके अत्यंत  
गुरु हैं ॥ २६० ॥

फलमांसवसाशाकपललक्षौद्रसं  
स्कृताः । भक्ष्यावृष्याश्वबल्या  
श्वगुरवोवृंहणात्मकाः ॥ २६१ ॥

फल मांस वसा शाक पलल क्षौद्र  
इनमें बनाये भक्ष्य, वृष्य बल्य गुरु और  
वृंहण होतेहैं ॥ २६१ ॥

वेशवारोगुरुःस्निग्धोवलोपचय  
वर्द्धनः । गुरवस्तर्पणावृष्याःक्षीरे  
क्षुरससूपकाः ॥ २६२ ॥

वेशवार ( पिष्ट मांसादि ) गुरु बल  
और उपचय इनका वर्द्धक, स्निग्ध होताहै  
दूध और इक्षुके रसकेसूप ( खीर ) ॥ २६२ ॥

सगुडाःसतिलाश्वैवसक्षीरक्षौद्रश  
र्कराः । वृष्याबल्याश्वभक्ष्यास्तु  
तेपरंगुरवःस्मृताः ॥ २६३ ॥

गुड और तिल दूधशहत शर्करा सहित  
होयतो बल्य, वृष्य, होतेहैं और भक्ष्यतो  
वे अत्यंत गुरु कहेंहैं ॥ २६३ ॥

सस्नेहाःस्नेहसिद्धाश्वभक्ष्याविविध  
लक्षणाः । गुरवस्तर्पणावृष्याह  
द्यागोधूमिकामताः ॥ २६४ ॥



स्नेहसे युक्त वा स्नेहमें सिद्ध जो नानाप्रकारके भक्ष्यहैं वे गुरु तर्पण वृष्य हृदयको हित गोधूमके कहेंहैं ॥ २६४ ॥

संस्कारालघवः सन्ति भक्ष्या गोधू  
मपैष्टिकाः । धाना पर्पटपूपाद्या  
स्तान् बुद्ध्यानिदिशेत् तथा ॥ २६५ ॥

और गोधूमके पिष्टके अर्थात् चूर्णके भक्ष्य, संस्कारसे लघु होतेहैं, धान पापड पूष आदि जो हैं उनको भी जानकर तैसेही कहै ॥ २६५ ॥

पृथुका गुरवो भृष्टान् भक्षयेदल्पश  
स्तुतान् । यावा विष्टभ्यजीर्ग्यन्ति  
स तुषाभिन्नवर्चसः ॥ २६६ ॥

और पृथुक ( भारी ) जोहैं वे गुरु हैं और भुने हुये उनको उस प्रकार थोड़े २ भक्षण करै, और जोके अपूप आदि विष्टभसे जीर्ण होतेहैं और तुषोंसे जो युक्तहैं वे मलके भेदक होतेहैं ॥ २६६ ॥

सूप्यान्नविकृता भक्ष्या वातला रू  
क्षशीतलाः । सकटुस्नेहलवणा  
नल्पशो भक्षयेत्तुतान् ॥ २६७ ॥

सूप्य ( दालके ) अन्नके विकारके जो भक्ष्यहैं वे वातल रूक्ष शीतल होतेहैं कटु स्नेह लवणसहित उनको अल्प २ भक्षण करै ॥ २६७ ॥

मृदुपाकाश्च भक्ष्याः स्थूलाश्च क  
ठिनाश्च ॥ गुरवस्तेऽप्यतिक्रा  
न्तपाकाः पुष्टिबलप्रदाः ॥ २६८ ॥

जो भक्ष्य मृदु पाक हैं और स्थूल और कठिनहैं वे भी पाकसे अतिक्रांत ( कच्चे ) न हों गुरु और पुष्टि बलके दाता होतेहैं ॥ २६८ ॥

द्रव्यसंयोगसंस्कारं द्रव्यमामं पृथ  
क् तथा । भक्ष्याणामादिशेद्बुद्ध्या  
थास्वं गुरुलाघवम् ॥ २६९ ॥

द्रव्यके संयोग और संस्कार और तैसेही पृथक् आम द्रव्य आदि जो भक्ष्य हैं उनके गुरुलाघवको बुद्धिसे यथा-योग्य कहै ॥ २६९ ॥

रसाला वृंहणी वृष्यास्त्रिधा वल्या  
रुचिप्रदा । स्नेहनं तर्पणं हृद्यं वातघ्नं  
सगुणं दधि ॥ २७० ॥

“पक्क आमोंका भुने हुये नाना द्रव्योंसे संयुक्त निर्मर्दक ( चटनी ) गुरु हृद्य वृष्य और बलवानोंको हित होता है ” यह अधिक है और रसाला ( श्रीखण्ड ) वृंहण वृष्य स्निग्ध बल्य रुचिकी दाता होतीहै, और गुडसहित दधि स्नेहन तर्पण हृद्य वातनाशक होतीहै ॥ २७० ॥

द्राक्षा खर्जूरकोलानां गुरुविष्टम्भि  
पानकम् । परूषकाणां क्षौद्रस्य  
यच्चेशु विकृतिप्रति ॥ २७१ ॥

और मुनक्का खर्जूर मिर्च इनका जो पानक ( ठंडाई ) है वह गुरु और विष्टभी होताहै, परूषक, ( फालसा ) क्षौद्र और इक्षुके विकार जोहैं ॥ २७१ ॥

तेपांकट्वम्लसंयोगाः पानकानां पृथक् पृथक् । द्रव्यमानश्च विज्ञाय गुणकर्माणि चादिशेत् ॥ २७२ ॥

इनमें जो कटु अम्लके संयोग पानकोंमें पृथक् २ होते हैं उनके द्रव्य और मानको जानकर गुण और कर्मोंको कहै ॥ २७२ ॥

कट्वम्लस्वादुलवणालघवोराग पाडवाः । मुखप्रियाश्च हृद्याश्च दीपनाभक्तरोचनाः ॥ २७३ ॥

कटु अम्ल स्वादु लवण जो राग पाडवहैं वे लघु मुखमें प्रिय हृद्य दीपन और भोजनके रोचकहैं ॥ २७३ ॥

आम्रामलकलेहाश्च वृंहणावलवर्द्धनाः । रोचनास्तर्पणाश्चोक्ताः स्नेहमाधुर्यगैरवात् ॥ २७४ ॥

आम्र और आमलकके जो लेह हैं वे वृंहण और वलवर्द्धक होते हैं और स्नेह और माधुर्यके संयोगसे रोचन और तर्पण कहै हैं ॥ २७४ ॥

बुद्ध्यासंयोगसंस्कारं द्रव्यमानश्च तस्मृतम् । गुणकर्माणिलेहानां तेपांतिपांतथावदेत् ॥ २७५ ॥

लेहोंके संयोग संस्कारको द्रव्यमान और उनके पाकको जानकर तिन २ के गुण कर्मोंको तिसी प्रकार कहै ॥ २७५ ॥

रक्तपित्तकफोत्केदिशुक्तं वातानु

लोमनम् । कन्दमूलफलाद्यश्च तद्विद्यात्तदासुतम् ॥ २७६ ॥

और शुक्त, रक्तपित्त कफका उत्केदीहै और वातका अनुलोमीहै और कंद मूल फल आदि जोहैं निचोड़े हुये उनकोभी तिसी प्रकार जानै ॥ २७६ ॥

शिण्डाकीचासुतश्चान्यत्काला म्लंरोचनं लघु । विद्याद्वर्गकृतान्ना नामेकादशतमं भिषक् ॥ २७७ ॥

इति कृतान्नवर्गः ।

और शिंडाकी और जो असुत (विना निचोड़े) अन्य कालका अम्लहै वह रोचन और लघु होताहै, यह ग्यारहवां कृतान्नोका वर्ग वैद्य जानै ॥ २७७ ॥

इति कृतान्नवर्गः ।

अथाहारयोगवर्गः ।

कपायानुरसंस्वादुसूक्ष्ममुष्णं च वायिच । पित्तलंबश्च विण्मूत्रं च श्लेष्माभिवर्द्धनम् ॥ २७८ ॥

कपाय जिसका अनुरसहै और स्वादु सूक्ष्म उष्ण व्यवायी, पित्तल मल मूत्रका बंधक और कफका अभिवर्द्धक होताहै ॥ २७८ ॥

वातघ्नेषूत्तमं बल्यं त्वच्यं मेधाग्निवर्द्धनम् । तैलसंयोगसंस्कारात्सर्वरोगापहं मतम् ॥ २७९ ॥

और वात नाशकोंमें उत्तम, बल्य त्वचाको हित बुद्धि और अग्निका वर्द्धक

जो तैलहै वह संयोगरूप संस्कारसे सर्व रोग नाशक कहाहै ॥ २७० ॥

तैलप्रयोगादजरानिर्विकाराजित श्रमाः । आसन्नातिवलाःसंख्ये दैत्याधिपतयःपुरा ॥ २८० ॥

तैलके प्रयोगसे, पहिले दैत्योंके अधिपति संग्राममें अजर निर्विकार श्रमके जयी, प्राप्तहै अत्यंत बलजिनको ऐसे होते भये ॥ २८० ॥

ऐरण्डतैलमधुरंगुरुश्लेष्माभिर्वर्द्धनम् । वातासृग्गुल्महृद्रोगजीर्ण ज्वरहरंपरम् ॥ २८१ ॥

ऐरण्डका तैल, मधुर गुरु कफवर्द्धक, वात रुधिर गुल्म हृद्रोग जीर्णज्वर इनके हरनेमें उत्तमहै ॥ २८१ ॥

कटूष्णंसार्पपतैलरक्तपित्तप्रदूषणम् । कफशुक्रानिलहरंकण्डूको ठविनाशनम् ॥ २८२ ॥

सरसोंका तैल कटु उष्ण और रक्त पित्तका और कफ, शुक्र, वात, कण्डू, कोठ, इनका नाशकहै ॥ २८२ ॥

पियालतैलमधुरंगुरुश्लेष्माभिर्वर्द्धनम् । हितमिच्छन्तिनात्यौष्ण्य तसंयोगेवातपित्तयोः ॥ २८३ ॥

और पियाल (चिरौंजी)का तैल मधुर गुरु, कफवर्द्धक, होताहै, और उसको अत्यंत, उष्णताके अभावसे, वात, पित्तके संयोगमें, हित मानते हैं ॥ २८३ ॥

आतस्यमधुराम्लन्तुविपाकेकटुकंतथा । उष्णवीर्यहितंवातेरक्तपित्तप्रकोपनम् ॥ २८४ ॥

अतसीका तैल मधुर अम्ल और पाकमें कटु उष्ण वीर्य है और वातमें हित है और रक्तपित्तका प्रकोपन है ॥ २८४ ॥

कुसुमैतैलमुष्णश्चविपाकेकटुकं गुरु । विदाहिचविशेषेणसर्वरोगप्रकोपनम् ॥ २८५ ॥

कुसुम का तैल, उष्ण पाकमें कटु गुरु विदाही होताहै विशेषकर सब रोगों का प्रकोपन है ॥ २८५ ॥

फलानांयानिचान्यानि तैलान्याहारसन्निधौ । युज्यन्तेगुणकर्मभ्यांतानिब्रूयाद्यथायथम् ॥ २८६ ॥

और अन्य जो फलोंके तैलहैं, वे आहारके समीपमें युक्तहैं, गुण और कर्मसे, उनको फलके अनुसार कहै ॥ २८६ ॥

मधुरोवृंहणोवृष्योबल्योमज्जात्थावसा । यथासत्त्वन्तुशैत्योष्णे वसामज्जोर्विनिर्दिशेत् ॥ २८७ ॥

मज्जा और वसा, मधुर, वृंहण, वृष्य, और बलकारी होतीहै, शीतल और उष्णतामें, बलके अनुसार, वसा और मज्जाका उपदेश करै ॥ २८७ ॥

सस्नेहंदीपनंवृष्यमुष्णंवातकफापहम् । विपाकमधुरंहृद्यंरोचनंविश्वभेषजम् ॥ २८८ ॥

और विश्वभेषज ( मुंठी ) सेहसे युक्त दीपन, वृष्य, उष्ण, वात, कफ, नाशक, पाकमें मधुर, हृद्य और रोचक होती है २८८

श्लेष्मलामधुराचार्द्रागुर्वीस्निग्धा चपिप्पली । साशुष्काकफवात ब्रीकटुकावृष्यसम्पता ॥ २८९ ॥

और हरी पीपल, श्लेष्मल, मधुर, गरिष्ठ और स्निग्ध, आर्द्र होती है, और शुष्क पीपल, कफ, वात, नाशक, कटु, उष्ण, और वृष्य औषधियोंमें सम्मत होती है ॥ २८९ ॥

नात्यर्थमुष्णंमरिचमवृष्यंलघुरोचनम् । छेदित्वाच्छोषणत्वाच्च दीपनं कफवातजित् ॥ २९० ॥

और मिर्च, अत्यन्त, उष्ण नहीं वृष्य नहीं लघु और रोचक और छेदक और शोषक, होनेसे दीपन होती है कफ और वातको जीतती है ॥ २९० ॥

वातश्लेष्मविवन्धग्रंकटुकंदीपनं लघु ॥ हिंशूलप्रशमनंविद्यात् पाचनरोचनम् ॥ २९१ ॥

और हींग वात, कफ, विवन्धका नाशक कटु, उष्ण, दीपन, लघु, शूलका शमन पाचन और रोचन होता है २९१ ॥

रोचनं दीपनं हृद्यं चक्षुष्यमविदाहि च ॥ त्रिदोषघ्नं समधुरं सैन्धवं लवणोत्तमम् ॥ २९२ ॥

लवणोंमें उत्तम सैन्धव, रोचन, दीपन

हृद्य, चक्षुको हित अविदाही त्रिदोष नाशक और मधुर होता है ॥ २९२ ॥

सौक्ष्म्यादौष्ण्याल्लघुत्वाच्चसौगन्ध्याच्चरुचिप्रदम् ॥ सौवर्चलं विवन्धग्रंहृद्यमुद्गारशोधिच २९३ और सौवर्चल, ( कालानोन ) सूक्ष्म, उष्ण, लघु सुगन्ध होनेसे रुचिको करता है विवन्धका नाशक हृद्य उद्गारका शोधक है ॥ २९३ ॥

तैक्ष्ण्यादौष्ण्याद्व्यवायित्वादीपनं शूलनाशनम् ॥ ऊर्द्धश्चाधश्च वातानामानुलोम्यकरं विडम् २९४

और वायुविडंग, तीक्ष्ण उष्ण व्यवायी होनेसे दीपन है और शूलका नाशक होता है और ऊपर नीचेकी वायुका अनुलोम, करता है ॥ २९४ ॥

सतिक्तकटुसक्षारं तीक्ष्णमुत्कृष्टं दिचौद्धिदम् ॥ नकाललवणैर्गन्धः सौवर्चलगुणाश्च ते ॥ २९५ ॥

और क्षार, ( खारी लवण ) तिक्त, कटु उत्कृष्ट, तीक्ष्ण, ऊर्द्धभेदी जो होता है उस काला लवणमें, कुछ भेद नहीं, जो, सौवर्चलके गुण हैं वेही उसके होते हैं २९५

सामुद्रकं समधुरं सतिक्तं कटुपांशुजम् ॥ रोचनं लवणं सर्वपाकिं स्यनिलापहम् ॥ २९६ ॥

समुद्रका लवण, मधुर, तिक्त, कटु पांसुओंसे उत्पन्न होता है, सब प्रकारका

लवण, रोचन, पाचक, रेचक, वात,  
नाशक, होताहै ॥ २९६ ॥

हृत्पाण्डुग्रहणीदोषप्लीहानाहगल  
ग्रहान् । कासंकफजमर्शासिया  
वशूकोव्यपोहति ॥ २९७ ॥

याव ( जौ ) का शूक, हृदय, पाण्डु,  
ग्रहिणी, इनके दोषोंको प्लीहा, आनाह  
और गलग्रहको, कफके कासको और  
अर्शको, नष्ट करताहै ॥ २९७ ॥

तीक्ष्णोष्णोलघुरुक्षक्लेदीपाकी  
विदारणः । दहनोदीपनश्छेत्तास  
र्वःक्षारोऽग्निसन्निभः ॥ २९८ ॥

और सब प्रकारका क्षार, तीक्ष्ण,  
उष्ण, लघु, रुक्ष, क्लेदी और पाचक,  
विदारण, दाहक, दीपन, छेदक, अग्निके  
समान होताहै ॥ २९८ ॥

कारव्यःकुञ्जिकाजाजीकवरीधा  
न्यतुम्बुरुः । रोचनं दीपनं वातक  
फदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥ २९९ ॥

और कारव्य, कुंजिका, अजाजी,  
कवरी, धान्य तुम्बुरु, ये, रोचन, दीपन वात  
कफ और दुर्गन्धिके नाशक होतेहैं ॥ २९९ ॥

आहारयोगिनां भक्तिनिश्चयानतु  
विद्यते । समाप्तोद्वादशश्चायं वर्ग  
आहारयोगिनाम् ॥ ३०० ॥

इत्याहारयोगवर्गः ।

और आहारके योगी जो पदार्थहैं,

उनके भेदोंका निश्चय नहींहैं कि इतनेहैं  
आहारके योगियोंका यह द्वादशवां वर्ग  
समाप्त हुआ ॥ ३०० ॥

इत्याहारयोगवर्गः ।

शूकधान्यं शमीधान्यं समातीतं प्र  
शंस्यते । पुराणं प्रायशोरूक्षं प्राये  
णाभिनवंगुरु ॥ ३०१ ॥

शूकधान्य और शमीधान्य, यह  
गतवर्षका होय तो श्रेष्ठ होताहै और वह  
प्रायः पुराना रुक्ष, होताहै और नया  
अन्नप्रायः गुरु होताहै ॥ ३०१ ॥

यद्यदागच्छति क्षिप्रं तत्तल्लघुतरं  
स्मृतम् ॥ ३०२ ॥

ज्यों ज्यों शीघ्र पक आता है, त्यों  
त्यों अत्यन्त लघु कहाहै ॥ ३०२ ॥

निस्तुपं युक्तिभृष्टन्तुसूप्यं लघुविप  
च्यते ॥ ३०३ ॥

तुपसे रहित युक्तिसे भुना हुआ,  
दालके हित और पाकमें लघु होतेहैं ॥ ३०३ ॥

मृतकेशातिमेध्यश्च वृद्धं बालं विपै  
र्हतम् । अगोचरमृतं व्याडमृदितं  
मांसमृतसृजेत् ॥ ३०४ ॥

मृत, और कुश, अत्यन्त अपवित्र,  
वृद्ध, बाल, विपोंसे हत, परोक्षमें मृत,  
व्याड ( हिंसक ) का मारा हुआ, इतने  
मांसोंको त्याग दे ॥ ३०४ ॥

अतोऽन्यथा हितं मांसं बृहणं बलव  
र्द्धनम् ॥ प्रीणनः सर्वभूतानां हृद्यो

मांसरसः परम् ॥ ३०५ ॥

इनसे अन्य प्रकारका जो मांस है, वह हित, वृंहण, और बलवर्द्धक होता है सब भूतोंकी वृत्ति करनेवाला, और परम हृद्य, मांसरस होता है ॥ ३०५ ॥

शुष्यतां व्याधियुक्तानां कृशानां क्षीणरेतसाम् ॥ बलवर्णार्थिनाञ्चै वरसंविद्यायथामृतम् ॥ ३०६ ॥

सम्बन्धे हुए, और जो व्याधिसे छुटे हैं, कृश जो क्षीणवीर्य हैं, और जो बल, रूपके अभिलाषी हैं, उनके लिये यह रस अमृतकी समान है ॥ ३०६ ॥

सर्वरोगप्रशमनं यथास्वं विहितं रसम् ॥ विद्यात्स्वर्ग्यं बलकरं च यो बुद्धीन्द्रियायुषाम् ॥ ३०७ ॥

और यथायोग्य बनाया हुआ रस, सब रोगोंको शान्त करता है, और उस रसकी स्वरका हितकारी, अवस्था बुद्धि, इन्द्रिय और जीवन, इनका बलकारी जानना ॥ ३०७ ॥

व्यायामनित्याः स्त्रीनित्यामद्यनि त्याश्येनराः ॥ नित्यं मांसरसा हारानातुराः स्युर्न दुर्बलाः ॥ ३०८ ॥

जो, व्यायाम, स्त्रीका भोग, मद्यपान, नित्य करते हैं और नित्यमांसके रसका, आहार करते हैं, वे न आतुर होते हैं, और न दुर्बल होते हैं ॥ ३०८ ॥

क्रिमिवातातपहतं शुष्कं जीर्णं नार्त्तवम् ॥ शाकं निःस्नेहसिद्धञ्च वर्ज्यं यच्चापरिश्रुतम् ॥ ३०९ ॥

और, कृमि, वात, आतप, इनसे हता हुआ, शुष्क, जीर्ण, और अन्य ऋतुका, और जो स्नेहमें सिद्ध न हुआ हो वह, और जो परिश्रुत ( रसेदार ) न हो, ऐसे शाकको, वर्ज दे ॥ ३०९ ॥

पुराणमामं संक्लिष्टं क्रिमिव्याल हिमातपैः ॥ अदेशाकालजं क्लिन्नं यत्स्यात्फलमसाधु तत् ॥ ३१० ॥

पुराणा, आम ( कच्चा ) और कृमि, व्याल, और आतप, इनसे, युक्त और देश, कालमें, अनुत्पन्न, और क्लिन्न, जो फल वह असाधु होता है ॥ ३१० ॥

हरितानां यथा शाकं निर्देशं साधना दत्ते ॥ ३११ ॥

हरित फलोंका साधनके बिना शाकके अनुसार निर्देश है अर्थात् गुण है ॥ ३११ ॥

मद्याम्बुगोरसादीनां स्वेस्वे वर्गवि निश्चयः ॥ ३१२ ॥

मद्य, जल, गोरस, आदिकोंका, अपने २ वर्गमें निश्चय है ॥ ३१२ ॥

यदाहारगुणैः पानं विपरीतं तदप्य ते । अन्नानुपानं धातूनां दृष्टं यन्न विरोधि च ॥ ३१३ ॥

जो पान, आहारके गुणोंसे हो वह विपरीत होता है धातुओंका गुण अन्नके अनुसार वह देखा है जो विरोधी न हो ॥ ३१३ ॥

आसवानांसमुद्दिष्टाअशीतिश्चतुर

त्तराः ॥ ३१४ ॥

और चौरासी आसव पीछे वर्णन कर चुके हैं ॥ ३१४ ॥

जलं पेयमपेयश्च परीक्ष्यानुपिवेद्धि

तम् ॥ ३१५ ॥

पीनेयोग्य और अयोग्य भेदसे जल दो प्रकारका होता है, उसकी परीक्षा करके हित जलका पान करे ॥ ३१५ ॥

स्निग्धोष्णंमारुतेशस्तं पित्तमधुर

शीतलम् । कफेऽनुपानंरूक्षोष्णं

क्षयेमांसरसः परम् ॥ ३१६ ॥

वातमें, स्निग्धोष्ण, जल, श्रेष्ठ होता है पित्तमें मधुर, शीतल, कफमें, रूक्षोष्ण, अनुपान होता है क्षयमें मांसरस, श्रेष्ठ होता है ॥ ३१६ ॥

उपवासाध्वभारस्त्रीमारुतातपक

र्मभिः । क्लान्तानामनुपानार्थं प

यः पथ्यं यथामृतम् ॥ ३१७ ॥

उपवास, मार्ग, भार, स्त्री, पवन, आतप, कर्म, इनसे जो क्लान्त हैं उनके अनुपानके लिये दूध अमृतके समान पथ्य है ॥ ३१७ ॥

सुराकृशानांपुष्ट्यर्थमनुपानं प्रश

स्यते । काश्यार्थं स्थूलदेहानामनु

शस्तं मधूदकदम् ॥ ३१८ ॥

मदिराके पानसे कृशोंकी पुष्टिके लिये दुग्धका अनुपान श्रेष्ठ है और अति

स्थूलोंकी कृशताके लिये मधुयुक्त जल श्रेष्ठ है ॥ ३१८ ॥

अल्पायनामनिद्राणां तन्द्राशोक

भयक्लमैः । मद्यमांसोचितानाञ्च

मद्यमेवानुशस्यते ॥ ३१९ ॥

मन्दाग्नि, निद्रासे रहित, तन्द्रा, शोक भय, ग्लानि, इनसे युक्तोंको और मद्य मांसके अभ्यासियोंको मदिराका अनुपान नहीं श्रेष्ठ है ॥ ३१९ ॥

अथानुपानकर्मप्रवक्ष्यामि । अ

नुपानं तर्पयति प्रीणयति ऊर्जयति

पथ्याति मभिनिर्वर्त्तयति भुक्तमव

सादयति अन्नसङ्घातं भिनत्ति मार्द

वमापादयति क्लेदयति जरयति मुख

परिणामितामाशुव्यवायिताञ्चा

हारस्योपजनयतीति ॥ ३२० ॥

इसके अनन्तर अनुपान कर्मको कहें हैं, अनुपान तृप्त करता है प्रीणन ऊर्जन, को करता है, और पूर्णताको सिद्ध करता है, भोजनका परिपाक करता है, अन्न आदिके समूहको भेदन करता है, मृदुताको उत्पन्न करता है, क्लेदन, और अन्नकी, जीर्णता, करता है, मुखके परिणामको और शीघ्र, व्यवायपनेको और आहारकी इच्छाको पैदा करता है ॥ ३२० ॥

तत्र श्लोकाः ।

अनुपानं हितं युक्तं तर्पयत्याशुमान

वम् । सुसंपचतिचाहारमायुपेच  
बलायच ॥ ३२१ ॥

उसमें ये श्लोक हैं, कि हित और  
युक्त अनुपान, मनुष्यको शीघ्र, वृत्त  
करता है, सुखसे आहारको पचाता है  
और बलकागी होता है ॥ ३२१ ॥

नोद्ध्राङ्गमारुताविटानहिकाश्वा  
सक्तासिनः । नगीतभापाध्ययन  
प्रसक्तानोरसिक्षताः ॥ ३२२ ॥

जिनके, ऊर्ध्वअंगमें, वात न हो  
और जिनको हिका, श्वास और कास हो,  
और जो गीत, भाषण, अध्ययनमें प्रसक्त  
हों जिनकी छातीमें क्षत (घाव) हो ॥ ३२२ ॥

पिबेयुरुदकं भुक्तातद्विकण्ठोरसि  
स्थितम् । स्नेहमाहारजंहत्वाभूयो  
दोषायकल्पते ॥ ३२३ ॥

इतने मनुष्य भोजन करके अन्तमें  
जलको न पीवें, क्योंकि वह जल कण्ठ,  
और छातीमें, टिककर, आहारसे उत्पन्न  
हुए स्नेहको नष्ट करके फिरभी दोषोंको  
करता है ॥ ३२३ ॥

अनुपानैकदेशोऽयमुक्तः प्रायोपयो  
गिकः । द्रव्यन्तुनहि निर्देष्टुं शक्यं  
कृत्स्नेन नामभिः ॥ ३२४ ॥

यह अनुमानका एकदेश, वह कहा  
जो प्रायः उपयोगी है, और संपूर्ण द्रव्य  
नाम ले लेकर, दिखानेकी शक्य नहीं  
है ॥ ३२४ ॥

यथानामौपधंकिश्चिद्देशजानां व  
चोयथा ॥ द्रव्यंतत्तत्तथावाच्य  
मनुक्तमिहतद्भवेत् ॥ ३२५ ॥

जैसे, नानाप्रकारकी औपधि और  
अनेक देशोंमें उत्पन्न मनुष्योंका वचन  
जैसे अनेक प्रकारका है, तिसी प्रकार  
वह २ द्रव्यभी कहना, जो यहां नहीं  
कहा है ॥ ३२५ ॥

चराः शरीरावयवाः स्वभावोधात  
वः क्रिया ॥ लिङ्गप्रमाणसंस्का  
रो मात्राचास्मिन् परीक्ष्यते ॥ ३२६ ॥

चर शरीरके अवयव, स्वभाव, धातु,  
क्रिया, लिंग, प्रमाण, संस्कार, मात्रा,  
इनकी यहां परीक्षा की जाती है अर्थात्  
वर्णन करते हैं ॥ ३२६ ॥

चरोऽनूपजलाकाशधन्वाद्यो भ  
क्ष्यसंविधौ ॥ जलजानूपजाश्चैव  
जलानूपचराश्च ये ॥ ३२७ ॥

अनूपजल, आकाश, धन्वदेश,  
आदिमें जो भक्ष्यकी विधि है उसे चर  
कहते हैं जलमें और अनूपदेशमें जो  
उत्पन्न हैं और जल अनूप देशमें विचरते  
जीव हैं ॥ ३२७ ॥

गुरुभक्ष्याश्च ये सत्त्वाः सर्वे ते गुरुवः  
स्मृताः ॥ लघुभक्ष्यास्तु लघवो  
धन्वजाधन्वचारिणः ॥ ३२८ ॥

और जिनका भक्ष्य, गुरु है वे सब  
गुरु कहे हैं और जो लघु, भक्ष्य हैं वे



और धन्वदेशमें उत्पन्न और वहां वि-  
चरनेवाले जीव लघु होतेहैं ॥ ३२८ ॥

शरीरावयवाःसक्थिशिरःस्क

न्धादयस्तथा ॥ सक्थिमांसादुरु

स्कन्धस्ततःक्रोडस्ततश्शिरः ॥ ३२९ ॥

शरीरके अवयव जो सक्थि, शिर,  
स्कन्ध, आदिहैं वेभी गुरुहै मांससे सक्थि  
गुरुहै सक्थिसे स्कन्ध, स्कन्धसे क्रोड,  
क्रोडसे शिर गुरुहै ॥ ३२९ ॥

वृषणौचर्ममेदूश्चश्रोणीवृक्कौयल  
द्रुदम् ॥ मांसादुरुतरंविद्याद्य

थास्वंमध्यमस्थिच ॥ ३३० ॥

और वृषण, चर्म, लिंग, श्रोणि, वृक्  
यकृत, गुदा, इनको यथायोग्य मांससे  
अत्यन्त गुरु जानै और मध्यम  
अस्थिभी, गुरु हैं ॥ ३३० ॥

स्वभावाल्लघवोमुद्रास्तथालावक

पिञ्जलाः । स्वभावादुरवोमाषा

वराहमहिपास्तथा ॥ ३३१ ॥

मृग, स्वभावसे लघुहैं तैसेही लाव और  
कर्पिजल, लघु होतेहैं उड़द स्वभावसे  
गुरुहैं तैसेही वराह महिष गुरुहैं ॥ ३३१ ॥

धातूनांशोणिताद्यानांगुरुंविद्याद्य

थोत्तरम् । अलसेभ्योविशिष्यन्ते

प्राणिनोयेवहुक्रियाः ॥ ३३२ ॥

रुधिर आदिजो धातुहैं उनकोभी  
यथोत्तर गुरुजानै जो मनुष्य बहुत  
कर्मोंको करतेहैं वे आलसियोंसे अच्छे  
होतेहैं ॥ ३३२ ॥

गौरवेलिङ्गसामान्येपुंसांस्त्रीणाञ्च

लाघवम् । महाप्रमाणागुरुवःस्व

जातौलघवोऽन्यथा ॥ ३३३ ॥

गौरव और लिंग सामान्यमें पुरुष  
और स्त्रियोंको लाववहै, अपनी जातिमें  
जो महाप्रमाणहैं वे गुरु और अल्प  
प्रमाणके लघु होतेहैं ॥ ३३३ ॥

गुरुणांलाघवंविद्यात्संस्कारात्स

विपर्ययम् । ब्रीहेर्लाजायथाच

स्युःसक्तूनांसिद्धपिण्डकाः ॥ ३३४ ॥

गुरु पदार्थोंकोभी संस्कारसे लावव  
और विपरीत भाव हो जाताहै जैसे  
ब्रीहिसे लाजा और सक्तूओंसे सिद्ध पिंड  
गुरु होतेहैं ॥ ३३४ ॥

अल्पादानेगुरुणाञ्चलघूनांचाति

सेवने । मात्राकारणमुद्दिष्टद्रव्या

णांगुरुलाघवे ॥ ३३५ ॥

गुरु पदार्थोंके अल्प आदानमें और  
लघु पदार्थोंके अत्यंत सेवनमें और  
द्रव्योंके गौरव लाघवमें मात्राही कारण  
कहाहै ॥ ३३५ ॥

गुरुणामल्पमादेयंलघूनांतृप्तिरि

ष्यते । मात्रामपेक्षतेद्रव्यमात्रा

चाग्निमपेक्षते ॥ ३३६ ॥

गुरु पदार्थोंमेंसे अल्प भक्षण करना  
और लघु पदार्थोंसे तृप्ति इष्टहै मात्राको  
द्रव्यकी अपेक्षाहै और अग्निकीभी अपे  
क्षाहै ॥ ३३६ ॥

बलमारोग्यमायुश्च प्राणाश्चाग्नि-  
प्रतिष्ठिताः । अनुपानेन्धनश्चाग्नि-  
दीप्यनेशाम्यतेऽन्यथा ॥ ३३७ ॥

बल आरोग्य अवस्था प्राण ये सब  
अग्निमें स्थित हैं, अनुपान और इंधनसे  
अग्नि दीप्त होती है और अन्यथा शांत  
होती है ॥ ३३७ ॥

गुरुलाघवचिन्त्येयंप्रायेणाल्पव-  
लान्प्रति । मन्दकर्मनारोग्या-  
न्सुकुमागन्सुखोचितान् ॥ ३३८ ॥

गुरु लाघवकी यह चिन्ता प्रायः अल्प-  
बल मनुष्योंके प्रति है और उनके भी  
लिये है जो मन्दकर्मी हैं अनारोग्य हैं  
सुकुमार हैं और सुखके भोगी हैं ॥ ३३८ ॥

दीप्ताग्नेयः खराहाराः कर्मनित्या-  
महोदराः । येनराः प्रतितांश्चि-  
न्त्यनावश्यं गुरुलाघवम् ॥ ३३९ ॥

और जो नर दीप्ताग्नि कठोरभोजी  
नित्यकर्मी और महोदर हैं उनके प्रति  
लाघवकी चिन्ता आवश्यक नहीं है ॥ ३३९ ॥

हिताभिर्जुहुयान्नित्यमन्तराग्निस-  
माहितः । अनुपानसमिद्धिर्नामा-  
त्राकालौविचारयन् ॥ ३४० ॥

हितकारी मात्राओंसे सावधान होकर  
जठराग्निमें प्रतिदिन अनुपानकी समिधोंसे  
होम करे और मनुष्य मात्रा कालको  
विचारता रहे ॥ ३४० ॥

आहिताग्नेः सदा पथ्यान्त्यन्तराग्नि-  
जुहोतियः । दिवसे दिवसे ब्रह्मजप-  
त्यथ ददाति च । नरानिःश्रेयसे यु-  
क्तं सात्म्यं ज्ञापानभोजने ॥ ३४१ ॥

जो नर आहिताग्नि होकर अंतराग्निमें  
सदा पथ्यका होम करता है प्रतिदिन  
गायत्रीको जपता है और दान देता है,  
जो मनुष्य सदैव श्रेयमें युक्त है और  
पान भोजनसे अपने सात्म्यका ज्ञाता  
है ॥ ३४१ ॥

भजन्ते नामयाः केचिद्भाविनोऽप्य-  
न्तरादृते । पट्त्रिंशच्च सहस्राणि  
रात्रीणां हितभोजनः ॥ ३४२ ॥

उसको विघ्नके बिना जो कोई भावी-  
भी रोग है वे भी नहीं भजते हैं, छत्तीस  
सहस्र रात्रिपर्यंत जो हित भोजन  
करता है ॥ ३४२ ॥

जीवत्यनातुरो जन्तुर्जितात्मा स-  
म्मतः सतामिति । तत्र श्लोकाः ।  
अनुपानगुणाः साध्यावर्गाद्वादश  
निश्चिताः । सगुणान्यन्नपानानि  
गुरुलाघवसंग्रहः ॥ ३४३ ॥

सज्जनोंका संमत वह नर आत्माका  
जय करके निरोग जीवता है,—इति—  
इसमें ये श्लोक हैं कि—

मुख्यता सहित अनुपानके गुणके  
द्वादशवर्ग निश्चित हैं और गुणों सहित  
अन्नपान गुरु और लाघवका संग्रह ३४३

अनुपानविधावुक्तं तत्परीक्ष्यं वि  
शेषतः । प्राणाः प्राणभृतामन्नम  
न्नलोकोऽभिधावति ॥ ३४४ ॥

जो अनुपानकी विधिमें कहा है वह  
विशेषकर परीक्षा करने योग्य है, अन्न  
प्राण धारियोंका प्राण है जगत, अन्नके  
सन्मुख दौड़ता है ॥ ३४४ ॥

वर्णप्रसादः सौस्वर्यजीवितं प्रति  
भासुखम् ॥ तुष्टिः पुष्टिर्वलमेधा  
सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥ ३४५ ॥

वर्ण प्रसाद सुंदरस्वर जीवन वृद्धि सुख  
तुष्टि, पुष्टि बल मेधा ये सब अन्नमें प्रति-  
ष्ठित हैं ॥ ३४५ ॥

लौकिकं कर्म यद्वृत्तौ स्वर्गतौ य  
च्च वैदिकम् ॥ कर्मापवर्गे यच्चोक्तं  
तच्चाप्यन्ने प्रतिष्ठितम् ॥ ३४६ ॥

इत्यन्नपानचतुष्केऽन्नपानविधिरध्यायः ।

और जो जीविकाके लिये लौकिक  
कर्म हैं और जो स्वर्गकी गतिमें वैदिक  
कर्म हैं और जो कर्म मोक्षके लिये कहा है  
वह भी अन्नमें ही प्रतिष्ठित है ॥ ३४६ ॥  
इति अन्नपानचतुष्के अन्नपानविधिः अध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथातो विविधा शितपीतीयमध्यायं  
व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

इसके अनंतर विविधा शितपीतीय  
अध्यायका वर्णन करते हैं,

ऐसे भगवान् आत्रेयने कहा है—

विविधमशितपीतलीढखादितं ज  
न्तोर्हितमन्नमग्निसन्धुक्षितवले  
नयथास्वेनोष्मणा सम्यग्विप  
च्यमानं कालवदनवस्थितसर्वधा  
तुपाकमनुपहतसर्वधातूष्ममारुत  
स्रोतः केवलं शरीरमुपचयबलवर्ण  
सुखायुपायोजयतीति शरीरधातू  
नूर्जयन्धातवो हि धात्वाहाराः प्रकृ  
तिमनुवर्तन्ते ॥ १ ॥

कि अनेक प्रकारका जो अशित पीत  
लीढ खादितरूप जंतुका हितकारी अन्न है  
वह अग्निके संधुक्षण ( जलना ) के बलसे  
जैसे २ अपनी उष्मासे पकता हुआ  
कालके समान अनवस्थित ( चंचल )  
जो संपूर्ण धातु उनके पाकको अनुपहत  
( वर्तमान ) संपूर्ण धातुओंकी उष्मा  
वात स्रोतरूप जो केवल शरीर है उसको  
वृद्धि बलवर्ण सुख अवस्थासे युक्त कर-  
ता है उससे शरीरकी धातुओंको बढ़ाता है  
फिर धातु है आहारजिनका ऐसी धातु  
प्रकृतिके अनुसार वर्तती है ॥ १ ॥

तत्राहारप्रसादाख्योरसः किट्टश्च  
मलाख्यमभिनिर्वर्तते किट्टात् मूत्र  
स्वेदपुरीषवातपित्तश्लेष्माणः क  
र्णाक्षिनासिकास्यलोमकूपप्रजन  
नमलकेशश्मश्रुलोमनखादयश्चा  
वयवाः ॥ २ ॥

उसमें आहार प्रसाद नामकी रसमल नामके किट्टको पैदा करताहै और किट्टसे मूत्र, स्वेद, मल, वात, पित्त, कफ, होतेहैं और कर्ण, अक्षि, नासिका, मुख, लोम, कूप, प्रजनन, मल, केश, श्मश्रु, लोम, नस, आदि अवयव होतेहैं ॥ २ ॥

पुण्यन्तित्वाहाररसातरसरुधिर  
मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रौजांसिप  
त्रेन्द्रियद्रव्याणिधातुप्रसादसंज्ञ  
कानिशरीरसन्धिवन्धपिच्छाद  
यश्चावयवाःतेसर्वेएवधातवोमला  
ख्याःप्रसादाख्याश्चरसमलाभ्यांपु  
ण्यन्तःस्वंमानमनवर्तन्ते ॥ ३ ॥

ये सब आहारके रससे पुष्ट होतेहैं, रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, शुक्र ओज और धातु प्रसाद नामके पाँचों इंद्रियोंके द्रव्य, और शरीर संधि बंध पिच्छ आदि अवयव, ये संपूर्णभी मल नामकी धातु और प्रसाद नामकी धातु रस और मलसे पुष्ट होती हुई अपने मानके अनुसार वर्तती हैं ॥ ३ ॥

यथावयःशरीरमेवंरसमलौस्व  
प्रमाणावस्थितौआश्रयस्यसम  
धातोर्धातुसाम्यमनुवर्तयतोनिमि  
त्तस्तुक्षीणातिवृद्धानांप्रसादा  
ख्यानांधातूनांवृद्धिक्षयाभ्यामा  
हारमूलाभ्यांरसःसाम्यमुत्पादय  
तेआरोग्याय ॥ ४ ॥

जैसे अवस्था और शरीर, इसी प्रकार अपने प्रमाणसे स्थित रस और मल अपने आश्रय समधातुके धातुसाम्यको अनुवर्तते हुये रहते हैं—और निमित्तसे तो क्षीण अति वृद्ध जो प्रसाद नामकी धातुहैं उनका जो आहार मूल ( हेतु ) वृद्धि क्षयहैं उनसे धातुओंकी साम्यताको रस आरोग्यताके लिये करताहै ४ किट्टश्चमलानामेवमेव ॥ स्वमा नातिरिक्ताःपुनरुत्सर्गिणःशीतो ण्णपर्यायगुणैश्चोपचर्यमाणाम लाःशरीरधातुसाम्यकराःसमुपलभ्यन्ते ॥ ५ ॥

और ऐसेही किट्टभी मलोंकी आरोग्यता केलिये है इसी प्रकार अपने मानकी अधिकतासे और स्वभावसे शीत उष्णके पर्याय ( फेर ) के गुणोंसे उपचारको प्राप्त हुये मल शरीरकी धातुओंकी साम्यताको करते हुये दीखते हैं ॥ ५ ॥

तेपान्तुमलप्रसादाख्यानांधातूनां  
स्रोतांस्ययनमुखानितानियथा  
विभागेनयथास्वंधातुनापूरयन्त्ये  
वमिदंशरीरमशितपीतलीढखादि  
तप्रभवम् ॥ अशितलीढखादित  
प्रभवाश्चास्मिन्शरीरेव्याधयोभ  
वन्ति ॥ ६ ॥

और उन मल प्रसाद नामकी धातुओंके अयन ( स्थान ) का मुख स्रोत

हैं, यथा योग्य वे स्रोत यथार्थ विभागसे । यथायोग्य धातुओंको पूर्ण करतेहैं, इस प्रकार यह शरीर अशित पीत लीढ खादितसे उत्पन्न है, और अशित पीत लीढ खादितसे उत्पन्नही, इस शरीरमें व्याधिभी होतीहैं ॥ ६ ॥

हिताहितोपयोगविशेषास्त्वत्रशुभाशुभविशेषकराभवन्ति इति ॥ ७ ॥

और हित अहितके उपयोग विशेष जो हैं वे इस शरीरमें शुभ अशुभकी विशेषताको करते हैं ॥ ७ ॥

एवंवादिनभगवन्तमात्रेयमग्निवेश उवाच । दृश्यन्ते हिभगवन् । हि तसमाख्यातमप्याहारमुपयुज्जाना व्याधिमन्तश्चागदाश्चतथैवाहित समाख्यातमेवंदृष्टेकथं हिताहितोपयोगविशेषात्मकं शुभाशुभविशेषमुपलभेमहीति ॥ ८ ॥

इस प्रकार कहते हुये भगवान् आत्रेय को अग्निवेश बोले कि हे भगवन् हित नामके आहारका उपयोग करते हुये भी मनुष्य व्याधिमान् दीखतेहैं और तैसेही अहितनाम आहारके भोगीनी रोग दीखतेहैं, इस प्रकार देखनेपर कैसे जान सकते हैं कि हित अहित पदार्थका उपयोग विशेष शुभ अशुभके विशेष रूपहै-

तमुवाचभगवानात्रेयः । नहिताहारोपयोगिनामग्निवेश तन्निमि

त्ताव्याधयोजायन्ते । नचकेवलं हिताहारोपयोगादेव सर्वव्याधिभयमतिक्रान्तंभवति । सन्ति हि ऋतेऽपि हिताहारोपयोगादन्यारोगप्रकृतयः । तद्यथा ।-

कालविपर्ययः प्रज्ञापराधः परिणामश्च शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाश्चासात्म्या इति । ताश्चरोगप्रकृतयोरसान्सम्यगुपयुज्जानं पुरुषमशुभेनोपपादयन्ति । तस्माद्धिताहारोपयोगिनोऽपि दृश्यन्ते व्याधिमन्तः । अहिताहारोपयोगिनां पुनः कारणतो न सद्यो दोषवान् भवत्यपचारो न हि सर्वाण्यपथ्यानि तुल्यदोषकराणि । न च सर्वे दोषास्तुल्यबलाः । न च सर्वाणि शरीराणि व्याधिक्षमत्वे समर्थानि । तदेव ह्यपथ्यं देशकालसंयोग-वीर्यप्रमाणातियोगाद्भूयस्तरस्यपथ्यं सम्पद्यते । स एव दोषः संसृष्टयोनिविरुद्धोपक्रमोगम्भीरानुगतः प्राणायतनसमुत्थो मर्मोपघाती वाभूयान् कष्टतमः क्षिप्रकारितमश्च सम्पद्यते ॥ ९ ॥

उस अग्निवेश के प्रति भगवान्  
आत्रेय बोले कि—हे अग्निवेश ! जो हित  
आहारके उपयोगी हैं उनको हित आहा-  
रके निमित्तसे व्याधि नहीं होती है और  
केवल हित आहारके उपयोगसे ही संपूर्ण  
व्याधियोंका भय अतिक्रान्त ( निवृत्त )  
नहीं होता क्योंकि हित आहारके उपयोग  
बिना भी अन्यरोग प्रकृति हैं वह ऐसे हैं  
कि काल, विपर्यय, प्रज्ञापराध, परिणाम,  
शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये असात्म्य हैं  
और वे रोगकी प्रकृति रसोंका सम्यक् उप-  
योग करते हुए मनुष्यको अशुभसे युक्त  
करते हैं, तिससे हित आहारके उपयोगी  
भी व्याधिमान् दीखते हैं और अहित  
आहारके उपयोगियोंको तो कारणोंसे  
शीघ्र ही दोषवान् अपचार नहीं होती है,  
और संपूर्ण अपथ्य तुल्य दोषकारक,  
नहीं होते हैं और संपूर्ण दोषोंका बल  
तुल्य नहीं होता है और संपूर्ण शरीर भी  
व्याधिके सहनेमें समर्थ नहीं होते वही  
अपथ्य देशकाल संयोग वीर्य प्रमाणके  
अत्यंत योगसे अधिक अपथ्य होजाता है  
और वही दोष भली प्रकार संसृष्ट योनि  
के विरुद्ध उपक्रम होनेसे गंभीरके अनु-  
गत चिरस्थित प्राणके आयतनोंमें स्थित  
मर्मोंका नाशक अधिक अति कष्टदायी  
अत्यंत शीघ्रकारी होजाता है ॥ ९ ॥

शरीराणि चातिस्थूलानि अतिकृ-  
शानि अनिविष्टमांसशोणितास्थी-  
नि दुर्बलानि असात्म्याहारोपचि-

तान्यल्पाहाराणि अल्पसत्त्वानि  
वा भवन्ति अव्याधिसहानि १० ॥

और शरीर भी अतिस्थूल अतिकृश  
मांस रुधिरसे रहित दुर्बल और असात्म्य  
आहारसे उपचित अल्प भोजन वा अल्प  
सत्त्व हो जाते हैं और व्याधिको नहीं  
सह सकते ॥ १० ॥

विपरीतानि पुनर्व्याधिसहानि ए-  
भ्यश्चैवापथ्याहारदोषशरीरवि-  
शेषेभ्यो व्याधयो मृदुबोदारुणाः  
क्षिप्रसमुत्थाश्चिरकारिणश्च भ-  
वन्ति ॥ ११ ॥

और पुनः विपरीत हुये व्याधिको  
सह सकते हैं और इन अपथ्य आहार  
दूषित शरीर विशेषोंसे व्याधि मृदु दारुण  
शीघ्र उत्पन्न और चिरकारी हो जाती हैं

अतएव च वातपित्तश्लेष्माणः स्था-  
नविशेषे प्रकुपिता व्याधिविशेषानि  
भिनिर्वर्तयन्ति अग्निवेश ! तत्र  
सादिपुस्थानेषु प्रकुपितानां दोषा-  
णां यस्मिन् स्थाने ये व्याधयः सम्भ-  
वन्ति तांस्तान्यथा वदन् व्याख्या-  
स्यामः ॥ १२ ॥

और येही वात, पित्त, कफ, स्थान  
विशेषमें कुपित हुये व्याधिके विशेषोंको  
पैदा करदेते हैं, हे अग्निवेश ! तिन रस  
आदि स्थानोंमें कुपित हुयोंके मध्यमें

जिस २ स्थानमें जो २ व्याधि होती हैं  
उन २ को यथार्थ रीतिसे वर्णन करतेहैं  
अश्रद्धाचारुचिश्चास्यवैरस्यमरस  
ज्ञता । हल्लासोगौरवंतन्द्रासाङ्गम  
र्दोज्वरस्तम ॥ १३ ॥

कि अश्रद्धा अरुचि मुखका वैरस्य,  
चरसंज्ञता, हल्लास, गौरव, तन्द्रा, अंगमर्द,  
ज्वर तम ॥ १३ ॥

पाण्डुत्वंस्रोतसांरोधःकैव्यंसादः  
कृशाङ्गताः । नाशोऽग्नेरयथाका  
लंवलयःपलितानिच । रसप्रदोष  
जारोगावक्ष्यन्तेरक्तदोषजाः ॥ १४ ॥

पाण्डुता स्रोतोंका अवरोध, क्लीवता, साद,  
कृशांगता, अग्निकानाश और समयके विना  
वली और पलित ( सपेदकेश ) ये रोग  
रसके दोषसे होतेहैं अव रक्तके दोषसे  
उत्पन्नोंको कहतेहैं ॥ १४ ॥

कुष्ठवीसर्पपिडकारक्तपित्तमसृद्र  
रः । मुदमेढास्यपाकश्चप्लीहागु  
ल्मोऽथविद्रधी ॥ १५ ॥

कुष्ठ, वीसर्प, पिडका, रक्तपित्त,  
असृक्दर, ( रुधिरका प्रदर ) गुदा, लिंग,  
मुख, इनका पाक, प्लीहा, गुल्म, विद्रधी ॥ १५ ॥

नीलिकाकामलाव्यङ्गं पिप्पुवस्ति  
लकालकाः । दद्रुश्चर्मदलंश्चित्रः  
पामाकोठास्रमण्डलम् । रक्तप्रदो  
षाज्जायन्तेशृणुमांसप्रदोषजान् ॥ १६ ॥

नीलिका कामला, व्यंगता, पिप्पुव,  
तिलकालक, दद्रु चर्मदल श्वित्र, पामा  
कोठास्र मण्डल ये रोग रक्तके दोषसे  
उत्पन्न होतेहैं अव मांसके दोषसे उत्प-  
न्नोंको सुनो ॥ १६ ॥

अधिमांसार्बुदंकीलगलशालूक  
शुण्डिकाः ॥ पूतिमांसालजीगण्ड  
गण्डमालोपजिह्विकाः ॥ १७ ॥

अधिमांस, अर्बुद, कील, गल, शालूक,  
शुण्डिका, पूतिमांस, अलजी, गंड, गंड-  
माला, उपजिह्विका ॥ १७ ॥

विद्यान्मांसाश्रयान्मेदःसंश्रयांस्तु  
प्रवक्ष्यते ॥ निदानानिप्रमेहाणां  
पूर्वरूपाणियानिच ॥ १८ ॥

ये मांसके दोषसे उत्पन्न जानना  
मेदासे उत्पन्न रोगोंको कहेंगे प्रमेहोंके  
निदान और पूर्व रूपोंको कहेंगे ॥ १८ ॥

अध्यस्थिदन्तदन्तास्थिभेदःशू  
लंविवर्णता ॥ केशलोमनखश्म  
श्रुदोषाश्चास्थिप्रकोपजाः ॥ १९ ॥

वे अस्थियोंमें, दन्तोंमें, दन्त, अस्थि  
का भेद, शूल, विवर्णता, केश, लोम,  
नख, श्मश्रु, इनके, दोष, अस्थिके  
कोपसे उत्पन्न होतेहैं ॥ १९ ॥

रुक्पर्वणांभ्रमोमूर्च्छादर्शनंतम  
सोमताः ॥ अरुषांस्थूलमूलानां  
पर्वजानाञ्चदर्शनम् ॥ २० ॥

पदोंमें पीडाभ्रम. मूर्च्छा अंधकारका दर्शन होताहै और अरुण ( मर्म ) स्थूल मूल दीर्घ और पर्वजोंका दर्शन ॥२०॥

मज्जाप्रदोषाच्छुक्रस्यदोषात्कलै व्यमर्दपणम् ॥ रोगिणंकलीवम न्पायुर्विरूपंवाप्रजायते ॥ २१ ॥

ये मज्जाके दोषसे क्लीवता हर्षका अभाव होताहै और रोगी नपुंसक अल्पायु वा विरूप बालक पैदा होताहै ॥२१॥

नवासजायते गर्भः पतति प्रसवत्यपि ॥ शुक्रं हि दुष्टं सापत्यं सदारं वा धते नरम् ॥ २२ ॥

अथवा गर्भ नहीं रहता पतित होजाताहै प्रसव होताहै दुष्ट शुक्र संतान और स्त्री सहित मनुष्यकी बाधा करता है ॥२२॥

इन्द्रियाणिसमाश्रित्य प्रकुप्यन्ति यदामलाः । उपतापोपघाताभ्यां योजयन्तीन्द्रियाणिते ॥ २३ ॥

इन्द्रियोंमें टिककर जब मल कुपित होताहै तब उपताप और उपघातसे युक्त इन्द्रियोंको करताहै ॥ २३ ॥

स्नायौ शिराकण्डरयोर्दुष्टाः क्लिश्यन्ति मानवम् । स्तम्भसङ्कोचखलीभिर्ग्रन्थिस्फुरणमुत्तिभिः ॥ २४ ॥

और स्नायु, शिरा, कांड इनमें दूषित मल यनुष्यका ये क्लेश देतेहैं कि स्तम्भ संकोच खल्ली ग्रंथि स्फुरण मुत्ति ये होतेहैं ॥ २४ ॥

मलानाश्रित्य कुपिता भेदोपप्रदूषणम् । दोषामलानां कुर्वन्ति सङ्गोत्सर्गावतीवच ॥ २५ ॥

मलोंमें स्थित होकर जब कुपित होताहै तब भेद दोषोंका प्रदूषण मलोंमें दोष करताहै और अत्यंत संग उत्सर्ग होताहै ॥ २५ ॥

विविधादशितात्पीतादहिताह्नी दखादितात् । भवन्त्येते मनुष्याणां विकारा य उदाहृताः ॥ २६ ॥

अनेक प्रकारके अशित पीतसे और अहित लीड खादितसे ये विकार होतेहैं जो कहेहैं ॥ २६ ॥

तेषामिच्छन्ननुत्पत्तिं सेवेत मतिमान्सदा । हितान्येषां शितादीनि न स्युस्तज्जास्तथा मयाः ॥ २७ ॥

उनकी अनुत्पत्तिकी इच्छा करता हुआ बुद्धिमान् मनुष्य सदैव हितही अशित आदिकी सेवा करे तिससे उनसे उत्पन्न रोग नहीं होते ॥ २७ ॥

रसजानां विकाराणां सर्वलंघनमौषधम् । विधिशोणितकेऽध्याये रक्तजानां भिषजितम् ॥ २८ ॥

रसमें उत्पन्न विकारोंकी संपूर्ण औषध लंघनहै और विधिशोणितक अध्यायमें रक्तमें उत्पन्न रोगोंकी चिकित्सा कहीहै २८ मांसजानान्तुसंशुद्धिः शस्त्रक्षारा शिकर्मच । अष्टौ निन्दितसंख्या



तेमेदोजानांचिकित्सितम् ॥ २९ ॥

और मांसमें उत्पन्नोकी संशुद्धि शस्त्र और क्षार अग्रिकर्म है और अष्टौर्निदित संख्यात अध्यायमें मेदामें उत्पन्नोकी चिकित्सा कही है ॥ २९ ॥

अस्थ्याश्रयाणांव्याधीनांपञ्चक  
र्माणभेषजम् । वस्तयःक्षीरस  
र्पीषितिकोपहितानिच ॥ ३० ॥

अस्थिमें आश्रित व्याधियोंकी औषध पञ्चकर्म औषधें वस्ति और वे दूध घी जो तिक्तसे उपहित हों ॥ ३० ॥

मज्जाशुक्रसमुत्थानामौषधंस्वादुति  
क्तकम् । अन्नंव्यवायव्यायामौ  
शुद्धिःकालेचमात्रया ॥ ३१ ॥

मज्जा और शुक्रमें उत्पन्नोकी औषध स्वादु और तिक्त हैं अन्न और व्यवाय व्यायामसे और समयपर मात्रासे शुद्धि होती है ॥ ३१ ॥

शान्तिरिन्द्रियजानान्तुत्रिमर्मी  
येप्रवक्ष्यते ॥ ३२ ॥

और इंद्रियोंमें उत्पन्न रोगोंकी शान्ति त्रिमर्ममय अध्यायमें कहेंगे ॥ ३२ ॥

स्नाय्वादिजानांप्रशमोवक्ष्यतेवात  
रोगिके । नवेगान्धारणेऽध्याये  
चिकित्सासंग्रहःकृतः ॥ ३३ ॥

स्नायु आदिमें उत्पन्नोकी शान्ति वात रोगिक अध्यायमें कहेंगे और नवेगान्धारण अध्यायमें मलमें उत्पन्न विकारोंकी चिकित्साका संग्रह किया है ॥ ३३ ॥

मलजानांविकाराणांसिद्धिश्चोक्ता  
क्वचित्क्वचित् ॥ ३४ ॥

और मलसे उत्पन्न जो विकार हैं तिनकी कहीं २ सिद्धि भी कही है ॥ ३४ ॥

व्यायामादुष्मणस्तैक्ष्ण्याद्धितस्या  
नवधारणात् । कोष्ठाच्छाखाम  
लायान्तिद्रुतत्वान्मारुतस्यच ३५

व्यायामसे उष्मासे तीक्ष्णतासे और हितके अनिश्चयसे और मारुतके द्रुत ( वेग ) से कोष्ठमेंसे शाखाके मल चले जाते हैं ॥ ३५ ॥

तत्रस्थाश्वविलम्बन्तेकदाचिन्ना  
समीरिताः । नादेशकालेकुप्यन्ति  
भूयोहेतुप्रतीक्षिणः ॥ ३६ ॥

और कदाचित् वायुके प्रेरित नहीं किये वहांही टिके हुये विलंबको प्राप्त होते हैं और फिरभी हेतुकी प्रतीक्षा करते हुये देश कालके विना कुपित नहीं होते ॥ ३६ ॥

वृद्ध्याभिप्यन्दनात्पाकात्स्रोतो  
मुखविशोधनात् । शाखांमुक्त्वा  
मलाःकोष्ठंयान्तिवायोश्चनिग्रहा  
त् ॥ ३७ ॥

वृद्धि अभिप्यंद पाक स्रोतोंके मुखकी शुद्धि इनसे मल शाखाओंको छोड़कर कोष्ठमें वायुके निग्रहसे आजाते हैं ॥ ३७ ॥

अजातानामनुत्पत्तौजातानांविनि

बुच्ये । रोगाणां यो विधिर्दृष्टः सु  
स्वार्थान्तममाचरेत् ॥ ३८ ॥

अज्ञात रोगोंकी निवृत्तिमें जो विधि  
शास्त्रमें देखी है सुखार्थी मनुष्य उसका  
आश्रय ले ( करे ) ॥ ३८ ॥

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः  
प्रवृत्तयः । ज्ञानाज्ञानविशेषानु  
मार्गामार्गप्रवृत्तयः ॥ ३९ ॥

संपूर्ण भूतोंकी सब प्रवृत्ति सुखके  
अर्थ हैं, ज्ञान और अज्ञानके विशेषसे  
मार्ग और अमार्गमें प्रवृत्ति होती हैं ॥ ३९ ॥

हितमेवानुरुध्यन्ते प्रसमीक्ष्य परी  
क्षकाः । रजोमोहावृतात्मानः प्रि  
यमेव तु लौकिकाः ॥ ४० ॥

परीक्षक मनुष्य विचार कर हितकाही  
अनुरोध करते हैं और रजोगुण और  
मोहसे आच्छादित है आत्मा जिनका  
ऐसे लौकिक, प्रियकाही अनुरोध कर-  
ते हैं ॥ ४० ॥

श्रुतबुद्धिः स्मृतिर्दाढ्यधृतिर्हितनि  
पेवणम् । वाक्प्रशुद्धिः शमो धैर्य  
माश्रयन्ति परीक्षकम् ॥ ४१ ॥

और परीक्षक मनुष्यमें श्रुत (शास्त्र)  
बुद्धि स्मृति दृढता धृति हितका सेवन  
वाणीकी उत्तम शुद्धि शान्ति धीरता ये  
वास करते हैं ॥ ४१ ॥

लौकिकं नाश्रयन्त्येते गुणामोहतम

श्रितम् । तन्मूला बहुलाश्चैव रोगा  
शरीरमानसाः ॥ ४२ ॥

और गुण मोह तमसे युक्त लौकिक  
मनुष्यमें ये पूर्वोक्त आश्रय ही लेते  
शरीर और मनके बहुतसे रोगोंका मूलभी  
वही है ॥ ४२ ॥

प्रज्ञापराधाद्ध्यहितानर्थान्पञ्च  
निपेवते । सन्धारयति वेगांश्च से  
वते साहसानि च ॥ ४३ ॥

प्रज्ञा ( बुद्धि ) के अपराधसे पांच  
अहित अर्थोंका सेवन मनुष्य करता है,  
वेगोंका धारण करता है साहसोंका सेवन  
करता है ॥ ४३ ॥

तदा त्वसुखसंज्ञे पुभावप्वज्ञोऽनुर  
ज्यते । रज्यते न तु विज्ञाता विज्ञा  
ने ह्यमलीकृते ॥ ४४ ॥

और तत्काल सुख नामके 'पदार्थोंमें  
मूर्ख मनुष्य प्रीति करता है और निर्मल  
विज्ञानके होनेसे ज्ञाता मनुष्य उनमें  
प्रीतिकी नहीं करता ॥ ४४ ॥

न रोगान्नाप्यविज्ञानादाहारमुपयो  
जयेत् । परीक्ष्य हितमश्नीयाद्दे  
हो ह्याहारसम्भवः ॥ ४५ ॥

और रोगसे वा अविज्ञानसे आहारका  
उपयोग ( भक्षण ) न करे, परीक्षा करके  
हित भोजन करे क्योंकि देह आहारसे  
उत्पन्न है ॥ ४५ ॥

आहारस्य विधावष्टौ विशेषा हेतुसं

ज्ञकाः । शुभाशुभसमुत्पत्तौ तान्प  
रीक्ष्योपयोजयेत् ॥ ४६ ॥

आहारकी उत्पत्तिमें जो हेतु संज्ञक  
आठ विशेषहैं शुभ अशुभकी उत्पत्तिमें  
उनकी परीक्षा करके उपयोग करै ॥ ४६ ॥

परिहार्याण्यपथ्यानि सदा परिहर  
न्नरः । भवत्यनृणतां प्राप्तः साधूना  
मिह पण्डितः ॥ ४७ ॥

और अपथ्योंको त्याग दे अपथ्योंको  
सदैव त्यागता हुआ मनुष्य अनृणी  
होकर साधुओंका पंडित होता है ॥ ४७ ॥

यत्तुरोगसमुत्थानमशक्यमिह  
केनचित् । परिहर्तुं न तत् प्राप्य  
शोचितव्यं मनीषिणा ॥ ४८ ॥

और जो रोगकी उत्पत्ति किसी प्रकार  
निवृत्ति करनेको अशक्य है उसको प्राप्त  
होकर बुद्धिमान् मनुष्य शोच न करै ४८ ॥

तत्र श्लोकाः ।

उसमें ये श्लोक हैं कि—

आहारप्रभवो यस्तुरोगाश्चाहारस  
म्भवाः । हिताहितविशेषाश्च वि  
शेषः सुखदुःखयोः ॥ ४९ ॥

आहारसे उत्पन्न जंतु हैं रोगभी आहा-  
रसे उत्पन्न हैं, हित अहितके विशेष, सुख  
दुःखके विशेष ॥ ४९ ॥

सहत्वे चासहत्वे च दुःखानां देहस  
त्त्वयोः । विशेषो रोगसंघाश्च धा  
तुजाये पृथक् पृथक् ॥ ५० ॥

दुःखोंके सहने, देह और सत्वका  
विशेष, रोगोंके संघ जो पृथक् २ धातु-  
ओंमें होते हैं ॥ ५० ॥

तेषाञ्चैव प्रशमनं कोष्ठाच्छाखा उ  
पेत्य च । दोषायथा प्रकुप्यन्ति शा  
खाभ्यः कोष्ठमेत्य च ॥ ५१ ॥

और उनकी शांति कोष्ठमें से शाखामें  
अकार और शाखाओंसे कोष्ठमें आकर  
दोष जैसे कुपित होते हैं ॥ ५१ ॥

प्राज्ञासयोर्विशेषश्च स्वस्थानुरहि  
तश्च यत् । विविधा शितपीतीये  
तत्सर्वं सम्प्रकाशितम् ॥ ५२ ॥

इति अग्निवृंशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते सूत्र  
स्थाने अन्नपानचतुष्के विविधा शितपीती  
यो नाम अष्टाविंशोऽध्यायः समाप्तः ।

प्राज्ञ और अज्ञका विशेष स्वस्थ  
और आतुरका जो हित है वह सब विवि-  
धा शितपीतीय अध्यायमें भली प्रकार  
प्रकाशित किया ॥ ५२ ॥

इत्यन्नपानचतुष्के विविधा शितपीतीयोऽध्यायः समाप्तः २८  
समाप्तं अन्नपानचतुष्कम् ।

एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथातो दशप्राणायतनीयमध्यायं  
व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माह भगवान् आत्रेयः ।

इसके अनंतर दश प्राणायतनीय  
अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

ऐसे भगवान् आत्रेयने कहा है—

दशैवायतनान्याहुःप्राणायपुप्र  
तिष्ठिताः ॥ शंखोमर्मत्रयंकण्ठा  
रक्तशुक्रौजसीगुदम् ॥ १ ॥

जिनमें प्राण प्रतिष्ठित हैं वे दशही  
आयतन कहे हैं कि शंख तीनमर्म कंठ  
रक्त शुक्र ओज गुदा ॥ १ ॥

तानीन्द्रियाणिविज्ञानंचेतनाहेतु  
मामयम् ॥ जानीतेयःसविद्वान्  
वैप्राणाभिसरउच्यतेइति ॥ २ ॥

उनको और इंद्रियोंको विज्ञान चेतना  
हेतु रोगको जो जानताहै वह विद्वान्  
प्राणाभिसर कहाताहै ॥ २ ॥ इति—

द्विविधास्तुखलुभिपजोभवन्ति  
अग्निवेश ! प्राणानामेकेऽभिसरा  
हन्तारोरोगाणां, रोगाणामेकेऽभि  
सराहन्तारः प्राणानामिति ॥ ३ ॥

हेअग्निवेश दां! प्रकारके भिपज होते  
हैं एक तो प्राणोंके अभिसर और रोगोंके  
हंता और एक रोगोंके अभिसर और  
प्राणियोंके हंता होते हैं ॥ ३ ॥

एवंवादिनंभगवन्तमात्रेयमाग्निवे  
शउवाचभगवन् ! तेकथमस्माभि  
र्वेदितव्याभवेयुरिति ॥ ४ ॥

इस प्रकार कहते हुये भगवान् आत्रेय  
को अग्निवेश बोले कि हे भगवन्! उनको  
हम किस प्रकार जान सकतेहैं ॥ ४ ॥

भगवानुवाचयइमेकुलीनाःपथ्य  
वदातश्रुताःपरिदृष्टकर्माणोदक्षाः  
शुचयोजितहस्ताजितात्मानःस  
र्वोपकरणवन्तःसर्वेन्द्रियोपपन्नाः  
प्रकृतिज्ञाःप्रतिपत्तिज्ञास्तेप्राणि  
नामभिसराहन्तारोरोगाणांतथा  
विधाहिकेवलेशरीरज्ञानेशरीरा  
भिनिवृत्तिज्ञानेप्रकृतिविकारज्ञा  
नेचनिःसंशयाःसुखसाध्यकच्छू  
साध्ययाप्यप्रत्याख्येयानाञ्चरो  
गाणांसमुत्थानपूर्वरूपल्लिङ्गवेद  
नोपशयविशेषविज्ञानेव्यपगतस  
न्देहाःत्रिविधस्यायुर्वेदसूत्रस्यस  
संग्रहव्याकरणस्यसत्रिविधौषध  
ग्रामस्यप्रवक्तारः ॥ ५ ॥

भगवान् बोले कि, जो इन वैद्योंमें  
कुलीनहैं जिनका श्रुतभी शुद्धहै कर्मों  
के द्रष्टाहैं चतुर, शुद्ध, हस्त जिनका  
जितहै आत्मा जितहै संपूर्ण सामग्रीसे  
युक्तहैं संपूर्ण इंद्रियों सहित हैं, प्रकृतिके  
ज्ञाता प्रतिपत्ति ( सिद्धि ) कोभी जानते  
हैं ऐसे वैद्य प्राणियोंके अभिसर ( रक्षक )  
और रोगोंके हंता होतेहैं क्योंकि उस  
प्रकारके वैद्य केवल शरीरके ज्ञानमें  
शरीरकी अभि निवृत्ति ( आनंद ) के  
ज्ञानमें प्रकृतिके विकार ज्ञानमें संदेह  
रहित होतेहैं और सुखसे साध्य कष्ट

साध्य याप्य प्रत्याख्यान ( नहीं ) करने योग्य जो रोग हैं उनका उठना पूर्वरूप लिंग वेदना ( पीडा ) उपशय इनके विशेष ज्ञानमें संदेह रहित होते हैं, तीन प्रकारका जो आयुर्वेदका सूत्र है संग्रह व्याकरण सहित उसके और तीन प्रकारके औषधोंके समूहके वक्ता होते हैं ॥ ५ ॥

पञ्चत्रिंशत्तन्मूलफलानांचतुर्णां  
महास्नेहानांपञ्चानांलवणानामष्टा  
नाञ्चसूत्राणामष्टानाञ्चमूत्राणाम  
ष्टानाञ्चक्षीराणांक्षीरत्वक्वृक्षाणा  
ञ्चषण्णांशिरोविरोचनादेश्वपञ्चक  
र्माश्रयस्योषधगणस्याष्टाविंशतेश्व  
यवागूनांद्वात्रिंशत्तन्मूलफलानां  
षण्णांविरेचनशतानांपञ्चानाञ्चक  
षायशतानामितिस्वस्थवृत्तौचभो  
जनपाननियमस्थानचङ्क्रमणश  
य्यासन-मात्रा-द्रव्याञ्जनधूमनाव  
नाभ्यञ्जन-परिमार्जनवेगविधारणा  
विधारण-व्यायामसात्म्येन्द्रियप  
रीक्षोपक्रमसद्वृत्तकुशलाः ॥ ६ ॥

और पैंतीस मूल फलोंके चार महान् स्नेहोंके पांचलवणोंके आठ सूत्रोंके आठ मूत्रोंके आठ दूधोंके और क्षीर त्वचाके वृक्षोंके छः शिरके विरेचनोंके और पंच कर्मका आश्रय जो औषध गण उसके अट्टाईस यवागुओंके बाईस चूर्णप्रदे-

होंके छः सौविरेचनोंके पांचसौ कषायोंके और स्वस्थ अवस्थामें भोजन पान नियम स्थिति चंक्रमण ( गमन ) शय्या आसन मात्रा द्रव्य अंजन धूम नावन संघर्षना अभ्यञ्जन परिमार्जन वेगका विधारण, अविधारण व्यायाम सात्म्य इंद्रियोंकी परीक्षा उपक्रम सद्वृत्त इनमें कुशल होते हैं ॥ ६ ॥

चतुष्पादोपगृहीतेचभेषजेषोडश  
कलेसविनिश्चयेसत्रिपर्य्येषणेस  
वातकलाकलज्ञानेव्यपगतसन्दे  
हाः ॥ चतुर्विधस्यचस्नेहस्यचतु  
र्विंशत्यपनयनस्यउपकल्पनीयो  
क्तचतुःषष्टिपर्य्यन्तस्यव्यवस्था  
पयितारोबहुविधविधान-युक्ता  
नाञ्चस्नेहस्वेधवम्यविरेच्यौषधो  
पचाराणांकुशलाः । शिरोरोगा  
देश्वदोषांशविकल्पजस्यव्याधि  
संग्रहस्यसंक्षयपिडकविद्रधेःत्रया  
णाञ्चशोफानांबहुविधशोफानुब  
न्धानामष्टाचत्वारिंशत्तन्मूलफलानां  
कारिणांचत्वारिंशदधिकस्यच  
नानात्मजस्यव्याधिशतस्य । त  
थाविगर्हितातिस्थूलातिकृशानां  
सहेतुलक्षणोपक्रमाणांस्वप्नस्यच  
हिताहितस्यास्वप्नातिस्वप्नस्यच  
सहेतूपक्रमस्यषण्णाञ्चलंघनादी

नामुपक्रमानां सन्तर्पणापनर्पण  
जानां रोगाणां स्वरूपप्रशमनानां  
शोणितजानां च व्याधीनां मदमृ  
च्छासंन्यासानां च सकारणरु  
पापधानां कुशलाः । कुशलाश्चा  
हारविधिविनिश्चयस्य प्रकृत्या  
हिततमानामाहारविकाराणाम  
ग्रहसंग्रहस्यासवानां च चतुरशी  
तेः द्रव्यगुणविनिश्चयस्य रसा  
नुरससंश्रयस्य सविकल्पकवैरो  
धिकस्य द्वादशवर्गाश्रयस्य चान्न  
पानस्य सगुणप्रभावस्य सानुपानगु  
णस्य विविधस्यान्नसंग्रहस्य आहा  
रगतेश्च हिताहितोपयोगविशेषा  
त्मकस्य च शुभाशुभविशेषस्य धा  
त्वाश्रयाणां च रोगाणामौषधसंग्र  
हाणां च दशानां च प्राणायतनानां  
यश्च वक्ष्याम्यर्थं दशमहामूलीयेति  
शतमाध्यायेत च चतुस्त्रस्य त  
न्त्रोद्देशलक्षणस्य तन्त्रस्य च ग्रहण  
धारणविज्ञानप्रयोगकर्मकार्यका  
लकर्तृकरणकुशलाः ॥ ७ ॥

चारपादका जो भेषज, सोलह  
कलाकाहै उसके विनिश्चयमें त्रिपर्येषणमें  
वातकलाकलके ज्ञानमें संदेहसे हीन

होते हैं और चार प्रकारके स्नेहके चौबीस  
२४ उपनयके उपकल्पनीयमें कहे  
चौंसठ पर्यंतोंके व्यवस्थापक होते हैं और  
अनेक प्रकारकी विधिसे युक्त जो स्नेह  
स्वेद्य वमन विरेचन योग्य और औषधि  
के उपचार इनमें कुशल होते हैं और  
शिरोरोग आदि जो दोषके अंशोंके  
विकल्पसे उत्पन्न हैं उसके व्याधिके संग्र-  
हके, क्षय पिडक विद्रधि इनके तीन  
शोकोके अनेक प्रकारके जो शोफके  
अनुबंध हैं उनके और अड़तालीस रोगों  
के अधिकारियोंके चवालीस और अधिक  
अनेक प्रकारसे उत्पन्न सौ व्याधियोंके  
तिसी प्रकार हेतु लक्षण उपक्रम सहित  
निर्दिष्ट अतिस्थूल और अति कृशोंके  
स्वप्नके हेतु उपक्रम सहित हित अहित  
स्वप्न अति स्वप्नके और छः लंघन  
आदि उपक्रमोंके और संतर्पण अपतर्प-  
णसे उत्पन्न रोगोंके स्वरूप प्रशमनोंके  
शोणितसे उत्पन्न व्याधियोंके और कारण  
रूप औषधों सहित मद मूर्च्छा आय  
संन्यासोंके ज्ञानमें कुशल हैं और आहार  
विधिके निश्चयमें कुशल हैं और प्रकृतिसे  
अत्यंत हित जो आहार विहार हैं उनके  
मुख्य संग्रह और आसव जो चौरासी हैं  
और द्रव्य गुणका निश्चय जो रस और  
अनुरसका आश्रय है और विकल्प विरोध-  
सहित हैं और द्वादश वर्ग जिसके हैं  
ऐसे अन्नपानके गुण प्रभाव सहित  
अनुपान गुणके विविध प्रकारकी  
अन्न संग्रहके आहार गतिके और अहित

के उपयोग विशेष रूप शुभ अशुभके विशेषके धातुके आश्रय रोगोंके औष-  
धोंके संग्रहोंके, दशा प्राण आयतनोंके  
और जो आगे तीसके अध्यायमें दश  
महा मूलीय कहेंगे उसमें संपूर्ण तंत्रोप-  
देश लक्षणके तंत्रके ग्रहण धारण विज्ञान  
प्रयोग कर्म कार्य काल कर्ता करण, इन  
सबमें कुशलहैं ॥ ७ ॥

कुशलाश्चस्मृतिमतिशास्त्रयुक्ति  
ज्ञानस्यात्मनःशीलगुणैरविसंवाद  
नेनसम्पादनेनसर्वप्राणिषुचचेतसो  
मैत्रस्यमातृपितृभ्रातृबन्धुवदेवं  
युक्ताभवन्तिअग्निवेश ! प्राणाना  
मभिसराहन्तारोरोगाणामिति ८ ॥

और स्मृति बुद्धि शास्त्र युक्ति ज्ञान  
रूप आत्माके शील गुणोंसे अविसंवादसे  
संपादन करके सब प्राणियोंमें चित्तकी  
मित्रतासे माता पिता भ्राता बंधुके  
समान कुशल और युक्त होतेहैं, हे अग्नि  
वेश वे वैद्य प्राणोंके अभिसर और रोगों  
के हंता होते हैं ॥ ८ ॥

अतोविपरीतारोगाणामभिसराह  
न्तारःप्राणिनामिति । भिषकूछ  
अप्रतिच्छन्नाःकण्टकभूतालोक  
स्यप्रतिरूपिकसहधर्माणोराज्ञां  
प्रसादाच्चरन्तिराष्ट्राणि । तेषामि  
दंविशेषविज्ञानमत्यर्थवैद्यवेशेन  
श्लाघमानाविशिखान्तरमनुचर

न्तिकर्मलोभात्।श्रुत्वाचकस्य  
चिदातुर्ग्यमभितःपरिपतन्तिसंश्र  
वणेचास्यात्मनोवैद्यगुणानुच्चैर्वद  
न्तियच्चास्यवैद्यःप्रतिकर्मकरोति  
तस्यचदोषान्मुहुर्मुहुर्दुदाहरन्ति  
आतुरमित्राणिचप्रहर्षणोपजापो  
पसेवाभिरिच्छन्तिआत्मीकर्तुम  
त्पेच्छताश्चात्मनःख्यापयन्तिक  
र्मचासाद्यमुहुर्मुहुर्वलोकयन्ति  
दाक्ष्येणाज्ञानमात्मनःछादयितु  
कामाव्याधिश्चापवर्त्तयितुमशक्नु  
वन्तोव्याधितमेवानुपकरणमप  
चारिकमनात्मवन्तमुद्दिश्यन्तिअ  
न्तर्गतश्चाभिसमीक्ष्यान्यमाश्रय  
न्तिदेशमपदेशमात्मनःकृत्वा ।  
प्राकृतजनसन्निपातेचात्मनःकौ  
शलमकुशलवद्वर्णयन्तिअधीरव  
च्चैर्ग्यमपवदन्तिधीराणाम् । वि  
द्वज्जनसन्निपातश्चाभिसमीक्ष्यप्र  
तिभयमिवकान्तारमध्वगाःपरि  
हरन्तिदूरात् ॥ ९ ॥

इनसे विपरीत रोगोंके अभिसर और  
प्राणियोंके हंता होते हैं वैद्यके छद्म(कपट)  
से युक्त, कंटक धूर्त लोकके प्रतिरूपसे  
सह धर्मी, राजाओंकी दयासे देशोंमें  
विचरतेहैं, उनको यह विशेष विज्ञान

अत्यन्तं हे वैद्यके वेशसे श्लाघा करते हुये  
अन्य २. शिखाओंपर कर्मके लोभसे विच-  
रते हैं. किसीकी आतुरताको सुनकर  
चारों तरफ फिरते हैं और सुनकर इस  
अपनी आत्माके वैद्यके गुणोंको ऊंचे  
स्तरसे कहते हैं और वैद्य जो इसका  
प्रति कर्म ( विरुद्ध ) करताहै उसके  
दोषोंको वारंवार कहते हैं और आतुरके  
मित्रोंको प्रहर्षण उपजाप ( भेद ) सेवा  
ओं अपना करनेकी इच्छा करते हैं  
और अपनी अल्प इच्छाको प्रकट करते  
हैं और जा२ कर कर्मको वारंवार देखतेहैं  
और चतुरतासे अपने अज्ञानके छिपाने-  
की कामनासे व्याधिके दूर करनेमें  
असमर्थ हुये रोगीकोही सामग्रीहीन अप-  
चारी अनात्मा बताते हैं और अंतको  
प्राप्त देखकर अन्यका आश्रय लेते हैं  
अपने देशको अन्य देश करके और  
प्राकृत जनोके समूहमें अपनी कुशल-  
ताको अकुशलके समान वर्णन करते हैं  
अधीरके समान धीरताको धीरोंमें कहते  
हैं, विद्वान् जनोके सन्निपात ( समूह )  
को देखकर अत्यन्त भयसे इस प्रकार  
दूरसे त्यागते हैं जैसे वनको मार्गके  
गामी शीघ्र त्याग देते हैं ॥ ९ ॥

यश्चैषां कश्चित्सूत्रावयव उपयुक्त  
स्तंप्रकृते प्रकृतान्तरे वा सततमुदा  
हरन्ति न चानुयोगमिच्छन्ति अनु-  
योक्तुं वा मृत्योरिव चानुयोगादुद्वि-  
जन्ते । न चैषामाचार्यः शिष्यो

वासत्रस्य चारी वैवादिको वा कश्चि  
त्प्रज्ञायते इति ॥ १० ॥

और जो कोई सूत्रका अंग इनको  
उपयुक्त ( आता ) होताहै उस अप्रकृत-  
को वा अन्य प्रकरणमें निरंतर पढ़ते हैं  
अनुयोग और अनुपयोगकी इच्छा  
नहीं करते मृत्युके समान अनुयोगसे  
कैपते हैं, और इनका कोई आचार्य  
शिष्य सहाध्यायी वा विवादी नहीं जाना  
जाताहै ॥ १० ॥ इति—

भिषक्कुष्ठप्रविश्यैव व्याधितांस्त  
र्कयन्ति ये । वसंतमिव संश्रित्य व  
नेशाकुन्तिको द्विजान् । श्रुतदृष्ट  
क्रियाकालमात्रास्थानबहिष्कृ-  
ताः । वर्जनीयाहिते मृत्योश्चर-  
न्त्यनुचरा भुवि ॥ ११ ॥

इसमें ये श्लोकहैं कि वैद्यके छलमें  
प्रवेश करके जो रोगियोंको ऐसे तर्कना  
करते हैं, जैसे वसंतमें जाकर वनमें पक्षी  
घाती पक्षियोंको तर्कना करताहै और  
श्रुत दृष्ट क्रियाकाल मात्रा इनके ज्ञानसे  
रहित होते हैं, ऐसे जो मृत्युके अनुचर  
भूमिमें विचरते हैं वे वैद्य त्यागके  
योग्य हैं ॥ ११ ॥

वृत्तिहेतोर्भिषज्ज्ञानपूर्णान्मूर्खवि-  
शारदान् । वर्जयेदातुरो विद्वान्  
सर्पास्तेपीति मारुताः ॥ १२ ॥

जीविकाके हेतु जो भिषक्के मानसे



पूर्ण मूर्ख विशारदहैं उनको बुद्धिमान् रोगी वर्जदे क्योंकि वे पीई है पवन जिन्हों ने ऐसे सर्प होतेहैं ॥ १२ ॥

येतुशास्त्रविदोदक्षाःशुचयःकर्म कोविदाः । जितहस्ताजितात्मा नःतेभ्योनित्यकृतंनमः ॥ १३ ॥

और जो शास्त्रके ज्ञाता चतुर शुद्ध कर्ममें कोविद ( ज्ञानी ) हैं और जित हस्त और जितात्मा हैं उनको नित्य नमस्कार करै ॥ १३ ॥ इति—

तत्र श्लोकः ।

दशप्राणायतनिकेश्लोकस्थाना र्थसंग्रहः । द्विविधाभिषजश्चोक्ताः प्राणस्यायतनानिच ॥ १४ ॥

इति दशप्राणायतनीयोनामोत्तमोऽध्यायः समाप्तः ।

उसमें यह श्लोकहै कि दशप्राणायतनिक अध्यायमें श्लोकोंके स्थानमें अर्थ संग्रहहै दो प्रकारके वैद्य और प्राणके आयतन कहेहैं ॥ १४ ॥

इति दश प्राणायतनीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २९ ॥

त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातोऽर्थदशमूलीयमध्यायं

व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

इसके अनन्तर अर्थमें दशमूलीय अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

यह भगवान् आत्रेय कहते हैं—

अर्थदशमहामूलाःसमासक्तमहा फलाः । महच्चार्थश्चहृदयंपर्यायै रुच्यतेबुधैः ॥ १ ॥

अर्थमें दश महामूल महाफलके हैं और महान् अर्थको हृदयके पर्याय शब्दोंसे बुद्धिमान् मनुष्य वर्णन करते हैं १

षडङ्गमङ्गविज्ञानमिन्द्रियाण्यर्थ पञ्चकम् । आत्माचसगुणश्चेतः चिन्त्यश्चहृदिसंश्रितम् ॥ २ ॥

अंगके विज्ञानके छः अंगहैं इंद्रिय अर्थ पंचक आत्मा और सगुण चेत और चिंतनके योग्य ये हृदयमें स्थित हैं ॥ २ ॥

प्रतिष्ठार्थहिभावानामेषांहृदयमि प्यते । गोपानसीनामागारकर्णिकेवार्थचिन्तकैः ॥ ३ ॥

भावोंकी प्रतिष्ठाके लिये इनकाही हृदय नाम ऐसे कहाहै जैसे गोपानसी-योंका स्थान आगारकी कर्णिका ( चौक ) अर्थके चिंतकोंने कही है ॥ ३ ॥

तस्योपघातान्मूर्च्छायाम्भेदान्मरणमृच्छति । यद्धितस्पर्शविज्ञानंधारितत्तत्रसंश्रितम् ॥ ४ ॥

उसके उपघातसे मूर्च्छा होतीहै और जिसके भेदनसे यह मरणको प्राप्त होता है, और जो स्पर्शका विज्ञानहै वहभी धारणकारी हृदयमें आश्रित है ॥ ४ ॥

तत्परस्यौजसःस्थानंतत्रचैतन्य

संग्रहः ॥ हृदयमहदर्थश्चतस्मादु  
चंचिकित्सकः ॥ ५ ॥

उससे परे ओजका स्थानहै और वहां  
ही चैतन्यका संग्रहहै, तिससे चिकित्सक  
हृदय और महान् अर्थ इसको कहते  
हैं ॥ ५ ॥

तन्मूलैर्नमहतामहामूलामताद  
श ॥ ओजोवहाःशरीरेवाविध  
न्यन्तेसमन्ततः ॥ ६ ॥

तिस महान् मूलसे दश महामूल  
माने हैं, तेजके बाहिर वा शरीरमें चारों  
धमन ( प्रकाश ) करते हैं ॥ ६ ॥

येनौजसावर्त्तयन्तिप्रीणिताःसर्व  
देहिनः ॥ यद्वतेसर्वभूतानांजीवि  
तंनावतिष्ठते ॥ ७ ॥

जिस ओजसे वृत्त हुये संपूर्ण देही  
वर्तते हैं और जिसके बिना संपूर्ण भू-  
तोंका जीव नहीं टिकताहै ॥ ७ ॥

यत्सारमादौगर्भस्ययोऽसौगर्भर  
साद्रसः ॥ संवर्द्धमानंहृदयंसमा  
विशतियत्पुरा ॥ ८ ॥

और जो प्रथम गर्भका सारहै और  
जो गर्भके रससे रसरूपहै, और जो  
वर्तमान हृदयमें पहिले प्रविष्ट होताहै ८ ॥

यस्यनाशान्ननाशोऽस्तिधारिय  
द्धृदयाश्रितम् ॥ यःशरीररसःस्ने  
हःप्राणायत्रप्रतिष्ठिताः ॥ ९ ॥

जिसके नाशसे नाश होताहै जो  
हृदयमें स्थित होकर देहका धारकहै  
और जो शरीरका रस स्नेहहै जिसमें  
प्राण टिकताहै ॥ ९ ॥

तत्फलाविविधावाताःफलन्ती  
तिमहाफलाः ॥ ध्यानाद्धमन्यः

स्ववणात्स्रोतांसिसरणाच्छिराः १०

उसीके फलसे महाफलवाली विविध  
वात फलतीहैं और धमन कीहुई धमनी  
स्ववणसे स्रोत, सरणसे शिरा फलती  
हैं ॥ १० ॥

तन्महत्तामहामूलास्तच्चौजःपरि  
रक्षता ॥ परिहार्याविशेषेणम  
नसोदुःखहेतवः ॥ ११ ॥

वह महान् है वे महाफलहै वह ओज  
सर्वतःरक्षकहै, विशेषकर मनमेंसे दुःखके  
हेतु त्यागने योग्यहैं ॥ ११ ॥

हृदयंयत्स्याद्यदौजस्यंस्रोतसांय  
त्प्रसादनम् ॥ तत्तत्सेव्यंप्रयत्ने  
नप्रशमोज्ञानमेवच ॥ १२ ॥

जो हृदयको ओजको प्रिय हो और  
स्रोतोंको जो प्रसन्न करे, उस शांति  
और ज्ञानका प्रयत्नसे सेवन करे इति १२

अथखलुएकंप्राणवर्द्धनानामुत्त  
कृष्टतममेकंबलवर्द्धनानामेकंबृंह  
णानामेकंनन्दनानामेकंहर्षणा  
नामेकमयनानामिति । तत्राहिं  
साप्राणिनांप्राणवर्द्धनानामुत्तक

ष्टतमम् । वीर्यबलवर्द्धनानाम् ।  
वृष्यबृंहणानाम् । इन्द्रियजयो  
नन्दनानाम् । तत्त्वावबोधोर्ष  
णानाम् । ब्रह्मचर्यमयनानामि  
त्यायुर्वेदविदो मन्यन्ते ॥ १३ ॥

और प्राणके वर्द्धकोंमें एक ( मुख्य )  
उत्तम है बल वर्द्धकोंमें एक, वृंहणोंमें  
एक, नन्दनोंमें एक हर्षणोंमें एक अय-  
नोंमें एक है और उसमें प्राणियोंकी  
अहिंसा प्राण वर्द्धकोंमें अत्यन्त उत्तम है  
बल वर्द्धकोंमें वीर्य है, वृंहणोंमें वृष्य  
आनन्दके दाताओंमें इन्द्रियोंका जय और  
हर्षणोंमें तत्त्वका ज्ञान अयनोंमें ब्रह्मचर्य  
उत्तम है यह आयुर्वेदके ज्ञाता मानते हैं १३

तत्रायुर्वेदविदस्तन्त्रस्थानाध्याय  
प्रश्नानां पृथक्तेन वाक्यशो वाक्यार्थ-  
शोऽर्थावयवशश्च प्रवक्तारो म-  
न्तव्याः ॥ १४ ॥

उसमें आयुर्वेदके ज्ञाता वे मानने जो  
तंत्र स्थान अध्यायके प्रश्नोंके पृथक् २  
वाक्य २ और वाक्यार्थ २ के, अर्थके  
अवयवोंके, अनुसार कथनके कर्ता हों १४  
अत्राह कथं तन्त्रादीनि वाक्यशो  
वाक्यार्थशोऽवयवशश्चेति उक्ता  
निभवन्ति, अत्रोच्यते तन्त्रमार्प-  
कार्तस्तेन यथास्थानमुच्यमानं वा-  
क्यशो भवत्युक्तम् । बुद्ध्या सम्य-  
गनुप्रविश्यार्थतत्त्वं वाग्भिर्वासस-

मास-प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनि-  
गमनयुक्ताभिः त्रिविधशिष्यबुद्धि-  
गम्याभिरुच्यमानं वाक्यार्थशो भ-  
वत्युक्तम् । तन्त्रनियतानामर्थदु-  
र्गाणां पुनर्भावनैरुक्तमर्थावयवशो  
भवत्युक्तम् । तत्र चेत्प्रष्टारः स्युः  
चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानां  
कंवेदमुपदिशन्ति आयुर्वेदविदः ।  
किमायुः कस्मादायुर्वेदः किञ्चाय-  
मायुर्वेदः शाश्वतोऽशाश्वत इति ।  
कानि चास्या ज्ञानिकैश्चायमध्ये  
तव्यः किमर्थञ्चेति ॥ १५ ॥

इसमें शिष्य बोले कि तंत्र आदिको  
वाक्य वाक्यार्थ अवयवके अनुसार कैसे  
कह सकते हैं, इसमें कहते हैं कि ऋषि-  
योंका तंत्र संपूर्णतासे आम्नायके  
अनुसार कहा हुआ वाक्य २ से भी  
कहा हुआ होता है, बुद्धिसे भली  
प्रकार अर्थके तत्त्वमें प्रवेशकर ऐसी  
वाणियोंसे कहा हुआ जो वाणी, व्यास,  
( विस्तार ) संक्षेप प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण  
उपनय निगमनसे युक्त हों और तीन  
प्रकारकी जो शिष्यकी बुद्धि उसके  
जानने योग्य हों, वाक्यार्थसे भी उक्त  
होता है और तंत्रमें नियत जो दुर्गम अर्थ  
उनके विभावनों ( विचारों ) से कहा हुआ  
अवयवोंसे भी उक्त होता है उसमें यदि  
शिष्य यह प्रश्न करे कि ऋक् यजुः साम

अथर्वण नामक चारों वेदोंमें आयुर्वेदको कौनसा वेद आयुर्वेदके ज्ञाता कहते हैं और आयुः क्या है और किससे आयुर्वेद है और वह आयुर्वेद क्या शाश्वत ( सनातन ) है वा अशाश्वत है इसके अंग कौन हैं यह किनको पढ़ने योग्य है और किस लिये पढ़ना ॥ १५ ॥

तत्रक्षिपजापृष्टेनैवञ्चतुर्णामृक्सा  
मयजुरथर्ववेदानांआत्मनोऽथर्व  
वेदभक्तिरादेश्यावेदोह्याथर्वणः  
स्वस्त्ययनबलिमङ्गलहोमनियम  
प्रायश्चित्तोपवासमन्त्रादिपरिग्र  
हाच्चिकित्सांप्राह । चिकित्साचा  
युपोहितायोपदिश्यतेवेदञ्चोपदि  
श्यआयुर्वाच्यम् । तत्रआयुश्चेत  
नाप्रवृत्तिर्जीवितमनुबन्धोधारिचे  
त्येकोऽर्थःतत्रआयुर्वेदयतीत्यायु  
र्वेदःकथमित्युच्यतेस्वलक्षणतः  
सुखासुखतोहिताहिततःप्रमाणा  
प्रमाणतश्च । यतश्चायुष्यानायु  
ष्याणिचद्रव्यगुणकर्माणिवेदय  
त्यतोऽप्यायुर्वेदः । तत्रआयुष्या  
णिअनायुष्याणिचद्रव्यगुणकर्मा  
णिकेवलेनोपदेक्ष्यन्ते ॥ १६ ॥

इसप्रकार वैद्यके पूछनेपर कहै कि ऋक् यजुः साम अथर्व वेदोंमें अथर्व वेद आत्माइसकी भक्ति ( भाग ) कही है

क्योंकि अथर्वण वेद स्वास्तिका अयन ( स्थान ) बलि मंगल होम नियम प्रायश्चित्त उपवास मंत्र आदिक संग्रहसे चिकित्साको कहता है और चिकित्सा अवस्थाके हितार्थ उपदेश कीजाती है वेदका उपदेश करके यह वक्तव्य है, कि उसमें आयुः चेतनाकी प्रवृत्ति है जीवित अनुबंध और धारी है यह एकही अर्थ है, तब ( तिसमें ) आयुको जो वेदयति ( जनावै ) उसे आयुर्वेद कहते हैं, कैसे यह कोई कहै तो कहते हैं अपने लक्षणोंसे सुख असुखसे हित अहितसे प्रमाण अप्रमाणसे और जिससे आयुष्य अनायुष्यरूप द्रव्य गुण कर्म जो होते हैं उनको जो जनावै उसे आयुर्वेद कहते हैं, उसमें आयुष्य और अनायुष्यरूप द्रव्य गुण कर्मोंका केवल तंत्रसे उपदेश करेंगे १६

तन्त्रेणतंत्रायुरुक्तंस्वलक्षणतोय  
थावदिहैवतत्रशारीरमानसाभ्यां  
रोगाभ्यामनभिद्रुतस्यविशेषेणयौ  
वनवतः समर्थानुगतबलवीर्यपौ  
रुपपराक्रमस्यज्ञानविज्ञानेन्द्रिये  
न्द्रियार्थबलसमुदायेवर्तमानस्य  
परमर्द्धिरुचिरविविधोपभोगस्यस  
मृद्धसर्वारम्भस्ययथेष्टविचारणा  
त्सुखमायुरुच्यतेअसुखमतोविप  
र्ययेण ॥ १७ ॥

तिसमें यह अयुक्त है कि स्वलक्षणसे आयुर्वेद है, यथार्थ रीतिसे यहांही उसमें

जो शरीर और मनके रोगोंसे पीड़ित नहीं, विशेषकर यौवनवानहै, बल वीर्य पुरुषार्थ पराक्रम ये जिसमें भलीप्रकार वर्तमानहैं, ज्ञान विज्ञान इंद्रिय इंद्रियार्थ बल इनके समुदायमें वर्तमानहैं, परम ऋद्धि, रुचिर अनेक प्रकारके भोग इनसे जो युक्तहै, जिसके संपूर्ण आरंभ भली-प्रकार बढे हुयेहैं ऐसे मनुष्यकी यथेष्ट विचारसे आयु सुखरूप कहातीहै इससे विपरीत असुख होतीहै ॥ १७ ॥

हितैषिणः पुनर्भूतानां परस्वात् उप-  
रतस्य सत्यवादिनः शमपरस्य परी-  
क्ष्यकारिणोऽप्रमत्तस्य त्रिवर्गपरस्प-  
रेणानुपहतमुपमेवमानस्य पूजार्हस-  
म्पूजकस्य ज्ञानविज्ञानोपशमशील-  
वृत्त्यद्धोपसेविनः सुनियतरागेभ्यः  
मदमानवेगस्य सततं विविधप्रदान-  
परस्य तपोज्ञानप्रशमनित्यस्य अ-  
ध्यात्मविदस्तत्परस्य लोकमिमञ्चा-  
मुञ्चावेक्ष्यमाणस्य स्मृतिमतिमतो  
हितमायुरुच्यते । अहितमतो  
विपर्ययेण ॥ १८ ॥

और जो हितैषी भूतोंका है पराये धनसे निवृत्तहै सत्यवादीहै शममें तत्पर है परीक्षासे कार्य कारीहै अप्रमत्तहै पर-  
मेश्वरके स्मरणसे निरंतर त्रिवर्गका सेवक है पूजाके योग्यका पूजक है ज्ञान विज्ञान उपशममें शील है वृद्धोंका सेवक है राग

रोष ईर्ष्या मद मान इनका वेग नियमित ( रोकना ) करता हो निरंतर विविध दानोंमें तत्पर हो तप, ज्ञान, शांति, इनको नित्य करता हो, अध्यात्मका ज्ञाताहै अध्यात्ममें तत्परहै इस लोककी और परलोककी अपेक्षा करताहो, स्मृतिमान् हो ऐसे मनुष्यकी आयु हित कहातीहै, इससे विपरीतकी आयु अहित कहातीहै ॥ १८

प्रमाणमायुषस्त्वर्थेन्द्रियमनोबु-  
द्धिचेष्टादीनां स्वेनाभिभूतस्य विकृ-  
तिलक्षणैरुपलभ्यते अनिमित्तैरि-  
दमस्मात्क्षणान्मुहूर्त्तादिवसात्त्रि-  
पञ्चदशसप्तदशद्वादशाहात्पक्षात्  
मासात्षण्मासात्संवत्सराद्वा स्वभा-  
वमापत्स्यते इति । तत्र स्वभावः प्र-  
वृत्तेरुपरमो मरणमनित्यतानिरोध-  
इत्येकोऽर्थः । इत्यायुषः प्रमाणम-  
तो विपरीतमप्रमाणम् ॥ १९ ॥

आयुका प्रमाण तो अर्थ इंद्रिय मन बुद्धि चेष्टा आदिके विकार लक्षण जो अनिमित्त हैं उनसे जाना जाताहै यह इस क्षणसे मुहूर्त्तसे दिनसे तीन पांच सात दश द्वादश दिनसे पक्षसे माससे छः माससे वा संवत्सरसे स्वभावको प्राप्त होजायगा उसमें स्वभाव प्रवृत्तिका उपरम मरण अनित्यता निरोध ये एकही अर्थके बोधकहैं यह आयुका प्रमाण है इससे विपरीत अप्रमाणहै ॥ १९ ॥

अग्निष्टाधिकारेदेहप्रकृतिलक्षणम  
धिकृत्यचोपदिष्टमायुषःप्रमाणमा  
युर्वेदः । प्रयोजनश्चास्यस्वस्थस्य  
स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्यविकारप्र  
शमनम् । सोऽयमायुर्वेदःशाश्वतो  
निर्दिश्यतेऽनादित्वात्स्वभावसं  
सिद्धस्वलक्षणत्वाद्भावस्वभावनि  
त्यत्वाच्च । नहिनाभूत्कदाचिदा  
युषःसन्तानोवृद्धिसन्तानोवाशा  
श्वतश्चायुषोवेदिताअनादिमच्चसु  
खदुःखंसद्रव्यहेतुलक्षणमपरापरयो  
गादिपचार्थसंग्रहोविभाव्यते । आ  
युर्वेदलक्षणमितियत्पुनःगुरुलघु  
शीतोष्णस्निग्धरूक्षादीनाञ्चद्वंद्वा  
नांसामान्यविशेषाभ्यांवृद्धिहासौ  
यथोक्तंगुरुभिरभ्यस्यमानैर्गुरुणा  
मुपचयोभवत्यपचयोलघूनामे  
वेमेवेतरेषामित्येषभावस्वभावोनि  
त्यः । स्वस्वलक्षणञ्चद्रव्याणांपृ  
थिव्यादीनांसन्तितुद्रव्याणिगुणा  
श्चनित्यानित्याः ॥ २० ॥

अरिष्ट अधिकारमें देहकी प्रकृतिलक्ष-  
णके अधिकारके विषय आयुर्वेदमें आयुके  
प्रमाणका उपदेश कियाहै इस आयुर्वेदका  
प्रयोजन स्वस्थकी स्वास्थ्यरक्षाहै और  
आतुरके विकारका प्रशमनहै सो यह

आयुर्वेद शाश्वत कहाताहै क्योंकि यह  
अनादिहै स्वभावसंसिद्ध स्वलक्षणहै  
भावोंके स्वभाव नित्यहैं, यह बात नहींहै  
कि कदाचित् आयुका संतान न हुआ हो,  
वा वृद्धिका संतान न हुआ हो और  
आयुका ज्ञाताभी शाश्वतहै और सुख  
दुःख और द्रव्य, हेतु, लक्षण अनादि हैं  
पर अपरके योगसे यह अर्थका संग्रह  
विचारा जाताहै कि आयुर्वेदका लक्षणहै,  
गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष आदि  
जो द्वंद्वहैं उनके सामान्य विशेषोंसे वृद्धि  
और न्हास होते हैं, सोई कहा है, गुरु अभ्या-  
सोंसे गुरुओंका उपचय और लघुओंका  
अपचय होताहै इसीप्रकार इतरोंका सम-  
झना यह भावका स्वभाव नित्यहै और  
पृथिवी आदि द्रव्योंका स्वलक्षणहै और  
द्रव्यहैं और गुण नित्य अनित्यहैं ॥ २० ॥

नहिआयुर्वेदस्याभूत्वोत्पत्तिरुप  
लभ्यते । अन्यत्रावबोधोपदेशा  
भ्यामेतद्वैद्वयमधिकृत्यउत्पत्तिमु  
पदिशन्त्येकेस्वाभाविकश्चास्यल  
क्षणमधिकृत्ययदुक्तमिहचाये  
अध्यायेयथाग्रेरौष्ण्यमपांद्रवत्वं  
भावस्वभावनित्यत्वमपिचास्य  
यथोक्तंगुरुभिरभ्यस्यमानैर्गुरुणा  
मुपचयोभवत्यपचयोलघूनामि  
त्येवमादि ॥ २१ ॥

और आयुर्वेदकी हो करके पुनः उत्पत्ति नहीं देखतेहैं अवबोध ( ज्ञान ) और उपदेश तो अवश्य होतेहैं, इनही दोनोंका अधिकार करके कोई उत्पत्तिकामी उपदेश करतेहैं स्वभाविक जो इसका लक्षणहै वह अकृतक ( नित्य ) है, जो यहां प्रथम अध्यायमें कहाहै कि जैसे अग्निकी उष्णता, जलोंका द्रवत्व और भावोंके स्वभावकी नित्यताहै, सोई कहाहै कि गुरु अभ्यासोंसे गुरुओंका उपचय और लघुओंका अपचय होताहै इत्यादि ॥ २१ ॥

तस्यायुर्वेदस्य अङ्गानि अष्टौ ।  
तद्यथा । कायचिकित्साशाला  
क्यंशल्यपहर्तृकविषगरवैरोधि  
कप्रशमनभूतविद्याकौमारभृत्यकं  
रसायनानिवाजीकरणमिति । स  
चाध्येतव्योब्राह्मणराजन्यवैश्यैः ।  
तत्रानुग्रहार्थप्राणिनांब्राह्मणैरात्म  
रक्षार्थराजन्यैर्वृत्त्यर्थवैश्यैःसामा  
न्यतोवाधर्मार्थकामप्रतिग्रहार्थस  
वैः । तत्रचयदध्यात्मविदांधर्मप  
थस्थानांधर्मप्रकाशानांवामातृ  
पितृभ्रातृबन्धुगुरुजनस्यवाविका  
रप्रशमनेप्रयत्नवान्भवति । यश्चा  
युर्वेदोक्तमध्यात्ममनुध्यायत्यवै  
त्यधीतेवासोऽप्यस्यपरोधर्मः २२

तिस आयुर्वेदके अष्ट अंगहैं, वे ऐसेहैं कि कायचिकित्सा, शालाक्य, शल्याप-  
हर्तृक, विष गरके विरोधका प्रशमन,  
भूतविद्या, कौमारप्रभृत्यक, रसायन,  
वाजीकरण, इति वह आयुर्वेद ब्राह्मण,  
क्षत्रिय, वैश्योंको पढ़ने योग्य है, उनमें  
प्राणियोंके अनुग्रहार्थ ब्राह्मण पढ़ें, रक्षाके  
लिये क्षत्रिय और जीविकाके लिये वैश्य  
पढ़ें अथवा सामान्यसे सम्पूर्ण धर्म, अर्थ,  
कामके लिये पढ़ें उनमें अध्यात्मके  
ज्ञाता धर्ममार्गमें स्थित धर्मके प्रका-  
शक इनके और माता, पिता, भ्राता,  
गुरुजनके विकारकी शान्तिमें जो  
प्रयत्नवान् होताहै और जो आयुर्वेदमें  
उक्त अध्यात्मका ध्यान करताहै, जान-  
ताहै वा पढ़ताहै, वहभी इसका परम  
धर्म है ॥ २२ ॥

यापुनरीश्वराणां वसुमतां वासकाशा  
त्सुखोपहारनिमित्ताभावत्यर्थलवा  
वाप्तिरवेक्षणश्च याचस्वपरिगृही  
तानांप्राणिनामातुष्यद्रिक्षाक्षमत्व  
श्चास्यार्थः । यत्पुनरस्यविद्व  
द्ग्रहणं यशःशरण्यत्वं याचसमान  
शुश्रूषायच्चेष्टानां जनानामारोग्य  
माधत्ते सोऽस्य काम इति ॥ २३ ॥

और राजा धनवान् इनके सकाशसे  
सुखके उपहार ( भेट ) निमित्तसे, धनके  
लेशकी प्राप्ति होतीहै और अवैक्षणहै और  
जो अपने परिग्रहके प्राणी हैं, उनकी

रोगसे, रक्षामें सामर्थ्यभी आयुर्वेदका अर्थ है, और जो आयुर्वेदको, विद्वानको पढ़ाना, यज्ञ, और शरणागतकी रक्षा और जो समान शुश्रूषा, और जो इष्ट विषयोंमें आरोग्य रहना, वहभी, काम है ॥ २३ ॥

यथाप्रश्नमुक्तमशेषेण । अथजिप  
गादिनष्टजिपजाप्रष्टव्यइतिअष्ट  
विधम् । तद्यथा, - तन्त्रतन्त्रार्थं  
स्थानानिस्थानार्थानध्यायानध्वा  
यार्थान्प्रश्नान्प्रश्नार्थान्श्वेति २४ ॥

प्रश्नके अनुसार, संपूर्ण, वैद्य, प्रथमही वैद्यके पूछने योग्य है, यह वर्णन किया कि आठ प्रकारका आयुर्वेद है, वह ऐसे है कि तन्त्र, तन्त्रका अर्थ, स्थान, स्थानार्थ, अध्याय, अध्यायार्थ, प्रश्न और प्रश्नार्थ ॥ २४ ॥

पृष्टे चैतद्वक्तव्यमशेषेण वाक्यशो  
वाक्यार्थशोऽर्थावयवशश्चेति २५

इस प्रश्न करनेपर, संपूर्णतासे यह वाक्य, वाक्यार्थ, और अर्थोंके अवयवके अनुसार कहने योग्य हो ॥ २५ ॥

तत्रायुर्वेदःशाखाविद्यासूत्रज्ञानंशा  
स्त्रलक्षणंतन्त्रमित्यनर्थान्तरम् ।  
तन्त्रार्थःपुनःस्वलक्षणेनोपदिष्टः  
सचार्थःप्रकरणैर्विभाव्यमानोभूय  
एवशरीरवृत्तिहेतुव्याधिकर्मका  
र्यकालकर्तृकरणविधिविनिश्चयो

देशप्रकरणानिचप्रकरणानि  
केवलेनोपदेक्ष्यन्तेतन्त्रेण ॥ २६ ॥

उनमें आयुर्वेद, शाखा, विद्या, सूत्र, ज्ञान, शास्त्र, रक्षण, तन्त्र ये सब एक अर्थवाचकहैं और अपने लक्षणसे तन्त्रका अर्थ, जो है, वह प्रकरणोंसे विचार करनेसे, बहुत प्रकारका है, शरीरकी वृत्ति, हेतु, व्याधि, कर्म, कार्य, काल, कर्ता, करण, इनके अनेक प्रकारके निश्चयसे, दश, प्रकरण हैं, उनका केवल तन्त्रसे उपदेश करेंगे ॥ २६ ॥

तन्त्रमष्टास्थानानि । तद्यथा, -  
श्लोक-निदान-विमान-शारीरेन्द्रि  
य-चिकित्सित-कल्प-सिद्धिस्था  
नानि । तत्रत्रिंशदध्यायकंश्लोक  
स्थानम् । अष्टाध्यायकानिनिदा  
नविमानशरीरस्थानानि । द्वाद  
शकमिन्द्रियाणाम् । त्रिंशकंचि  
कित्सितानाम् । द्वादशकेकल्प  
सिद्धिस्थानेइति ॥ २७ ॥

तन्त्रके आठ स्थान हैं, वे ऐसे हैं कि, श्लोकस्थान, निदान, विमान, शारीर, इन्द्रिय, चिकित्सित, कल्प, सिद्धि, उनमें तीस ३० अध्यायका श्लोकस्थान है, और निदान, विमान, शारीर, ये आठ २ अध्यायके हैं, इन्द्रियस्थान द्वादश १२ अध्यायका है, चिकित्सित स्थान तीस अध्यायका, कल्प और



सिद्धि, ये दोनों स्थान द्वादश २ अ-  
ध्यायके हैं ॥ २७ ॥

भवतिचात्र ।

द्वात्रिंशकेद्वादशकत्रयश्च त्रीण्य  
ष्टकान्येषु समाप्तिरुक्ता ॥ श्लो  
कौषधारिष्टविकल्पसिद्धिनिदान  
मानाश्रयसंज्ञकेषु ॥ २८ ॥

इसमें ये श्लोक हैं कि दो स्थान,  
तीस २ के तीन द्वादश द्वादशके तीन  
आठ २ के इनमेंही समाप्ति ग्रन्थकी  
कही है, जो श्लोक, औषध, अरिष्ट,  
विकल्प, सिद्धि, निदान, मान, आश्रय,  
नामके, आठ स्थान हैं ॥ २८ ॥

स्वेस्वेस्थानेयथास्वञ्च स्थानार्थ  
उपदेक्ष्यते ॥ सविंशमध्यायशतं  
शृणुनामक्रमागतम् ॥ २९ ॥

अपने २ स्थानमें यथायोग्य, स्थानके  
अर्थका, उपदेश करेंगे अब क्रमसे १२०  
एक सौ बीस अध्यायोंको सुनो ॥ २९ ॥

दीर्घजीवोऽप्यपामार्गतण्डुलारग्व  
धादिकौ ॥ षड्विरेकाश्रयश्चेति  
चतुष्कोभेषजाश्रयः ॥ ३० ॥

दीर्घ जीवा अपामार्ग तण्डुल, आर-  
रग्वध, षड्विरेकाश्रय, ये चतुष्कमें भेष  
जाश्रय हैं ॥ ३० ॥

मात्रातस्यांशितीयौचनवेगान्धा  
रणंतथा । इन्द्रियोपक्रमश्चेति च  
त्वारःस्वास्थ्यवृत्तिकाः ॥ ३१ ॥

मात्रा और मात्राशितीय और वेगों  
का न धारण और इन्द्रियोपक्रम, ये चार  
अध्याय स्वास्थ्यवृत्तिकहे ॥ ३१ ॥

खुड्वाकश्चतुष्पादोमहांस्त्रिषैप  
णस्तथा । सहवातकलाख्येन वि  
द्यान्नैर्दिशिकान्बुधः ॥ ३२ ॥

खुड्वाक, चतुष्पाद, महान् त्रिषैपण और  
वातकलाप ये चार, नैर्दिशिकारुद्धे ॥ ३२ ॥

स्नेहनस्वेदनाध्यायाबुभौयश्चोप  
कल्पनः । चिकित्साप्रभृतश्चैव स  
र्वा एवोपकल्पनाः ॥ ३३ ॥

स्नेहन, स्वेदन, जो अध्याय कहे हैं और  
उपकल्पन और चिकित्सा प्रभृत, ये  
सब उपकल्पना हैं ॥ ३३ ॥

कियन्तः शिरसीयश्च त्रिशोफाष्टौ  
दरादिकौ । रोगाध्यायोमहांश्चैव  
रोगाध्यायचतुष्टयम् ॥ ३४ ॥

और कियन्तः शिरसीय त्रिशोफ  
और अष्टौदर आदि और महान्, रोगा-  
ध्याय, ये चार रोगाध्याय हैं ॥ ३४ ॥

अष्टौ निन्दितसंख्यातस्तथा लंघ  
नतर्पणौ । विधिशोणितकश्चेति  
व्याख्यातास्तत्रयोजनाः ॥ ३५ ॥

अष्टौ निन्दित नामका लंघन और  
तर्पण और विधिशोणितक, ये चार  
योजना कही हैं ॥ ३५ ॥

यजःपुरुषकः ख्यातो भद्रकाप्यो

ऽन्नपानिकौ । विविधाशितपीत  
श्चत्वारोऽन्नविनिश्चये ॥ ३६ ॥

यज्जः पुरुषकः, भद्रकाप्य और अन्न-  
पानिक और विविधाशित पीतः ये चार  
अध्याय अन्नके विनिश्चयमें कहें ॥ ३६ ॥

दशप्राणायतनिकस्तथार्थदशमू-  
लिकः । द्वावेतौ प्राणदेहार्थौ प्रो-  
क्तौ वैद्यगुणाश्रयौ ॥ ३७ ॥

दशप्राणायतनिक और तैसेही अर्थमें  
दशमूलिकः, ये दोनों, वैद्यके गुणके  
आश्रय प्राण और देहके लिये कहें ॥ ३७ ॥

औपधस्वस्थनिर्देशकल्पनारोग-  
योजनाः । चतुष्काः पट्क्रमेणो-  
क्ताः सप्तमश्चात्रपानिकः ॥ ३८ ॥

औपध, स्वस्थ, निर्देश, कल्पना, रोग,  
योजना, ये छः चतुष्क और सातमा  
अन्नपानिक चतुष्क क्रमसे कह आये ॥ ३८ ॥

द्वौ चान्यौ संग्रहाध्यायाविति त्रि-  
शकमर्थवत् । श्लोकस्थानंसमु-  
द्दिष्टं तन्त्रस्यास्य शिरःशुभम् ॥ ३९ ॥

और अन्य दो अध्याय, संग्रहके हैं,  
ये तीस ३० अध्याय, चिकित्साके अर्थ  
साधक हैं, यह श्लोकस्थान, इस तन्त्रका  
उत्तम शिर कहा है ॥ ३९ ॥

चतुष्काणां महार्थानां स्थानेऽस्मि-  
न्सञ्चयः कृतः । श्लोकार्थः संग्र-  
हार्थश्च श्लोकस्थानमतः स्मृतः ॥ ४० ॥

और इस श्लोकस्थानमें महान् है अर्थ  
जिसका ऐसे चतुष्कोंका निश्चय कहा है,  
इसीसे इसको श्लोकस्थान कहते हैं ॥ ४० ॥

ज्वराणां रक्तपित्तस्य गुल्मानामिह  
कुष्ठयोः । शोषोन्मादनिदानेषु  
स्यादपस्मारणश्च यत् ॥ ४१ ॥

इसमें श्लोकका अर्थ और अर्थसंचय  
कहा है और ज्वर, रक्त, पित्त, गुल्म, प्रमेह,  
कुष्ठ, शोष, उन्माद, और अपस्मार ४१

इत्यध्यायाष्टकमिदं निदानस्थान  
मुच्यते । रसेषु त्रिविधेषु क्षौध्वंसे  
जनपदस्य च ॥ ४२ ॥

इनके निदान जिससे इसमें वर्णन  
किये हैं तिससे इन आठ अध्यायों  
को निदानस्थान कहते हैं रसोंमें तीन  
प्रकारकी कुक्षिमें जनपदके ध्वंसमें ४२ ॥

त्रिविधेरोगविज्ञाने स्रोतः स्वपिच-  
वर्तते । रोगानीके व्याधिरूपे रोगा-  
णाश्च भिषग्जिते ॥ ४३ ॥

तीन प्रकारके रोगविज्ञानमें, स्रोतोंमें भी  
वर्तता है व्याधिरूप रोगानीकमें, रोगोंके,  
भिषजित ( चिकित्सा ) में ॥ ४३ ॥

अष्टौ विमानान्युक्तानि मानार्थानि  
महर्षिणा । कतिधा पुरुषीयञ्च  
गोत्रेणा तुल्यमेव च ॥ ४४ ॥

महर्षि ने मानके लिये आठ विमान  
कहे हैं कतिधा (कैसे प्रकारके) पुरुषीयमें गो-  
त्रसे अतुल्य ॥ ४४ ॥

खुड्डीकामहतीचैवगर्भावक्रान्ति  
रुच्यते । पुरुषस्यशरीरस्यविच  
यौद्वौविनिश्चितौ ॥ ४५ ॥

महती खुड्डीका और गर्भकी आति-  
क्रान्ति, कहीहै, पुरुष और शरीरके दो  
विशेष निश्चित कियेहैं ॥ ४५ ॥

शरीरसंख्यासूत्रञ्चातेरष्टमउ  
च्यते । इत्युद्दिष्टानिमुनिनाशा  
रीराण्यत्रिसूनुना ॥ ४६ ॥

शरीरकी संख्या और सूत्र और  
आठवीं जाति कहीहै, ये अत्रिके पुत्र  
मुनिने शरीर कहेहैं ॥ ४६ ॥

वर्णस्वरीयपुष्पाख्यस्तथैवपरिम  
र्षणः । तथैवचेन्द्रियानीकःपौर्व  
रूपकमेवच ॥ ४७ ॥

वर्णस्वरीय, पुष्पाख्य, और परिमर्षण,  
और तैसेही इन्द्रियानीक और पौर्व-  
रूपिक, ॥ ४७ ॥

कतमानिशरीरीयःपन्नरूपोऽप्य  
वाक्शिराः । यस्यश्यावनिमित्त  
श्चसद्योमरणएवच ॥ ४८ ॥

अणुज्योतिरितिख्यातस्तथागो  
मयचूर्णवान् । द्वादशाध्यायकं  
स्थानमिन्द्रियाणांप्रकीर्तितम् ४९

और कतमानी शरीरीय और पन्नरूप  
अवाक्शिरा और जिसका श्यावके  
निमित्त सद्योमरण और अणुज्योति और

तैसेही गोमय चूर्णवान् इन द्वादश अध्या-  
योंका इन्द्रिय स्थान कहाहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

अभयामलकीयश्चप्राणकामीय  
मेवच । करप्रचितिकवेदसमुत्था  
नरसायनम् ॥ ५० ॥

अभयामलकीय, प्राणकायपकर-  
प्रचितिक, वेदसमुत्थान रसायन ॥ ५० ॥

संयोगशरमूलीयमासक्तक्षीरकंत  
था । मापपर्णतृतीयश्चपुमान्जा  
तवलादिकम् ॥ ५१ ॥

संयोगशरमूलीय और आसक्तक्षीरक  
और मापपर्णतृतीय पुमान्, जातव-  
लादिक ॥ ५१ ॥

चतुष्कद्वयमप्येतदध्यायद्वयमु  
च्यते । रसायनमितिज्ञेयंवाजी  
करणमेवच ॥ ५२ ॥

ये दो, चतुष्क हैं और दो अध्यायोंको  
कहतेहैं वे रसायन और वाजीकरण  
जानना ॥ ५२ ॥

ज्वराणांरक्तपित्तस्यगुल्मानामेह  
कुष्ठयोः । शोपेऽर्शसामतीसारेवी  
सर्पेचमदात्यये ॥ ५३ ॥

ज्वर, रक्तपित्त, गुल्म, प्रमेह, कुष्ठ, शोष,  
अर्श, अतीसार, वीसर्प, मदात्यय ॥ ५३ ॥

द्विवर्णीयेतथोन्मादेस्यादपस्मार  
एवच । क्षतशोथोदरेचैवग्रहणी  
पाण्डुरोगयोः ॥ ५४ ॥

द्वित्रणीय और उन्माद, अपस्मार, क्षत,  
शोथ, उदर, ग्रहणी, पांडुरोग ॥ ५४ ॥

ह्रिकाश्वानेचकासेचछर्दितृष्णा  
विपेपुच । मर्मत्रयेचोरुसांसवा  
तेवातशोणिते ॥ ५५ ॥

ह्रिका, श्वास, कास, छर्दि, तृष्णा,  
और विप. तीन मर्म, और उरुसाद, वात,  
वातशोणित ॥ ५५ ॥

त्रिंशच्चिकित्सितान्येवंयोनीनां

व्यापदासह ॥ ५६ ॥

तीस चिकित्सित और योनियोंकी  
व्यापद ॥ ५६ ॥

फलजीमूतकेक्ष्वाकुकल्पोधामार्ग  
वस्यच । पञ्चमोवत्सकस्योक्तः  
पृष्ठश्चकृतवेधने ॥ ५७ ॥

फल, जीमूत, इक्ष्वाकु, इनका कल्प,  
और धामार्गव ( आंगा ) का कल्प और  
पंचम कल्प, वत्सक, ( कूड़ाकी छाल )  
का और छटा, कृतवेधनमें ॥ ५७ ॥

श्यामात्रिवृतयोः कल्पस्तथैवचतु  
रंगुलेः । तिल्वकस्यसुधायाश्च  
सप्तलाशंखिनीष्वपि । दन्तीद्रव  
न्त्योः कल्पश्चद्वादशोऽयं समाप्य  
ते ॥ ५८ ॥

श्यामा और त्रिवृत्ताका कल्प, तैसेही  
चतुरंगुलमें, तिलकका सुधाका सप्तला  
शंखिनीयोंमें दन्ती द्रवती यह द्वादशवां  
कल्प समाप्त करतेहैं ॥ ५८ ॥

कल्पनापञ्चकर्माख्यावस्तिमूत्रा  
तथैवच ॥ स्नेहव्यापादिकासि  
द्धिर्नेत्रव्यापादिकातथा ॥ ५९ ॥

पंचकर्म नामकी कल्पना, और वस्ति  
मूत्रा और स्नेहव्यापादिका सिद्धि और  
नेत्र व्यापादिका सिद्धि ॥ ५९ ॥

सिद्धिः शोधनयोश्चैव वस्ति सिद्धि  
स्तथैवच ॥ प्रासृतीर्मर्मसंख्या  
तासिद्धिर्वस्त्याश्रयाचया ॥ ६० ॥

शोधनोंकी सिद्धि और वस्तिकी सिद्धि  
प्रासृती मर्म नामकी और वास्तिके आश्र  
यकी सिद्धि ॥ ६० ॥

फलमात्रातथासिद्धिः सिद्धिश्चो  
त्तरसंज्ञिता ॥ सिद्धयोद्वादशैवै  
तास्तन्त्रश्चासुसमाप्यते ॥ ६१ ॥

फल मात्राकी सिद्धि उत्तरनामकी  
सिद्धि ये बारह सिद्धिहैं इनमें इस तंत्रको-  
समाप्त करतेहैं ॥ ६१ ॥

स्वेस्वेस्थानेतथाध्यायेचाध्याया  
र्थः प्रवक्ष्यते ॥ तंत्रयात्सर्वतः  
सर्वयथास्वं ह्यर्थसंग्रहात् ॥ ६२ ॥

अपने २ स्थान और अध्यायमें  
अध्यायका अर्थ कहेंगे उस तंत्रको सबके  
प्रति और सबको यथायोग्य अर्थ संग्र-  
हसे कहें ॥ ६२ ॥

पृच्छातन्त्रायथाम्नायंविधिना  
प्रश्नउच्यते ॥ प्रश्नार्थोयुक्तिमां  
स्तस्यतन्त्रेणैवार्थनिश्चयः ॥ ६३ ॥

आम्नायके अनुसार जो तंत्रकी पृच्छा विधिसे हो उसे प्रश्न कहते हैं, प्रश्नका अर्थ युक्तिमान् है उसके अर्थका निश्चय तंत्रसे होता है ॥ ६३ ॥

निरुक्तंतन्त्रणात्तन्त्रेस्थानमर्थ  
प्रतिष्ठया ॥ अधिकृत्यार्थमध्या  
यनामसंज्ञाःप्रतिष्ठिताः ॥ ६४ ॥

तंत्रणसे इसको तंत्र कहते हैं अर्थको प्रतिष्ठासे स्थान कहते हैं, आयके अधिकार करनेसे अध्याय नामकी संज्ञा प्रतिष्ठित है ॥ ६४ ॥

इतिसर्वयथाप्रश्नमष्टकं सम्प्रका  
शितम् । कात्स्न्येन चोक्तस्तन्त्र  
स्य संग्रहः सुविनिश्चितः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार ये संपूर्ण अष्टक प्रश्नके अनुसार प्रकाशित किये हैं और संपूर्ण रूपसे निश्चय करके तंत्रका संग्रह कहा है ॥ ६५ ॥

सन्ति पाल्लविकोत्पाताः संक्षोभंज  
नयन्ति ये । वर्त्तकानामिवोत्पाताः  
सहसैव विभाविताः । तस्मात्ता  
न्पूर्वसंजल्पे सर्वत्राष्टकमादिशेत् ॥ ६६ ॥

पाल्लविक नामके वे उत्पात हैं जो संक्षो-  
भको पैदा करते हैं वे वर्त्तकोंके उत्पातके  
समान सहसा नहीं विचारे जाते तिससे  
उनको पहिले ही संजल्पमें सर्वत्र अष्टक  
का उपदेश करै ॥ ६६ ॥

परापरपरीक्षार्थं नात्र शास्त्रविदां ब  
लम् । शब्दमात्रेण तन्त्रस्य केव

लस्यैकदेशिकाः । भ्रमन्त्यल्पव  
लास्तन्त्रे ज्याशब्देनैव वर्त्तकाः ॥ ६७ ॥

पर अपरकी परीक्षाके लिये मात्रा  
और शास्त्रके ज्ञाताओंका बल है, तंत्रके  
शब्दमात्रसे जो केवल एकदेशको  
जानते हैं, वे अल्प बल जो भ्रमते हैं  
वे तंत्रमें ज्या शब्दसे वर्त्तकों के  
समान हैं ॥ ६७ ॥

पशुः पशूनां दौर्बल्यात् कश्चिन्मध्ये  
वृकायते । समत्वं वृकमासाद्य प्रकृ  
तिं भजते पशुः ॥ ६८ ॥

पशुओंकी दुर्बलतासे कोई पशु मध्यमें  
वृकके समान आचरण करता है, वह पशु  
बलवान् वृकके समीप आनेपर अपनी  
पशु प्रकृतिको भजता है ॥ ६८ ॥

तद्वदज्ञोऽज्ञमध्यस्थः कश्चिन्मौख  
र्घ्यसाधनः । स्थापयत्याप्तमात्मा  
नमाप्नन्त्वासाद्य भिद्यते ॥ ६९ ॥

तिसी प्रकार अज्ञोंके मध्यमें स्थित  
कोई अज्ञ प्रधान साधन वाला हो जाता  
है और अपनेको आप्त स्थापन करता है  
और आप्तके समीप आनेपर भिन्न हो  
जाता है ॥ ६९ ॥

बभ्रुर्मूढवोर्णाभिरबुद्धिरबहुश्रुतः ।  
किं वै वक्ष्यति संजल्पे कुण्डभेदी ज  
डोयथा ॥ ७० ॥

मूढ ऊर्णाओंसे बभ्रु (न्यौला) के समान

अनुनि अद्वुष्टुत दोनेसे संजल्पमें क्या  
कहेगा जेने कुंडभेदी जड ॥ ७० ॥

मृत्तेनविगृहीयाद्विपगल्पश्रुतेर  
पि ॥ हन्यात्प्रश्नाष्टकेनादावि  
तर्गस्त्वात्ममानिनः ॥ ७१ ॥

सदाचरणोंसे अल्पश्रुत वैद्यको  
ग्रहण न करै वह आदिमें ही प्रश्नाष्टकसे  
इतर आत्ममानियोंको हतता है ॥ ७१ ॥

दन्तिनोमुखराह्यजाःप्रभूतावद्ध  
भापिणः ॥ ७२ ॥

दंभी, मुखर, (मुख्य) अज्ञ, प्रभूत, बद्धभापी ॥  
प्रायःप्रायेणसुमुखाःसन्तोयुक्ता  
ल्पभापिणः ॥ तत्त्वज्ञानप्रका  
शार्थमहंकारमनाश्रिताः ॥ ७३ ॥

और बहुधा प्रायःसुमुख होकर  
युक्त अल्प भाषण करतेहैं, तत्त्वज्ञानके  
प्रकाशार्थ जो अहंकारी नहीं हैं ॥ ७३ ॥

स्वल्पाधाराज्ञमुखरान्दर्शयुर्नवि  
वादिनः ॥ परोभूतेष्वनुक्रोशस्त  
त्त्वज्ञानेपरादया ॥ ७४ ॥

उन अल्पआधार अज्ञोंमें प्रधान  
विवादियोंको न देखें, भूतोंकी अनिंदा  
उत्तम है तत्त्वज्ञानमें परमदया श्रेष्ठ ७४

येपातेपामसद्वादनिग्रहेनिरताम  
तिः ॥ असत्पक्षाक्षणित्वार्चिद  
म्भपारुष्यसाधनाः ॥ ७५ ॥

जिनमें है उनकी असत् वादके निग्र-  
हमें मति निरत होती है, असत्पक्षमें  
नेत्रआर्ति दंभ पारुष्य जिनकेसाधन हैं ७५

भवन्त्यनामाःस्वेतन्त्रेप्रायःपर  
विकथनाः ॥ तत्कालपाशसदृ  
शान्वर्जयेच्छास्त्रदूषकान् ७६ ॥

ऐसे अनाप्त प्रायः अपनी तंत्रमें  
परमनुष्योंमें श्लाघा करते हैं तत्कालमें  
शास्त्रके दूषक पाशकी तुल्य उनको वर्ज  
दे ॥ ७६ ॥

प्रशमज्ञानविज्ञानपूर्णाःसेव्याभि  
पक्तमाः ॥ समग्रदुःखमायातम  
विज्ञानेद्वयाश्रयम् ॥ ७७ ॥

उत्तम शांति ज्ञान विज्ञानसे पूर्ण जो  
उत्तम भिषक् हैं वे सेवनके योग्यहैं अवि-  
ज्ञानमें दोनोंमें समग्र दुःख आजातहै ७७

सुखंसमग्रविज्ञानेविमलेचप्रतिष्ठि  
तम् ॥ इदमेवमुदारार्थमज्ञानार्थ  
प्रकाशकम् ॥ ७८ ॥

और समग्र सुख निर्मलविज्ञानमें  
टिकताहै, इस प्रकार उदार है अर्थ  
जिसका और अज्ञानोंको अपना प्रका-  
शक ॥ ७८ ॥

शास्त्रदृष्टिःप्रनष्टानायथैवादित्यम  
ण्डलमिति ॥ ७९ ॥

यह शास्त्र तिस प्रकार है जैसे नष्ट  
दृष्टियोंको सूर्यमंडल इति ॥ ७९ ॥

तत्रश्लोकाः। अर्थदशमहामूलाः  
संज्ञास्तेषां यथाकृताः॥ अयनान्ताः  
षडध्याश्चरूपवेदविदाश्च यत् ८०

इसमें ये श्लोक हैं कि अर्थमें दशमहामूल हैं उनकी संज्ञा यथार्थ करी है अयन पर्यंत छः अग्रच और वेदके ज्ञाताओं का जो रूप है ॥ ८० ॥

सप्तकश्चाष्टकश्चैव परिप्रश्नः स निर्णयः । यथावाच्यं यदर्थश्च षड्विधाश्चैकदेशिकाः ॥ ८१ ॥

और सप्तक और अष्टक प्रश्न और निर्णय सहित, जैसे कहना जिसके अर्थ और जैसे एक देशिक हैं ॥ ८१ ॥

अर्थदशमहामूले सर्वमेतत्प्रकाशितम् । संग्रहश्चैव मध्यायस्तन्त्रस्यास्यैव केवलः ॥ ८२ ॥

दशमहामूल नामके अर्थमें यह सब प्रकाशित किया है, संग्रह और अध्याय ये केवल इस तंत्रमें हैं ॥ ८२ ॥

यथासुमनसां सूत्रं संग्रहार्थं विधीयते । संग्रहार्थं यथार्थानामृषिणा संग्रहः कृतः ॥ ८३ ॥

इति अग्निवेश कृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते सूत्रस्थाने अर्थ महादशमूलीयो नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

जैसे पुष्पोंके संग्रहके लिये सूत होता है तैसे ही अर्थोंके संग्रहके लिये ऋषिने संग्रह किया है ॥ ८३ ॥

इति युक्ते दशमहामूलीयोऽध्यायः समाप्तः ३०

अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते । इयतावधिना सर्वसूत्रस्थानं समाप्यते ॥

इति आचार्य चरकमुनि विरचितायां संहितायां पं० मिहिरचंद्रकृतभाषा-विवृतिसंहितायां सूत्रस्थानं समाप्तम् ॥ १ ॥

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातो निदानस्थानं लिख्यते ।

अथातो ज्वरनिदानं व्याख्यास्यामः

इति हस्माह भगवान् आत्रेयः ।

इसके अनंतर निदानस्थान लिखते हैं अब ज्वर निदान का व्याख्यान करते हैं ॥

आत्रेय महर्षि यह कहते भये कि ॥

इह खलु हेतुनिमित्तमायतनं कर्त्ता कारणप्रत्ययः समुत्थाननिदानमित्यनर्थान्तरम् । तत्रिविधअसात्म्येन्द्रियार्थसंयोगः प्रज्ञापराधः परिणामश्चेति । अतस्त्रिविधविकल्पाव्याधयः प्रादुर्भवन्त्याग्नेयसौम्यवायव्याः द्विविधाश्चापरेराजसास्तामसाश्च । तत्र व्याधिरामयोगदआतङ्गो यक्ष्मा ज्वरो विकार इत्यनर्थान्तरम् । तस्योपलब्धिर्निदानपूर्वरूपलिङ्गोपशयसम्प्राप्तिश्च

तत्रनिदानंकारणमित्युक्तमग्रपूर्व  
रूपंप्रागुत्पत्तिर्लक्षणव्याधेः । प्रा  
दुर्भूतलक्षणंपुनर्लिङ्गंतत्रलिङ्गमा  
कृत्तिलक्षणंचिह्नंसंस्थानंव्यञ्जनं  
रूपमित्यनर्थान्तरस्मिन्नर्थे ।  
उपशयः पुनर्हर्तुर्व्याधिविपरी  
तानां विपरीतार्थकारिणाञ्चौ  
पधाहारविहाराणां उपयोगः  
सुखानुबन्धः । संप्राप्तिर्जातिरा  
गतिरित्यनर्थान्तरंव्याधेःसासं  
ख्याप्राधान्यविधिविकल्पबलका  
लविशेषैर्भिद्यते । संख्या यथाष्टौ  
ज्वराःपञ्चगुल्माःसप्तकुष्ठान्येवमा  
दि । प्राधान्यंपुनर्दोषाणांतरतम  
योगेनोपलभ्यतेतत्रद्वयोस्तरस्त्रिपु  
तमइति । विधिर्नामद्विविधाव्या  
धयोनिजागन्तुभेदेनत्रिविधास्त्रि  
दोषभेदेनचतुर्विधाःसाध्यासाध्य  
मृदुदारुणभेदेनपृथक् । विकल्पो  
नामसमवेतानांपुनर्दोषाणामंशां  
शबलविकल्पोऽस्मिन्नर्थे । बल  
कालविशेषःपुनर्व्याधीनामृत्वम  
होरात्राहारकालविधिनियतोभव  
ति । तस्माद्व्याधीन्भिषगनुपह  
तसत्त्वबुद्धिर्हेत्वादिभिर्भावैर्यथा

वदनुबुध्येत । इत्यर्थसंग्रहोनिदा  
नस्थानस्योद्दिष्टःभवतितंविस्तरे  
णभूयःपरमतोऽनुव्याख्यास्यामः ।  
तत्रप्रथमएवतावदाद्यालोभाभिद्रो  
हकोपप्रभवानष्टौव्याधीन्निदानपू  
र्वेणक्रमेणअनुव्याख्यास्यामः ।  
तथासूत्रसंग्रहमात्रंचिकित्सायाः  
चिकित्सितेषुचोत्तरकालंयथोद्दि  
ष्टविकाराननुव्याख्यास्यामः ॥ १

यहां निश्चयसे हेतु निमित्त आयतन  
कर्ता कारण प्रत्यय समुत्थान निदान  
इनका अन्य अर्थ नहीं अर्थात् ये सब  
निदानके नाम हैं वह निदान तीन  
प्रकारकाहैं असात्म्य इंद्रियार्थसंयोग,  
प्रज्ञापराध, और परिणाम, इससे व्याधि  
भी तीन विकल्पकी होतीहैं और वे  
आग्नेय सौम्य वायव्य रूपहैं और अपर  
व्याधि दो प्रकारकीहैं राजस और  
तामस, उनमें व्याधि आमय गद आ-  
तंक यक्ष्मा ज्वर विकार रोग इनका  
भिन्न अर्थ नहीं हैं, उसकी उपलब्धि  
( ज्ञान ) निदान पूर्वरूप लिंग उपशय  
संप्राप्तिसे है, उनमें निदान कारण यह  
पहिले कह आये, प्रथम जो रोगकी  
उत्पातिका चिन्ह वह पूर्वरूप और  
व्याधिका जो प्रगट लक्षण वह लिंग  
उसमें लिंग आकृति लक्षण चिन्ह  
संस्थान व्यञ्जन रूप इनका भिन्न अर्थ  
नहींहै, इस अर्थमें उपशय वह है कि



हेतु व्याधिसे विपरीत और विपरीत अर्थके कर्ता जो औषध आहार विहार उनका सुखसे अनुबन्ध, और संप्राप्ति नाति आगति इनका भिन्न अर्थ नहीं है, संख्या प्राधान्य विधि विकल्प बलकाल रूप विशेषोंसे व्याधिकी संख्याका भेद होता है, जैसे आठज्वर, पांचगुलम, सात कुष्ठ, आदि संख्या और प्राधान्य तो दोषोंके न्यून अधिक भावसे प्रतीत होता है उसकोही तरतम भाव ( न्यून अधिक भाव ) कहते हैं वहां दोमें एकके निर्धारणमें तर तीनमें तम प्रत्यय होती है इस विधिसे, निज आगंतुके भेदसे दो प्रकारकी व्याधि होती है एकके निर्धारणमें त्रिदोषके भेदसे तीन प्रकारकी और साध्य असाध्य मृदु दारुणके भेदसे चार प्रकारकी है और समवेत ( इकट्ठे ) हुये दोषोंके अंशका अंश बलका विकल्प और इस अर्थमें बलकाल विशेष, जो व्याधियोंको है वह ऋतु अहोरात्र आहार काल विधिके आधीन है तिससे अनष्ट बुद्धि जो वैद्य है वह व्याधियोंको हेतु आदि भावोंसे यथार्थ जानै यह अर्थ संग्रह निदान स्थानका कहा है, उसका पुनः विस्तारसे इससे आगे व्याख्यान करते हैं, उसमें पहिलेही निश्चयसे आद्य ( भक्ष्य ) लोभ अभिद्रोह कोपसे प्रभव ( उत्पन्न ) आठ व्याधियोंको निदान पूर्वक क्रमसे वर्णन करते हैं तैसेही चिकित्साके सूत्रसंग्रह मात्रको और चिकित्सित मनुष्योंके उत्तर कालको और यथोद्दिष्ट विकारोंका क्रमसे वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

इह खलु ज्वर एवा दौ विकाराणामु पदिश्यते । तत्प्रथमतवाच्छारीराणाम् । अथ खलु अष्टाभ्यः कारणेभ्योज्वरः स आयाते मनुष्याणां तद्यथा वातात्पित्तात्क्रफाद्वा तपित्ताभ्यां पित्तश्लेष्मभ्यां वा तश्लेष्मभ्यां वा तपित्तश्लेष्मभ्यः आगन्तो रष्टमात्कारणात् तस्य निदानपूर्वरूपलिङ्गोपचयविशेषानुपदेक्ष्यामः । तद्यथा रूक्षलघुशीतव्यायामवमनविरेचनास्थापनशिरो विरेचनातियोगवेगसन्धारणानशनाभिघातव्यवायोद्वेगशोकशोणितातिसेक जागरणविषमशरीरन्यासेभ्योऽतिसेवितेभ्यो वायुः प्रकोपमापद्यते । स यदा प्रकुपितः प्रविश्यामाशयमुष्मणः स्थानमुष्मणा सह मिश्रीभूत आद्यमाहारपरिणामधातुरसनामानमन्वेद्यरसस्वेदवहानि च स्रोतांसि च पिधाय अग्निं उपहत्य पक्तिस्थाना दुष्माणं वहिः निरस्य केवलं शरीरमनुपद्यते तदा ज्वरमभिनिर्वर्त्तयति तस्येमानि लिङ्गानि भवन्ति । तद्यथा विषमारम्भविसर्गित्वमूष्मणो वैषम्यंती

व्रतनुभावनवस्थानानिज्वरस्य  
जरणान्तेदिवसान्तेवर्मान्तेवाज्व  
राभ्यागमनमभिवृद्धिर्वाज्वरस्य  
विशेषेणपरुषारुणवर्णत्वन्खन  
यनवदनमूत्रपुरीषत्वचामत्यर्थं  
श्रीतावश्चानेकविधोपमाश्चचला  
चलाश्चवेदनास्तेपांतेपामङ्गावय  
वानाम् । तद्यथापादयोःसुप्तता  
पिण्डकयोरुद्वेष्टनंजानुनोःकेव  
लानाञ्चसन्धीनांविश्लेषणमूर्ध्वोः  
सादःकटीपार्श्वपृष्ठस्कन्धचातुं  
सोरसाञ्चभग्नरुग्णमृदितमथित  
चटितावपीडितावतुन्नत्वमिवह  
न्वोरप्रसिद्धिःस्वनश्चकर्णयोःशं  
खयोर्निस्तोदःकपायास्यत्वमा  
स्यवैरस्यंवामुखतालुकण्ठशोषः  
पिपासाहृदयग्रहःशुष्कछर्द्दिःशु  
ष्ककासःक्षवथूद्वारविनिग्रहोऽन्न  
रसस्वेदःप्रसेकारोचकाविपाकाः  
विपादविजृम्भाविनामवेपथुश्रम-  
भ्रम-प्रलापजागरणलोमहर्षदन्त  
हर्षास्तथोष्माभिप्रायतानिदानो  
क्तानामनुपचयोविपरीतोपचयश्चे  
तिवातज्वरलिङ्गानिस्थुः । तृष्णा  
म्ललवणक्षारकटुकार्जीर्णभोजने

भ्योऽतिसेवितेभ्यस्तथातितीक्ष्णा  
तपाग्निसन्तापश्रमक्रोधविपमाहा  
रेभ्यःपित्तप्रकोपमापद्यते । तद्य  
थाप्रकुपितमामाशयादेवोष्माण  
मुपसंसृज्याद्यमाहारपरिणामधा  
तुरसनामानमन्वावेद्यरसस्वेदवहा  
निचस्रोतांसिपिधायद्रवत्वादाग्नि  
मुपहत्यपंक्तिस्थानादूष्माणंवाहि  
द्वारंनिरस्यप्रपीडयन्केवलंशरीर  
मुपपद्यतेतदाज्वरमभिनिर्वर्तयति  
तस्येमानिलिङ्गानिभवन्ति । त  
द्यथायुगपदेवकेवलेशरीरेज्वरा  
भ्यागमनमभिवृद्धिर्वा । भुक्तस्य  
विदाहकालेमध्यन्दिनेऽर्द्धरात्रेश  
रदिवाविशेषेणकटुकास्यताघ्राण  
मुखकण्ठोष्ठतालुपाकस्तृष्णाभ्र  
मोमदोमूर्च्छापित्तच्छर्द्दनमतीसा  
रोऽन्नद्वेषःसदनस्वेदः प्रलापोरक्त  
कोठाभिनिर्वृत्तिः शरीरेहरितहा  
रिद्रत्वन्खनयनवदनमूत्रपुरी  
षत्वचामत्यर्थमुष्मणस्तीव्रभा  
वोऽतिमात्रंदाहः शीताभिप्राय  
तानिदानोक्तानामनुपचयोविप  
रीतोपचयश्चेतिपित्तज्वरलिङ्गा  
निभवन्ति । स्निग्धमधुरगुरुशीत-

पिच्छिलाम्ल-लवण-दिवास्वप्न-  
 हर्षव्यायामेभ्योऽतिसेवितेभ्यःश्ले-  
 ष्माप्रकोपमापद्यते । सयदाप्रकु-  
 पितःप्रविश्यामाशयमूष्मणासह-  
 मिश्रीभूतमाद्यमाहारपरिणामधा-  
 तुंरसनामानमन्ववेत्यरसस्वेदव-  
 हानिचक्षोतांसिपिधायाम्निमुपह-  
 त्यपंक्तिस्थानादूष्माणंवाबहिः  
 निरस्यप्रपीडयन्केवलंशरीरमुप-  
 पद्यतेतदाज्वरमभिनिर्वर्त्तयति ।  
 तस्येमानिलिङ्गानिभवन्ति । त-  
 द्यथायुगपदेवकेवलेशरीरेज्वरा-  
 भ्यागमनमभिवृद्धिर्वाभुक्तमात्रेपू-  
 र्वाह्निपूर्वरात्रेवसन्तकालेवाविशे-  
 षेणगुरुगात्रत्वमनन्नाभिलाषः  
 श्लेष्मप्रसेकोमुखस्यचमाधुर्यह-  
 स्तासोहृदयोपलेपःस्तिमिरत्वंछ-  
 र्दिर्मृद्वग्नितानिद्रायाआधिक्यंस्त-  
 म्भःतन्द्राश्वासःकासःप्रतिश्यायः  
 शैत्यंश्वेत्यश्चनयननखवदनमूत्रपु-  
 रीषत्वचामत्यर्थशीतपिडका  
 भृशमङ्गेभ्यउत्तिष्ठतिउष्णाभिप्रा-  
 यतानिदानोक्तानामनुपचयोविप-  
 रीतोपचयश्चेतिश्लेष्मज्वरलिङ्गा-  
 निभवन्ति । विषमाशनादनशना

दन्नस्यअपरिवर्तादितुव्यापत्तेःअ-  
 सात्म्यागन्धोपघ्राणाद्विषोपहत-  
 स्योदकस्यउपयोगाद्वरेभ्योगिरी-  
 णामुपश्लेषात्स्नेहस्वेदवमनविरे-  
 चनास्थापनानुवासनशिरोविरे-  
 चनानामयथावत्प्रयोगात्स्त्री-  
 णाञ्चविषमप्रजननात्प्रजाताना-  
 ञ्चमिथ्योपचाराद्यथोक्तानाञ्चहे-  
 तूनामिश्रीभावाद्यथानिदानंद्वन्द्वा-  
 नामन्यतमःसर्वेवात्रयोदोषायुग-  
 पत्प्रकोपमापद्यन्ते । तेप्रकुपिता-  
 स्तयैवानुपूर्व्याज्वरमभिनिर्वर्त्तय-  
 न्तित्रयथोक्तानांज्वरलिङ्गानां  
 मिश्रीभावविशेषदर्शनाद्वाह्निद्व-  
 कमन्यतमंज्वरंसान्निपातिकंवा-  
 विद्यात् । अभिघाताभिषङ्गाभि-  
 चाराभिशापेभ्यआगन्तुर्व्यथापू-  
 र्वोज्वरोऽष्टमोभवति । सकञ्चि-  
 त्कालमागन्तुःकेवलोभूत्वापश्चा-  
 द्दोषैरनुबध्यते । अभिघातजोवा-  
 युनादुष्टशोणिताधिष्ठानेनअभि-  
 षङ्गजःपुनर्वातपित्ताभ्यामूअभि-  
 चाराभिशापजौतुसन्निपातेनउप-  
 निबध्यते । सप्तविधाज्वराद्विशि-  
 ष्टलिङ्गोपक्रमसमुत्थितत्वाद्विशि-

द्वेवेदितव्यः । कर्मणामाधारणेन  
चोपक्रम्येतिअष्टविधाज्वरप्रकृति  
रुक्ता । ज्वरस्त्वैकएवसन्तापल  
क्षणन्तमेवाभिप्रायविशेषाद्वि  
विधमाचक्षतेनिजागन्तुविशेषाच्च  
तत्रनिजंद्विविधंत्रिविधंचतुर्विधं  
सनविधश्चाहुर्वातादिविकल्पात्त  
स्वेमानिपूर्वरूपाणि । तद्यथामु  
खैवरस्यंगुरुगात्रत्वमनन्नाभिला  
पश्चशुपोराकुलत्वमन्नागमनंनि  
द्रायाआधिक्यमरतिर्जम्भाविना  
मोवेपथुःश्रमभ्रमप्रलापजागरण  
लोमहर्षशब्दगीतिवातातपासहत्व  
मनेचकाविपाकौदौर्बल्यमङ्गम  
र्दःभदनमल्पप्राणतादीर्घसूत्रता  
आलस्यमुपचितस्यकर्मणोहानिः  
प्रतीपतास्वकार्ग्यपुगुरुणांवाक्ये  
पुअभ्यसूयावालेपुप्रद्वेषःस्वधर्म  
पुअचिन्तामाल्यानुलेपनभोजन  
क्लेशनंमधुरेपुभक्ष्येपुप्रद्वेषोऽम्ल  
लवणकटुकप्रियताचेतिज्वरपूर्व  
रूपाणि । प्राक्सन्तापादपिचैनं  
सन्तापार्तमनुबन्धन्तीत्येतानि  
एकैकज्वरलिङ्गानिविस्तरसमा  
साभ्याम् । ज्वरस्तुखलुम

हेश्वरकोपप्रभवःसर्वप्राणिनांप्राण  
हरोदेहेन्द्रियमनस्तापकरःप्रज्ञा  
बलवर्णहर्षोत्साहसादनार्त्तिश्रम  
कृममोहाहारोपरोधसञ्जननोज्व  
रयतिशरीराणिइतिज्वरः । ना  
न्येव्याधयःतथादारुणावहूपद्रवा  
दुश्चिकित्स्यायथायमिति । सर्व  
रोगाधिपतिज्वरःनानातिर्यग्योनि  
पुबहुविधैःशब्दैरभिधीयतेसर्वप्रा  
णभृतश्चसज्वराएवजायन्तेसज्व  
राएवम्रियन्तेसमहामोहाःतेनाभि  
भूताःप्राग्दैहिकंदेहिनःकर्मकिञ्चि  
न्नस्मरन्तिसर्वप्राणिभ्यश्चज्वरए  
वप्राणानादत्ते।तत्रास्यपूर्वरूपदर्श  
नेज्वरादौवाहितंलघ्वशनमतर्पणं  
वाज्वरस्यामाशयसमुत्थत्वात् ।  
ततःकपायपानाभ्यङ्गस्वेदप्रदेहप  
रिपेकानुलेपनवमनविरेचनास्था  
पनानुवासनोपशमननस्तःकर्मधू  
पधूमपानाञ्जनक्षीरभोजनविधानं  
यथास्वंयुक्तयाजीर्णज्वरेपुसर्वेष्वे  
वसर्पिपःपानंप्रशस्यते । यथास्व  
मौषधसिद्धस्यसर्पिर्हिस्नेहाद्वातंश  
मयातिसंस्कारात्कफंशैत्यातिपत्त  
मुष्माणंचतस्माज्जीर्णज्वरेपुतु

सर्वेष्वेवसर्पिर्हितमुदकमिवाग्निप्लु  
ष्टेपुद्रव्येष्विति ॥ २ ॥

यहां तो ज्वरही विकारोंकी आदिमें कहा जाताहै, वह ज्वर शरीरके विकारोंमें प्रथम होनेसे आठ कारणोंसे मनुष्योंके उत्पन्न होता है वह ऐसे है कि वातसे पित्तसे कफसे वातपित्तोंसे, पित्तकफोंसे वातकफोंसे वातपित्तकफोंसे और आठवें आगंतु कारणसे, उस ज्वरके निदान पूर्वरूप लिंग उपचय विशेषोंका उपदेश करते हैं, रूक्ष लघु शीत व्यायाम वमन विरेचन स्थापन शिरोविरेचन अतियोग संधारण अनशन अभिघात व्यवाय उद्वेग शोक शोणित आर्तसेचन जागरण विषम शरीरका न्यास, इनके अत्यंत सेवन करनेसे वायु कोपको प्राप्त होताहै, कुपित हुआ वह जब आमाशयमें प्रविष्ट होकर ऊष्माके संग मिला हुआ पहिला जो आहारका परिणाम धातुरस नामकाहै उसके अनुगमनको करके रसस्वेदके वहनेहारे जो स्रोत हैं उनको ढककर, पाकके स्थानसे बाहिर ऊष्माको निकासकर केवल शरीरमें प्राप्त होताहै तब ज्वरको पैदा करताहै उसके ये लिंग होते हैं वे ये हैं कि विषम आरंभ और विसर्ग ऊष्माका वैषम्य तीव्र तनुभावका अनवस्थान, जरणके अंतमें दिनके अंतमें घर्मके अंतमें ज्वरका आगमन वा वृद्धि होती है, और ज्वर

विशेष कर परुष अरुण हांताहै, और नख नेत्र मुख मूत्र पुरीष त्वचा इनका क्लिप्त होना अनेक प्रकारकी चल अचल वेदना तिन २ अंगके जानु और केवल संधियोंका विश्लेष, उरुओंका साद, कटी पार्श्व पृष्ठ स्कंध बाहु अंस उर ये भग्न रुग्ण मृदित मथित चटित अवपीडित अव तुन्नके समान होतेहैं, हनुओंकी अप्रसिद्धि कर्णोंमें शब्द और शंखोंमें निरंतर तोद, मुखमें कषाय और विरसता, मुखतालु कंठ इनका शोष, पिपासा हृदयका ग्रह शुष्कछर्दि और कास, क्षवथु उद्गारका विनिग्रह, अन्नके रसका खेद प्रसेक अरोचक अविपाक विपाद विजृम्भा विराम वेपथु श्रम भ्रम प्रलाप जागरण लोमहर्ष, दंतहर्ष ये होतेहैं, तैसेही ऊष्मामें अभिप्राय ( प्रीति ) निदानमें जो उक्तहैं उनकी हानि और विपरीतोंकी वृद्धि ये सब वात ज्वरके लिंगहैं, उष्ण अम्ल लवण क्षार कटुक अजीर्णभोजन इनके अत्यंत सेवनसे तैसेही अतितीक्ष्ण आतप अग्निमें संताप श्रम क्रोध विषमभोजन इनसे पित्त कोपको प्राप्त होताहै, वह जब प्रकुपित हुआ आमाशयसेही ऊष्माके संग संसर्गको प्राप्त होकर आहारका परिणाम रूपजो रस नामका प्रथम धातुहै उसका अन्वावेदन ( मेल ) करके और रस स्वेदवाहनी जो स्रोत हैं उनको ढककर और अपने द्रव रूपसे अग्रिको हतकर पाक स्थानसे बाहिर ऊष्माको पीडित करताहुआ केवल शरीरमें जब प्राप्त

होना है तब ज्वरको पैदा करता है उसके  
 ने लिंग होते हैं वे ऐसे हैं कि एकवारही  
 केवल शरीरमें ज्वरका आगमन वा वृद्धि  
 होती है—भुक्तके विदाह कालमें मध्या  
 ह्नमें अर्द्धरात्रमें वासर ( दिन ) के आ  
 द्यमें वा अर्द्धमें विशेषकर होता है, मुखमें  
 कटुना घ्राण मुख कंठ ओष्ठ तालु इनका  
 पकना, वृष्णा भ्रम मोह मूर्च्छा पित्त-  
 छर्दन अनीनार अन्नमें द्वेष सदन स्वेद  
 प्रलाप रक्तकोष्ठोंकी उत्पत्ति, हरित  
 और हाग्रि, नख नेत्र मुख मूत्र पुरीष  
 त्वचाओंका होना, ऊष्माका तीव्रभाव  
 अन्यंत दाह शीतमें अभिप्राय और  
 निदानमें उक्तोंकी अवृद्धि और विपरी-  
 तोंकी वृद्धि ये पित्तज्वरके लिंग हैं, स्निग्ध  
 मधुर गुरु शीत पिच्छिल अम्ल लवण  
 दिनोंमें स्वप्न हर्ष व्यायाम इनके अत्यं-  
 न सेवनसे श्लेष्मा कोपको प्राप्त होता है  
 वह जब प्रकुपित हुआ आमाशयमें  
 प्रविष्ट होकर ऊष्माके संग मिले हुये  
 पहिले आहारके पणिगाम रूप रसनामके  
 धातुको अनुगमन करके और रस स्वेद  
 के वाहक जो स्रोत हैं उनको ढककर अग्नि-  
 को हतकर वा पाकके स्थानसे बाहिर उष्मा  
 को पीडित करता हुआ केवल शरीरमें प्राप्त  
 होता है तब ज्वरको पैदा करता है उसके  
 जो लिंग होते हैं वे ये हैं कि एकवारही  
 केवल शरीरमें ज्वरका आगमन वा वृद्धि  
 होती है भोजन करते ही पूर्वाह्नमें वा वसंत  
 कालमें विशेष कर होता है, गुरु गात्रता  
 अन्नकी अभिलाषाका अभाव, श्लेष्मका  
 प्रसेक मुखमें मधुरता हृष्टासः  
 हृदयका उपलप स्तिमितता छर्दि अ-  
 ग्रिमें कामलता निद्राकी अधिकता स्तंभ  
 तंद्रा श्वास कास प्रतिश्याय, शीतता  
 और श्वेतता और नेत्र नख मुख मूत्र  
 पुरीष त्वचा इनमें शीतता और शीत  
 पिडका अंगोंमेंसे अत्यंत उठती है उष्णमें  
 अभिप्रायता और निदानमें उक्तोंका  
 अनुपचय ( हानि ) और विपरीतोंका  
 उपचय ( वृद्धि ) ये कफज्वरके लिंग हैं,  
 विषम भोजियोंकी अनशनसे भुक्तके  
 परिवर्तनसे ऋतुकी व्यापत्तिसे असात्म्य  
 गंधके घ्राणसे, विषसे उपहत जलके उप-  
 योगसे गरोंसे पर्वतोंके संबंधसे, स्नेह स्वेद  
 वमन विरचन आस्थापन अनुवासन  
 शिरका विरचन इनके अयथार्थ प्रयोगसे  
 और स्त्रियोंकी विषम प्रजननसे और प्रजा-  
 तोंके ( प्रसूता ) मिथ्या उपचारसे और  
 यथोक्त हेतुओंके मिश्रीभावसे विद्वानके  
 अनुसार द्रव्योंमें कोई एक वा संपूर्ण  
 तीनों दोष एकवार प्रकोपको प्राप्त  
 होते हैं कुपित हुये वे उसी पूर्वोक्त क्रमसे  
 ज्वरको पैदा करते हैं, उसमें यथोक्त  
 ज्वरलिंगोंके मिश्रीभावकी विशेषतासे  
 कोई द्रव्य, वा संनिपातज ज्वरको  
 जानें, अभिघात अभिपंग अभिचार  
 अभिशाप इनसे आगंतुज्वर आठवां  
 पूर्वोक्त प्रकारसे होता है वह आगंतु  
 कुछ कालतक केवल होकर दोषोंसे  
 जाता है, अभिघातज शोणितके अधिष्ठान  
 वायुसे और अभिपंगन वातपित्तोंसे

अमिशापज और अभिचारज ये दोनों संनिपातके संग मिल जाते हैं, सात प्रकारके ज्वरसे विशिष्ट जो लिंग उनके उपक्रमसे उत्थित होनेसे यह आगंतु विशिष्ट जानना, कर्मसे साधारणसे उपक्रमसे यह आठ प्रकारकी ज्वरकी प्रकृति कही, ज्वर तो संताप लक्षणका एकही है उसकोही अभिप्रायके विशेषसे और निज आगंतुके विशेषसे दो प्रकार का कहते हैं उनमें जिनकी दो तीन चार सात प्रकारका वात आदिके विकल्पसे कहते हैं उसके ये पूर्वरूप होते हैं वे ऐसे हैं कि मुखका वैरस्य गात्रमें गौरव अन्नकी अनिच्छा नेत्रोंमें व्याकुलता आंसुओंका आना अधिक निद्रा अति जृम्भा विनाम कंप श्रम भ्रम प्रलाप जागरण लोमहर्ष, शब्द गीत वात आतप इनका सहना न सहना अरुचि अविपाक दुर्बलता अंगमर्द सदन प्राणोंमें अल्पता, दीर्घसूत्रता आलस्य उपचित भी कर्मकी हानि, अपने कार्योंमें प्रतीप बुद्धि गुरुओंके वाक्योंकी असूया बालकोंमें द्वेष अपने धर्मोंमें अर्चिता माल्य अनुलेपन भोजन इनमें क्लेश, मधुर पदार्थोंमें द्वेष, अम्ल लवण कटु इनमें प्रीति, ये सब ज्वरके पूर्व रूप हैं संताप से पहिले भी इस मनुष्यको संतापसे आर्तकी ये अनुबंधन करते हैं इससे ये एक २ ज्वरके लिंग हैं, विस्तार और संक्षेपसे उक्त ज्वर तो निश्चयसे महादेव के कोपसे उत्पन्न है, सब प्राणियोंके

प्राणोंका हर्ता, देह इंद्रिय मन इनके तापका कर्ता, प्रज्ञा बल वर्ण, हर्ष उत्साह सादन आर्ति श्रम क्रम मोह आहार इनके उपरोधको पैदा करता है, जो शरीरोंको जरण करे वह ज्वर कहाता है, अन्य व्याधि तैसी दारुण बहुत उपद्रवी चिकित्सामें कठिन नहीं है जैसा यह ज्वर है, सब रोगोंका अधिपति, नाना-प्रकारकी तिरछी योनियोंमें अनेक प्रकारके शब्दोंसे कहा जाता है, संपूर्ण प्राणधारी ज्वर सहितही पैदा होते हैं ज्वर सहितही मरते हैं वह ज्वर महामोह है तिससे तिरस्कृत हुये देहधारी पूर्वदेहके किंचित्भी कर्मका स्मरण नहीं करते, सब प्राणियोंको ज्वरही लेता है, तिससे इसके पूर्वरूपके दर्शन होनेपर वा ज्वरकी आदिमें लघु भोजनका अतृप्ति, को करे क्योंकि ज्वर आमाशयमें उत्पन्न है, फिर कषायका पान अभ्यंग स्वेद प्रदेह परिषेक अनुलोमन विरेचन आस्थापन अनुवासन उपशमन नस्तःकर्म (सूचना) धूप धूमका पान अंजन दूधका भोजन इनको करे, यथा योग्य युक्तिसे सभी जीर्णज्वरोंमें उस घीका पीना श्रेष्ठ है जो यथा योग्य औषधोंसे सिद्ध हो, क्योंकि घी स्नेहसे वातको शांत करता है संस्कारसे कफको शीतलतासे पित्तको और ऊष्माको शांत करता है, तिससे संपूर्ण जीर्णज्वरोंमें घी ऐसा हित उत्तम है जैसे अग्निसे दग्ध द्रव्योंमें जल होता है ॥ २ ॥

तत्र श्लोकाः ।

यथाप्रज्वलितवैश्वपरिपिञ्चन्ति  
वारिणा । नगाःशान्तिमग्निप्रेत्य  
तथाजीर्णज्वरेधृतम् ॥ ३ ॥

उसमें ये श्लोक हैं कि जैसे मनुष्य  
शान्तिके लिये प्रज्वलित गृहको जलसे  
सींचते हैं तैसा जीर्णज्वरमें धृत होता है ३  
स्नेहाद्वातंशमयतिशैत्यात्पित्तंनि  
यच्छति । घृतंतुल्यगुणंदोषं  
स्कारात्तुजयेत्कफम् ॥ ४ ॥

स्नेहसे वातको शांत करता है, शीत  
होनेसे पित्तको दूर करता है, तुल्य हैं गुण  
जिसमें ऐसे दोषोंको घी शांत करता है ४

नान्यःस्नेहस्तथाकश्चित्संस्कारम  
नुवर्त्तते । यथासर्पिरतःसर्पिःसर्व  
स्नेहोत्तरं परम् ॥ ५ ॥

और संस्कारसे तो कफको जीतता है,  
अन्य स्नेह कोईभी तैसा संस्कारका  
अनुवर्तन नहीं करता जैसा घी करता है  
इससे घी सब स्नेहोंमें परम अधिक है ५

गद्योक्तोयःपुनःश्लोकैरर्थःसमनु  
गीयते । तद्व्यक्तिव्यवसायार्थं  
द्विरुक्तःसनगर्ह्यते ॥ ६ ॥

गद्यमें कहा जो अर्थ है वही अर्थ फिर  
श्लोकोंसे कहा जाता है उसकी व्यक्तिके  
निश्चयार्थ द्विरुक्त भी वह निंदायोग्य  
नहीं होता ॥ ६ ॥

त्रिविधं नाम पर्यायैर्हेतुपञ्चविधान्  
गदान् । गदलक्षणपर्यायान्  
व्याधिःपञ्चविधग्रहम् ॥ ७ ॥

पर्यायोंसे तीन प्रकारका हेतु—पांचप्रका  
रके—गदके लक्षणके पर्यायोंसे गद—  
व्याधिका पांच प्रकारका गृह है ॥ ७ ॥

ज्वरमष्टविधंतस्यप्रकृष्टासन्नका  
रणम् । पूर्वरूपपञ्चरूपसंग्रहेभे  
पजस्यच ॥ ८ ॥

ज्वर आठ प्रकारका और उत्तम आसन्न  
कारण, पूर्वरूप—और रूप इनको भेप  
जके संग्रहमें ॥ ८ ॥

व्याख्यातवान्ज्वरस्याग्नेनिदाने  
विगतज्वरः । भगवानग्निदेशाय  
प्रणतायपुनर्वसुः ॥ ९ ॥

इतिचरकप्रतिसंस्कृतेतन्त्रेज्वरनिदानो  
नामप्रथमाध्यायः ॥ १ ॥

प्रथम ज्वरके निदानमें—संताप रहित  
पुनर्वसु महर्षि भगवान्ने प्रणत ( नम्र )  
अग्निवेशके प्राति वर्णन किया ॥ ९ ॥  
इति ज्वरनिदानं समाप्तम् अध्याय ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

रक्तपित्तनिदानम् ।

अथातोरक्तपित्तनिदानं

व्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

इसके अनंतर रक्त पित्तके निदानका



व्याख्यान करते हैं यह भगवान् आत्रेय कहते हैं कि ।

पित्तं यथा भूतं लोहितपित्तमिति संज्ञां लभते तत्तथानुव्याख्यास्यामः । यदा यस्तु जन्तुर्यवको दालकोरकदूषकप्रायाणि अन्नानि नित्यं भुङ्क्ते भूशोष्णतीक्ष्णमपि चान्यदन्नजातं निष्पावमाषकुलत्थक्षारसूपोपहितं दधिमण्डोदश्वित्कद्वम्लकाञ्जिकोपहितं वाराहमाहिषाविकमत्स्यगव्यपिशितां पिण्याकंपिण्डालुकशाकोपहितं मूलकसर्पपलशुनकरञ्जशिशुकखड्यूषभूस्तृणसुमुखसुरसकुठेरगण्डीरकालमालकपर्णासक्षवकफणिज्जकोपदंशसुरासौवीरतुषोदकमैरेयमेचकमधूलककुवलबदराम्लप्रायान्नपानं पिष्टान्नोत्तरभूयिष्ठमुष्णाभितप्तोऽतिमात्रमतिवेलं वापयसासमश्नाति रोहिणीकालकपोतमां संवासर्षपतैलक्षारसिद्धं कुलत्थमाषपिण्याकजाम्बलकुचपक्कैः शौक्तिकैर्वासहक्षीरमाममतिमात्रमथवापि वत्युष्णाभितप्तस्तस्यैवमाचरतः पित्तं प्रकोपमापद्यते । लोहितञ्च स्वप्राणमतिवर्त्तते ॥ १ ॥

यथा भूतं भी पित्तं, लोहित पित्त संज्ञा को प्राप्त होता है—उसका उसी प्रकारसे वर्णन करते हैं—जब जो प्राणी ( जंतु ) यवक उद्दाल कोरक दूषक प्रायः अन्नो को खाता है और अत्यंत उष्ण तीक्ष्ण भी अन्य अन्न के समूह को निष्पाव ( सेम ) माष कुलथी क्षारसूप इनसे युक्त को, दधि मंड मट्ठा कटु अम्ल भिन्नकाञ्जिक इनसे सेचन सहित वराह महिष भेड मत्स्य गौ इनके मांस को पिंडालक के शाक से युक्त पिण्याक को मूली सरसों लशुन करंज सोहंजना शिशु खड्यूष भूस्तृण आदिको, सुरस कठेर कंडीर कालक पर्णास क्षवक फणिज्जक उपदंश को सुरा सौवीर तुषोदक मैरेय मेचक मधूलक कुवल बदर अम्ल, इन प्रायः अनुपानों को, पिष्टान्न के अनंतर अधिक तृष्णा से अत्यंत व्याकुल हुआ और अत्यंत वा अनेकवार दूध के संग जो भोजन करे, रोहिण काल कपोत इनके मांस को सरसों के तेल क्षार में बनाकर, कुलथी माष पिण्याक जामुन लिङ्गुच इनमें पके शौक्तिकों के संग कच्चे दूध को अधिकवार वा अत्यंत उष्ण से तप्त होकर जो पीवै इस प्रकार आचरण करते हुये उस मनुष्य का पित्त को प्रकोप हो जाता है और अपने प्रमाण से अधिक लोहित हो जाता है ॥ १ ॥

तस्मिन् प्रमाणातिप्रवृत्ते पित्तं प्रकुपितं शरीरमनुसर्पद्यदैवयकृत्प्लीहप्रभावाणां लोहितवहानां स्रोतसां

लोहिताभिप्यन्दगुरुणिमुखान्या  
मायप्रतिपद्यतेतदेवलोहितद्रूपय  
ति ॥ २ ॥

जब वह प्रमाणको लंब जाताहै तब  
हुपिन हुआ पित्त शरीरमें फैलता हुआ  
जिम यकृत, ग्रीहमें, उत्पन्न लोहित वाह  
न्यांतोके लोहितके अभिप्यंदसे गुरु  
( भारी ) हुये मुखोंपर जाकर प्राप्त होताहै  
उसकेही लोहितको दूषित करताहै ॥ २ ॥

संसर्गान्तलोहितप्रदूषणालोहितग  
न्धवर्णानुविधानाच्चपित्तलोहित  
मित्याचक्षते ॥ ३ ॥

संसर्गसे भीतरके लोहितको दूषित  
करनेसे और लोहितके समान गंध वर्णके  
करनेसे पित्तकोभी लोहित कहतेहैं ॥ ३ ॥

तस्येमानिपूर्वरूपाणि । तद्यथा ।  
अनन्नाभिलापोभुक्तस्यविदाहः  
शुक्लाग्निरसगन्धस्योद्गारश्छर्दःअ  
भीक्ष्णागमनंछर्दितस्यवीभत्सता  
स्वरभेदोगात्राणांसदनंपरिदाहश्च  
मुखाद्भूमागमइवलोहलोहितम  
त्स्यामगन्धित्वमपिचास्यस्यरक्त  
हरितहारिद्रवत्वमङ्गावयवशक्त  
न्मूत्र-स्वेदलालाशिंघानकास्यक  
र्णमल-पिडकानामङ्गसंवेदनालो  
हितनीलपीतश्यावानामर्चिष्मता

अरूपाणांस्वमदर्शनमभीक्ष्णमि  
तिलोहितपित्तपूर्वरूपाणि ॥ ४ ॥

उसके जो पूर्वरूपहैं वे ये हैं कि, अन्नकी  
अनिच्छा, भुक्तका विदाह, शुक्त अम्लर  
सगंधकी अत्यंत छर्दीका वारंवार आना,  
छर्द करके डरना, स्वरभेद, गात्रोंका  
सदन और दाह मुखसे धूमतुल्यका  
आना, लोह लोहितमत्स्य इनके समान  
आमगंधि और इसके रक्त हरित हरि-  
द्राके समान, अंगके अवयव मल मूत्र  
स्वेद लाला शिंघानक मुख कर्णके मल,  
पिड कोलिका पिडका हो जातेहैं अंगमें  
संवेदना ( पीडा ) होतीहै, लोहित नील  
पीत श्यावरूपोंका और प्रकाशमान  
रूपोंका वारंवार स्वप्नमें दर्शन, ये लोहित  
पित्तके पूर्वरूपहैं ॥ ४ ॥

उपद्रवास्तुखलुदौर्बल्यारोचका  
विपाकश्वासकासज्वरातीसारशो  
फशोपपाण्डुरोगस्वरभेदाः ॥ ५ ॥

और उपद्रव तो ये निश्चितहैं कि  
दुर्बलता अरोचक अविपाक श्वास कास  
ज्वर अतीसार शोफ शोप पांडुरोग स्वर-  
भेद ये होतेहैं ॥ ५ ॥

मागौपुनरस्यद्वौऊर्द्ध्वाधश्चतद्व  
हुश्लेष्मणिशरीरेश्लेष्मसंसर्गादूर्द्ध्व  
प्रपद्यमानंकर्णनासिकानेत्रास्येभ्यः  
प्रच्यवते । बहुवातेतुशरीरेवात  
संसर्गादधःप्रपद्यमानंमूत्रपुरीषमा

गर्भ्यांप्रच्यवते । बहुवातश्लेष्म  
णितुशरीरेश्लेष्मवातसंसर्गाद्वाव  
पिमार्गौप्रपद्यते । तौमार्गौप्रपद्य  
मानंसर्वेभ्यएवयथोक्तेभ्यःस्वेभ्यः  
प्रच्यवतेशरीरस्य ॥ ६ ॥

मार्ग इसके दो हैं ऊपर और नीचे,  
तिसी प्रकार अधिक श्लेष्मी जो हैं उनके  
श्लेष्माके संसर्गसे ऊपरको प्राप्त हुआ  
कफ कर्ण नासिका नेत्र मुख इनमेंसे  
गिरताहै, अधिक वातसे वह कफ शरीरमें  
श्लेष्मावातके संसर्गसे नीचे प्राप्त  
हुआ मूत्र और मलके मार्गमेंसे गिरताहै  
वह वातके श्लेष्ममें तो शरीरमें श्लेष्म  
वातके संसर्गसे दोनोंभी मार्गोंको प्राप्त  
हो जाता है उन दोनों मार्गोंमें प्राप्त  
हुआ संपूर्णभी पूर्वोक्त छिद्रोंसे निकस-  
ता है ॥ ६ ॥

तत्रयदूर्ध्वभागंतत्साध्यंविरेचनो  
पक्रमणीयत्वाद्द्वौषधत्वाच्च ७  
उसमें शरीरका जो ऊर्ध्व भाग है  
वह साध्य है विरेचनसे उपक्रमयोग्य  
होनेसे और उसकी बहुत औषध है ७ ॥

यदधोभागंतद्याप्यंवमनोपक्रमणी  
यत्वात्अल्पौषधत्वाच्च ८ ॥

जो कफ अधोभागमें गिरता है वह  
याप्य है क्योंकि उसका वमन उपक्रमहै  
और अल्प औषध है ८ ॥

यदुभयभागंतदसाध्यंवमनविरेच  
नायोगित्वादनौषधत्वाच्च ९ ॥

जो दोनों भागमें गिरताहै वह असाध्य  
है, क्योंकि वमन और विरेचनका अयो-  
गीहै और उसकी कोई औषध नहींहै ९ ॥

रक्तपित्तप्रकोपस्तुखलुपुरादक्षय  
ज्ञध्वंसेरुद्रकोपामर्षाग्निनाप्राणि  
नांपरिगतशरीरप्राणानामनुज्वर  
मभवत् ॥ १० ॥

रक्तपित्तका प्रकोप तो निश्चय  
पहिले दक्षकी यज्ञके ध्वंसमें रुद्रके कोप  
और अमर्षके अग्निसे प्राणियोंके शरीर  
गत प्राण होगये थे उनमें ज्वरके पीछे  
उत्पन्न हुआथा ॥ १० ॥

तस्याशुकारिणोदावाग्नेरिवापति  
तस्यात्ययिकस्याशुप्रशान्तौयति  
तव्यमात्रादेशंकालञ्चाभिसमीक्ष्य  
सन्तर्पणेनापतर्पणेनवामृदुमधुर  
शिशिरतिक्तकषायैरभ्यवहार्यैः  
प्रदेहपरिषेकावगाहसंस्पर्शनैर्वमना  
यैर्वातत्रावहितेनेति ॥ ११ ॥

उस शीघ्रकारी, दावाग्निके समान,  
आगत, प्राणघातक, को शांतिमें शीघ्र-  
यत्न करना चाहिये, और मात्रा देश  
काल इनको देखकर असंतर्पणसे वा  
अपतर्पणसे मृदु मधुर शिशिर तिक्त  
कषाय इनसे भोजनयोग्य प्रदेह परि-  
षेक अवगाह संस्पर्शन इनसे वा वमन  
आदिसे सावधान होकर यत्न करै ११ ॥

तत्र श्लोकाः ।

साध्यंलोहितपित्तंतद्यदूर्ध्वप्रतिप  
द्यते । विरेचनस्ययोगित्वाद्बहु  
त्वाद्देपजस्यच ॥ १२ ॥

उसमें ये श्लोकहैं, कि, वह लोहित  
पित्त साध्य है जो ऊपरको जाता है  
और वह विरेचनके योग्य है और उसकी  
औषध बहुतहैं ॥ १२ ॥

वमनंनहिपित्तस्यहरणेश्छ्रेष्ठमुच्य  
ते । यश्चतत्रानुगोवायुस्तच्छान्तौ  
चावरंमतम् ॥ १३ ॥

पित्तके हरनेमें वमन श्रेष्ठ नहीं कहा  
है, और जो उसमें वायुका अन्वय है  
उसकी शांतिमें भी अवर ( न्यून )  
मानाहै ॥ १३ ॥

स्याच्चयोगावहंतत्रकषायंतित्तका  
निच । तस्माद्याप्यंसमाख्यातं  
यद्रक्तमनुलोमगम् ॥ १४ ॥

और उसमें योगकारी कषाय तित्त  
औषधहैं, तिससे वह व्याप्य कहा है जो  
रक्त अनुलोम गामीहै ॥ १४ ॥

रक्तन्तुयदधोभागंतद्याप्यमिति  
निश्चयः । वमनस्याल्पयोगित्वा  
दल्पत्वाद्देपजस्यच ॥ १५ ॥

जो रक्त अधोभागगामी है वह  
याप्य है यह निश्चयहै क्योंकि वह वमन  
का अल्पयोगी है और उसकी औषध  
अल्प हैं ॥ १५ ॥

रक्तपित्तन्तुयन्मार्गौद्वावपिप्रतिप  
द्यते । असाध्यमपितज्ज्ञेयंपूर्वो  
क्तादपिकारणात् ॥ १६ ॥

और जो रक्तपित्त दोनों मार्गोंको  
प्राप्त होताहै वह पूर्वोक्त भी कारणसे  
असाध्य जानना ॥ १६ ॥

नहिसंशोधनंकिञ्चिदस्त्यस्यप्रति  
मार्गगम् । प्रतिमार्गश्चहरणंरक्त  
पित्तेविधीयते । एवमेवोपशमनं  
सर्वशोनास्यविद्यते ॥ १७ ॥

प्रतिमार्गमें गामी इसका कोई संशो-  
धन नहीं है रक्तपित्तमें प्रति मार्ग हरण  
कहा है इसी प्रकार इसकी सर्वथा शांति  
नहीं है, ॥ १७ ॥

संसृष्टेषुचदोषेषुसर्वजिच्छमनंमत  
म् ॥ १८ ॥

और संसृष्ट ( मिले ) दोषोंमें सर्व  
जित्त शमन कहा है ॥ १८ ॥

इत्युक्तंत्रिविधोदकैरक्तंमार्गविशे  
षतः ॥ १९ ॥

यह तीन प्रकारका उदकपित्त मार्ग-  
के विशेषोंसे कहा है ॥ १९ ॥

एभ्यस्तुखलुहेतुभ्यःकिञ्चित्सा  
ध्यंनसिध्यति । प्रेष्योपकरणाभा  
वादौरात्म्याद्वैद्यदोषतः । अक  
र्मतश्चसाध्यत्वंकश्चिद्रोगोऽतिव  
र्त्तते । २० ॥

इन कारणोंसे तो किंचित् साध्यभी सिद्ध नहीं होता कि सेवक और उपकरणका अभाव दुरात्मता वैद्यका दोष-अकर्मसे भी कोई रोग साध्यताका अवलंघन करता है ॥ २० ॥

तत्रासाध्यत्वमेकस्यात्साध्ययाप्यपरिक्रमात् । रक्तपित्तस्यविज्ञानमिदंतस्योपदेक्ष्यते ॥ २१ ॥

उसमें साध्य एक होता है साध्य और याप्यके परिक्रमसे यह रक्त पित्तका निदान उपदेश करते हैं ॥ २१ ॥

यत्कृष्णमथवानीलंयद्वाशक्रधनुष्रभम् । रक्तपित्तमसाध्यंतद्वाससोरजनश्चयत् ॥ २२ ॥

कि जो रक्त कृष्ण हो नील हो वा शक्रके धनुषकी कांतिका हो और जो वस्त्रोंका रंजन हो ॥ २२ ॥

भृशंपूत्यतिमात्रश्चसर्वोपद्रववच्चयत् । बलमांसक्षयेयच्चतच्चरक्तमसिद्धिमत् ॥ २३ ॥

वह असाध्य है, जो अत्यंत अधिक हो वा दुर्गंधि वा अतिमात्र हो और जो सब उपद्रवोंसे युक्त हो जो बल और मांसका नाशक हो वह भी रक्त असाध्य है ॥ २३ ॥

येनचोपहतोरक्तंरक्तपित्तेनमानवः । पश्येद्दृश्यंविद्यच्चैवतच्चासाध्यमसंशयम् ॥ २४ ॥

जिस रक्तपित्तसे उपहत मनुष्य दृश्य पदार्थको वा आकाशको रक्त देखे वह असाध्य है इसमें संशय नहीं है ॥ २४ ॥

तत्रासाध्यंपरित्याज्यंयाप्यंयत्नेनयापयेत् । साध्यश्चावहितःसिद्धैर्भेषजैःसाधयेद्विषक् ॥ २५ ॥

उनमें असाध्य त्यागने योग्य है याप्यको यत्नसे दूर करावे और साध्यको वद्य सावधान होकर सिद्ध औषधियोंसे साधन करे, इति ॥ २५ ॥

तत्रश्लोकौ ।

कारणं नामनिर्वृत्तिपूर्वरूपाण्युपद्रवान् । मार्गोदोषानुबन्धश्चसाध्यत्वंनचहेतुमत् ॥ २६ ॥

उसमें ये दो श्लोक हैं कि कारण और उत्पत्ति पूर्वरूप उपद्रव दो मार्ग और दोषोंका अनुबन्ध साध्य और हेतुसे जो नहीं ॥ २६ ॥

निदानेरक्तपित्तस्यव्याजहारपुनर्वसुः । वीतमोहरजोदोषलोभमानमदस्पृहः ॥ २७ ॥

इति अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेरक्तपित्तनिदानं नामद्वितीयोऽध्यायः ।

इन सबका रक्तपित्तके निदानमें मोह, रजका दोष लोभ, मान, मद, स्पृहा इनसे रहित पुनर्वसुने वर्णन करा है ॥ २७ ॥  
इति रक्त पित्त निदानं समाप्तम् २

तृतीयोऽध्यायः ।

अथानोगुल्मनिदानं व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

इसके अनंतर गुल्मनिदानका वर्णन करते हैं यह भगवान् आत्रेय कहते भये—

इहस्वलुपश्चगुल्माभवन्ति । तय  
था—वातगुल्मःपित्तगुल्मःश्लेष्म  
गुल्मानिचयगुल्मःशोणितगुल्म  
इति ॥ १ ॥

इहां निश्चयसे पांचगुल्म होते हैं वे ऐसे हैं कि वातगुल्म पित्तगुल्म श्लेष्म गुल्म निचयगुल्म शोणितगुल्म ॥ १ ॥

एवंवादिनंभगवन्तमात्रेयमग्निवेश  
उवाचकथमिहभगवन् ! पश्चानां  
गुल्मानांविशेषमभिजानीमहे । न  
ह्यविशेषविद्भोगाणामौषधविदपि  
भिषक्प्रशमनसमर्थइति ॥ २ ॥

इस प्रकार कहते हुये भगवान् आत्रेयके प्रति अग्निवेश बोले, कि हे भगवन् यहां हम पांचगुल्मोंके प्रत्येक विशेषको कैसे जानें रोगोंके संबंध विशेषका अज्ञानी औषधोंका ज्ञाताभी वैद्य रोगोंके प्रशमनमें असमर्थ होता है ॥ २ ॥

तमुवाचभगवानात्रेयः । समुत्था  
नपूर्वरूपलिङ्गवेदनोपशयविशे

पेभ्यांविशेषविज्ञानंगुल्मानांभव

त्यन्येषाश्चरोगाणामग्निवेश ! त

तुस्वलुगुल्मेपुडच्यमानंनिबोध ३ ॥

उस अग्निवेशके प्रति भगवान् आत्रेय बोले कि समुत्थान पूर्वरूप लिङ्ग वेदना उपशय विशेषोंसे गुल्मोंका और अन्य रोगोंका हे अग्निवेश विशेषविज्ञान होताहै तिससे गुल्मोंमें तू मानको मुन ॥ ३ ॥

यदापुरुषोवातलोविशेषेणज्वरव  
मनविरेचनातीसाराणामन्यतमेन  
कर्शनेनकर्शितोवातलमाहारमा  
हरतिशीतंवाविशेषेणातिमात्रस्ते  
हपूर्वे वा वमनविरेचनेपिवत्यनुदी  
र्णान्वातमूत्रपुरीषवेगान्निरुण  
द्धिअत्यशितोवापिवतिनवोदक  
मतिमात्रमतिमात्रसंक्षोभिणावा  
यानेनयातिअतिव्यवायव्यायाम  
मथरुचिर्वाभिघातमिच्छतिवा  
विषमाशनशयनस्थानचंक्रमणसे  
र्वावाभवतिअन्यद्वाकिञ्चिदेवंवि  
धंवाअतिमात्रंव्यायामजातंवा  
आरभतेतस्यापचाराद्वातःप्रको  
पमापद्यते ॥ ४ ॥

ओ वो वातल पुरुष विशेषतासे, ज्वर, वमन, विरेचन अतीसार इनमेंसे किसीसे कर्शनसे कृशमनुष्य वातल

आहारको वा अतिशीत भोजनको विशेषकर वा अधिक खाताहै और पहिले स्नेहके बिना खाताहै वमन विरेचन करताहै और अल्प छर्दिको करता है और बढेहुये वात मूत्र पुरीषके वेगको रोकताहै और वा आति भोजन करके जलको पीताहै, वा नवीन जलको अधिक पीता है और अत्यंत क्षोभके कर्ता यानमें चलताहै, अधिक व्यायाम व्यायाम मद्यमें रुचि रखता हो अभिघातको चाहता हो वा विषम आसन शयन स्थान चंक्रमण इनका सेवन करताहो वा अन्य किंचित् इसी प्रकारके विष अत्यंत व्यायाम आदिका आरंभ करै उसके अपचारसे वायु कोपको प्राप्त हो जाताहै ॥ ४ ॥

सप्रकुपितो महास्रोतोऽनुप्रविश्य रौक्ष्यात्कठिनीकृत्याप्लुत्यपिण्डितोऽवस्थानं करोति । हृदिवस्तौ पाश्वर्योर्नाभ्यां वा सशूलमुपजनयति । स वातजन्याननेकविधान् वेदना विशेषान् जनयति ग्रन्थींश्चानेकविधान् । पिण्डितश्चावतिष्ठते स पिण्डितत्वाद्गुल्मइत्युपचर्ग्यते ५

प्रकुपित हुआ वह बड़े २ स्रोतोंमें प्रविष्ट होकर और रूक्षतासे कठिनकर आप्लवन करके पिंड होकर टिक जाता है वह हृदय वस्ति पार्श्व नाभि इनमें शूलको पैदा करताहै और वातसे उत्पन्न

अनेक प्रकारकी पीड़ाको करताहै और अनेक प्रकारकी ग्रंथियोंको करताहै और पिंड हुआ टिक जाताहै उसको पिंड होनेसे गुल्म इस नामसे बोलतेहैं ॥ ५ ॥

समुहुरादधातिमुहुरल्पत्वमापद्यते अनियतवेदनाच्चलत्वाद्वायोःपिपीलिकासंप्रकीर्णइवतोदस्फुरणाया मसङ्कोचहर्षप्रलयोदयबहुलस्त दातुरश्च सूच्येव शंकुनेव चातिविद्धमात्मानं मन्यतेऽपिचदिवसान्ते ज्वर्यं तेशुष्यति चास्यास्य मुच्छ्वा सश्चोपरुध्यते हृष्यन्ति रोमाणि वेदनायाः प्रादुर्भावेऽपि हाटोपान्त्रकूज विपाकोदावर्त्ताङ्गमर्दमन्याशिरः शंखशूलवध्नरोगाश्चैनमुपद्रवन्ति कृष्णारुणपरुषत्वङ्नखनयनवदनमूत्रपुरीषश्च भवति निदानोक्ता निचास्यनोपशेरते विपरीतानि चोपशेरत इति वातगुल्मः ॥ ६ ॥

वह बारंवार बढताहै बारंवार सूक्ष्म, होजाताहै वेदनाका अनियम होनेसे वायुके चंचल होनेसे पिपीलिका (चींटी) ओंसे संकीर्णके समान तोद स्फुरण आयाम संकोच हर्ष प्रलय उदय ये अधिक होतेहैं उस समय आतुर सूचीके और शंकुके समानसे विंधा हुआ अपने देहको मानताहै और दिनके अंतमें

ज्वगित होजाताहै इसका मुख सूख जाता है और ऊर्ध्वश्वास, रुक जाताहै रोमोंमें हर्ष वेदनाके होनेसे प्लीहा, आटोप, अंत्र-कट, अविपाक, उदावर्त, अंगमर्द मन्धा, शिर और शंखोंमें शूल ब्रध्नरोग येभी सब रोग इसमें उपद्रव करते ( आते ) हैं, कृष्ण, अरुण, परुष, त्वचा और नख, नेत्र मुख, मूत्र, पुरीष, होजातेहैं और निदानमें उक्त लिंग, इसमें नहीं होते और विपरीत होजातेहैं इति वात, गुल्मः ॥ ६ ॥

तैरेवतुर्कषणैःकर्पितस्याम्ललवणकटुकक्षारोष्णतीक्ष्णशुष्कव्यापन्नमद्यहरितकफलाम्लानांविदाहिनाश्चशाकमांसानामुपयोगादजीर्णाध्यशनाद्रौक्ष्यानुगतेचाभाशयेवमनविरेचनमतिवेलसन्धारणंवातातपौचातिसेवमानस्यपित्तंसहमारुतेनप्रकोपमापद्यते ॥ ७ ॥

उन्ही कर्षणोंसे कर्पित मनुष्यके अम्ल लवण कटु क्षार उष्ण तीक्ष्ण शुष्क व्यापन्न मद्य हरेफल और अम्ल जो विदाहीहैं उन शाक और मांसोंके उपयोगसे अजीर्ण अध्यशन रूक्षता इनके अनुयायी आमाशयके होनेपर अनेक बार वमन विरेचन अतिवेग संधारण और वात आतप इनके अत्यंत सेवकके मारुत सहित पित्त कोपकी प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥

तत्प्रकुपितंमारुतआमाशयैकदेशे

संवर्त्यतानेववेदनाप्रकारानुपजनयति ये उक्ता वातगुल्मेपित्ततेनाविदहतिकुक्षौहृद्युरसिकण्ठेवासविदह्यमानःसधूमामिवोद्गारमुद्गिरत्यम्लान्वितंगुल्मावकाशश्चास्यदह्यते दूयते धूप्यते उष्मायते स्विद्यति क्लियति मृदुशिथिल इव चास्पर्शा सहोऽल्परोमाश्चोभवति ज्वरभ्रम दवथुपिपासा गल वदनतालुशोषप्रमोहविड्भेदाश्च भवन्ति । हरित हारिद्रत्वङ्नखनयनवदनमूत्रपुरीषश्च भवति निदानोक्तानि चास्यनोपशेरेते विपरीतानि चास्यचोपशेरत इति पित्तगुल्मः ॥ ८ ॥

उससे कुपित मारुत आमाशयके एक देशमें संवर्त ( इकट्ठा ) कर के उन्हीं वेदनाओंके प्रकारोंको पैदा करताहै जो वातगुल्ममें कहीहैं पित्त तो इसको कुक्षि हृदय छाती वा कंठमें दग्ध करताहै दग्ध हुआ वह धूमके समान उद्गारोंको उगलताहै और अम्लसे युक्त इसके गुल्मका अवकाश, दग्ध कंषित ऊपित स्वेदयुक्त क्लेदित होताहै मृदु और शिथिलके समान स्पर्शको न सहै और अल्परोमवान् हो जाताहै और ज्वर भ्रम दवथु ( दुःख ) पिपासा गल मुखका शोषण, प्रमोह विट्का भेदन ये सब होतेहैं, हरे और हलदीसे, त्वचा नख



नेत्र मुख मूत्र और पुरीष होजातेहैं और निदानमें उक्त लिंग इसमें नहीं होते और विपरीत होतेहैं इति पित्तगुल्मः ॥ ८ ॥

तैरेवतुर्कषणैःकर्षितस्यात्यशनात् स्निग्धगुरुमधुरशीताशनात्पिष्टेक्षु क्षीरमापतिलगुडविकृति-सेवनमद्यपानाद्धरितकातिप्रणनयादानूपौदकग्राम्यमांसातिभक्षणात्सन्धारणादतिसुहितस्यचातिप्रगाढमुदकपानात्संक्षोभणाद्वाशरीरस्यश्लेष्मासहमारुतेनप्रकोपमापद्यते ॥ ९ ॥

उन्ही कर्षणोंसे कृश मनुष्यके अत्यंत भोजनसे, स्निग्ध गुरु मधुर शीत भोजनसे, पिष्ट इक्षुके विकार दूध उड़दके विकार इनके सेवनसे मादक अतिक्रांत (पुराने) मद्यपान इनसे हरित पदार्थोंमें अत्यंत प्रीतिसे अनूपजलका ग्राम (समूहसे) और मांसके अति भक्षणसे संधारणसे अत्यंत भली प्रकार तृप्तिके होनेसे अत्यंत गाढ जलके पानसे संक्षोभसे शरीरका श्लेष्मा, मारुतकेसंगकोपको प्राप्त होजाताहै ॥ ९ ॥

तंप्रकुपितंमारुतआमाशयैकदेशो संवर्त्यतानेववेदनाप्रकारानुपजनयतियउक्तावातगुल्मे । श्लेष्मा त्वस्यशीतज्वरारोचकाविपाका

ङ्गमर्दहर्पहृद्रोगछर्दिनिद्रालस्य स्तैमित्यगौरवशिरोऽभितापानुपजनयति ॥ १० ॥

अपिच—

प्रकुपित हुए उस कफको मारुतके एक देशमें इकट्ठा करके उन्ही वेदनाके प्रकारोंको पैदा करताहै जो वात गुल्ममें कहेंहैं और इसका कफ शीतज्वर अरोचक अविपाक अंगमर्द हर्प हृद्रोग छर्दि निद्रा आलस्य स्तैमित्य गौरव शिरका अभिताप इनको पैदा करताहै ॥ १० ॥

गुल्मस्यस्थैर्यगौरवकाठिन्यावगाढसुप्तताःतथाकासश्वासप्रतिश्यायान् राजयक्ष्माणश्चातिप्रवृद्धःश्वेत्यंत्वङ्मनस्वनयनवदनसूत्रपुरीषेषु उपजनयति । निदानोक्ता निचास्यनोपशेरतेतद्विपरीतानि चोपशेरतइतिश्लेष्मगुल्मः । त्रिदोषहेतुलिङ्गसन्निपातानुसान्निपातिकंगुल्ममुपदिशन्तिकुशलाः । सप्रतिषिद्धोपक्रमत्वादसाध्योनिचयगुल्मः ॥ ११ ॥

और गुल्म, स्थिरता गौरव कठिनता और अधिक सुप्तताको तिसीप्रकार कास, श्वास, प्रतिश्यायोंको राजयक्ष्माको और अत्यंत बढाहुआ श्वेतताको त्वचा, नख, नेत्र, मुख, मूत्र पुरीषोंमें पैदा

करताहै और निदानमें उक्त इसमें नहीं  
होते और उससे विपरीत होतेहैं इनि श्लेष्म  
गुल्मः त्रिदोषके हेतु लिंगोंके संयो-  
गसे तो सन्निपातके गुल्मको कुशल वैद्य  
कहतेहैं वह निषिद्ध उपक्रमसे साध्य  
निचयगुल्मः होताहै ॥ ११ ॥

शोणितगुल्मस्तुखलुच्चियाणवभव  
तिनपुरुषस्य । गर्भकोष्ठार्तवाग  
मनवैशेष्यात् ॥ १२ ॥

और गर्भके कोष्ठमें आर्तव ( रज )  
रुधिर आगमनकी विशेषतासे शोणित-  
गुल्म तो स्त्रीके ही होताहै और पुरुषके  
नहीं ॥ १२ ॥

पारतन्व्यादवैशारद्यात्सततमुप  
चारानुरोधाद्वेगानुदीर्णानुपुरुन्ध  
न्याआमगर्भेवापिअचिरात्पति  
तेतथाप्यचिरप्रजातायाऋतौवा  
वातप्रकोपनान्यासेवमानायावात  
प्रकोपमापद्यते ॥ सप्रकुपितोयो  
न्यामुखमनुप्रविश्यार्तवमुपरुणद्धि  
मासिमासितदार्तवमुपरुध्यमानंकु-  
क्षिमभिर्वर्द्धयति ॥ १३ ॥ १४ ॥

परतंत्र अविशारदता ( कुचैलता ) से  
निरंतर अपचारसे अनुरोधसे बड़े हुएवेगों  
का उपरोध ( रोक ) करती हुयी के,  
आमगर्भके अचिरसे अर्द्धपतित होनेपर,  
और चिरकालकी प्रसूताके ऋतुमें वातके  
कोपसे उक्त पदार्थोंके सेवनसे वात कोपको

प्राप्त हो जाताहै कुपित हुआ वह योनिके  
मुखमें प्रविष्ट होकर रजोधर्मका अवरोध  
करताहै मास २ में उपरोधको प्राप्त  
हुआ रजोधर्म कुक्षिको बड़ा देता  
है ॥ १३ ॥ १४ ॥

तस्याःशूलकासातीसारछर्द्य-  
रोचकाविपाकाङ्गमर्दनिद्रालस्य  
कफप्रसेकाःसमुपजायन्तेस्तनयो  
श्चस्तन्यमोष्ठयोःस्तनमण्डलयो  
श्चकाष्ण्यग्लानिःचक्षुषोर्मूर्च्छा  
हृल्लासोदोहदःश्वयथुःपादयोरीप  
चोद्गमोरोमराज्यायोन्याश्चाजन  
नत्वमपिचयोन्यादौर्गन्ध्यमास्त्रा  
वश्चोपजायते ॥ १५ ॥ केव  
लश्चास्यागुल्मःस्पन्दतेतामगर्भांग  
भिर्णिमीमित्याहुर्मूढाः ॥ १६ ॥

उस स्त्रीके शूल कास अतीसार छर्दि  
अरुचि अविपाक अंगमर्द निद्रा आलस्य  
कफ प्रसेक हो जातेहैं, स्तनोंमें स्तन्य  
ओष्ठ और स्तनमंडलमें कृष्णता नेत्रोंमें  
ग्लानि मूर्च्छा हृल्लास दोहदमें श्वयथु  
( वृद्धि ) पादोंमें किंचित् रोमपंक्ति यो-  
निमें जालका अभाव होताहै और योनिकी  
आदिमें दुर्गंध और आस्त्राव होताहै,  
केवल उपगुल्मही चलताहै उसको मूढ  
सगर्भा गर्भिणी कहतेहैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

एपांतुखलुपञ्चानांगुल्मानांप्राग  
भिनिर्वृत्तेरिमानिपूर्वरूपाणि । त

यथा ।—अनन्नाभिलपणमरोच  
काविपाकावग्निवैषम्यंविदाहोभु  
क्तस्यपाककालेचायुक्त्याछर्दिर्  
द्गारोवातमूत्रपुरीषवेगाणामप्रादु  
र्भावःप्रादुर्भूतानाश्चाप्रवृत्तिःसङ्गः  
ईषदागमनंवावातशूलआटोपान्त्रकू  
जनपरिहर्षणाभिवृत्तपुरीषताअबु  
भुक्षादौर्बल्यंसौहित्यस्यचासहत्व  
मितिगुल्मपूर्वरूपाणि ॥ १७ ॥

उन पांचों गुल्मोंमें उत्पत्तिसे पूर्व  
निश्चयसे जो रूप होतेहैं वे ये हैं, कि  
अन्नकी अनिच्छा अरुचि अविपाक  
अग्निमें विषमता विदाह, भोजनके विपा-  
कके समय और अयुक्तिसे छर्दि उद्गार,  
वात मूत्र पुरीष इनके वेगका न होना और  
होनेपरभी अप्रवृत्ति संग ईषत् आना, वात-  
शूल आटोप अंत्रकूट इनमें हर्षका न होना  
पुरीषमें वृत्तभाव ( कठिनता ) बुभुक्षा  
दुर्बलता सांहित्य ( संघ ) को न सहना  
ये गुल्मके पूर्वरूप होते हैं ॥ १७ ॥

सर्वेष्वपिचगुल्मेपुनक्श्चिद्वाताह  
तेसम्भवति । गुल्मस्तेषांसन्निपा  
तजमसाध्यंज्ञात्वानोपक्रमेत् । ए  
कदोषजेतुयथास्वमारम्भंप्रणयेत्  
संसृष्टांस्तुसाधारणेनकर्मणोपच  
रेत् ॥ १८ ॥

संपूर्णभी गुल्मोंमें वातके विना कोई  
गुल्म नहीं होताहै, उनमें सन्निपातसे उत्पन्न  
असाध्य है यह जानकर उपक्रम न करै,  
एक दोषसे उत्पन्नमें तो यथाधन आरंभ  
करावै, संसृष्टोंका तो साधारण कर्मसे  
उपचार करै ॥ १८ ॥

यद्वाअन्यदप्यविरुद्धमन्येत तदव  
चारयेद्विभज्यगुरुलाघवमुपद्रवा  
णांसमीक्ष्यगुरुपद्रवांस्त्वरमाणःचि  
कित्स्येज्जघन्यमितरांस्त्वरमाण  
स्तुविशेषमुपलभ्यगुल्मेष्वात्ययि  
केकर्मणिवातचिकित्सितंप्रणयेत् ॥ १९ ॥

और जो अन्यकोभी अविरुद्ध मानै  
उसकोभी उपद्रवोंके गुरु लाघवको देख-  
कर विभागसे करै, गुरु उपद्रवोंकी शीघ्र  
चिकित्सा करै, इतरोंमें तो शीघ्रतासे  
अल्प विशेषको देखकर करै, और  
गुल्मोंमें आवश्यक कर्मके विषे वात  
की चिकित्सा करै ॥ १९ ॥

स्नेहस्वेदौवातहरौस्नेहोपसंहितश्च  
मृदुविरेचनंवस्तीनम्ललवणमधु  
रांश्चरसान्युक्तितोऽवचारयेत्मा  
रुतेह्युपशान्तेस्वल्पेनापिप्रयत्नेन  
शक्यमन्योऽपिदोषोनियन्तुं  
ल्मेष्वाति ॥ २० ॥

स्नेह स्वेद ये दोनों वातहरहैं और  
स्नेहमिला मृदुविरेचन करावै, बस्तिमें  
अम्ल लवण मधुर रसोंका अवचारण

( प्रवेग ) करावै, वातके शांत होनेपर स्वल्पभी प्रयत्नसे अन्यभी दोष गुल्मोंमें शांत करनेका शक्यहै—इति ॥ २० ॥

तत्र श्लोकौ ।

गुल्मिनामनिलशान्तिरुपायैःसर्व  
शोविधिवदाचरितव्या । मारुते  
ह्यवजितेऽन्यमुदीर्णदोषमल्पमपि  
कर्मनिहन्त्यात् ॥ २१ ॥

उक्तमें ये दो श्लोक हैं कि गुल्मरोगी पवनकी शांतिके उपायोंसे विधिपूर्वक उपचार करने योग्यहैं क्योंकि मारुतके जीतनेपर अन्य तो बड़े हुये भी दोषको अल्प कर्मभी नष्ट कर देताहै ॥ २१ ॥

संख्यानिमित्तरूपाणिपूर्वरूपमथा  
पिच । दृष्टनिदानेगुल्मानामुपदे  
शश्चकर्मणाम् ॥ २२ ॥

इति अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसं  
स्कृते गुल्मनिदानं नामतृतीयो  
ऽध्यायः ॥ ३ ॥

संख्या निमित्त रूप पूर्वरूप और कर्मोंका उपदेश यह गुल्मोंके निदानमें देखाहै ॥ २२ ॥

इति गुल्मनिदानं समाप्तम् ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

प्रमेहनिदानम् ।

अथातःप्रमेहनिदानंव्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

इसके अनंतर प्रमेहका निदान वर्णन

करते हैं; यह भगवान् आत्रेय कहते हैं कि—

त्रिदोषकोपनिमित्ताविंशतिःप्रमे  
हविकाराः,चापरेऽपरिसंख्येयाः।  
तत्रयथात्रिदोषप्रकोपःप्रमेहानभि  
निवर्त्तयतितथाव्याख्यास्यामः१

त्रिदोषका दोषहै निमित्त जिनमें ऐसे बीस प्रमेहके विकार होते हैं और अन्य तो संख्याके अयोग्य हैं उनमें जैसे त्रिदोषका कोप प्रमेहोंको पैदा करता है तिस प्रकारका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

इहखलुनिदानदोषदूष्यविशेषेभ्यो  
विकाराणांविघातभावाभावप्रति  
विशेषाभवन्ति ॥ २ ॥

यह निश्चयसे निदान दोषके जो दूष्य विशेष उनसे विकारोंका विघात, भाव, अभाव, प्रति विशेष होते हैं ॥ २ ॥

यदाह्येतेत्रयोनिदानादिविशेषाप  
रस्परंनानुबध्नन्तिअथथाप्रकर्षा  
दबलीयांसोवानुबध्नन्तिनतदावि  
काराभिनिर्वृत्तिः।चिराद्वाप्यभि  
निवर्त्तन्तेतनवोवाभवन्त्यथवाप्य  
यथोक्तसर्वलिङ्गाविपर्ययेणविप  
रीताइतिसर्वविकारविघातभावाभा  
वप्रतिविशेषाभिनिर्वृत्तिर्हेतुरुक्तः३

जब ये तीनों निदान आदि विशेष परस्पर अनुबंधको प्राप्त नहीं होते वा अयथार्थ प्रकर्षसे अवलवान् अनुबंधको प्राप्त होते हैं तब विकारोंकी उत्पत्ति नहीं होती, वा चिरकालसे होते हैं वा वे तनुभावसे होते हैं अथवा अयथोक्त यथोक्त सर्वलिंग अविपर्ययसे विपरीत होते हैं, यह सर्व विकारोंका विधात भाव अभाव प्रति विशेषोंकी उत्पत्तिरूप-हेतु कहा ॥ ३ ॥

तत्रइमेनिदानादिविशेषाःश्लेष्म निमित्तानांप्रमेहाणामाशुअग्निनि वृत्तिकराः । तद्यथा—

हायनकयवचीनकोद्दालकनैपथो त्कटमुकुन्दकमहात्रीहिप्रमोदक सुगन्धकानानवाञ्चानामतिवेलम तिप्रमाणेनोपयोगः । तथासर्पिष्म तांनवहरेणुमापसूपानांग्राम्यान् पौदकानांमांसानांशाकतिलपल लपिष्टान्नपायसकसरविलेपीक्षु विकाराणांक्षीरमन्दकदधिद्रवम धुरतरुणप्रायाणामुपयोगोमृजा व्यायामवर्जनस्वप्नशयनासनप्रस ज्ञोयश्चकश्चिद्विधिरन्योऽपिश्ले ष्ममेदोमूत्रसंजननःसर्वःसनिदान विशेषः ॥ ४ ॥

उसमें प्रमेहके ये निदान आदि विशेष श्लेष्मनिमित्तसे पैदा हुये प्रमे-

होंकी उत्पत्तिको शीघ्र करते हैं, वे ऐसे हैं कि. व्रीही जों चीनक उद्दालक नैपथ उत्कट मुकुन्दक महात्रीही प्रमोदक सुगंधक इन नवीन अन्नोंका अनेकवार अति प्रमाणसे उपयोग, तैसही घीसे युक्त नवहरेणु उड़दकी दालका, ग्रामके अनूपजलके मांसोंका शाक तेल पलल पिष्टान्न पायस कसर विलेप इक्षुके विकार इनका और दूध मंदक दधि द्रव मधु जो प्रायः तरुण हैं उनका उपयोग, मार्जन और व्यायाम-का वर्जन, स्वप्न शयन आसनका प्रसंग और जो कोई अन्यभी विधि श्लेष्म मेदा मूत्रकी जनक है वह सब निदान का विशेष है ॥ ४ ॥

बहुद्रवश्लेष्मादोपविशेषःबहुव द्धमेदोमांसश्चशरीरक्लेदःशुक्रंशो णितश्चवसामज्जालसीकारसश्चौ जःसंग्र्याताइतिदूष्यविशेषाः ५

बहुत द्रव कफ रूप दोष विशेष और अधिक बद्ध मेदा मांस, शरीरमें क्लेदः शुक्र और शोणित, वसा, मज्जा, लसीका, रस और ओज नामके दूष्य विशेष कहे हैं ॥ ५ ॥

त्रयाणामेषांनिदानादिविशेषाणां सन्निपातेक्षिप्रंश्लेष्माप्रकोपमाप द्यतेप्रागतिभूयस्त्वात् । सप्रकु पितःक्षिप्रमेवशरीरेविसृप्तिंलभते। शरीरशैथिल्यात्सविसर्पन्शरीरे

मेदसैवादितोमिश्रीभावंगच्छति ।  
मेदसश्चैववहुवृद्धत्वान्मेदसश्चगु  
णानांगुणैःसमानगुणभूयिष्ठत्वा  
त्समेदसामिश्रीभावंगच्छन्दूष  
यत्येतद्विकृतत्वात्सविकृतोदुष्टे  
नमेदसोपहितःशरीरक्लेदमांसाभ्यांसं  
सर्गगच्छति । क्लेदमांसयोर  
तिप्रमाणाभिवृद्धित्वात्समांसेमां  
सप्रदोषात्पूतिमांसपिडकाःशरा  
विकाकच्छपिकाद्याःसंजनयतिअ  
पकृतिभूतत्वाच्छरीरक्लेदंपुनर्दूष  
यन्मूत्रत्वेनपरिणमयति । मूत्रवहा  
णांस्त्रोतसांवङ्गवस्तिप्रभवाणां  
मेदःक्लेदोपहितानिगुरुणिमुखान्या  
साद्यप्रतिरुध्यते । ततःस्थैर्यसा  
ध्यतांवाजनयतिप्रकृतिविकृतिभू  
तत्वात् ॥ ६ ॥

तीन जो ये निदानआदि विशेष हैं  
इनके सन्निपातमें श्लेष्मा पहिले अत्यंत  
अधिक होनेसे शीघ्रही कोपको प्राप्त  
होजाता है कुपित हुआ वह शीघ्रही  
शरीरमें फैलताहै, शरीरकी शिथिलतासे  
फैलता हुआ वह शरीरमें पहिले मेदाके  
संगही मिश्रीभाव ( मेल ) को प्राप्त  
होताहै और मेदाको अधिक बँधी हुई  
होनेसे और मेदाके गुणोंके समान अ-  
धिक गुणवान् होनेसे वह मेदाके संग

मिश्रीभावको प्राप्त होता हुआ विकृत  
होनेसे दूषितवीर्यको करताहै, विकृत  
हुआ दुष्टमेदासे उपहित वह शरीरका  
क्लेद मांसके संग संसर्गको प्राप्त होताहै,  
क्लेद और मांसको प्रमाणसे अधिक  
वृद्धि होनेसे यह मांसके प्रदोषसे, दुर्गंध  
मांसकी पिडका, शराविका कच्छपिका  
आदियोंको पैदा करताहै और भिन्न  
प्रकृति होनेसे फिर शरीरके क्लेदको दूषित  
करता हुआ मूत्ररूप परिणामको करताहै  
मूत्रके वहनेहारे जो स्त्रोत वंक्षणवस्तिमें  
उत्पन्न हैं उनके गुरु मेदाके क्लेदसे ढके  
मुखोंपर पहुँचकर प्रातिरुद्ध ( रुक )  
हो जाता है फिर स्थिरता और साध्य-  
ताको पैदा करताहै क्योंकि वह प्रकृ-  
तिसे विकृतहै, ॥ ६ ॥

शरीरक्लेदस्तुश्लेष्ममेदोमिश्रःप्रवि  
शन्मूत्राशयेमूत्रत्वमापद्यमानःश्लै  
ष्मिकैरेभिर्दशाभिर्गुणैरुपसृज्यतेवै  
षम्यहानिवृद्धियुक्तैः । तद्यथा,—  
श्वेतशीतमूर्त्तपिच्छिलाच्छस्निग्ध  
गुरुमधुरसान्द्रप्रसादगन्धैस्तत्रये  
नगुणेनैकेनानेकेनवाभूयस्तरमुप  
सृज्यतेतत्समाख्यंगौणानामवि  
शेषंप्रामोति ॥ ७ ॥

शरीरका क्लेदतो श्लेष्ममेदासेमिला हुआ  
प्रविष्ट होकर मूत्राशयमें मूत्ररूप हुआ

श्लेष्मके इन दश गुणोंसे युक्त हो जाता है, जो गुण विपमता हानि वृद्धिसे युक्त हैं वे ऐसे हैं कि श्वेत शीतमूर्त पिच्छिल अच्छ स्निग्ध गुरु मधुर सांद्र प्रसाद, वहां जिस एक गुणसे वा किसीसे अत्यंत अधिक संसर्गको प्राप्त होता है उसकेही समान नामके गुण नाम विशेषको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

तेतुखलुइमेदशप्रमेहानामविशेषेण भवन्ति । तथा उदकमेहश्चक्षुमेहश्चसान्द्रमेहश्चसान्द्रप्रसादमेहश्च शुक्लमेहश्चशुक्रमेहश्चशीतमेहश्च सिकतामेहश्चशनैर्महश्चलालामेहश्चेति ॥ ८ ॥

वे ये प्रमेह नाम विशेषसे दश होते हैं, कि उदकमेह, इक्षुमेह, सांद्रमेह, सांद्रप्रसादमेह, शुक्लमेह, शुक्रमेह, शीतमेह, सिकतामेह, शनैर्मह, लालामेह, ॥ ८ ॥

तेदशप्रमेहाः साध्याः समानगुणभेदः स्थानत्वात् कफस्य प्राधान्यात् समानक्रियत्वाच्च ॥ ९ ॥

वे दश प्रमेह साध्य होते हैं क्योंकि वे समान गुण भेदास्थानमें हैं और कफ प्रधान हैं और उनकी समान क्रिया है ९

तत्र श्लोकाः ।

श्लेष्मप्रमेहविज्ञानार्थाः । अच्छं बहुसितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् ।

श्लेष्मकोपात्तरोमूत्रमुदमेही प्रमेहति ॥ १० ॥

उसमें श्लेष्मप्रमेहके विज्ञानके अर्थ ये श्लोक हैं कि स्वच्छ अधिकसपेद शीतल निर्गन्ध उदकके समान मूत्रको कफके कोपसे उदकमेही मनुष्य सींचता है १०

अत्यर्थमधुरं शीतमीपत्पिच्छिलमाविलम् । काण्डेश्वरससङ्काशं श्लेष्मकोपात् प्रमेहति ॥ ११ ॥

अत्यंतमधुर शीतल ईपत्पिच्छिल आविल कांड इक्षुके रोसांके समान मूत्रको कफके कोपसे इक्षुरस मेंही करता है ॥ ११ ॥

यस्य पर्युषितं मूत्रं सान्द्रीभवति भाजने । पुरुषं कफकोपेन तमाहुः सांद्रमेहिणम् ॥ १२ ॥

जिसका पर्युषित मूत्र पात्रमें सघन हो जाय कफके कोपसे उस पुरुषको सांद्रमेही कहते हैं ॥ १२ ॥

यस्य संहन्यते मूत्रं किञ्चित्किञ्चित् प्रसीदति । सान्द्रप्रसादमेहीति तमाहुः श्लेष्मकोपतः ॥ १३ ॥

जिसका कुछ मूत्र फटजाय और कुछ प्रसन्न रहै उसको कफके कोपसे सांद्रप्रसादमेही कहते हैं ॥ १३ ॥

शुक्लं पिष्टनिभं मूत्रमभीक्ष्ण्यः प्रमेहति । पुरुषं कफकोपेन तमाहुः शुक्लमेहिणम् ॥ १४ ॥

गुह्यवर्णके समान मूत्रको जो वारं वार करै उस पुरुषको कफके कोपसे शुक्रमेही कहतेंहैं ॥ १४ ॥

शुक्राभंशुक्रमिश्रंवाहुर्महति यो नरः । शुक्रमहिणमेवाहुःपुरुषंश्लेष्मकोपतः ॥ १५ ॥

शुक्रके समान शुक्रमेहको वारंवार जो मनुष्य करताहै उस पुरुषको कफके कोपसे शुक्रमेही कहतेंहैं ॥ १५ ॥

अन्यथशीतमधुरंमूत्रंक्षरतियोभुशम् । शीतमेहिनमाहुस्तंपुरुषंश्लेष्मकोपतः ॥ १६ ॥

अत्यंत शीतल मधुर मूत्रको जो वारंवार करै उस पुरुषको कफके कोपसे शीतमेही कहतेंहैं ॥ १६ ॥

मूर्तान्मूत्रगतान्दोषानणून्मेहति योनरः । सिकतामेहिनंविद्यान्नरं तंश्लेष्मकोपतः ॥ १७ ॥

मूर्त छोटे २ कणक दोषोंको जो मनुष्य मूत्रमें करताहो उस मनुष्यको कफके कोपसे सिकतामेही कहतेंहैं ॥ १७ ॥

मन्दमन्दमवेगन्तुलच्छंयोमूत्रयेच्छनैः । शनैर्महिणमाहुस्तंपुरुषंश्लेष्मकोपतः ॥ १८ ॥

मंद २ किंचित् वेगसे शनैः २ जो मूत्रको करै उस मनुष्यको कफके कोपसे शनैर्मेही कहतेंहैं ॥ १८ ॥

तन्तुवद्धमिवालालं पिच्छिलं यः प्रमेहति । आलालमेहिनं विद्यात्तं नरंश्लेष्मकोपतः ॥ १९ ॥

तंतुओंसे बँधेके समान कुछ लाल पिच्छिल जो मूत्रको करताहै उस मनुष्यको कफके कोपसे आलालमेही कहते हैं ॥ १९ ॥

इत्येते दश प्रमेहाः श्लेष्मप्रकोपनिमिन्ना व्याख्याताः ।

उष्णाम्ल-लवण-क्षारकटुकाजीर्णभोजनोपसेविनस्तथातितीक्ष्णतपाग्निसन्तापश्रमक्रोधविषमाहारोपसेविनश्चतथात्मकशरीरस्यैवक्षिप्रं पित्तप्रकोपमापद्यते ॥ २० ॥

श्लेष्मप्रमेहके निमित्तसे पैदाहुए ये दश प्रमेह वर्णन किये उष्ण, अम्ल, लवण, क्षार, कटुक, अजीर्णभोजन, इनके सेवकके तैसेही अतितीक्ष्ण आतप, अग्निसन्ताप, श्रम, क्रोध, विषमभोजन, इनके सेवीके और तिसीप्रकारके शरीर धारीके शीघ्र पित्त प्रकोपको प्राप्त होजाताहै ॥ २० ॥

तत्प्रकुपितं तयैवानुपूर्व्या प्रमेहानि मान्पटुक्षिप्रमभिनिर्वर्तयति ॥ २१ ॥

कुपित हुआ वह उसी पूर्वोक्त क्रमसे इन छः प्रमेहोंको शीघ्रही पैदा कर देताहै २१ तेषामपिचपित्तगुणविशेषेणनाम



विशेषाः । तद्यथा-क्षारप्रमेहश्च  
कालमेहश्चनीलमेहश्चलोहितमेहश्च  
मंजिष्ठामेहश्चहरिद्रामेहश्चेतितेषु  
द्विभिरेवक्षाराम्ललवणकटुकवि-  
स्त्रोष्णैःपित्तगुणैःपूर्ववत्समान्वि-  
ताः । सर्वएवतेयाप्याःविषमगुण-  
भेदःस्थानत्वाद्विरुद्धोपक्रमत्वा-  
च्चेति ॥ २२ ॥

उनकेभी पूर्वके समान गुण विशेषसे  
नाम विशेषहैं, वे ऐसे हैं कि क्षारप्रमेह  
कालमेह नीलमेह लोहितमेह मंजिष्ठामेह  
हरिद्रमेह, वे छही क्षार, लवण, कटु,  
अम्ल, विस्त्र, उष्ण, नामके पित्तके  
गुणोंसे पूर्वके समान युक्त हुए सर्वत्र,  
याप्य होतेहैं क्योंकिउनका दोषसे संसृष्ट  
भेदास्थान है और क्रमभी विरुद्धहै॥२२॥

तत्रश्लोकाः ।

पित्तप्रमेहविज्ञानार्थाः । गन्धवर्ण-  
रसस्पर्शैर्यथाक्षारस्तथात्मकम् । पि-  
त्तकोपान्नरोमूत्रंक्षारमेहीप्रमेहति ॥

उसमें पित्तप्रमेहके ज्ञानार्थ ये श्लोकहैं  
कि गंध वर्ण रस स्पर्श इनसे जो क्षारके  
समान हो ऐसे मूत्रको पित्तके कोपसे  
क्षारमेही मनुष्य करताहै ॥ २३ ॥

मसीवर्णमजसंयोज्यमूत्रमुष्णप्रमेह-  
ति । पित्तस्यपरिकोपेनतंविद्या-  
त्कालमेहिनम् ॥ २४ ॥

स्याहीके समान वर्णके उष्णमूत्रको  
जो निरंतर करताहै उस मनुष्यको  
पित्तके कोपसे कालमेही जानना ॥२४॥

चापपक्षनिभंमूत्रमम्लमेहतियो-  
नरः । पित्तस्यपरिकोपेनतंविद्या-  
न्नीलमेहिनम् ॥ २५ ॥

चापके पक्षके समान अम्ल मूत्रको पित्तके  
परिकोपसे जो नर मंद करताहै उसको  
नीलमेही जानना ॥ २५ ॥

विस्रंलवणमुष्णश्चरक्तमेहतियो-  
नरः । पित्तस्यपरिकोपेनतंवि-  
द्याद्रक्तमेहिनम् ॥ २६ ॥

विस्र ( दुर्गंधित ) लवण उष्ण, रुधि-  
रको जो मनुष्य पित्तके कोपसे मूतताहै  
उस मनुष्यको पित्तके कोपसे रक्तमेही  
जानना ॥ २६ ॥

मंजिष्ठारूपियोऽजसंभृशंविस्त्रं  
मेहति । पित्तस्यपरिकोपात्तंवि-  
द्यान्मांजिष्ठमेहिनम् ॥ २७ ॥

मंजीठके समानरूपका जो निरंतर  
अत्यंत बारंवार विस्रमूत्रको पित्तके  
कोपसे मूतताहै उसको मांजिष्ठमेही  
जानना ॥ २७ ॥

हरिद्रोदकसङ्काशंकटुकंयःप्रमेह-  
ति । पित्तस्यपरिकोपात्तुविद्या-  
द्धारिद्रमेहिनम् ॥ २८ ॥

हरिद्राके जलके समान कटु जो  
मूत्रको पित्तके कोपसे करताहै उसको  
हारिद्रमेही जानना ॥ २८ ॥

इतिपट्प्रमेहाःपित्तप्रकोपनिमित्ता  
व्याख्याताः । कटुककषायति  
क्लृक्षलघुशीतव्यवायव्यायाम  
वमानविरेचनास्थापनशिरोविरेच  
नातियोगसन्धारणानशनाभिधा  
तातपोद्वेगशोकशोणिताभिषेक  
जागरणविषमशरीरन्यासानभ्युपसे  
वमानस्यतथात्मकशरीरस्यैवक्षि  
प्रवायुःप्रकोपमाद्यते । सप्रकुपि  
तस्तथात्मकेशरीरेविसर्पन्यदाव  
सामादायमूत्रवहानिस्रोतांसिप्रति  
पद्यतेतदावसामेहमभिनिर्वर्त्तयति ॥

ये छः प्रमेह पित्तके कोपनिमित्तसे  
उत्पन्न वर्णन किये कटु कषाय तिक्त  
रूक्ष लघु शीत व्यवाय व्यायाम वमन  
विरेचन आस्थापन शिरका विरेचन  
इनका अत्यंत योग संधारण अनशन अभि-  
धात आतप उद्वेग शोक शोणित अति सेचन  
जागरण विषम शरीरका न्यास इनके  
अत्यंतसेवकके और ऐसाही जिसका  
शरीरहो उसके शीघ्रही वायु कोपको  
प्राप्त होताहै वह प्रकुपित हुआ तथात्मक  
(तैसेही) शरीरमें फैलता हुआ जब वसाको  
लेकर मूत्रके वहनेहारे स्रोतोंमें पहुंचता  
है तब वसा मेहको पैदा करताहै ॥२९॥

यदापुनर्मज्जानंमूत्रवस्तावाकर्ष  
तितदामज्जामेहमभिनिर्वर्त्तयति ३०

और जब कभी मज्जाको मूत्र वास्तिमें  
खींचताहै तब मज्जा मेहको पैदा करती  
है ॥ ३० ॥

यदालसीकामूत्राशयेऽभिवहन्मू  
त्रमनुबन्धंश्च्योतयतिलसीकाति  
बहुत्वाद्विक्षेपणाच्चवायोःखल्व  
स्यातिमूत्रप्रवृत्तिसङ्गं करोति, त  
दा समत्तद्वगजःक्षरत्यजस्रंमूत्रम  
वेगंतंहस्तिमेहिनमाचक्षते ॥ ३१ ॥

जब लसीकाको मूत्राशयमें बहाता  
हुआ मूत्रमें मिलीहुईको गिराताहै तब  
लसीकाके अत्यंत अधिक होनेसे और  
विक्षेपणरूप वायुके होनेसे उस मनुष्यके  
निश्चयसे अत्यंत मूत्रप्रवृत्तिके संगको  
करताहै वह मत्तगजके समान निरंतर  
विनावेग मूत्र करताहै उसको हस्तिमेही  
कहतेहैं ॥ ३१ ॥

ओजःपुनर्मधुरस्वभावंतद्यपारौ  
क्ष्यात्वायुःकषायत्वेनाभिसंसृज्य  
मूत्राशयेऽभिवहतितदामधुमेहिनं  
करोति ॥ ३२ ॥

और तेजका मधुर स्वभावहै वह  
जब रूक्षतासे वायुको कषाय रूपसे  
संसर्ग करके मूत्राशयमें बहाताहै तब  
मधुमेहको करताहै ॥ ३२ ॥

तानिमांश्चतुरःप्रमेहान्वातजानसा  
ध्यानाचक्षते । महात्ययिकत्वा  
द्विप्रतिपिद्धोपक्रमत्वात्तेषामपि

चपूर्ववदगुणविशेषेणनामविशेषः ॥ ३३ ॥

तिससे इन चार वातसे उत्पन्न प्रमेहोंको असाध्य कहतेहैं क्योंकि ये महा नाशकहैं और निपिद्ध उपक्रमहैं औरभी पूर्वके समान गुणविशेषसे नामविशेष हैं ॥ ३३ ॥

तद्यथा ।

वसामेहश्चमज्जमेहश्चहस्तिमेहश्च मधुमेहश्चेति ॥ ३४ ॥

वह ये हैं कि वसामेह मज्जामेह हस्तिमेह और मधुमेह इति ॥ ३४ ॥

तत्र श्लोकाः ।

वातप्रमेहविशेषविज्ञानार्थाः ।  
वसामिश्रं वसाभश्चमूत्रं मेहतियोनरः ।  
वसामेहिनमाहुस्तमसाध्यं वातकोपतः ॥ ३५ ॥

उसमें ये श्लोकहैं वातप्रमेहके विशेष ज्ञानार्थ हैं कि वसामिला वसाकी कांति के मूत्रको जो नर करताहै उसको वातके कोपसे असाध्य वसामेही कहतेहैं ॥ ३५ ॥

मज्जानंसहमूत्रेणमुदुर्मेहतियोनरः ।  
मज्जामेहिनमाहुस्तमसाध्यं वातकोपतः ॥ ३६ ॥

जो मनुष्य मूत्रके संग वारंवार मज्जाको त्यागताहै उसको वातके कोपसे असाध्य मज्जामेही कहतेहैं ॥ ३६ ॥

हस्तीमत्तद्वाजसंमूत्रं क्षरतियोभृशम् ।  
हस्तिमेहिनमाहुस्तमसाध्यं वातकोपतः ॥ ३७ ॥

मत्तहस्तीके समान जो निरंतर मूत्रका क्षरण करताहै उस मनुष्यको वातके कोपसे असाध्य हस्तिमेही कहतेहैं ॥ ३७ ॥

कषायमधुरं पाण्डुरं रुक्षं मेहतियोनरः ।  
वातकोपादसाध्यं तं प्रतीया न्मधुमेहिनम् ॥ ३८ ॥

कषाय मधुर पाण्डु रुक्ष मूत्रको जो मनुष्य करताहै उसको वातके कोपसे असाध्य मधुमेही जानै ॥ ३८ ॥

इति चत्वारः प्रमेहावातप्रकोपनिमित्ताः ।  
तेष्वं त्रिदोषप्रकोपनिमित्ता विंशतिप्रमेहाव्याख्याताः ।  
त्रयस्तु दोषाः प्रकुपिताः प्रमेहानभिनिवर्त्तयिष्यन्त इमानि पूर्वरूपाणि दर्शयन्ति ॥ ३९ ॥

ये चार प्रमेह वातके कोपरूप निमित्तसे होतेहैं, वे इस प्रकार त्रिदोषके कोप निमित्तसे पैदा हुये बीस प्रमेह वर्णन किये, तीन दोष कुपित हुये प्रमेहोंको पैदा करनेसे पहिले इन पूर्वरूपोंको दिखातेहैं ॥ ३९ ॥

तद्यथा ।

जटिलीभावं केशेषु माधुर्यमास्येकरपादयोः सुप्ततां दाहं मुखतालुकण्ठ

शोषं पिपासामालस्यं मलञ्चकाये  
कायच्छिद्रेषूपदेहं परिदाहं सुप्ततां  
चाङ्गेपुपट्पदपिपीलिकाभिः शरी-  
रमूत्राभिसरणं मूत्रेचमूत्रदोषान्वि-  
तं शरीरगन्धं निद्रां तन्द्राञ्च सर्वका-  
लमिति ॥ ४० ॥

कि वे ये हैं केशोंमें जटिलीभाव  
मुखमें मधुरता कर पादोंमें सुप्तता दाह,  
मुख तालु कंठका शोष, पिपासा आलस्य  
कायामें मल कायाके छिद्रोंमें उपदेह,  
परिदाह अंगोंमें सुप्तता षट्पद ( भ्रमर )  
पिपीलिकाओंसे शरीरके मूत्रका अभि-  
क्षण और मूत्रमें मूत्रके दोषसे मिश्रित  
शरीरगन्ध, निद्रा तन्द्रा ये सब कालमें  
इति ॥ ४० ॥

उपद्रवास्तुखलु प्रमेहिणां तृष्णाती-  
सारज्वरदाहदौर्बल्यारोचकावि-  
पाकाः पूतिमांसपिडका अलजीवि-  
द्रव्यादयश्च तत्प्रसङ्गात् भवन्ति ॥ ४१ ॥

उपद्रव तो प्रमेहियोंके ये हैं कि  
तृष्णा अतीसार ज्वर दाह दुर्बलता अरो-  
चक अविपाक पूतिमांसके पिडका अलजी-  
विद्रधि आदि तिसके प्रसंगसे होते हैं ॥ ४१ ॥

तत्र साध्यान् प्रमेहान् संशोधनोप-  
शमनैर्यथार्हमुपपादयेच्चिकित्से-  
च्चेति ॥ ४२ ॥

उनमें साध्य प्रमेहोंकी संशोधन  
उपशमनोंसे यथा योग्य उपपत्तिसे  
चिकित्सा करै ॥ ४२ ॥

तत्र श्लोकाः ।

गृध्रमाभ्यवहार्येषु स्नानचक्रमणा-  
द्विषम् । प्रमेहः क्षिप्रमाभ्येति नीच-  
द्रुममिवाण्डजः ॥ ४३ ॥

उसमें ये श्लोक हैं कि भोजनके निकृष्ट  
पदार्थोंमें रोचकको स्थान चक्रमणके  
द्वेषीको इसप्रकार शीघ्र प्रमेह प्राप्त होता है  
जैसे नीचे वृक्षपर अण्डज ( पक्षी ) ॥ ४३ ॥

मन्दोत्साहमतिस्थूलमतिस्निग्धं  
हाशनम् । मृत्युः प्रमेहरूपेण क्षिप्र-  
मादाय गच्छति ॥ ४४ ॥

मंदउत्साही अतिस्थूल अतिस्निग्ध  
महाभोजी, ऐसे मनुष्यको प्रमेहरूप होकर  
मृत्यु शीघ्र आ जाती है ॥ ४४ ॥

यस्त्वाहारं शरीरस्य धातुसाम्यक-  
रं नरः । सेवते विविधाश्चान्याश्चे-  
ष्टाः स सुखमश्नुते ॥ ४५ ॥

जो मनुष्य शरीरकी धातुओंकी  
साम्यता कारक भोजनको और अनेक  
प्रकारकी अन्य चेष्टाओंका सेवन करता है  
वह सुखको भोगता है ॥ ४५ ॥

तत्र श्लोकाः

हेतुव्याधिविशेषाणां प्रमेहाणाञ्च  
कारणम् । दोषधातुसमायोगोरु-  
पविविधमेव च ॥ ४६ ॥

हेतु व्याधि विशेषोंका और प्रमेहोंका  
कारण दोष धातुओंका समायोग अनेक  
प्रकारका रूप ॥ ४६ ॥

दशश्लेष्मकृतायस्मात्प्रमेहाःपट्  
चपित्तजाः । यथाकरोतिवायुश्च  
प्रमेहांश्चतुरोबली ॥ ४७ ॥

दश कफके किये और छः पित्तके  
किये प्रमेह जैसे होतेहैं और जैसे बल-  
वान् वायु चार प्रमेहोंको करतीहै ॥ ४७ ॥

साध्यासाध्यविशेषाश्चपूर्वरूपाण्यु  
पद्रवाः । प्रमेहाणांनिदानेऽस्मिन्  
क्रियासूत्रञ्चभाषितम् ॥ ४८ ॥

इतिअग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृते  
प्रमेहनिदानं नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

साध्यासाध्यके विशेष पूर्वरूपउप-  
द्रव क्रिया और सूत्र इस प्रमेहोंके निदा-  
नमें कहेहैं ॥ ४८ ॥

इति प्रमेहनिदानं समाप्तम् ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातःकुठनिदानंव्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

इसके अनंतर कुठनिदानका वर्णन  
करतेहैं यह भगवान् आत्रेय कहतेहैं ॥

सप्तद्रव्याणिकुष्ठानांप्रकृतिर्विकृति  
मापन्नानिभवन्ति । तद्यथा-त्रयो  
दोषावातापित्तश्लेष्माणःप्रकोपण  
विकृतादूण्याश्चशरीरधातवस्त्वङ्  
मांसशोणितलसीकाश्चतुर्द्धादोषो  
पघातविकृताइतिएतत्सप्तानांसप्त  
धातुकमेवंगतमाजननंकुष्ठानामतः

प्रभवाण्यभिनिर्वर्त्यमानानिकेवलं  
शरीरमुपतपन्ति । नचकिञ्चिद  
स्तिकुष्ठमेकदोषप्रकोपनिमित्तम् १

सातों द्रव्यकुष्ठोंकी प्रकृति विकृति-  
योंको प्राप्त होतेहैं वे ऐसेहैं कि वात  
पित्त कफ नामके तीनों दोष कोपसे  
विकृत और दूष्य होतेहैं शरीरकी धातु-  
जो त्वचा मांस शोणित लसीकाहें वे  
चार प्रकारकी दोषोंके उपघातसे विकृत  
हो जातीहैं इन सातोंका सप्त धातुक  
इस प्रकारको प्राप्त हुआ कुष्ठोंका आज-  
नन ( उत्पादक ) होताहै इससे प्रभावको  
उत्पन्न करते हुए कुष्ठ केवल ( सब )  
शरीरमें उपताप करतेहैं, और कोईभी  
कुष्ठ एक दोषके प्रकोप निमित्तसे उत्पन्न  
नहींहै ॥ १ ॥

अस्तितुखलुसमानप्रकृतीनामपि  
सप्तानांकुष्ठानांदोषांशबलविक  
ल्पानुबन्धस्थानविभागेनवेदनाव  
र्णसंस्थानप्रभावनामचिकित्सित  
विशेषः ॥ २ ॥

और समान प्रकृतिकेभी सात कुष्ठोंके  
दोष अंश बल विकल्प अनुबंध स्थान  
इनके विभागसे, वेदना वर्णसंस्थान नाम  
प्रभाव, रूप चिकित्साके विशेषहैं ॥ २ ॥

सप्तविधोऽष्टादशविधोऽपरिसंख्ये  
यविधोवा ॥ ३ ॥

और सातप्रकारका अठारहप्रका-  
रका असंख्यप्रकारका विशेषहै ॥ ३ ॥

दोषाहिविकल्पनैर्विकल्प्यमाना  
विकल्पयन्ति विकारानसंख्यान  
साध्यभावात्तेषां विकल्पविका-  
रसंख्यानेऽतिप्रसङ्गमभिसमीक्ष्य स-  
प्तविधमेव कुष्ठविशेषमुपदेक्ष्यामः ४

विकल्पोंसे विकल्पको प्राप्त हुये दोष  
असंख्य विकारोंको करतेहैं उन विकारोंके  
असाध्य भाव होनेसे विकल्प विकारोंकी  
संख्यामें अत्यंत प्रसंगको देखकर सात  
प्रकारकेही कुष्ठका उपदेश करतेहैं ४

इहवातादिपुत्रिपुप्रकुपितेपुत्वगा  
दिंश्चतुरःप्रदूपयत्सुवातेऽधिकतरे  
कपालकुष्ठमभिनिर्वर्त्तते । पित्ते  
त्वौदुश्चरंश्लेष्मणिमण्डलकुष्ठम् ५

कि इसमें वात आदि तीनोंके प्रकु-  
पित होनेपर त्वचा आदि चारोंको दूषित  
करता हुआ वह कुष्ठ वातके अत्यंत  
अधिक होनेपर कपालकुष्ठ हो जाताहै,  
पित्तके अधिक होनेपर औदुंवरकुष्ठ,  
श्लेष्माके अधिक होनेपर मंडलकुष्ठ ॥ ५ ॥

वातपित्तयोर्ऋष्यजिह्वपित्तश्लेष्म  
णोःपुण्डरीकंश्लेष्ममारुतयोःसि-  
ध्मकुष्ठं सर्वदोषातिवृद्धौकाकणक  
मभिनिर्वर्त्तते । इत्येवमेष सप्तवि-  
धःकुष्ठविशेषोभवति ॥ ६ ॥

वात पित्तके अधिक होनेपर ऋष्य  
जिह्व कुष्ठ, पित्त कफके अधिक होनेपर  
पुण्डरीककुष्ठ, कफ मारुतके अधिक

होनेपर सिध्म कुष्ठ और सप्त दोषोंकी  
अत्यंत वृद्धिमें काकणककुष्ठ, हो जाताहै  
यह इस प्रकारसे सात प्रकारका कुष्ठ  
विशेष होताहै ॥ ६ ॥

सचैपभूयोऽतःप्रकृतिविकल्पनया  
भूयसीविकारसंख्यामापद्यते ७ ॥

और फिर वह इस पूर्वोक्त प्रकृतिकी  
विकल्पनासे बहुतसी विकारोंकी संख्याको  
प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥

तत्रेदं सर्वकुष्ठनिदानं पुनः समासेन उ-  
पदेक्ष्यामः । शीतोष्णव्यत्यासमला  
नुपूर्योपसेवमानस्य तथा सन्तर्पणा  
पतर्पणाभ्यवहार्यव्यत्यासंचमधु  
फाणितमत्स्यमूलककाकमाचीः स-  
ततमतिमात्रमप्यजीर्णसमश्नतश्चि-  
लिचिमञ्चपयसाहायनकयवकची-  
नकोदालककोरदूपप्रायाणिचान्ना  
निक्षीरदधितक्रकोलकुलत्थमापा-  
तसीयूपकुमुम्भस्नेहवन्त्येतैश्चापि  
सुहितस्यव्यवायव्यायामसन्ता-  
पानप्युपसेवमानस्य भयश्रमसन्ता-  
पोपहतस्य सहसा शीतोदकमवतर-  
तो विदग्धमाहारमनुल्लिख्य विदाही-  
न्यभ्यवहरतः छर्दिश्च प्रतिघ्नतः स्ने-  
हांश्चाभिचरतः युगपत्रयोदोषाः प्र-  
कोपमापद्यन्ते । त्वगादयः चत्वारः

शैथिल्यमापद्यन्ते । तेषु शिथि  
लेपुदोषाः प्रकुपिताः स्थानमभिग  
म्य सन्तिष्ठमानाः तानेव त्वगादी  
न्दूषयन्तः कुष्ठान्यभिनिर्वर्तय  
न्ति ॥ ८ ॥

उसमें यह कुष्ठका निदान संक्षेपसे  
उपदेश करते हैं कि शीत उष्णके व्यत्यास  
( उलटापन ) को, मलके क्रमसे सेवन  
करते हुये मनुष्यके, तैसेही अपतर्पण  
और भोज्यके व्यत्यासको, मधु फ्राणित  
मत्स्य मूलक काकमाची, इनको निरं-  
तर, और अजीर्णमें भी अत्यंत अधिक  
भोजन, करते हुये के दूधके संग चिलि-  
चिमको, हायन ( ग्रीहि ) यवक  
आचीनक उद्दाल ककौर जो दूध  
प्रायः हैं, और दूध दही तक्र कोल  
कुलथी यूप कुसुम्भका स्नेह इनसे  
मिले अत्रासे तृप्त हुये मनुष्यके और  
व्यवाय व्यंज्याम संताप इनको सेवते  
हुये के और भय श्रम संतापसे उपहत  
के और शीघ्र शीतलजलको तरते हुये  
मनुष्यके और विदग्ध आहारोंका अनु-  
लेख करके ( नाम न लेकर ) विदाही  
पदार्थोंके अभ्यासीके, छर्दिको रोकते हुये  
के स्नेहोंको खाते हुयेके, ऐसे मनुष्यके  
एकवारही तीनों दोष प्रकोपको प्राप्त  
होते हैं, त्वचाआदि चारों शिथिल हो  
जाते हैं, उनके शिथिल होनेपर प्रकुपित  
हुये दोष स्थानमें जाकर भली प्रकार

टिके हुये उन्ही त्वचा आदिकोंको दूषित  
करते हुये कुष्ठोंको पैदा करते हैं ॥ ८ ॥

तत्रेमानि पूर्वरूपाणि ॥ तद्यथा  
अस्वेदनमतिस्वेदनं पारुष्यमति  
श्लक्ष्णता विवर्णकण्डूनिस्तोदः  
सुप्तता परिदाहः परिहर्षलोमहर्षो  
खरत्वमुष्मायणं गौरवं श्वयथुर्वीस  
र्पागमनमभीक्ष्णं कायच्छिद्रेषू  
पदाहः पक्वदग्धदष्टक्षतोपस्खलि  
तेष्वतिमात्रं वेदनास्वलपानामपि  
च व्रणानां दुष्टिरसंरोहणश्चेति ते  
भ्योऽनन्तरं कुष्ठानि जायन्ते ॥ ९ ॥

उनमें ये पूर्वरूप होते हैं वे ऐसे हैं कि  
अस्वेदन अतिस्वेदन परुपता अति श्ल-  
क्ष्णता विवर्णता कंडू निस्तोद सुप्तता  
परिदाह परिहर्ष लोमहर्ष खरता उष्मा  
गौरव श्वयथु वीसर्पका होना और निरं-  
तर कायाके छिद्रोंमें उपदाह, पके दग्ध  
दष्ट क्षत उपस्खलित अंगोंमें अत्यंत  
दाहकी वेदना, और अल्पभी व्रणोंकी  
दोषता और असंरोहण ( नभरना )  
होता है, इन पूर्व रूपोंके अनन्तर कुष्ठ  
हो जाते हैं ॥ ९ ॥

तेषामिदं वेदनावर्णसंस्थानप्रभाव  
नामविशेषविज्ञानम् । तद्यथा ।  
रूक्षारुणपरूपाणिविषमविमृता  
निखरपर्यन्तानितनून्युद्भूतच

हिस्तनृनिसुप्तसुप्तानिहपितलोमा  
चितानिनिस्तोदबहुलानिअल्पक  
ण्डूदाहपूयलसीकान्याशुगतिसमु  
त्थानानिआशुभेदीनिजन्तुमन्ति  
कृष्णारुणकपालवर्णानिकपालकु  
ष्ठानीतिविद्यात् ॥ १० ॥

उनका वेदना वर्ण संस्थान प्रभाव  
नामविशेषोंका ज्ञान यह है, वह ऐसे हैं  
कि रूक्ष अरुण परुष विषम विमृत खर  
रूप अंगके पर्यंत भाग रहते हैं, और  
तनु मानो बाहिरको अंग निकसे जाते  
हैं और अति सुप्त रहते हैं लोमहर्षसे  
व्याप्त रहते हैं निस्तोद बहुत अंगोंमें  
होता है, अल्प कंडू दाह पूय लसीका ये  
शीघ्र गतिसे हो जाते हैं और आशुभेदी  
हो जाते हैं और जीववाले कृष्ण अरुण  
कपाल वर्णके अंग हो जाते हैं, उनको  
कपालकुष्ठवान् जानै ॥ १० ॥

ताम्राणिताम्ररोमराजीभिरवनद्धा  
निबहुलानिबहुबहलरक्तपूयल  
सीकानिकण्डू-क्लेद-कोथदाहपाक  
वन्त्याशुगतिसमुत्थानभेदीनिसप्त  
न्तापक्रिमीण्युदुम्बरफलपक्वपर्णा  
न्युदुम्बरकुष्ठानीतिविद्यात् ११ ॥

ताम्र ताम्ररोमराजी ( पंक्ति ) वात्  
बहुत बहते हुये रक्त पूय लसीक जिनमें  
बहुत हों, कंडू क्लेद कोथ दाह पाक ये  
जिनमें शीघ्र गतिसे उठकर भेदक हों

जिनमें संतापके दाता क्रिमि हों, पके  
हुये गूलरके फलके समान हों उनको उ-  
दुम्बरकुष्ठ जानै ॥ ११ ॥

स्निग्धानिगुरुण्युत्सेधवन्तिश्ल  
क्ष्णस्थिरपीनपर्यन्तानिशुक्लरक्ता  
वभासानिबहुलबहलशुक्लपिच्छि  
लस्रावीणिशुक्लरोमराजीसन्ताना  
निबहुकण्डूक्रिमीणिसक्तगतिसमु  
त्थानभेदीनिपरिमण्डलानिमण्डल  
कुष्ठानीतिविद्यात् ॥ १२ ॥

स्निग्ध गुरु ऊंचे चिकने स्थिर जिन-  
के पर्यंतभाग पुष्ट हों, शुक्ल रक्तसे दीखें  
अधिक और बहल शुल्क पिच्छिल  
जिनका स्राव हो शुक्लरोम पंक्तियोंकी  
संतान हो अधिक कंडू क्रिमि हों सक्त  
गतिसे उठना और भेदन जिनका हो,  
ऐसे जो परिमंडल उनको परिमंडल  
कुष्ठ जानै ॥ १२ ॥

परुषाण्यरुणवर्णानिबहिरन्तःश्या  
वानिनीलपीतताम्रावभासान्याशु  
गतिसमुत्थानान्यल्पकण्डूक्लेदक्रि  
मीणिदाहभेदनिस्तोदपाकबहुला  
निशूकोपहतोपमानवेदनान्युत्सन्न  
मध्यानिननुपर्यन्तानिकर्कशापि  
डकाचितानिदीर्घपरिमण्डलानि  
ऋष्यजिह्वाकृतीनिऋष्यजिह्वानी  
तिविद्यात् ॥ १३ ॥



परुष अरुणवर्णके बाहिरभीतर श्यावरंगके नील पीत ताम्रके समान दीखते हों शीघ्रगतिसे उठते हों अल्प कंडू ल्केद क्रिमि हों, दाह भेद निस्तोद पाक ये बहुतहों शूकसे उपहतके समान वेदना जिनमें हो मध्य भाग ऊंचा हो पर्यन्तभाग तनुहो, कर्कश पिडकाओंसे व्याप्त हों, दीर्घ परिमंडल हों ऋष्यजिह्वाके आकारके हों उनको ऋष्यजिह्वाकुष्ठ जानै ॥ १३ ॥

शुक्लरक्तावभासानिरक्तपर्यन्तानि रक्तशिराराजीसन्ततान्युत्सेधव न्तिबहुबहलरक्तपूयलसीकानि कण्डूक्रिमिदाहपाकवन्त्याशु गतिसमुत्थानभेदीनिपुण्डरीकप लाशसंकाशानिपुण्डरीकाणीति विद्यात् ॥ १४ ॥

शुक्ल रक्त दीखते हों पर्यन्तभाग रक्तहो रक्तसिराओंकी पंक्ति जिनमें निरन्तरहो ऊंचहों अधिक बहल रक्त पूय लसीक जिनमें हों, कंडू क्रिमिदाह पाक ये जिनमें हों शीघ्रगतिसे उठते हों भेदीहों, उनको पुण्डरीक ( कमल ) पलाशके समान हों उनको पुण्डरीककुष्ठ जानै ॥ १४ ॥

परुषारुणविशीर्णबहिस्तनून्यन्तः स्निग्धानिशुक्लरक्तावभासानिबहू न्यल्पवेदनान्यल्पकण्डूदाहपूय

लसीकानिलघुसमुत्थानान्यल्प भेद-क्रिमिण्यलावु-पुष्पसङ्काशा निसिध्म-कुष्ठानीतिविद्यात् ॥ १५ ॥

परुष अरुण विशीर्ण बाहिरसूक्ष्म भीतर स्निग्धहों शुक्ल रक्त दीखते हों बहुतहों अल्पदुःख देते हों, कंडू दाह पूय लसीक ये जिनमें अल्पहों लघु उत्थान हो अल्पभेद क्रिमिहों अलावुके पुष्पकी तुल्य हों उनको सिध्मकुष्ठ जानै ॥ १५ ॥

काकणन्तिकावर्णान्यादौपश्चात्सर्वकुष्ठलिङ्गसमन्वितानिपापी यसांसर्वकुष्ठलिङ्गसम्भवेनानेकव र्णानिकाकणकानीतिविद्यात् १६

आदिमें काकणंतिकाका वर्ण हों पीछे सब कुष्ठोंके लिंगसे युक्तहों और पापियोंकी सब कुष्ठोंके लिंगका संभव होनेसे अनेक वर्णके हों उनको काकणक कुष्ठ जानै ॥ १६ ॥

तान्यसाध्यानिसाध्यानिपुनरित राणि । तत्रयदसाध्यंतदसाध्यतां नातिवर्त्तते । साध्यंपुनःकिञ्चित् साध्यतामतिवर्त्ततेकदाचिदपचा रात् ॥ १७ ॥

ये सब कुष्ठ असाध्य हैं और इतर कुष्ठ साध्य हैं, उनमें जो असाध्य है वह असाध्यताका अवलंघन नहीं करता

और कदाचित् अपचारसे साध्यभी किंचित् साध्यताका अवलंघन करता है ॥ १७ ॥

साध्यानीहपट्काकणकवर्ज्यानि  
अचिकित्स्यमानानिअपचारतो  
वादोपैरभिप्यन्दमानानिअसाध्य  
तामुपयान्ति ॥ १८ ॥

और यहां साध्य तो छःकाकणकको छोड़कर चिकित्साके न करनेसे वा अपचारसे दोषों करके अभिप्यंदमान ( मिले ) हुये असाध्यताको प्राप्त हो जाते हैं ॥ १८ ॥

साध्यानामपिह्युपेक्षमाणानामेपां  
त्वङ्मांसशोणितलसीकाकोथ  
क्लेदसंस्वेदजाःक्रिमयोऽभिमूच्छं  
न्ति । तेभक्षयन्तोत्वगादीन्दोषा  
न्पुनर्दूषयन्तःइमानुपद्रवान्पृथक्  
पृथगुत्पादयन्ति ॥ १९ ॥

और उपेक्षा किये साध्यरूपभी इनमें त्वचा मांस शोणित लसीका कोथ क्लेद स्वेदोंसे उत्पन्न हुये क्रिमि बढजाते हैं, भक्षण करते हुये वे और दूषित करते हुये दोष इन उपद्रवोंको पृथक् २ पुनः उत्पादन करते हैं ॥ १९ ॥

ततोवातःश्यावारुणपरुषवर्णता  
मपिचरौक्ष्यशूलशोथतोदवेपथुह  
र्षसङ्कोचायासस्तम्भसुप्तिभेदभ  
ङ्गान् । पित्तं पुनर्दाहस्वेदक्लेदको

थकण्डूस्त्रावपाकरागान् । श्लेष्मा  
त्वस्यश्चैत्यशैत्यास्थैर्ग्यकण्डूगौ  
रवोत्सेधोपस्नेहोपलेपान् । क्रिमि  
यस्त्वगादींश्चतुरःशिराःस्त्रायून्य  
स्थीन्यपिचतरुणानिस्वादन्ति २०

उसमें वाततो श्याव अरुण परुष वर्णको और रूक्षता शूल दोष तोद वेपथु हर्ष संकोच आयास स्तम्भ सुप्ति भेद भंग इनको करता है, और पित्त दाह स्वेद क्लेद कोथ कंडूस्त्राव पाक रागको करता है, कफ तो मुखमें श्वेतता शीतलता, कंडू स्थिरता गौरव उत्सेध उपस्नेह उपलेप इनको करता है और क्रिमि त्वचा आदि चार शिरा स्त्रायु अस्थि जो तरुणहैं उनको खाते हैं ॥ २० ॥

अस्यामवस्थायामुपद्रवाःकुष्ठिनं  
स्पृशन्ति । तद्यथा ।—प्रस्रवणम  
ङ्गभेदःपतनान्यङ्गावयवानां  
तृष्णाज्वरातीसारदाहदौर्बल्यारोच  
काविपाकाश्चतद्विधमसाध्यंवि  
द्यादिति ॥ २१ ॥

इस अवस्थामें जो उपद्रव कुष्ठिका स्पर्श करते हैं वे ये हैं, कि प्रस्रवण अंगभेद अंगके अवयवोंका पतन, तृष्णा ज्वर अतीसार दाह दुर्बलता अरोचक अविपाक ये होते हैं इस प्रकारके कुष्ठिको असाध्य जानै—इति ॥ २१ ॥

तत्रश्लोकाः ।

साध्योऽयमिति यः पूर्वनरोगमुपेक्ष  
ते । सकिञ्चित्कालमासाद्यमृत  
एवावबुध्यते ॥ २२ ॥

उसमें ये श्लोक हैं कि जो मनुष्य  
यह रोग साध्य है यह प्रथम समझकर  
रोगकी उपेक्षा करता है वह कुछ कालके  
अनन्तर मृतही जाना जाता है ॥ २२ ॥

यस्तु प्रागेव रोगेभ्यो रोगे पुनरुणेषु  
च । भेषजं कुरुते सम्यक् सचिरं  
सुखमश्नुते ॥ २३ ॥

जो रोगोंसे पहिलेही वा तरुण रोगोंमें  
भलीप्रकार भेषज करता है वह चिरका-  
लतक सुख भोगता है ॥ २३ ॥

यथास्वल्पेन यत्नेन च्छिद्यते तरुण  
स्तरुः । स एवातिप्रवृद्धस्तु न सु  
च्छेद्यतमो भवेत् ॥ २४ ॥

जैसे तरुणवृक्ष स्वल्प यत्नसे छेदन  
किया जाता है अति प्रवृद्ध हुआ वही  
वृक्ष छेदनके योग्य नहीं होता है ॥ २४ ॥

एवमेव विकारोऽपि तरुणः साध्य  
ते सुखम् । विवृद्धः साध्यते कृच्छ्रा  
दसाध्यो वापि जायते ॥ २५ ॥

इसीप्रकार विकारभी तरुण तो सुखसे  
साध्य होता है और बड़ा हुआ कष्ट साध्य  
होता है वा असाध्य होजाता है ॥ २५ ॥

संख्याद्रव्याणि दोषाश्चेतवः पूर्व

लक्षणम् । रूपाण्युपद्रवाश्चोक्ताः

कुष्ठानां कौष्टिके पृथक् ॥ २६ ॥

इति अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते  
कुष्ठनिदाननाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

संख्या, द्रव्य, दोष, हेतु, पूर्वलक्षण  
रूप, और उपद्रव ये कुष्ठोंके इस कौष्टिक  
( निदान ) में पृथक् २ कहे ॥ २६ ॥

इति कुष्ठनिदानसमाप्तम् ॥ ५ ॥

पष्ठोऽध्यायः ।

शोपनिदानम् ।

अथातः शोपनिदानं व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माह भगवान् आत्रेयः ।

इसके अनन्तर शोपनिदानका व्या-  
ख्यान करते हैं यह भगवान् आत्रेय  
कहते भये कि—

इह खलु चत्वारि शोपस्यायतनानि । तद्यथा ।--साहसं संधारणं  
क्षयो विपमाशनमिति ॥ १ ॥

यहां निश्चयसे चार शोषके स्थान  
होते हैं वे ये हैं कि साहस संधारण क्षय  
विपमाशन इति ॥ १ ॥

तत्र यदुक्तं साहसं शोपस्यायतनमि-  
तितदनु व्याख्यास्यामः । यदापु-  
रुषो दुर्बलो हि सन् बलवता सह वि-  
गृह्णाति अतिमहता वाधनुषा व्या-  
यच्छति जल्पति वातिमात्रमतिमा-  
त्रं वा भारमुद्धति अप्सु वा प्लवते चा-  
तिदूरमुत्सादनपदाघातने वातिप्र

गाढमासेवतेअतिप्रकृष्टंवाध्वानंद्रु  
तमभिपततिअभिहन्यतेवान्य  
द्वाकिञ्चिदेवंविधंविषममतिमात्रं  
वाव्यायामजातमारुतेतस्याति  
मात्रेणकर्मणाउरःक्षण्यतेतस्यउ  
रःक्षतमुपप्लवतेवायुः । सतत्रावस्थि  
तःश्लेष्माणमुरःस्थमुपसंगृह्यशोष  
यन्विहरत्यूर्ध्वमथस्तिर्ग्यकुच २ ॥

उनमें जो साहस शोषका स्थान  
कहाहै उसका वर्णन करतेहैं जब दुर्बल  
पुरुष होकर बलवान्के संग वैर करै—  
अति महान् धनुषसे बाण फेंके  
प्रमाणसे अधिक भापण करै वा भार  
लेकर चलै, वा जलमें तरण करै और  
अधिक दूर उत्सादन पदोंका आघात  
इनको अति गाढ होकर सेवन करै और  
अति प्रकृष्ट मार्गमें द्रुत गमन करै, वा  
उक्त मार्गसे थक जाय, अन्य इसी  
प्रकारके किसी कर्मको वा करै, अत्यंत  
विष व्यायाम आदिको करै उसके अति-  
मात्र कर्मसे छातीमें क्षत हो जाताहै,  
उसके उरक्षतमें वायु प्रविष्ट हो जाताहै,  
वह वहां टिककर छातीके श्लेष्माको ग्रहण  
करके शुष्क करता हुआ ऊपर अधः  
तिर्यक् विहार करता हुआ रहताहै ॥ २ ॥

योंऽशस्तस्यशरीरसन्धीन्आवि  
शतितेनजृम्भाङ्गमर्दोज्वरश्चोपजा  
यते । यस्त्वामाशयमुपैतितेनरो

गाभवन्तिउरस्याअरोचकश्च ।  
यःकण्ठंप्रपद्यतेकण्ठस्वनमुद्धंसते  
स्वरश्चावसीदतियःप्राणवहानिस्त्रो  
तांस्येतितेनश्वासःप्रतिश्यायश्चोप  
जायते । यःशिरस्यवतिष्ठतेशिर  
स्तेनोपहन्यते ॥ ३ ॥

जो वायुका अंश शरीरकी संधियोंमें  
प्रविष्ट होताहै उससे जृम्भा अंगमर्द और  
ज्वर होतेहैं और जो आमाशयमें पहुं-  
चता है उससे छातीमें रोग होतेहैं और  
अरोचक होताहै जो कंठमें प्राप्त होताहै  
उससे कंठका शब्द मारा जाताहै और  
स्वर नष्ट हो जाताहै जो प्राण वाही  
स्रोतोंमें पहुंचता है उससे श्वास और  
प्रतिश्याय होतेहैं, जो अंश शिरमें टिक-  
ताहै उससे शिरका हनन होताहै ॥ ३ ॥

ततःक्षणनाच्चैवोरसोविषमगति  
त्वाच्चवायोःकण्ठस्योद्धंसनात्  
कासःसंजायते । कासप्रसङ्गादु  
रसिक्षतेसशोणितंष्टीवतिशोणि  
तागमाच्चस्यदौर्गन्ध्यमुपजायते  
एवमेतेसाहसप्रभवाःसाहसिकंमु  
पद्रवाःस्पृशन्ति ॥ ४ ॥

फिर छातीके क्षणनसे और वायुकी विष-  
मगतिसे कंठके उद्धंसनसे कास हो जाताहै  
उस कासके प्रसंगसे छातीमें क्षत होनेसे  
थूकमें शोणित आताहै, शोणितके आनेसे  
मुखमें दुर्गंध हो जातीहै इसप्रकार साह-

ससे पैदा हुये ये उपद्रव साहसिक मनु-  
प्यका स्पर्श करतेहैं ॥ ४ ॥

ततःसोऽप्युपशोषणैरेतैरुपद्रवैरु  
पद्रुतःशनैःशनैरुपशुष्यति । त  
स्मात्पुरुषोमतिमान्बलमात्मनः  
समीक्ष्यतदनुरूपाणिकर्माण्यार  
भेतकर्तुम् । बलसमाधानंहिश  
रीरंशरीरमूलश्चपुरुषइति ॥ ५ ॥

वह भी फिर उपशोषणके हेतु इन  
उपद्रवोंसे उपद्रुत हुआ शनैः २ शुष्क  
होजाताहै तिससे पुरुष अपने बलको  
देखकर उसके अनुरूपही कर्म करनेका  
प्रारंभ करे क्योंकि शरीरका समाधान  
बलहै और पुरुषकी मूल शरीरहै इति ॥ ५ ॥

तत्रश्लोकः ।

साहसंवर्जयेत्कर्मरक्षन्जीवितमा  
त्मनः । जीवहिपुरुषस्त्वष्टंकर्म  
णःफलमश्नुते ॥ ६ ॥

उसमें यह श्लोकहै कि अपने जीवित  
की रक्षा करता हुआ मनुष्य साहस  
कर्मको वर्ज दे क्योंकि जीवता मनुष्य  
कर्मके इष्ट फलको भोगताहै इति ॥ ६ ॥

सन्धारणंशोषस्यायतनमिति यदु  
क्तं तदनुव्याख्यास्यामः । यदापु  
रुषो राजसमीपे भर्तृसमीपे वागुरो  
र्वापादमूले द्यूतसभांसभाजयन्स्त्रिम  
ध्यवानुप्रविश्यानैर्वाप्युच्चावचै

र्गच्छन् भयात्प्रसंगाद्धीमत्वाद्भृ  
णित्वाद्धानिरुणद्ध्यागतानि वात  
मूत्रपुरीषाणितस्यसन्धारणाद्वायुः  
प्रकोपमापद्यते ॥ ७ ॥

संधारण शोषका स्थान जो कहाहै  
उस्का व्याख्यान करतेहैं कि जैसे पुरुष  
राजाके समीपमें वा भर्ताके समीपमें गुरुके  
पाद मूलमें द्यूतकी सभाको करता हुआ  
वा स्त्रियोंके मध्यमें प्रवेश करके वा ऊंचे  
नीचे यानोंमें गमन करता हुआ भयसे  
प्रसंगसे, लज्जासे, घृणासे, आते हुए,  
मूत्र पुरीषोंको जो रोकता है संधारणसे  
उसकी वायु प्रकोपको प्राप्त होतीहै ॥ ७ ॥

सप्रकुपितःपित्तश्लेष्माणौसमुदी  
र्योर्द्ध्वमधस्तिर्य्यक्चविहरतित  
तश्चांशविशेषेणपूर्ववच्छरीरावय  
वविशेषंप्रविश्यशूलंजनयतिभिन  
त्तिपुरीषमुच्छोपयतिवा,पार्श्वेचा  
भिरुजतिगृह्णात्यंसौकण्ठमुरश्चाव  
धमत्तिशिरश्चोपहन्ति,कासंश्वासं  
ज्वरंस्वरभेदंप्रतिश्यायञ्चोपजन  
यति ॥ ८ ॥

वह प्रकुपित हुआ पित्त कफको बढा  
कर ऊपर नीचे तिरछा विहार करताहै  
फिर अंशविशेषसे पूर्वके समान शरीरके  
किसी अवयवमें प्रविष्ट होकर शूलको  
पैदा करताहै पुरीषका भेदन करताहै वा  
शुष्क करताहै,पार्श्वमें पीडा करताहै और

यह अंसोंका ग्रहण करता है कंठ छातीका धमन करता है शिरका उपहनन करता है कास, श्वास, ज्वर, स्वरभेद, प्रतिश्याय, इनको पैदा करता है ॥ ८ ॥

ततः सोऽप्युपशोपणैरेतैरुपद्रवैरुप  
द्रुतः शनैः शनैरुपशुष्यति । तस्मा  
त्पुरुषो मतिमानात्मनः शरीरेष्वेव  
योगक्षेमकरेण प्रयतेत विशेषेण श  
रीरं ह्यस्य मूलं शरीरमूलश्च पुरुष इ  
ति ॥ ९ ॥

उसके अनंतर शोपणके कर्ता इन उपद्रवोंसे उपद्रुत वह नर शनैः २ शुष्क हो जाता है, तिससे बुद्धिमान मनुष्य अपने शरीरमें ही योगक्षेम करनेका विशेषकर यत्न करे शरीर ही इसका मूल है शरीरका मूल पुरुष है इति ॥ ९ ॥

तत्र श्लोकः ।

सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीरमनुपाल  
येत् । तदभावे हि भावानां सर्वाभा  
वः शरीरिणामिति ॥ १० ॥

उसमें यह श्लोक है कि अन्य सबको त्यागकर शरीरकी पालना करे क्योंकि उसके अभाव होनेपर देह धारियोंके सब भावोंका अभाव होता है, इति ॥ १० ॥

क्षयः शोपस्यायतनमिति यदुक्तं  
दनुव्याख्यास्यामः । यदा पुरुषो  
तिमात्रं शोकचिन्तापरीतं हृदयो  
भवति, ईर्ष्यात्कण्ठाभयक्रोधादि

भिर्वासमाविश्यते, कशो वासनरू  
क्षान्नपानसेवी भवति, दुर्बलप्रकृ  
तिरनाहारोऽल्पाहारो वा आस्तेत  
दातस्य हृदयस्थायी रसः क्षयमुपै  
ति । सतस्योपक्षयात्संशोपंप्राप्नो  
ति अप्रतीकाराच्चानुवध्यते यक्ष्म  
णायथोपदेक्ष्यमाणरूपेण ॥ ११ ॥

क्षय शोपका आयतन जो कहा है उसका व्याख्यान करते हैं कि, जब मनुष्य अत्यंत शोक और चिन्तासे युक्त हृदयमें होता है, वा ईर्ष्या उत्कंठा भय क्रोध आदि, इसमें प्रवेश करते हैं और कृश होकर रुक्ष अन्नपानका सेवन करता है, दुर्बलप्रकृति विना आहार वा अल्पाहार रहता है, तब उसके हृदयमें स्थित रस क्षयको प्राप्त हो जाता है वह उसके उपक्षयसे शोपको प्राप्त हो जाता है और प्रतीकार न करनेसे उस यक्ष्माके अनुबंधनको प्राप्त होता है जिसका रूप आगे वर्णन करेंगे ॥ ११ ॥

यदा पुरुषोऽतिहर्षात्प्रसक्तभावः  
स्त्रीषु अतिप्रसङ्गमारभते तस्याति  
प्रसङ्गाद्वैतः क्षयमुपैति क्षयमपि चो  
पगच्छति रेतसि यदि मनः स्त्रीभ्यो  
नैवास्य निवर्त्तते अतिप्रवर्त्तते एव  
तस्यातिप्रणीतसङ्कल्पस्य मैथुन  
मापद्यमानस्य शुक्रं न प्रवर्त्तते अति

मात्रोपक्षीणत्वात् । अथास्यवा  
युर्व्यायच्छमानस्यैवधमनीरनुप्र  
विश्यशोणितवाहिनीस्ताभ्यःशो  
णितं प्रच्यावयतितच्छुक्रक्षयाच्छु  
क्रमार्गेणशोणितं प्रवर्त्तते वातानुसृत  
लिंगम् ॥ १२ ॥

जब पुरुष अत्यंत हर्षसे स्त्रियोंमें  
प्रसक्तभाव होकर अति संग करताहै,  
उसके अत्यंत स्त्रीके संग करनेसे वीर्य  
क्षयको प्राप्त हो जाताहै और वीर्यके  
क्षय होने पर भी यदि इसका मन  
स्त्रियोंसे निवृत्त नहो किंतु अत्यंत प्र-  
वृत्तही हो अत्यंत कियाहै संगका संकल्प  
जिसने ऐसे मैथुन करते हुये उस पुरु-  
षके शुक्रकी प्रवृत्ति नहीं होती क्योंकि  
वह अतिक्षीण होगया, फिर इसकी वायु  
व्यायाम करनेसे धमनीयोंमें प्रविष्ट होकर  
शोणितवाहिनी धमनीयोंमेंसे शोणित  
को गिराती है वह शोणित शुक्रका क्षय  
होनेसे शुक्रके मार्गसे प्रवृत्त होताहै क्योंकि  
वह वातानुसारी लिंगवान् है ॥ १२ ॥

अथास्यशुक्रक्षयाच्छोणितप्रवर्त्त  
नाच्चसन्धयः शिथिलीभवन्ति। रौ  
क्ष्यमुपजायते। भूयःशरीरेदौर्बल्य  
माविशति वायुः प्रकोपमापद्यते ।  
सप्रकुपितोऽवशकंशरीरमनुसर्प  
न्परिशोषयति मांसशोणिते प्रच्या  
वयति श्लेष्मपित्ते संरुजति पार्श्वे चा  
वगृह्णात्यंसौ कण्ठमुद्धंसयति शिरः

श्लेष्माणमुपाक्लिश्यति प्रतिपूरयति श्ले  
ष्मणामुपाक्लिश्यति प्रतिपूरयति श्लेष्म  
णासन्धींश्च प्रपीडयन्करोत्यङ्गम  
र्दमरोचकाविपाकौ च पित्तश्लेष्मो  
त्क्लेशात्प्रतिलोमगत्वाच्च वायुज्वरं  
कासं स्वरभेदं प्रतिश्यायश्चोपजन  
यति ॥ १३ ॥

फिर इसके शुक्रके क्षयसे और शो-  
णितकी प्रवृत्तिसे संधि शिथिल हो जाती  
हैं और रूक्षता पैदा हो जाती है अधिक  
दुर्बलता शरीरमें आजातीहै, वायु प्रको-  
पको प्राप्त हो जाताहै, प्रकुपित हुआ वह  
अवश्य शरीरमें फैलता हुआ मांस शोणित  
दोनोंकी शुष्कताको करदेताहै, कफ  
पित्तका क्षरण करताहै संरुजन ( पीडा )  
पार्श्वोंमें करता है, स्कंधोंका अवग्रह  
करताहै कंठका नाश, शिरके कफको  
क्लेश दंकर कफसे पूर्ण कर देताहै और  
संधियोंको पीडित करता हुआ अंग  
मर्दको करताहै अरोचक अविपाकको  
करताहै, पित्त श्लेष्मके क्लेशसे और वायु  
प्रति लोमगामी होनेसे ज्वर कास स्वर  
भेद प्रतिश्याय इनको पैदा करता है १३

ततः सोऽप्युपशोषणैरेतैरुपद्रवैरु  
पद्रुतः शनैः शनैरुपशुष्यति । त  
स्मात्पुरुषो मतिमानात्मनः शरीर  
मनुरक्षं शुक्रमनुरक्षेत् । पराह्ये  
षाफलनिर्वृत्तिराहारस्येति ॥ १४ ॥

तिससे वह भी उपशोषणके हेतु इन उपद्रवोंसे उपद्रुत हुआ शनैः २ शुष्क हो जाता है, तिससे बुद्धिमान् पुरुष अपने शरीरकी रक्षा करता हुआ शुक्रकी रक्षा करे क्योंकि यह शुक्र आहारका उत्तमफल है, इति ॥ १४ ॥

तत्रश्लोकः ।

आहारस्यपरं धामशुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः । क्षये ह्यस्य बहून् रोगान् मरणं वानियच्छति ॥ १५ ॥

उसमें यह श्लोक है, कि, भोजनका परमधाम शुक्र है उस अपने शुक्रकी रक्षा करनी योग्य है शुक्र, क्षय होनेपर बहुते रोगोंको वा मरणको देता है ॥ १५ ॥

विपमाशनं शोपस्यायतनमिति यदुक्तं तदनुव्याख्यास्यामः । यदा पुरुषः पानाशनमक्षयलेहोपयोगान् प्रकृतिकरणसंयोगराशिदेशकालोपयोगसंस्थोपशयविपमानासे वतेतदा तस्य वातपित्तश्लेष्माणो वैपम्यमापद्यन्ते । ते विपमाः शरीरमनुपमृत्ययदा स्रोतसां मुखानि प्रतिवार्यावतिष्ठन्ते तदा जन्तुर्यदा हारजातमाहरति तदस्य मूत्रपुरीषमेवोपचीयते भूयिष्ठम्, नान्यस्तथा शरीरधातुः सपुरीषोपष्टम्भाद्वर्जयति ॥ १६ ॥

विपमाशन जो शोषका स्थान कहा है उसका व्याख्यान करते हैं कि जब मनुष्य पान अशन भक्ष्य लेह्य इनके उपयोगोंको, प्रकृति करण संयोग राशि देश काल उपयोग संस्था उपशय इनसे विपम रीतिसे सेवन करता है तब उसके वात पित्त श्लेष्मा विपमताको प्राप्त हो जाते हैं वे विपम हुये शरीरमें न फैल कर जब स्रोतोंके मुखोंको रोककर टिकते हैं तब प्राणी जिस आहारके समूह को खाता है तब इसके मूत्र पुरीषही अधिक बढ़ते हैं अन्य शरीरकी धातु तिस प्रकारसे नहीं बढ़ती वह पुरीषके उपष्टम्भसे वर्जित है, ॥ १६ ॥

तस्माच्छुष्यतो विशेषेण पुरीषमनु रक्ष्यम्, तथा सर्वपामत्यर्थं कृशदुर्वलानाम् । तस्यानाप्याय्यमानस्य विपमाशनोपचिता दोषाः पृथक् पृथक् उपद्रवैर्युज्यतो भूयः शरीरमुपशोषयन्ति ॥ १७ ॥

तिससे शुष्क मनुष्यके पुरीषकी विशेष कर रक्षा करनी योग्य है तिसी प्रकार अत्यंत कृश दुर्बल सबके पुरीषकी रक्षा करनी क्योंकि आप्यायन (पुष्ट) नहीं किये उसके विपमाशनसे उपचित दोष पृथक् २ उपद्रवोंसे युक्त करते हुये पुनः भी शरीरका उपशोषण करते हैं ॥ १७ ॥ तत्र वातः शूलमङ्गमर्दकण्ठोद्धंसनं पार्श्वसंरोजनमंसावमर्दनं स्वरभे



दंप्रतिश्यायञ्चोपजनयति । पि  
त्तंपुनर्ज्वरमतीसारंसान्तर्दाहञ्च ।  
श्लेष्माप्रतिश्यायंशिरसोगुरुत्वंका  
समरोचकञ्च ॥ १८ ॥

उनमें वात तं शूल अंगमर्द कंठका-  
ध्वंस पाश्चांका संरंजन अंसोंका मर्दन  
स्वरभेद और प्रतिश्याय इनको पैदा  
करताहै और पित्त, ज्वर अतीसार और  
अंतर्दाह करता है, श्लेष्मा, प्रतिश्याय शिरमें  
गौरव कास अरोचकको पैदा करता है १८

स कासप्रसङ्गादुरासि क्षते शो-  
णितं ष्ठीवति । शोणितगमना-  
च्चास्य दौर्बल्यमुपजायते । एव  
मेते विषमाशनोपचिता दोषा  
राजयक्ष्माणमभिनिर्वर्त्तयन्ति १९

वह कासके प्रसंगसे छातीमें क्षत  
होनेपर शोणितको थूकताहै, शोणितके  
गमनसे यह दुर्बल हो जाताहै, इस प्रकार  
विषमाशनसे उपचित ये दोष राजय-  
क्ष्माको पैदा करतेहैं ॥ १९ ॥

सत्तैरुपशोषणैरुद्रवैरुपपद्भुतः शनैः  
शनैरुपशुष्यति । तस्मात् पुरुषो  
मतिमान् प्रकृतिकरणसंयोगरा-  
शिदेशकालोपयोगसंस्थोपशया  
दविषमाहारमाहरेदिति ॥ २० ॥

वह उन उपशोषण उपद्रवोंसे उपद्भुत  
हुआ शनैः २ सूख जाता है, तिससे

बुद्धिमान् मनुष्य प्रकृति करण संयोग राशि  
देश काल उपयोग संस्था उपशय, इनसे  
अविषम आहारका भक्षण करे इति ॥ २० ॥

तत्र श्लोकः ।

हिताशी स्यान्मिताशी स्यात्  
कालभोजी जितेन्द्रियः । पश्यन्  
रोगान् बहून् कष्टान् बुद्धिमान्  
विषमाशनादिति ॥ २१ ॥

उसमें यह श्लोक है कि, बुद्धिमान्  
मनुष्य विषमाशनसे कष्टके दाता बहुत  
रोगोंको देखता हुआ हिताशी मिताशी  
कालभोजी जितेन्द्रिय रहै इति ॥ २१ ॥

एतैश्चतुर्भिः शोपस्यायतनैरभ्यु-  
पसेवितैर्वातपित्तश्लेष्माण एव  
प्रकोपमापद्यन्ते । ते प्रकुपिता  
नानाविधैरुपद्रवैः शरीरमुपशोष-  
यन्ति । तं सर्वरोगाणां कष्टतमं  
मत्वा राजयक्ष्माणमाचक्षते भि-  
षजः । यस्माद्वा पूर्वमासीद्ग-  
वतःसोमस्योदुराजस्य तस्माद्वा  
जयक्षमेति ॥ २२ ॥

इन चारों शोषके आयतनोंके अत्यंत  
सेवनसे वात पित्त श्लेष्मा तीनों प्रको-  
पको प्राप्त होतेहैं वे प्रकुपित हुये नाना  
प्रकारके उपद्रवोंसे मनुष्यके शरीरका  
उपशोषण करते हैं, संपूर्ण रोगोंके मध्यमें  
अत्यंत कष्ट उसको मानकर वैद्यजन  
राजयक्ष्मा कहतेहैं, जिससे पहिले भगवान्

सोम नक्षत्रोंके राजाके हुआ इससे राज  
यज्मा कहतेहैं ॥ २२ ॥

तस्येमानिपूर्वरूपाणि । तद्यथा,—  
प्रतिश्यायःक्षवथुरभीक्ष्णंश्लेष्मप्र  
सेकोमुखमाधुर्यमनन्नाभिलापो  
ऽन्नकालेचायासोदोषदर्शनमदोष  
दर्शनमदोषेष्त्वल्पोपेपुवाभावेपु  
पात्रोदकान्नसूपापूपोपदंशपरिवे  
शकेपुमुक्तवतोहृष्टासस्तथोल्लेख  
नमाहारस्यान्तरान्तरामुखपाद  
स्यशोषःपाण्योरवेक्षणमत्यर्थम  
क्ष्णोःश्वेततावाहोःप्रमाणजिज्ञा  
सास्त्रीकामतातिवृणित्वंवीभत्स  
दर्शनताचकायेस्वमेहिअभीक्ष्णं  
दर्शनमनुदकानामुदकस्थानांशून्या  
नाञ्चग्रामनगरनिगमजनपदानांशु  
ष्कदग्धभग्नानाञ्चवनानांशुकला  
समयूरवानरशुकसर्पकाकोलूका  
दिभिःसंस्पर्शनमधिरोहणंवाअ  
श्वोष्ट्रखरवराहैर्यानञ्चकेशास्थि  
भस्मनुषाङ्गारराशीनाञ्चाधिरोह  
णमितिशोषपूर्वरूपाणिभवन्ति २३

उसके जो पूर्वरूप होतेहैं वे ऐसे  
हैं प्रतिश्याय क्षवथू वारंवार कफका प्रसेक  
मुखमें मधुरता अन्नके अभिलाषका अभाव  
अन्नके कालमें आयास निर्दोषोंमें वा

अल्पदोष भावोंमें दोषका दर्शन पात्र  
उदक, अन्न, सूप, अपूप, उपदंश परिवे-  
शक इनमें दोषदृष्टि भोजनके अंतमें  
हृष्टास और आहारका उल्लेखन (भेदन)  
और भीतर २ मुख पादोंका शोष हाथों  
काही दर्शन नेत्रोंमें अत्यंत श्वेतता भुजा  
ओंके प्रमाण जाननेकी इच्छा स्त्रीकी  
इच्छा अत्यंत घृणा कायामें वीभत्स  
(भयानक) दर्शनता और स्वप्नमें उदकके  
जलरहित स्थानोंको और शून्य ग्राम  
नगर निगम जन पदोंका और शुष्क,  
दग्ध भग्नोंका दर्शन होताहै, कृकलास  
मयूर वानर शुक सर्प काक उलूक आदि  
का स्पर्शन वा चटना और अश्व ऊंट  
खर, वराह, इनपर अधिरोहण (चटना)  
केश, अस्थि, भस्म, तुष, अंगार, इनकी  
राशियोंपर अधिरोहण, ये शोषके पूर्व  
रूप है ॥ २३ ॥

अतर्कृष्टमेकादशरूपाणि । तद्यथा,—  
शिरसः प्रतिपूरणं कासः श्वासः  
स्वरभेदः श्लेष्मणश्छर्दनं शोणि  
तष्ठीवनं पार्श्वसंरोजनं अंसाव  
मर्दोज्वरः अतीसारस्तथा अरो  
चक इति ॥ २४ ॥

इससे आगे एकादश रूप होतेहैं वे  
येहैं कि शिरका प्रतिपूरण, कास, श्वास,  
स्वरभेद, श्लेष्मकी छर्द, शोणितकाथूक,  
पार्श्वोंका भंजन, अंसोंका अवमर्द, ज्वर,  
अतीसार, और अरोचक ॥ २४ ॥

तत्रापरिक्षीणमांसशोणितो बल-  
वानजातारिष्टः सर्वैरपि शोषलि-  
ङ्गैरुपद्रुतः साध्यो ज्ञेयः ॥ २५ ॥

उसमें जिसके मांस शोणित परिक्षीण  
नहों बलवान् हो अरिष्ट उत्पन्न जिसके  
नहो संपूर्णभी शोषके लिंगोंसे उपद्रुत वह  
साध्य जानना ॥ २५ ॥

बलवर्णोपयोपचितो हि सहिष्णु-  
त्वाद्व्याध्यौपधवलस्य कामं  
बहुलिङ्गोऽप्यल्पलिङ्ग एव  
मन्तव्यः ॥ २६ ॥

क्योंकि जो बलवर्णको वृद्धिसे उप-  
चित है व्याधि औपधके बलका सहन  
शील होनेसे चाहै बहुत लिंगभी हों तो  
भी अल्पलिंगहीहै ॥ २६ ॥

दुर्बलन्त्वतिक्षीणमांसशोणितमल्प-  
लिंगमप्यजातारिष्टमपि बहुलिङ्ग-  
मेव विद्यात् अहसत्वाद्व्याध्यौप-  
धवलस्य तं परिवर्जयेत् ॥ २७ ॥

और दुर्बल तो जो अत्यंत क्षीणमांस  
शोणितहै वह अल्प लिंगवान् भी अधिक  
ही लिंग है यह वैद्य जानै तिससे औपध  
व्याधिके बलको न सहनेवाले उसको  
वर्जदे ॥ २७ ॥

क्षणेन हि प्रादुर्भवन्त्यरिष्टानि । अन्य-  
निमित्तश्चारिष्टप्रादुर्भाव इति २८

क्योंकि अरिष्ट क्षणमात्रमें हो जातेहैं

और अरिष्टोंके प्रादुर्भावका अन्यभी  
निमित्त होताहै, इति ॥ २८ ॥

तत्र श्लोकः ।

समुत्थानञ्च लिङ्गञ्च यः शोष-  
स्यावबुध्यते । पूर्वरूपञ्च तत्वेन  
सराज्ञः कर्तुमर्हति ॥ २९ ॥

उसमें यह श्लोकहै कि जो मनुष्य  
शोषके समुत्थान और लिंगको पूर्वरूप  
यथार्थजानताहै वह राजा (राज यक्ष्मी) की  
चिकित्सा करने योग्यहै ॥ २९ ॥

इति शोषनिदानं समाप्तम् ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

उन्मादनिदानम् ।

इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

इसके अनंतर उन्माद निदानका  
व्याख्यान करतेहैं यह भगवान् आत्रेय  
कहतेहैं कि ॥

इह खलु पञ्च उन्मादा भवन्ति ।  
तद्यथा,—वातपित्तकफसन्निपाता  
गन्तुनिमित्तास्तत्र दोषनिमित्ता  
श्चत्वारः ॥ १ ॥

यहां निश्चयसे पांच उन्माद होतेहैं  
वे ये हैं कि वात पित्त कफ सन्निपात  
आगंतु इन निमित्तोंसे उत्पन्न, उनमें चार  
दोष निमित्तसे होतेहैं ॥ १ ॥

पुरुषाणामेवंविधानां क्षिप्रमभि-  
निर्वर्तन्ते । तद्यथा,—भीरूणामु-  
पक्लिष्टसत्त्वानामुत्सन्नदोषाणाञ्च  
मलविकृतोपहितानि अनुचितानि

आहारजातानि वैषम्ययुक्तनोप  
योगविधिनोपयुञ्जानानां तन्त्रप्रयोगं  
वा विषममाचरतामन्यां वा चेष्टां  
विषमांसमाचरतां अत्युपक्षीणदे  
हानाञ्च व्याधि वेगसमुद्भ्रमिताना  
मुपहतमनसां वा कामक्रोधलोभ  
हर्षभयशोकचिन्तोद्वेगादिभिः पुन  
रभिघाताभ्याहतानां वामनसि उप  
हते बुद्धौ च प्रचलितायामभ्युदी  
र्णादोषाः प्रकुपिता हृदयमुपसृत्य  
मनोवहानि स्रोतांसि आवृत्य जन  
यति उन्मादम् । उन्मादं पुनर्मनो  
बुद्धिसंज्ञाज्ञानस्मृतिभक्तिशील  
चेष्टाचारविभ्रमं विद्यात् ॥ २ ॥

इस प्रकारके पुरुषोंके शीघ्र हो  
जाते हैं वे ये हैं, कि भीरु, अंतःकरणमें  
क्लेशित, दोषोंसे युक्त, मलविकृतिसे  
युक्त, अनुचित आहारके समूहोंको विष-  
मतासे युक्त उपयोगकी विधिसे जो  
भक्षण करते हैं वा विषम तंत्रयोगको  
जो करते हैं, वा अन्य विषम चेष्टाको  
करते हैं जिनका देह अत्यंत उपक्षीण है,  
व्याधिके वेगसे जो भ्रमित हैं, जिनका  
मन उपहत है, वा काम क्रोध लोभ हर्ष  
भय शोक चिन्ता उद्वेग आदिसे और वा  
अभिघातसे अभिहतोंके मनके उपहत  
होनेपर और बुद्धिके प्रचलित होनेपर

बुद्धिको प्राप्त हुये दोष प्रकुपित हुये  
हृदयमें पड़कर मनके बहनेहारे  
स्रोतोंको रोककर उन्मादको पैदा करते हैं,  
फिर मन बुद्धि संज्ञा ज्ञान स्मृति भक्ति  
शील चेष्टा आहार इनमेंभी विभ्रमको  
जानना ॥ २ ॥

तस्येमानि पूर्वरूपाणि । तद्यथा,-  
शिरसः शून्यभावः चक्षुषोराकुल  
तास्वनः कर्णयोरुच्छासस्याधि  
क्यमास्यसंस्त्रवणमनन्नाभिलापो  
ऽरोचकाविपाकौ हृदयग्रहो ध्याना  
याससम्मोहोद्वेगाश्चास्थाने सततं  
लोमहर्षो ज्वरश्वाभीक्षणमुन्मत्तचि  
त्तत्वमुददितत्वमर्दिताकृतिकरणश्च  
व्याधेः । स्वप्ने च दर्शनमभीक्षणं  
भ्रान्तचलितावस्थितानवस्थिता  
नाञ्च रूपाणामप्रशस्तानाञ्च तिलपी  
डकचक्राधिरोहणं वातकुण्डलिका  
भिश्चोन्मथनं निमज्जनं कलुषाणा-  
मम्भसामावर्त्तेषु चक्षुषोश्चापस  
र्पणमिति दोषनिमित्तानामुन्मा  
दानां पूर्वरूपाणि ॥ ३ ॥

उसके ये पूर्वरूप होते हैं कि शिरका  
शून्यभाव नेत्रोंको अस्वस्थता कानोंमें  
शब्द, ऊर्ध्वश्वासकी अधिकता मुखका  
संस्त्रवण अन्नकी अनिच्छा अरोचक  
अविपाक हृदयका ग्रह ध्यान आयास

संमोह उद्वेग ये असमयमें होतेहैं, निरं-  
तर लोमहर्ष वारंवार ज्वर चित्तमें  
उन्मत्तता उद्वेगता अर्दितके समान  
व्याधिकी आकृतिको करना, और  
स्वप्नमें वारंवार भ्रांत चलित और  
अनवस्थित रूपोंका और निंदित रूपोंका  
दर्शन तिलके पीडक चक्रपर चढ़ना  
वातकी कुंडलिकाओंसे उन्मथन और  
मलीन जलोंके आवतोंमें डूबना नेत्रोंका  
अपसर्पण इति ( ये ) दोष निमित्तक  
उन्मादोंके पूर्व रूप होतेहैं ॥ ३ ॥

ततोऽनन्तरमुन्मादाभिनिर्वृत्तिस्त-  
त्रेदमुन्मादविज्ञानं भवति तद्यथा-  
परिसर्पणमक्षिभुवामोष्ठांसहनुह-  
स्तपादविक्षेपणमकस्मात् अनि-  
यतानाश्च सततं गिरामुत्सर्गः  
फेनागयनमास्यात् स्मितहसित  
नृत्यगीतवादित्रादिप्रयोगाश्वास्था-  
ने, वीणावंशशङ्खशम्यातालश-  
ब्दानुकरणम् असाम्नायानमया  
नैरलङ्करणमलङ्कारिकैर्द्रव्यैर्लोभो-  
ऽभ्यवहार्यैष्वलब्धेषु लब्धेषु चा-  
वमानस्तीव्रं मात्सर्यं कार्यं पा-  
रुष्यमुत्पिण्डतारुणाक्षता वातो  
पशयविपर्ययासादनुपशयिता चेति  
वातोन्मादलिङ्गानि भवन्ति ॥ ४ ॥

उसके अनन्तर उन्मादकी उत्पत्ति हो-  
जाती है उसमें उन्मादका विज्ञान जो  
होताहै वह यह है कि नेत्र भ्रुकुटियोंका  
परिसर्पण ओष्ठ, अंस, हनु, हस्त, पाद,  
इनका अकस्मात् अनियमसे फेंकना  
निरंतर वाणीका बोलना मुखसे झागोंका  
आना स्मित हँसित नृत्य गीत वादित्र  
इनको असमयमें करना वीणा वंश शंख  
शम्याताल इनके शब्दका अशांतिसे  
अनुकरण यान भिन्नोसे यान ( गमन )  
जिनसे अलंकार न करना हो उनसे  
अलंकरण बिना मिले भोजनके पदार्थोंमें  
इच्छा और प्राप्तिमें अपमान बड़ा भारी  
द्रव्योंसे मात्सर्य कृशता परुपता उत्पिण्डता  
अरुणाक्षता (रक्तनेत्र) वातको उपशयके  
विपर्ययासे अनुपशयिता ये वातके उन्मा-  
दके लिंगेहैं ॥ ४ ॥

अमर्षः क्रोधः संरम्भश्चास्थानेशस्त्र-  
लोष्टकाष्ठमुष्टिभिरभिद्रवणंस्वेपां  
परेपांवाप्रच्छायशीतोदकान्नाभि-  
लापः सन्तापोऽतिबेलः । ताग्रह-  
रितहारिद्रसंरब्धाक्षतापित्तोपशय-  
विपर्ययासादनुपशयिताचेतिपित्तो-  
न्मादलिङ्गानिभवन्ति ॥ ५ ॥

और असमयमें अमर्ष क्रोध संभ्रम  
इनका होना शस्त्र लोष्ट काष्ठ इनको  
मुष्टिमें लेकर सन्मुख दौड़ना अपने वा-  
पराये वस्त्र शीतलजल अन्न इनकी  
अभिलाषा अनेकवार संताप ताम्र हरित

हृदि संवध नेत्रोंका होना पित्तके उप-  
शयके विपर्याससे अनुपशयिता इनका  
होना ये पित्तके उन्मादके लिंगहैं ॥ ५ ॥

स्थानमेकदेशेतूष्णीम्भावोऽल्पश  
श्रृंक्रमणंलालाशिंघानकप्रस्रव  
णमनन्नाभिलापोरहस्कामतावी  
भत्सन्वंशौचद्वेषःस्वल्पनिद्रताश्व  
यथुराननेशुक्लस्तिमितमलोपदि  
ग्धाक्षताश्लेष्मोपशयविपर्यासा  
दनुपशयिताचेतिश्लेष्मोन्मादलि  
ङ्गानिभवन्ति ॥ ६ ॥

एकदेशमें बैठारहना तूष्णीं रहना  
अल्पचंक्रमण लालाशिंघानक ( शिनक )  
इनका संस्रवण अन्नकी अनिच्छा एकांत  
स्थानकी कामना बीभत्सता, शौचमें  
द्वेष स्वल्प निद्रा मुखमें श्वयथु, शुक्ल  
स्तिमित अमलसे उपदिग्ध ऐसे नेत्रोंका  
होना, कफके उपशयके विपर्याससे अनु-  
पशयिता ये कफके उन्मादके लिंगहैं ६ ॥

त्रिदोषलिङ्गसन्निपातेतुसाक्षिपा  
तिकंविद्यात् । तमसाध्यमित्या  
चक्षतेकुशलाः ॥ ७ ॥

त्रिदोषके लिंग सन्निपातके उन्मादमें  
तो साक्षिपातिक उन्मादको जानै, उसको  
कुशल वैद्य असाध्य कहतेहैं ॥ ७ ॥

साध्यानान्तुत्रयाणांसाधनानिभ  
वन्ति । तद्यथा स्नेहस्वेदवमन  
विरेचनास्थापनानुवासनोपशमन

नस्तःकर्मधूपधूमपानाञ्चनावपीड  
प्रथमनाभ्यङ्गप्रदेहपरिपेकानुलेप  
नवधवन्धनावरोधन-वित्रासन-वि  
स्मापनविस्मारणापतर्पणशिरा  
व्यधनानि ॥ ८ ॥

तीनों साध्य उन्मादोंके साधन तो  
ये हैं कि स्नेह स्वेद वमन विरेचन  
आस्थापन अनुवासन उपशमन नस्तः  
कर्म, धूप धूमपान अंजन अवपीडन  
प्रथमन अभ्यंग प्रदेह परिपेक अनुले-  
पन वध बंधन अवरोधन वित्रासन विस्मा  
पन विस्मारण अपतर्पण शिराव्यधन  
( फस्त ) ये हैं ॥ ८ ॥

भोजनविधानञ्चयथास्वंगुक्त्या  
यच्चान्यदपिकिञ्चिन्निदानविपरी  
तमौषधंकार्यतत्स्यादिति ॥ ९ ॥

और यथार्थ रीतिसे युक्तिपूर्वक  
भोजनका विधान और जो अन्यभी  
निदानके विपरीत औषध हो वहभी करने  
योग्य है इति ॥ ९ ॥

तत्र श्लोकः ।

उन्मादान्दोषजान्साध्यान्सा  
धयेद्दिपगुत्तमः । अनेनविधियु  
क्तेनकर्मणायत्प्रकीर्तितमिति १०

उसमें यह श्लोक है कि इस पूर्वोक्त  
विधिसे युक्त कर्मसे उत्तम भिषक् दोषोंसे  
उत्पन्न हुए उन्मादोंका साधन करे इति १०

यस्तुदोषनिमित्तेभ्यउन्मादेभ्यः

समुत्थानपूर्वरूपलिङ्गवेदनोपशय  
विशेषसमन्वितोभवतिउन्मादस्त  
मागन्तुमाचक्षते ॥ ११ ॥

और जो उन्माद दोष निमित्तक  
उन्मादोंसे समुत्थान पूर्वरूप लिङ्ग वेदना  
उपशयकी विशेषतासे युक्त होताहै उसको  
आगन्तु कहतेहैं ॥ ११ ॥

केचित्पुनःपूर्वकृतकर्मप्रशस्तमि  
च्छन्ति । तस्यनिमित्तप्रज्ञापरा  
धएवेतिभगवान्पुनर्वसुरात्रेयउ  
वाच ॥ १२ ॥

कोई तो पुनः पूर्व कृत अप्रशस्त  
कर्मको चाहतेहैं, उनका निमित्त प्रज्ञा-  
पराधही है यह भगवान् पुनर्वसु आत्रेय  
कहतेहैं ॥ १२ ॥

प्रज्ञापराधाद्धिअयंदेवर्षिपितृग  
न्धर्वयक्षराक्षसपिशाचगुरुवृद्धसि  
द्धाचार्यपूज्यानवमत्याअहिता  
निआचरतिअन्यद्वाकिञ्चित्क  
र्माप्रशस्तमारभते ॥ १३ ॥

प्रज्ञापराधसेही यह मनुष्य देवता  
ऋषि पितृ गंधर्व यक्ष राक्षस पिशाच गुरु  
वृद्ध सिद्ध आचार्य इन पूज्योंका अप-  
मान करके अहित कर्मोंको करता है  
वा अन्य कोई अप्रशस्त कर्मका प्रारंभ  
करता है ॥ १३ ॥

तमात्मनोपहतमुपघ्नन्तोदेवाःकुर्व  
न्त्युन्मत्तम् । तत्रदेवादिप्रकोप

निमित्तेनागन्तुकोन्मादेनपुरस्कृत  
स्यइमानिपूर्वरूपाणि।तद्यथादेवगो  
ब्राह्मणतपस्विनांहिसारुचित्वंको  
पनत्वंनृशंसाभिप्रायताअरतिरो  
जोवर्णछायाबलवपुपाञ्चोपततिः।  
स्वप्नेचदेवादिभिरभिभर्त्सनंप्रवर्त्त  
नञ्चेतिआगन्तुनिमित्तस्यउन्मा  
दस्यपूर्वरूपाणिभवन्तिततोऽनन्त  
रमुन्मादाभिनिर्वृत्तिः ॥ १४ ॥

अपने हते उसको उपहनन करते  
हुये देव आदि उन्मत्त कर देते हैं, उनमें  
देव आदिके प्रकोपसे हुये उन्मादसे युक्त  
के जो पूर्वरूप होतेहैं वे ये हैं कि देव गो  
ब्राह्मण तपस्वी इनकी हिंसामें रुचि,  
कोपन, नृशंसामें अभिप्राय अजीर्ण ओज  
वर्ण छाया बल वपु इनका उपताप, स्वप्नमें  
देव आदिसे भर्त्सन और प्रवर्तन ये आगं  
तु निमित्तक उन्मादके पूर्वरूप होते हैं  
फिर उन्माद पैदा हो जाताहै ॥ १४ ॥

तत्रायमुन्मादकराणांभूतानामुन्मा  
दयिष्यतामारम्भविशेषःतद्यथा ।  
अवलोकयन्तोदेवाजनयन्तिउ  
न्मादम् । गुरुवृद्धसिद्धर्षयोऽभि  
शपन्तःपितरोर्धर्षयन्तः । स्पृश  
न्तोगन्धर्वाः । समाविशन्तोयक्ष  
राक्षसास्त्वामगन्धमाघ्रापयन्तः  
पिशाचाःपुनरधिरुह्यवाहयन्तः १५

उसमें उन्मादके कर्ता उन्मादके अभिलाषी भूतोंका आरंभ विशेष जो हैं वह ऐसे हैं कि देखतेहुये देवता उन्मादको पैदा करते हैं, गुरु वृद्ध सिद्ध ऋषिये अभिशाप करतेहुये और पितर धर्पण करतेहुये, गंधर्व स्पर्श करतेहुये, यक्ष राक्षस समावेश करते हुये और आमगंधको सुंघातेहुये और पिशाच अधि रोहण करके ( चढकर ) वाहन करतेहुये उन्मादको पैदा करतेहैं १५॥

तस्येमानिरूपाणि । तद्यथा,—

अमर्त्यबलवीर्य्यपौरुषपराक्रमय

हणधारणस्मरणज्ञानवचनविज्ञा

नानिअनियतश्चोन्मादकालः १६॥

उसके पूर्वरूप जो हैं वे ऐसे हैं बल वीर्य्य पौरुष पराक्रम ज्ञान वचन विज्ञान ये मनुष्यकी शक्तिसे अधिक हों और उन्मादके समयका नियम न हो ॥ १६॥

उन्मादयिष्यतामपिखलुदेवर्षिपि

तृगन्धर्वयक्षराक्षसपिशाचानां

गुरुवृद्धसिद्धानांवाएपुअन्तरे

पुअभिगमनीयाःपुरुषाभवन्ति

तद्यथा,—पापस्यकर्मणःसमारम्भे

पूर्वकृतस्यवाकर्मणःपरिणामकाले

एकस्यवाशून्यगृहवासेचतुष्पथा

धिष्ठानेवासन्ध्यावेलायामप्रयत

भावेवापर्वसन्धिषुवामिथुनभावे

रजस्वलाभिगमनेवाविगुणेवाध्य

यनवलिमङ्गलहोमप्रयोगेनियमव्र

तब्रह्मचर्य्यभङ्गेवामहाहवेवादेश

कुलपुरविनाशेवामहाग्रहोपगमने

वास्रियाःप्रजननकालेविविधभूता

शुभाशुचिस्पर्शनेवावमनविरेचन

रुधिरस्रावेवाशुचेरप्रयतस्यवाचै

त्यदेवायतनाभिगमनेवामांसमधु

तिलगुडमद्योच्छिष्टेवादिग्वाससि

वानिशिनगरनिगमचतुष्पथोपवन

श्मशानायतनाभिगमनेवाद्विजगु

रुसुरपूज्याभिधर्पणेवाधर्माख्यान

व्यतिक्रमेवाअन्यस्यकर्मणोऽप्र

शस्तस्यारम्भेवाइत्याघातका

लाः ॥ १७ ॥

और उन्मादके अभिलाषीभी देव ऋषि गंधर्व यक्ष राक्षस पिशाच गुरु वृद्ध सिद्ध ये इन आगे वर्णन किये अवसरोंमें पुरुषमें आकर गमन करतेहैं वे अवसर ऐसेहैं कि पाप कर्मके समारंभमें वा पूर्वकृत कर्मके परिणाम कालमें वा एकाकीके शून्यगृहमें वास होनेपर, चतुष्पथमें बैठनेसे, संध्याके समय असावधान रहनेपर, पूर्वके संधियों में मैथुन करनेसे रजस्वलाके गमनसे वा निर्गुण अध्ययन बलि मंगल होमके प्रयोगमें नियम व्रत ब्रह्मचर्य्यके भंगमें वा महासंग्राममें देश कुल पुर इनके विनाशमें, महाग्रहके उपगमनमें वा स्त्रीके



प्रजनन कालमें, अनेक प्रकारके भूत अशुभ अशुचियोंके स्पर्शनमें, धमन विरेचन रुधिरश्रावसे, अशुद्ध अप्रयत ( सावधान ) को चैत्य देवमंदिरमें गमनसे, वा मांस मधुतिल गुड मद्यसे उच्छिष्टमें, वा नग्नमें रात्रिमें नगर के निगमके चतुष्पथमें उपवन श्मशानके संमुख गमनमें वा द्विज गुरु सुर संन्यासी पूज्य इनके उपालंभसे वा धर्म आख्या-नके व्यतिक्रमसे वा अन्य अप्रशस्त कर्मके प्रारंभमें प्रवेश करतेहैं, ये आघा-तके कालहैं ॥ १७ ॥

त्रिविधन्तुखलुउन्मादकराणांभू-  
तानामुन्मादनेप्रयोजनंभवति ।  
तद्यथा,—हिंसारतिरभ्यर्चनश्चेति ।  
तेषांतत्प्रयोजनमुन्मत्ताचरणविशे-  
षलक्षणैर्विद्यात् । तत्रहिंसार्थमु-  
न्माद्यमानोऽग्निप्रविशतिअप्सुवा-  
निमज्जतिस्थलात्श्वभेवानिपत-  
ति । शस्त्रकशाकाष्ठलोष्टमुष्टिभि-  
र्हन्त्यात्मानमन्यच्चप्राणवधार्थ-  
मारभते । हिंसार्थिनमुन्मत्तमसा-  
ध्यंविद्यात् । साध्यौपुनर्द्वावित-  
रौ ॥ १८ ॥

और उन्मादकारी भूतोंके उन्माद करनेमें तीन प्रकारका प्रयोजनहै वह ऐसेहै कि हिंसा अरति अभ्यर्चन, उनके उस प्रयोजनकी उन्मत्तके आचरण विशेष

लक्षणोंसे जानै, उनमें हिंसाके अर्थ उन्माद जिसको किया जाताहै वह अग्निमें प्रविष्ट होताहै, जलोंमें डूबताहै, स्थलसे श्वभ्रमें पड़ताहै शस्त्र कशा काष्ठ लोष्ट मुष्टि इनसे अपने आत्माका हनन करताहै और प्राणवधके लिये अन्य कर्मकाभी प्रारंभ करताहै उसको असाध्य जानै, इतर दोनों साध्य होतेहैं ॥ १८ ॥

तयोःसाधनानि । मन्त्रौपधिमाणि  
मङ्गलबल्युपहारहोमनियमव्रतप्रा-  
यश्चित्तोपवासस्वस्त्ययन-प्रणिपा-  
तगमनादीनिइतिएवमेतेष्वोन्मा-  
दाव्याख्याताभवन्ति ॥ १९ ॥

उनके साधन ये हैं कि मंत्र औपधि माणि मंगल बलि उपहार होम नियम व्रत प्रायश्चित्त उपवास स्वस्त्ययन प्रणति पात गमन आदि, इस प्रकार ये पांच उन्माद होतेहैं ॥ १९ ॥

ते तु खलु निजागन्तुविशेषेण  
साध्यासाध्यविशेषेण च प्रवि-  
भज्यमानाः पञ्च सन्तो द्वौ एव  
भवतः ॥ २० ॥

वे निश्चयसे निज आगंतुके विशेषसे और साध्य असाध्यके विशेषसे विभाग किये हुये पांच होनेपरभी दो होतेहैं २०

तौ परस्परमनुबध्नीतः । कदाचि-  
द्यथोक्तहेतुसंसर्गाच्च तयोः संसृ-  
ष्टमेव पूर्वरूपं भवति संसृष्ट मेव

लिङ्गञ्च । तत्र असाध्यसंयोगं  
साध्यासाध्यसंयोगंवाअसाध्यं  
विद्यात् । साध्यन्तुसाध्यसंयोगं  
तस्य साधनं साधनसंयोगमेववि  
द्यादिति ॥ २१ ॥

वे परस्पर अनुबंधको प्राप्त होतेहैं और  
कदाचित् यथोक्त हेतुके संसर्गसे उनका  
मिलाहुआही पूर्वरूप और मिलाहुआ ही  
लिंग जानना उसमें असाध्यके संयोगको  
और साध्य असाध्यके संयोगको असाध्य  
जाने, साध्य तो साध्यका संयोग होताहै  
उसका साधन साधनका संयोगही  
जानना इति ॥ २१ ॥

तत्र श्लोकाः ।

नैव देवा न गन्धर्वा न पिशाचा  
न राक्षसाः । न चान्ये स्वयम्  
क्लिष्टमुपक्लिश्यन्ति मानवम् ॥ २२ ॥

उसमें ये श्लोकहैं कि स्वयं क्लेश  
रहित मनुष्यको देवता गंधर्व पिशाच  
राक्षस और अन्य, क्लेश नहीं दे  
सकतेहैं ॥ २२ ॥

ये त्वेनमनुवर्तन्ते क्लिश्यमानं  
स्वकर्मणा । न तन्निमित्तः क्लेशो  
ऽसौ न ह्यस्तिकृतकृत्यता ॥ २३ ॥

और अपने कर्मसे क्लेशको प्राप्त हुये  
इस मनुष्यका जो अनुवर्तन करतेहैं वह  
क्लेश उनके निमित्तसे नहीं है क्योंकि  
कृतकृत्यता नहीं है ॥ २३ ॥

प्रज्ञापराधात् सम्प्राप्ते व्याधौ  
कर्मजआत्मनः । नाभिर्शंसेद्बु  
धोदेवान् न पितृन् नापि  
राक्षसान् ॥ २४ ॥

प्रज्ञाके अपराधसे अपने कर्मज  
व्याधिकी सम्प्राप्ति होनेपर बुद्धिमान्  
मनुष्य देवता पितर राक्षस इनकी निंदा  
न करे ॥ २४ ॥

आत्मानमेव मन्येत कर्त्तारं सुख  
दुःखयोः । तस्माच्छ्रेयस्करं  
मार्गं प्रतिपद्येत नोत्रसेत् ॥ २५ ॥

आत्माकोही सुख दुःखका कर्त्तामाने  
तिससे कल्याणकारी मार्गमें प्राप्त हो  
नासको न करे ॥ २५ ॥

देवादीनामुपचितिर्हितानामुपसे  
वनम् । न च तेभ्यो विरोधश्च  
सर्वमायत्तमात्मनि ॥ २६ ॥

देवता आदिकी यही पूजाहै कि हित  
पदार्थोंका सेवन करना और उनके संग  
विरोध न करना क्योंकि सब आत्माके  
आधीनहै ॥ २६ ॥

संख्यानिमित्तं द्विविधं लक्षणं  
साध्यता न च । उन्मादानां नि  
दानेऽस्मिन् क्रियासूत्रञ्च भाषि  
तम् ॥ २७ ॥

संख्याका निमित्त, दो प्रकारका लक्षण और साध्य ये सब उन्मादोंके इस निदानमें कहे और क्रिया सूत्रकाभी वर्णन किया, इति ॥ २७ ॥

इति उन्मादनिदानं समाप्तम् ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अपस्मारनिदानम् ।

इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

इसके अनंतर अपस्मार निदानका व्याख्यान करते हैं यह भगवान् आत्रेय कहते हैं कि—

इह खलु चत्वारोऽपस्मारा वात पित्तकफसन्निपातनिमित्ताः ॥ १ ॥

यहां निश्चयसे चार अपस्मार होते हैं वात पित्त कफ सन्निपात जिनके निमित्त हैं ॥ १ ॥

ते एवंविधानां प्राणभूतां क्षिप्रमभिनिर्वर्तन्ते । तद्यथा । रजस्तमोभ्यामुपहतचेतसामुद्भ्रान्तविषमबहुदोषाणां समलविकृतोपहितानि अशुचीनि अभ्यवहारजातानि वैषम्ययुक्तेन उपयोगविधिनोपयुञ्जानानांतन्त्रप्रयोगमपि च विषममाचरतामन्याश्च शरीरचेष्टाविषमाः समाचरतामत्युपक्षीणदेहानां वा दोषाः प्रकुपितारजस्तमोभ्यामुपहतचेतसामन्तरात्मनः श्रेष्ठतममायतनं हृदय

मुपसंगृह्य पर्यवतिष्ठन्ते तथा इन्द्रियायतनानि तत्र चावस्थिताः सन्तो यदा हृदयमिन्द्रियायतनानि चोरेताः कामक्रोधभयलोभमोहहर्षशोकचिन्तोद्वेगादिभिः भूयः सहसा अभिपूरयन्ति तदा जन्तुरपस्मरति ॥ २ ॥

वे इस प्रकारके प्राणियोंको शीघ्र होते हैं वे ऐसे हैं कि रजोगुण तमोगुणसे जिनका चित्त नष्ट है अधिकभ्रांत और विषम बहुदोषी जो हैं और मलीन विकृतिसे युक्त अशुद्ध आहारके समूहोंको विषमतासे युक्त उपयोगकी विधिसे जो भक्षण करते हैं और तंत्र प्रयोगको भी विषमरीतिसे करते हैं और अन्यभी विषम शरीरकी चेष्टाओंको करते हैं वा जिनका देह क्षीण न हो ऐसे मनुष्योंके प्रकुपित हुये दोष, रजोगुण तमोगुणसे नष्टचित्त मनुष्यके अंतरात्माका जो अत्यंत श्रेष्ठ आयतन हृदय है उसमें संसर्ग करके बैठते हैं तैसेही इंद्रियोंके आयतनोंमें बैठते हैं, और वहां स्थित हुये प्रेरणासे जब हृदय और इंद्रियोंके स्थानोंको काम क्रोध भय लोभ मोह हर्ष शोक चिन्ता उद्वेग आदिसे सहसा पूर्ण करदेते हैं तब जंतु अपस्मारको प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥

अपस्मारं पुनः स्मृतिबुद्धिसत्त्वसंप्लवाद्बीभत्सचेष्टमावस्थिकंतमः प्रवेशमाचक्षते ॥ ३ ॥

और स्मृति बुद्धि सत्व इनके नष्ट होनेसे भयानक चेष्टासे आवस्थिक ( जन्मभर ) तमःप्रवेशरूपको अपस्मार कहते हैं ॥ ३ ॥

तस्येमानिपूर्वरूपाणिभवन्ति । तद्यथा-भूव्युदासःसततमक्षणेर्वृत्तमशब्दश्रवणंलालाशिंघाणकप्रस्रवणमनन्नाभ्यशनमरोचकाविपाकौहृदयग्रहःकुक्षेराटोपोदौर्वल्यमङ्गमर्दोमोहस्तमसोर्दर्शनमूर्च्छाभ्रमश्वाभीक्षणञ्चस्वप्नेमदनर्तनपीडन-वेपनव्यधनपतनादीनि अपस्मारपूर्वरूपाणिभवन्तिततोऽनन्तरमपस्माराभिनिवृत्तिः ॥ ४ ॥

उसके जो पूर्वरूपहैं वे ऐसे हैं कि भ्रुकुटियोंका गिरना निरन्तर नेत्रोंमें विकार शब्दका अश्रवण, लाला सिंघानकका प्रस्रवण, अन्नका अनभिलाष, अरोचक अविपाक हृदयका ग्रह कुक्षिमें आटोप दुर्बलता अंगमर्द मोह तमका दर्शन मूर्च्छा वारंवार भ्रम स्वप्नमें मद नर्तन पीडन वेपन व्यधन पतन इति—उसके अनन्तर अपस्मार उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ४ ॥

तत्रेदमपस्मारविशेषविज्ञानं भवति । तद्यथा । अभीक्षणमपस्मरन्तं क्षणे क्षणे संज्ञां प्रतिल

भमानमुत्पिण्डिताक्षमसाम्रा वा विलपन्तमुद्रमन्तं फेनमतीवाध्मा तग्रीवमाविद्धशिरस्कं विपमवि नतांगुलिमनवस्थितसकृत्थिपाणिपादमरुणपरुपश्यावनखनयनवदन त्वचमनवस्थितचपलपरुपरूक्ष रूपदर्शिनंवातलानुपशयं विपरीतोपशयं वातेनापस्मारवन्तं विधात् ॥ ५ ॥

उसमें अपस्मारका विशेष ज्ञान जो है वह ऐसे है कि वारंवार अपस्मरण करतेहुयेको क्षण में संज्ञाको प्राप्त हुये को, उत्पिण्डित अक्षिमान् हो, वाअशांतिसे विलाप फेनका उद्गमन करताहो अत्यंत ग्रीवामें आध्मान हो शिर आसमंतसे वींथाहो और विपमतासे अंगुलियोंका नमन करता हो, सकृत्थि पाणि पाद ये अवस्थित नहीं, अरुण परुप श्याव, रंगके नख नयन वदन त्वचा हों, और अनवस्थित चपल परुष रूक्ष रूप दीखे, वातल अनुशय हो विपरीत उपशयहो इस प्रकारका होय तो वातसे अपस्मारी जानै ॥ ५ ॥

अभीक्षणमपस्मरन्तं क्षणे क्षणे संज्ञां प्रतिलभमानमनुकूजन्तमास्फालयन्तं च भूमिं हरितहारिद्रताम्रनखनयनवदन त्वचं रुधिरोक्षितोग्रभैरवप्रदीतरू

पितरूपदर्शिनं पित्तलानुपशयं वि-  
परीतोपशयं पित्तेनापस्मारितं  
विद्यात् ॥ ६ ॥

और बारंवार अपस्मरण करताहो  
क्षण २ में संज्ञाको प्राप्त होताहो अनु-  
कूज ( शब्द ) करताहो भूमिका आ-  
स्फालन करताहो, हरित हलदीके समान  
ताम्रकी तुल्य, नख नयन वदन त्वचा  
हो रुधिरसे सिंचित उग्र भैरव दीप्त  
रुषित रूपोंको देखताहो पित्तल अनुशय  
हो विपरीत उपशय हो इस प्रकारका  
होय तो पित्तका अपस्मारी जानै ॥ ६ ॥

चिरादपस्मरन्तंचिराच्चसंज्ञांप्र-  
तिलभमानंपतन्तमनतिविकृतचे-  
ष्टलालामुद्गमन्तंशुक्लनखनयनवद-  
नत्वचंशुक्लगुरुस्निग्धरूपदर्शिनंश्ले-  
ष्मलानुपशयंविपरीतोपशयंश्ले-  
ष्मणापस्मारितंविद्यात् ॥ ७ ॥

और चिरकालसे अपस्मरण होताहो,  
चिरकालमेंही संज्ञा होतीहो, पतन कर-  
ताहो अत्यंत विकारकी चेष्टा न हो लालाका  
उद्गमन करताहो, नख नयन वदन त्वचा  
ये शुक्लहों, शुक्ल गुरु स्निग्ध रूपोंको देख-  
ताहो कफका अनुशयहो विपरीतका  
उपशयहो उसको श्लेष्मका अपस्मारी  
जानै ॥ ७ ॥

समवेतसर्वलिंगमपस्मारं सान्निपा-  
तिकं विद्यात् । तमसाध्यमाचक्ष

ते । इति चत्वारोऽपस्माराः । ते  
षामागन्तुरनुबन्धो भवत्येव । क-  
दाचित्सउत्तरकालमुपदेक्ष्यते ।  
तस्य विशेषविज्ञानं यथोक्तैर्लिङ्गै-  
र्लिङ्गाधिक्यमदोषलिंगानुरूपं किं  
त्रिद्वितं तत्तु अपस्मारिभ्यस्ती-  
क्षणानि चैव संशोधनानि उपशमना-  
नियथास्वं मन्त्रादीनि चागन्तुसं-  
योगे ॥ ८ ॥

ये तीनों लिंग जिसमें इकट्ठेहों उसको  
सन्निपातका अपस्मारी जानै उसको असा-  
ध्य कहतेहैं ये चार अपस्मार होतेहैं, उन-  
का आगंतु अपस्मार अनुबन्धी होताहै  
उसका उपदेश कदाचित् उत्तर कालमें  
करेंगे, उसका विशेष विज्ञान यहहै कि  
पूर्वोक्त लिंगोंसे अधिक लिंगोंका होना,  
अदोष लिंगके अनुरूप किंचित् हितहो  
उसमें अन्य अपस्मारियोंसे तीक्ष्ण संशो-  
धन और उपशमन और यथा योग्य मंत्र  
आदि आगंतुके संयोगमें करै ॥ ८ ॥

तस्मिन् हि दक्षाध्वरोध्वंसे देहिनां ना-  
नादिक्षुविद्रवतामति सरणप्लवनल-  
ङ्घनाद्यैर्देहविक्षोभणैः पुरागुल्मोत्प-  
त्तिरभूद्धविष्माशान्मेहकुष्ठानां  
भयत्रासशोकैरुन्मादानां विविध-  
भूताशुचिसंस्पर्शादपस्माराणाम् ९

क्योंकि उसमें दक्षयज्ञके ध्वंसमें दिशा  
ओंमें जो देहधारी भागे उनके अतिसरण

पुवन लंघन आदि जो देहके विक्षोभणहैं  
उनसे पहिले गुल्मकी उत्पत्ति हुई, हविके  
भक्षणसे प्रमेह कुष्ठोंकी और त्रास शोकोसे  
उन्मादोंकी और अनेक प्रकारके अशु-  
चियोंके संस्पर्शसे अपस्मारोंकी उत्पत्ति  
हुई ॥ ९ ॥

ज्वरस्तु महेश्वरललाटप्रभवः । त

त्सन्तापाद्रक्तपित्तमतिव्यवायात्

पुनर्नक्षत्रराजस्यराजयक्ष्मेति १०

और ज्वर तो शिवजीके ललाटसे  
उत्पन्न हुआ, उसके संतापसे रक्तपित्त  
और अति व्यवायसे चंद्रमाके राजयक्ष्मा  
उत्पन्न हुआ इति ॥ १० ॥

तत्रश्लोकाः ।

अपस्मरतिवातेनपित्तेनचकफेनच ।

चतुर्थःसन्निपातेनप्रत्याख्येयस्त

थाविधः ॥ ११ ॥

उसमें ये श्लोकहैं कि वातसे पित्तसे  
और कफसे अपस्मरण करताहै चौथा  
जो सन्निपातसे अपस्मरण करताहै  
उसको प्रत्याख्येय कहतेहैं ॥ ११ ॥

साध्यास्तुभिषजःप्राज्ञाःसाधय

न्तिसमाहिताः । तीक्ष्णैःसंशो

धनैश्चैवयथास्वंशमनैरपि ॥ १२ ॥

बुद्धिमान् भिषज साध्योंका तो साव-  
धान होकर तीक्ष्ण संशोधन और यथा  
योग्य शमन करनेसे साधन करसकतेहैं १२  
यदादोषनिमित्तस्यभवत्यागन्तुर

न्वयः । तदासाधारणकर्मप्रवद  
न्तिभिषग्वराः ॥ १३ ॥

जब आगंतु दोषके निमित्तका अनु-  
यायी होताहै तब तो वैद्योंमें श्रेष्ठ साधा-  
रण कर्म करना कहतेहैं ॥ १३ ॥

सर्वरोगविशेषज्ञःसर्वौषधविशेष  
वित् । भिषक्सर्वामयान्हन्ति  
नचमोहंनियच्छति । इत्येतदस्मि  
लेनोक्तंनिदानस्थानमुत्तमम् १४ ।

सब रोगोंके विशेषज्ञा और सब  
औषधोंके विशेषज्ञा ज्ञाता वैद्य सब  
रोगोंको दूर करसकताहै और मोहको  
प्राप्त नहीं होता, यह संपूर्ण रूपसे उत्तम  
निदान स्थान कहा ॥ १४ ॥

निदानार्थकरोरोगोरोगस्याप्युप  
लभ्यते । तथथाज्वरसन्तापाद्र  
क्तपित्तमुदीर्यते ॥ १५ ॥

रोगके निदानरूप अर्थका कर्ता रोगभी  
ही जाताहै, वह ऐसेहै कि ज्वरके संता-  
पसे रक्तपित्त होताहै ॥ १५ ॥

रक्तपित्ताज्ज्वरसन्ताप्यांशोपश्वा  
प्युपजायते । प्लीहांमिवृद्ध्याज  
ठरंजठराच्छोफंएवंच ॥ १६ ॥

और रक्तपित्तसे ज्वर और उन  
दोनोंसे शोष होजाताहै, प्लीहाकी वृद्धिसे  
जठरका रोग और जठरसे शोफ हो  
जाताहै ॥ १६ ॥

अर्शोभ्योजठरंदुःखं गुल्मश्चाप्यु-  
पजायते । प्रतिश्यायादथोकासः  
कासात्संजायते क्षयः । क्षयोरो-  
गस्य हेतुत्वेशोपश्चाप्युपजायते १७

अर्शोसे उदरका दुःख और गुल्म  
होजाताहै प्रतिश्यायसे कास और काससे  
क्षय और क्षय शोषका हेतु होजाताहै १७

ते पूर्वकेवलारोगाः पश्चाद्धत्वर्थका-  
रिणः । उभयार्थकरादृष्टास्तथैवै-  
कार्थकारिणः ॥ १८ ॥

वे रोग पहिले केवल रहतेहैं और  
हेतुके अर्थकारी होजातेहैं दो अर्थके  
कर्ताभी रोग देखेहैं और एक २ अर्थके  
कारीभी होतेहैं ॥ १८ ॥

कश्चिद्धिरो गोरोगस्य हेतुभूत्वा प्र-  
शाम्यति । न प्रशाम्यति चाप्य-  
न्यो हेतुत्वं कुरुतेऽपि च ॥ १९ ॥

कोई रोग तो रोगका हेतु होकर शांत  
होजाताहै और अन्य शांत नहीं होता  
और हेतुताको करताहै ॥ १९ ॥

एवं लच्छतमानृणां दृश्यन्ते व्या-  
धिसङ्कराः । प्रयोगापरिशुद्धत्वा-  
त्तत्त्वाचानोन्यसम्भवात् ॥ २० ॥

इस प्रकार मनुष्योंको अत्यंत कष्टके  
दाता व्याधियोंके संकर (मेल) दीखतेहैं  
प्रयोगकी विशुद्धिसे और परस्पर रोगोंके  
होनेसे संकर होताहै ॥ २० ॥

प्रयोगः शमयेद्व्याधियोऽन्यमन्य-  
मुदीरयेत् । नासौ विशुद्धः शुद्धस्तु  
शमयेद्योनकोपयेत् ॥ २१ ॥

जो प्रयोग व्याधिको शांत करदे  
और अन्य २ व्याधियोंको बढ़ादे वह  
प्रयोग शुद्ध नहीं होता और शुद्ध प्रयो-  
गतो शांत करताहै कोप नहीं करताहै २१

एको हेतुरनेकस्य तथैकस्यैक एव  
हि । व्याधेरैकस्य चानेको बहूनां  
बहवोऽपि च ॥ २२ ॥

एक रोग अनेकका हेतु होताहै और  
एकका एकभी हेतु होताहै एक व्याधिके  
अनेक हेतु होतेहैं बहुत व्याधियोंके  
बहुतभी हेतु होतेहैं ॥ २२ ॥

ज्वरभ्रमप्रलापाद्यादृश्यन्ते रूक्षहे-  
तुजाः । रूक्षेणैकेन चाप्येको ज्व-  
र एवोपजायते ॥ २३ ॥

क्योंकि ज्वर भ्रम प्रलाप आदि रूक्ष  
हेतुसे उत्पन्न हुये दीखतेहैं और एक  
रूक्षसे एक ज्वरभी होताहै ॥ २३ ॥

हेतुभिर्बहुभिश्चैको ज्वरो रूक्षादि-  
भिर्भवेत् । रूक्षादिभिर्ज्वराद्या-  
श्च व्याधयः सम्भवन्ति हि ॥ २४ ॥

और रूक्ष आदि बहुतसे हेतुओंसेभी  
एक ज्वर होताहै और रूक्ष आदिसे  
ज्वर आदि व्याधि होती हैं ॥ २४ ॥

लिङ्गश्चैकमनेकस्य तथैकस्यैक

मुच्यते । बहून्येकस्यचव्याधेर्व  
हूनांस्युर्वहूनिच ॥ २५ ॥

और अनेकका एकभी लिंग होताहै  
और एकका एकभी लिंग कहाहै, एक  
व्याधिके बहुत लिंग होते हैं और बहुत  
व्याधियोंके बहुतभी लिंग होतेहैं ॥ २५ ॥

विषमारम्भमूलानांलिङ्गमेकंज्व  
रोमतः । ज्वरस्यैकस्यचाप्येकः  
सन्तापोलिङ्गमुच्यते ॥ २६ ॥

विषम आरंभ जिनका मूलहै ऐसे  
रोगोंका लिंग ज्वरको मानाहै और एक  
ज्वरका लिंग एक संतापभी कहाहै ॥ २६ ॥

विषमारम्भमूलैश्चज्वरएकोनिरु  
च्यते । लिङ्गैरेतैर्ज्वरश्वासहिक्का  
द्याःसन्तिचामयाः ॥ २७ ॥

विषम आरंभमूलोंसे एक ज्वरभी  
कहाहै और इन लिंगोंसे ज्वर श्वास  
हिक्का आदि रोग होतेहैं ॥ २७ ॥

एकाशान्तिरनेकस्यतथैकैकस्य  
लक्ष्यते । व्याधेरेकस्यचानेकोव  
हूनांवह्वयएवच ॥ २८ ॥

और अनेक रोगोंकी एक शांति और  
एक रोगकी एक शांतिभी देखते हैं एक  
व्याधिकी अनेक शांति और बहुत व्याधि-  
योंकी बहुत शांतिभी होती हैं ॥ २८ ॥

शान्तिरामाशयोत्थानांव्याधीनां  
लघनक्रिया । ज्वरस्यैकस्यचा  
प्येकाशान्तिर्लघनमुच्यते २९ ॥

आमाशयमें उत्पन्न व्याधियोंकी शांति  
लघन करनाहै और एक ज्वरकी शांतिभी  
एक लघनही कहाहै ॥ २९ ॥

तथालघ्वशनाद्याश्चज्वरस्यैकस्य  
शान्तयः । एताश्चैवज्वरश्वासहि  
क्कादीनांशान्तयः ॥ ३० ॥

तिसी प्रकार लघु भोजन आदिभी  
एक ज्वरकी शांतिहै और ये ही ज्वर  
श्वास हिक्का आदिकी शांतिहैं ॥ ३० ॥

सुखसाध्यःसुखोपायःकालेनाल्पे  
नसाध्यते । साध्यतेकृच्छ्रसाध्य  
स्तुयत्नेनमहताचिरात् ॥ ३१ ॥

सुखसे साध्य जो सुख उपायहै वह  
अल्पकालसे सिद्ध हो जाताहै और जो  
कृच्छ्र साध्यहै वह बड़े यत्नसे चिरका-  
लमें सिद्ध होताहै ॥ ३१ ॥

यातिनाशेपतांव्याधिरसाध्योया  
प्यसंज्ञितः । परोऽसाध्यःक्रियाः  
सर्वाःप्रत्याख्येयोऽतिवर्त्तते ॥ ३२ ॥

असाध्य जो याप्य नामकी व्याधिहै  
वह निश्शेष भावको प्राप्त नहीं होती और  
अपर जो प्रत्याख्येय व्याधिहै वह सब  
क्रियाओंका अवलंघन करतीहै ॥ ३२ ॥

नासाध्यःसाध्यतांयातिसाध्योया  
तित्वसाध्यताम् । पादावचाराद्वै  
वाद्यायान्तिभावान्तरंगदाः ३३ ॥

असाध्य व्याधि साध्य भावको प्राप्त  
नहीं होतीहै और साध्य व्याधि असाध्य



रूप होजातीहै वैद्य आदि पादके अव  
चारसे वा दैवसे रोग अन्यभावको प्राप्त  
हो जातेहैं ॥ ३३ ॥

वृद्धिस्थानक्षयावस्थादोषाणामु  
पलक्षयेत् । सुसूक्ष्मामपिचप्रा  
ज्ञोदेहाग्निबलचेतसाम् ॥ ३४ ॥

दोषोंकी वृद्धि स्थान क्षय अवस्थाको  
देह अग्नि बल चित्त इनकी अत्यंत सूक्ष्म  
अवस्थाकोभी बुद्धिमान् वैद्य देखै ॥ ३४ ॥

व्याध्यवस्थाविशेषान्हिज्ञात्वा  
ज्ञात्वाविचक्षणः । तस्यांतस्या  
मवस्थायांतत्तच्छ्रेयःप्रपद्यते ३५।

व्याधिकी अवस्थाके विशेषोंको जान  
२ कर विचक्षण वैद्य तिस २ अवस्थामें  
अवश्य कल्याणको प्राप्त होताहै ॥ ३५ ॥

प्रायस्तिर्यग्गतादोषाःक्लेशयन्त्या  
तुरांश्चिरम् । तेपुनत्वरयाकुर्व्या  
देहाग्निबलवित्क्रियाम् ॥ ३६ ॥

प्रायः तिर्यक् भावको प्राप्त एहु दोष  
रोगियोंको चिरकालतक क्लेश देतेहैं  
उनके विषय शीघ्रतासे देह अग्निके बलकी  
क्रियाको न करै ॥ ३६ ॥

प्रयोगैःक्षपयेद्वातान्सुखंवाकोष्ठ  
मानयेत् । ज्ञात्वाकोष्ठप्रपन्नांस्ता  
न्यथास्वंतंहरेद्बुधः ॥ ३७ ॥

प्रयोगोंसे उनको नष्ट करै वा सुख  
उपायसे कोष्ठमें प्राप्त करै कोष्ठमें प्राप्त  
हुए उनको जानकर यथायोग्य उस  
व्याधिकी बुद्धिमान् वैद्य हरै ॥ ३७ ॥

ज्ञानार्थयानिचोक्तानिव्याधिलि  
ङ्गानिसंग्रहे । व्याध्यस्तेतदात्वे  
तुलिङ्गानीष्टानिनामयाः ॥ ३८ ॥

ज्ञानके लिए जो व्याधियोंके लिंग  
संग्रहमें कहेहैं उस समय वे व्याधि हैं  
और वे लिंग इष्टहै आमयनहीं ॥ ३८ ॥

विकाराःप्रकृतिश्चैवद्वयंसर्वसमा  
सतः । तद्धेतुवशगहेतोरभावान्ना  
नुवर्तते ॥ ३९ ॥

विकार और प्रकृति इन दो प्रकारके  
सब संक्षेपसे होतेहैं और वह हेतुके वशमें  
होताहै और हेतुके अभावसे नहीं होताहै  
इति ॥ ३९ ॥

तत्र श्लोकाः ।

हेतवःपूर्वरूपाणिरूपाण्युपशयस्त  
था । संप्राप्तिःपूर्वमुत्पत्तिःसूत्रमा  
त्रचिकित्सितम् ॥ ४० ॥

उसमें ये श्लोकहैं कि हेतु पूर्वरूप रूप  
और उपशय संप्राप्ति पूर्व उत्पत्ति सूत्र  
मात्र चिकित्सित ॥ ४० ॥

ज्वरादीनांविकाराणामष्टानांसा  
ध्यतानच । पृथगेकैकशश्चोक्ता  
हेतुलिङ्गोपशान्तयः ॥ ४१ ॥

ज्वर आदि विकारोंकी साध्यता असा-  
ध्यता ये पृथक् पृथक् और एक २ कहे  
हेतु लिंग उपशान्ति ॥ ४१ ॥

हेतुपर्य्यायनामानिव्याधीनांलक्ष

णस्यच । निदानस्थानमेतावत्सं  
ग्रहणोपदिश्यते ॥ ४२ ॥

निदानस्थानं सम्पूर्णम् ।

हेतुके पर्याय नाम व्याधि और लक्षण,  
इतना निदान स्थान संग्रहसे उपदेश  
किया है इति ॥

इत्यपस्मार निदानम् पं० मिहिरचंद्रकृतभाषाविशुद्धि  
सहितं निदानस्थानं समाप्तम् ॥

अथविमानस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातोरसविमानं व्याख्यास्यामः ।

इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

इसके अनंतर रस विमानका व्या-  
ख्यान करते हैं कि यह भगवान् आत्रेय  
वर्णन करते भये ॥

इह खलु व्याधीनां निमित्तपूर्वरूपरू-  
पोपशयसंख्याप्राधान्यविधिविक-  
ल्पबलकालविशेषाननुप्रविश्यान  
न्तरं रसद्रव्यदोषविकारभेषज-दे-  
शकालबलशरीराहारसारसात्म्य  
सत्त्वप्रकृतिवयसां मानमवहितम  
नसायथावज्ज्ञेयं भवति भिषजार  
सादिमानज्ञानायत्तत्वात् क्रिया  
याः । नहि अमानज्ञोरसादीनां भि-  
षक् व्याधिनिग्रहसमर्थो भवति ।  
तस्माद्रसादिमानज्ञानार्थं विमान  
स्थानमुपदेक्ष्यामोऽग्निवेश । तत्रा

दौरसद्रव्यदोषविकारप्रभावान्  
वक्ष्यामः ॥ १ ॥

यहां निश्चयसे व्याधियोंके निमित्त  
पूर्वरूप रूप उपशय संख्या प्राधान्य  
विधि विकल्प बल काल इनके विशेषोंको  
आतुरमें अनुप्रवेश करके दोष भेषज देश  
काल बल शरीर आहार सार सात्म्य  
सत्त्व प्रकृति अवस्था इनके मान सावधा-  
नमन होकर यथार्थ रीतिसे वैद्यको जानने  
योग्य है क्योंकि क्रिया, दोष आदिके  
मानके ज्ञानार्थी है अनुमानसे ही जो  
दोष आदिका ज्ञाता है वह भिषक् व्याधि  
के निग्रहमें समर्थ नहीं होता है, तिससे  
दोष आदिकोंके मान ज्ञानके अर्थ, हे अग्नि  
वेश ! विमानस्थानका उपदेश करते हैं,  
उसमें प्रथम रस द्रव्य दोष विकार इनके  
प्रभावोंको कहते हैं ॥ १ ॥

रसास्तावत्पट्मधुराम्ललवणक  
टुतिककषायास्ते सम्यगुपयुज्यमा-  
नाः शरीरं यापयन्ति । मिथ्योपयु-  
ज्यमानास्तु खलु दोषप्रकोपनायो-  
पकल्पयन्ति ॥ २ ॥

प्रथम रस मधुर अम्ल लवण कटु तिक्त  
कषाय ये छः हैं, वे भली प्रकार उपयोग  
को प्राप्त हुये शरीरका यापन ( चलाना )  
करते हैं और मिथ्या उपयोग किये तो  
दोषोंके प्रकोपको करते हैं ॥ २ ॥

दोषाः पुनस्त्रयो वातपित्तश्लेष्माणः  
ते प्रकृतिभूताः शरीरोपकारका भव

न्ति । विकृतिमापन्नाः खलु नाना  
विधैर्विकारैः शरीरमुपतापयन्ति ३ ।

और दोष वात पित्त श्लेष्मा तीनहैं वे  
प्रकृतिभूत हुये शरीरके उपकारक होते  
हैं, और विकारको प्राप्त हुये तो निश्चयसे  
नाना प्रकारके विकारोंसे शरीरको दुःखित  
करते हैं ॥ ३ ॥

तत्र दोषमेकैकं त्रयस्योरसाजन  
यन्ति, त्रयं त्रयस्योपशमयन्ति ।

तद्यथा,—

कटुतिक्तकषाया वातं जनयन्ति,  
मधुराम्ललवणास्त्वेनं शमयन्ति ।  
कटुकाम्ललवणाः पित्तं जन  
यन्ति । मधुरतिक्तकषायाः पुन  
रेनं शमयन्ति । मधुराम्ललवणाः  
श्लेष्माणं जनयन्ति, कटुतिक्त  
कषायास्त्वेनं शमयन्ति ॥ ४ ॥

उसमें एक २ दोषको तीन २ रस  
पैदा करते हैं और तीन २ उपशमन कर-  
तेहैं, वह ऐसे हैं कि कटु तिक्त कषाय  
वातको पैदा करते हैं मधुर अम्ल लवण  
तो वातको शमन करते हैं, कटु अम्ल  
लवण, पित्तको पैदा करते हैं मधुर तिक्त  
कषाय, पित्तको शांत करते हैं, मधुर  
अम्ल लवण, श्लेष्माको पैदा करते हैं  
कटु तिक्त कषाय, श्लेष्माको शांत कर-  
तेहैं ॥ ४ ॥

रसदोषसन्निपाते तु ये रसा  
यैर्दोषैः समानगुणाः समानगुण  
भूयिष्ठा वा भवन्ति ते तानभिवर्द्ध  
यन्ति । विपरीतगुणास्तु विपरी  
तगुणभूयिष्ठा वा शमयन्त्यभ्य  
स्यमानाः इत्येतद्वचवस्थाहेतोः  
पट्वमुपदिश्यते रसानां परस्पर-  
रेणासंसृष्टानाम् । त्रित्वञ्च दोषा  
णाम् । संसर्गविकल्पविस्तारो  
ह्येषामपरिसंख्येयो भवति, वि-  
कल्पभेदापरिसंख्येयत्वात् ॥ ५ ॥

रस और दोषोंके सन्निपातमें तो जो  
रस जिन दोषोंके समानगुणके हैं वा  
समानगुण जिनमें अधिकहों वे उनको  
वर्द्धते हैं, विपरीत गुणहो वा विपरीत  
गुण जिनमें अधिकहों वे अभ्यास करनेसे  
शांत करते हैं इस व्यवस्थाके हेतु छः  
हेतुओंका उपदेश करतेहैं परस्पर असं-  
सृष्ट रसोंका और दोषोंका त्रित्व ३—  
और इनका संसर्गसे विकल्प विस्तारतो  
विकल्प भेदके अपरिसंख्येय होनेसे अप-  
रिसंख्येय ( अनगिन ) हैं ॥ ५ ॥

तत्र खलु अनेकरसेषु द्रव्येष्वने  
कदोषात्मकेषु च विकारेषु रस  
दोषप्रभावमेकैकत्वेनाभिसमीक्ष्य  
ततो द्रव्यविकारप्रभावतत्त्वं व्य  
वस्येत् । नत्वेवं खलु सर्वत्र ।

न हि विकृतिविषमसमवेतानां  
नानात्मकानां द्रव्याणां परस्पर  
रेण चोपहतानामन्यैश्च विकल्प  
नैर्विकल्पितानामवयवप्रभावानु  
मानेन समुदायप्रभावतत्त्वमध्य  
वसिनुमशक्यम् ॥ ६ ॥

उसमें निश्चयसे अनेक रसके द्रव्य जो  
हैं और अनेक दोषरूप जो विकार हैं  
उसमें एक रस दोषके प्रभावको  
भलीप्रकार देखकर फिर द्रव्य, विकार,  
प्रभावके, तत्त्वका निश्चय करें और  
सर्वत्र इसी प्रकार निर्णय न करें, क्यों  
कि विकारसे विषम समवेत जो नाना  
त्मक द्रव्य हैं और परस्परसे उपहत हैं  
और अन्य विकल्पनाओंसे भी उपहत हैं  
और अन्य विकल्पोंसे विकल्पित हैं  
उनके अवयव प्रभावके अनुमानसे समु-  
दायका प्रभाव तत्व निश्चय करनेको  
अशक्य है ॥ ६ ॥

तथायुक्ते हि समुदाये समुदायप्र  
भावतत्त्वमेवोपलभ्य ततो रस  
द्रव्यविकारप्रभावतत्त्वं व्यवस्येत्  
तस्माद्रसप्रभावतश्च द्रव्यप्रभाव  
तश्च दोषप्रभावतश्च विकारप्रभाव  
तश्च तत्त्वमुपदेक्ष्यामः । तत्रैष  
रसद्रव्यदोषविकारप्रभावउपदिष्टो  
भवति ॥ ७ ॥

तिस प्रकारसे युक्त समुदायमें समु-  
दायक प्रभावतत्त्वकोही जानकर फिर  
रस द्रव्य विकार इनके प्रभावतत्त्वको  
निश्चय करें, तिससे रसके प्रभावसे  
द्रव्यके प्रभावसे दोषके प्रभावसे विकार-  
के प्रभावसे तत्त्वका उपदेश करते हैं  
उसमेंही रस द्रव्य दोष विकार इनका  
प्रभाव उपदिष्ट हो जायगा ॥ ७ ॥

द्रव्यप्रभावंपुनरुपदेक्ष्यामः । तैल  
सर्पिर्मधुनिवातपित्तश्लेष्मप्रशमना  
निद्रव्याणिभवन्ति । तत्रतैलंस्ने  
हौष्ण्याद्गौरवोपपन्नत्वाद्वातंजय  
तिसततमभ्यस्यमानम् । वातोहि  
रौक्ष्यशैत्यलाघवोपपन्नोविरुद्धगु  
णोभवति । विरुद्धगुणसन्निपाते  
हिभूयसाल्पमवजीयतेतस्मात्तैलं  
वातंजयतिसततमभ्यस्यमानम् ८

और द्रव्यके प्रभावका उपदेश करते  
हैं, तैल घी मधु ये द्रव्य, वात पित्त  
श्लेष्मके प्रशमन होते हैं उनमें तैल स्नेह  
उष्ण गौरवसे युक्त होनेसे यदि निरंतर  
अभ्यास कियाजाय तो वातको जीत-  
ताहै क्योंकि वात रूक्ष शीतल लघु  
होनेसे विरुद्ध गुण होती है विरुद्ध  
गुणके संनिपातमें अधिकसे अल्पका  
अपचय ( हानि ) होताहै तिससे निरंतर  
अभ्यास किया तैल वातको जीतताहै ८

सर्पिःखलुएवमेवपित्तंजयतिमाधु

र्याच्छैत्यात्मन्दवीर्यत्वाच्चपि  
तंह्यमधुरमुष्णंतीक्ष्णम् ॥ ९ ॥

इसी प्रकारही घी मधुर शीतल मंद होनेसे पित्तको जीतता है क्योंकि पित्त अमधुर उष्ण तीक्ष्ण है ॥ ९ ॥

मधु च श्लेष्माणं जयति रौक्ष्यात्  
कषायत्वाच्च श्लेष्मा हि स्निग्धो  
मन्दो मधुरश्च ॥ १० ॥

और मधु, रूक्ष तीक्ष्ण कषाय होनेसे कफको जीतता है, क्योंकि कफ, स्निग्ध मंद मधुर होता है ॥ १० ॥

यच्चान्यदपि किञ्चिद्द्रव्यमेवंवात  
पित्तकफेभ्यो गुणतो विपरीतं  
तच्चैतान् जयति अभ्यस्यमानम् ।  
अथ खलु त्रीणि द्रव्याणि नात्यु-  
पयुञ्जीताधिकमन्येभ्यो द्रव्येभ्यः  
तद्यथा । पिप्पली क्षारं लवण  
मिति ॥ ११ ॥

और जो अन्यभी कोई द्रव्य इसी प्रकार वात पित्त कफसे गुणोंमें विपरीत है वहभी अभ्यास करनेसे इनको जीतता है, और तीन द्रव्योंका अन्य द्रव्योंसे अधिक उपयोग न करै वे ये हैं कि पीपल क्षार लवण ॥ ११ ॥

पिप्पल्यो हि कटुकाः सद्यो  
मधुरविपाका गुर्व्यो नात्यर्थम् ।  
स्निग्धोष्णाः प्रकृदिन्यो भेषजा

भिमताश्च । ताः सद्यः शुभाशु-  
भकारिण्यो भवन्त्यापातभद्राः  
प्रयोगसमसाद्गुण्यादोपसञ्चया  
नुबन्धाः सततमुपयुज्यमानाहि  
गुरुप्रकृदित्वात् श्लेष्माणमुत्के-  
शयन्ति । औष्ण्यात् पित्तम् ।  
न च वातप्रशमनायोपकल्पन्ते  
अल्पस्नेहोष्णभावात् । योगवा-  
हिन्यस्तु खलु भवन्ति । तस्मात्  
पिप्पलीर्नात्युपयुञ्जीत ॥ १२ ॥

क्योंकि पीपल कटु और शीघ्रपाकमें मधुर और अत्यंत अगरिष्ठ होती हैं, और स्निग्धोष्ण प्रकृति कारक और भेषजमें अभिमत होती हैं वे शीघ्रही शुभ अशु-भ कारिणी होती हैं और पातसे पहिले-ही अच्छी होती हैं प्रयोगके समान साद्गुण्यसे दोषोंके समूहका संबंधी ( कारक ) होती हैं, निरंतर उपयो-ग कीहुई गुरु प्रकृति होनेसे कफका उत्केश करती हैं, उष्णतासे पित्तको क्लेशित करती हैं और वातकी शांति कारक नहीं होती हैं क्योंकि अल्प स्नेह और उष्ण होती हैं, योग वाहिनी तो होती हैं तिससे पीपलियोंका अत्यंत उपयोग न करै ॥ १२ ॥

क्षारः पुनरौष्ण्यतैक्ष्ण्यलाघवो  
पपन्नः क्लेदयत्यादौ पश्चात्

विशोधयति । स पचनदहनभेद  
नार्थमुपयुज्यते । सोऽतिप्रयुज्य  
मानः केशाक्षिहृदयपुंस्त्वोपधा  
तकरः सम्पद्यते । ये ह्येनं ग्राम  
नगरनिगमजनपदाः सततमुपयु  
ज्यते तेह्यन्व्यपाण्ड्याखलित्य  
पालित्यभाजो हृदयोपकर्तिनश्च  
भवन्ति तद्यथा, प्राच्याश्चीनाश्च  
तस्मात् क्षारं नात्युपयुज्यते १३

और क्षार, उष्ण तीक्ष्ण लघु होनेसे  
पहिले क्लेद करताहै पीछेसे विशोधन  
करताहै वह पचन दहन भेदनके लिये  
उपयोगमें आताहै वह अत्यंत प्रयुक्त  
किया हुआ केश नेत्र हृदय पुंस्त्व इनका  
नाशक हो जाताहै जो ग्राम नगर निगम  
जनपदके वासी इसका निरंतर उपयोग  
करतेहैं वेभी अंध नपुंसक गंजे पलित  
हो जाते हैं और हृदयके उपकर्तन युक्त  
होतेहैं, वे ऐसेहैं कि प्राच्य और चीनके  
वासी, तिससे क्षारका निरंतर उपयोग  
न करें ॥ १३ ॥

लवणं पुनरौष्ण्यतैक्ष्ण्योपन्नमनति  
गुरुअनतिस्निग्धमुपक्लेदिविस्त्रंसन  
समर्थमन्नद्रव्यरुचिकरमापातभद्र  
म् । प्रयोगातिरेकादोषसञ्ज्ञया  
नुबन्धम् । तद्रोचनपाचनोपक्ले  
दनविस्त्रंसनार्थमुपयुज्यते।तदत्य

र्थमुपयुज्यमानंग्लानिशैथिल्यदौ  
र्वल्याभिनिर्वृत्तिकरंशरीरस्यभव  
ति । येह्येतद्ग्रामनगरनिगमजन  
पदाःसततमुपयुज्यते,तेभूयिष्ठंग्लाल  
वःशिथिलमांसशोणिताभवन्तिअ  
परिक्लेशसहाश्च । तद्यथा,बाह्लीक  
सौराष्ट्रिकसैन्धवसौवीरकाः।तेहिप  
यसापिसदालवणमश्नन्ति । ये  
ऽपीहभूमेरत्यूपरादेशास्तेपुऔष  
धिवीरुद्रनस्पतिवानस्पत्यानजा  
यन्ते । अल्पतेजसोवाभवन्तिल  
वणोपहतत्वात् । तस्मात्लवणं ना  
त्युपयुज्यते । ये ह्यतिलवणसा  
त्म्याःपुरुषास्तेपामपिखालित्येन्द्र  
लुप्तपालित्यानितथावलयश्वाका  
लेभवन्ति । तस्मात्तेपांतत्सा  
त्म्यतःक्रमेणापगमनंश्रेयः॥ १४ ॥

और लवण, उष्ण तीक्ष्ण अत्यंत  
अगुरु होताहै और अति अस्निग्ध उपक्लेदी  
विस्त्रंसनमें समर्थ अन्न द्रव्योंका रोचक  
और आपातभद्र होताहै और प्रयो-  
गमें समता और सद्गुणतासे दोषोंके  
समूहका अनुबन्धी होताहै वह रोचन  
पाचन उपक्लेदन विस्त्रंसनके लिये उप-  
योगमें आताहै वह अत्यंत उपयोग किया  
हुआ शरीरकी ग्लानि शिथिलता दुर्बल-  
ताको करताहै और जो ग्राम नगर

निगम जनपदके वासी इस लवणका निरंतर उपयोग करतेहैं वे अधिक गुणिवान् शिथिलहैं मांसशोणित जिनके ऐसे होतेहैं जो क्लेशको नहीं सह सकतेहैं वे ऐसे कि बाल्हीक सौवीरक वसौराष्ट्रिक और सेंधव, वे दूधके संगभी सदैव लवणको खातेहैं और जो भूमिकेभी अत्यंत ऊपर देशहैं उनमें औषधि वीरुध वनस्पति वानस्पत्य नहीं होते वा अल्प तेजके होतेहैं क्योंकि वे लवणसे उपहतहैं तिससे लवणका अत्यंत उपयोग न करें और जिनका अत्यंतलवण सात्म्यहै उनकोभी गंज इंद्रियलोप पलितता होतीहै और अकालमें बलि हो जातीहै, तिससे तिनको लवणके सात्म्य होनेसे क्रमसे अपगमन श्रेष्ठ होताहै ॥ १४ ॥

सात्म्यमपि हि क्रमेणोपनिवर्त्यमानमदोषमल्पदोषं वा भवति । सात्म्यं नाम तद्यदात्मनि उपशेते । सात्म्यार्थो ह्युपशयार्थः । तत्र त्रिविधं प्रवरावरमध्यविभागेन, सप्तविधं चरसैकैकत्वेन सर्वरसोपयोगाच्च । तत्र सर्वरसं प्रवरमवरमेक रसं मध्यमन्तु प्रवरावरमध्यस्थम् । तत्रावरमध्याभ्यां सात्म्याभ्यां क्रमेण प्रवरमुपपादयेत् सात्म्यम् । सर्वरसमपि च द्रव्यं सात्म्यमुपपन्नं स

वाणिआहारविधिविशेषाय तनानि अभिसमीक्ष्य हितमेवानुरुध्यते १५

क्योंकि सात्म्यभी क्रमसे सिद्ध किया हुआ निर्दोष वा अल्पदोष हो जाताहै और सात्म्य वह है जो आत्मा ( देह ) में उपशयको प्राप्त हो जो सात्म्यके अर्थ होताहै वही उपशयके अर्थ है, वह प्रवर अवर मध्य विभागसे तीन प्रकारकाहै और एक रससे और संपूर्ण रसोंके उपयोगसे सात प्रकारकाहै उनमें सर्व रस उत्तम और एक रस अवरहोताहै और मध्य तो प्रवर अवरके मध्यमें स्थित होताहै, उनमें सात्म्य जो अवर मध्यहैं उनसे क्रम पूर्वक प्रवर सात्म्यका उपपादन करें और द्रव्यकी सात्म्यको प्राप्त हुये संपूर्ण रस होतेहैं, संपूर्ण आहार विधि विशेषके आयतनोंको भली प्रकार देखकर अहितकेही अनुरोधी होतेहैं १५

तत्र खल्विमानि अष्टावाहारविधिविशेषाय तनानि भवन्ति । तद्यथा प्रकृतिकरणसंयोगराशिदेशकालोपयोगसंस्थोपयोक्ताष्टे मानि भवन्ति ॥ १६ ॥

उनमें निश्चयसे ये आठ आहार विधिविशेषोंके आयतन होतेहैं वे ऐसेहैं कि प्रकृति, कारण, संयोग, राशि, देशकाल, उपयोग, संस्था, उपयोक्ता, ये आठ होतेहैं ॥ १६ ॥

तत्रप्रकृतिरुच्यतेस्वभावोयःसपु  
नराहारौषधद्रव्याणांस्वाभाविको  
गुर्वादिगुणयोगः । तद्यथा, -माप  
मुद्रयोःशूकरैरणयोश्च ॥ १७ ॥

उनमें प्रकृतिको कहतेहैं जो स्वभावहै  
और वह आहार औषध द्रव्य इनका  
स्वाभाविक गुरु आदि गुण योगहै वह  
ऐसेहैं कि माप और मूंग, सूकर और एण,  
का जैसा योग ॥ १७ ॥

करणपुनःस्वाभाविकानांद्रव्याणां  
मभिसंस्कारः । संस्कारोहिगुणा  
न्तगन्धानमुच्यते । तेगुणाश्चतो  
याग्निसन्निकर्षशौचमन्थनदेशका  
लवशेनभावनादिभिःकालप्रकर्ष  
भाजनादिभिश्चाधीयन्ते ॥ १८ ॥

और करण तो स्वाभाविक द्रव्योंके  
अभि संस्कारको कहतेहैं और गुणाधानको  
संस्कार कहतेहैं और वे गुण जल अग्निका  
सन्निकर्ष शौच मंथन देशकाल वास  
भवन आदिसे और कालकी उत्तमता  
और भाजन आदिसे आधान ( पैदा )  
किये जातेहैं ॥ १८ ॥

संयोगस्तुद्रयोर्वहूनांवाद्रव्याणां  
संहतीभावःसविशेषमारभतेयत्रै  
कशोद्रव्याणिआरभन्ते । यथा  
मधुसर्पिषोमधुमत्स्यपयसाश्चसं  
योगः ॥ १९ ॥

संयोग तो दो वा बहुत द्रव्योंके  
संहती भाव ( मेल ) को कहते हैं वह  
विशेषका आरंभ करताहै, जहां एक २  
द्रव्य आरंभ करतेहैं जैसे मधु घीका  
मधुमत्स्य और दूधका संयोग ॥ १९ ॥

राशिस्तुसर्वग्रहपरिग्रहौमात्राऽमा  
त्राफलविनिश्चयार्थःप्रकृतः । त  
त्रसर्वस्याहारस्यप्रमाणग्रहणमेक  
पिण्डेनसर्वग्रहः । परिग्रहश्चपुनः  
प्रमाणग्रहणमेकैकत्वेनाहारद्रव्या  
णाम् । सर्वस्यहियहःसर्वग्रहःसर्व  
तश्चग्रहःपरिग्रहःउच्यते ॥ २० ॥

राशि तो सर्वग्रह परिग्रहको कहतेहैं  
वह मात्रा अमात्रा फल इनका निश्चयके  
लिये प्रकृतहै उसमें संपूर्ण आहारके  
प्रमाणका एक पिंडसे ग्रहण सर्वग्रह,  
और आहारके द्रव्योंका एक २ करके  
प्रमाणसे ग्रहण परिग्रह होताहै सबका  
ग्रहण सर्वग्रह और सब प्रकारसे ग्रहण  
परिग्रह कहाताहै ॥ २० ॥

देशःपुनःस्थानंद्रव्याणामुत्पत्तिप्र  
चारौदेशसात्म्यश्चाचष्टे ॥ २१ ॥

और देश तो स्थानको कहतेहैं द्रव्यों-  
की उत्पत्तिका प्रचार देशकी समताको  
कहाताहै ॥ २१ ॥

कालोहिनित्यगश्चावस्थिकश्च ।

तत्रावस्थिकोविकारमपेक्ष्यते ।

नित्यगस्तुखलुक्तुसात्म्यापेक्षः २२



और काल तो नित्यगहै और आव-  
स्थिकहै, उनमें आवस्थिक ( आयुसे )  
जो हो काल विकारकी अपेक्षा करताहै  
और नित्यग ऋतुओंके सात्म्यकी अपेक्षा  
करताहै ॥ २२ ॥

उपयोगसंस्थातूप्रयोगनियमःसजी  
र्णलक्षणापेक्षः ॥ २३ ॥

और उपयोग संस्था तो उपयोगके  
नियमको कहतेहैं वह जीर्ण लक्षणकी  
अपेक्षा करताहै ॥ २३ ॥

उपयोक्तापुनर्यस्तमाहारमुपयुक्ते।  
यदायत्तमोकसात्म्यम् ॥ २४ ॥

और उपयोक्ता वह है जो उस आहा-  
रका उपयोग करताहै जिसके आधीन  
एक सात्म्यहै ॥ २४ ॥

इत्यष्टावाहारविधिविशेषायतना  
निभवन्ति । एषांविशेषाःशुभा  
शुभफलप्रदाःपरस्परोपकारकाभ  
वन्ति । तान्बुभुत्सेत । बुद्ध्वाच  
हितेप्सुरेवस्यान्नचमोहात्प्रमादा  
द्वाप्रियमहितमसुखोदकमुपसेव्य  
माहारजातमन्यद्वा ॥ २५ ॥

ये आठ आहारविधिविशेषके आय-  
तनहैं इनके विशेष शुभ अशुभ  
फलके दाता होतेहैं और परस्पर उप-  
कारक होतेहैं उनको जाननेकी इच्छा  
करै और जानकर हितकाही अभिलाषी  
रहै, मोहसे वा प्रमादसे प्रिय अहित

सुखोदकका सेवन करै वा अन्य आहार  
जात(समूह) का सेवन न करै ॥ २५ ॥

तत्रेदमाहारविधिविधानमरोगाणा  
मपिचातुराणांहितम् । केषाञ्चि  
त्कालेप्रकृत्यैवहिततमंभुञ्जानानां  
भवति । उष्णंस्निग्धमात्रावजी  
र्णवीर्याविरुद्धंइष्टदेशेइष्टसर्वोपक  
रणंनानातिद्रुतंनानातिविलम्बितंनज  
ल्पन्नहसंस्तन्मनाभुञ्जीतआत्मा  
नमभिसमीक्ष्यसम्यक् ॥ २६ ॥

उसमें यह आहार विधि विधान अरो-  
गियोंको और आतुरोंको हितहै और  
किन्ही २ समयपर भोजनके कर्ताओंको  
प्रकृतिसेही अत्यंत हित होताहै, उष्ण,  
स्निग्ध, मात्रासे युक्त, जीर्ण होनेपर,  
वीर्यके अविरुद्ध इष्ट देशमें इष्ट सब  
जिसमें उपकरणहों, न अतिशीघ्र, न  
अति विलंबसे, न बोलता हुआ, न  
हँसता हुआ, भोजनमें मनको लगाकर  
आत्माको भलीप्रकार देखकर भोजन  
करै ॥ २६ ॥

तस्यसादुण्यमुपदेक्ष्यामः । उष्ण  
मश्नीयादुष्णंहिभुज्यमानंस्वदतेभु  
क्तञ्चाग्निमुदीर्यमुदीरयति । क्षि-  
प्रञ्चजरांगच्छति, वातञ्चानुलो  
मयति, श्लेष्माणश्चपरिशोषयति  
तस्मादुष्णमश्नीयात् ॥ २७ ॥

उस भोजनके छः गुणोंका उपदेश करतेहैं उष्णभोजनको करें क्योंकि भक्षणके समयमें उष्ण स्वाद देताहै, भोजनके अनंतर अग्नि जो बढ़ाने योग्य है उसको बढ़ाताहै और शीघ्र जीर्ण हो जाताहै वातको अनुलोम करताहै, कफको शोषण करता है तिससे उष्ण भोजनको करें ॥ २७ ॥

स्निग्धमश्नीयात् । स्निग्धं हि भुज्यमानं स्वदत्ते । भुक्तञ्चाग्निमुदीरयति क्षिप्रं जरां गच्छति वातमनुलोमयति दृढीकरोति । शरीरोपचयं बलाभिवृद्धिश्चोपजनयति, वर्णप्रसादमपि चाभिनिर्वर्त्तयति । तस्मात् स्निग्धमश्नीयात् ॥ २८ ॥

और स्निग्धभोजनको करें क्योंकि स्निग्ध भोजनके समय स्वादु लगताहै भोजन कियाहुआ अग्निको बढ़ाताहै, शीघ्र जीर्ण होताहै वातको अनुलोम करताहै शरीरके उपचयको दृढ करताहै बलकी वृद्धिको पैदा करताहै वर्ण और प्रसादकोभी पैदा करताहै तिससे स्निग्ध भोजनको करें ॥ २८ ॥

मात्रावदश्नीयात् । मात्रावद्धि भुक्तं वातपित्तकफानप्रपीडय दायुरेव विवर्द्धयति केवलं सुखं सम्यक्पक्वं विड्भूतं गुदमनुपय्येति न चोष्माणमुपहन्ति अव्यथश्च परि

पाकमेति । तस्मात् मात्रावदश्नीयात् ॥ २९ ॥

और मात्रासहित भोजनको करें क्योंकि मात्रासे कियाहुआ भोजन, वात पित्त कफको पीडित न करता हुआ आयुकोही केवल बढ़ाताहै और सुखसे पककर मलरूप होकर गुदाका अनुगमन करताहै और उष्माको नष्ट नहीं करता और बिना व्यथाके परिपाकको प्राप्त होताहै तिससे मात्रासे युक्त भोजन करें ॥ २९ ॥

जीर्णं ऽश्नीयात् । अजीर्णं हि भुज्जानस्य पूर्वस्याहारस्य रसमपरिणतमुत्तरेणाहाररसेनोपसृजन् सर्वान् दोषान् प्रकोपयत्याशु । जीर्णे तु भुज्जानस्य स्वस्थानस्थेषु दोषेषु अग्नौ चोदीर्णजातायाश्च बुभुक्षायां विवृतेषु च स्रोतसां मुखेषु चोद्गारे विशुद्धे हृदये विशुद्धे वातानुलोम्ये विसृष्टेषु च वातमूत्रपुरीषवेगेषु जीर्णमभ्यवहृतमाहारजातं सर्वशरीरधातून् प्रदूषयदायुरेवाभिवर्द्धयति केवलम् । तस्माज्जीर्णं ऽश्नीयात् ३०

और प्रथमभोजनके जीर्ण होनेपर भोजन करें . क्योंकि अजीर्णमें भोजन करें तो पहिले भोजनका रस जो परिणामको प्राप्त नहीं हुआ है वह पिछले

आहारके रससे मिलता हुआ सब दोषोंको शीघ्रही प्रकुपित करताहै, और जीर्ण होनेपर जो भोजन करताहै उसके अपने २ स्थानोंमें स्थित दोष हो अग्नि प्रज्वलितहो और भोजनकी इच्छा हो और स्त्रोतोंके मुख खुले हों और उद्गार विशुद्धहो हृदय विशुद्ध हो वात अनुलोमहो और वात मूत्र पुरीष इनके वेगका त्याग हो चुकाहो ऐसे जीर्ण समयमें भोजन किया हुआ आहार जात संपूर्ण शरीरकी धातुओंको अदूषित करता हुआ केवल आयुकोही बढ़ाताहै, तिससे जीर्ण होनेपर भोजन करै ॥ ३० ॥

वीर्याविरुद्धमश्रीयात् । अवि  
रुद्धवीर्यमश्रुहिनविरुद्धवीर्या  
हारजैर्विकारैर्विकारैरयमुपसृज्यते  
तस्माद्वीर्याविरुद्धमश्रीयात् ३१

और वीर्यके अविरुद्ध भोजनको करै क्योंकि वीर्यके अविरुद्ध खाता हुआ यह मनुष्य विरुद्ध वीर्य जो आहारसे उत्पन्न विकार हैं उनसे युक्त नहीं होता तिससे वीर्यसे अविरुद्ध भोजनको करै ॥ ३१ ॥

इष्टे देशेऽश्रीयात् । इष्टेहि देशे  
भुञ्जानोनानिष्टदेशजैर्मनोविघात  
करैर्भावैर्मनोविघातंप्राप्नोति तथे  
ष्टैःसर्वोपकरणैस्तस्मादिष्टदेशेतथे  
ष्टसर्वोपकरणैश्चाश्रीयात् ॥ ३२ ॥

और इष्ट देशमें भोजनको करै क्यों कि इष्ट देशमें भोजनको जो करता है उसका मन अनिष्ट देशमें उत्पन्न हुए जो मनके नाशक भावहैं उनसे नष्ट नहीं होता और तैसेही इष्ट सब उपकरणोंसे भोजन करै तिससे इष्ट देशमें इष्ट सर्वोपकरणवाले भोजनको करै ॥ ३२ ॥

नातिद्रुतमश्रीयात् । अतिद्रुतं  
हिभुञ्जानस्यउत्सेहनमवसदनंभो  
जनस्याप्रतिष्ठानम् । भोज्यदोष  
साद्गुण्योपलब्धिश्चननियता ।

तस्मान्नातिद्रुतमश्रीयात् ॥ ३३ ॥

और अत्यंत वेगसे भोजन न करै क्योंकि अतिद्रुत भोजनके कर्ता के उत्सेहन अवसदन भोजनकी अस्थिति और भोज्य दोषसे श्रेष्ठ गुणोंकी उपलब्धि नियमसे नहीं होती तिससे अतिद्रुत भोजनको न करै ॥ ३३ ॥

नातिविलम्बितमश्रीयात् । अ  
तिविलम्बितं हिभुञ्जानोनतृप्तिम  
धिगच्छति बहुभुंक्ते शीति भवति  
चाहारजातं विषमपाकश्च भवति ।

तस्मान्नातिविलम्बितमश्रीयात् ३४

अत्यंत विलम्बसे भोजनको न करै क्योंकि अति विलम्बित जो खाताहै वह तृप्तिको प्राप्त नहीं होता बहुत खाताहै शीतल भोजन हो जाताहै और पाकमें विषमता होजातीहै तिससे अति विलम्बसे भोजनको न करै ॥ ३४ ॥

अजल्पन्नहसन्तन्मनाभुञ्जीत ।  
जल्पतोहसतोऽन्यमनसोवाभुञ्जा  
नस्यतएवहिदोपाभवन्तियएवा  
निद्रुतमश्वतः । तस्मादजल्पन्नह  
सन्तन्मनाभुञ्जीत ॥ ३५ ॥

न बोलता और न हँसता हुआ भोज-  
नमें मन लगाये भोजनको करे बोलता  
हँसता वा अन्यमें मन रखकर जो  
भोजन करताहै उसको वेही दोष होतेहैं  
जो अतिद्रुत भोजनके कर्ता को होतेहैं  
तिससे न बोलता न हँसता हुआ तिस  
भोजनमें मन लगाकर भोजनको करे ३५

आत्मानमभिसमीक्ष्यभुञ्जीतसम्य  
क् । इदंमोपशेतेइदंनोपशेतेइ  
ति । विदितंहिअस्यआत्मनआ  
त्मसात्म्यंभवति । तस्मादात्मना  
त्मानमभिसमीक्ष्यभुञ्जीतसम्य  
गिति ॥ ३६ ॥

आत्माको भली प्रकार देखकर भोजन  
करे कि यह मेरेमें उपशय करता है  
यह नहीं करताहै, क्योंकि इसको आ-  
त्मामें आत्माका सात्म्य विदित होताहै,  
तिससे मनुष्य बुद्धिसे आत्मा ( देह )  
को भलीप्रकार देखकर भोजन करे  
इति ॥ ३६ ॥

तत्र श्लोकाः ।

रसान्द्रव्याणिदोषांश्चविकारांश्च

प्रभावतः । वेदयोदेशकालौचश  
रीरश्चसनाभिपक् ॥ ३७ ॥

प्रभावसे रस द्रव्य दोष विकारोंको  
और देश काल शरीर मनको जो मनुष्य  
जानता है वह वैद्य है ॥ ३७ ॥

विमानार्थोरसद्रव्यदोषरोगाःप्रभा  
वतः । द्रव्याणिनातिसेव्यानित्रि  
विधंसात्म्यमेवच ॥ ३८ ॥

विमानका अर्थ और प्रभावसे रस  
द्रव्य दोष रोग और अतिसवनके  
अयोग्य द्रव्य और तीन प्रकारका  
सात्म्य ॥ ३८ ॥

आहारायतनान्यष्टौभोज्यसाद्गु  
ण्यमेवच । विमानेरससंख्याते  
सर्वमेतत्प्रकाशितम् ॥ ३९ ॥

आठ आहारके योग्यके श्रेष्ठ गुण  
इन सबका प्रकाश रसनामके विमानमें  
प्रकाश किया है ॥ ३९ ॥

इति अग्निवैष्णवकृते तन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृतेविमान  
स्थानेरसविमानं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

त्रिविधकुक्षीयम् ।

इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

इसके अनंतर त्रिविध कुक्षीय विमा-  
नका वर्णन करते हैं यह भगवान्  
आत्रेय कहते भये कि—

त्रिविधकुक्षौस्थापयेदवकाशांश

माहारस्याहारमुपयुञ्जानः । तद्य  
थैकमवकाशांशमूर्त्तानामाहारवि  
काराणामेकं द्रवाणामेकं पुनर्वात  
पित्तश्लेष्मणाम् ॥ ३ ॥

कुक्षिमें आहारके अवकाशके लिये  
तीन भागोंका स्थापन भोजन करता  
हुआ मनुष्य करै, वे ऐसे हैं कि एक  
अवकाश भाग तो मूर्त आहारके विका-  
रोंका और एक द्रवोंका और एक वात  
पित्त श्लेष्मोंका होता है ॥ १ ॥

एतावतीह्याहारमात्रामुपयुञ्जानो  
नामात्राहारजं किञ्चिदशुभं प्राप्नो  
ति । न च केवलं मात्रावत्त्वादेवा  
हारस्य कृत्स्नमाहारफलसौष्ठवम  
वाप्तुं शक्यम् । प्रकृत्यादीनामष्टा  
नामाहारविधिविशेषाय तनानां प्र  
विभक्तफलकत्वात् । तत्र तावदा  
हारराशिमधिकृत्य मात्रामात्राफ  
लविनिश्चयार्थः प्रकृतः । एतावा  
नेव ह्याहारराशिविधिविकल्पोऽप्या  
वत् मात्रावत्त्वममात्रावत्त्वञ्च तत्र  
मात्रावत्त्वं पूर्वमुपदिष्टं कुक्ष्यं शवि  
भागेन । तद्भूयो विस्तरेणानु  
व्याख्यास्यामः ॥ २ ॥

इतनी आहार मात्राका जो उपयोग  
करता है वह अमात्रा आहारसे पैदा

हुये किंचित्भी अशुभको प्राप्त नहीं  
होता और केवल मात्रासे युक्त होनेसे ही  
भोजनका संपूर्ण फल भलीप्रकार प्राप्त  
होनेको शक्य नहीं है क्योंकि प्रकृति  
आदि जो आठ आहार विधि विशेषके  
आयतन हैं उनका भिन्न २ फल है उसमें  
प्रथम आहारकी राशिका अधिकार करके  
मात्रा अमात्राके फलका विनिश्चयार्थ  
प्रकृत है इतना ही आहार राशिकी विधिका-  
विकल्प है कि मात्रावान् और अमात्रा  
वान् हो उनमें मात्रावान् का तो कुक्षिके  
अंश विभागसे प्रथम उपदेश कर आये  
उसका फिर विस्तारसे व्याख्यान करते  
हैं ॥ २ ॥

तद्यथा—कुक्षेरप्रपीडनमाहारेण ह  
दयस्यानवरोधः पार्श्वयोरविपाट  
नमनति गौरवमुदरस्य प्रीणनमिन्द्रि  
याणां क्षुत्पिपासोपरमः स्थाना  
सनशयनगमनप्रश्वासोच्छ्वासहा  
स्यसंकथासुखसुखानुवृत्तिः सायं  
प्रातश्च सुखेन परिणमनम् । बलव  
र्णोपचयकरत्वञ्चेति मात्रावतो  
लक्षणमाहारस्य भवति ॥ ३ ॥

वह ऐसे है कि आहारसे कुक्षिमें  
पीडाका न होना, हृदयका अवरोध न  
होना, पार्श्वोंका विपाटन न होना उदरमें  
अति गौरव न हो इंद्रियोंकी प्रीति हो  
क्षुधा पिपासाकी शांति हो स्थान आसन  
शयन, गमन, प्रश्वास, उच्छ्वास, हास्य,

वातोलाप इनको सुखसे करसके और सायंकाल प्रातःकालको सुखसे परिणाम बल वर्णकी वृद्धि होनी ये लक्षण मात्रावान् आहारके होतेहैं ॥ ३ ॥

अमात्रावत्त्वं पुनर्द्विविधमाचक्षते । हीनमधिकञ्च । तत्रहीनमात्राहारराशिचलवर्णोपचयक्षयकरमवृत्तिकरमुदावर्तकरमवृष्यमनायुष्यमनौजस्यमनोबुद्धीन्द्रियोपघातकरंसारविधमनमलक्ष्म्यावहमर्शतिश्रवातविकाराणामायतनमाचक्षते ॥ ४ ॥

अमात्रावाले आहारको तो दो प्रकारका कहतेहैं, हीन और अधिक उनमें मात्रासे हीन जो आहारकी राशि है वह चलवर्ण उपचय इनके क्षयको करताहै वृत्तिको नहीं करे उदावर्तको करे अवृष्यहै अनायुष्यहै, ओजका दाता नहीं, मन बुद्धि इंद्रिय इनका नाशकहै सारको नष्ट करताहै अलक्ष्मीका दाताहै और अस्ती ८० वात विकारोंका आयतन कहतेहैं ॥ ४ ॥

अतिमात्रं पुनः सर्वदोषप्रकोपनमिच्छन्ति सर्वकुशलाः ॥ ५ ॥

और अतिमात्रको तो सब दोषोंका प्रकोपन संपूर्णमें कुशल कहतेहैं ॥ ५ ॥

यो हि मूर्त्तानामाहारविकाराणां सौहित्यंगत्वापश्चाद्रवैस्तृप्तिमापद्यते

भूयस्तस्यामाशयगतावातपित्तश्लेष्माणोऽभ्यवहारेण अतिमात्रेण अतिप्रपीड्यमानाः सर्वयुगपत्प्रकोपमापद्यन्ते ॥ ६ ॥

जो मनुष्य मूर्त्त आहार विकारोंसे सौहित्यको प्राप्त होकर पीछेसे द्रव पदार्थोंसे वृत्तिको प्राप्त होताहै, फिर तिसके आमाशयमें गत वात पित्त श्लेष्मा अतिमात्र भोजनसे पीडित हुये एक बार संपूर्ण कोपको प्राप्त हो जातेहैं ॥ ६ ॥

ते प्रकुपितास्तमेवाहारराशिमपरिणतमाविश्य कुक्ष्येकदेशमाश्रिता विष्टम्भयन्तः सहसा वापि उत्तराधराभ्यां मार्गभ्यां प्रच्यावयन्तः पृथक् पृथग्विकारानभिनिर्वर्त्तयन्ति अतिमात्रभोक्तुः ॥ ७ ॥

प्रकुपित हुये वे उसी अपरिणत आहारराशिमें प्रविष्ट होकर कुक्षिके एक देशमें अर्द्धाश्रित हुये विष्टम्भ करके सहसा ऊपर नीचेके मार्गोंसे क्षरण कराते हुये अत्यंत भोक्तृके पृथक् २ विकारोंको पैदा करदेतेहैं ॥ ७ ॥

तत्र वातः शूलानाहाङ्गमर्दमुखशोषमूर्च्छाभ्रमाग्निवैषम्यशिरासङ्कोचनसंस्तम्भनानिकरोति ॥ ८ ॥

उनमें वात तो शूल आनाह अंगमर्द मुख शोष मूर्च्छा भ्रम अग्रिका वैषम्य

शिराओंका संकोच, स्तंभन, इनको करताहै ॥ ८ ॥

पित्तपुनर्ज्वरमतीसारमन्तर्दाहं  
तृष्णा मदभ्रमप्रलपनानि ॥ ९ ॥

और पित्त, ज्वर, अतीसार, अंतर्दाह,  
तृष्णा, मद, भ्रम, प्रलाप, इनको करताहै ९

श्लेष्मातुछर्द्यरोचकाविपाकशी  
तज्वरालस्यगात्रगौरवाभिनिवृ  
त्तिकरः सम्पद्यते ॥ १० ॥

और श्लेष्मा तो छर्दि अरोचक अवि-  
पाक शीतज्वर आलस्य गात्रोंमें गौरव  
इनको पैदा करताहै ॥ १० ॥

नखलुकेवलमतिमात्रमेवाहाररा  
शिमाप्रदोषकारणमिच्छन्ति ।  
अपितुखलुगुरुक्षशीतशुष्कद्वि  
ष्टविष्टम्भि विदाह्यशुचिविरुद्धाना  
मकाले अन्नपानानामुपसेवनम् ।  
कामक्रोधलोभमोहेर्ष्याहीशोक-  
लोभोद्वेगभयोपतप्तेन मनसा वायद  
न्नपानमुपयुज्यते तदपि आममेव प्र  
दूषयति ॥ ११ ॥

और कुछ केवल अतिमात्र आहारकी  
राशिकोही आम दोष कारक नहीं कहते  
अपितु गुरु रूक्ष शीतल शुष्क द्विष्ट  
विष्टम्भि विदाही अशुचि विरुद्ध जो अका-  
लमें अन्नपानहैं उनका सेवनभी आम  
दोष कारक है और काम, क्रोध, लोभ,

मोह, ईर्ष्या, लज्जा, शोक, मनका उद्वेग,  
भय, इनसे उपतप्त मनसे जिस अन्न  
पानका उपयोग होताहै वहभी आमकोही  
दूषित करताहै ॥ ११ ॥

भवति चात्र ।

मात्रयाप्यभ्यवहतं पथ्यश्चात्र न  
जीर्यति । चिन्ताशोकभयक्रो  
धदुःखशय्याप्रजागरैः ॥ १२ ॥

इसमें यह श्लोकहै कि मात्रासे भक्षण  
किया पथ्यभी अन्न, चिन्ता, शोक, भय,  
क्रोध, दुःख, शय्या, प्रजागरण, इनसे  
जीर्ण नहीं होताहै ॥ १२ ॥

तद्विविधमामप्रदोषमाचक्षते त्रिप  
जः । विसूचिकामलसञ्च । तत्र  
विसूचिकामूर्द्धश्चाधश्च प्रवृत्ताम  
दोषां यथोक्तरूपां विधात् ॥ १३ ॥

उस आमदोषको वैद्यलोग दो  
प्रकारका कहतेहैं विसूचिका और अलस  
उनमें विसूचिका जो ऊर्द्ध और अधः  
प्रवृत्तहैं उसको अदोष यथोक्त रूप  
जानै ॥ १३ ॥

अलसकमुपदेक्ष्यामः । दुर्बल  
स्याल्पाग्नेर्वहुश्लेष्मणो वातमूत्रपु  
रीपवेगविधारिणः स्थिरगुरुबहुरू  
क्षशीतशुष्कान्नसेविनस्तदन्नपा  
नमनिलप्रपीडितं श्लेष्मणा च विव  
द्धमार्गमतिमात्रप्रलीनमलसत्त्वान्न

बहिर्मुखीभवति । ततश्छर्द्यती  
मारवर्ज्यानिआमप्रदोषलिङ्गानि  
अभिदर्शयतिअतिमात्राणि ।  
अतिमात्रप्रदुष्टाश्चदोषाःप्रदुष्टाम  
बद्धमार्गास्तिर्यग्गच्छन्तःकदा  
चित्केवलमेवास्यशरीरंदण्डवत्  
स्तम्भयन्ति । ततस्तमलसकम  
साध्यंव्रुवते ॥ १४ ॥

अलसकका उपदेश करतेहैं कि दुर्बल  
और अल्पाग्नि अधिक श्लेष्मी वात, मूत्र  
पुरीष इनके वेगका विधारी, स्थिर, गुरु,  
बहुत रुद्ध, शीतल, शुष्क, अन्नका सेवी  
जो मनुष्यहैं, उसके वह अन्नपान वातसे  
पीडित कफसे विबद्ध मार्ग अतिमात्र  
अलीन हुआ अलसक होनेसे बहिर्मुख  
नहींहोता उससे छद्दीं अतीसारको छोडकर  
अत्यंत आम दोषके लिंगोंको दिखाता  
है, अतिमात्र प्रदुष्ट हुये दोष, प्रदुष्ट  
आमसे बद्धमार्ग हुये तिरछे गमन क-  
रते हुये, कदाचित् इसके केवल शरी-  
रका दंडके समान स्तम्भन करते  
हैं, तिससे उस अलसकको असाध्य  
कहते हैं ॥ १४ ॥

विरुद्धाध्यशनाजीर्णाशनशीलि  
नःपुनरेवदोषमामविषमित्याच  
क्षतेभिषजोविषसदृशल्लिङ्गत्वा  
त्, तत्परमसाध्यमाशुकारित्वा  
त्, विरुद्धोपक्रमत्वाच्चेति ॥ १५ ॥

विरुद्ध अध्यशन अजीर्णाशन शील  
जो मनुष्य है उसके इस दोषको आम-  
विष वैद्य कहते हैं क्योंकि इसमें विषके  
सदृश लिंग हैं, उसको परम असाध्य,  
विरुद्ध उपक्रम और आशुकारी होनेसे,  
कहते हैं ॥ १५ ॥

तत्रसाध्यमामंप्रदुष्टमलसीभूतमु  
ल्लेख्यंदादापाययित्वालवणमु  
ष्णञ्चवारि । ततःस्वेदनवर्त्ति  
प्रणिधानाभ्यामुपाचरेदुपवासये  
चैनम् ॥ १६ ॥

उसमें साध्य जो आमहैं प्रदुष्ट अलसी  
भूत उसका लवण सहित उष्ण जल पि-  
लाकर उल्लेखन करै फिर स्वेदन वर्त्ति  
प्रणिधानसे उपचार करै और इसको  
उपवास करावै ॥ १६ ॥

विपूचिकायान्तुलंघनमेवाग्रेवि  
रिक्तवच्चानुपूर्वी ॥ १७ ॥

विपूचिकामें तो प्रथम लंघन अन्य  
सब आनुपूर्वी ( क्रम ) विरेचनके समान  
है ॥ १७ ॥

आमप्रदोषेपुत्वन्नकालेजीर्णाहारं  
पुनर्दोषावलिप्तामाशयस्तिमित  
गुरुकोष्ठमनन्नाभिलापिणमभिस  
मीक्ष्यपाययेदोषशेषपाचनार्थमौ  
पधमग्निसन्धूक्षणार्थञ्चनत्वजीर्णा  
शनम् । आमप्रदोषदुर्बलोह्यग्नि

*Handwritten signature and decorative flourish.*



युगपदोषमौषधमाहारजातश्चाश  
क्तःपक्तुम् ॥ १८ ॥

आम प्रदोषोंमें तो अन्नके समयमें जीर्ण आहार पुनः दोषोंसे अवलित आशयको स्तिमित गुरु कोष्ठ और अन्नका अभिलाषी देखकर दोष शेषके पाचनार्थ और अग्निके संधुक्षणार्थ औषध पान करावे अजीर्णाग्नि न करावे क्यों कि आमके दोषोंसे दुर्बल अग्नि एकहि वार दोष औषध और आहारकी वस्तुओंके पकानेको समर्थ नहीं होतीहै १८

अपिचामप्रदोषाहारौषधविभ्रमोऽ  
तिबलत्वादुपरतकायाग्रिसहसैवा  
तुरमबलमभिपातयेत् ॥ १९ ॥

और आम, दोष, आहार, औषधि, इनका विभ्रम, अतिबली होनेसे शांतहै कायाग्रि जिसका ऐसे निर्बल आतुरको शीघ्रही मार देताहै ॥ १९ ॥

आमप्रदोषजानांपुनर्विकाराणाम  
पतर्पणेनैवोपरमोभवति । सति  
त्वनुबन्धेरुतापतर्पणानांव्याधी  
नानिग्रहेनिमित्तविपरीतमपास्यौ  
षधमातङ्कविपरीतमेवावचारये  
त् । यथास्वंसर्वविकाराणामपि  
चनिग्रहेहेतुव्याधिविपरीतमौष  
धमिच्छन्तिकुशलाः ॥ २० ॥

और आम दोषसे उत्पन्न हुए विकारोंका उपरम अपतर्पणसेही होताहै

और अनुबन्धके होनेपर तो किया है अपतर्पणजिनका ऐसी व्याधियोंके निग्रहमें निमित्तसे विपरीतको छोडकर रोगके विपरीतही औषधको करे, यथा-योग्य सब विकारोंके निग्रहमें कुशल वैद्य हेतु व्याधिसे विपरीतही औषधिकी इच्छा करते हैं ॥ २० ॥

तदर्थकारिविपक्वभुक्तमप्रदोषस्य  
पुनःपरिपक्वदोषस्यदीप्तेचाग्रौअ  
भ्यङ्गास्थापनानुवासनंविधिवत्  
स्नेहपानञ्चयुक्त्याप्रयोज्यम्, प्र  
समीक्ष्यदोषभेषजदेशकालबलश  
रीराहारसात्म्यसत्त्वप्रकृतिवय  
सामवस्थान्तराणिविकारांश्चस  
म्यगिति ॥ २१ ॥

तिसी अर्थ ( रोग ) के कारी विपक्व भुक्त ( भोजन ) के आम प्रदोषहैं और परिपक्व दोष है और अग्निदीप्त है उसको अभ्यंग स्थापन अनुवासन और विधिसे स्नेहपान युक्तिसे प्रयोज्य ( कर्तव्य ) है, और दोष भेषज देशकाल बल शरीर आहार सात्म्य सत्त्व प्रकृति वय इनके अवस्थांतरोंको और विकारोंको भली प्रकार देखकर स्नेहपान करावे इति ॥ २१ ॥

भवति चात्र ।

अशितंखादितपीतलीढञ्चक्रविप  
च्यते । एतत्तत्वांधीर ! पृच्छाम  
स्तन्नआचक्ष्वबुद्धिमन् ॥ २२ ॥

इसमें ये श्लोक हैं कि अशित खा-  
दित पीत लीढ यह कहाँ पकता है हे धीर  
यह आपको हम पूछते हैं हे बुद्धिमन्  
वह हमको तुम कहो ॥ २२ ॥

इत्यग्निवेशप्रमुखैःशिष्यैःपृष्ठःपुन  
र्वसुः । आचक्षेततस्तेभ्योयत्रा  
हारोविपच्यते ॥ २३ ॥

अग्निवेश हैं मुख्यजिनमें ऐसे  
शिष्योंसे पूछे हुये पुनर्वसु उनके प्रति  
जहाँ आहार पकता है उस स्थानको  
कहतेभये ॥ २३ ॥

नाभिस्तनान्तरंजन्तोरामाशयइ  
तिस्मृतः । अशितंखादितंपीतंली  
ढश्चात्रविपच्यते ॥ २४ ॥

कि नाभि और स्तनका अंतर जो  
जंतुका है वह आमाशय कहा है अशित  
खादित पीत लीढ इसमेंही पकता है २४

आमाशयगतःपाकमाहारःप्राप्य  
केवलम् । पक्कःसर्वाशयःपश्चाद्ध  
मर्नाभिःप्रपच्यते ॥ २५ ॥

आमाशयमें गयाहुआ आहार केवल  
पाकको प्राप्त होकर पीछेसे पककर  
धमानियोंमेंसे सब आशयमें प्राप्त हो  
जाता है ॥ २५ ॥

तस्यमात्रावतोलिङ्गफलञ्चोक्तंय  
थायथम् । अमात्रस्यतथालिङ्गं  
फलञ्चोक्तंविभागशः ॥ २६ ॥

मात्रावाले उस आहारका लिंग और  
फल यथायोग्य कहा और अमात्राके  
आहारकाभी लिंग और फल विभागसे  
कहा ॥ २६ ॥

आहारविध्यायतनानिचाटौसम्य  
क्ष्परीक्ष्यात्माहितंविदध्यात् ।  
अन्यश्चयःकश्चिदिहास्तिमार्गोहि  
तोपयोगेपुभजेततश्च ॥ २७ ॥

आठ आहार विधिके आयतनोंको  
भली प्रकार देखकर अपने हितकोकरै और  
अन्य जो कोई मार्ग हितके उपयोगोंमें  
है उसकाभी सेवन करै ॥ २७ ॥

इति अग्निवेशकृतैतरेचरकप्रतिसंस्कृतेविमानस्थाने  
त्रिविधकुक्षीयं विमानंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

जनपदोद्धंसनीयम् ।

इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

इसके अनंतर जनपदोद्धंसनीय वि-  
मानका व्याख्यान करते हैं ॥

यह भगवान् आत्रेय कहते भये ।

जनपदनण्डलेपश्चालक्षेत्रेद्विजाति  
वराध्युपितायांकाम्पिल्यराजथा  
न्यांभगवान्पुनर्वसुरात्रेयोऽन्तेवा  
सिगणपरिवृतःपश्चिमेष्वर्म्ममासेग  
ङ्गातीरेवनविचारमनुविचरन्शि  
ष्यमग्निवेशमब्रवीत् ॥ १ ॥

जनपदके मंडलमें पंचालक्षेत्र जो द्विजाति मंडलका वास है उसमें कांपिल्य राजधानीमें भगवान् पुनर्वसु आत्रेय अंतेवासियों ( शिष्यों ) के गणोंसे परिवृत्त ( युक्त ) पिछले धर्ममासमें गंगके तीर वनके विचारमें विचरते हुये अग्निवेश शिष्यके प्रति बोले ॥ १ ॥

दृश्यन्तेहिखलुसौम्य ! नक्षत्रग्रह चन्द्रसूर्यानिलानलानांदिशाश्च प्रकृतिभूताऋतुवैकारिकाभावा अचिरादितोभूरपिचनयथावद्रस वीर्यविपाकप्रभावमोपधीनांप्रति विधास्यति । तद्वियोगाच्चातङ्कः प्रायतानियता । तस्मात्प्रागुद्धंसात्प्राक्चभूमेर्विरसीभावादुद्धरसौम्य ! भैषज्यानि, यावन्नो पहतसवीर्यविपाकप्रभावाणि । वयंचैषांसवीर्यविपाकप्रभावा नुपयोक्ष्यामहे, येचास्माननुकाङ्क्षन्ति, यांश्चवयमनुकांक्षामः २ ॥

कि हे सौम्य नक्षत्र ग्रह चंद्र सूर्य पवन आग्नि और ! दिशा इनके प्रकृति भूत ऋतुओंके विकारक भाव, निश्चयसे दीखते हैं इससे आगे अल्पही कालमें भूमिभी यथार्थ रस वीर्य विपाकका औषधियोंका प्रभाव नहीं करेगी उस प्रभावके वियोगसे प्रायः आतंक ( रोग )

नियतहैं, तिससे उद्धंससे और भूमिके विरसभावसे पहिले हे सौम्य ! औषधियोंको उखाडले जबतक रसवीर्य विपाकका प्रभाव नष्ट नहीं है, हम इनके उन रसवीर्य विपाक प्रभावोंको उपयुक्त करेंगे जो हमारी अनुकांक्षा करते हैं और जिनकी हम अनुकांक्षा करते हैं २ ॥

नहिसम्यग्भूतेषुभैषज्येषुसम्यग्विहितेषुसम्यग्विचारचारितेषुजनपदोद्धंसकराणांविकाराणांकिञ्चित्प्रतीकारगौरवमभवति ॥ ३ ॥

और औषधियोंका सम्यक् उद्धार किये पर और सम्यक् विधान किये पर सम्यक् विचारसे प्रचार करनेपर जनपदका उद्धंस करनेहारे जो विकारहैं उनके प्रतीकारमें किञ्चित्भी गौरव नहीं होता ॥ ३ ॥

एवंवादिनंभगवन्तमात्रेयमग्निवेश उवाच । उद्धृतानिखलुभगवन् ! भैषज्यानिसम्यग्विहितानिसम्यग्विचारचारितानि । अपितु खलुजनपदोद्धंसनमेकेनव्याधिना युगपदसमानप्रकृत्याहारदेहबलसात्म्यासत्त्ववयसांमनुष्याणांस्माद्भवतीति ॥ ४ ॥

इस प्रकार कहतेहुये भगवान् आत्रेयको अग्निवेश बोले कि हे भगवन् भैषज्योंका तो उद्धार कर लिया और

सम्पन्न विधान और विचारभी करलिया  
परंतु एक व्याधिसे जनपदका उद्धंसन  
कैसे होना है क्योंकि सब मनुष्योंकी  
प्रकृति आहार देह बल सात्म्य अव-  
स्था सत्व ये सब भिन्न २ होते हैं ॥ ४ ॥

तमुवाच भगवानात्रेयः । एवमसा-  
मान्यानामभिरपि अग्निवेश ! प्र-  
कृत्यादिभिर्भावैर्मनुष्याणामेऽन्ये-  
भावाः सामान्यस्तद्वैगुण्यात्समा-  
नकालाः समानलिङ्गाश्च व्याधयो-  
भिनिवर्तमाना जनपदमुद्धंसयन्ति ।  
ते तु खलु द्रमेभावाः सामान्या जनप-  
दे पुनर्भवन्ति । तद्यथा, - वायुरुद-  
कदेशः काल इति ॥ ५ ॥

उस अग्निवेशके प्रति भगवान् आत्रेय  
बोले कि हे अग्निवेश इस प्रकार असा-  
मान्यभी मनुष्योंको इन प्रकृति आदि  
भावोंसे जो अन्यभाव सामान्य हैं उनकी  
विगुणतासे होती हुई समान लिङ्ग समान  
काल व्याधि जनपदका उद्धंस कर देती  
है और निश्चयसे वे ये भाव जनपदोंमें  
सामान्य होते हैं वे ऐसे हैं कि वायु  
जल देशकाल इति ॥ ५ ॥

तत्र वातमेवंविध मनारोग्यकरं वि-  
द्यात् । तद्यथा, - क्रतुविषममति-  
स्तिमितमतिचलमतिपरुषमति-  
शीतमत्युष्णमतिरूक्षमत्यभिष्य-  
न्दिनमतिभैरवारावमतिप्रतिहतपर-

स्पर्शगतिमतिकुण्डलिनमसात्म्यग-  
न्धवाष्पसिकतापांशुधूमोपहतमि-  
ति ॥ ६ ॥

उनमें इस प्रकारके वातको अनारोग्य  
( रोग ) कारी जानै कि वह ऐसे है  
कि क्रतुसे विषम स्तिमित अतिचल  
अतिपरुष अतिशीतल, अतिउष्ण  
अतिरूक्ष अतिअभिष्यन्दी, अतिभैरव  
आराव अतिप्रतिहत परस्पर्शगति  
अति कुंडलि और असात्म्यगंध  
वाष्प सिकता पांशु धूम इनसे उपहत  
इति ॥ ६ ॥

उदकन्तु खलु अत्यर्थविकृतगन्ध-  
वर्णरसस्पर्शवत्क्लेदबहुलमपक्रान्त-  
जलचरविहङ्गमुपक्षीणजलाशय-  
मप्रीतिकरमपगतगुणं विद्यात् ॥ ७ ॥

और जलको तो उसे अपगत गुण जानै  
जो अत्यंत विकृत गंधवर्ण रस स्पर्शवान्  
हो क्लेद अधिक जिसमें हो जिसमें जल-  
चर विहंग न हों जलाशय उपक्षीण हो  
और जो अप्रीति कारक हो ॥ ७ ॥

देशंपुनः विकृतप्रकृतिवर्णगन्धरस-  
संस्पर्शक्लेदबहुलमुपसृष्टं सरीसृप-  
व्यालमशकशलभमक्षिकामूपको-  
लूकश्माशानिकशकुनिजम्बुका-  
दिभिस्तृणोलूपोपवनवन्तंप्रता-  
नादिबहुलमपूर्ववदवपतिं शुष्क-  
नष्टशस्यं धूम्रपवनं प्रध्मातपतत्रिगण-

मुत्क्रुष्टश्वगणमुद्भ्रान्तव्यथितवि  
विधमृगपक्षिसंघमुत्सृष्टनष्टधर्मस  
त्यलज्जाचारगुणजनपदंशश्वत्क्षु  
भितोदीर्णसलिलाशयंप्रततोल्का  
पातनिर्घातभूमिकम्पमतिभया  
रावरूपंरूक्षताम्रावणसिताभजा  
लसंवृतार्कचन्द्रतारकमभीक्षणंस  
म्भ्रमोद्वेगमिवसत्रासरुदितमिवस  
तमस्कमिवगुह्यकाचरितमिवाक्र  
न्दितशब्दबहुलश्चाहितंविद्यात् ८

और देशको तो उसको अहित जानै  
जिसमें प्रकृतिसे विकारी वर्ण गंध रस  
स्पर्श हों क्लेद अधिक हो और सर्प व्याल  
मशक शलभ मक्षिका मूषक उलूक  
इमशानके शकुनि जंबूक आदिसे युक्त हो,  
तृण उलूप उपवन जिसमें हों प्रतान आदि  
जिसमें अधिक हों अपूर्वके समान अवप  
तित, हेतुशुक्ल, मधुशस्य हेतु घृणपवन हेतु  
प्रध्मात पक्षियोंके गण जिसमें हों जिसमें  
श्वगण बोलते हों उद्भ्रांत व्यथित जिसमें  
अनेक प्रकारके मृग पक्षियोंके संघ हों,  
जिसमें धर्म सत्य लज्जा आचार गुण  
ये उत्सृष्ट और नष्ट हों ऐसा जनपद,  
निरंतर क्षुभित और उष्ण जिसमें जला-  
शय हों ओर निरंतर उल्कापात निर्घात  
भूकंप हों अतिभयानक आरावरूप हो,  
रूक्ष ताम्र अरुण सित जो मेघोंका  
जाल उससे आच्छादित सूर्य चंद्र तारा-  
गण जिसमें हों, अभीक्षण संभ्रम उद्वे-

गके समान जो हो, त्रास सहित रुदि-  
तके समान हो अंधकार सहितके तुल्य  
हो, गुह्यकोंके विचरणके समान आक्रंद  
( रोदन ) के शब्द जिसमें बहुत हों  
ऐसे देशको अहित जानना ॥ ८ ॥

कालन्तुखलुयथर्तुलिङ्गाद्विपरी  
तलिङ्गमतिलिङ्गंहीनलिङ्गश्चा  
हितंव्यवस्येत् ॥ ९ ॥

कालको तो उसको अहित निश्चय  
करै जो यथार्थ ऋतुओंके लिंगसे विपरीत  
लिंग हो अति लिंग हो वा हीनलिंग हो ९  
इमानेवंदोपयुक्तांश्वतुरोभावान्  
जनपदोद्धंसकरान्वदन्तिकुश  
लाः । अतोऽन्यथाभूतांस्तुहिता  
नाचक्षते ॥ १० ॥

इस प्रकारके गुणोंसे युक्त इन चारों  
भावोंको कुशल मनुष्य जनपदके उद्धंस-  
कारी कहतेहैं इनसे अन्यथा भूतोंको  
ते। हित कहतेहैं ॥ १० ॥

विगुणेष्वपितुखलुएतेषु जनपदोद्धंस  
सनकरेषु भावेषु भेषजेनोपपाद्यमा  
नानां भयं भवति रोगेभ्य इति ११

और विगुणभी जनपदके उद्धंसकर्ता  
भावोंमें औषधसे उपपाद्यमान ( चिकि-  
त्सित ) मनुष्योंको रोगोंसे सर्व भय  
होताहै इति ॥ ११ ॥

भवन्ति चात्र । वैगुण्यमुपपन्नानां  
देशकालानिलाम्भसाम् । गरी

यस्त्वंविशेषेणहेतुमत्संप्रवक्ष्य  
ने ॥ १२ ॥

इसमें ये श्लोक हैं कि विगुणताको  
प्राप्त हुए देशकाल अग्नि जल इनको  
विशेषकर रोगोंके गरीयस्त्व ( श्रेष्ठता )  
हेतु रूपसे कहते हैं ॥ १२ ॥

वातान्नलजलादेशदेशात्कालं  
स्वभावतः । विद्यादुष्परिहार्य  
त्वाद्गरीयस्तरमर्थवित् ॥ १३ ॥

कि वातसे जल, जलसे देश, देशसे  
काल, कालको स्वभावसे, अर्थका ज्ञाता वैद्य  
परिहारके अयोग्य अत्यंत गुरु जानै १३  
वाग्वादिपुत्रोक्तानां दोषाणान्तु  
विशेषवित् । प्रतीकारस्यसौक  
र्य्यविद्यालक्षणम् ॥ १४ ॥

और विशेषका ज्ञाता वायु आदिमें  
यथोक्त दोषोंका जो प्रतीकार उसके  
सौकर्यमें लावके लक्षणको जानै १४  
चतुर्ष्वपितुदुष्टेषुकालान्तेपुत्रदान  
राः । भेषजेनोपपाद्यन्तेनभवन्त्या  
तुरास्तदा ॥ १५ ॥

काल आदि चारोंके दुष्ट होनेपर  
जब मनुष्य भेषजसे उपपादन कियेजाते  
हैं तब मनुष्य आतुर नहीं होते हैं ॥ १५ ॥

येषांनमृत्युसामान्यंसामान्यंनच  
कर्मणाम् । कर्मपञ्चविधंतेषांभे  
षजंपरमुच्यते ॥ १६ ॥

जिनका सामान्य मृत्यु नहीं है और  
न कर्म सामान्य हैं उनको पांच प्रकारका  
भेषज कर्म श्रेष्ठ कहा है ॥ १६ ॥

रसायनानांविधिवच्चोपयोगःप्रश  
स्यते । शस्यतेदेहवृत्तिश्चभेषजैः  
पूर्वमुद्धृतैः ॥ १७ ॥

और रसायनोंका विधिसे उपयोग  
श्रेष्ठ है और पूर्व उद्धृत किये औषधोंसे  
देहकीवृत्ति श्रेष्ठ है ॥ १७ ॥

सत्यंभूतेदयादानंबलयोदेवतार्चन  
म् । सद्भुत्तस्यानुवृत्तिश्चप्रशमोगु  
निरात्मनः ॥ १८ ॥

सत्य भूतोंपर दया दान बलि देवता-  
ओंका पूजन सदाचारका अनुवर्तन शांति  
आत्माकी रक्षा ॥ १८ ॥

हितंजनपदानाञ्चशिवानामुपसेव  
नम् । सेवनं ब्रह्मचर्यस्यतथैवब्रह्म  
चारिणाम् ॥ १९ ॥

जनपदोंका हित, मंगलोंका, व ब्रह्मचर्य  
और तैसेही ब्रह्मचारियोंका उपसेवन १९

सङ्ख्याधर्मशास्त्राणामहर्षिणांजि  
तात्मनाम् । धार्मिकैःसात्त्विकै  
नित्यंसहास्यावृद्धसम्मतैः ॥ २० ॥

धर्म शास्त्रोंकी और महर्षियोंकी जिता-  
त्माओंकी सम्यक् कथा और धार्मिक  
और सत्व गुणियोंके संग और वृद्धोंके  
संमतोंके संग नित्य बैठना २० ॥

इत्येतद्वेपजंप्रोक्तमायुषःपरिपाल  
नम् । येषांननियतोमृत्युस्तस्मि  
न्कालेसुदारुणे ॥ २१ ॥

यह भेषज आयुका परिपालन उनके  
लिये कहा है जिनकी उस सुदारुण  
कालमें मृत्यु नियत नहीं है ॥ २१ ॥

इतिश्रुत्वाजनपदोद्धंसनेकारणा  
निआत्रेयस्यभगवतःपुनरपिभग  
वन्तमात्रेयमग्निवेशउवाच । अथ  
खलुभगवन् ! कुतोमूलमेपांवा  
य्वादीनांवैगुण्यमुत्पद्यतेयेनोपपन्ना  
जनपदमुद्धंसयन्तीति ॥ २२ ॥

आत्रेय भगवान्के कहेहुये जनपदो-  
द्धंसनमें इन कारणोंको सुनकर फिरभी  
अग्निवेश भगवान् आत्रेयके प्रति बोले,  
कि हेभगवन् ! इन वायु आदिकोंका वैगुण्य  
किस मूलसे उत्पन्न होता है जिससे युक्त  
ये जन पदका उद्धंसन करतेहैं ॥ २२ ॥

तमुवाचभगवानात्रेयः । सर्वेषाम्  
अग्निवेश ! वाय्वादीनांवैगुण्यमु  
त्पद्यतेतस्यमूलमधर्मःतन्मूलश्चा  
सत्कर्मपूर्वकृतम् । तयोर्योनिः  
प्रज्ञापराध एव ॥ २३ ॥

उसके प्रति भगवान् आत्रेय बोले  
कि हे अग्निवेश ! संपूर्ण वायु आदिकोंका  
जो वैगुण्य उत्पन्न होता है उसका मूल  
अधर्म है और अधर्मका मूल पूर्व किया

हुआ असत् कर्म है उन दोनोंकी योनि  
( कारण ) प्रज्ञापराधहीहै ॥ २३ ॥

तद्यथा,—यदादेशनगरनिगमजन  
पदप्रधानाधर्ममुत्क्रम्यअधर्मेण  
प्रजांप्रवर्त्तयन्तितदाश्रितोपाश्रिताः  
पौरजनपदाव्यवहारोपजीविनश्च  
तमधर्ममभिवर्द्धयन्ति ॥ २४ ॥

वह ऐसेहै कि जब देश नगर निगम  
जनपद इनमें प्रधान पुरुष धर्मको लंघ-  
कर अधर्मका वर्त्ताव प्रजामें करतेहैं तब  
उनके आश्रित और उपाश्रित, पुरवासी  
जनपद और व्यवहारी ये सब उस  
अधर्मको चारोंतरफसे बढ़ातेहैं ॥ २४ ॥

ततःसोऽधर्मःप्रसभंधर्ममन्तर्धत्ते ।  
ततस्तेऽन्तर्हितधर्माणोदेवताभिर  
पित्यज्यन्ते । तेषां तथान्तर्हित  
धर्माणामधर्मप्रधानानामपक्रान्त  
देवतानामृतवोव्यापद्यन्ते । तेन  
नापोयथाकालंदेवोवर्षति । विकृ-  
तंवावर्षतिवातानसम्यगभिवान्ति  
क्षितिर्व्यापद्यतेसलिलानिउपशुण्य  
न्ति । ओषधयःस्वभावंपरिहा  
यापद्यन्तोविकृतिम् । ततउद्धंस  
न्तेजनपदाःस्पर्शाभिवहार्थ्यदो  
षात् ॥ २५ ॥

फिर वह अधर्म बलात्कारसे धर्मका  
अन्तर्धान कर देताहै, फिर अंतर्हित  
( नष्ट ) है धर्माजनका ऐसे उनको

देवताभी त्याग देतेहैं और अंतर्हित धर्म अधर्म प्रधान देवताओंसे अपक्रांत उनके ऋतुओंमें व्यापत्ति ( नष्टता ) हो जाती है तिससे यथाकाल देव वर्षे वा नवर्षे वा विकारकारी वर्षे वातभी सम्यक् नहीं चलती भूमिमें आपत्ति होतीहै जल शुष्क हो जातेहैं औषधि अपने स्वभावको छोड़कर विकारको प्राप्त होजातीहै फिर जनपद स्पर्श और अभ्यवहारके दोषसे नष्ट हो जातेहैं ॥ २५ ॥

तथाशस्त्रप्रभवस्यअपिजनपदोद्धंसस्यअधर्मएवहेतुर्भवति । येऽतिप्रवृद्धलोभक्रोधरोपमानाःतेदुर्वलानवमत्यआत्मस्वजनपरोपघातायशस्त्रेणपरस्परमभिक्रामन्ति परान्वाभिक्रामन्तिपरैर्वाभिक्राम्यन्तेरक्षोगणादिभिर्वाविविधैर्भूतसङ्घैस्तमधर्ममन्यद्वाप्यपचरान्तरमुपलभ्याभिहन्यन्ते । तथाभिशापस्याप्यधर्मएवहेतुर्भवति ॥ २६ ॥

तिसीप्रकार शस्त्रके प्रभावसे हुये जनु पदोद्धंसकाभी अधर्मही हेतु होतेभये अत्यंत वृद्धहै लोभ, रोष, माद आयेके हासको वे दुर्वलाका अपमान और परके मारने ॥ २३ ॥ संमुख जातेभवति चात्र ।

( चढाई ) युगेधर्मपादःक्रमेणानेनहीय

रक्षोगण आदि भूतोंके संघ उस अधर्मको वा अन्य अपचारको देखकर नष्ट किये जातेहैं तिसी प्रकार अभिशापकाभी हेतु अधर्महीं होताहै ॥ २६ ॥

येलुप्तधर्माणोधर्मादपेताःतेगुरुवृद्धसिद्धर्षिपूज्यानवमत्यअहितानि आचरन्ति ॥ २७ ॥

कि जो मनुष्य नष्ट धर्म धर्मसे पतित गुरु वृद्ध सिद्ध ऋषि जो पूज्यहैं उनका अपमान करके अहितोंका आचरण करतेहैं ॥ २७ ॥

ततस्ताःप्रजागुर्वादिभिरभिशाता भस्मतामुपयान्ति । प्रागप्यभूदनेकपुरुषकुलविनाशानियतप्रत्ययोपलम्भान्नियताश्रपरे । अनियतप्रत्ययोपलम्भादनियताश्रपरे ॥ २८ ॥

तिसके अनंतर गुरु आदिके अभिशापसे वे प्रजा नाशको प्राप्त होतीहैं, पहिलेभी अनेक पुरुष कुल विनाशके अर्थ, नियत प्रत्ययके उपलम्भसे कोई तो नियत और अनियत प्रत्ययके उपलम्भानामायुयुक्तिमपेक्षित ॥ २९ ॥

इस प्रकार कहतेहुये भगवान्को आत्रेय बोले कि हे भगवन्! क्यों आयुके प्रमाणका सब काल नियतहै वा नहीं भगवान् बोले कि हे अग्निवेश । यहां भूतोंकी आयु युक्तिकी अपेक्षा करतीहै ३७



स्थिरशरीराः प्रसन्नवर्णेन्द्रियाः पवं  
नसमवलजवपराक्रमाश्चारुकिं  
चोऽभिरूपप्रमाणाकृतिप्रसादोप  
चयवन्तः सत्यार्जवानृशंस्यदान  
दमनियमतपउपवासब्रह्मचर्य्यत्र  
तपराव्यपगतभयरागद्वेषमोहलो  
भक्रोधशोकमानरोगनिद्रातन्द्रा  
श्रमकुमालस्यपरिग्रहाश्वपुरुषाव  
भूवुरमितायुषः ॥ २९ ॥

और पहिलेभी अधर्मके बिना अशु-  
भकी उत्पत्ति अन्यसे नहीं हुई है आदिका-  
लमेंभी अदितिके पुत्रोंके समान बलवान्  
अत्यंत विमल विपुल स्वभाव प्रत्यक्ष है  
देव देवर्षि धर्म यज्ञ विधि विधान जिनका,  
पर्वतेंद्रके सारके समान संहत और  
स्थिर है शरीर जिनका, प्रसन्न है वर्ण  
इंद्रिय जिनकी, पवनके समान है बल  
वेग और पराक्रम जिनका, चारु है फिच  
जिनकी अभिरूपके प्रमाण आकृति  
प्रसाद उपचयवाले, सत्य आर्जव आनृ-  
शंस्य दान दम नियम तप उपवास  
ब्रह्मचर्य्य नन हनने - है ॥ २९ ॥

सत्कर्मपूर्वकृतम् । तयोर्योनिः  
प्रज्ञापराध एव ॥ २३ ॥

उसके प्रति भगवान् आत्रेय बोले  
कि हे अग्निवेश ! संपूर्ण वायु आदिकोंका  
जो वैगुण्य उत्पन्न होता है उसका मूल  
अधर्म है और अधर्मका मूल पूर्व किया

गुणसमुदितानि प्रादुर्बभूवुः शस्या  
निसर्वगुणसमुदितत्वात् पृथिव्या  
दीनांकृतयुगस्यादौ । भश्यतितु  
कृतयुगेके पाश्चिदत्यादानात् सा  
म्पन्निकानां शरीरगौरवमासीत् ।  
सत्वानां गौरवाच्छ्रमः श्रमादालस्य  
मालस्यात् सञ्चयः सञ्चयात् परि  
ग्रहः परिग्रहालोभः प्रादुर्भूतः ३० ॥

उनके उदार सत्व गुण कर्म अचित्य  
हैं, रस वीर्य विपाक गुणोंसे समुदित  
( युक्त ) शस्य होते भये क्योंकि पृथिवी  
आदि, कृतयुगकी आदिमें सब गुणोंसे  
समुदित रहे, कृत युगका भ्रंश होनेपर  
किन्ही २ के अत्यादानसे संपन्न हुयोंके  
शरीरमें गौरव होता भया, सत्वोंके गौरव-  
से श्रम श्रमसे आलस्य आलस्यसे  
संचय संचयसे परिग्रह परिग्रहसे लोभ,  
प्रकट भया ॥ ३० ॥

ततः कृतयुगे गते त्रेतायां लोभादभि-  
द्रोहः । अभिद्रोहादनृतवचनम्  
नृतवचनात् कामक्रोधमानद्वेषपा-  
रुष्याभिघात-भयतापशोकचित्तो-  
यापयन्तः प्रवृत्ताः ॥ ३१ ॥

न्ते जनपदाः स्पर्श जानेपर त्रेतायुगमें  
पात् ॥ २५ ॥ ॥ २५ ॥ ॥ २५ ॥

फिर वह अधर्म बलात्कारों मान द्वेष  
अन्तर्धान कर देता है, फिर अक्र चिन्ता  
( नष्ट ) है धर्मजिनका ऐसे उन

तत्स्वेतायां धर्मपादोऽन्तर्द्धानम  
गमत् । तस्यान्तर्द्धानात् पृथि  
व्यादीनां गुणपादप्रणाशोऽभूत् ।  
तत्प्रणाशकृतश्च शस्यानां स्नेहवैम  
ल्यस्य वीर्यविपाकप्रभावगुणपा  
दक्षेत्रः ॥ ३२ ॥

तिसके अनंतर त्रेतामें धर्मपाद अंत-  
र्धान होगया उसके अंतर्द्धानसे पृथ्वी  
आदिकोंके गुणका पाद प्रनष्ट होगया  
उसके प्रणाशसेही शस्योंके स्नेह वैमल्य  
रस वीर्य विपाक प्रभाव गुण इनके  
पादका नाश हुआ ॥ ३२ ॥

तत्स्तानि प्रजाशरीराणि हीनगुण  
पादहीनमानगुणैश्चाहारविहारैरय  
थापूर्वमुपपन्नमानानि अग्निमारु  
तपरीतानि प्राग् व्याधिभिर्ज्वरादि  
भिराक्रान्तानि अतः प्राणिनो हास  
मवापुरायुषः क्रमश इति ॥ ३३ ॥

तिससे वे प्रजाके शरीर हीन गुण  
पादोंसे और हीन गुण आहार विहारोंसे  
यथापूर्व उपपन्नको प्राप्त हुये अग्नि  
मारुतसे युक्त हुये व्याधियोंसे पहिले  
ज्वर आदिसे आक्रांत होतेभये  
इससे प्राणी क्रमसे आयुके हासको  
प्राप्त हुये—इति ॥ ३३ ॥

भवति चात्र ।

युगेयुगे धर्मपादः क्रमेणानेन हीय

ते । गुणपादश्च भूतानामेवं लोकः  
प्रलीयते ॥ ३४ ॥

इसमें ये श्लोक हैं, कि युग २ में  
धर्मका पाद इसी क्रमसे हीन होता है  
और भूतोंके गुणका पाद हीन होता है  
इस प्रकार लोक नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

संवत्सरशते पूर्णया तिसंवत्सरः क्ष  
यम् । देहिनामायुषः कालेयत्रय  
न्मानमिष्यते ॥ ३५ ॥

सौ संवत्सरोंके पूर्ण होनेपर संवत्सर  
क्षयको प्राप्त हो जाता है, देहधारियोंकी  
आयुके कालके जिसमें जो प्रमाण इष्ट है  
वह नष्ट हो जाता है ॥ ३५ ॥

इति विकाराणां प्रागुत्पत्तिहेतुरुक्तो  
भवति ॥ ३६ ॥

यह विकारोंके पूर्व उत्पत्तिका हेतु  
उक्त है ॥ ३६ ॥

एवं वादिनं भगवन्तमात्रेयमग्निवे

च । किन्तु खलु भगवन् !

शब्दवाच्यप्रमाणमायुः सर्वनवेति

नियतवाच । इह अग्निवेश !

भूतानामायुर्युक्तिमपेक्षते ॥ ३७ ॥

इस प्रकार कहतेहुये भगवान्को  
आत्रेय बोले कि हे भगवन्! क्यों आयुके  
प्रमाणका सब काल नियत है वा नहीं  
भगवान् बोले कि हे अग्निवेश । यहां  
भूतोंकी आयु युक्तिकी अपेक्षा करती है ३७

दैवपुरुषकारेचस्थितं ह्यस्य बला  
बलम् । दैवमात्मकृतं विद्यात्कर्म  
यत्पूर्वदैहिकम् ॥ ३८ ॥

दैव और पुरुषार्थमें इसका बल  
और अवल स्थित है जो अपना किया  
कर्म पूर्व देहका है उसको दैव जानै ३८  
स्मृतः पुरुषकारस्तु क्रियते यदिहा  
परम् । बलावलविशेषोऽस्ति त  
यो रपिचकर्मणोः ॥ ३९ ॥

और जो इस जन्ममें अन्य कर्म किया  
जाता है वह पुरुषकार है और उन दोनों  
कर्मोंका भी बल अवलका विशेष है ॥ ३९ ॥

दृष्टं हि त्रिविधं कर्म ह्रीनं मध्यममुत्त  
मम् । तयो रुदारयो र्युक्ति दीर्घस्य  
स्वमुखस्य च ॥ ४० ॥

क्योंकि तीन प्रकारका कर्म देखा है कि  
हीन, मध्यम, उत्तम, उन दोनों उदार  
कर्मोंकी और दीर्घ अपने सुखकी और  
नियत आयुकी युक्ति हेतु है ॥ ४० ॥

नियतस्यायुषो हेतुर्विपरीतस्य च  
तरा । मध्यमामध्यमस्येष्टाकार  
णं शृणुचापरम् ॥ ४१ ॥

और विपरीतका हेतु अयुक्ति है और  
मध्यम युक्ति मध्यम कर्मका हेतु है अब  
अपर कारणको तू सुन ॥ ४१ ॥

दैवपुरुषकारेण दुर्बलं ह्युपहन्यते ।  
दैवेन चैतरेत्कर्म विशिष्टेनोपहन्य  
ते ॥ ४२ ॥

पुरुषार्थ दुर्बल दैवको नष्ट कर देता  
है और विशिष्ट दैव पुरुषार्थ को नष्ट कर-  
देता है ॥ ४२ ॥

दृष्टाय देके मन्यन्ते नियतं मानमायु  
पः । कर्म किञ्चित्कचित्काले वि  
पाके नियतं महत् । किञ्चित्त्वकाल  
नियतं प्रत्ययैः प्रतिबोध्यते इति ४३

इस प्रकार देखकर भी जो कोई  
आयुके मानको नियत मानते हैं, किसी  
कालमें किञ्चित् कर्म विपाकके समय  
महान् नियत है और कोई कर्मकाल  
नियत प्रतीतियोंसे नहीं जाना जाता है  
इति ॥ ४३ ॥

तस्मादुभयदृष्टत्वादेकान्तग्रहण  
मसाधुनिदर्शनमपि चात्र उदाहरि  
ष्यामः । यदि हि नियतकालप्र  
माणमायुः सर्वस्यात्तदा युष्का  
माणां नमन्त्रौषधि मणिमङ्गलवल्गु  
पहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवास  
स्वस्त्ययनप्रणिपातगमनाद्याः  
क्रिया इष्टयश्च प्रयुज्येरन् ॥ ४४ ॥

तिससे दोनोंके देखनेसे एकांत  
( एकका ) ग्रहण असाधु है और इसमें  
दृष्टांतका भी उदाहरण देंगे कि यदि  
आयुके प्रमाणका सब काल नियत है,  
तो अवस्थाके अभिलाषियोंको मंत्र  
औषधि मणि मंगल वलि उपहार होम  
नियम प्रायश्चित्त उपवास स्वस्त्ययन

प्रणिपात गमन आदि क्रिया और यज्ञ इनका प्रयोग करना न होता ॥ ४४ ॥

नउद्भ्रान्तचण्डचपलगोजोष्ट्रख  
रतुरगमहिपादयःपवनादयश्चदुष्टाः  
परिहाय्याःस्युःनप्रपातगिरिविपम  
दुर्गाम्बुवेगाः।तथाप्रमत्तोन्मत्तो  
द्भ्रान्त-चण्ड चपलमोहलोभाकु  
लमतयोनारयोनप्रवृद्धोऽग्निर्नच  
विविधविपाश्रयाःसरीसृपोरगाद  
यः । नसाहसंनदेशकालचर्म्यान  
नरेन्द्रप्रकोपइत्येवमादयोभावाना  
भावकराःस्युःआयुषःसर्वस्यनि  
यतकालप्रमाणत्वात् ॥ ४५ ॥

और भ्रांत चंड चपल जो गौ गज  
ऊंट खर तुरग महिप आदिका और  
पवन आदि दुष्टजीवोंका कोईभी परि-  
हार न करता और प्रपात गिरि विपम  
दुर्ग जलके वेग तैसेही प्रमत्त उन्मत्त  
भ्रांत चंड चपल मोह लोभमें आकुल  
बुद्धि निवारण न कियेजाते और शत्रु  
और बढीहुई अग्नि और अनेक प्रकारके  
विषवाले सर्प और उरग आदि और  
साहस देशकालका आचरण और राजा-  
का कोप ये सब निवारण न किये जाते  
इत्यादि भावोंका अभाव न करना  
चाहियेथा क्योंकि सबकी अवस्थाका  
प्रमाण नियत कालपर है ॥ ४५ ॥

नचानभ्यस्ताकालमरणभयनिवा

रकाणामकालमरणभयमागच्छेत्  
प्राणिनाम् । व्यर्थाश्चारम्भकथा  
प्रयोगबुद्धयःस्युर्महर्षीणांरसाय  
नाधिकारी ॥ ४६ ॥

और अनभ्यस्त अकाल मरणभयके  
निवारण कर्ता प्राणियोंको अकाल मरण  
भयभी न होना चाहिये और आरंभ कथा  
प्रयोगकी वे बुद्धिभी वृथा होजाती जो  
महर्षियोंने रसायन अधिकारमें कीहैं ४६  
नापीन्द्रोनियतायुपंशत्रुवज्रेणा  
भिह्न्यात् । नाश्विनावात्तभेपजे  
नोपपादयेताम् । नर्पयोंयथेष्टम्  
आयुस्तपसाप्राप्नुयुर्नचविदितवेदि  
तव्यामहर्षयःससुरेशाःसम्यक्प  
श्येयुरूपदिशेयुराचरेयुर्वा ॥ ४७ ॥

और नियत आयुके शत्रुको इंद्रभी  
वज्रसे न मारता और व अश्विनीकुमार  
आर्तको भेपजसे उपपादन करते और न  
ऋषि तपसे यथेष्ट आयुको प्राप्त होते और  
जानाहै जानने योग्य जिहोंने ऐसे महर्षि  
और सुरेश न भलीप्रकार आयुको देखते  
न उपदेश करते न आचरण करते ॥ ४७ ॥

अपिचसर्वचक्षुषामेतत्परंयदैन्द्रं  
चक्षुरिदञ्चास्माकंतेनप्रत्यक्षंयथा  
पुरुषसंज्ञाणामुत्थायोत्थायाहवं  
कुर्वतामकुर्वताञ्चातुल्यायुष्टं  
थाजातमात्राणामप्रतीकारा

त्प्रतीकाराच्चअविषाविषप्राशि  
नांचापिअतुल्यायुष्टंनचतुल्योयो  
गक्षेमउदपानघटानांचित्रघटाना  
श्चोत्सीदताम् ॥ ४८ ॥

और सर्व चक्षुओंके यह परम है जो इंद्रिय रूप चक्षु है और यह हमारा जो गोलक रूप चक्षु है उससे प्रत्यक्ष है कि जैसे सहस्रों पुरुष उठ २ कर संग्रामको करते और न करते हुयोंकी तुल्य आयु नहीं है तैसे जातमात्रोंके अप्रतिकारसे और जो विष अविषके भक्षकहैं उनकीभी तुल्य आयु नहीं है, और न तुल्य योग क्षेम जल पानके घटोंका और चित्र घटोंका नष्ट होनेके समयमें है ॥ ४८ ॥

तस्माद्धितोपचारमूलंजीवितमतो  
विपर्ययात्मृत्युः ॥ अपिचदेश  
कालात्मगुणविपरीतानांकर्मणामा  
हारविकाराणाञ्चक्रियोपयोगः ४९

तिससे जीवितका मूल हितोपचारहै इसके विपर्ययसे मृत्यु होती है और देश काल आत्माके गुणोंसे विपरीत जो कर्म है और आहार विहारहैं उनका क्रिया योग मूल है ॥ ४९ ॥

सम्यक्सर्वातियोगसन्धारणमस  
न्धारणमुदीर्णानाञ्चगतिमतांसह  
सानाञ्चवर्जनमारोग्यानुवृत्तौउप  
लभामहेहेतुमुपदिशामःसम्यक्प  
श्यामश्चेति ॥ ५० ॥

भलीप्रकार सबका अतियोग संधा-  
रण असंधारणभी मूल है उदीर्ण (अत्यंत)  
गतिमानोंका और साहसोंका वर्जन मूल  
है ये आरोग्यके अनुवृत्तिमें हेतु हमें  
मिलते हैं और उपदेश करते हैं और  
भलीप्रकार देखते हैं ॥ ५० ॥

अतःपरमग्निवेशउवाच । एवंसति  
अनियतकालप्रमाणायुपांभगव  
न् ! कथंकालमृत्युरकालमृत्यु  
र्भवतीति ॥ ५१ ॥

इससे परे अग्निवेश बोले कि, हे  
भगवन् ! इस प्रकार होनेपर जिनकी  
आयुका प्रमाण अनियत कालसे है उनकी  
काल मृत्यु वा अकाल मृत्यु कैसे  
होती है ॥ ५१ ॥

तमुवाचभगवानात्रेयः । श्रूय  
तामग्निवेश ! यथायानसमा  
युक्तोऽक्षःप्रकृत्यैवाक्षगुणैरुपेतः  
स्यात् । सचसर्वगुणोपपन्नोवाह्य  
मानोयथाकालंस्वप्रमाणक्षयादे  
वावसानंगच्छेत्तथायुःशरीरोप  
गतंबलवतःप्रकृत्यायथावदुपचर्ग्य  
माणंस्वप्रमाणक्षयादेवअवसानं  
गच्छति ॥ ५२ ॥

उसके प्रति भगवान् आत्रेय बोले  
कि हे अग्निवेश सुनो, जैसे यानमें समा-  
युक्त अक्ष प्रकृतिसे अक्षके गुणोंसे युक्त  
सब गुणोंसे उपपन्न जो है वह वाहन

किया हुआ यथा काल अपने प्रमाणके क्षयसेही अंतको प्राप्त होताहै तैसेही शरीरमें प्राप्त हुआ आयु बलवान्की प्रकृतिसे यथा योग्य उपचार किया हुआ अपने प्रमाणके क्षयसेही अवसान (अंत)को प्राप्त होताहै ॥ ५२ ॥

समृत्युःकालेयथाचसएवाक्षोऽति  
भाराधिष्ठितत्वाद्विषमपथादपथा  
दक्षचक्रभङ्गाद्वाह्यवाहकदोषा  
दनिर्मोक्षात्पर्यसनानुपाङ्गाच्चा  
न्तराव्यसनमापद्यते ॥ ५३ ॥

वह मृत्यु तो कालमें होतीहै और जैसे वही अक्ष अत्यंत भारसे युक्त होनेसे विषम मार्गसे कुमार्गसे अक्षचक्रके भंगसे बाह्य और वाहकके दोषसे अनिमोक्षसे पर्यवसानसे अनुपांगसे मध्यमेंभी व्यसन ( दुःख ) को प्राप्त होताहै ॥ ५३ ॥

तथायुरप्य-यथाबलमारम्भादय  
थाग्न्यभ्यवहरणाद्विषमाभ्यव  
हरणाद्विषमशरीरन्यासादतिमै  
थुनादसत्संश्रयादुदीर्णवेगाविनि  
ग्रहात् । विधार्यवेगाविधारणाद्भू  
त-विषवाय्वग्न्युपतापादभिधा  
तादाहारप्रतीकार-विवर्जनाच्चा  
न्तराव्यसनमापद्यते । समृत्यु  
रकाले ॥ ५४ ॥

तिसी प्रकार आयुभी अयथाबलके आरंभसे अयथा अग्निके आहारसे विषम

भोजनसे विषम शरीरके न्याससे अत्यंत मैथुनसे असत्के संश्रयसे उठे हुये वेगके विनिग्रहसे, धारने योग्य वेगके अविधारणसे भूत विष वायु अग्निके उप-  
तापसे अभिघातसे आहारके प्रतीकार और त्यागसे अन्तरमेंभी व्यसनको प्राप्त होजाताहै वह मृत्यु अकालमें होताहै ५४  
तथाज्वरादीनप्यातङ्कान्मिथ्यो  
पचरितानकालमृत्यूनृपश्याम  
इति ॥ ५५ ॥

तिसी प्रकार मिथ्या उपचार किये ज्वर आदि रोगोंकोभी अकाल मृत्यु देखतेहैं ॥ ५५ ॥

अथाग्निवेशःपप्रच्छकिन्नुखलुभग  
वन् ! ज्वरितेभ्यःपानीयमुष्णंभू  
यिष्टंप्रयच्छन्तिभिषजोनतथाशी  
तम् । अस्तिचशीतसाध्योधातु  
ज्वरकरइति ॥ ५६ ॥

इसके अनंतर अग्निवेशने पूछा कि हे भगवन् निश्चयसे ज्वरवानोंको क्यों अधिकतर उष्णजल, वैद्य देतेहैं तैसे शीत जलको नहीं देतेहैं और शीतसे साध्य, ज्वरकारक, धातु होतीहै इति ५६

तमुवाचभगवानात्रेयोज्वरितस्य  
कायसमुत्थानदेशकालानभिस  
मीक्ष्यपाचनार्थपानीयमुष्णंप्रय  
च्छन्तिभिषजः । ज्वरोह्यामांश  
यसमुत्थः, प्रायोभेषजानिचामा

शयसमुत्थानांविकाराणांपाचनव  
मनापतर्पणानिशमनानिभवन्ति।  
पाचनार्थश्चपानीयमुष्णंतस्मादे  
तज्ज्वरितेभ्यःप्रयच्छन्तिभिप  
जोभूयिष्ठम् ॥ ५७ ॥

उसके प्रति भगवान् आत्रेय बोले वैद्य  
ज्वरितकी कायामें समुत्थान ( ज्वरहाना )  
देश काल इनको देखकर पचानेके लिये  
उष्णजल देतेहैं ज्वर आमाशयमें होता  
है औरप्रायः औषध आमाशयमें उठे  
विकारोंके पाचन, वमन, अपतर्पण, कुर-  
नेमें समर्थ होतेहैं और उष्णजल, पाच-  
नके लियेहै तिससे वैद्यलोग ज्वरितोंको  
उष्णजल, बहुधा देतेहैं ॥ ५७ ॥

तद्धयेपांपीतंवातमनुलोमयतिअ  
ग्निमुदर्यमुदीरयति । क्षिप्रंजरां  
गच्छतिश्लेष्माणश्चपरिशोषयति  
स्वल्पमपिचपीतंतृष्णाप्रशमना  
योपपद्यतेतथायुक्तमपिचैतन्नात्य  
र्थोत्सन्नपित्तेज्वरेसदाहभ्रमप्रला  
पातिसारेवाप्रदेयमुष्णेनहिदाहभ्र  
मप्रलापातिसाराभूयोऽभिवर्द्धन्ते  
शीतेनोपशाम्यन्तीति ॥ ५८ ॥

ब्रह्म पियाहुआ उष्णजल उनके  
वातको अनुलोम करताहै उदरकी अग्नि  
बढाताहै शीघ्र जीर्ण होजाताहै श्लेष्माको  
शुष्क करताहै और स्वल्पभी पियाहुआ

तृपाको शांत करताहै तिसीप्रकार युक्तभी  
यह उष्णजल अत्यंत बढे हुए पित्तके  
ज्वरमें दाहसहित भ्रम, प्रलाप अती-  
सारमें नहीं देना क्योंकि उष्णजलसे  
दाह, भ्रम, प्रलाप, अतीसार, ये अधिक  
बढतेहैं और शीत जलसे शांत होतेहैं  
इति ॥ ५८ ॥

भवतिचात्र ।

शीतेनोष्णकृतान्त्रोगान्शमयन्ति  
भिपग्विदः।येतुशीतकृतारोगास्ते  
पाश्चोष्णंभिपग्वितम् ॥ ५९ ॥

इसमें यह श्लोकहै कि वैद्यकके ज्ञाता  
शीतसे उष्णके किये रोगोंको शांत कर-  
तेहैं और जो रोग शीतसे उत्पन्नहैं उनकी  
औषध उष्णजलहै ॥ ५९ ॥

एवमितरेषामपिव्याधीनांनिदान  
विपरीतमौषधकार्यम् ॥ ६० ॥

इसी प्रकार इतर व्याधियोंकेभी निदा-  
नसे विपरीत औषध करने योग्यहै ॥ ६० ॥

तथातर्पणनिमित्तानामपिव्याधी  
नानान्तरेणपूरणमस्तिशान्ति  
स्तथापूरणनिमित्तानान्तरे  
णापतर्पणम् ॥ ६१ ॥

तिसी प्रकारका अपतर्पण जिनका  
निमित्तहै उन व्याधियोंकाभी निदानसे  
विपरीत औषध करना तैसेही अपतर्पण  
निमित्तक व्याधियोंकी शांति पूरणके विना  
नहीं होती तिसीप्रकार पूरण निमित्तक

व्याधियोंकी शांति अपतर्पणके विना नहीं होती ॥ ६१ ॥

अपतर्पणमपिचित्रिविधंलंघनंलंघनपाचनंदोषावसेचनंश्चेति । तत्र लंघनमल्पदोषाणाम् । लंघनेन ह्यग्निमारुतवृद्ध्यावातातपपरीतमिवाल्पमुदकमल्पदोषःप्रशोषमापद्यते ॥ ६२ ॥

और अपतर्पण तीन प्रकारका होता है किलंघन पाचन और दोषावसेचन उनमें अल्प दोषोंको लंघन है क्योंकि लंघनसे अग्नि मारुतकी वृद्धि होनेसे वात आतप से युक्त अल्पजलके समान अल्पदोष रोग शोषणको प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥

लंघनपाचनाभ्यामध्यबलःसूर्यसन्तापमारुताभ्यां पांशुभस्मावकिरणैरिवचानतिबहूदकंमध्यदोषःप्रशोषमापद्यते ॥ ६३ ॥

लंघन और पाचनसे मध्य दोषका रोग इस प्रकार शोषको प्राप्त होता है जैसे मध्य बलवान् सूर्यके संताप और पवनसे वा धूलि और भस्मके अवकिरण ( डालना ) से वह स्थल सूख जाता है जिसमें अत्यंत जल न हो ६३ ॥

बहुदोषाणांपुनर्दोषावसेचनमेवकार्ग्यम् । नह्यभिन्नेकेदारसेतौपल्वलप्रसेकोऽस्ति । तद्वदोषावसेचनम् । दोषावसेचनन्तुखलुअन्य

द्वाभेपजंप्रातकालमप्यातुरस्यनैवंविधस्यकुर्व्यात् ॥ ६४ ॥

और जो बहु दोष रोग हैं उनके तो दोषोंका अवसेच नहीं करना क्योंकि केदारकी सेतु ( डोल ) के भेदन किये बिना पल्लवका सीचना नहीं होता है तैसेही दोषावसेचन करे और दोषोंका अवसेचन वा अन्य औषध समयपरभी इस प्रकारके आतुरकी न करे ॥ ६४ ॥

अनपवादप्रतीकारस्याधनस्यापरिचारकस्यवैद्यमानिनश्चण्डस्यासूयकस्यतीव्राधर्मरुचेरतिक्षीणबलमांसशोणितस्यअसाध्यरोगोपहतस्यमुमूर्षुलिंगान्वितस्यचेति । एवंविधंआतुरमुपचरन्निष्पक्षपातीयसाअयशसायोगंगच्छतीति ॥ ६५ ॥

जो निंदाका प्रतीकार न कर सके और जो निर्धन हो जिसके परिचारक न हो, वैद्यका अभिमानी हो चंडहो निंदक हो महान् अधर्ममें रुचि हो अत्यंत क्षीण जिसके मांस बल शोणित हों असाध्य रोगमें नष्ट हो मुमूर्षुके लिंगोंसे युक्त हो इस प्रकारके आतुरका उपचार करता हुआ वैद्य अत्यंत पापी ( बुरे ) अपयशको प्राप्त होता है इति ॥ ६५ ॥

तत्र श्लोकाः ।

अल्पोदकद्रुमोयस्तुप्रवातःप्रचुरा



तपः। ज्ञेयः सजाङ्गलो देशः स्वल्प  
रोगतमोऽपि च ॥ ६६ ॥

उसमें ये श्लोक हैं कि जिसमें जल  
और वृक्ष अल्प हो अधिक प्रवात हो  
आतप अधिक हो जिसमें अत्यंत रोग न  
हो वह जांगल देश जानना ॥ ६६ ॥

प्रचुरोदकवृक्षो यो निवातो दुर्लभा  
तपः । अरूपोऽबहुदोषश्च समः सा  
धारणो मतः ॥ ६७ ॥

जिसमें वृक्ष और जल अधिक  
हों वात न हो आतप जिसमें दुर्लभ हो  
रूपहीन और बहु दोष हो सम हो वह  
देश साधारण माना है ॥ ६७ ॥

तदा त्वेवानुबन्धो वायस्य स्यादशु  
भंफलम् । कर्मणस्तन्नकर्तव्यमे  
तद्बुद्धिमतां मतम् ॥ ६८ ॥

तत्कालमें वा किसी अनुबन्धमें  
( प्रसंग वश ) जिस कर्मका फल अशुभ  
हो वह न करना चाहिये यह बुद्धि-  
मानोंका मत है ॥ ६८ ॥

पूर्वरूपाणि सामान्या हेतवस्वस्व  
लक्षणाः । देशोद्धंसस्य भेषज्यं हे  
तूनां मूलमेव च ॥ ६९ ॥

पूर्वरूप और सामान्य अपने लक्षणके  
हेतु देशके उद्धंसका भेषज्य हेतुओंका  
मूल ॥ ६९ ॥

प्राग्विकारसमुत्पत्तिरायुषश्चक्षय

क्रमः । मरणं प्रतिभूतानां कालाका  
लविनिश्चयः ॥ ७० ॥

पूर्वविकारकी समुत्पत्ति अवस्थाकी  
नाशका क्रम प्रत्येक भूतोंका मरणकाल  
अकालका निश्चय ॥ ७० ॥

यथाचाकालमरणं यथायुक्तञ्च भे  
षजम् । सिद्ध्या त्वाप्यौषधं येषां  
कुर्व्याद्येन हेतुना ॥ ७१ ॥

और जैसे अकाल मरण होता है और  
जैसे युक्त भेषज है, जिनको औषध  
सिद्ध ( सफल ) होती है और जिस  
हेतुसे औषधको न करे ॥ ७१ ॥

तदग्निवेशायात्रेयो निखिलं सर्वमु  
क्तवान् । देशोद्धंसनिमितीये वि  
माने मुनिसत्तमः ॥ ७२ ॥

इन संपूर्णोंका अग्नि वेशके प्रति  
आत्रेय मुनियोंमें सत्तम देशोद्धंसनिमि-  
तीय विमानमें वर्णन करते भये ॥ ७२ ॥

इति जनपदोद्धंसनीयं विमानं समाप्तम् ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

त्रिविधरोगविशेषविज्ञानीयः ।

इसके अनंतर त्रिविध रोग विशेष  
विज्ञानीय अध्यायका व्याख्यान करते  
हैं कि—

त्रिविधं खलुरोगविशेषज्ञानं भवति ।  
तद्यथा,—आप्तोपदेशः, प्रत्यक्षमनु  
मानश्चेति ॥ १ ॥

तीन प्रकारका निश्चयसे रोग विशेषका विज्ञान होता है वह ऐसे है कि आसका उपदेश प्रत्यक्ष और अनुमान ।

तत्राप्तोपदेशोनामआप्तवचनम् ।

आप्ताह्यवितर्कस्मृतिविभागविदो निष्प्रीत्युपतापदर्शिनश्च । तेषामेवंगुणयोगाद्यद्वचनंतत्प्रमाणम् । अप्रमाणं पुनर्मत्तोन्मत्तमूर्खरक्तदुष्टान्तःकरणवचनमिति ॥ २ ॥

उनमें आसके वचनको आस उपदेश कहते हैं आस वे हैं जो तर्कके बिना स्मृतियोंके विभागके ज्ञाता हों और निरंतर प्रीतिसे उपताप ( रोग ) के द्रष्टा हों, उनका इस प्रकारके गुणोंके योगसे जो वचन है वह प्रमाण है और मत्त उन्मत्त मूर्ख वक्ताका जो दृष्ट अदृष्ट वचन है वह प्रमाण है और मत्त उन्मत्त मूर्ख वक्ताका जो दृष्ट अदृष्ट वचन है वह अप्रमाण है ॥ २ ॥

प्रत्यक्षन्तु खलु त्तयतत्स्वयमिन्द्रियैर्मनसा चोपलभ्यते । अनुमानं खलु तर्कयुक्त्यपेक्षः ॥ ३ ॥

प्रत्यक्ष तो निश्चयसे वह है कि जो इंद्रिय और मनसे स्वयं उपलब्ध हो और अनुमान तो निश्चित वह है कि युक्तिकी अपेक्षावान् तर्क ॥ ३ ॥

त्रिविधेन खल्वनेन ज्ञानसमुदयेन पूर्वपरीक्षय रोगसर्वथा सर्वमेवोत्तरकालमध्यवसानमदोषं भवति ॥ ४ ॥

तीन प्रकारके इस निश्चित ज्ञानके समुदायसे पहिले रोगकी परीक्षा करके सब प्रकारसे संपूर्ण चिकित्साका उत्तर काल अध्यवसान ( अंत ) तक निर्दोष होता है ॥ ४ ॥

न हि ज्ञानावयवेन कृत्स्ने ज्ञेयज्ञानमुत्पद्यते । त्रिविधे त्वस्मिञ्ज्ञानसमुदाये पूर्वमाप्तोपदेशाज्ज्ञानंततः प्रत्यक्षानुमानाभ्यां परीक्षोपपद्यते । किं ह्यनुपादिष्टपूर्वप्रत्यक्षानुमानाभ्यां परीक्ष्यमाणो विद्यात् । तस्माद्विविधा परीक्षा ज्ञानवतां प्रत्यक्षमनुमानश्चेति । त्रिविधा वासहे उपदेशेन । तत्रेदमुपादिशन्ति बुद्धिमन्तोरोगमेकैकमेवंप्रकोपमेवं योनिमेवात्मानमेवमधिष्ठानमेवं वेदनमेवं संस्थानं एवं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धमेवमुपद्रवमेवं बुद्धिस्थानक्षयसमन्वितमेवमुदकमेवं नामानमेवं योगविद्यात् । तस्मिन्नियं प्रतीकारा प्रवृत्तिरथ वानि वृत्तिरित्युपदेशाज्ज्ञायते ॥ ५ ॥

क्योंकि ज्ञानके किसी एक अवयवसे संपूर्ण ज्ञेयका ज्ञान पैदा नहीं होता है और तीन प्रकारके इस ज्ञानके समुदायमें पहिले आसके उपदेशका ज्ञान है उसके अनंतर प्रत्यक्ष और अनुमानसे परीक्षा होती है किसका पहिले उपदेश

नहीं किया फिर प्रत्यक्ष अनुमानोंसे परीक्षाका कर्ता रोगको जानै तिससे ज्ञान वानोंकी प्रत्यक्ष और अनुमानरूप दो प्रकारकी परीक्षाहै वा उपदेशसे युक्त तीन प्रकारकी परीक्षाहै उसमें बुद्धिमान यह उपदेश करतेहैं, की एक एक रोगको इस प्रकारसे जानै कि ऐसा कोपहै ऐसी योनिहै ऐसा आत्माहै ऐसा अधिष्ठानहै ऐसी वेदनाहै ऐसा संस्थानहै ऐसे शब्द स्पर्श रूप रस गंधहैं ऐसा उपद्रवहै ऐसे वृद्धि स्थान क्षयसे युक्तहै ऐसा अधिकहै यह नामहै, ऐसा योग है उस रोगमें यह प्रतीकारकी प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति उपदेश जानी जातीहै ॥ ५ ॥

प्रत्यक्षतस्तुखलुरोगतत्त्वबुभुत्सुः  
सर्वैरिन्द्रियैःसर्वानिन्द्रियार्थानातु  
रशरीरगतान्परीक्षेतान्यत्ररसज्ञा  
नात् । तद्यथा,अन्त्रकूजनंसन्धि  
स्फोटनमंगुलीपर्वणांचस्वरविशे  
षांश्चयेचान्येऽपिकेचिच्छरीरोप  
गताःशब्दाःस्युस्तान्श्रोत्रेणपरीक्षे  
त । वर्णसंस्थानप्रमाणच्छायाश  
रीरप्रकृतिविकारौचक्षुर्वैषयिका  
णिचान्यानिकानिचतानिचक्षुषा  
परीक्षेत ॥ ६ ॥

और निश्चयसे रोगके तत्त्वको प्रत्यक्ष जाननेका अभिलाषी, संपूर्ण इंद्रियोंसे आतुरके शरीरमें विद्यमान संपूर्ण इंद्रियोंके विषयोंकी परीक्षा रसके ज्ञानको

छोडकर करै, वह ऐसे है कि अंत्रोंका कूजन संधियोंका स्फोटन अंगुलियोंके पर्वोंका स्फोटन और स्वर विशेष और जो अन्यभी शरीरमें वर्तमान शब्द हैं उनकी परीक्षा श्रोत्रसे करै, और वर्ण संस्थान प्रमाण छाया शरीरकी प्रकृति विकार और जो अन्य कोई नेत्रके विषय हैं उनकी परीक्षा चक्षुसे करै ६॥

रसन्तुखलुआतुरशरीरगतमिन्द्रि  
यवैषयिकमप्यनुमानादवगच्छे  
त् । नह्यस्यप्रत्यक्षेणग्रहणमुपप  
द्यते । तस्मादातुरपरिप्रश्नैवातुर  
मुखरसंविधात् । यूकापसर्पणेन  
त्वस्यशरीरवैरस्यमक्षिकोपदर्शने  
नशरीरमाधुर्यम् । लोहितपित्त  
सन्देहेतुकिन्धारिलोहितलोहित  
पित्तंवेतिस्वकाकभक्षणात्धारि  
लोहितमभक्षणाहोहितमित्यनुमा  
तव्यम्एवमन्यानप्यातुरशरीरग  
तान्रसाननुमिमीत । गन्धास्तुख  
लुसर्वशरीरगतानातुरस्यप्रकृतिवै  
कारिकान्घ्राणेनपरीक्षेतस्पर्शश्च  
पाणिनाप्रकृतिविकृतियुक्तमिति  
प्रत्यक्षतोऽनुमानैकदेशतश्चपरी  
क्षणमुक्तम् ॥ ७ ॥

और आतुरके शरीरमें वर्तमान रस-  
को तो निश्चयसे इंद्रियका विषय होने-

परभी अनुमानसेही जानै, क्योंकि इस-  
का ज्ञान प्रत्यक्षसे नहीं हो सकता  
तिससे आतुरसे पूछकरही आतुरके  
मुखरसको जानै, यूकाके अपसर्पणसे  
तो इसके मुख वैरस्यको मक्षिकाओंके  
समीप आनेसे शरीरकी मधुरताको  
लोहित पित्तके संदेहमें तो क्या धारि-  
लोहित है वा लोहित पित्त है था  
और काकके भक्षण करनेसे धारि लोहित  
का और न खानेसे लोहितका अनुमान  
करै, इसीप्रकार अन्यभी आतुरके शरी-  
रमें विद्यमान रसोंका अनुमान करै,  
गंधोंको तो निश्चयसे जो आतुरके शरी-  
रमें वर्तमान हैं उनकी घ्राणसे परीक्षा  
करै, और स्पर्शकी परीक्षा हाथसे करै  
कि प्रकृतिसे युक्त है वा विकारी है यह  
प्रत्यक्षसे और अनुमानके एक देशसे  
परीक्षा कही ॥ ७ ॥

इमेतुखलुअन्येप्येवमेवभूयोऽनुमा  
नज्ञेयाभवन्तिभावाः । तद्यथा,  
अग्निजरणशक्त्या, बलंव्यायामश  
क्त्या, श्रोत्रादीन्शब्दादिग्रहणेन,  
मनोऽर्थाव्यभिचारेण, विज्ञानं  
व्यवसायेन, रजःसङ्गेन, मोहमवि  
ज्ञानेन, क्रोधमभिद्रोहेण, शोकं दै  
न्येन, हर्षमामोदेन, प्रीतिं तोषेण  
भयंविषादेन धैर्यमविषादेन, वीर्यं  
मुत्साहेन, स्थानमविभ्रमेण, श्र

द्धामभिप्रायेण, मेधां ग्रहणेन, स  
ज्ञानामग्रहणेन, स्मृतिं स्मरणेन, हि  
यमपत्रपेण, शीलमनुशीलनेन, द्वेषं  
प्रतिषेधेन उपाधिमनुबन्धेन धृतिम  
लौल्येन, वश्यतां विधेयतया, वयो  
भाक्तिसात्म्यव्याधिसमुत्थानानि  
कालदेशोपशयवेदनाविशेषेण  
गूढलिङ्गं व्याधिमुपशयानुपशया  
भ्यांदोषप्रमाणविशेषमपचारवि  
शेषेण आयुषः क्षयमरिष्टैरुपस्थित  
श्रेयस्त्वं कल्याणाभिनिवेशेन अम  
लंसत्त्वमविकारेणेति । ग्रहण्या  
स्तुमृदुदारुणत्वं दुःस्वप्नदर्शनमभि  
प्रायंद्विष्टेष्टसुखदुःस्वानिचातुरपरि  
प्रश्नेनैव विद्यादिति ॥ ८ ॥

और ये अन्यभी भाव निश्चयसे  
अनुमानसे जानने योग्य होते हैं वे ऐसे  
हैं कि, जरणशक्तिसे अग्नि, व्यायाम  
शक्तिसे बल, शब्द आदिके ग्रहणसे  
श्रोत्र आदि अर्थके अव्यभिचारसे मन  
व्यवसायसे विज्ञान, संगसे रजोगुण  
अज्ञानसे मोह, अभिद्रोहसे क्रोध, दीन-  
तासे शोक, आनंदसे हर्ष, तोषसे प्रीति  
विषादसे भय अविषादसे धैर्य, उत्साहसे  
वीर्य, अविभ्रमसे अवस्थान अभिप्रायसे  
श्रद्धा, ग्रहणसे मेधा, नामके ग्रहणसे  
संज्ञा, स्मरणसे स्मृति, अपत्रपसे लज्जा,

अनुशीलनसे शील, निषेधसे द्वेष, अनु-  
बंधसे उपाधि अचंचलतासे धृति, विधे-  
यतासे वश्यता जानने योग्य है अवस्था  
भक्ति सात्म्य समुत्थान इनको काल देश  
उपशय वेदनाके विशेषसे गूढ लिंग  
व्याधिको उपशय अनुपशयोंसे, दोषके  
प्रमाण विशेषको अपचारके विशेषसे,  
अवस्थाके क्षयको अरिष्टोंसे प्राप्त हुए  
कल्याणको कल्याणमें मनके अभिनिवेप  
( आग्रह ) से अमल सत्वको अविकारसे  
जानै ग्रहणीके मृदु दारुणभावको दुःस्व  
प्रदर्शनको अभिप्रायको द्विष्टोंमें सुख-  
दुःखोंको आतुरको पृच्छकरही जानै॥८॥

भवन्तिचात्र ।

आप्ततश्चोपदेशेनप्रत्यक्षकरणेन  
चा अनुमानेन च व्याधीन्सम्यग्वि-  
द्याद्विचक्षणः ॥ ९ ॥

इसमें ये श्लोक हैं कि आप्तके उपदे-  
शसे प्रत्यक्ष करनेसे अनुमानसे बुद्धिमा-  
त्रमनुप्य व्याधियोंको भली प्रकार जानै॥

सर्वथासर्वमालोच्ययथासम्भवम्  
र्थवित् । अथाध्यवस्येत्तत्तर्धेच  
कार्येचतदनन्तरम् ॥ १० ॥

अर्थका ज्ञाता वैद्य यथा संभव सबको  
सर्वथा देखकर जो ज्ञान बुद्धिके प्रदीपसे  
प्रविष्ट न होयतो उसके अनंतर तत्त्वके  
विषय कार्यसे निश्चय करै ॥ १० ॥

कार्यतत्त्वविशेषज्ञःप्रतिपत्तौन

मुह्यति । अमूढःफलमाप्नोति यद्  
मोहनिमित्तजम् ॥ ११ ॥

क्योंकि कार्य तत्त्वमें जो विशेषका  
ज्ञाता है वह ज्ञानमें मोहको प्राप्त नहीं  
होता अमोहके निमित्तसे जो होता है  
उस फलको अमूढ प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

ज्ञानबुद्धिप्रदीपेनयोनविशतित्  
त्ववित् । आतुरस्यान्तरात्मानं  
नसरोगांश्चिकित्सति ॥ १२ ॥

ज्ञान, बुद्धि, रूप, दीपकसे जो तत्त्व  
का ज्ञाता आतुरके अंतरात्मा में प्रविष्ट  
नहीं होता है वह वैद्य रोगोंकी चिकित्सा  
नहीं कर सकता ॥ १२ ॥

सर्वरोगविशेषाणां त्रिविधं ज्ञानं  
ग्रहम् । यथाचोपदिशन्त्याप्ताः  
प्रत्यक्षं गृह्यते यथा ॥ १३ ॥

संपूर्ण रोगोंके विशेषोंका तीन प्रकार  
का ज्ञान संग्रह है जैसे आप्त उपदेश  
करते हैं और जैसे प्रत्यक्ष ग्रहण किया  
जाता है ॥ १३ ॥

ये यथाचानुमानेन ज्ञेयास्तांश्चात्यु-  
दारधीः । भावांश्चिरो गविज्ञाने  
विमाने मुनिरुक्तवान् ॥ १४ ॥

त्रिविधरोगविशेषविज्ञानीयं नाम  
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

और जो जैसे अनुमानसे जानने  
योग्य है उन सब भावोंको उदार बुद्धि  
मुनिने त्रिरोग विज्ञान विमानमें वर्णन  
किया ॥ १४ ॥

इति त्रिविधरोगविशेषविज्ञानीयं विमानं समाप्तम् ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

स्रोतोविमानम् ।

इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

इसके अनन्तर स्रोतोविमानका व्याख्यान करतेहैं कि

यावन्तः पुरुषे मूर्तिमन्तो भावविशेषास्तान् एवास्मिन् स्रोतसांप्रकारविशेषाः, सर्वे भावा हि पुरुषेनान्तरेण स्रोतांस्यभिनिवर्तन्ते क्षयवान् गच्छन्ति । स्रोतांसि खलु परिणाममापद्यमानानां धातूनामभिवाही निभवन्ति अयनार्थेन अपि चैकमहर्षयः स्रोतसामेव समुदयं पुरुषमिच्छन्ति सर्वगतत्वात् सर्वसरत्वाच्च दोषप्रकोपणप्रशमनानां न त्वेतदेवं यस्य सहि पुरुषः स्रोतांसि यच्च वहन्ति यच्च अवहन्ति यत्र चावस्थिता निसर्वतदन्यत्तेभ्यः ॥ १ ॥

जितने पुरुषमें मूर्तिमान् भाव विशेष हैं उतनेहीं स्रोतोंके प्रकार विशेष हैं पुरुषमें संपूर्ण भाव स्रोतोंके बिना नहीं वर्त सकते हैं और न नाशको प्राप्त होते हैं और यह निश्चय है कि परिणामको प्राप्त हुई धातुओंके अभिवाही स्रोत अयनके अर्थ होते हैं और कोई महर्षि तो स्रोतोंके समुदय ( उत्पत्ति ) कोही पुरुष मानते हैं दोषोंके कोप और प्रशमन सर्व

गत और सर्व सर हैं अर्थात् सब स्रोतोंमें हैं जिसके यह सब इस प्रकार नहीं वह पुरुष और जिसको स्रोत वहते हैं आवहन करते हैं और जिसमें अवस्थित ( टिके ) हैं वह सब उन स्रोतोंसे अन्य हैं ॥ १ ॥

अतिबहुत्वात् तु खलु केचिदपरि संख्येयानि आचक्षते स्रोतांसि, परिसंख्येयानि पुनरन्ये, तेषां स्रोतसां यथास्थानं कतिचित् प्रकारान्मूलतश्च प्रकोपविज्ञानतश्चानुव्याख्यास्यामः । ये भविष्यन्त्यलमनुक्तार्थज्ञानवते विज्ञाननायचाज्ञानाय, तद्यथा, प्राणोदकाक्षरस-रुधिर-मांस-मेदोऽस्थिमज्जाशुक्रमूत्र-पुरीषस्वेदवहानि वातपित्तश्लेष्मणां पुनः सर्वशरीरचराणां सर्वस्रोतांसि अयनभूतानि ॥ २ ॥

अत्यंत अधिक होनेसे निश्चयसे अपरिसंख्येय स्रोतोंको कोई कहते हैं, और कोई स्रोतोंको परि संख्येय ( गिनने योग्य ) कहते हैं, उन स्रोतोंके स्थान के अनुसार कितनेक प्रकारोंको मूलसे और प्रकोपके विज्ञानसे व्याख्यान करते हैं जो अनुक्त अर्थके ज्ञानवान् के विज्ञानके लिये और अज्ञानके लिये समर्थ होंगे वे ऐसे हैं कि प्राण, जल, अन्न, रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, शुक्र, मूत्र, पुरीष, स्वेद, इनको वहनेहारे

और शरीरमें विरेचनेहारे जो वात, पित्त, श्लेष्म हैं उनकेभी संपूर्ण स्रोत अयनभूत हैं ॥ २ ॥

तद्वदतीन्द्रियाणांपुनःसत्त्वादीनां केवलंचेतनावच्छरीरमयनभूतमधिष्ठानभूतश्च, तदेतत्स्रोतसांप्रकृतिभूतत्वात्नविकारैरुपसृज्यते शरीरम् । तत्रप्राणवहानांस्रोतसांहृदयंमूलंमहास्रोतश्च, प्रदुष्टानामिदंविशेषज्ञानंभवति, अतिसृष्टकुपितंसप्रतिबन्धंअल्पाल्पमभीक्ष्णवासशब्दशूलमुच्छ्वसन्तदृष्ट्वा प्राणवहान्यस्यस्रोतांसिप्रदुष्टानीतिविद्यात् ॥ ३ ॥

तिसीप्रकार अतीन्द्रिय सत्व आदिका केवल चेतनावाला शरीरही अयन भूतहै और अधिष्ठान रूपहै तिससे यह शरीर स्रोतोंका प्रकृतिभूत होनेसे विकारोंसे युक्त नहीं होता उनमें प्राण वह स्रोतोंका मूल हृदय है और महा स्रोतहै और प्रदुष्टोंका यह विशेष विज्ञानहै कि अतिसृष्ट ( उत्पत्तिके विपरीत ) कुपित और प्रतिबन्ध अल्प २ वा अभीक्ष्ण, स शब्द शूल हो उर्द्धश्वास हो ऐसे मनुष्यको देखकर यह जानै कि इसके प्राणवाहक स्रोत प्रदुष्ट हैं ॥ ३ ॥

उदकवहानांस्रोतसांतालुमूलंक्लोमच; प्रदुष्टानामिदंविज्ञानं, तद्यथा

जिह्वाताल्वोष्ठकण्ठक्लोमशोपंपिपासाश्चातिप्रवृद्धादृष्ट्वाउदकवहान्यस्यस्रोतांसिप्रदुष्टानीतिविद्यात् ४

उदक वाहक स्रोतोंके मूल तालु और क्लोमहैं और प्रदुष्टोंका विज्ञान यहहै कि जिह्वा तालु ओष्ठ कंठ क्लोम इनका शोषण और अति बढी पिपासाको देखकर यह जानले कि इसके उदकवाही स्रोत प्रदुष्टहैं ॥ ४ ॥

अन्नवहानांस्रोतसांआमाशयोमूलं वामश्चपार्श्वम्; प्रदुष्टानान्तुखलुष्पामिदंविशेषविज्ञानंभवति, तद्यथाअनन्नाभिलषणमरोचकाविपाकौछर्दिश्चदृष्ट्वाअन्नवहानिस्रोतांसिप्रदुष्टानीतिविद्यात् ॥ ५ ॥

अन्नवाहीस्रोतोंका मूल आमाशय और वाम पार्श्वहै और प्रदुष्ट तो इनका निश्चयसे यह, विशेष विज्ञान होताहै, वह ऐसे हैं कि, अन्नकी अभिलाषाका अभाव अरोचक अविपाक और छर्दि, इनको देखकर जानले कि इसके अन्नवाही स्रोत प्रदुष्टहैं ॥ ५ ॥

रसवहानांस्रोतसांहृदयंमूलंदशचधमन्यः, शोणितवहानांस्रोतसां यकृतमूलंप्लीहाच, मांसवहानाश्चस्रोतसांस्नायुमूलंत्वक्च, मज्जावहानांस्रोतसामस्थीनिमूलंसक्थ

यश्च, शुक्रवहानां स्रोतसां वृषणौ  
मूलं शेषश्च । प्रदुष्टानान्तरसादि  
स्रोतसां खलु एषां विज्ञानान्युक्ता  
निविधिविधाशीतिये अध्यायेयान्ये  
वहिधातूनां प्रदोषविज्ञानानितान्ये  
वयथास्वं धातुस्रोतसाम् ॥ ६ ॥

रसवाही स्रोतोंका मूल हृदय है और  
दशधमिनी है, शोणितवाहक स्रोतोंका  
मूल यकृत और प्लीहा है, मांसवाहक  
स्रोतोंका मूल स्नायु और त्वचा है मज्जा  
वाहक स्रोतोंका मूल अस्थि और स  
क्थि है, शुक्रवाहक स्रोतोंका मूल वृषण  
और लिंग है प्रदुष्ट तो रस आदि स्रोतोंके  
विज्ञानविधिविधा शितीय अध्यायमें कह  
आये क्योंकि जो धातुओंके प्रदोषके  
विज्ञान हैं वेही यथा योग्य धातु स्रोतोंके  
विज्ञान हैं ॥ ६ ॥

मूत्रवहानां स्रोतसां वस्तिर्मूलं वंश  
णौ च, खलु एषां प्रदुष्टानां वि  
ज्ञानमति सृष्टं प्रतिबद्धं कुपितम  
ल्पाल्पमभीक्ष्णं वा सशूलं मूत्रं मूत्र  
वन्तं दृष्ट्वा मूत्रवहाण्यस्य स्रोतांसि  
प्रदुष्टानीति विद्यात् ॥ ७ ॥

मूत्रवाहक स्रोतोंका मूल वस्ति है  
और वंश है, प्रदुष्टोंका विज्ञान यह है  
कि अतिसृष्ट प्रतिबद्ध कुपित अल्प २  
वारंवार शूल सहित मूत्र करते को देख-  
कर यह जानै कि, इसके मूत्रवाहक  
स्रोत प्रदुष्ट हैं ॥ ७ ॥

पुरीषवहानां स्रोतसां पक्वाशयो मूलं  
स्थूलगुदश्च, प्रदुष्टानां खलु एषामिदं  
विज्ञानं, कृच्छ्रेण अल्पाल्पं सशू-  
लमतिद्रवं कुपितमतिवृद्धं चोष  
विशन्तं दृष्ट्वा पुरीषवहाण्यस्य स्रो-  
तांसि प्रदुष्टानीति विद्यात् ॥ ८ ॥

पुरीष वाहक स्रोतोंका मूल पक्वाशय  
और स्थूल गुदा है, प्रदुष्टोंका विज्ञान  
यह है कि कष्टसे अल्प २ शूल सहित  
अति द्रव कुपित अत्यंत अधिक उपवेश  
करते हुये को देखकर यह जानै कि  
इसके पुरीषवाहक स्रोत प्रदुष्ट हैं ॥ ८ ॥

स्वेदवहानां स्रोतसां मेदो मूलं रोम  
कूपाश्च, प्रदुष्टानां खलु एषामिदं  
विज्ञानमस्वेदनमतिस्वेदनं पा-  
रुष्यमतिश्लक्ष्णतां परिदाहं लोभ  
हर्षश्च दृष्ट्वा स्वेदवहान्यस्य स्रोतांसि  
प्रदुष्टानीति विद्यात् ॥ ९ ॥

स्वेदवाहक स्रोतोंका मूल मेदा और  
रोमकूप हैं इन प्रदुष्टोंका विज्ञान यह  
निश्चित है कि स्वेदका न होना अति  
स्वेद परुषता अति श्लक्ष्णता परिदाह  
लोमहर्ष इनको देखकर यह जानै कि  
इसके स्वेदवाहक स्रोत प्रदुष्ट हैं ॥ ९ ॥

स्रोतांसि शिराधमन्योरसवाहिन्यो  
नाड्यः पन्थानो मार्गाः शरीरच्छि-  
द्राणि संवृता संवृतानि स्थानानि आ



शयाःआलयाःनिकेताश्चेतिशरी  
रधात्ववकाशानांलक्ष्यालक्ष्याणां  
नामानि ॥ १० ॥

स्रोत सिरा धमनी रसवाहिनी नाडी  
पंथा मार्ग शरीरके छिद्र संवृत और  
असंवृतस्थान आशय आलय निकेत  
ये शरीरकी धातुओंके जो लक्ष्य अलक्ष्य  
रूप अवकाश हैं उनके नाम हैं ॥ १० ॥

तेपांप्रकोपात्स्थानस्थाश्चैवमार्ग  
नाश्चैवशरीरधातवःप्रकोपमाप  
द्यन्ते ॥ ११ ॥

उनके प्रकोपसे स्थानमें टिकी और  
मार्ग गामिनी शरीरकी धातु प्रकोपको  
प्राप्त होती हैं ॥ ११ ॥

इतरेपांवांप्रकोपादितराणि १२ ॥

वा इतरोंके प्रकोपसे इतर कुपित  
होते हैं ॥ १२ ॥

स्रोतांसिस्रोतांस्येवधातवश्चधातू  
न्प्रदूषयन्ति ॥ १३ ॥

स्रोत स्रोतोंको और धातु धातुओं  
को प्रदूषित करते हैं ॥ १३ ॥

प्रदुष्टास्त्वेषांसर्वेषामेववातपित्त  
श्लेष्माणोदुष्टादूषयितारोभवन्ति  
दोषस्वभावादिति ॥ १४ ॥

प्रदुष्ट हुये, स्रोत धातु इन संपूर्णोंके  
भी वातपित्त श्लेष्मा दुष्ट होकर दूषित-  
कारी हो जातेहैं, क्योंकि दोष का यही  
स्वभावहै ॥ १४ ॥

भवतिचात्र ।

क्षयात्सन्धारणाद्रौक्ष्याद्व्यायामा  
त्क्षुधितस्यच । प्राणवाहीणिदु  
प्यन्तिस्रोतांप्यन्यैश्चदारुणैः १५

इसमें ये श्लोकहैं कि, क्षयसे संधा-  
रणसे रुक्षतासे व्यायामसे क्षुधासे अन्य  
दारुणरोगोंसे प्राणवाहकस्रोत दूषित  
हो जातेहैं ॥ १५ ॥

औष्ण्यादामाद्र्यात्पानादतिशु  
ष्कान्नसेवनात् । अम्बुवाहीनिदु  
प्यन्तितृपायाश्चातिपीडनात् १६

उष्णतासे आमसे भयसे पान अत्यंत  
शुष्क अन्नके सेवनसे तृष्णासे अत्यंत  
पीडासे जलवाहक स्रोत दूषित हो  
जातेहैं ॥ १६ ॥

अतिमात्रस्यचाकालेचाहितस्य  
चभोजनात् । अन्नवाहीनिदुप्य  
न्तिवैगुण्यात्पावकस्यच ॥ १७ ॥

अत्यंत और अकालके और अहित  
भोजनसे और अग्रिकी विगुणतासे अन्न  
वाहक स्रोत दूषित हो जातेहैं ॥ १७ ॥

गुरुशीतमतिस्निग्धमतिमात्रनिषे  
वणात् । रसवाहीनिदुप्यन्तिचि  
न्त्यानाश्चातिचिन्तनात् ॥ १८ ॥

गुरु शीतल अति स्निग्ध इनके  
अत्यंत सेवनसे और चिन्ताके योग्योंके  
अत्यंत चिन्तनसे रस वाहक स्रोत दूषित  
हो जातेहैं ॥ १८ ॥

विदाहीन्यन्नपानानिस्त्रिगोष्णा  
निद्रवाणिचं रक्तवाहीनिदुष्यन्ति  
भजताश्चातपानलौ ॥ १९ ॥

विदाही अन्नपान, स्निग्ध उष्ण द्रव  
आतप अग्नि इनका जो सेवन करतेहैं  
उनके रक्तवाहक स्रोत दूषित हो  
जातेहैं ॥ १९ ॥

अभिप्यन्दीनिभोज्यानिस्थूलानि  
चगुरुणिच । मांसवाहीनिदुष्य  
न्तिभुक्ताचस्वपतोदिवा ॥ २० ॥

अभिप्यंदी, स्थूल गुरु भोजनके  
कर्ताके और दिनमें शयन कर्ताके मांस  
वाहक स्रोत दूषित हो जातेहैं ॥ २० ॥

अव्यायामादिवास्वमान्मेध्याना  
श्चातिभक्षणात् । मेदोवाहीनि  
दुष्यन्तिवारुण्याश्चातिसेवनात् ॥ २१ ॥

व्यायामके न करनेसे दिनमें शयनसे  
मेध्य पदार्थोंके अत्यंत भक्षणसे वारुणी  
(मदिरा) के अत्यंत सेवनसे मेदो वाहक  
स्रोत दूषित हो जातेहैं ॥ २१ ॥

व्यायामादतिसंक्षोभादस्थामति  
चभक्षणात् । अस्थिवाहीनिदु  
ष्यन्तिवातलानाश्चसेवनात् ॥ २२ ॥

व्यायामसे अत्यंत संक्षोभसे अस्थि-  
योंके अत्यंत भक्षणसे वातलपदार्थोंके  
सेवनसे अस्थिवाहक स्रोत दूषित हो  
जातेहैं ॥ २२ ॥

उत्पेपादत्यभिप्यन्दादभिघातात्  
प्रपीडनात् । मज्जावाहीनिदुष्यन्ति  
विरुद्धानाश्चसेवनात् ॥ २३ ॥

मज्जाके पेशणसे अत्यंत अभिप्यंदसे  
अभिघातसे, प्रपीडनसे विरुद्धोंके  
सेवनसे मज्जावाहक स्रोत दूषित हो  
जाते हैं ॥ २३ ॥

अकालायोनिगमनान्निग्रहादति  
मैथुनाच्छुक्रवाहीणिदुष्यन्तिशस्त्र  
क्षाराग्निभिस्तथा ॥ २४ ॥

अकालमें और अयोनिमें गमनसे  
निग्रहसे अत्यंत मैथुनसे शस्त्र क्षार  
अग्निसे शुक्रवाहक स्रोत दूषित हो  
जाते हैं ॥ २४ ॥

मूत्रितोदकभक्षस्त्रीसेवनान्मूत्रनि  
ग्रहात् । मूत्रवाहीणिदुष्यन्तिक्षी  
णस्याथकृशस्यच ॥ २५ ॥

मूत्रकी शंकामें उदकके भक्षणसे  
स्त्रीके सेवनसे मूत्रके निग्रहसे क्षीणसे  
क्षतसे मूत्रवाहक स्रोत दूषित हो  
जाते हैं ॥ २५ ॥

विधारणादत्यशनादजीर्णाध्यशना  
त्तथा । वर्चोवहानिदुष्यन्तिदुर्ब  
लाग्नेःकृशस्यच ॥ २६ ॥

विधारणसे अतिभोजनसे अजीर्णमें  
अधिक भोजनसे दुर्बल अग्निसे कृशतासे  
मलवाहक स्रोत दूषित हो जाते  
हैं ॥ २६ ॥

व्यायामादतिसन्तापाच्छीतोष्णा  
क्रमसेवनात् । स्वेदवाहीनिदुप्यन्ति  
क्रोधशोकभयैस्तथा ॥ २७ ॥

व्यायामसे अतिसन्तापसे शीतल  
और उष्णके व्यतिक्रमसे सेवन करनेसे  
क्रोध शोक भयसे स्वेदवाहक स्रोत  
दूषित हो जाते हैं ॥ २७ ॥

आहारश्चविहारश्चयःस्यादोषगुणैः  
समः । धातुभिर्विगुणश्चापिस्रोत  
सांसप्रदूषकः ॥ २८ ॥

दोष और गुणोंसे समान जो आहार  
और विहार और धातुओंसे विगुण जो  
आहार विहार वह स्रोतोंको दूषितकारक  
होता है ॥ २८ ॥

अतिप्रवृत्तिःसङ्गोवाशिराणांग्रन्थ  
योऽपिवा । विमार्गगमनंवापिस्रो  
तसांदुष्टलक्षणम् ॥ २९ ॥

अति प्रवृत्ति वा संग और शिराओंकी  
ग्रन्थि वा विरुद्ध मार्गमें गमन यह दुष्ट  
स्रोतोंका लक्षण है ॥ २९ ॥

स्वधातुसमवर्णानिवृत्तस्थूलान्य  
णूनिच । स्रोतांसिदीर्घाण्याकृत्या  
प्रतानसदृशानिच ॥ ३० ॥

अपनी धातुओंके समान वर्णके वृत्त  
स्थूल और अणु दीर्घ प्रतानके समान  
स्रोतोंकी आकृति हो जाती है ॥ ३० ॥

प्राणोदकान्नवाहानांदुष्टानांश्वा  
सिकीक्रिया । कार्य्यातृष्णोपश

मनीतथैवामप्रदोषिकी ॥ ३१ ॥

प्राण उदक अन्नवाहक जो दुष्ट स्रोत  
हैं उनकी श्वासिकी, तृप्तोपशमनी और  
तैसेही आम प्रदोषिनी क्रिया (चिकित्सा)  
करनी अर्थात् श्वासकी शुद्धि तृप्तिकी  
अभाव आमनाशक चिकित्सा करनी ३१

विविधाशितर्पतीयेरसादीनांयदौ  
पथम् । दूषितस्रोतसांकुर्यात्त  
द्यथास्वमुपक्रमम् ॥ ३२ ॥

विविधाशितर्पतीयेरसादीनांयदौ  
आदिकी जो औषध हैं वही उपक्रम  
यथायोग्य रस आदि स्रोतों का करें ३२

मूत्रविट्स्वेदवाहानांचिकित्सामौ  
त्रकृच्छ्रिकी । तथातिसारिकी  
कार्य्यातथाज्वरचिकित्सिकी  
इति ॥ ३३ ॥

मूत्र मल स्वेदवाहक जो स्रोतहैं  
उनकी चिकित्सा मूत्र कृच्छ्रिकी और  
अतीसारकी और ज्वरकी करनी—  
इति ॥ ३३ ॥

तत्र श्लोकाः ।

त्रयोदशानांमूलानिस्रोतसांदुष्टल  
क्षणम् । सामान्यंनामपर्य्यायाः  
कोपनानिपरस्परम् ॥ ३४ ॥

उसमें ये श्लोक हैं कि त्रयोदश  
स्रोतोंके मूल और दुष्ट स्रोतोंके लक्षण  
सामान्य नाम पर्याय परस्पर कोष ॥ ३४ ॥

दोषहेतुः पृथक्त्वेन भेषजोद्देश एव  
च । स्रोतोविमाने निर्दिष्टस्तथा  
चादौ विनिश्चयः ॥ ३५ ॥

पृथक् २ दोषका हेतु, भेषजका  
उद्देश और तैसेही आदिमें विनिश्चय यह  
सब स्रोतोविमानमें दिखाया है ॥ ३५ ॥

केवलं विहितं यस्य शरीरं सर्वभा  
वतः । शरीराः सर्वरोगाश्च सक  
र्मसु न मुह्यति ॥ ३६ ॥

जिसको सर्व भावसे केवल शरीर  
और शरीरके संपूर्ण रोग विदित हैं वह सब  
कर्मोंमें मोहको प्राप्त नहीं होता ॥ ३६ ॥

इति स्रोतोविमानं समाप्तम् ।

पष्ठोऽध्यायः ।

रोगानीकम् ।

इसके अनंतर रोगानीकविमानका  
व्याख्यान करते हैं कि—

द्वे रोगानीके भवतः प्रभावभेदेन सा  
ध्यश्चासाध्यश्च, द्वे रोगानीके बल  
भेदेन मृदुचदारुणश्च, द्वे रोगानीके  
अधिष्ठानभेदेन मनोऽधिष्ठानं शरी  
राधिष्ठानश्च, रोगानीके द्वे निमित्त  
भेदेन स्वधातुवैषम्यनिमित्तश्चाग  
न्तुनिमित्तश्च, द्वे रोगानीके आश  
यभेदेन आमाशयसमुत्थश्च पका  
शयसमुत्थश्च ॥ १ ॥

दो रोगोंकी सेना प्रभावके भेदसे  
होती हैं साध्य और असाध्य, दो रोगोंकी  
सेना बलके भेदसे है मृदु और दारुण  
दो रोगोंकी सेना अधिष्ठानके भेदसे  
होती है मन अधिष्ठान, शरीराधिष्ठान,  
दो रोगोंकी सेना निमित्त भेदसे होती  
है अपनी धातुओंकी विषमताके  
निमित्तसे और आगन्तु निमित्तसे, दो  
रोगोंकी सेना आशय भेदसे होती है  
आमाशयमें उत्पन्न और पकाशयमें  
उत्पन्न ॥ १ ॥

एवमेतत्प्रभावबलाधिष्ठाननिमि  
त्ताशयद्वैधंसमुद्भेदप्रकृत्यन्तरेणाभि  
यमानमथवासन्धीयमानं स्यादेक  
त्वं वा बहुत्वं वा, एकत्वं तावदेक  
मेवरोगानीकिं दुःखसामान्यात्,  
बहुत्वं तु दशरोगानीकानि प्रभाव  
भेदादीनि, बहुत्वमपि संख्येयं वा  
स्यादसंख्येयं, संख्येयं यथोक्तम्  
अष्टोदरीये, असंख्येयं यथामहति  
रोगाध्यायेरुग्वर्णसमुत्थानादीना  
मसंख्येयत्वात् ॥ २ ॥

इस प्रकार प्रभाव बल अधिष्ठान  
निमित्त आशय इनका द्वैध समुद्भेद, प्रकृ  
त्यन्तर भेदको प्राप्त हुआ अथवा संधी  
यमान हुआ एकत्वको वा बहुत्वको प्राप्त  
होता है एकत्वतो प्रथम यह है कि एकही  
रोगानीक है दुःख सामान्यरूपसे है

बहुत्वतो प्रभाव भेद आदिसे दशरोगोंकी अनीक है बहुत्वभी संख्येय ( गिनने योग्य ) वा असंख्येय होता है संख्येयतो यथोक्त अष्टोदरीय अध्यायमें और असंख्येय जैसे महति रोगाध्यायमें है क्योंकि रोग वर्ण समुत्थान आदि असंख्येय हैं २

नचसंख्येयाग्रेषुभेदप्रकृत्यन्तरीये ष्वविगीतिरित्यतो न दोषवती स्यादत्रकाचित्प्रतिज्ञानचाविगीतिरित्यतः स्याददोषवद्वेत्ताहिभेद्यमन्यथाभिनत्त्यन्यथापुरस्ताद्भिन्नं भेदप्रकृत्यन्तरेण भिन्दन् भेदसंख्यां विशेषमापादयत्यनेकधानचपूर्वं भेदाग्रमुपहन्ति ॥ ३ ॥

और संख्येय है अग्र जिनमें ऐसे भेद प्रकृत्यन्तरीयोंमें अविगीति ( विरोध ) नहीं इससे यह नहीं कि यहां कोई प्रतिज्ञा दोषवती हो जायगी, अविगीति नहीं इससे अदोषवान् भेद हैं भेदा जो है भेदनके योग्यको अन्यथा भेदन करता है अन्यथा पुरस्तात् भिन्नको भेदकी अन्य प्रकृतिसे भेदन करता हुआ भेदकी संख्याओंके विशेषको अनेक प्रकारका करता है और पहिले भेदाग्रको नष्ट नहीं करता ॥ ३ ॥

समानायामपि खलु भेदप्रकृतौ प्रकृतानुपयोगान्तरमपेक्ष्य सन्ति ह्यर्था न्तराणि समानशब्दाभिहितानि ।

समानो हि रोगशब्दो दोषेषु व्याधिषु च वर्तते । दोषापि रोगशब्दमातङ्कशब्दं यक्ष्मशब्दं दोषप्रकृतिशब्दं विकारशब्दश्च लभन्ते । तत्र दोषेषु चैव व्याधिषु च रोगशब्दः समानः शेषेषु तु विशेषवान् ॥ ४ ॥

और निश्चयसे समानभी भेद प्रकृतिमें प्रकृतके अनुपयोगान्तरकी अपेक्षासे अर्थात्तरभी हैं जो समान शब्दसे कहे जाते हैं, क्योंकि समान रोग शब्द दोष और व्याधियोंमें है, दोषभी रोग शब्द आतंकशब्द यक्ष्मशब्द दोष प्रकृतिशब्द विकारशब्दकी प्राप्त होते हैं उनमें दोष और व्याधियोंमें रोग शब्द समान है और शेषोंमें विशेषवान् है ॥ ४ ॥

तत्र व्याधयोऽपरि संख्येया भवन्त्यतिबहुत्वाद् दोषास्तु परि संख्येया अनतिबहुत्वात् तस्माद्यथोचितं विकारा उदाहरणार्थं अनवशेषेण च दोषा व्याख्यास्यन्ते ॥ ५ ॥

उनमें व्याधि अपरिसंख्येय होती हैं क्योंकि वे अत्यंत बहुत हैं, दोष तो परिसंख्येय हैं क्योंकि वे अत्यंत बहुत नहीं हैं, तिससे यथोचित विकारोंका और उदाहरणके लिये शेषको न छोड़कर दोषोंका व्याख्यान करते हैं ॥ ५ ॥  
रजस्तमश्च मानसौ दोषौ, तयोर्वि

काराःकामक्रोधलोभमोहेर्ष्यामा  
नमदशोकचित्तोद्वेगभयहर्षादयः६

कि रजोगुण और तमोगुण ये दो  
मानस दोष हैं, उनके विकार काम  
क्रोध लोभ मोह ईर्ष्या मान मद शोक  
चित्तोद्वेग, भय, हर्ष आदि हैं ॥ ६ ॥

वातपित्तश्लेष्माणस्तुशारीरादोषा  
स्तेषामपिचविकाराज्वरातीसार  
शोथशोपमेहकुष्ठादय इति ॥ ७ ॥

वात पित्त श्लेष्मा ये शरीरके दोष हैं  
उनकेभी विकार ज्वर अतीसार शोफ  
शोप, मेह, कुष्ठ आदिहैं ॥ ७ ॥

दोषाश्चकेवलव्याख्याताः, वि  
कारैकदेशश्च ॥ ८ ॥

दोषभी केवल कहेहैं विकारका एक  
देशभी कहा है ॥ ८ ॥

तत्रतुल्यत्वेपां द्वयानामपिदोषाणां  
त्रिविधप्रकोपणमसात्म्येन्द्रियार्थ  
संयोगःप्रज्ञापराधःपरिणामश्चेति।  
प्रकुपितास्तुप्रकोपणविशेषात् ।

द्रव्यविशेषाच्चविकारविशेषान  
भिनिर्वर्तयन्तिअपरिसंख्येयास्ते  
विकाराःपरस्परमनुवर्तमानाः ।

कदाचिदनुबन्धन्तिकामादयोज्वरा  
दयश्च । नियतस्त्वनुबन्धोरजस्त  
मसोःपरस्परंनद्वयजस्कन्तमः॥ ९ ॥

उनमें निश्चयसे इन दोनोंभी दोषोंका  
तीन प्रकारका प्रकोपन है कि असात्म्य  
इन्द्रिय अर्थका संयोग प्रज्ञापराध और  
परिणाम प्रकुपित हुए तो प्रकोपनके  
विशेषसे और द्रव्यके विशेषसे विचार  
विशेषोंको पैदा करतेहैं वे विकार अपरि  
संख्येयहैं वे परस्पर उत्पन्न हुए कदाचित्  
काम आदि और ज्वर आदि अनुबन्धको  
प्राप्त हो जातेहैं अर्थात् मिल जातेहैं नियत  
अनुबन्धतो रजोगुण तमोगुण का परस्पर  
है क्योंकि विनारजो गुणके तमोगुण प्रायः  
नहीं होताहै ॥ ९ ॥

प्रायःशरीरदोषाणामेकाधिष्ठाय  
मानानांसन्निपातःसंसर्गोवासमान  
गुणत्वादोषाहिदूषणैःसमानाः १०

एक अधिष्ठानमें वर्तमान शरीरके  
दोषोंका सन्निपात वा समान गुण होनेसे  
संसर्ग होताहै क्योंकि दोष दूषणोंके  
समान होतेहैं ॥ १० ॥

तत्रानुबन्ध्यानुबन्धकतोविशेषः,  
स्वतन्त्रोव्यक्तलिङ्गोयथोक्तसमु  
त्थानप्रशमोभवत्यनुबन्ध्यस्तद्वि  
परीतलक्षणोऽनुबन्धः ॥ ११ ॥

उनमें अनुबन्धके योग्योंके अनुबन्ध  
विशेष समान होतेहैं स्वतन्त्रमें व्यक्तलिङ्ग  
यथोक्त उत्पत्ति और शांति जोहैं वह  
अनुबन्धके योग्यहै और विपरीत लक्षणक  
अनुबन्ध होताहै ॥ ११ ॥

अनुबन्ध्यानुबन्धलक्षणसमन्वि  
तास्तत्रयदिदोषाभवन्तितंत्रिकं  
सन्निपातमाचक्षतेद्वयंवासंसर्गम् ।  
अनुबन्ध्यानुबन्धविशेषकृतस्तु  
बहुविधोदोषभेदः । एवमेपसंज्ञां  
प्रकृतोभिषजांदोषेषुचव्याधिपुच  
नानाप्रकृतिविशेषाद्व्यूहः ॥ १२ ॥

यदि उसमें दोष अनुबन्धके लक्षणसे  
युक्त होंय तो तंत्रिक सन्निपात उसको  
कहते हैं वा द्वयसंसर्ग कहते हैं और  
अनुबन्ध अनुबन्ध विशेषका किया तो  
दोषोंका भेद बहुत प्रकारका है इस  
प्रकार यह संज्ञाओंके प्रकरणसे वैद्योंका  
दोषोंमें और व्याधियोंमें नाना प्रकृति-  
योंके विशेषसे व्यूह ( रचना विशेष )  
है ॥ १२ ॥

अग्निपुतशरीरेषुचतुर्विधोविशेषो  
बलभेदेन । तद्यथा,—तीक्ष्णोऽ  
मन्दःसमोविषमइति । तत्रती  
क्ष्णोऽग्निःसर्वापचारसहस्तद्विप  
रीतलक्षणोमन्दः । समस्तुखलु  
अपचारतःविकृतिमापयतेअनप  
चारतःप्रकृताववतिष्ठते । समल  
क्षणविपरीतलक्षणस्तुविषयइत्ये  
तेचतुर्विधाअग्नयश्चतुर्विधानामेव  
पुरुषाणाम् ॥ १३ ॥

शरीरकी अग्नियोंमें तो बलके भेदसे  
चार प्रकारका विशेषहै वह ऐसेहैं कि  
तीक्ष्ण मंद सम विषम, उनमें तीक्ष्ण  
अग्नि संपूर्ण अपचारोंको सह सकतीहै  
उससे विपरीत लक्षणकी मंद होतीहै,  
समअग्नि तो अपचार ( अपथ्य )  
करनेसे विकारको प्राप्त हो जातीहै और  
अपचारके न करनेसे प्रकृतिमें टिकतीहै  
समके लक्षणसे जो विपरीत लक्षणहै वह  
विषमहै ये चार प्रकारकी अग्नि चार  
प्रकारकेही पुरुषोंको होती हैं ॥ १३ ॥

तत्रसमवातपित्तश्लेष्मणांप्रकृति  
स्थानांसमाभवन्तिअग्रयः । वात  
लानान्तुवाताभिभूतेऽग्न्यधिष्ठा  
नेविषमाभवन्तिअग्रयः । पित्त  
लानान्तुपित्ताभिभूतेऽग्न्यधिष्ठा  
नेतीक्ष्णाभवन्तिअग्रयःश्लेष्मला  
नान्तुश्लेष्माभिभूतेह्यग्न्यधिष्ठाने  
मन्दाभवन्तिअग्रयः । तत्रकेचि  
दाहुर्नसमवातपित्तश्लेष्माणोजन्त  
वःसन्तिविषमाहारोपयोगित्वा  
न्मनुष्याणाम्,तस्माच्चेचिद्वात  
प्रकृतयः केचित्पित्तप्रकृतयः  
केचित्पुनःश्लेष्मप्रकृतयोभवन्ती  
ति । तच्चानुपपन्नंकस्मात् का  
रणात्समवातपित्तश्लेष्माणंह्यरो  
गमिच्छन्तिभिषजः । प्रकृति

श्वारोग्यम्; आरोग्यार्थाचक्षेपज  
प्रवृत्तिः सा चेष्टारूपा, तस्माद्भवन्ति  
समवातपित्तश्लेष्माणः । नतुखलुस  
न्ति वातप्रकृतयः पित्तप्रकृतयः  
श्लेष्मप्रकृतयो वातस्य तस्य किल  
दोषस्य हि अधिकभावात् सा सा  
दोषप्रकृतिरुच्यते मनुष्याणाम् ॥ १४ ॥

उनमें वात पित्त श्लेष्मा जो मनुष्यों  
उनके प्रकृतिमें स्थित होनेसे समान  
अग्नि होती है और जो वातलहें उनके  
वातसे अभिभूत अग्निके अधिष्ठानमें अग्नि  
विपम हो जाती है उसमें कोई यह कहते हैं  
कि सम हैं वात पित्त श्लेष्मा जिनके ऐसे  
जंतु नहीं हैं क्योंकि मनुष्य विपम आहार-  
के उपयोगी हैं, तिससे कोई वात प्रकृति  
हैं कोई पित्त प्रकृति हैं और कोई श्लेष्म  
प्रकृति होते हैं और ऐसा होना अनुप-  
पन्न है तिसकारणसे जिनके वात पित्त  
कफ समान हैं उनको वैद्य अरोग चाहते हैं  
और प्रकृति आरोग्य है और आरोग्यके  
लिये भेषजकी प्रवृत्ति है वह प्रकृति चेष्टा-  
रूप है तिससे समान हैं वात पित्त कफ  
जिनके ऐसे ही सब हैं और केवल वात  
प्रकृति पित्त प्रकृति कफ प्रकृति कोई भी  
नहीं है तिस २ दोषके अधिक होनेसे  
वही २ दोषकी प्रकृति मनुष्योंकी कही  
जाती है ॥ १४ ॥

न च विकृतेषु दोषेषु प्रकृतिस्थत्वमु  
पपद्यते तस्मान्नैताः प्रकृतयः सन्ति

सन्ति नुखलु वातलाः पित्तलाः श्ले  
ष्मलाश्च अप्रकृतिस्थास्तु ते ज्ञेयाः ॥

और दोषोंके विकृत होनेपर प्रकृति-  
स्थ है यह नहीं कह सकते तिससे ये  
प्रकृति नहीं होती हैं और निश्चयसे  
वातल पित्तल श्लेष्मल अप्रकृतिमें स्थित हैं  
वे जानने योग्य हैं ॥ १५ ॥

तेषां नुखलु चतुर्विधानां पुरुषाणां  
चत्वार्य्यन्नप्रणिधानानि श्रेयस्करा  
णि । तत्र समसर्वधातूनां सर्वाका  
रसममधिकदोषाणान्तु त्रयाणां  
यथास्वं दोषाधिक्यमभिर्माक्ष्य  
दोषप्रतिकूलयोगीनित्रीणि अन्नप्र  
णिधानानि श्रेयस्कराणि यावदग्नेः  
समीभावात्, समेतु सममेव तु कार्प्य  
मेवं चेष्टाभेजप्रयोगाश्चापरे, तद्वि  
स्तरेणानुव्याख्यास्यन्ते । त्रयस्तु  
पुरुषा भवन्त्यातुरास्ते तु अनातुरा  
स्तन्त्रान्तरीयाणां भिषजाम् । त  
यथा, वातलः श्लेष्मलः पित्तल इति ।

और वे जो चार प्रकारके पुरुष हैं  
उनके चार अन्न प्रणिधान कल्याणकारी  
होते हैं उनमें समान जिनकी सब धातु हैं  
और सर्व आकारसे अत्यंत अधिक  
जिनके दोष हैं उन तीनों दोषवानोंके  
यथा योग्य दोषकी अधिकताको देखकर  
दोषके प्रतिकूल योगी जो तीन अन्नके



प्रणिधान(आस्थापन) वे अग्रिके सम भाव पर्यंत कल्याणकारी होतेहैं सम अग्रिमेंतो समहीं करना, इसी प्रकार अपरभी भेषज प्रयोग इष्टहैं उनका विस्तारसे अनुव्याख्यान करेंगे, तीन पुरुष तो आतुर होतेहैं और वे तीनों अन्य तंत्रके भिषजोंने अनातुर कहेहैं वे ऐसेहैं कि वातल श्लेष्मल पित्तल ॥ १६ ॥

तेषांविशेषविज्ञानंवातलस्यवात  
निमित्ताःपित्तलस्यपित्तनिमित्ताः  
श्लेष्मलस्यश्लेष्मनिमित्ताव्याधयः  
प्रायेणबलवन्तश्च ॥ १७ ॥

उनका विशेष विज्ञान यहहै वातलके वातनिमित्त, पित्तलके पित्तनिमित्त श्लेष्मलके श्लेष्मनिमित्त व्याधि प्रायः होतीहैं और बलवान् होतीहैं ॥ १७ ॥

तत्रवातलस्यप्रकोपणोक्तान्यासे  
वमानस्यक्षिप्रंवातःप्रकोपमापद्यते  
नतथेतरो ॥ १८ ॥

उनमें जो वातल पुरुष वातके प्रकोपनसे अन्त्यका सेवन नहीं करताहै उसकी वात जैसे शीघ्रही प्रकोपको प्राप्त हो जातीहै और तैसे, कफ पित्त कुपित नहीं होतेहैं ॥ १८ ॥

सतस्यप्रकोपमापन्नोयथोक्तैर्वि  
कारैःशरीरमुपतपतिबलवर्णसुखा  
युषामुपधाताय ॥ १९ ॥

वह वातके प्रकोपको प्राप्त हुआ यथोक्त विकारोंसे शरीरको अधिक तपाताहै बलवर्ण सुख आयु इनके उपधातके लिये होताहै १९ ॥

तस्यावजयनंस्नेहस्वेदौविधियुक्तौ  
मृदूनिचसंशोधनानिस्नेहोष्णमधु  
राम्ललवणयुक्तानितद्वदंयवहा  
र्याण्युपनाहनोपवेष्टनोन्मर्दन-प  
रिषेकावगाहनसंवाहनावपीडन  
वित्रासनविस्मापनविस्मारणानि  
सुरासवविधानंस्नेहाश्रुअनेकयो  
नयोदीपनीयपाचनीयावातहरवि  
रेचनीयोपहिताःशतपाकाःसह  
स्रपाकाःसर्वशःप्रयोगार्थावस्तयो  
वस्तिनियमःसुखशीलताचेति २०

उसकी जय ( नाश ) विधिसे स्नेह स्वेदहैं और मृदु संशोधनहैं और तिसी प्रकार स्नेह उष्ण मधुर अम्ल लवण युक्त भोजनभीहैं और उपनाहन उपवेष्टन उन्मर्दन परिषेक अवगाहन संवाहन अवपीडन वित्रासन विस्मापन विस्मारण और सुरासवका विधान और स्नेहहै और अनेक प्रकारके दीपनीय पाचनीयभी वातहर विरेचनीयसे युक्तहैं शतपाक और सहस्रपाक जो संपूर्ण प्रयोगार्थ हैं वे येहैं, वस्ति नियम और सुख शीलताहै ये सब वातलके उपचारहैं इति ॥ २० ॥

पित्तलस्यापिपित्तप्रकोपणोक्ता

न्यासेवमानस्यक्षिप्रं पित्तं प्रकोप  
मापद्यते, तथानेतरौ ॥ २१ ॥

और पित्तलकेभी पित्तके प्रकोपसे  
अन्यका सेवन न करनेसे जैसे शीघ्रही  
पित्त प्रकोपको प्राप्त होताहै तैसे वात  
कफ कुपित नहीं होते ॥ २१ ॥

तदस्य प्रकोपमापन्नं यथोक्तैर्विका  
रैः शरीरमुपतपति वलवर्णमुखायु  
पामुपघाताय ॥ २२ ॥

प्रकोपको प्राप्त हुआ वह इसके यथोक्त  
विकारोंसे शरीरको दुःख देताहै और  
वल वर्ण मुख आयु इनको नष्ट करताहै ॥ २२ ॥

तस्यावजयनं सर्पिष्पानं सर्पिषा च  
स्नेहनमधश्च दोषहरणं मधुरतिक्तक  
पायशीतानाञ्चौषधानामभ्यवहा  
र्याणामुपयोगो मृदुमधुरसुरभिशी  
तहृद्यानां गन्धानाञ्चोपसेवामुक्ता  
मणिहारवलीनाञ्च पवनशिशिर  
वारिसंस्थितानां धारणमुरसाक्षणे  
क्षणे सक्चन्दनप्रियङ्गुकालीय  
मृणालशीतवातवारिभिरुत्पलकु  
मुदकोकनदसौगन्धिकपद्मानुग  
तैश्च वारिभिरभिप्रोक्षणं श्रुतिसुख  
मृदुमधुरमनोऽनुगानाञ्च गीतवा  
दित्राणां श्रवणञ्चाभ्युदयानां सुहृ  
द्भिश्च संयोगः संयोगश्च दृष्टाभिः स्त्री

भिः शीतोपहितांशुकस्रग्धारिणी  
भिर्निशाकरांशुशीतप्रवातहर्म्य  
वासः शैलान्तरपुलिनशिशिरसद  
नवसनव्यजनपवनानां सेवारम्या  
णाञ्चोपवनानां सुखशिशिरसुरभि  
मारुतोपवातानामुपसेवनं सेवनञ्च  
नलिनोत्पलपद्मकुमुदसौगन्धिकं  
पुण्डरीकशतपत्रहस्तानां सौम्या  
नाञ्च सर्वभावानामिति ॥ २३ ॥

उसका जय घीका पीनाहै घीसे स्नेह-  
न है और नीचेके दोषोंका हरणहै और  
मधुर तिक्त कषाय शीतल जो औषध  
और भोजनहैं उनके उपयोगहै और  
मृदु मधुर सुरभि शीतल हृदयको  
प्रिय गंधोंका सेवनहै और मुक्ता मणि  
हारोंकी पंक्ति जो वायु शिशिर जलमें  
स्थितहैं उनका छातीपर धारणहै और  
क्षण २ में मुख्य चंदन प्रियंगु अगर  
मृणाल शीतल जलोंसे उत्पल कोकनद  
सुगंधकेपद्म इनको मिलाकर प्रोक्षणहै  
और कर्णोंमें सुखदायी मृदु मधुर मनके  
अनुकूल गीत वादित्रोंका श्रवणहै, अभ्यु-  
दय और मित्रोंका संयोग और उन इष्ट  
स्त्रियोंका संयोगहै जो शीतल किये वस्त्र  
और मालाओंको धारणकर रही हों  
और चंद्रमाकी किरण शीतल प्रवाह  
हर्म्य ( महल ) का वासहै और पर्व-  
तोंका मध्य, नदीका तट, शीतल स्थान  
वस्त्र व्यजन पवन इनकी सेवा और

रमणीक उपवनोंका सुखदायी शीतल  
सुरभि मारुत उपवात इनका उपसेवन  
और नलिन उत्पल पद्म कुमुद सौगंधिक  
पुंडरीक शतपत्र जिनके हाथमें हैं ऐसे  
सौम्य संपूर्ण भावोंका, सेवन, हितहै  
इति ॥ २३ ॥

श्लेष्मलस्यापिश्लेष्मप्रकोपणोक्ता  
न्यासेवमानस्यक्षिप्रंश्लेष्माप्रको  
पमापद्यते, नतथेतरोदोषौ ॥ २४ ॥

श्लेष्मलकेभी श्लेष्मके प्रकोपनसे  
अन्यका सेवन न करनेसे जैसे शीघ्रही  
श्लेष्मा प्रकोपको प्राप्त होताहै तैसे वात  
कफ नहीं होते ॥ २४ ॥

तदस्यप्रकोपमापन्नोयथोक्तैर्विका  
रैःशरीरमुपतपतिवलवर्णसुखायु  
षामुपधाताय ॥ २५ ॥

उसके प्रकोपको प्राप्त हुआ वह  
यथोक्त विकारोंसे शरीरकी तपाताहै  
और बल वर्ण सुख आयु इनको नष्ट  
करताहै ॥ २५ ॥

तस्यावजयनंविधियुक्तानितीक्ष्णो  
ष्णानिसंशोधनानिरूक्षप्रायाणि  
चाभ्यवहाय्याणिकटुतिक्तकपा  
योपहितानितथैवधावनलङ्घनपुव  
नपरिसरणजागरणानियुद्धव्यवा  
यव्यायामोन्मर्दनस्नानोत्सादनानि  
विशेषतस्तीक्ष्णानां दीर्घकालस्थि  
तानांमद्यानामुपयोगःसर्वशश्चोप

वासस्तथोष्णवासःसधूमपानःसुख  
प्रतिषेधश्चसुखार्थमेवेति ॥ २६ ॥

उसका अवजयन यह है कि विधि-  
से युक्त तीक्ष्ण उष्ण संशोधन है और  
प्रायः रूक्ष भोजन वे हैं जो कटु तिक्त  
कपायसे युक्त हों तिसी प्रकार धावन  
लंघन प्लवन ( तैरना ) परिसरण जाग-  
रणहैं युद्ध व्यवसाय व्यायाम उन्मर्दन  
स्नान आच्छादन हैं और विशेषकर  
तीक्ष्ण और बहुतकालकी मदिराओंका  
उपयोग है और सर्वथा उपवास और  
तैसेही उष्णवास और धूमपान और  
सुखके लिये सुखका निषेध है-इति २६ ॥

भवतिचात्र । सर्वरोगविशेषज्ञः

सर्वकार्यविशेषवित् । सर्वभेष

जतत्त्वज्ञोराज्ञःप्राणपतिर्भवेत् २७

इसमें यह श्लोक है कि सब रोगोंके  
विशेषका ज्ञाता और सब कार्योंके विशे-  
षका वेत्ता और संपूर्ण भेषजोंके तत्त्वोंका  
ज्ञाता वैद्य राजाके प्राणोंका रक्षक होता  
है इति ॥ २७ ॥

तत्रश्लोकाः ।

प्रकृत्यन्तरभेदेनरोगानीकविक  
ल्पनम् । परस्पराविरोधश्चसामा  
न्यरोगदोषयोः ॥ २८ ॥

उसमें ये श्लोक हैं कि, भिन्न प्रकृति-  
के भेदसे रोगोंकी सेनाका विकल्प,  
परस्पर अविरोध और रोग और दोषों-  
की समानता ॥ २८ ॥

दोषसंख्याविकाराणामेकदोषप्र  
कोपणम् । जरणप्रतिचिन्ताच  
कायाग्नेर्धुक्षणानिच ॥ २९ ॥

दोषोंकी संख्या विकारोंमें एक दोष-  
का प्रकोप, जरण और प्रतिचिन्ता का-  
याग्निके धुक्षण ॥ २९ ॥

नराणां वातलादीनां प्रकृतिस्थापना  
निच । रोगानीके विमानेऽस्मिन्  
व्याहृतानिमहर्षिणा ॥ ३० ॥

और वातल आदि मनुष्योंकी  
प्रकृतिका स्थापन ये सब महर्षिने इस  
रोगानीक विमानमें कहे ॥ ३० ॥

इति रोगानीक विमानं समाप्तम् ॥ ६ ॥

**सप्तमोऽध्यायः ।**

**व्याधितरूपीयम् ।**

इसके अनंतर व्याधिरूपीय विमान-  
का व्याख्यान करते हैं कि—

द्वौ पुरुषौ व्याधितरूपौ भवतः, तद्य  
था;—गुरुव्याधित एकः सत्त्वबलश  
रीरसम्पदुपेतत्वाल्लघुव्याधित इव  
दृश्यते । लघुव्याधितोऽपरः सत्त्वा  
दीनामधमत्वाद्गुरुव्याधित इव दृ  
श्यते ॥ १ ॥

दो पुरुष व्याधिरूप होते हैं वे  
ऐसे हैं कि एक गुरु व्याधिसे युक्त  
होकर सत्व बल शरीरकी संपदा इनसे  
युक्त होनेसे लघु व्याधिमान्के समान  
दीखें, दूसरा लघु व्याधिसे युक्त होकर

सत्त्व आदिकोंके अधम होनेसे गुरु  
व्याधिमान्के समान दीखें ॥ १ ॥

तयोरकुशलाः केवलंचक्षुषैवरूपं  
दृष्ट्वा व्यवस्यन्तो व्याधिगुरुलाघवे  
विप्रतिपद्यन्ते । नहि ज्ञानावयवेन  
कृत्स्ने ज्ञेये ज्ञानमुत्पद्यते ॥ २ ॥

अकुशल वैद्य उनके चक्षुसेही रूप-  
को देखकर विचार करते हुये व्याधिके  
गुरु लाघवमें विवाद करते हैं क्योंकि  
ज्ञानके एक अंगसे संपूर्ण ज्ञेयमें ज्ञान  
नहीं हुआ करता ॥ २ ॥

विप्रतिपन्नास्तु खलुरोगज्ञाने उपक्र  
मयुक्तिज्ञाने च अपि विप्रतिपद्यन्ते ।

ते यदा गुरुव्याधितं लघुव्याधितरूप-  
मासादयन्ति तदा तमल्पदोषं म-  
त्वासंशोधनकालेऽस्मै मृदुसंशोध-  
नं प्रयच्छन्तो भूय एवास्य दोषमुदी-  
रयन्ति । यदा तु लघुव्याधितं गुरु-  
व्याधितरूपमासादयन्ति तं महा-  
दोषं मत्वासंशोधनकालेऽस्मै तीक्ष्णं  
संशोधनं प्रयच्छन्तो दोषानतिनि-  
र्हत्य शरीरमस्य क्षिण्वन्ति ॥ ३ ॥

विवादी तो निश्चयसे रोग ज्ञानके  
विषे और उपक्रम युक्तिके ज्ञानमें भी  
विवाद करते हैं वे जब गुरु व्याधिमान्  
को लघु व्याधिरूप निश्चय करते हैं  
तब उसको अल्प दोष मानकर संशो-

धनके समयमें उसको मृदु संशोधन देते हुये पुनःभी उसके दोषकोही बढ़ाते हैं और जब लघु व्याधिमानको गुरु व्याधिमानका निश्चय करते हैं तब उसको महादोषी मानकर संशोधनके समय तीक्ष्ण संशोधन देते हुये दोषोंको अत्यंत नष्ट करके इसके शरीरको क्षीण कर देते हैं ॥ ३ ॥

एवमवयवेनज्ञानस्यकृत्स्नेज्ञेज्ञानमितिमन्यमानाःस्खलन्ति,विदितवेदितव्यास्तुभिषजःसर्वसर्वथा यथासम्भवंपरीक्ष्यंपरीक्ष्याध्यवस्यन्तो न कचनविप्रतिपद्यन्ते,यथेष्टमर्थमभिनिर्वर्तयन्तिचेति ॥ ४ ॥

इस प्रकार अवयवसे ज्ञानके संपूर्ण ज्ञेयमें ज्ञानके मानको मानते हुये सवलन ( पतन ) को प्राप्त होते हैं और जानाहै जानने योग्य जिन्होंने ऐसे जो भिषज ( वैद्य ) हैं वे संपूर्ण रोगकी सर्वथा परीक्षा कर २ के निश्चय करते हुये कदाचित्भी विवाद नहीं करते और यथेष्ट अर्थकी सिद्धिको करते हैं इति ॥ ४ ॥

तत्र श्लोकाः ।

सत्त्वादीनां विकल्पेन व्याधितरूपमातुरे । दृष्ट्वा विप्रतिपद्यन्ते बाला व्याधिबलाबले ॥ ५ ॥

उसमें ये श्लोक हैं कि सत्व आदिके विकल्पसे आतुरमें व्याधिका जो

रूपहै उसको देखकर बालक (मूर्ख) के व्याधिके बल अवलम्बे विवाद करते हैं ॥ ५ ॥

ते भेषजमयोगेन कुर्वन्त्यज्ञानमोहिताः । व्याधितानां विनाशाय क्लेशाय महतेऽपि वा ॥ ६ ॥

अज्ञानसे मोहित वे भेषज (चिकित्सा) को अयोगसे करते हैं और व्याधित मनुष्योंके विनाश और महान् क्लेशके लिये होते हैं ॥ ६ ॥

प्रज्ञास्तु सर्वमाज्ञाय परीक्ष्यमिह सर्वथा । न स्खलन्ति प्रयोगेषु भेषजानां कदाचन ॥ ७ ॥

और बुद्धिमान् तो संपूर्णको यथार्थ रीतिसे जानकर और सर्वथा परीक्षा करके भेषजोंके प्रयोगोंमें कदाचित्भी स्खलनको प्राप्त नहीं होते ॥ ७ ॥

इति व्याधितरूपाधिकारे श्रुत्वा व्याधितरूपसंख्याग्रसम्भवं व्याधितरूपहेतुविप्रतिपत्तौ च कारणसापवादं सम्प्रतिपत्तिकारणश्चानपवादं निशम्य भगवन्तमात्रेयमग्निवेशोऽतः परं सर्वक्रिमीणां पुरुषसंश्रयाणां समुत्थानस्थानसंस्थानवर्णनामप्रभावचिकित्सितविशेषान्प्रच्छोपसंगृह्य पादावथास्मै प्रोवाच भगवानात्रेयः । इह खलु अग्निवे

श ! विंशतिविधाः क्रिमयः पूर्वमु  
क्तानानाविधेन प्रविभागेनान्यत्र  
सहजैः ॥ ८ ॥

व्याधितरूप अधिकारमें यह सुनकर  
और व्याधितरूपोंकी संख्या उनके  
अग्रभागमें होनेहारे व्याधित रूपके  
हेतुको और विप्रतिपत्तिमें अपवाद सहित  
कारणको और अपवाद रहित संग्रति  
पत्तिके कारणको सुनकर, भगवान्  
आत्रेयके प्रति अग्रिवेश इससे परे पुरु-  
षोंके संश्रय जो संपूर्ण क्रिमि हैं उनका  
समुत्थान ( उत्पत्ति ) स्थान, संस्थान  
वर्णनाम प्रभाव चिकित्सित विशेषोंको  
चरणोंको पकड़कर पूछते भये इसके  
अनंतर इसके प्रति भगवान् आत्रेय  
बोले कि हे अग्रिवेश ! यहां निश्चयसे  
बीस प्रकारके क्रिमि पूर्व कहे हैं नाना  
प्रकारके विभागसे सहजोंसे भिन्नही  
वे कहे हैं ॥ ८ ॥

तेपुनः प्रकृतिभिर्भिद्यमानाश्चतुर्वि-  
धास्तद्यथा—पुरीषजाः श्लेष्मजाः  
शोणितजामलजाश्चेति । तत्रम  
लोबाह्यश्चाभ्यन्तरश्च, तत्रबाह्ये  
मलेजातान्मलजान्संचक्ष्महे, ते  
षांसमुत्थानंमृजावर्जनं, स्थानंके  
शश्मश्रुलोमपक्ष्मवासांसि, संस्था  
नमणवस्ति लालुतयो बहुपादाः,  
वर्णस्तुरुष्णः शुक्लश्च, नामानिचै

पांयूकाः पिपीलिकाश्चेति, प्रभावः  
कण्डूजननंकोठपिडकाभिनिर्वर्त  
नञ्चचिकित्सितन्त्वेपामपकर्षणं  
मलोपघातोमलकराणाञ्चभावा  
नामनुपसेवनमिति ॥ ९ ॥

और पुनः प्रकृतिसे भिद्यमान वे  
चार प्रकारके हैं वे ऐसे हैं कि पुरीषमें,  
कफमें, शोणितमें, मलमें, उत्पन्न, उसमें मल  
बाह्य और भीतरका होता है उनमें बाह्य  
मलमें जो उत्पन्न हैं उनकी मलज कहते हैं  
उनका समुत्थान, शुद्धिका वर्जना जहां  
हो वह स्थान केश श्मश्रु लोम पक्ष्म  
वस्त्र हैं और संस्थान ( प्रमाण ) अणु  
तिलके आकार, बहुपाद हैं, वर्ण कृष्ण  
औ शुक्ल है और नाम यूका पिपीलिका  
है प्रभाव यह है कि कंडूका जन्म, कोठ  
पिडकाओंको पैदा करना है और चिकि-  
त्सा तो इनकी अपकर्षण है मलका नाश  
और मलकारक भावोंका असेवन है ॥ ९ ॥

शोणितजानान्तुकुष्ठैः समानं समु-  
त्थानं, स्थानं रक्तवाहिन्यो धम-  
न्यः, संस्थानमणवो वृत्ताश्वापा-  
दाश्च सूक्ष्मत्वाच्चैके भवन्त्यदृश्याः,  
वर्णस्ताम्रः नामानिकेशादालो-  
मादालोमद्वीपाः सौरसा औदुम्बरा  
जन्तुमातर इति । प्रभावः केशश्मश्रु-  
नखलोमपक्ष्मापध्वंसो व्रणगताना-  
ञ्चहर्षकण्डूतोदसंसर्पणानि अवृद्धा

नाश्र्वत्वक्शिरास्त्रायुमांसतरुणा  
स्थिभक्षणमिति, चिकित्सितमप्ये  
षांकुष्ठैःसमानंतदुत्तरकालमुपदे  
क्ष्यामः ॥ १० ॥

शोणितमें उत्पन्नोंका तो कुष्ठोंके  
समान समुत्थान है और रक्तवाहिनी  
धमनी स्थान हैं और अणु गोल अपाद  
संस्थान है और कोई तो सूक्ष्म होनेसे  
अदृश्य होते हैं, वर्ण ताम्र है और  
नामकेशाद, लोमाद, लोम, द्वीप,  
सौरस, औदुंबर, चंतु मातर हैं और  
प्रभाव ( प्रताप, ) केश और श्मश्रु नख  
लोम, इनका नाश है व्रणमें जो उत्पन्न  
हैं उनका हर्ष कंडू, तोद, संसर्पण कार्य  
है और अत्यंत वृद्धोंका तो त्वचा, शिरा  
स्त्रायु, मांस, तरुण, अस्थि इनका भक्षण  
है इनका चिकित्सित भी कुष्ठोंके समान  
है उसका उपदेश आगे करेंगे ॥ १० ॥

श्लेष्मजाःक्षीरगुडतिलमत्स्यानूप  
मांसपिष्टान्नपरमात्रकुसुम्भस्नेहा  
जीर्णपूतिक्लिन्न-संकीर्ण-विरुद्धा  
सात्म्यभोजनसमुत्थानाः । तेपा  
मामाशयःस्थानं, प्रभावस्तुतेप्रव  
र्द्धमानास्तूर्द्धमधोवाविसर्पन्ति, उ  
भयतोवा । संस्थानवर्णविशेषा  
स्तूश्वेताःपृथुव्रधसंस्थानाःकेचि  
त्, केचिद्वृत्तपरिणाहाःगण्डूप  
दाकृतयश्चश्वेताः । श्वेतास्ताम्रा

वभासाः, केचिदणवोदीर्घास्त  
न्त्वाकृतयःश्वेताः । तेषांत्रिवि  
धानांश्लेष्मनिमित्तानांक्रिमीणां  
नामानिअन्त्रादाः, उदरादाः, हृ  
दयादाश्चुरवो, दर्भपुष्पाः, सौग  
न्धिकाः, महागुदाश्चइति । प्रभा  
वोहृल्लासास्यसंस्त्रवणमरोचकांवि  
पाकौज्वरोमूर्च्छाजृम्भाक्षवथुरा  
नाहोऽङ्गमर्दःछर्दिःकाश्यंपारुष्य  
मिति ॥ ११ ॥

श्लेष्ममें जो उत्पन्न हैं वे दूध, गुड,  
तिल, मत्स्य, अनूपमांस पिष्टान्न, पर-  
मात्र, कुसुंभ, स्नेह, अजीर्ण, पूति, क्लिन्न  
संकीर्ण विरुद्ध असात्म्य, इतने भोजनोंसे  
उत्पन्न होते हैं, उनका स्थान आमाशय है  
और बढे हुए तो ऊपर वा नीचे वा दोनों  
तरफ फैलते हैं और संस्थान वर्ण विशेष  
तो ये हैं कि श्वेत पृथु व्रध संस्थान हैं  
ऐसे कोई हैं और कोई गोल शरीर हैं  
गंडूपदकी आकृतिके हैं और कोई श्वेत  
ताम्रके समान भासमान हैं कोई अणु,  
दीर्घ तंतुकी आकृति हैं और श्वेत हैं उन  
तीन प्रकारके श्लेष्म निमित्तक कृमियोंके  
नाम ये हैं कि अन्त्राद उदराद हृदयचर,  
गुरु दर्भपुष्प सौगंधिक महागुद और  
प्रभाव यह है कि हृल्लास, आस्यका  
संस्त्रवण अरोचक, विपाक, ज्वर, मूर्च्छा  
जृम्भा, क्षवथु, आनाह, अंगमर्द, छर्दि,  
कृशता, परुषता इनको करते हैं ॥ ११ ॥

पुरीषजास्तुल्यसमुत्थानाःश्लेष्म  
जैस्तेपांसंस्थानं पक्काशयः । प्रभा  
वास्तुतेप्रवर्द्धमानास्त्वधोविसर्प  
न्ति । यस्यपुनरामाशयाभिमुख  
स्युस्तदनन्तरंतस्योद्गारनिश्वासाः  
पुरीषगन्धिनःस्युः । संस्थान  
वर्णविशेषास्तुसूक्ष्मवृत्तपरीणा  
हाःश्वेतादीर्घाणांशुकसङ्काशाः  
केचित्केचित्पुनःस्थूलवृत्तपरी  
णाहाःश्यावनीलहरितपीताः ।  
तेषां नामानिककेरुकामकेरुकाले  
लिहाःशालूवकाःसौसुरादाश्चेति ।  
प्रभावःपुरीषभेदःकाश्यपारुप्यं  
लोमहर्षाभिनिर्वर्त्तनञ्च । तत्रवा  
स्यगुदमुखंपरितुदन्तःकण्डूश्चोपज  
नयन्तो गुदमुखं पर्य्यासते । सजा  
तहर्षो गुदान्निष्क्रमणमतिवेलं क  
रोति ॥ १२ ॥

पुरीषजोंको तो तुल्य समुत्थान है  
श्लेष्मजोंके संग उनका संस्थान पक्काशय  
है और बढे हुए नीचेको फैलतेहैं और  
जिसके आमाशयके अभिमुख होजातेहैं  
उसके जिस कालके अनंतर होतेहैं उसी  
कालके अनंतर उसको उद्गार निःश्वास  
पुरीष गंधि होजातेहैं और संस्थान वर्ण  
विशेषतो यह है कि सूक्ष्म, गोल, परि-  
णाह है श्वेत दीर्घ ऊर्णाशुक संकाशकोई

होतेहैं और कोई स्थूल गोल परि-  
णाह, श्याव नील हरित दीर्घ  
होतेहैं, नामतो ये हैं कि ककेरुक मके-  
रुक लेलिह शालूवक सौसुराद इति प्रभाव  
तो यह है कि मलका भेदन कृशता,  
पारुप्य, लोमहर्षका करना है और वे  
ही आस्य गुदाके मुखका परितोद करते  
हुए कंडुको पैदा करके गुदाके मुखके  
चारोंतरफ टिकतेहैं वह मनुष्य हर्षसे  
गुदाके निष्क्रमणको वारंवार करताहै १२

इत्येषश्लेष्मजानांपुरीषजानाञ्च  
क्रिमीणांसमुत्थानादिविशेषः ।  
चिकित्सितन्तुखल्वेपांसमासेनो  
पदिश्यपश्चाद्विस्तरेणोपदेक्ष्यते ।  
तत्रसर्वक्रिमीणामपकर्षणमेवादि  
तःकार्यम् । ततःप्रकृतिविघा  
तोऽनन्तरं निदानोक्तानांभावा  
नामनुपसेवनमिति ॥ १३ ॥

यह श्लेष्मज पुरीषज कृमियोंका जो  
समुत्थानादि विशेष चिकित्सितहै वह  
संक्षेपसे उपदेश करके पश्चात् विस्तारसे  
उपदेश करेंगे उसमे संपूर्ण क्रिमियोंका  
अपकर्षण पहिले करना फिर प्रकृतिका  
विघात फिर निदानमें उक्त भावोंका अ  
सेवन करै ॥ १३ ॥

तत्रापकर्षणं हस्तेनाभिमृश्यापनय  
नमुपकरणवतामुपकरणेनवा।स्था  
नगतानान्तुक्रिमीणांभेषजेनापक



र्पणंन्यायतश्चतुर्विधम् । तद्यथा,  
शिरोविरेचनं वमनं विरेचनमास्था-  
पनमित्यपकर्षणविधिः ॥ १४ ॥

उसमें अपकर्षण यह करै कि हाथसे अभिमर्श करके अपनयन है वा उपकरणवानोंके उपकरण ( शस्त्रादि ) से करै स्थानगतोंका तो औषधिसे अपकर्षण है न्यायसे तो वह चार प्रकारका है वह ऐसे है कि शिरका विरेचन वमन विरेचन आस्थापन यह अपकर्षणकी विधि है ॥ १४ ॥

प्रकृतिविघातस्त्वेषांकटुतिक्त-  
कायक्षारोष्णानां द्रव्याणामुपयो-  
गोयच्चान्यदपि किञ्चिच्छ्लेष्मपुरी-  
षप्रत्यनीकभूतं तत्स्यादिति प्रकृति-  
विघातः ॥ १५ ॥

प्रकृतिका विघात तो इनका यह है कि कटु तिक्त, कषाय, क्षार, उष्ण, द्रव्योंका उपयोग और जो अन्यभी कुछ श्लेष्म, पुरीषका विरोधी है वहभी है यह प्रकृतिका विघात है ॥ १५ ॥

अनन्तरं निदानोक्तानां भावानाम-  
नुपसेवनं यदुक्तं निदानविधौ तस्य व-  
र्जनं तथा विधप्रायाणाश्चापरेषां द्र-  
व्याणामितिलक्षणतश्चिकित्सित-  
मनु-व्याख्यातमेतदेव पुनर्विस्तरे-  
णोपदेक्ष्यते ॥ १६ ॥

इसके अनन्तर निदानोक्त पदार्थोंका असेवन ( त्याग ) है और जो निदानकी विधिमें कहा है उसका त्याग किसी प्रकारके बहुधा जो अन्य द्रव्य हैं उनका त्याग है यह लक्षणसे चिकित्सित कहा इसका ही फिर विस्तारसे उपदेश करते हैं ॥ १६ ॥

अथैनं क्रिमिकोष्ठमातुरमग्रेषु  
त्रंसमरात्रं वा स्नेहस्वेदाभ्यामुपपाद्य-  
श्वोभूते एनं संशोधनं पाययितास्मी-  
ति, क्षीरदधिगुडतिलमत्स्यानूपमां-  
सपिष्टान्नपरमान्नकुसुमभस्नेहसम्प्र-  
युक्तैर्भोज्यैः सायं प्रातरुपपादयेत्स-  
मुदीरणार्थं चैव क्रिमीणां कोष्ठाभि-  
सरणार्थं च ॥ १७ ॥

कि प्रथम क्रिमि, कोष्ठवान् रोगीको पहिले छः वा सात रात्रतक स्नेह स्वेद कराकर कल प्रातःकाल इसका संशोधन करूंगा यह देखकर दूध, दधि, गुड, तिल, मत्स्य, अनूपमांस, पिष्टान्न, परमान्न कुसुमभस्नेह, इनसे मिले भोजन सायं-काल प्रातःकाल इस लिये करावे कि क्रिमि कोष्ठमेंसे निकसैं और चलने लगें ॥ १७ ॥

भिषगथव्युष्टायारजन्यांसुखो-  
षितंसुप्रजीर्णभुक्तश्च विज्ञायास्था-  
पनं वमनविरेचनैस्तदहरेवोपपाद-  
येत् ॥ १८ ॥

फिर वैद्य रात्रिके व्यतीत होनेपर  
सुखसे सोये और अन्न परिपाकवान्  
रोगीको जानकर आस्थापन वमन विरे-  
चनोंको उसी दिन करावै ॥ १८ ॥

उपपादनीयश्चेत्स्यात्सर्वान्परी-  
क्ष्यविशेषान् समीक्ष्यसम्यक् ।  
अथाहरेतिब्रूयान्मूलकसर्पपल  
शुनकरञ्जशिशुमधुशिशुखरपुष्प  
भूस्तृणसुमुखसुरसकुठेरक  
'गण्डीर' कण्डीरकालमालक  
पर्णासक्षवकफणिज्जकानि । स  
र्वाणिअथवायथालाभम् । तानि  
आहृतानिअभिसमीक्ष्यखण्डश-  
श्छेदयित्वाप्रक्षाल्यपानीयेनसुप्र-  
क्षालितायांस्थाल्यांसमावाप्यगो-  
मूत्रेणार्द्धोदकेनाभ्यासिच्यसाध-  
येत् । सततमवघट्टयेत्तदव्यात  
स्मिन्शीतीभूतेतु उपयुक्तभूयिष्ठेऽ-  
भ्यासिगतरसेषुऔषधेषुस्थालीम-  
वतार्घ्यसुपरिपूतंकषायंसुखोष्णं  
मदनफलपिप्पलीविडङ्गकल्कतै-  
लोपहितसर्जिकालवणमभ्यासि-  
च्यवस्तौविधिवदास्थापयेदेनम् ॥ १९ ॥

और करनेके योग्य होय तो सब  
विशेषोंकी भलीप्रकार परीक्षा करके फिर  
कहे कि मूल, सरसो, लहसन, करंज,

सैहिंजना मधु शिशुक ( सैहिंजना ) खर,  
पुष्प, भूस्तृण, सुमुख, सुरस, कुठेरक,  
गंडीर कंडीर काल मालक, पर्णासक्षवक  
फणिज्जक, इनसब औषधियोंको अथवा  
जितनी मिलसके उतनियोंको लेआ वे उन  
औषधियोंको देखकर उनकी खंड २ से  
छेदन कराके पानीसे धोकर भली धोई  
हुई स्थालीमें भरकर गोमूत्र मिले आधे  
जलसे छिड़ककर साधन करै और वारं-  
वार कड़्छीसे घोटकर उसको रक्खेहुए  
बहुतसे जलमें औषधियोंको रस निक-  
सनेपर स्थालीको रखकर उसके ऊपर  
पूर्ण कषाय जो सुखोष्णहै उसको मैन-  
फल, वायविडंगका कल्क, और तेल  
मिला खारे लवणको सींचकर विधिसे  
वस्तिके ऊपर स्थापन कर दे ॥ १९ ॥

तथार्कालर्ककुटजाढकीकुष्ठकैट-  
र्घ्यकषायेणतथाशिशुपीलुकुस्तु-  
म्बुरुकटुकसर्पपकषायेणतथामल-  
कशृङ्गवेरदारुहरिद्रापिचुमर्दक  
पायेणमदनफलसंयोगसंयोजितेन  
त्रिरात्रंसप्तरात्रंवास्थापयेत् २०

तिसीप्रकार आक अलर्क हरहर कुष्ठ  
कैटर्घ्य इनके कषायसे तिसीप्रकार सैहिं-  
जना, पीलु, तुम्बुरु, कडु, सरसों, इनके  
कषायसे तिसीप्रकार आमले, शृंगवार,  
देवदारु, हलदी, नींब इनके कषायसे  
जो मैनफल आदिके योगसे युक्तहो तीन  
वा सातरात्र वास्तिपर रक्खे ॥ २० ॥

प्रत्यागतेचपश्चिमेवस्तौप्रत्याश्व  
स्तंतदहरेवोभयतोभागहरणंसंशो  
धनंपाययेत्तुक्त्या, तस्यविधिरूप  
देक्ष्यते ॥ २१ ॥

जब सवसे पिछली वास्ति आबुके तब  
विश्वासादिये रोगीको उसीदिन दोनों तर  
फसे हरनेवाले संशोधनको युक्तिसे पिलावै  
उसकी विधिका उपदेशकरतैहैं ॥ २१ ॥

मदनफलपिप्पलीकपायेषुअञ्ज  
लिमात्रेणत्रिवृत्कल्काक्षमात्रमा  
लोड्यपातुमस्मैप्रयच्छेत् । तद-  
स्यदोषमुभयतोनिर्हरतिसाधु २२

कि मैनफल पीपलके अञ्जलीभर  
कपायोंमें निशोयका कल्क अक्षभर  
मिलाकर पीनेके लिये रोगीको दे, वह  
उसके दोनोंतरफके दोषको भली प्रकार  
दूर करतहैं ॥ २२ ॥

एवमेवकल्पोक्तानिवमनविरेचना  
निसंसृज्यपाययेदेनंबुद्ध्यासर्ववि  
शेषानवेक्ष्यमाणः ॥ २३ ॥

इसी प्रकार कल्पमें कहेहुये वमन विरे-  
चनोंको बनाकर इसीप्रकार बुद्धिसे संपूर्ण  
विशेषोंकी वैद्य रोगीको पिलावै ॥ २३ ॥

अथैनंसम्यग्वारिक्तंविज्ञायापराह  
शैखरिककपायेणसुखोष्णेनपरि  
षेचयेत् । तेनैवचकपायेणबाह्या  
भ्यन्तरान्सर्वोदकार्थान्कारयेत्

शश्वत् । तदभावे वाकटु तित्त  
कपायाणामौषधानांकाथैर्मूत्रक्षा  
रैर्वा परिषेचयेत् । परिषिक्तञ्च  
एनंनिवातमागारमनुप्रवेश्यपिप्प  
लीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्ग  
वेरसिद्धेनयवाग्वादिनाक्रमेणउप  
क्रामयेत् ॥ २४ ॥

इसके अनंतर इसको भलीप्रकार  
विरिक्त जानकर अपराह्लमें शैखरिकके  
सुखोष्ण कपायसे सेचन करे और उसी  
कपायसे बाह्य और भीतरके संपूर्ण जलके  
कायोंको निरंतर करावै और उसके  
अभावमें कटु और तित्त कपाय औष-  
धोंके कायोंसे वा मूत्र क्षारोंसे सेचन  
किये इस रोगीको पवन रहित गृहमें  
प्रवेश कराके पीपल पीपलामूल चव्य  
चीता शृंगवेर इनको मिलाकर पकाई  
हुई यवागू आदिका क्रमसे भोजन  
करावै ॥ २४ ॥

विलेपीक्रमागतञ्चैनमनुवासयेद्वि  
डङ्गत्तैलेनैकान्तरंद्विचिर्वा । यदि  
पुनरस्यातिप्रवृद्धाञ्छीर्षादीन्क्रमी  
न्मन्येत, शिरस्येवअभिसर्पतःक  
दाचित्ततःस्नेहस्वेदाभ्यामस्याशि  
रउपपाद्यविरेचयेदपामार्गतण्डुला  
दिनाशिरोविरेचनेन ॥ २५ ॥

और क्रम २ से इसको विलेपन कराके और वायविडंगके तेलसे एक २ दिनके अंतरसे दो तीन बार सुगंधित करावै जो इसके शिर आदिके क्रिमियोंको अत्यंत बढे हुये समझे तो शिरमेंही चारों तरफ स्नेह और स्वेदोंको कराके कितने क्रिमियोंका अपामार्ग तंडुल आदिसे शिरके विरेचनसे विरेचन करावै ॥ २५ ॥

यस्त्वभ्याहार्योविधिःप्रकृतिविधातायोक्तःक्रिमीणांसोऽनुव्याख्यास्यते । मूपिकपर्णीसमूलाग्रप्रतानामपहत्यखण्डशश्छेदयित्वा उलूखलेक्षोदयित्वापाणिभ्यांपीडयित्वाचरसंगृहीयात् । तेन रसेनलोहितशालितण्डुलपिष्टंसमा लोड्यपूपलिकांकृत्वाविधूमेपुअङ्गारेपुविपाच्यविडङ्गतैललवणोपहितांक्रिमिकोष्ठायभक्षयितुं प्रयच्छेत् । तदनन्तरंचअम्लकाञ्जिकमुदश्विद्वापिप्पल्यादिपञ्चवर्गसंसृष्टंसलवणमनुपाययेत् ॥ २६ ॥

और जो अभ्याहार्य ( नाश ) विधि क्रिमियोंकी प्रकृति विधातमें कहीहै उसका व्याख्यान करतेहैं कि मूपकपर्णीके मूल अग्रप्रतान आदि पंचांगोंको लेकर खंड २ छेदन करके ऊखलमें चूने भरकर खंडोंको हाथोंसे मलकर रसको निःसारित

उस रससे लाल चावल्लोंके चूनको मांडकर पुपूलिका करके विधूम अंगारोंमें पकाकर वायविडंगका तेल और लवण मिलाकर जिसके कोष्ठमें क्रिमि हों उसको भक्षण करनेके लिये दे उसके अनंतर पीपल आदि पंचवर्ग मिले अम्लकांजी वा मट्टेको लवण मिलाकर पिलावै ॥ २६ ॥

अनेनकल्पेनमार्कवार्कसहचरनीपनिर्गुण्डीसुमुखसुरसकुठेरककण्डीरकालमालकपर्णासक्षवकफणिज्जकवकुल-कुटजसुवर्णक्षीरीसुरसानामन्यतमस्मिन्कारयेत्पूपलिकानितथाकिलिहीकिरात-तिक्तकसुवहामलक-हरीतकी-विभीतकस्वरसेपुकारयेत्पूपलिकाः । स्वरसांश्चैतानेकैकशोद्वन्द्वशःसर्वशोवामधुविलुलितान्प्रातरनन्नायपातुंप्रयच्छेत् ॥ २७ ॥

और इसी कल्पसे मार्कव अर्क सहचर नीप निर्गुण्डी सुमुख सुरस कुठेर कंडीर कालमालक पर्णास क्षवक फणिज्जक वकुल कुटज सुवर्ण क्षीरी सुरसा इनमेंसे किसीके काथको मिलाकर पुपूलिका इसके लिये करावै तिसीप्रकार कि किरात तिक्तक सुवहा आमले हरिद बहेड़ा इनके स्वरसोंको मिलाकर पुपूलिका करावै और इन अनेक स्वर-

सोंको वा दोदोको वा सबको सहत  
मिलाकर, भोजनसे पहिले प्रातःकालपीने  
केलिये दे ॥ २७ ॥

अथाश्वशकृदाहृत्यमहतिकिलि  
अप्रस्तीर्यातपेशोपयित्वोलूख  
लेक्षोदयित्वादृषदिपुनःसूक्ष्मा  
णिचूर्णानिकारयित्वाविडङ्गक  
पायेणत्रिफलाकपायेणवाअष्ट  
कृतवोदशकृतवोवाआतपेसुपरि  
भावितानिभावयित्वादृषदिपुनः  
सूक्ष्माणिचूर्णानिकारयित्वा  
नवेकलशेसमवाप्यानुगुप्तनिधा  
पयेत् । तेपान्तुखलुचूर्णानांपा  
णितलंचूर्णयावद्वासाधुमन्येतक्षौ  
द्रेणसंसृज्यक्रिमिकोष्ठायलेदुंय  
च्छेत् ॥ २८ ॥

इसके अनन्तर अश्वकी लीदको लेकर  
बड़े किलिंज ( कुंडमें ) डालकर धूपमें  
सुखाकर ऊखलमें कूटकर पत्थरपर  
सूक्ष्म चूर्ण करके वायविडंगके कषायसे  
वा त्रिफलाके कषायसे आठ बार  
वा दशवार पुट देकर आतपमें सुका-  
कर पत्थरपर फिर सूक्ष्म चूर्ण करके  
नये कलशमें भरकर भूमिमें गुप्त करके  
रखदे उन चूर्णोंमें पूर्ण हाथका तल वा  
न्यून जितना साधु समझे उतना शहत  
में मिलाकर क्रिमि कोष्ठको चाटनेके  
लिये दे ॥ २८ ॥

तथाभल्लातकास्थीन्याहाग्यकल  
शप्रमाणेनसम्पोथ्यस्नेहभावितेद  
ढेकलसेसूक्ष्मानेकच्छिद्रब्रध्नेमृदा  
वलितेसमवाप्योडुपेनपिधायभू  
मौआकण्ठनिखातस्यस्नेहभावि  
तस्यैवअन्यस्यदृढस्यकुम्भास्यउप  
रिसमारोप्यसमन्तात्गोमयैरुप  
चित्यदाहयेत् । सयदाजानीयात्सा  
धुदग्धानिगोमयानिगलितस्नेहानि  
भल्लातकास्थीनिततस्तंकुम्भमुद्धा  
रयेत् । अथतस्माद्वितीयात्  
कुम्भातस्नेहमदायविडङ्गतण्डु  
लचूर्णैःस्नेहार्द्धमात्रैःप्रतिसंसृज्या  
तपेसर्वमहःस्थापयित्वाततोऽस्मै  
मात्रांप्रयच्छेत्पानाय । तेनसाधु  
विरिच्यतेविरिक्तस्यचानुपूर्वीय  
थोक्ता ॥ २९ ॥

तिसी प्रकार भिलावेकी गुठलियोंको  
लाकर कलशके प्रमाणसे पीसकर चि-  
कने दृढ कलशमें ब्रध्न ( गला ) पर  
अनेक सूक्ष्म छिद्र करके उसके ऊपर  
मिट्टी लपेटकर उसमें गुठलियोंको  
डालकर उत्तपनीसे ढककर और भूमिमें  
कंठतक गाड़े स्नेह लपेटे हुये दूसरे दृढ  
कुम्भके ऊपर उस घटकी रखकर गोम-  
यांको चिनकर अग्निसे दग्ध करदे वह  
वैद्य जब यह जानले कि गोमय भली

प्रकार दग्ध होचुके और भिलावोंमें स्नेह नहीं रहे तब उस घटको निकासले, फिर उस दूसरे घटमेंसे स्नेहको लेकर वायविडंगके तंडुलोंमें दूने स्नेहको मिलाकर धूपमें दिनभर स्थापन करके फिर पनिके लिये इसको मात्रा दे उससे भलीप्रकार विरेचन होताहै और विरेचनका क्रम पूर्वोक्त है ॥ २९ ॥

एवमेव भद्रदारुसरलकाष्ठस्नेहानुप कल्प्यपातुं प्रयच्छेत् । अनुवास येच्चैनमनुवासनकाले ॥ ३० ॥

इसी प्रकार भद्रदारु सरल काष्ठके स्नेहोंको निकासकर पनिके लिये दे और इसीसे अनुवासनके कालमें सुमंधितभी इसको करै ॥ ३० ॥

अथाहरेतिब्रूयाच्छारदान्नवांस्ति  
लान्सम्पदुपेतानाहत्यसुनिष्पूतान्नि  
ष्पूयसुशुद्धाञ्छोषयित्वाविडङ्ग  
कषायेसुखोष्णेप्रक्षिप्यसुनिर्वापि  
तान्निर्वापयेदादोषगमनात् ।  
गतदोषानभिसमीक्ष्यसुप्रलूनान्  
प्रलुच्यपुनरेवसुनिष्पूतान्निष्पूय  
सुशुद्धाञ्छोषयित्वाविडङ्गकषा  
येणान्निसक्तत्वं सुपरिभावितान्  
भावयित्वाऽऽतपेशोषयित्वोलूखले  
संक्षुब्धदृषदिपुनःश्लक्ष्णपिष्टान्का  
रयित्वाद्रोण्यामभ्यवधायविडङ्ग

कषायेणमुहुर्मुहुरवसिञ्चन्पाणिम  
र्दमर्दयेत् । तस्मिन्स्वलुप्रपीडयमाने  
यत् तैलमुदियात्तत्पाणिभ्यां प  
र्यादायशुचौदृढेकलशेसमासिच्या  
नुगुप्तनिधापयेत् । अथाहरेतिब्रूया  
त्तिल्वकोदालकयोर्द्वौ बिल्वमा  
त्रौपिण्डौ श्लक्ष्णपिष्टौ विडङ्गकषा  
येण, ततोऽर्द्धमात्रौ श्यामात्रिवृत  
योरर्द्धमात्रौ दन्तीद्रवन्त्यारतोऽर्द्ध  
मात्रौ च व्यचित्रकयोरित्येतत्स  
म्भारं विडङ्गकषायस्यार्द्धादिक  
मात्रेण प्रतिसंसृज्य तत्तैलप्रस्थ  
मावाप्य सर्वमालोढ्य महति उपयो  
गे समासिच्याग्रावधिश्रित्य महत्या  
सने सुखोपविष्टः सर्वतः स्नेहमवलो  
कयन् अजस्रं मृद्वग्निना साधयेद्  
व्यासततमवधट्टयन् । स यदा जा  
नीयाद्विरमतिशब्दः प्रशाम्यति  
च फेनः, प्रसादमापद्यते स्नेहो यथा  
स्वंगन्धवर्णरसोत्पत्तिः संवर्तते च,  
भेषजमंगुलिभ्यां मृद्यमानमनतिमृ  
दुमनतिदारुणमनंगुलिग्राहिचे  
ति । संकालस्तस्यावतारणाय ।  
ततस्तमवतीर्णं हतं शीतीभूतमह  
तेन वाससापरिपूयशुचौदृढेकलशे

समासिच्यपिधानेनपिधायशुक्लेन  
वस्त्रपट्टेनआच्छाद्यसूत्रेणसुवद्धंसु  
निगुतंनिधापयेत् । ततोऽस्मैमा  
त्रांप्रयच्छेत्पानाय ॥ ३१ ॥

इसके अनंतर कहे कि शरदऋतुके  
नवीन तिलोंको लेआ भली प्रकार  
पवित्रोंको शोधकर वायविडंगके कपायसे  
इक्कीस पुट देकर शुद्ध कियोंको धूपमें  
सुखाकर ऊखलमें कूटकर चिकने  
पत्थरपर पीसकर और द्रोणीमें लेकर  
विडंगके कपायसे वारंवार सींचे - और  
हाथोंसे मलै उसके मलते २ जो तेल  
निकसे उसको हाथोंसे लेकर शुद्ध और  
दृढ कलशमें सींचकर गुप्त करके स्थापन  
कर दे फिर रोगीसे कहे कि वेल उद्दाल  
कके विल्वमात्र पिंडोंको विडंगके  
कपायसे चिकने पिसोंको इससे आधी  
श्यामा ( रसोत ) और हरडेके  
और आधी मात्राके चव्य और  
चीतेके पिंडोंको लेआ इस सामग्रीको  
आधे आठकभर विडंगके कपायसे  
संसर्ग करके फिर तेलके प्रस्थको  
लेकर उसमें डालकर सबको मिला-  
कर बडे पात्रमें सींचकर अग्निके ऊपर  
रखकर बडे आसनपर सुखसे बैठा हुआ  
चारों तरफ स्नेहको वारंवार देखता हुआ  
मंद २ अग्निसे कलछीसे निरंतर रगड़ता  
हुआ पकावे वह वैद्य जब यह जानै कि  
शब्द नहीं होता है और फेन आतेहैं  
स्नेह जैसे अपने गंध वर्ण रसवान् आताहै

और औषधको अंगुलियोंसे मलकर देखै  
कि न अति मृदु हो और न अति दारुण  
हो और अंगुलियोंका ग्राही हो वह समय  
उसके उतारनेका है, फिर उतारा हुआ  
वह ठंडा होजाय तब बडे वस्त्रमें छानकर  
शुद्ध दृढ कलशमें डालकर ढकनेसे ढक-  
कर शुक्ल वस्त्रके टुकड़ेसे ढककर सूत्रसे  
भलीप्रकार बांधकर गुप्त करके स्थापन  
कर दे फिर रोगीको पीनेके लिये  
मात्राको दे ॥ ३१ ॥

तेनसाधुविरिच्यते । सम्यगपहृत  
दोषस्यचास्यानुपूर्वयथोक्ता । त  
तश्चैनमनुवासयेदनुवासनकाले ३२

उससे भलीप्रकार विरेचन होताहै जब  
उसके दोष भलीप्रकार नष्ट हो जाय  
तब उसकी आनुपूर्वी पूर्वोक्त है, फिर  
इसको सुगंधित करनेके समयमें सुगं-  
धित करै ॥ ३२ ॥

एतेनैवचपाकविधिनासर्पपकरञ्ज  
कोषातकीस्नेहानुपकल्प्यपायये  
त्सर्वविशेषानवेक्ष्यमाणस्तेनागदो  
भवति ॥ ३३ ॥

इसी पकानेकी विधिसे सरसों करंज को  
शातकी इनके स्नेहोंको निकासकर पिलावे  
और संपूर्ण विशेषोंको देखता रहै तिससे  
मनुष्य रोगरहित होताहै ॥ ३३ ॥

इत्येतद्वयानांश्लेष्मपुरीषसम्भवा  
नांक्रिमीणांसमुत्थानस्थानसंस्था

नवर्णनामप्रभावचिकित्सितविशेषा  
व्याख्याताःसामान्यतः ॥ ३४ ॥

ये सब श्लेष्म और पुरीष दोनोंमें  
उत्पन्न क्रिमियोंके समुत्थान स्थान  
संस्थान वर्ण नाम प्रभाव चिकित्साओंके  
विशेष सामान्यसे वर्णन किये ॥ ३४ ॥

विशेषतस्तु अल्पमात्रमास्थापना  
नुवासनानुलोमहरणं भूयिष्ठं तेष्वा  
पधिपुरीषजानां क्रिमीणां चिकि  
त्सितं कार्यं मात्राधिकं पुनः शिरो  
विरेचनवमनोपशमनं भूयिष्ठं तेष्वा  
पधे पुश्लेष्मजानां क्रिमीणां चिकि  
त्सितं कार्यम् । इत्येवं क्रिमिघ्नो  
भेषजविधि रनुव्याख्यातो भव  
ति ॥ ३५ ॥

और विशेषकर तो अल्पमात्र, आ-  
स्थापन, अनुवासन, अनुलोम, हरणकी  
अधिकता तिन औषधियोंमें कही उनमें  
पुरीषमें उत्पन्न क्रिमियोंका चिकित्सित  
करना यह क्रिमिनाशक औषधोंकी विधि  
वर्णन की ॥ ३५ ॥

तमनुतिष्ठता यथास्व हेतुवर्जने प्रयति  
तव्यम् । यथोद्देशमेव मिदं क्रिमि  
कोष्ठचिकित्सितं यथावदनुव्या  
ख्यातं भवतीति ॥ ३६ ॥

उसको करता हुआ मनुष्य जैसे  
क्रिमियोंके कारणोंके त्यागनेके विषे

यत्न करे, यह उपदेशके अनुसार यह  
क्रिमिकोष्ठकी चिकित्सा यथायोग्य वर्ण-  
नकी इति ॥ ३६ ॥

तत्र श्लोकाः ।

अपकर्षणमेवादौ क्रिमीणां भेषजं  
स्मृतम् । ततो विधातः प्रकृतेर्नि  
दानस्य च वर्जनम् ॥ ३७ ॥

उसमें ये श्लोक हैं कि प्रथम तो क्रिमि-  
योंकी औषध अपकर्षणही कही है, फिर  
प्रकृतिका विधात और निदानका वर्ज  
न है ॥ ३७ ॥

एतावद्विषजाकार्यं रोगे रोगे यथा  
विधि । अयमेव विकाराणां सर्वे  
पामपि निग्रहे ॥ ३८ ॥

इतनाही वैद्य विधिसे रोग रोग में करे  
संपूर्ण विकारोंके दूर करनेमें यही विधि  
देखी है ॥ ३८ ॥

विधिर्दृष्टस्त्रिधा योऽयं क्रिमीनुद्दिश्य  
कीर्तितः । संशोधनं संशमनं निदा  
नस्य च वर्जनम् ॥ ३९ ॥

और वही यह विधि क्रिमियोंको  
उद्देश लेकर तीन प्रकारकी कही है सो  
यह है कि संशोधन संशमन और निदान  
का वर्जन ॥ ३९ ॥

व्याधितौ पुरुषौ ज्ञाज्ञौ भिषजौ सप्र  
योजनौ । विंशतिः क्रिमयस्त्वेषां  
हेत्वादिः सप्तको गणः ॥ ४० ॥



और व्याधित पुरुष और वैद्य इनको प्रयोजन सहित जाने और उनके वीस प्रकारके क्रिमि और हेतु आदि सप्तक गण ॥ ४० ॥

उक्तोव्याधितरूपीयेविमानेपरम  
र्षिणा । शिष्यसंबोधनार्थञ्चव्या  
धिप्रशमनायच ॥ ४१ ॥

ये सब व्याधितरूपीयविमानमें  
शिष्यके ज्ञान और व्याधिकी शांतिके  
लिये परमर्षिने कहें ॥ ४१ ॥

इति व्याधितरूपीयविमानं समाप्तम् ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

रोगभिपगृजितीयम् ।

इसके अनंतर रोगभिपजितीय विमा-  
नका व्याख्यान करतेहैं कि—

बुद्धिमानात्मनःकार्य्यगुरुलाघवे  
कर्मफलमनुबन्धदेशकालौचवि  
दित्वायुक्तिदर्शनाद्विपगबुभूषुः  
शास्त्रमेवादितःपरीक्षेत । विवि  
धानिहिशास्त्राणिभिषजांप्रचरन्ति  
लोके । तत्रयन्मन्येतमह्यशस्वि  
धीरपुरुषानुमोदितमर्थबहुलमात्र  
जनपूजितंत्रिविधशिष्यबुद्धिहित  
मपगतपुनरुक्तदोषमार्षसुप्रणीतसू  
त्रभाष्यसंग्रहकमंस्वाधारमनवपति

तशब्दमकष्टशब्दंपुष्कलाभिधानं  
क्रमागतार्थमर्थतत्त्वनिश्चयप्रधानं  
संज्ञतार्थमसंकुलप्रकरणमाशुप्रबो  
धकंलक्षणवच्चोदाहरणवच्चतदभि  
प्रपद्येतशास्त्रम् ! शास्त्रं ह्येवंविधम  
मलइवादित्यस्तमोविधूयप्रकाशय  
तिसर्वम् ॥ १ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य अपने कार्यके गुरु  
लाघवमें कर्म फल अनुबंध देशकाल  
इनको युक्ति दर्शनसे जानकर  
वैद्य बुभूषु ( होनहार ) प्रथम शास्त्रकी  
ही परीक्षा करै क्योंकि अनेक शास्त्र  
वैद्योंके जगत्में प्रचलित हैं उनमें जिस  
शास्त्रकी यशका दाता, धीर पुरुषोंका  
सेवित, अनेक अर्थवान्, आप्त जनोंका  
पूजित, तीन प्रकारके शिष्योंकी बुद्धिका  
हितकारी, पुनरुक्त दोषसे रहित, ऋ-  
षियोंका रचित, सूत्रभाष्य संग्रह क्रम  
से जिसमें भली प्रकार रचित हों जो  
अपने आधार हो अर्थात् अन्य शास्त्रकी  
अपेक्षासे रहित हो जिसके शब्द पतित  
न हों, जिसके शब्द कठिन न हों, जिस-  
का नाम बडाहो, जिसका अर्थ परंपरासे  
आगत हो, जिसके अर्थतत्त्वका प्रधा-  
नतासे निश्चित हो जिसके अर्थ संगत-  
हों प्रकरण पृथक् २ हों जो शीघ्रबोध  
क हो लक्षण और उदाहरणवान् हो  
उस शास्त्रको स्वीकार, करै क्योंकि  
ऐसा शास्त्र निर्मल सूर्यके समान

अंधकारको दूर करके सबका प्रकाश करता है ॥ १ ॥

ततोऽनन्तरमाचार्य्यपरीक्षेत । त  
यथा; पर्यवदातश्रुतंपरीदृष्टकर्मा  
णंदक्षंदक्षिणंशुचिजितहस्तमुपक  
रणवन्तंसर्वेन्द्रियोपपन्नप्रकृतिज्ञं  
प्रतिपत्तिज्ञमनुपस्कृतविद्यमनहंक  
तमनसूयकमकोपनंकेशक्षमंशि  
ष्यवत्सलमध्यापकंज्ञापनासमर्थ  
ञ्चइत्येवंगुणोह्याचार्य्यःसुक्षेत्रमा  
र्त्तवोमेघइवशस्यगुणैःसुशिष्यमा  
शुवैद्यगुणैःसम्पादयति।तमुपसृत्या  
रिराधयिषुरुपचरेदग्निवच्चदेववच्च  
राजवच्चपितृवच्चभर्तृवच्चाप्रमत्त  
स्ततस्तत्प्रसादात्कृत्स्नंशास्त्रमधि  
गम्यशास्त्रस्यदृढतायामभिधानसौ  
ष्ठवस्यार्थस्यविज्ञानेवचनशक्तौच  
भूयःप्रयतेतसम्यक् ॥ २ ॥

उसके अनन्तर आचार्यकी परीक्षा करे कि वह ऐसे है जिसका श्रुत (वेद) शुद्ध हो जिसके कर्म देखे हों चतुर हो दक्षिण हो शुद्ध हो जितहस्त हो उपकरणवान् हो सब इंद्रियोंसे उपपन्न हो प्रकृतिका ज्ञाता हो ज्ञानी हो जिसकी विद्या उपस्कृत न हो अहंकारी न हो जो असूया रहित हो कोपन न हो

केशकी सह सकै शिष्यपर दयालु हो, अध्यापक हो, ज्ञापन ( बोधन ) में समर्थ हो इन गुणोंवाला आचार्य ऋतुका मेघ क्षेत्रकी सस्यके गुणोंसे जैसे युक्त करता है इस प्रकार सुशिष्यको वैद्यके गुणोंसे युक्त करता है, उसके समीप जाकर आराधनका कर्ता शिष्य, अग्नि देवता राजा पिता भर्ता इनके समान आचार्यकी अप्रमत्त होकर सेवन करे उसके प्रसादसे संपूर्ण शास्त्रकी जानकारी, शास्त्रकी दृढतामें अभिधान ( कथन ) सुष्ठु अर्थके विज्ञानमें वचनमें वचनकी शक्तिमें फिर भलीप्रकार यत्न करे ॥ २ ॥

तत्रोपायाव्याख्यास्यन्ते ! अध्य  
यनमध्यापनंतद्विद्यासम्भाषेत्युपा  
याः ॥ ३ ॥

उसमें उपायोंको कहतेहैं कि अध्ययन अध्यापन उसी विद्याका भाषण ये तीन उपायहैं ॥ ३ ॥

तत्रायमध्ययनविधिःकल्येकृतक्ष  
णःप्रातरुत्थायोपव्यूषंवाकृत्वाव  
श्यकमुपस्पृश्योदकंदेवगोब्राह्मणगु  
रुवृद्धसिद्धाचार्य्योऽन्योनमस्कृत्य  
समेशुचौदेशेसुखोपविष्टोमनःपुरः  
सराभिर्वाग्भिःसूत्रमनुक्रामन्पुनःपु  
नरावर्त्तयेद्बुद्ध्यासम्यगनुप्रविश्या  
र्थतत्त्वंस्वदोषपरिहारपरदोषप्रमा

णार्थमेवंमध्यन्दिनेऽपराह्णेरात्रौ च  
शश्वदपरिहापयन्नध्ययनमन्यस्ये  
दित्यध्ययनविधिः ॥ ४ ॥

उसमें अध्ययन विधिका कल्प यह है कि अवसर देखकर प्रातःकाल सूर्योदयसे प्रथम उठकर वा आवश्यक कर्मको करके जलका स्पर्श और देव गौ ब्राह्मण गुरु वृद्ध सिद्ध आचार्य इनको नमस्कार करके समान शुद्ध देशमें बैठा हुआ मन लगाई हुई वाणियोंसे सूत्र ( शास्त्र ) की क्रमसे पुनः २ आवृत्ति ( पाठ ) को बुद्धिमें भलीप्रकार अर्थके तत्त्वको समझकर, पढ़े, अपने दोषके त्याग और प्रमाणके लिये अपराह्णमें और रात्रिमें निरंतर नहीं त्यागता हुआ पढ़नेका अभ्यास करे यह अध्ययनकी विधि है ४

अथाध्यापनविधिः, अध्यापनेकृत बुद्धिराचार्यः शिष्यमादितः परीक्षे ततश्चाथा, — प्रशान्तमार्यप्रकृतिक मक्षद्रकर्माणमृजु-चक्षुर्मुखनासा वंशंतनुरक्त-विशदजिह्वमविकृत दन्तौष्ठमूअभिन्मिणधृतिमन्तमू अलंकृतं मेधाविनं वितर्कस्मृतिस म्पन्नमुदारसत्त्वं तद्विद्यकुलजमथ वातद्विद्यवृत्तं तत्त्वाभिनिवेशिनम व्यङ्गमव्यापन्नेन्द्रियं निभृतमनुद्ध तमव्यसनिनं शीलशौचाचारानु रागदाक्ष्यप्रादक्षिण्योपपन्नमध्य

यनाभिकाममत्यर्थविज्ञानकर्मद र्शनेचानन्यकार्यमलुब्धमनलसं सर्वभूतहितैपिणमाचार्यसर्वानु शिष्टिप्रतिकरमनुरक्तमेवंगुणसमु दितमध्याप्यमेवमाहुः । एवंचिर माचार्यश्चाध्ययनार्थमुपस्थित भारिराधयिषुमनुभाषेत ॥ ५ ॥

अब अध्यापनकी विधिको कहते हैं पढ़ानेमें की है बुद्धि जिसने ऐसा आचार्य प्रथमतो शिष्यकी परीक्षाकरे वह ऐसे है कि प्रशान्त हो आर्यप्रकृति हो क्षुद्रकर्मोंको न करता हो कोमल है नेत्र, मुख, नासिकाका वंश जिसके पतली रक्त है निर्मल जिह्वा जिसकी दंत ओष्ठ, जिसके विकृत नहीं धीर हो, अहंकारी न हो बुद्धिमान् हो तर्क रहित स्मृतिसे युक्त हो उदारमन हो वैद्यविद्याके कुलमें उत्पन्न हो वा वैद्य विद्यासे युक्त हो तत्त्वमें जिसका आग्रह हो व्यंग न हो इंद्रिय जिसकी नष्ट न हो निभृत ( पूरा ) हो अनुवद्ध ( अनुकूल ) हो व्यसनी न हो शील, शौच, अनुराग चतुराई कुशलता इनसे युक्त हो पढ़नेका अभिलाषी हो अत्यंत विज्ञान और कर्मके दर्शनमें अनन्य कार्य हो अर्थात् इनकोही मुख्य समझता हो लोभी न हो आलसी न हो सब प्राणियोंका इष्ट हो आचार्य और सब इनकी शिक्षाका प्रतीकार करता हो अनुरागी हो इतने गुणोंसे युक्त जो शिष्य वह पढ़ाने योग्य कहा है इसप्रकार

चिरकालसे पढ़नेके लिये उपस्थितकी  
और सेवकको यह कहै कि ॥ ५ ॥

उदगयनेशुक्लपक्षप्रशस्तेऽहनिपुण्य  
हस्तश्रवणाश्वयुजामन्यतमेननक्ष  
त्रेणयोगमुपगतेभगवतिशशिनि  
कल्याणेमुहूर्त्तस्नातःकृतोपवासो  
मुण्डःकपायवस्त्रसंवीतःसमिधोऽ  
ग्निमाज्यमुपलेपनमुदककुम्भांश्च  
सुगन्धिहस्तमाल्यदामहिरण्या  
न्हेमरजतमणिमुक्ताविद्रुमक्षौम  
परिधींश्चकुशलाजसर्पपाक्षतांश्च  
शुक्लाश्वसुमनसोग्रथिताग्रथितां  
श्चमेध्यांश्चभक्ष्यान्गन्धांश्चपिष्टा  
पिष्टानादायोपतिष्ठस्वेति । स  
तथाकुर्यात् ॥ ६ ॥

उत्तरायणमें और शुक्लपक्ष श्रेष्ठ दिन  
और पुण्य हस्त श्रवण अश्विनी इनमें  
कोईसे नक्षत्रके योगको भगवान् चंद्रमा  
जब प्राप्त हों कल्याण मुहूर्त्तमें स्नान  
उपवास करके मुंड और कपाय वस्त्रोंसे  
युक्त हुआ समिध अग्नि धी उपलेपन  
जलका घट सुगंधमाला हाथमें लेकर  
सुवर्ण हेम रजत मणि मुक्ता मृंगा क्षौम  
परिधि ( रेशमकी धोती ) कुशा लाजा  
सरसों और अक्षतोंको और मालाके  
और विना मालाके शुक्ल पुष्प, पवित्र  
भक्ष्य और गंध पिसे और विनापिसे इन

सबको लेकर हमारे समीप आओ वह  
शिष्य तिसी प्रकार करै ॥ ६ ॥

तमुपस्थितमाज्ञायसमेशुचौदेशे  
प्राक्प्रवणेवाचतुष्किष्कुमात्रंचतु  
रसंस्थण्डिलंगोमयोदकेनोपलितं  
कुशास्तीर्णसुपरिहितंपरिधिभि  
श्चतुर्दिशंयथोक्तचन्दनोदककुम्भ  
क्षौमहेमहिरण्यरजतमणिमुक्ता  
विद्रुमालंकृतंमेध्य-भक्ष्य-गन्धशु  
क्लपुष्पलाजासर्पपाक्षतोपशोभितं  
कृत्वातत्रपालाशीभिरेङ्गदीभिरी  
दुम्बरीभिर्माधुकीभिर्वासमिद्भिर  
ग्निमुपसमाधायप्राङ्मुखःशुचिर  
ध्ययनविधिमनुविधायमधुसर्पि  
भ्यांत्रिस्त्रिजुहुयादग्निम् । आ-  
शीःसंप्रयुक्तैर्मन्त्रैर्ब्राह्मणमग्निधन्व  
न्तरिंप्रजापतिमश्विनाइन्द्रमृषीं  
श्चसूत्रकारानभिमन्त्रायमाणः ।  
पूर्वस्वाहेतिशिष्यश्चैनमन्वारभेत  
हुत्वाचप्रदक्षिणमग्निमुपरिक्रा  
मेत् । ततोऽनुपरिक्राम्यब्रा  
ह्मणान्स्वस्तिवाचयेत् । भिषज  
श्चाभिपूजयेत् ॥ ७ ॥

उस उपस्थितकी जानकर, सम और  
शुद्ध देश जो पूर्वको वा उत्तरको नीचा

है चार किष्कुभर चकोर गोमयसे लिप्त कुशाओंसे आस्तीर्ण जिसके चारोंतरफ परिधि ( मर्यादा ) हो इस प्रकारके शास्त्रोक्त देशमें चंदन जलका घट क्षौम सुवर्णके भूषण सुवर्ण रजत मणि मुक्ता मृंगा इनसे भूषित और पवित्र भक्ष्य गंध शुक्ल पुष्प लाजा सरसों अक्षत इनसे उपशोभित करके उसमें पालाश इंगुदी गूलर महुआ इनकी समिधोंसे अग्नि स्थापन करके पूर्वाभिमुख शुद्ध हुआ अध्ययनकी विधिको करके मधु और घीसे तीन २ बार अग्निके होमको आशीर्वादके मंत्रोंसे ब्रह्मा अग्नि प्रजापति धन्वंतरी प्रजापति अश्विनीकुमार, इंद्र, ऋषि, सूत्रकार इनके नामसे होम करै पहिले स्वाहा यह कह कर शिष्य अग्निका स्पर्श करै और होम करके अग्निकी प्रदक्षिणा करै फिर परि क्रमा करके ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करावै और वैद्योंका पूजन करै ॥ ७ ॥

अथैनमग्निसकाशेब्राह्मणसकाशे  
भिषक्सकाशेचानुशिष्यात् ।  
ब्रह्मचारिणाश्मश्रुधारिणास्त्यवा  
दिनाअमांसादेनमेध्यसेविनानिर्म  
त्सरेणाशास्त्रधारिणाभवितव्यम् ।  
नचतेमद्वचनात्किञ्चिदकार्यस्या  
दन्यत्रराजद्विष्टात्प्राणहराद्विपुला  
दधर्म्यादनर्थसंप्रयुक्ताद्वाप्यर्थात् ।  
मदर्पणेनमत्प्रधानेनमदधीनेनम

प्रियहितानुवर्तिनाचशश्वद्वि  
तव्यम् । पुत्रवद्दासवदर्थिवच्चो  
पचरतानुसर्तव्योऽहम् । अनुत्सु  
केनावहितेनअनन्यमनसाविनी  
तेनावेक्ष्यावेक्ष्यकारिणाअनसूय  
केनचाभ्यनुज्ञातेनप्रविचरितव्यम्  
अनुज्ञातेनचप्रविचरता ॥ ८ ॥

इसके अनंतर इस शिष्यको अग्निके सकाशमें और ब्राह्मण और वैद्यके सकाशमें शिक्षादे कि तेरेको मेरे वचनसे अन्य किञ्चित्भी नहीं करना और राजा का द्वेषी प्राणघाती महान् अधर्म अनर्थसे प्राप्तधन इनको छोड़कर अर्थात् इनमें मेरे वचनकी अपेक्षा नहीं करनी और मेरे अर्पणसे मेरे प्रमाणसे मेरा प्रिय और अनुवर्ती होकर निरंतर रहना चाहिये पुत्र और दासके समान सेवासे वसना चाहिये और निरभिमान मेरेमें मन लगाकर नम्रतासे देख २ कर कार्य करना असूया न करनी और बिना मेरी आज्ञाके न विचरना चाहिये और मेरी आज्ञासे विचरेतो ॥ ८ ॥

पूर्वगुर्वर्थोपाहरणेयथाशक्तिप्रय  
तितव्यम् । कर्मसिद्धिमर्थसिद्धिं  
यशोलाभश्चप्रेत्यचसर्वमिच्छता  
भिषजा । गोब्राह्मणमादौकृत्वा  
सर्वप्राणभूतांशर्मण्यासितव्यम् ।  
अहरहरुत्तिष्ठताचोपविशताचस

वात्मनाचातुराणामारोग्येप्रयति  
तव्यम् । जीवितहेतोरपिचातुरे  
भ्योनातिदोग्धव्यम् । मनसापि  
चपरस्त्रियोनाभिगमनीयाः । त  
थासर्वमेवपरस्वम् । निभृतवेश  
परिच्छेदेनचभविताव्यम् ! अशौ  
ण्डेनअपापेनअपापसहायेनचश्ल  
क्षणशुक्लधर्म्यशर्म्यधन्यसत्यहित  
मितवचसादेशकालविचारिणा  
स्मृतिमताज्ञानोत्थानोपकरणस  
म्पत्सुनित्यंयत्नवता । नचकदा  
चिद्राजद्विष्टानाराजद्वेपिणांवाम  
हाजनद्विष्टानामहाजनद्वेपिणांवा  
औपधमनुविधातव्यम् । एवंसर्वे  
पामत्यर्थविकृतदुष्टदुःखशीला  
चारो-पचाराणामनपवादप्रतीक  
रादीनामुमूर्षुताञ्चतथैवासन्निहि  
तेश्वराणांस्त्रीणामनध्यक्षाणांवा९।

पहिले २ तो गुरुके लिये धनके संग्र-  
हणमें यथाशक्ति यत्न करना चाहिये और  
कर्मकी सिद्धि और अर्थकी सिद्धि यशका  
लाभ मरकर स्वर्गका अभिलाषी वैद्य  
प्रथम गौ ब्राह्मणोंको करके संपूर्ण  
प्राण धारियोंके सुखमें टिके और प्रति-  
दिन उठकर बैठकर सर्वात्मासे रोगि-  
योंके आरोग्यमें यत्न करना चाहिये  
और अपने जीवितके हेतुभी आतुरोंका  
द्रोह न करना और मनसेभी पराई

स्त्रियोंका स्पर्श न करना तिसी प्रकार  
संपूर्ण पराये धनको न लेना धारण  
किये वैद्यके वेशसे युक्त होकर रहना  
चाहिये और धूर्तताको त्यागकर पाप-  
रहित, धर्मकी सहायतासे श्लक्ष्ण ( स्व-  
च्छ ) शुक्ल और धर्म सुख धन इन-  
का दाता, सत्यहित प्रमित वचनसे देश  
कालका विचार करना स्मरणवान् रहकर  
ज्ञानका होना उपकरण संपदा इनमें  
नित्य यत्न करना चाहिये और राजा  
जिनका शत्रु और राजकी द्वेषी महा-  
जनोंके द्वेषी जो हैं महाजन जिनके  
द्वेषी हैं उनकी औपध कदाचित्  
न करनी, इसी प्रकार संपूर्ण जो अत्यंत  
विकारी दुष्ट दुःखरूप जिनके शील  
आचार उपचार ( सेवा ) हैं ऐसे जो  
निंदित और प्रतीकाररहित हैं और  
मरणहार हैं और जिनके बड़े समीपमें  
नहीं हैं और जिनका कोई साक्षी नहीं  
है उन उन स्त्रियोंकीभी औपध नहीं  
करनी ॥ ९ ॥

नचकदाचित्स्त्रीदत्तमामिषमादात  
व्यमननुज्ञातंभर्त्राअथवाअध्यक्षे  
ण । आतुरकुलञ्चानुप्रविशतात्व  
याविदितेनानुमतप्रवेशिनासार्द्धपु  
रुषेणसुसंवीतेनावाक्शिरसास्मृति  
मतास्तिमितेनअवेक्ष्यावेक्ष्यबु  
द्ध्यामनसासर्वमाचरतासम्यगनु  
प्रवेष्टव्यम् । अनुप्रविश्यचवाङ्म

नोबुद्धीन्द्रियाणिनकचित्प्रणि  
धातव्यानिअन्यत्रातुरोपकारार्था  
वाआतुरगतेष्वन्येषुवाभावेपु ।  
नचातुरकुलप्रवृत्तयोबहिर्निश्चार  
यितव्याः । ह्रासितश्चायुषःप्रमा  
णमातुरस्यनवर्णयितव्यंजानता  
पिच । तत्रयत्रोच्यमानमातुरस्य  
अन्यस्यवाप्युपधातायसम्पद्यते ।  
ज्ञानवतापिचनात्यर्थमात्मनोज्ञा  
नेनविकत्थितव्यम् । आप्तादपि  
हिविकत्थमानादत्यर्थमुद्विजन्ति  
अनेके ॥ १० ॥

और कदाचित्भी स्त्रीके दिये मांस-  
को भर्ताकी वा अध्यक्षकी आज्ञाके  
विना न ले और रोगीके कुलमें प्रवेश  
करता हुआ तू जताकर, अनुमत और  
प्रवेश करके पुरुषके संग, भली प्रकार  
अपने अंगोंको ढककर नीचेकी शिर किये  
स्मृतिमान् होकर नेत्र नीचे कर देखकर  
बुद्धि और मनके अनुसार इन सबका  
आचरण करके प्रवेश करना चाहिये  
और प्रवेश करके अपने वाणी, मन,  
बुद्धि, इंद्रिय, इनको आतुरके उपकारसे  
अन्यत्र न लगावै आतुरके जो अन्य  
भावहैं उनमें आतुरके कुलकी जो प्रवृत्ति  
( वर्ताव ) हैं उनको बाहिर न कहै और  
आयुकी हानिको और प्रमाणको जान-  
करभी न कहै क्योंकि जहां तहां कहा

हुआ आतुरके वा अन्यके नाशके लिये  
होताहै ज्ञानवान् होकरभी अपने ज्ञानकी  
श्लाघा न करनी क्योंकि कोई २ बड़ाई  
करने हारे आप्तवैद्यसेभी अत्यंत कंप  
जातेहैं ॥ १० ॥

नचैवहिअस्तिआयुर्वेदस्यपारं,त  
स्मादप्रमत्तःशश्वदभियोगमस्मिन्  
गच्छेत् । तदेवंकार्यमेवंभूयश्च  
प्रवृत्तस्यसौष्ठवमनुसूयतापरेभ्योऽ  
प्यगमयितव्यम् । कृत्स्नो  
हिलोकोबुद्धिमतामाचार्यःशत्रु  
श्चाबुद्धिमतामेतच्चाभिसमीक्ष्यबु  
द्धिमतामित्रस्यापिधन्यंयशस्य  
मायुष्यंपौष्टिकंलौकिकमभ्युपदि  
शतोवचःश्रोतव्यमनुविधातव्यञ्चे  
ति ॥ ११ ॥

और आयुर्वेदका पार नहीं है तिससे  
अप्रमत्त होकर निरंतर आयुर्वेदके ज्ञान  
को जानै तिससे इसप्रकार करै कि ऐसे  
फिरभी ऊंचे वर्तावकी उत्तमताकी अनिंदा  
और दुःखोंको जहां देखै वहां न जाना  
चाहिये क्योंकि संपूर्ण जगत् बुद्धिमानोंका  
आचार्य और मूर्खोंका शत्रु होताहै उस-  
कीभी देखकर बुद्धिमान् मनुष्य अमि-  
त्रकेभी धन्य यश आयु लोकके हितकारी  
उपदेशके वचनको सुनै और फिर करै  
इति ॥ ११ ॥

अतःपरमिदं ब्रूयाद्देवताग्निद्विजा  
तिगुरुवृद्धसिद्धाचार्य्येषु ते सम्यग्व  
र्त्तितव्यम् । तेषु ते सम्यग्वर्त्तमानस्या  
यमग्निः सर्वगन्धरसरत्नबीजानिय  
थेरिताश्वदेवताः शिवायस्युः अतः  
अन्यथाचावर्त्तमानस्याशिवाये  
ति । एवं ब्रुवति चाचार्य्ये शिष्यस्त  
थेति ब्रूयात् । यथोपदेशञ्च कुर्वन्न  
ध्याप्यो ज्ञेये अतः अन्यथा तु अन  
ध्याप्यः अध्याप्यमध्यापयन्न हि  
आचार्य्यो यथोक्तैश्चाध्यापनफलै  
र्योगमाप्नोति अन्यैश्चानुक्तैः श्रेयस्क  
रैर्गुणैः शिष्यमात्मानञ्च युनक्ति ।  
इति अध्यापनविधिरुक्तः ॥ १२ ॥

इससे परे यह कहै कि देवता अग्नि  
गुरु द्विजाति वृद्ध सिद्ध आचार्य इनमें  
तु भलीप्रकार वर्त्ताव करियो क्योंकि  
उनके विषे भलीप्रकार वर्त्तते हुये तेरेपर  
यह अग्नि और संपूर्ण गंधरस बीज और  
यथा कथित देवता जल ये कल्याणकारी  
होंगे और इससे अन्यथा वर्त्ताव करनेसे  
अकल्याणकारी होंगे, इसप्रकार आचा-  
र्यके कहनेपर शिष्य तथा ऐसे कहै  
अर्थात् आपकी आज्ञाके अनुसार वर्त्ताव  
करूंगा, गुरुके पूर्वोक्त उपदेशके  
अनुसार करता हुआ शिष्य पढ़ाने योग्य  
जानना इससे अन्यथा तो पढ़ानेके

अयोग्य जानना और पढ़ाने योग्यको  
पढ़ाता हुआ आचार्य शास्त्रोक्त पढ़ानेके  
फलोंके योगको प्राप्त होताहै और अन्य  
जो विना कहेभी कल्याणकारी गुणहैं  
उनसे अपनेको और शिष्यको युक्त कर-  
ताहै, यह अध्यापनकी विधि कहै ॥ १२ ॥

अध्ययनाध्यापनविधिवत्सम्भाषा  
विधिमत ऊर्द्ध्वव्याख्यास्यामः ।  
भिषग्भिषजासहसम्भाषेत । त  
द्विद्यसम्भाषाहिज्ञानाभियोगसंह  
र्षकरीभवति । वैशारद्यमपि चाभि  
निर्वर्त्तयति वचनशक्तिमपि चाधत्ते  
यशश्चाभिदीपयति । पूर्वश्रुते च सन्दे  
हवतः पुनः श्रवणाच्छ्रुतसंशयमपक  
र्षति । श्रुते चासन्देहवतो भूयोऽध्य  
वसायमभिनिर्वर्त्तयति । अश्रुतम  
पि च कञ्चिदर्थं श्रोत्रविषयमापादय  
ति । यच्चाचार्य्यः शिष्याय शुश्रूषवे  
प्रसन्नक्रमेणोपदिशति गुह्याभिमत  
मर्थजातम्, तत्परस्परसहजल्प  
नूपिण्डेन विजिगीषुराहसंहर्षात्  
स्मात्तद्विद्यसम्भाषामभिप्रशंसन्ति  
कुशलाः ॥ १३ ॥

अध्ययन और अध्यापनके समान  
इसके आगे संभाषा विधिको कहतेहैं,  
वैद्य वैद्यके संग संभाषण करै उस विद्वान्-  
नृके संग जो संभाषण है वह ज्ञानके



अभियोगका संहर्ष करताहै और विशारदताकोभी पैदा करताहै और वचन शक्ति करताहै यशका प्रकाश करता है और प्रथम सुने हुयेमें संदेह वालेके संदेहको नष्ट करता है और जिसको श्रुतमें संदेह नहीं है उसके अधिक निश्चयको पैदा करता है और विनाश्रुतभी किसी अर्थको कानोंमें सुना देताहै और जो आचार्य प्रसन्न होकर सेवक शिष्यको गुप्तसे गुप्तमाने हुये अर्थों के समूहका प्रसन्न क्रमसे उपदेश करताहै परस्पर पिंडसे संभाषण करता हुआ विजिगीषु पराये जीतनेके लिये उस गुप्त अर्थ कोभी कह देताहै तिससे कुशल मनुष्य तद्विद्य संभाषाकी प्रशंसा करतेहैं ॥ १३ ॥

द्विविधातुखलुतद्विद्यसंभाषाभवति सन्धायसंभाषाविगृह्यसंभाषाच । तत्रज्ञानविज्ञानवचनप्रतिवचनशक्तिसम्पन्नेनाकोपनेनअनुपस्कृतवियेनानसूयकेनअनुनयकोविदेन क्लेशक्षमेणप्रियसंभाषणेनचसहसन्धायसंभाषाविधीयते । तथा विधेनसहकथयन्विश्रब्धःकथयेत् पृच्छेदपिचविश्रब्धःपृच्छतेचास्मै विश्रब्धायविशदमर्थंब्रूयात् । न चनिग्रहभयादुद्विजेत् । निगृह्यचैनंनहृष्येत्, नचपरेषुविकल्थेत् । नचमोहादेकान्तग्राहीस्यात्, न

चाप्रस्तुतमर्थमनुवर्णयेत् । सम्यक् चानुनयेनानुनीयेत्, अनुनयाच्च परंतत्रचावहितःस्यादित्यनुलोमसंभाषाविधिः ॥ १४ ॥

और निश्चयसे तद्विद्य संभाषा दो प्रकारकी होती है कि मेल करके संभाषा और वैरसे संभाषा । उनमें ज्ञान विज्ञान वचन प्रतिवचन शक्ति इनसे युक्त और कोपसे हीन और गुप्त विद्यावान् और असूयासे हीन प्रार्थनामें चतुर क्लेशका सहनशील प्रियका संभाषी जो है उसके संग मेलसे जो संभाषा की जाती है उसके तुल्यके संग कहता हुआ विश्वाससे कहताहै और पूछताहै और पूछते हुए और विश्वासी इसको विशदभी अर्थको कहताहै और निग्रहके भयसे नहीं कंपताहै और दूसरेको निग्रह करके आनंद नहीं मानता और अन्योके आगे बड़ाई करताहै और न मोहसे एकांत पक्षको ग्रहण करताहै और विना कहे हुये अर्थका वर्णनभी नहीं करता और भलीप्रकार नम्रतासे नम्रता करताहै और प्रार्थनामें सावधान रहताहै यह अनुलोम संभाषाकी विधिहै ॥ १४ ॥

अतऊर्द्धमितरेणसहविगृह्यसंभाषेतश्रेयसायोगमात्मनःपश्यन् । प्रागेवचजल्पाज्जल्पान्तरंपरावरान्तरंपरिषद्विशेषांश्चसम्यक्परीक्षेतसम्यक्परीक्षाहिबुद्धिमतांकार्यप्रवृत्ति

निवृत्तिकालौचशंसति । तस्मात्  
परीक्षामतिप्रशंसन्तिकुशलाः ।  
परीक्षमाणस्तुखलुपरावरान्तरामि  
माञ्जल्पकगुणाञ्छेयस्करांश्चदो  
पवतश्चपरीक्षेतसम्यक् । तद्यथा,  
श्रुतविज्ञानधारणप्रतिभानवचन  
शक्तिरित्येतान्गुणाञ्छेयस्कराना  
हुः । इमान्पुनर्दोषवतःकोपनत्व  
मवेशारद्यभीरुत्वमनवहितत्वमि  
ति । एतान्द्वयानपिगुणान्गुरुला  
घववतःपरस्यचैवात्मनश्चतोल  
येत् ॥ १५ ॥

इसके आगे इतरके संग विग्रह करके  
संभाषामें आत्माके कल्याणको देखता  
हुआ संभाषण करै और बोलनेसे पहि-  
लेही जल्पान्तर पर अवरमें आतुर अर्थात्  
आगे पीछेके निश्चय हीनकी और परिपत्तं  
विशेषोंकी भलीप्रकार परीक्षा करै क्योंकि  
सम्यक् परीक्षा बुद्धिमानोंको कार्यकी  
प्रवृत्ति और निवृत्तिके कालोंको कह  
देतीहै तिससे कुशल मनुष्य परीक्षाकी  
प्रशंसा करतेहैं, पर अवरमें आतुरकी  
परीक्षा करता हुआ जल्पकके इन गुणोंकी  
भलीप्रकार परीक्षा करै किये कल्याण-  
कारीहैं और ये दोषवानहैं वह ऐसेहैं कि  
श्रुतविज्ञान धारण प्रतिभान वचन शक्ति  
इन गुणोंको कल्याणकारी कहतेहैं और  
इनको पुनः दोषवान् कहतेहैं कि कोपन

विशारदताका अभाव भीरुता असाव-  
धानता इन दोनों गुणोंकेभी गुरु लाघ-  
वको पराये और अपनेमें तोलै ॥ १५ ॥

तत्रत्रिविधःपरःसम्पद्यते,प्रवरः  
प्रत्यवरःसमोवागुणविनिक्षेपतो  
त्वेवंकात्स्न्येन ॥ १६ ॥

तहां तीन प्रकारका पर होता है कि  
उत्तम न्यून और सम, गुणके विनिक्षेप  
से संपूर्ण रूप प्रकारसे पर होताहै ॥ १६ ॥

परिपच्चखलुद्विविधा, ज्ञानवती  
मूढपरिपच्च, सैवद्विविधासतीत्रि  
विधापुनरनेनकारणविभागेनसुहृ  
त्परिपत्, उदासीनपरिपत्प्रतिनि  
विष्टपरिपच्चेति ॥ १७ ॥

और परिपत् ( सभा ) दो प्रकारकी  
होती है कि ज्ञानवती और मूढ परिपत्  
वही दो प्रकारकी हुई इस कारणके  
विभागसे तीन प्रकारकी है कि  
सुहृत्परिपत् उदासीन परिपत् प्राति  
निविष्ट ( पंडित ) परिपत् ॥ १७ ॥

तत्रप्रतिनिविष्टायांपरिपदिज्ञानवि  
ज्ञानवचनप्रतिवचनशक्तिसम्पन्ना  
यामूढायांवानकथञ्चित्केनचित्  
सहजल्पोविधीयते । मूढायान्तु  
सुहृत्परिपदिउदासीनायांवाज्ञान-  
विज्ञानमन्तरेणाप्यदीप्तयशसा  
महाजनद्विष्टेनसहजल्पोविधीयते ।

तद्विधेन च सह कथयता आविद्ध  
दीर्घसूत्रसंकुलैर्वाक्यदण्डकैः क  
थयितव्यम् । अतिहृष्टं मुहुर्मुहुरूप  
हसतापरं निरूपयता च परिपदमा  
कारैर्ब्रुवतश्चास्य वाक्यावकाशो  
न देयः । कष्टशब्दश्च ब्रुवन्वक्तव्यो  
नोच्यत इति । अथवा पुनर्हीना  
ते प्रतिज्ञेति पुनश्चाह्वयमानः प्रतिव  
क्तव्यः । परिसंवत्सरं भवान् शिक्ष  
तांतावत् । अथवा पार्ष्णीमेता  
वक्ते । सकृदेव हि पारिक्षेपिकं नि  
हितं निहतमाहुरिति । नास्य योगः  
कर्त्तव्यः कथञ्चिदप्येवं श्रेयसा सह  
विगृह्य वक्तव्यमित्याहुरेके । न  
त्वेवं ज्यायसा सह विग्रहं प्रशंसन्ति  
कुशलाः ॥ १८ ॥

उनमें प्रतिनिविष्ट परिषत्में वा ज्ञान  
विज्ञान प्रतिवचन इनकी शक्तिसे युक्त  
भी मूढ परिषत्में किसी प्रकार भी किसीके  
संग जल्प नहीं करना और मूढा सुहृ-  
त्परिषत्में वा उदासीन परिषत्में अत्यंत  
ज्ञानी और विज्ञानीके विना भी जिसके  
यशका प्रकाश नहीं है महाजनोंका जो  
शत्रु है उसके संग जल्प कहा है उस  
प्रकारके संग कथन करे तो मनुष्यको  
विधेहुये दीर्घ संकुल वाक्योंके दंड-  
कोंसे कहना चाहिये और अत्यंत हर्षसे

वारंवार हँसता रहे उत्तम रूप रखे और  
आकारोंसे परिपदको कहते हुये इसको  
अवसर न देना कष्ट शब्दको कहता  
होय तो यह कहने योग्य है कि ऐसा  
न कहो अथवा पुनः तेरी प्रतिज्ञा हीन  
है और फिर बुलाकर वह कहने योग्य  
है कि परि संवत्सर हो जाय अर्थात्  
एक वर्ष तक न बोलियो, प्रथम  
पूर्ण शिक्षा लो इतना एक बार भी पारि-  
क्षेपिक स्थापन किया तेरा नष्ट है यह  
कहते हैं इसका योग तुझे किसी प्रकार  
भी न करना चाहिये इस प्रकार उत्तम  
के संग विग्रह करके कहना चाहिये  
यह कोई कहते हैं और कुशल मनुष्य  
तो बड़ोंके संग ऐसे विग्रहकी प्रशंसा  
को नहीं करते हैं ॥ १८ ॥

प्रत्यवेरेण तु सह समानाभिमेतेन वा  
विगृह्य जल्पता सुहृत्परिषदिकथ  
यितव्यम् । अथवा प्युदासीनप  
रिषदि अनवधानश्रवणज्ञानविज्ञा  
नोपधारणवचनशक्तिसम्पन्नायां  
कथयता चावहितेन परस्य साद्गु  
ण्यदोषबलमवेक्षितव्यम् । सम  
वेक्ष्य च यत्रैनं श्रेष्ठं मन्येत नास्य तत्र  
जल्पं योजयेत् अनाविष्कृतमयोगं  
कुर्वन् । यत्र त्वेन मवरं मन्येत तत्रै  
वैनमाशुनिगृहीयात् ॥ १९ ॥

और छोटेके संग वासम माने हुयेके संग विग्रहसे जल्प करते हुएकी सुहृत्परिषत्में कहना चाहिये अथवा उदासीन परिषत्मेंभी अवधारण श्रवण ज्ञान विज्ञान उपधारण वचन शक्ति इनसे संपन्न होनेपरभी कथन करता हुआ सावधानीसे पराये श्रेष्ठ गुण और दोषोंके बलको देखना चाहिये और भली प्रकार देखकर जिसमें और अयोगको प्रकट न करता हुआ और जिसको श्रेष्ठ माने उसमें इसके संग जल्पका योग न करे जिसमें इसको न्यून समझे उसमें इसका शीघ्र निग्रह करे ॥ १९ ॥

तत्रगुणाल्बिमप्रत्यवराणामाशुनि ग्रहेभवन्तिउपायाः । तद्यथा; श्रुतहीनमहतासूत्रपाठेनाभिभवेत् विज्ञानहीनंपुनःकष्टशब्देनवाक्ये न,वाक्यधारणाहीनमाविद्धदीर्घ संकुलैर्वाक्यदण्डकैः,प्रतिभाहीनं पुनर्वचनेनानेकविधेनानेकार्थवा चिन्ता, वचन-शक्तिहीनमर्द्धोक्तस्य वाक्यस्याक्षेपेण, अविशारदमपत्रपणेन, कोपनमायासनेन, भीरुं वित्रासनेन, अनवहितनियमनेन इत्येवमेतैरुपायैरवरमभिभवेत् २०

उसमें निश्चयसे ये उपाय प्रत्यवरोके शीघ्र निग्रहमें हैं वे ऐसे हैं कि श्रुतसे हीनका महान् सूत्र पाठसे तिरस्कार करे

विज्ञानसे हीनका कष्ट शब्दोंसे युक्त वाक्यसे, वाक्यकी धारणासे हीनका आविद्ध दीर्घ संकुल रूप वाक्य दण्डकोंसे प्रतिभासे हीनका अनेक प्रकारके अर्थवाद रूप वचनसे वचन शक्तिसे हीनका अर्द्धोक्त वाक्यके आक्षेपसे अविशारदका अपहेपण ( लज्जाका त्याग ) से कोपनका आयासनसे भीतका वित्रासनसे अनवहितका नियमनसे तिरस्कार वा पराजय करे, इसप्रकार इन उपायोंसे अवरका शीघ्र पराजय करे ॥ २० ॥

विगृह्यकथयेद्युक्तयायुक्तञ्चन निवारयन् । विगृह्यभापातीव्रं हिकेपाश्चिद्रोहमावहेत् ॥ २१ ॥

इस प्रकार वादके प्रवृत्त होनेपर वादसे पहिलेही प्रथमतो यह करनेका यत्न करे परिषत् है आश्रय जिसका ऐसा अपना जो प्रकरण मेल करके उसको कहै ॥ २१ ॥

नाकार्ग्यमस्ति कुद्धस्य नावाच्यमपिविद्यते । कुशलानाभिनन्दन्ति कलहंसमितौ सताम् ॥ २२ ॥

अथवा परको अपना पक्ष अत्यंत दुर्गम हो अथवा परिषत्में परको अत्यंत विमुख करे कि इकट्ठी हुई परिषत्में हम कहने को असमर्थ हैं ऐसे तूष्णीं बैठ जाय २२

एवंप्रवृत्तेतुवादेप्रागेववादात्ताव दिदंकर्तुंयतेत । सन्धायपरिषदाऽयनभूतमात्मनःप्रकरणमादेश

यितव्यम् । यद्वापरस्यभृशदुर्ग  
स्यात् । पक्षमथवापरस्यभृशंवि  
मुखमानयेत् । परिषदिचोपसं  
हितायामशक्यमस्माभिर्वक्तुमि  
तितूष्णीमासीदपैवचेत्परिषद्य  
थेष्टंयथायोग्यंयथाभिप्रायंवादं  
वादमर्ग्यादाश्चस्थापयिष्यतीत्यु  
क्ता ॥ २३ ॥

यही परिपत् यथेष्ट और यथायोग्य  
और यथाभिप्राय तरे वादका और  
वादकी मर्यादाका स्थापन करेगी यह  
कहकर ॥ २३ ॥

तत्रेदंवादमर्ग्यादालक्षणंभवतिइदं  
वाच्यमिदमवाच्यमेवंसतिपराजि  
तोभवतीति इमानिखलुपदानि  
भिषग्वादमार्गज्ञानार्थमधिगम्या  
निभवन्ति । तद्यथावादोऽद्रव्यं,  
गुणाः, कर्म, सामान्यं, विशेषः,  
समवायः, प्रतिज्ञा, स्थापना, प्रति  
ष्ठापना, हेतुः, उपनयः, निगमनम्;  
उत्तरं, दृष्टान्तः, सिद्धान्तः, शब्दः,  
प्रत्यक्षम्, अनुमानम्, औपम्यम्,  
ऐतिह्यं, संशयः, प्रयोजनं, सव्य  
भिचारं, जिज्ञासा, व्यवसायः,  
अर्थप्राप्तिः, सम्भवः, अनुयोज्यम्,  
अननुयोज्यम्, अनुयोगः, प्रत्यनु

योगः, वाक्यदोषः, वाक्यप्रशंसा,  
छलम्, अहेतुः, अतीतकालम्, उपा  
लम्भः, परिहारः, प्रतिज्ञाहानिः, अ  
भ्यनुज्ञा, हेत्वन्तरम्, अर्थान्तरं,  
निग्रहस्थानमिति ॥ २४ ॥

उसमें वादमर्यादाका लक्षण यह है  
यह कहने योग्य है और यह अयोग्य है  
ऐसा होनेपर तू पराजित हो जायगा  
इति । और ये पद वैद्य वाद मार्गके ज्ञा  
नार्थ जानने के ऐसे हैं कि वाद द्रव्य  
गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय  
प्रतिज्ञा स्थापना प्रतिष्ठापना हेतु उपनय  
निगमन उत्तर दृष्टान्त सिद्धान्त शब्द  
प्रत्यक्ष औपम्य ऐतिह्य अनुमान संशय  
प्रयोजन सव्यभिचार जिज्ञासा व्यवसाय  
अर्थप्राप्ति संभव अनुयोज्य अननुयोज्य  
अनुयोग प्रत्यनुयोग वाक्यदोष वाक्य  
प्रशंसा छल अहेतु अतीतकाल उपालम्भ  
परिहार प्रतिज्ञा हानि अभ्यनुज्ञा हेत्वन्तर  
अर्थान्तर निग्रहस्थान इति ॥ २४ ॥

तत्रतुवादः । वादोनामयः परस्पर  
रेणसहशास्त्रपूर्वकं विगृह्यकथ  
यति । सवादोद्विविधः संग्रहेण;  
जल्पोवितण्डाच । तत्रपक्षाश्रित  
योर्वचनंजल्पः । जल्पविपर्ययो  
वितण्डा । यथैकस्यपक्षः पुनर्भ  
वोऽस्तीतिनास्तीत्यपरस्य । तौ  
च स्वपक्षंस्वहेतुभिःस्वस्वपक्षं

स्थापयतःपरपक्षमुद्रावयतःएष  
जल्पोजल्पविपर्ययोवितण्डा ।  
वितण्डानामपरपक्षेदोषवचनमा  
त्रमेवमेव ॥ २५ ॥

उनमें वाद वह प्रसिद्ध है जो परस्पर  
विग्रह करके शास्त्रके अनुसार कहा जाय  
वह वाद संग्रहसे दो प्रकारका है जल्प  
और वितंडा उनमें अपने २ पक्षोंमें  
जो वर्तमान उनका वचन जल्प और  
जल्पसे विपरीत वितंडा कहाती है जैसे  
एकका पक्ष यह है कि पुनः जन्म है  
दूसरेका पक्ष नहीं है यह है वे दोनों  
अपने २ पक्षको अपने २ हेतुओंसे स्था-  
पन और पर पक्षमें दोष प्रकट करें यह  
जल्प है और जल्पसे विपरीत वितंडा  
वितंडानाम यह है कि परके पक्षमें  
दोषोंकोही कहना ॥ २५ ॥

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसम-  
वायाःस्वलक्षणैःश्लोकस्थाने पूर्व  
मुक्ताः ॥ २६ ॥

द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष सम-  
वाय इनको अपने अपने लक्षणमेंसे सूत्र-  
स्थानमें पहिले कह आये ॥ २६ ॥

अथ प्रतिज्ञानामसाध्यवचनंयथा  
नित्यःपुरुषइति ॥ २७ ॥

प्रतिज्ञाकानाम साध्यके वचनका है  
जैसे पुरुष नित्य है ॥ २७ ॥

अथस्थापना ।

स्थापनानामतस्याएवप्रतिज्ञाया

हेतुदृष्टान्तोपनयनिगमैःस्थापना,  
पूर्वहिप्रतिज्ञा,पश्चात्स्थापनाकिंन्य  
प्रतिज्ञातंस्थापयिष्यतियथानित्यः  
पुरुषइतिप्रतिज्ञाहेतुरकृतकत्वादि  
ति । दृष्टान्तोयथाकाशंतच्चनित्य  
म् । उपनयोयथाचाकृतकमाका  
शंतथापुरुषः । निगमनंतस्मान्नि  
त्य इति ॥ २८ ॥

अब स्थापनाको कहते हैं—स्थापना  
यह है कि तिसी प्रतिज्ञाकी हेतु दृष्टांत  
उपनय निगमनोंसे स्थापना करनी पहिले  
प्रतिज्ञा पश्चात् स्थापना क्योंकि अप्र-  
तिज्ञात किये किसका स्थापन करेगा,  
जैसे नित्य पुरुष है यह प्रतिज्ञा है और  
अकृतक होनेसे यह हेतु है दृष्टांत यह है  
कि जैसे अकृतक आकाश है और वह  
नित्य है उपनय यह है कि जैसे अकृतक  
( विनाकिया ) आकाश नित्य है तैसे  
पुरुष भी नित्य है निगमन यह है कि  
तिससे नित्य है ॥ २८ ॥

अथप्रतिष्ठापनानामयापरप्रतिज्ञा  
याःप्रतिविपरीतार्थस्थापना । य  
थाअनित्यपुरुषःइतिप्रतिज्ञाहेतुरै  
न्द्रियकत्वात् । दृष्टान्तोयथाघट  
ऐन्द्रियकःसच्चानित्यः । उपनयो  
यथाघटस्तथापुरुषःतस्मादनि  
त्यइति ॥ २९ ॥

प्रतिष्ठापना नाम यहहै कि जो पराई प्रतिज्ञाके प्रतिविपरीत अर्थकी स्थापना, जैसे अनित्य पुरुषहै यह प्रतिज्ञाहै ऐंद्रियक होनेसे यह हेतुहै दृष्टांत यहहै जैसे घटऐंद्रियकहै वह अनित्यहै उपनय यहहै जैसा घट तैसा पुरुषहै तिससे अनित्यहै ॥ २९ ॥

अथहेतुः ।

हेतुर्नामोपलब्धिकारणतत्प्रत्यक्ष  
मनुमानमैतिह्यमौपम्यमित्येभिर्हेतु  
भिर्विदुषलभ्यतेतत्त्वम् ॥ ३० ॥

अब हेतुको कहतेहैं हेतु नाम यह है कि जो उपलब्धिका कारण हो वह प्रत्यक्ष अनुमान ऐतिह्य ते औपम्य इन हेतुओंसे जो उपलब्ध होताहै वह तत्त्वहै ॥ ३० ॥

उपनयोनियमनञ्चोक्तस्थापनाप्र  
तिष्ठापनाव्याख्यायाम् ॥ ३१ ॥

स्थापना और प्रतिष्ठापनाकी व्याख्यामें उपनय और निगमन कहे ॥ ३१ ॥

अथउत्तरं नामसाधर्म्योपदिष्टेवा  
हेतौवैधर्म्यवचनंवैधर्म्योपदिष्टेवा  
साधर्म्यवचनंयथाहेतुसधर्माणो  
विकाराःशीतकस्यहिंव्याधेर्हेतुसा  
धर्म्यवचनंहिमशिशिरवातसंस्पर्  
शादितिब्रुवतःपरोब्रूयाद्धेतुविध  
र्माणोविकाराःयथाशरीरावयवा  
नांदाहौष्ण्यकोथप्रपचनेहेतुवैधर्म्यं  
हिमशिशिरवातसंस्पर्शादिति ।

एतत्सविपर्ययमुत्तरम् ॥ ३२ ॥

इसके अनंतर उत्तर नाम यहहै कि साधर्म्यमें कहे हेतुमें वैधर्म्य वचन और वैधर्म्य उपदिष्टमें साधर्म्य वचन जैसे विकार, हेतु सधर्म होतेहैं शीतकी व्याधिका हेतु साधर्म्य वचन जैसे यह है कि हिम शिशिर वातका संस्पर्श, इस कहते हुये को, दूसरा यह कहै कि हेतुके विधर्मी विकारहैं जैसे शरीरके अवयवोंका दाहक होनेपरभी अतपनमें हेतु वैधर्म्य यह है कि हिम शिशिर वातका स्पर्शहैं इति, यह विपर्यय सहित उत्तरहै ॥ ३२ ॥

अथदृष्टान्तः—दृष्टान्तोनामयत्रमू  
र्खविदुषांबुद्धिसाम्यंयोवर्ण्यवर्ण  
यति । यथाग्निरुष्णोद्रवमुदकं  
स्थिरापृथिवीआदित्यःप्रकाशक  
इतियथावादित्यःप्रकाशकस्तथा  
सांख्यवचनंप्रकाशकमिति ॥ ३३ ॥

दृष्टांत नाम यह है कि मूर्ख और विद्वानोंके मध्यमें जो बुद्धि साम्यके अनुसार वर्णन योग्यका वर्णन करै जैसे अग्नि उष्ण, जल द्रव, पृथिवी स्थिर, आदित्य प्रकाशकहै जैसे आदित्य प्रकाशकहै ऐसा सांख्य वचनभी प्रकाशकहै ॥ ३३ ॥

अथ सिद्धान्तः—सिद्धान्तोनाम  
यःपरीक्षकैर्बहुविधंपरीक्ष्यहेतुभिः  
साधयित्वास्थाप्यतेनिर्णयःससि  
द्धान्तः । सचोक्तश्चतुर्विधः । स  
चतुर्विधःसर्वतन्त्रसिद्धान्तः । प्र

तितन्त्रसिद्धान्तोऽधिकरणसिद्धान्तोऽभ्युपगमसिद्धान्तइति ॥ ३४ ॥

अब सिद्धांतको कहते हैं सिद्धांत नाम यह है कि जो परीक्षकोंसे अनेक प्रकारसे हेतुओंके द्वारा साधन करके स्थापन किया जाय वह निर्णय सिद्धांत है वह चार प्रकारका कहा है कि सर्वतंत्र सिद्धांत प्रतितंत्र सिद्धांत अधिकरण सिद्धांत अभ्युपगम सिद्धांत ॥ ३४ ॥

तत्रसर्वतन्त्रसिद्धान्तोनामतस्मिंस्तस्मिन्सर्वस्मिंस्तन्त्रे तत्प्रसिद्धं सन्तिनिदानानिसंतिव्याधयः सन्ति सिद्ध्युपायाः साध्यानामिति ३५ ॥

उनमें सर्वतंत्र सिद्धांत यह है कि निदान हैं व्याधि हैं साध्योंको सिद्धिके उपाय हैं इति ॥ ३५ ॥

प्रतितन्त्रसिद्धान्तोनामतस्मिंस्तस्मिंस्तन्त्रे तत्तत्प्रसिद्धं यथान्यत्राष्टौ रसाः षडन्यत्र । पञ्चेन्द्रियाणि यथान्यत्र पण्डिन्द्रियाणि । वातादिकृताः सर्वविकारा यथान्यत्र वातादिकृता भूतकृताश्च प्रसिद्धाः ३६

प्रतितंत्र सिद्धांत नाम यह है कि जिस २ तंत्रमें सो २ प्रसिद्ध है जैसे अन्यत्र आठ रस हैं और अन्यत्र छः रस हैं जैसे अन्यत्र पांच इंद्रिय हैं और अन्यत्र छः इंद्रिय हैं जैसे सब विकार वातके अधिकृत हैं जैसे अन्यत्र वात आदिसे कृत और भूत कृत प्रसिद्ध हैं ॥ ३६ ॥

अधिकरणसिद्धान्तोनामसयस्मिन्नधिकरणे संस्तूयमाने सिद्धान्यन्यान्यपि अधिकरणानि भवन्ति । यथानमुक्तः कर्मानुबन्धिकं कुरुते निस्पृहत्वादिति प्रस्तुते सिद्धाः कर्मफलमोक्षपुरुषप्रेत्यभावा भवन्ति ॥ ३७ ॥

अधिकरण सिद्धांत नाम यह है कि जिस २ अधिकरणके स्तुति करनेमें अर्थात् वर्णन करनेमें अन्यभी अधिकरण सिद्ध होते हैं जैसे मुक्त, कर्मानुबन्धिक कर्म ( सकाम ) को निस्पृह होनेसे नहीं करता है इस प्रस्तावमें कर्म फल मोक्ष पुरुष प्रेत्यभाव सिद्ध होते हैं ॥ ३७ ॥

अभ्युपगमसिद्धान्तोनामयमर्थमसिद्धमपरीक्षितमनुपदिष्टमहेतुकं वावादकालेऽभ्युपगच्छन्ति ज्ञिपजः । तद्यथा;—द्रव्यं प्रधानमिति कृत्वा वक्ष्यामः । गुणः प्रधानम् इति कृत्वा वक्ष्याम इत्येवमादिश्च तुर्विधः सिद्धान्तः ॥ ३८ ॥

अभ्युपगम सिद्धांत नाम यह है कि जिस असिद्ध अपरीक्षित अनुपदिष्ट अहेतुक अर्थको वादके कालमें वैद्य स्वीकार करते हैं वह ऐसे हैं कि द्रव्य प्रधान नहीं है यह करके कहेंगे गुण प्रधान हैं यह कहकर कहेंगे इत्यादि चार प्रकारका सिद्धांत है ॥ ३८ ॥



शब्दोनामवर्णसमाम्नायः सचतु  
विधः दृष्टार्थश्चादृष्टार्थश्च सत्यश्चा  
नृतश्चेति । तत्र दृष्टार्थस्त्रिभिर्हेतु  
भिर्दोषाः प्रकुप्यन्ति पडभिरुपक्र  
मैश्च प्रशाम्यन्ति । श्रोत्रादिसद्भा  
वेशब्दादिग्रहणमिति अदृष्टार्थः पु  
नरस्ति प्रेत्यभावोऽस्ति मोक्षइति  
सत्योनामयथार्थभूतः । सन्त्या  
युर्वेदोपदेशाः । सन्त्युपायाः सा  
ध्यानाम् । सन्त्यारम्भफलानीति ।  
सत्यविपर्ययाच्चानृतम् ॥ ३९ ॥

शब्द नाम वर्णका समाम्नाय है वह  
चार प्रकारका है कि दृष्टार्थ है और  
अदृष्टार्थ है सत्य है और अनृत है उनमें  
दृष्टार्थ यह है कि तीन हेतुओंसे दोष  
कोपको प्राप्त होते हैं और छः उप-  
क्रमोंसे शांत होते हैं, श्रोत्र आदिके  
सद्भावसे शब्द आदिका ग्रहण होता है  
यह अदृष्टार्थ है और प्रेत्यभाव है मोक्ष है  
यह सत्य है, सत्य नाम यथार्थ भूतका है  
जैसे वे आयुर्वेद उपदेश हैं और साध्योंके  
उपाय हैं आरंभके फल हैं और सत्यके  
विपर्ययसे अनृत है ॥ ३९ ॥

अथ प्रत्यक्षम् । प्रत्यक्षं नाम तय  
दात्मनापञ्चोन्द्रियैश्च स्वयमुपलभ्य  
ते । तत्रात्मप्रत्यक्षाः सुखदुःखे  
च्छाद्वेषादयः । शब्दादयस्त्वि  
न्द्रियप्रत्यक्षाः ॥ ४० ॥

अब प्रत्यक्षको कहते हैं प्रत्यक्ष नाम  
वह है जो आत्मा और इंद्रियोंसे उप-  
लब्ध हो उनमें आत्माके प्रत्यक्ष सुख  
दुःख इच्छा द्वेष आदि हैं और शब्द  
आदि इंद्रियोंके प्रत्यक्ष हैं ॥ ४० ॥

अनुमानं नाम तर्कयुक्त्यपेक्षो यथो  
क्तमग्निजरणशक्त्या बलं व्याया  
मशक्त्या श्रोत्रादीनि शब्दादिग्रहणे  
नेन्द्रियाणीत्येवमादिः ॥ ४१ ॥

अनुमान नाम युक्तिका अपेक्ष तर्क है  
जैसे कहा है कि अग्निकी जरण शक्तिसे  
बलको व्यायाम शक्तिसे श्रोत्र आदि  
इंद्रियोंको शब्द आदिके ग्रहणसे जानें  
इत्यादि ॥ ४१ ॥

अथ औपम्यम् । औपम्यं नाम  
यदन्येनान्यस्य सादृश्यमधिकृत्य  
प्रकाशनं यथा दण्डेन दण्डकस्य ध  
नुषा धनुष्टम्भस्य इष्वासिना आरोग्य  
दस्येति ॥ ४२ ॥

औपम्य नाम यह है कि, जो अन्यसे  
अन्यके सादृश्यका अधिकार करके  
प्रकाश करना जैसे दंडककी दंडसे धनु-  
षके स्तंभनकी धनुषसे आरोग्य दाताकी  
बाणके फेंकनेसे उपमा दी जाती है ॥ ४२ ॥

अथ ऐतिह्यम् । ऐतिह्यं नाम आ  
प्तोपदेशो वेदादिः ॥ ४३ ॥

ऐतिह्य नाम वेद आदि आप्तोंका  
उपदेश है ॥ ४३ ॥

अथ संशयः । संशयोनामसन्दि-  
ग्धेष्वर्थेषु अनिश्चयः । यथाकि-  
मकालमृत्युरस्ति नास्तीति ॥ ४४ ॥

संशय नाम यह है कि संदिग्ध अर्थों में  
अनिश्चय क्या अकाल मृत्यु है वा  
नहीं है ॥ ४४ ॥

अथ प्रयोजनम् । प्रयोजनं नाम  
यदर्थमारभ्यन्त आरम्भाः । यथा  
यद्यकालमृत्युरस्ति ततोऽहमा-  
त्मानमायुष्यैरुपचरिष्यामि अना-  
युष्याणि च परिहरिष्यामि कथं मा-  
मकालमृत्युः प्रसहेतेति ॥ ४५ ॥

प्रयोजन नाम जिसके लिये आरं-  
भोंका आरंभ किया जाता है जैसे यदि  
अकाल मृत्यु है तिससे मैं आत्माको  
आयुकी दाता औषधोंसे उपचार करूंगा  
और अनायुष्योंका त्याग करूंगा कैसे  
मुझे अकाल मृत्यु प्रसह करेगी ॥ ४५ ॥

अथ सव्यभिचारम् । सव्यभि-  
चारं नाम यद्व्यभिचरणं यथा भवे-  
दिदमौषधं तस्मिन् व्याधौ यौगिक-  
मथवानेति ॥ ४६ ॥

सव्यभिचार नाम जो व्यभिचार है जैसे  
यह औषध इस व्याधिमें योग्य है वा  
नहीं ॥ ४६ ॥

अथ जिज्ञासा । जिज्ञासानामप-  
रीक्षायथाभेषजपरीक्षोत्तरकाल-  
मुपदेक्ष्यते ॥ ४७ ॥

जिज्ञासा नाम परीक्षा का है जैसे भेषज  
परीक्षाके उत्तरकालमें उपदेश करेंगे ४७

अथ व्यवसायः । व्यवसायोना-  
मनिश्चयः यथा वातिक एवायं व्या-  
धिरिदमेवास्य भेषजमिति ॥ ४८ ॥

व्यवसाय नाम निश्चय का है जैसे यह  
व्याधि वातिक ही है और यही इसकी  
औषध है ॥ ४८ ॥

अथार्थप्राप्तिः । अर्थप्राप्तिर्नाम  
यत्रैकै नार्थं नोक्तेन अपरस्यार्थस्या-  
नुक्तस्य सिद्धिः । यथानायसं-  
तर्पणसाध्यो व्याधिरित्युक्ते भव-  
त्यर्थप्राप्तिरतर्पणसाध्योऽयमि-  
ति । नानेन दिवा भोक्तव्यमिति  
उक्ते भवत्यर्थप्राप्तिर्निशि भोक्तव्य-  
मिति ॥ ४९ ॥

अर्थ प्राप्ति नाम जैसे एक कहे हुये  
अर्थसे अनुक्तभी दूसरे अर्थकी सिद्धि  
होती है जैसे यह संतर्पणसाध्य व्याधि  
नहीं है यह कहनेसे अतर्पण साध्य है  
यह सिद्ध होता है, इसको दिनमें भोजन  
न करना यह कहनेपर इस अर्थकी  
प्राप्ति होती है कि रात्रिमें भोजन करना  
योग्य है ॥ ४९ ॥

अथ सम्भवः । सम्भवो नाम योय-  
तः सम्भवति स तस्य सम्भवः । य-  
था षड्धातवोगर्भस्य व्याधेरहितं  
हितमारोग्यस्येति ॥ ५० ॥

संभव नाम यह है कि जो जिससे होता है वह उसका संभव है जैसे छःधातु, गर्भकी व्याधिका अहित हैं, आरोग्यका हित है ॥ ५० ॥

अथानुयोज्यम् । अनुयोज्यं नाम यद्वाक्यं वाक्यदोषयुक्तं तदनुयोज्यमुच्यते । सामान्योदाहृतेष्वर्थेषु वा विशेषग्रहणार्थं तद्वाक्यमनुयोज्यम् । यथा संशोधनसाध्योऽयं व्याधिरित्युक्ते किं वमनासाध्यः किं विरेचनसाध्य इत्यनुयुज्यते ॥ ५१ ॥

अनुयोज्य नाम यह है जो वाक्य वाक्यके दोषसे युक्त है वह अनुयोज्य कहा जाता है वा सामान्यसे कहे हुये अर्थोंमें ग्रहणके लिये जो वाक्य वह अनुयोज्य होता है जैसे यह व्याधि संशोधनसाध्य है यह कहनेपर क्या वमन साध्य है वा विरेचन साध्य है यह अनुयोग किया जाता है ॥ ५१ ॥

अथाननुयोज्यम् । अननुयोज्यं नामातो विपर्ययेण यथायमसाध्यः ॥ ५२ ॥

अननुयोज्य नाम इससे विपरीत रूपसे होता है, जैसे यह असाध्य है ॥ ५२ ॥

अथ अनुयोगः । अनुयोगो नाम यत्तद्विधानां तद्विधैरेव सार्द्धं तन्त्रे तन्त्रैकदेशे वा प्रश्नः प्रश्नैकदेशो वा ज्ञानविज्ञानवचनपरीक्षार्थमादि

श्यते । अथवानित्यः पुरुष इति प्रतिज्ञाते यत्परः को हेतुरित्याह सोऽनुयोगः ॥ ५३ ॥

अनुयोग नाम यह है कि तिस विद्यावानोंका तिसी विद्यावानोंके संग सार तंत्र तंत्रका एकदेश प्रश्न वा प्रश्नका एक देश, ज्ञान वचन विज्ञान परीक्षाके लिये कहा जाय, अथवा पुरुष नित्य है इस प्रतिज्ञा करनेपर जो पर ( दूसरा ) यह कहै कि कौन हेतु है वह अनुयोग है ॥ ५३ ॥

अथ प्रत्यनुयोगो नाम अनुयोगस्यानुयोगः । यथा अनुयोगस्य पुनः को हेतुरिति ॥ ५४ ॥

प्रत्यनुयोग नाम यह है कि अनुयोगका अनुयोग जैसे अनुयोगका पुनः कौन हेतु है यह है ॥ ५४ ॥

अथ वाक्यदोषः । वाक्यदोषो नाम यथा खल्वस्मिन्नर्थे न्यूनमधिकमनर्थकमपार्थक्यं विरुद्धञ्चेति ॥ ५५ ॥

वाक्य दोष नाम यह है कि जैसे खलु इस अर्थमें न्यून अधिक अनर्थक अपार्थक्य और विरुद्ध कहना ॥ ५५ ॥

अत्र हेतूदाहरणोपनयनिगमनानामन्यतमेनापिन्यूनं न्यूनं भवति यद्वा बहूपदिष्टहेतुकमेकेन साध्यते हेतु

नातच्चन्यूनं एतानि ह्यन्तरेण प्रकृतौ  
पर्यर्थः प्रणश्येत् ॥ ५६ ॥

उसमें हेतु उदाहरण उपनय निगमन  
इनमेंसे किसी एकसे न्यून जो हो उसे न्यून  
कहते हैं यद्वा बहुतसे हेतुओंसे उपदिष्ट  
का एक हेतुसे सिद्ध करना वह भी न्यून  
है इनके बिना प्रकृतभी अर्थ नष्ट हो  
जाता है ॥ ५६ ॥

अथ आधिक्यम् । आधिक्यं नाम  
यद्ययुर्वेदे भाष्यमाणे बार्हस्पत्यमौ  
शनसमन्यद्वा प्रतिसम्बन्धार्थमुच्य  
ते यद्वा पुनः प्रतिसम्बन्धार्थमपि द्वि  
रभिधीयते, तत्पुनरुक्तत्वादाधि  
कं, तच्च पुनरुक्तं द्विविधं अर्थपुनरु  
क्तं शब्दपुनरुक्तञ्च । तत्रार्थपुनरु  
क्तं नाम यथा भेषजमौषधसाधनमि  
ति, शब्दपुनरुक्तञ्च भेषजभेषज  
मिति ॥ ५७ ॥

- अधिक नाम यह है जो आयुर्वेदके  
संभाषणमें बार्हस्पत्य औशनस वा अन्य  
शास्त्रको प्रति संबंधके लिये कहना यद्वा  
पुनः प्रतिसंबन्धको भी दो बार कहना वह  
पुनरुक्त दोषसे अधिक है वह पुनरुक्त  
दो प्रकारका है अर्थसे पुनरुक्त और  
शब्दसे पुनरुक्त उनमें अर्थसे पुनरुक्त  
नाम यह है जैसे भेषज, औषध, साधन,  
यह है, और शब्दसे पुनरुक्त जैसे भेषज,  
भेषज यह है ॥ ५७ ॥

अनर्थकं नाम यद्वचनमक्षरग्राममा  
त्रमेव स्यात्पञ्चवर्गवन्न चार्थतो गृ  
ह्यते ॥ ५८ ॥

अनर्थक नाम यह है जिस वचनमें  
अक्षरोंका समूह मात्र ही हो पंच वर्गवान्  
होकर अर्थका ज्ञान जिससे नही ॥ ५८ ॥

अपार्थक्यं नाम यदर्थवच्च परस्परेण  
चायुज्यमानार्थयथा तत्क्रनक्रवंश  
वज्रनिशाकरा इति ॥ ५९ ॥

अपार्थक्य नाम यह है जो अर्थवान्  
होकर परस्पर रूपसे अर्थ योगसे हीन  
हो जैसे तक्र नक्र वंश वज्र निशाकर  
यह वाक्य है ॥ ५९ ॥

विरुद्धं नाम यद्वृष्टान्तसिद्धान्तसम  
यैर्विरुद्धं तत्र पूर्वदृष्टान्तसिद्धान्ता  
वुक्तौ । समयः पुनस्त्रिधा भवति य  
थायुर्वेदिकसमयो याज्ञियसमयो  
मोक्षशास्त्रिकसमय इति । तत्रायु  
र्वेदिकसमयश्चतुष्पादसिद्धिः । आ  
लभ्यायजमानैः पशव इति याज्ञिय  
समयः । सर्वभूतेष्वहिंसेति मोक्ष  
शास्त्रिकसमयस्तत्रस्वसमयविष  
यीतमुच्यमानं विरुद्धमिति वाक्य  
दोषाः ॥ ६० ॥

विरुद्ध नाम यह है जो दृष्टान्त सि-  
द्धान्त समय इनसे विरुद्ध हो उनमें दृष्टां  
त और सिद्धान्तको कह आये, समय तो

तीन प्रकारका यह है कि आयुर्वेदका समय याज्ञिक समय मोक्ष शास्त्रिक समय हैं, उनमें आयुर्वेदिक समय चतुष्पादकी सिद्धि है, पशुआलंभ करने योग्य है यह याज्ञिक समय है, संपूर्ण भूतोंकी अहिंसा करे यह मोक्ष शास्त्रिक समय है उनमें अपने समयके विपरीत कहा हुआ विरुद्ध होता है, यह वाक्य दोष है ॥ ६० ॥

वाक्यप्रशंसानामयथाअन्यूनमनधिकमर्थवदनपार्थक्यमविरुद्धमधिगतपदार्थश्चतद्वाक्यमननुयोज्यमितिप्रशस्यते ॥ ६१ ॥

वाक्य प्रशंसा नाम यह है कि जैसे जो न्यून न हो अधिक अर्थ न हो अपार्थक्य और विरुद्ध न हो और जिसके पदार्थोंका ज्ञान हो वह वाक्य अनुयोगके अयोग्य होनेसे प्रशंसाके योग्य है ॥ ६१ ॥

छलं नाम परिशठमर्थाभासमनर्थकं वाग्वस्तुमात्रमेव । तद्विविधं वाक्छलं सामान्यच्छलञ्च । तत्र वाक्छलं नाम यथा कश्चिद्ब्रूयात् नवतन्त्रोऽयं भिषगिति, भिषग्ब्रूयात्ताहं नवतन्त्र एकतन्त्रोऽहमिति । परोब्रूयात्ताहं ब्रवीमि नवतन्त्राणितवेति, अथ तु नवाभ्यस्तं तन्त्रमिति, भिषग्ब्रूयात्तमयानवा

भ्यस्तं तन्त्रमनेकशतान्यस्तं मया तन्त्रमिति वाक्छलम् ॥ ६२ ॥

छल नाम यह है कि परिशठ हो अर्थात् शठतासे कहा हो अर्थाभास हो अपार्थक्य हो और जो वाणी रूप वस्तु मात्र ही हो, वह छल दो प्रकारका है वाक् छल और सामान्य छल उनमें वाक् छल यह है जैसे कोई कहै कि यह वैद्य नव तंत्र जानता है और पर, यह कहै कि मैं नव तंत्र नहीं किंतु एकतंत्र हूं मैं तेरेको नवतंत्रोंको नहीं कहूंगा और जैसे एक वैद्य कहै तंत्रका तेनो बार अभ्यास किया है दूसरा कहै कि मैं नौ बार अभ्यास नहीं किया किंतु, अनेक शतवार अभ्यास मैं तंत्रका किया है यह वाक् छल है ॥ ६२ ॥

सामान्यच्छलं नाम यथा व्याधिप्रशमनायौषधमित्युक्ते परो ब्रूयात् सत्सत्प्रशमनायेति किञ्चु भवानाह सद्रोगः स दौषधं यदि च सत्सत्प्रशमनाय भवति तत्र सत्कासः सत्क्षयः सत्सामान्यात्कासः क्षयश्च शमनाय भविष्यतीति एतत् सामान्यच्छलम् ॥ ६३ ॥

सामान्य छल नाम यह है जैसे व्याधिकी शांतिके लिये औषध है यह कहनेपर दूसरा कहै कि सत् सत्की शांतिके लिये है तुमने कहा सत् रोग है

सत् औषधै और जो सत्के प्रशमनके लिये होतीहै सत्कासहै सत्क्षयहै सत्के सामान्य होनेसे तेरा कास, क्षयके प्रशमनके लिये होगा यह सामान्य छलहै ६३

अहेतुर्नामप्रकरणसमःसंशयसमो वर्ण्यसमइति । तत्रप्रकरणसमो नामाहेतुर्यथान्यःशरीरादात्मानित्यइतिपक्षेपरोब्रूयाच्छरीरादन्य आत्मातस्मान्नित्यःशरीरमानित्यमतोविधर्मिणानेनचभवितव्यम् एवचाहेतुर्नहियएवपक्षःसएवहेतुः

अहेतु नाम प्रकरण सम संशय सम वर्ण्यसम होताहै उनमें प्रकरण सम वह है जैसे शरीरसे आत्मा नित्यहै इस पक्षमें अन्य कहै कि शरीरसे अन्य आत्मा है तिससे नित्य है शरीर अनित्य है इस प्रकार इसको विधर्मी होना चाहिये यह अहेतु हेतु जोही पक्ष है वही हेतुहै ६४॥

संशयसमोनामाहेतुर्यएवसंशयहेतुःसएवसंशयच्छेदहेतुर्यथाअयमायुर्वेदैकदेशमाहकिन्वयंचिकित्सकःस्यान्नवेतिसंशयेपरोब्रूयाद्यस्मादयमायुर्वेदैकदेशमाहतस्माच्चिकित्सकोऽयमिति । नच संशयस्थेहेतुंविशेषयत्येषचाहेतुः नहियएवसंशयहेतुःसएवसंशयच्छेदहेतुः ॥ ६५ ॥

संशय सम नाम अहेतु वहहै जो संशयका हेतु वही संशयके छेदनका हेतु हो जैसे यह आयुर्वेदके एक देशोंको कहता भया किंतु यह चिकित्सकहै कि नहीं इस संशयमें पर कहै कि जिससे इसने आयुर्वेदके एक देशोंको कहा तिससे यह चिकित्सक है यह अहेतु संशयके विषे हेतुको विशिष्ट नहीं करता और जो संशयका हेतु होताहै वह संशयके छेदनका हेतु नहीं हुआ करता ६५

वर्ण्यसमोनामाहेतुर्यहेतुर्वर्ण्याविशिष्टःयथापरोब्रूयादस्पर्शत्वाद्बुद्धिरनित्याशब्दवदितितत्रवर्ण्यःशब्दोबुद्धिरपिवर्ण्यातिदुभयवर्ण्याविशिष्टत्वाद्वर्ण्यसमोऽप्यहेतुः ॥ ६६ ॥

वर्ण्यसम नाम अहेतु वह है जो हेतु वर्णन योग्य आदिसे विशिष्ट हो जैसे कोई कहै कि अस्पर्श होनेसे बुद्धि अनित्य है शब्दके समान उनमें वर्णनके योग्य शब्द और बुद्धिहै उन दोनों वर्ण्योंमें अविशिष्ट होनेसे वर्ण्यसम भी अहेतु होता है ॥ ६६ ॥

अतीतकालम् । अतीतकालं नाम यत्पूर्ववाच्यं तत्पश्चादुच्यते तत्कालातीतत्वादग्राह्यं भवति परं वानि ग्रहप्राप्तमनिगृह्यपरिगृह्यपक्षान्तरितं पश्चाद्निगृहीते तत्तस्य अतीत

कालत्वाच्चिग्रहवचनसमर्थभवती  
ति ॥ ६७ ॥

अतीतकाल नाम यह है जो पहिले कह  
ने योग्य है वह पीछे कहा जाय वह काला  
तीत होनेसे अग्राह्य होता है वा निग्रहको  
प्राप्त हुये परका निग्रह किये विना  
अन्य पक्षका ग्रहण करके पीछेसे परका  
निग्रह करै तो वह उसका वचन का-  
लातीत होनेसे निग्रह ( बन्धन ) वचनमें  
समर्थ होता है ॥ ६७ ॥

उपालम्भोनामहेतोर्दोषवचनं यथा  
पूर्वमहेतवो हेतवाभासा व्याख्याताः

उपालम्भ नाम यह है कि हेतुमें  
दोष कहना जैसे पहिले अहेतु, रूप  
हेतवाभास कहे हैं ॥ ६८ ॥

परिहारो नाम तस्यैव दोषवचनस्य प  
रिहरणं यथानित्यमात्मनि शरीरस्थे  
जीवलिङ्गान्युपलभ्यन्ते तस्य चा  
पगमाच्चोपलभ्यन्ते तस्मादन्यः श  
रीरादात्मानित्यः शरीराच्चेति ६९

परिहार नाम यह है कि तिसी दोष  
वचनको हटाना, जैसे शरीरमें स्थित  
आत्मामें नित्य जीवके लिंग उपलब्ध  
होते हैं और आत्माके निकसनेसे उप-  
लब्ध नहीं होते तिससे शरीरसे आत्मा  
अन्य है और शरीरसे नित्य है ॥ ६९ ॥

प्रतिज्ञाहानिः ।

प्रतिज्ञाहानिर्नामयः पूर्वप्रतिगृही  
तां प्रतिज्ञां पर्यनुयुक्तः परित्यज

तियथा प्राक् प्रतिज्ञां कृत्वा नित्यः पु  
रुप इति पर्यनुयुक्तस्त्वाह अनित्य  
इति ॥ ७० ॥

प्रतिज्ञा हानि नाम यह है कि जो  
पहिले ग्रहण करी हुई प्रतिज्ञाको पर्यनु-  
योग ( शंका ) करनेपर त्याग दे जैसे  
पहिले प्रतिज्ञा करके पुरुष नित्य है,  
कहै और पर्यनुयोग करनेपर कहै कि  
अनित्य है ॥ ७० ॥

अभ्यनुज्ञानामय इष्टानिष्टाभ्युप  
गमः ॥ ७१ ॥

अभ्यनुज्ञा नाम यह है कि जो इष्ट  
अनिष्टका अभ्युपगम ( मानना ) ॥ ७१ ॥  
हेत्वन्तरं नाम प्रकृतहेतौ वाच्ये यदि  
कारहेतुमाह ॥ ७२ ॥

हेत्वन्तर नाम यह है कि प्रकृति  
हेतुके समयमें विकार हेतुको कहै ॥ ७२ ॥  
अर्थान्तरं नाम ज्वरलक्षणे वाच्ये प्र  
मेहलक्षणमाह ॥ ७३ ॥

अर्थांतर नाम यह है कि ज्वरके  
लक्षणके कहनेके समय प्रमेहके लक्षण  
कहै ॥ ७३ ॥

निग्रहस्थानं नाम पराजयप्राप्तिस्त  
च्च त्रिरुक्तस्य वाक्यस्य अविज्ञानं  
परिषदिविज्ञानवत्याम् ॥ ७४ ॥

निग्रह स्थान नाम यह है कि तीन बार  
उक्त वाक्यका परिषत्के जाननेपर भी  
अज्ञान ॥ ७४ ॥

यद्वाअननुयोज्यस्यानुयोगोअनु  
योज्यस्यचाननुयोगःप्रतिज्ञाहानि  
रभ्यनुज्ञाकालातीतवचनमहेतुःन्यू  
नमतिरिक्तं व्यर्थमनर्थकंपुनरुक्तं वि  
रुद्धहेत्वन्तरमर्थान्तरं निग्रहस्था  
नमितिवादमर्यादापदानियथोद्दे  
शमभिनिर्दिष्टानि ॥ ७५ ॥

वा अननुयोज्यका अनुयोग अनु-  
योज्यका अननुयोग, प्रतिज्ञा हानि  
अभ्यनुज्ञा कालातीत वचन अहेतु न्यून  
अतिरिक्त व्यर्थ अपार्थक्य पुनरुक्त विरुद्ध  
हेत्वन्तर अर्थान्तर निग्रह स्थान ये हैं,  
ये वाद मार्गके पद उद्देशक अनुसार  
दिखाये ॥ ७५ ॥

वादस्तुखलुभिपजावर्त्तमानोवर्त्ते  
तायुर्वेदएवनान्यत्र ॥ ७६ ॥

और वाद तो वैद्योंका वर्तमान होय  
तो आयुर्वेदमेंही वर्त्ते अन्यत्र नहीं॥७६॥

तत्रहिवाक्यप्रतिवाक्यविस्ताराः  
केवलाश्रोपपत्तयश्चसर्वाधिकरणे  
पुताःसर्वाःसम्यगवेक्ष्यावेक्ष्यसर्व  
वाक्यं ब्रूयान्नाप्रकृतिकमशास्त्रम  
परीक्षितमसाधकमाकुलमज्ञापकं  
वासर्वश्चहेतुमद्ब्रूयाद्धेतुमन्तोह्य  
कलुषाःसर्वएववादविग्रहाश्विकि  
तिसतेकारणभूताः । प्रशस्तबुद्धि

वर्द्धकत्वात्सर्वारम्भसिद्धिर्हिआव  
हतिअनुपहताबुद्धिः ॥ ७७ ॥

उसमें वाक्य प्रतिवाक्यके विस्तार  
और केवल उपपत्तियोंको सर्व अधि  
करणोंमें उन सबको भली प्रकार देख-  
कर वाक्यको कहै और अप्रकृत, शास्त्र-  
से भिन्न अपरीक्षित असाधक आकुल  
अज्ञापक, वाक्यको न कहै और सबको  
हेतु सहित कहै, हेतुमान् जो विग्रह हैं  
वे सब निर्दोष हैं चिकित्सामें कारण  
भूत हैं क्योंकि वे श्रेष्ठ बुद्धिके वर्द्धक  
हैं और अनुपहत बुद्धि, सर्वारम्भ सिद्धि-  
को करती है ॥ ७७ ॥

इमानिखलुतावदिहकानिचित्प्रकर  
णानिब्रूमः । ज्ञानपूर्वकंकर्मणांस  
मारम्भंप्रशंसन्तिकुशलाः ॥ ७८ ॥

और यहां निश्चयसे ये कोई एक  
प्रकरण जो हैं उनको हम कहते हैं  
क्योंकि ज्ञानसे जो कर्मोंका समारंभ  
उसकी कुशल मनुष्य प्रशंसा करतेहैं७८

ज्ञात्वाहिकारणकरणकार्ययोनि  
कार्यकार्यफलानुबन्धदेशका  
लप्रवृत्त्युपायान्सम्यगभिनिर्वर्त्तय  
मानःकार्य्याभिनिर्वृत्तौइष्टफला  
नुबन्धकंकार्य्यमभिनिर्वर्त्तयति  
अनतिमहताप्रयत्नेनकर्त्ता ॥ ७९ ॥

और जानकरही कारण करण कार्य  
कार्यफल अनुबन्ध देशकाल प्रवृत्तिके  
उपाय इनको भली प्रकार करता हुआ



कार्यकी सिद्धिमें अल्पही प्रयत्नसे कर्ता इष्ट फलके संबंधी कार्यको पैदा करता है ॥ ७९ ॥

तत्रकारणं नाम तद्यत्करोति स एव हेतुः कर्त्ता सः ॥ ८० ॥

उनमें कारण नाम वह है जो करता है और वही हेतु और कर्ता है ॥ ८० ॥  
करणं पुनस्तद्यदुपकरणायोपकल्पते कर्तुः कार्य्याभिनिर्वृत्तौ प्रयत्नमात्मनस्य ॥ ८१ ॥

और करण नाम वह है जो यत्न करते हुये कर्ताकी कार्यसिद्धिमें उपकार के लिये हो ॥ ८१ ॥

कार्य्ययोनस्तु सायाविक्रियमाणा कार्य्यत्वमापद्यते ॥ ८२ ॥

कार्य्य योनि तो वह है जो विकारको प्राप्त हुई कार्य्यताको प्राप्त हो जाय ॥ ८२ ॥  
कार्य्यन्तु तद्यस्याभिनिर्वृत्तिमभिसन्धाय प्रवर्त्तते कर्त्ता ॥ ८३ ॥

कार्य्य तो वह है जिसकी उत्पत्तिको विचार कर कर्ता प्रवृत्त हो ॥ ८३ ॥

कार्य्यफलं पुनस्तद्यत्प्रयोजनाकार्य्याभिनिर्वृत्तिरिष्यते ॥ ८४ ॥

कार्य्यफल तो वह है जिस प्रयोजनसे कार्य्यकी उत्पत्ति इष्ट हो ॥ ८४ ॥

अनुबन्धस्तु कर्त्तारमवश्यमनुबन्धतिकाव्यादुत्तरकालं कार्य्यनिमित्तः शुभो वाप्यशुभो वाभावः ८५

अनुबन्ध तो वह है जो कर्त्ताका अवश्य अनुबन्ध ( संबंध ) करै वह कार्य्यके उत्तर कालमें शुभ अशुभ भाव कार्य्यनिमित्तसे होता है ॥ ८५ ॥

देशस्त्वधिष्ठानम् ॥ ८६ ॥

देश तो अधिष्ठान है ॥ ८६ ॥

कालः पुनः परिणामः ॥ ८७ ॥

और काल परिणाम है ॥ ८७ ॥

प्रवृत्तिस्तु खलु चेष्टा कार्य्यार्थसैव क्रिया कर्म यत्नः कार्य्यसमारम्भश्च

और प्रवृत्ति तो चेष्टा है जो कार्य्यके अर्थ होती है और वही क्रिया कर्म यत्न कार्य्य समारम्भ कहाती है ॥ ८८ ॥

उपायाः पुनः कारणादीनां सौष्ठवम्

अभिसन्धानञ्च सम्यक् कार्य्यका

र्य्यफलानुबन्धोपायवर्ज्यानां का

र्य्याणामभिनिर्वर्त्तक इत्यतो अभ्यु

पायः कृतेनोपायार्थोऽस्ति न च वि

द्यते तदा त्वेकताच्चोत्तरकालं फलं फ

लञ्चानुबन्ध इति व्याख्यातं दशवि

धम् ॥ ८९ ॥

और उपाय तो कारण आदिकी उत्तमता और उन कार्य्योंका निर्वर्त्तक भली प्रकार अभिविधान ( करना ) है जो कार्य्य कार्य्यफल अनुबन्धसे भिन्न हैं इससे अभ्युपाय करनेसे उपायके अर्थ है और उस समयमें और

कियेके उत्तर कालमें फल नहीं है।  
ये फल और अनुबंध, दश प्रकारके  
कहे ॥ ८९ ॥

अग्रे परीक्ष्यंततोऽनन्तरकार्यार्था  
प्रवृत्तिरिष्टातस्माद्विपक्काय्यचि  
कीर्णुः प्राक्कार्यसमारम्भात्परीक्ष  
याकेवलंपरीक्ष्यंपरीक्ष्यार्थकर्मस  
मारभेतकर्तुम् ॥ ९० ॥

पहिले परीक्षा करे उसके अनंतर  
कार्यके अर्थ प्रवृत्ति इष्ट है, तिससे कार्य  
करनेका अभिलाषी वैद्य कार्यके समा-  
रंभसे पहिले परीक्षाके योग्यकी केवल  
परीक्षासे परीक्षाको करके उसके अनंतर  
कर्म करनेका प्रारंभ करे ॥ ९० ॥

तत्र चेद्विपक्काय्यमपि पञ्चविधं कश्चि  
त्पृच्छेद्वमनविरेचनास्थापनानुवा  
सनशिरोविरेचनानिप्रयोक्तुकामे  
नभिपजाकतिविधयापरीक्षयाक  
तिविधमेव परीक्ष्यं कश्चात्र परीक्ष्य  
विशेषः कथञ्च परीक्षितव्यं किं प्रयो  
जनाच्च परीक्षाकचवमनादीनां प्रवृ  
त्तिः कचनिवृत्तिः प्रवृत्तिनिवृत्तिसं  
योगे च किं नैष्ठिकं कानि च वमनादी  
नां भेषजद्रव्याणि उपयोगं गच्छ  
न्तीति । स एव पृष्ठोऽयमोहयितुमि  
च्छेद्ब्रूयादेनं बहुविधा हि परीक्षा  
तथा परीक्ष्यविधिभेदः । कतमेन

विधिभेदप्रकृत्यन्तरेण परीक्ष्यस्य  
भिन्नस्य भेदाग्रं भवान्पृच्छति आ  
ख्यायमानं नेदानीं भवतोऽन्येन वि  
धिभेदप्रकृत्यन्तरेण भिन्नया परी  
क्षया अन्येन वा विधिभेदप्रकृत्यन्त  
रेण परीक्ष्यस्य भिन्नस्याभिलापित  
मर्थं श्रोतुमहमन्येन परीक्षाविधिभे  
देन अन्येन वा विधिभेदप्रकृत्यन्त  
रेण परीक्ष्यं भित्त्वार्थमाचक्षाण  
इच्छां प्रपूरयेयमिति ॥ ९१ ॥

उसमें यदि वैद्य वा अवैद्य, वैद्यको  
पूछें कि वमन विरेचन आस्थापन अनु-  
वासन शिरका विरेचन इनके करनेके  
अभिलाषी वैद्य कितने प्रकारकी परी-  
क्षासे कितने प्रकारके परीक्षा योग्य है  
और इसमें परीक्षाके योग्य विशेष कौन  
है और किस प्रकार परीक्षा करनी और  
परीक्षाका प्रयोजन क्या है और वमन  
आदिकी प्रवृत्ति किसमें है और कहां  
निवृत्ति है और प्रवृत्ति निवृत्तिके संयोगमें  
क्या निष्ठा है और वमन आदिके भेषज  
द्रव्य कौन उपयोगको प्राप्त होते हैं इति  
इस प्रकार पूछा हुआ वह यदि उसके  
मोह करनेकी इच्छा करे तो इसको कहै  
कि बहुत प्रकारकी परीक्षा है तैसेही  
परीक्षाके योग्यकी विधिका भेद बहुत प्रकार  
का है, कौनसे विधिभेद, प्रकृत्यन्तरसे  
परीक्षाके योग्यके कहे हुये अभिन्न

भेदाग्रको तू पूछताहै, इस समय तेरेको अन्य विधि भेद प्रकृत्यंतरसे भिन्न परीक्षासे वा अन्य विधि भेद प्रकृत्यंतरसे भिन्न परीक्षा योग्यके इष्ट अर्थ सुननेको में अन्य परीक्षा विधिके भेदसे वा अन्य विधि भेद प्रकृत्यंतरसे परीक्षा योग्यको भेद नकरके अर्थको कहता हुआ तेरी इच्छाको पूर्ण नहीं करूंगा इति ॥ ९१ ॥

सयद्युत्तरं ब्रूयात्तत्परीक्ष्योत्तरं वा  
च्यं स्याद्यथोक्तं प्रतिवचनमवे  
क्ष्यसम्यग्यदितु ब्रूयान्नचैनं मोह-  
यितुमिच्छेत्प्राप्तन्तुवचनकालं म-  
न्येतकाममस्मै ब्रूयादातमेव निर्वि-  
लेन ॥ ९२ ॥

वह यदि उत्तरको कहै तो वह उत्तर परीक्षा करके होना चाहिये यथोक्त प्रति वचनको भलीप्रकार देखकर यदि कहै तो इसके मोह करनेकी इच्छा न करै, प्राप्त हुये वचन कालको तो मानें उसको स्वच्छ कहै और सब आप्त ( यथार्थ ) ही कहै ॥ ९२ ॥

द्विविधा परीक्षा ज्ञानवतां प्रत्यक्षम-  
नुमानश्च, एतत्तु द्वयमुपदेशश्च परी-  
क्षात्रयमेव मेपाद्विविधा परीक्षा

त्रिविधा वासहोपदेशेन ॥ ९३ ॥

ज्ञानवानोंकी परीक्षा दो प्रकारकी है कि प्रत्यक्ष और अनुमान ये दोनों और उपदेश तीन परीक्षाहैं, इस प्रकार यह

दो प्रकारकी वा उपदेश सहित तीन प्रकारकी परीक्षाहै ॥ ९३ ॥

दशविधन्तुपरीक्ष्यं कारणादियदु-  
क्तमग्रेतदिह भिपगादिपुसंसार्य  
सन्दर्शयिष्यामः, इहकार्यप्राप्तौ  
कारणं भिपक्, करणं पुनर्भेपजं,  
कार्ययोनिर्धातुवैषम्यं, कार्य  
धातुसाम्यं, कार्यफलं सुखावा-  
प्तिः, अनुबन्धआयुः, देशोभूमि-  
रातुरश्च, कालः संवत्सरश्चातुरा-  
वस्थाच, प्रवृत्तिः प्रतिकर्मसमार-  
म्भः, उपायो भिपगादीनां सौष्ठव  
मभिसन्धानश्च सम्यगिहापि अ-  
स्योपायस्य विषयः पूर्वणैवोपाय  
विशेषेण व्याख्यातइतिकारणादी-  
नि दश । दशमुभिपगादिपुसंसा-  
र्यसन्दर्शितानि, तथैवानुपुर्व्या-  
एतद्दशविधं परीक्ष्यमुक्तञ्च ॥ ९४ ॥

दश प्रकारकी परीक्षाके योग्य कारण आदि पहिले कहाहै उसको यहां वैद्य आदिके विषे विस्तारसे भलीप्रकार दिखातेहैं उसमें कार्यकी प्राप्तिमें वैद्य, कारणहै और भेषज करणहै धातुओंकी विषमता, कार्ययोनिहै, धातुओंकी समता, कार्य है, मुखकी प्राप्ति, कार्य फलहै, आयु, अनुबन्धहै भूमि और आतुर, देशहै सम्बत्सर और रोगीकी अवस्था,

कालहै प्रतिकर्मका समारंभ, प्रवृत्तिहै  
वैद्य आदिकोंकी उत्तमता, और  
भली प्रकार योजना उपायहै  
यहां भी इस उपायका विषय, पहिलेही  
उपाय विशेषसे कहा गया ये कारण  
आदि दश, दशों वैद्य आदिकोंके विषे  
विस्तारसे तिसी आनुपूर्वीसे दिखाये, यह  
दश प्रकारका परीक्षाके योग्य कहा ९४

तस्ययोयोपरीक्ष्यविशेषोयथाय  
थाचपरीक्षितव्यःससतथातथा  
व्याख्यास्यते । कारणंभिपणि  
त्युक्तमग्रेतस्यपरीक्षाभिपङ्नाम  
सयोभेपतियःसूत्रार्थप्रयोगकुश  
लःयस्यचायुःसर्वथाविदितम् ९५।

उसका जो २ विशेष जैसे २ परीक्षा  
करने योग्यहै तिसी २ प्रकारसे उस २  
का व्याख्यान करतेहैं, कि कारण भिषक्  
है यह पहिले कह आये उसकी परीक्षा  
यह है कि जो. भेषज ( औषध ) करे  
वह भिषक् नाम कहा है और जो सूत्र-  
के अर्थमें कुशलहै और जिसको आयु  
सर्वथा विदितहै ॥ ९५ ॥

यथावत्सर्वधातुसाम्यंचिकीर्षन्ना  
त्मानमेवादितःपरीक्षेत । गुणिषु  
गुणतःकार्य्याभिनिर्वृत्तिपश्यन्क  
च्चिदहमस्यकार्य्यस्यआभिनिर्वर्त्त  
नेसमर्थो नवेति ॥ ९६ ॥

यथार्थ रीतिसे संपूर्ण धातुओंके सा-  
म्यकी इच्छा करता हुआ प्रथम अपने

आत्माकीही गुणोंमें परीक्षा करे, गुणसे  
कार्यसिद्धिको देखता हुआ कोई में इस  
कार्यके सिद्ध करनेमें समर्थ हूं वा नहीं हूं,  
इति ॥ ९६ ॥

तत्रेमेभिपङ्गुणायैरुपपन्नोभिपङ्गा  
तुसाम्याभिनिर्वर्त्तनेसमर्थोभवति  
तद्यथापर्य्यवदातश्रुततापरिदृष्ट  
कर्मतादाक्ष्यंशौचंजितहस्तताउ  
पकरणवत्तासर्वेन्द्रियोपपन्नताप्र  
कृतिज्ञताप्रतिपत्तिज्ञताचेति ९७

उसमें ये भिषक्के गुण हैं जिनसे  
युक्त भिषक् धातुओंकी समता करनेमें  
समर्थ होताहै वह ऐसेहैं, शुद्ध श्रुततापर  
दृष्टकर्मता, चतुरता शौच जितहस्तता  
उपकरणवान् होना संपूर्ण इंद्रियोंका योग  
प्रकृतिका ज्ञान, प्रतिपत्तिका ज्ञान ये  
वैद्यके गुणहैं ॥ ९७ ॥

करणंपुनर्भेषजम् । भेषजं नामत  
द्यदुपकरणायोपकल्प्यते, भिष  
जोधातुसाम्याभिनिर्वृत्तौप्रयतमा  
नस्य, विशेषतश्चोपायान्तरेभ्यः  
तदद्विविधंव्यपाश्रयभेदाद्देवव्य  
पाश्रयंयुक्तिव्यपाश्रयश्च । तत्रदैव  
व्यपाश्रयंमन्त्रौषधिमणिमङ्गलव  
ल्युपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोप  
वास-दान-स्वस्त्ययन-प्रणिपातगम  
नादियुक्तिव्यपाश्रयंसंशोधनोपशं

मनेचेष्टाश्चदृष्टफलाःएतच्चैवभेषज  
मङ्गभेदादपिद्विविधद्रव्यभूतमद्र  
व्यभूतश्चतत्रयदद्रव्यभूतंतदुपा  
याभिप्लुतम् । उपायोनामभयदर्श  
नविस्मापनक्षोभणहर्षणभर्त्सनव  
धबन्धस्वप्नसंवाहनादिरमूर्त्तोभा  
वोयथोक्ताःसिद्धयुपायाश्च । यत्तु  
द्रव्यभूतंतद्वमनादिषुयोगमुपैति ९८

और करण भेषज है, भेषजनाम वह है जो वैद्यको धातु साम्यकी सिद्धिमें यत्न करते समय और उपकार केलिये हो विशेषकर अन्य उपायोंसे वह दो प्रकारका आश्रय भेदसे है दैवके आश्रय और युक्तिके आश्रय उनमें दैव व्यपाश्रय तो मंत्र औषध मणि मंगल बलि उपहार होम नियम प्रायश्चित्त उपवास दान स्वस्त्ययन प्रणिपात गमन आदि हैं और युक्ति व्यपाश्रय तो संशोधन और उपशमन और दृष्ट है फल जिनका ऐसी चेष्टा है और यही भेषज अंग भेदसे भी दो प्रकारका है द्रव्य भूत और अद्रव्य भूत उसमें जो अद्रव्य भूत है वह उपायसे अभिप्लुत ( युक्त ) है उपाय नाम भयका दर्शन विस्मापन क्षोभण हर्षण भर्त्सन वध बंधन स्वप्न संवाहन आदि अमूर्त भाव है और सिद्धिके उपाय यथोक्त हैं और जो द्रव्यभूत है वह वमन आदिमें योगको प्राप्त होता है ॥ ९८ ॥

तस्यापिद्वयंपरीक्षाइदमेवंप्रकृत्या  
एवंगुणमेवंप्रभावमस्मिन्देशेजातम  
स्मिन्नृतौएवंगृहीतमेवनिहितमेवमु  
पस्कृतमनयामात्रयायुक्तमस्मिन्  
रोगेएवविधस्यपुरुषस्यैतावन्तदोष  
मपकर्षयतिउपशमयतिवाअन्यद  
पिचैवविधंभेषजंभवेत्तच्चानेनान्ये  
नवाविशेषेणयुक्तमिति ॥ ९९ ॥

उसकीभी यह परीक्षा है कि यह औषध प्रकृतिसे ऐसा है ऐसे गुण हैं ऐसा प्रभाव है इस देशमें उत्पन्न है इस ऋतुमें उत्पन्न है ऐसे ग्रहण किया जाता है ऐसे रक्खा जाता है ऐसे उपस्कारसे इस मात्रासे इस ऋतुमें युक्त है ऐसे पुरुषके इतने दोषको दूर करता है वा शांत करता है अन्यभी इसी प्रकारकी भेषज होती हैं और वह इस २ विशेषसे युक्त है इति ॥ ९९ ॥

कार्य्ययोनिर्धातुवैषम्यंतस्यलक्ष  
णंविकारागमःपरीक्षात्वस्यविका  
रप्रकृतेश्चैवोनातिरिक्तलिङ्गविशे  
षावेक्षणंविकारस्यचसाध्यासा  
ध्यमृदुदारुणलिङ्गविशेषावेक्षण  
मिति ॥ १०० ॥

धातुओंकी विषमता कार्य्य योनि है उसका लक्षण विकारका आगमन है परीक्षातो इसको, विकार प्रकृतिके अति रिक्त लिंग विशेषका अपेक्षण है और

विकारके साध्य असाध्य मृदु दारुण  
लिंगविशेषोंकी अवेषणहै इति ॥ १०० ॥

कार्य्यधातुसाम्यं, तस्यलक्षणं विकारो  
पशमः, परीक्षात्वस्यरुगपशमनंस्वर  
वर्णयोगः शरीरोपचयः बलवृद्धिर  
न्यवहाग्याभिलापोरुचिराहारका  
लाभ्यवहतस्यचाहतस्यचाहारस्य  
सम्यग्जरणानिद्रालाभोयथाकालं  
वैकारिकाणांस्वप्नानामदर्शनंसुखे  
नचप्रतिबोधनंवातमूत्रपुरीषरेत  
सामुक्तिः । सर्वाकारैर्मनोबुद्धी  
न्द्रियाणाञ्चअव्यापत्तिरिति १०१

कार्य्यः धातुओंकी समानता है उसका  
लक्षण विकारोंका उपशमहै परीक्षा तो  
इसकी रोगका दूर होना और स्वर वर्ण  
का योग शरीरकी वृद्धि बलका होना  
भोजनकी अभिलाषा, रुचिर भोजनके  
कालमें भक्षण किये और संचित किये  
आहारकाभली प्रकारका परिपाक निद्राका  
लाभ समयपर होना विकारके स्वप्नोंका  
अदर्शन, सुखसे जागरण वात मूत्र पुरीष  
वीर्य इनका मोक्षण संपूर्ण आकारोंसे मन  
बुद्धि इंद्रिय इनकी स्वस्थता ये धातु-  
ओंकी साम्यके लक्षणकी परीक्षाहै १०१

कार्य्यफलं सुखावातिस्तस्यलक्षणं  
मनोबुद्धीन्द्रियशरीरतुष्टिः १०२

कार्य्यफल सुखावातिहै उसका लक्षण  
मन बुद्धि इंद्रिय शरीर इनकी तुष्टिहै १०२

अनुबन्धस्तुखलु आयुस्तस्यलक्ष  
णंप्राणैः संयोगः ॥ १०३ ॥

और अनुबंध तो आयु है उसका  
लक्षण प्राणोंके संग संयोगहै ॥ १०३ ॥

देशस्तुभूमिरातुरथतत्रभूमिपरी  
क्षाआतुरस्यपरिज्ञानहेतोर्वास्या  
दौषधपरिज्ञानहेतोर्वा । तत्रताव  
दियमातुरपरिज्ञानहेतोः । तद्यथा  
अयंकस्मिन्भूमिदेशेजातःसंवृद्धो  
व्याधितोवेतितस्मिंश्चभूमिदेशेम  
नुप्याणामिदमाहारजातमिदंवि  
हारजातमेतद्वलमेवंविधंसत्त्वमेवं  
विधंसात्म्यमेवंविधोदोषोभक्तिरि  
यमिमेव्याधयोहितमिदमहितमिद  
मितिप्रायोग्रहणेन ॥ १०४ ॥

देश तो भूमि और रोगीहैं उनमें  
भूमिकी परीक्षा आतुरके परिज्ञानके हेतु  
वा औषधके परिज्ञानके हेतु होती है  
उनमें प्रथम आतुरके परिज्ञानके हेतु यह  
है वह ऐसे है यह कौनसे भूमि देशमें  
पैदा हुआहै वा बड़ा है वा रोगी हुआ  
है और उस भूमिदेशमें मनुष्योंका यह  
भोजनका समूह है यह विहार और  
आचार और यह बल ऐसा सत्व ऐसा  
सात्म्य ऐसा दोषोंका भाग है ये व्याधि  
हैं यह हित और यह अहित है यह  
प्रायः ग्रहणसे जानै इति ॥ १०४ ॥

औषधपरिज्ञानहेतोस्तु कल्पेषु भू-  
मिपरीक्षावक्ष्यते ॥ १०५ ॥

औषध परिज्ञानके हेतुसे कल्पोंमें  
भूमिकी परीक्षाको कहेंगे ॥ १०५ ॥

आतुरस्तु खलु कार्यदेशस्तस्य परी-  
क्षा आयुषः प्रमाणज्ञानहेतोर्वास्या  
द्वलदोष प्रमाण ज्ञानहेतोर्वा १०६

आतुर तो निश्चयसे कार्य देश है  
उसकी परीक्षा आयुके प्रमाणके हेतु होती  
है वा बल दोष प्रमाणके ज्ञानके हेतु हो-  
ती है ॥ १०६ ॥

तत्र तावदियं बलदोषविशेषप्र-  
माणापेक्षा सहसा हि अतिबलमौष-  
धमपरीक्षकप्रयुक्तमल्पबलमातु-  
रमभिघातयेत्, न हि अतिबला-  
न्याग्नेयसौम्यवायवीयान्यौषधा-  
न्यग्निक्षारशस्त्रकर्माणि वा शक्य-  
न्तेऽल्पबलैः सोऽदुमविषह्यातिती-  
क्ष्णवेगत्वाद्धिसद्यः प्राणहराणि  
स्युः ॥ १०७ ॥

उनमें यह बल दोष विशेषके प्रमा-  
णकी अपेक्षासे है कि सहसा अति  
बलवान् औषध अपरीक्षककी दीहुई,  
अल्प बल औषध आतुरको नष्ट कर  
देती है क्योंकि अत्यंत बलवान् जो  
आग्नेय सौम्य वायवीय औषध हैं वा  
अग्निक्षार शस्त्र कर्ममें अल्प बल मनु-  
ष्योंको सहनेको शक्य नहीं हैं अर्थात्

वे उनको नहीं सह सकते और न  
सहनेसे अति तीक्ष्ण वेगवान् होनेसे  
वे शीघ्र प्राणोंको हरनेहारी हो जाती  
हैं ॥ १०७ ॥

एतच्चैव कारणमवेक्ष्यमाणा हीनब-  
लमातुरमविपादकरैर्मृदु-सुकुमार  
प्रायैरुत्तरोत्तर-गुरुभिरविभ्रमैर-  
नात्ययिकैश्चोपचरन्त्यौषधैः विशेष-  
पतश्चनारीः ताह्यनवस्थितमृदुवि-  
कृतविकृवहृदयाः प्रायः सुकुमारा  
नाय्योऽबलाः परमसंस्तभ्याश्च १०८

इसी कारणको देखते हुये वैद्य हीन  
बल आतुरका, विपादको न करने वाले  
मृदु सुकुमार जो प्रायः हैं और क्रमसे  
जो गुरु हैं जो भ्रम कारक नहीं  
हैं उन औषधोंसे उपचार करते हैं  
और विशेषकर नारियोंकीभी इसी प्रकार  
चिकित्सा करते हैं, क्योंकि वे नारी अन-  
वस्थित ( चंचल ) मृदु विशुद्ध विकृव  
हृदयवती होती हैं और प्रायः सुकुमार  
निर्वल और परिस्तंभ न करने योग्य  
स्त्री होती हैं ॥ १०८ ॥

तथा बलवति बलवद्भ्याधिपरि-  
गतेस्वल्पबलमौषधमपरीक्षकप्र-  
युक्तमसाधकं भवति तस्मादातुरं  
परीक्षेत प्रकृतितश्च विकृतितश्च सार-  
तश्च संहननतश्च प्रमाणतश्च सात्त्विक

तत्त्वसत्त्वतश्चाहारशक्तितत्त्वव्या-  
यामशक्तितत्त्ववयस्तश्चेति १०९

तिसी प्रकार बलवान्को वा बलवान्  
व्याधिसे युक्तको अल्पबल औषध और  
अपरीक्षककी दी हुई असाधक होतीहै  
तिससे आतुरकी परीक्षा प्रकृतिसे और  
विकृतिसे सारसे संहननसे प्रमाणसे और  
सात्म्यसे और सत्वसे आहारकी शक्तिसे  
व्यायामकी शक्तिसे और अवस्थासे  
करै इति ॥ १०९ ॥

बलप्रमाणविशेषग्रहणहेतोः तत्रा-  
मीप्रकृत्यादयोभावाः । तद्यथा-  
शुक्रशोणितप्रकृतिकालगर्भाशय  
प्रकृतिमातुराहारविहार-प्रकृति  
महा-भूतविकार-प्रकृतिश्च गर्भश-  
रीरमपेक्षते । एताहियेनयेन दोषे  
णाधिकतमेनैकेनानेकतमेनवास  
मनुबध्यन्ते तेन तेन दोषेणगर्भो  
ऽनुबध्यते । ततः सासादोषप्रकृति  
रुच्यतेमनुप्याणांगर्भादिप्रवृत्ता ।  
तस्माद्वातलाः प्रकृत्याकेचित्पि  
तलाः केचिच्छेष्मलाः केचित्सं-  
सृष्टाः समधातवः प्रकृत्याकेचि-  
द्भवन्ति । तेषांहिलक्षणानिव्या-  
ख्यास्यामः ॥ ११० ॥

बल प्रमाण ग्रहण विशेषके हेतु उसमें  
ये प्रकृति आदिभावहैं वे ऐसेहैं शुक्र

शोणितकी प्रकृति कालगर्भाशयकी प्रकृति  
आतुरके आहार विहारकी प्रकृति महा-  
भूत विकारोंकी प्रकृतिकी गर्भ शरीर  
अपेक्षा कर्ताहै और ये जिस २ अत्यंत अधि-  
क एक वा अनेक दोषसे संबंधको प्राप्त  
होतीहैं उसी २ दोषसे गर्भ युक्त हो  
जाताहै तिसके अनंतर मनुष्योंकी वही २  
दोष प्रकृति गर्भ आदिमें हुई कही  
जातीहै तिससे कोई तो प्रकृतिसे धातलहैं  
कोई पित्तलहैं कोई श्लेष्मलहैं कोई संसृ-  
ष्टहैं कोई प्रकृतिसे समधातु होतेहैं उनके  
लक्षणोंका व्याख्यान करतेहैं ॥ ११० ॥

श्लेष्माहि स्निग्धश्लक्ष्णमृदुमधुर  
सारसान्द्रमन्दस्तिमितगुरुशीत  
विज्जलाच्छः । अस्यस्नेहाच्छेष्म-  
लाः स्निग्धाङ्गाः, श्लक्ष्णत्वाच्छु-  
क्ष्णाङ्गाः, मृदुत्वाद्दृष्टिसुखमुकु-  
मारावदातशरीराः, माधुर्यात्प्रभू-  
तशुक्रव्यवायापत्याः, सारत्वात्  
सारसंहतस्थिरशरीराः, सान्द्रत्वा-  
दुपचितपरिपूर्णसर्वगात्राः, मन्दत्वा-  
न्मन्दचेष्टाहारविहाराः, स्तैमित्या-  
दशीघ्रास्त्रक्षोभविकाराः, गुरु-  
त्वात्साराधिष्ठितगतयः शैत्यादल्प-  
क्षुत्तृष्णा-सन्ताप-स्वेद दोषाः,  
विज्जलत्वात् सुश्लिष्टसारबन्धस-  
न्धानाः तथाच्छत्वात्प्रसन्नदर्श



नाननाः प्रसन्नस्निग्धवर्णस्वराश्च  
भवन्ति । तएवंगुणयोगाच्छे-  
ष्मलाबलवन्तो वसुमन्तो विद्याव-  
न्तओजस्विनः शान्ता आयुष्मन्त-  
श्च भवन्ति ॥ १११ ॥

कि जो श्लेष्मा है वह स्निग्ध श्लक्ष्ण  
मृदु मधुर सार सांद्र मंद स्तिमित गुरु  
शीत विज्जल अच्छ होता है उसके संहसे  
श्लेष्मल मनुष्य स्निग्ध अंगवान् होते हैं  
श्लक्ष्ण होनेसे श्लक्ष्ण मृदु होनेसे दृष्टि  
सुख सुकुमार गौरशरीर और माधुर्यसे  
अधिक शुक्र व्यवाय संतानवान्  
और सारसे सार संहत स्थिर शरीरवान्  
होते हैं और सांद्रसे उपचित और  
परिपूर्ण सब गात्रवाले होते हैं मंद  
होनेसे मंद है चेष्टा आहार व्याहार  
जिनका ऐसे होते हैं, स्तैमित्यसे अशीघ्र  
आरंभ क्षोभ विकारवान् होते हैं, गुरु  
होनेसे सारसे युक्त गतिवान् होते हैं  
शैत्यसे अल्प क्षुधा तृष्णा संताप स्वेद  
दोषवान् होते हैं विज्जल होनेसे भली  
प्रकार मिले हैं सार बंध संधान जिनके  
ऐसे और तिसी प्रकार अच्छ  
होनेसे प्रसन्न दर्शन और मुखवान् होते  
हैं और प्रसन्न स्निग्ध वर्ण स्वरवान्  
होते हैं वे इस प्रकार गुणोंके योगसे  
श्लेष्मल बलवान् धनवान् विद्यावान्  
ओजवान् आयुष्मान् होते हैं ॥ १११ ॥

पित्तमुष्णं तीक्ष्णं द्रवं विस्त्रमलं कटु-  
कञ्च । तस्यौष्ण्यात् पित्तलाभव-

न्ति उष्णा सहाः शुष्क सुकुमाराव-  
दातगात्राः प्रभूतपिष्टुव्यङ्ग्यतिल-  
कपिडकाः क्षुत्पिपासावन्तः क्षिप्र-  
वलीपलितखालित्यदोषाः ।  
प्रायो मृदुलपकपिलश्मश्रुलोमके-  
शाः तीक्ष्णया तीक्ष्णपराक्रमाः  
तीक्ष्णाग्रयः प्रभूताशनपानाः क्लेश-  
सहिष्णवो दन्दशूकाः द्रवत्वाच्छि-  
थिलमृदुसन्धिवन्धमांसाः प्रभूत-  
सृष्टस्वेदमूत्रपुरीषाश्च विस्त्रत्वात् ।  
प्रभूतपूतिवक्षः कक्षस्कन्धास्यशि-  
रःशरीरगन्धाः कटुम्लत्वादल्पशु-  
क्रव्यवायापत्याः । तएवंगुणयो-  
गात्पित्तलामध्यबलामध्यायुषो-  
मध्यज्ञानविज्ञानवित्तोपकरणव-  
न्तश्च भवन्ति ॥ ११२ ॥

और पित्त, उष्ण तीक्ष्ण द्रव विस्त्र  
अम्ल कटु होता है उसकी उष्णतासे  
पित्तल मनुष्य उष्णको न सहनेवाले  
और शुष्क सुकुमार गौर गात्र वाले  
और अधिक पिष्टु व्यंग तिलक पिडका  
वाले, क्षुधा पिपासावान् होते हैं वलीपलित  
खालित्य ये दोष शीघ्र उनके होते हैं  
और प्रायः मृदु अल्प कपिल उनके  
श्मश्रु लोम केश होते हैं, तीक्ष्णतासे  
तीक्ष्णपराक्रमी तीक्ष्णअग्नि अधिक  
पान भोजी और क्लेशके असहन शील

और सपेंके समान होतेहैं, द्रव होनेसे त्रिथिल और मृदु, संधि मांस वाले होतेहैं और अधिक स्वेद मूत्र पुरीष आतेहैं विस्त्र होनेसे वक्षस्थल कक्ष मुख शिर शरीर इनमें अधिक दुर्गंधि होतीहै कटु अम्ल होनेसे शुक्र व्यवाय संतान, अल्प होतेहैं वे इस प्रकार गुणोंके योगसे पित्तल मनुष्य मध्यमवली मध्यम अवस्था और मध्यमही ज्ञान विज्ञान धन उपकरण वाले होतेहैं ॥ ११२ ॥

वातस्तुरुक्षलघुचलबहुशीघ्रशी  
तपरुपविशदस्तस्यरौक्ष्याद्वातला  
रुक्षापचिताल्पशरीराःप्रततरुक्ष  
क्षामभिन्नसक्तजर्जरस्वराजागरू  
काश्चभवन्तिलघुत्वाच्चलघुचपलग  
तिचेष्टाहारविहाराःचलत्वादनव  
स्थितसन्ध्यक्षिभूहन्वोष्ठजिह्वाशि  
रःस्कन्धपाणिपादाःबहुत्वाद्वहुप्र  
लापकण्डराशिराप्रतानाःशीघ्रत्वा  
च्छीघ्रसमारम्भक्षोभविकाराःशी  
घ्रोत्रासरागविरागाःश्रुतग्राहिणः  
अल्पस्मृतयश्चशैत्याच्छीतासहि  
ष्णवःप्रततशीतकोद्वेपकस्तम्भाः  
पारुष्यात्परुषकेशष्मश्रुरोमनखद  
शनवदनपाणिपादाङ्गवैशद्यात्स्फु  
टिताङ्गवयवाःसततसन्धिशब्द  
गामिनश्चभवन्ति । तएवंगुणयो

गाद्वातलाःप्रायेणाल्पवलाश्चा  
ल्पायुषश्चाल्पापत्याश्चाल्पसाधना  
श्चाधन्याश्च ॥ ११३ ॥

वात तो रुक्ष लघु चल बहु शीघ्र शीत परुष और विषदहै उसकी रुक्षतासे वातल मनुष्य रुक्ष और अपचित अल्प शरीर होतेहैं और निरंतर रुक्ष क्षाम ( कृश ) भिन्नसक्त जर्जर स्वर होतेहैं और जागरूक होतेहैं, लघु होनेसे गमन चेष्टा आहार व्याहार ये लघु और चंचल होतेहैं, चल होनेसे संधि अस्थि भ्रू हनु ओष्ठ जिह्वा शिर स्कन्ध पाणिपाद ये चंचल होते हैं, बहुत होनेसे प्रलाप कंडरा शिराओंका प्रतान ये बहुत होतेहैं और शीघ्र होनेसे आरंभ क्षोभ विकार ये शीघ्र और भीम होतेहैं और उत्रा स राग विराग ये शीघ्र होतेहैं और श्रुतके ग्राही अल्प स्मृतिमान् होतेहैं शीतलतासे शीतके असहन शील और अधिक शीत उद्वेप स्तम्भवान् होतेहैं परुषतासे केश स्मश्रु, नख, दंत, मुख, पाणि, पाद अंग ये परुष होतेहैं वैषद्यसे अंगके अवयव स्फुटित होतेहैं और गमनके समय संधि-योंमें निरंतर शब्द होजाताहै वे इसप्रकार गुणोंके योगसे वातल मनुष्य प्रायसे अल्पवल अल्पायुः अल्पसाधन और अधन्य होतेहैं ॥ ११३ ॥

संसर्गात्संसृष्टलक्षणाःसर्वगुणसमुदि  
तास्तुसमधातवःइत्येवंप्रकृतितःप  
रीक्षेत ॥ ११४ ॥

संसर्गसे संसृष्ट लक्षण होतेहैं संपूर्ण गुणोंसे युक्त तो समधातुवाले होतेहैं इसप्रकार प्रकृतिसे और विकारोंसे परीक्षाकरै ॥ ११४ ॥

विकृतितश्चेति । विकृतिरुच्यते विकारः । तत्रविकारहेतुदोषदूष्यप्रकृतिदेशकालबलविशेषैर्लिङ्गतश्चपरीक्षित । नह्यन्तरेणहेत्वादीनांबलविशेषंव्याधिवलविशेषोपलब्धिः । यस्यहिव्याधेर्दूष्यदोषप्रकृतिदेशकालसाम्यंभवतिमहच्चहेतुलिङ्गबलंसंव्याधिर्बलवान्तद्विपर्ययाच्चाल्पबलः । मध्यबलस्तुदूष्यादीनामन्यतमसामान्याच्चेतुलिङ्गमध्यबलत्वाच्चउपलभ्यते ॥ ११५ ॥

विकृति विकारको कहतेहैं उसमें विकारकी परीक्षा इनसे करै कि हेतु, दूष्य, दोष प्रकृति देशकाल बल इनके विशेषोंसे और लिंगसे करै क्योंकि हेतु आदिके व्याधिका बल विशेष विना बलविशेषके प्रतीत नहीं होताहै क्योंकि जिस व्याधिके दूष्य दोष प्रकृति देशकाल इनका साम्य हो और महान् हेतु बल लिंग हो वह व्याधि बलवान् होती है उसके विपर्ययसे अल्पबल होतीहै, मध्य बलतो दूष्य आदिकोंमें कोईके सामान्यसे और

हेतु लिंग इनके मध्य बलसे प्रतीत होती है ॥ ११५ ॥

सारतश्चेतिसाराणिअष्टौपुरुषाणांबलमानविशेषज्ञानार्थमुपदिश्यन्ते । तद्यथा,—त्वग्रक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रसत्त्वानि । तत्रस्निग्धश्लक्ष्णमृदुप्रसन्नसूक्ष्माल्पगम्भीरसुकुमारलोमासप्रभाचत्वक्सारणाम् । सासारतासुखसौभाग्यैश्वर्योपभोगबुद्धिविद्यारोग्यप्रहर्षणानिआयुष्यत्वञ्चाचष्टे ॥ ११६ ॥

और सारसे तो, पुरुषोंके आठ सारोंका उपदेश करते हैं वे ऐसे हैं, कि त्वचा रक्त मांस मेदा अस्थि मज्जा शुक्र सत्व ये आठ सारहैं उनमें जो त्वचा स्निग्ध श्लक्ष्ण मृदु प्रसन्न सूक्ष्म अल्प गम्भीर सुकुमार लोम हो और कांतिसे युक्तके समान हो वह त्वचा सारोंकी सारतासे युक्त हैं, सुख सौभाग्य ऐश्वर्य उपभोग बुद्धि विद्या आरोग्य प्रहर्ष ये जो आयुके दाता हैं इनको तत्काल वह त्वचा कहतीहै ॥ ११६ ॥

कर्णाक्षि-मुख-जिह्वानासौष्ठवाणि पादतल-नख-ललाटमेहनानिस्त्रिग्वरक्तानिश्चीमन्तिभाजिष्णूनि रक्तसारणाम् । सासारतासुख

मुदग्रतांमेधांमनस्वित्त्वंसौकुमा  
र्यमनतिचलमक्लेशसहिष्णुत्वश्चा  
चष्टे ॥ ११७ ॥

कर्ण नेत्र मुख जिह्वा नासिका ओष्ठ  
पाणि पाद, तल नख ललाट मैथुन ये  
सब रक्तसार मनुष्योंके स्निग्धरक्त  
श्रीमान् और प्रकाशमान् होते हैं रक्तके  
सारोंकी सारता सुखकी उत्तमता मेधा  
उदारमन सुकुमारता आति बलका  
अभाव अक्लेश सहनशीलताको कह-  
ती है ॥ ११७ ॥

शंख-ललाट-कृकाटिकाक्षिगण्ड  
हनुग्रीवास्कन्धोरःकक्षवक्षः-पा  
णिपादसन्धयःस्थिरगुरुशुभमां  
सोपचितामांससाराणाम् । सा  
सारताक्षमांश्रुतिमलौल्यंविचंचि  
द्यांसुखमार्जवमारोग्यंबलमायुश्च  
दीर्घमाचष्टे ॥ ११८ ॥

शंख ललाट कृकाटिका नेत्रगण्ड  
हनु, ग्रीवा, स्कंध, उरः, कक्ष, वक्षः पाणि  
पाद सांधि ये सब स्थिर, गुरु, शुभ, मांससे  
उपचित ( बढेहुए ) होतेहैं मांससारोंके  
मांसके सारोंकी वह सारता, क्षमा,  
धृति, अचंचलता, धन, विद्या, सुख,  
कोमलता, आरोग्य, बल, आयुष्य, इनकी  
दीर्घताको कहतीहै ॥ ११८ ॥

वर्णस्वरनेत्रकेशलोमनखदन्तौष्ठ  
मूत्रपुरीषेषुविशेषतःस्नेहोमेदःसा

राणाम् । सासारतावित्तैश्वर्यं  
सुखोपभोगप्रदानान्यार्जवंसुकुमा  
रोपचारतामाचष्टे ॥ ११९ ॥

वर्ण, स्वर, नेत्र, केश, लोम, नख,  
दंत, ओष्ठ, मूत्र, पुरीष इनमें मेदा सार-  
वानोंके विशेषकर स्नेह होताहै मेदाके  
सारोंकी वह सारता, धन, ऐश्वर्य, सुख,  
उपभोग दान आर्जवको और सुकुमार,  
उपचारको कहतीहै ॥ ११९ ॥

पार्ष्णिगुल्फजान्वरत्निजत्रुचिवु  
कशिरःपर्वस्थूलाःस्थूलास्थिनख  
दन्ताश्वास्थिसारास्तेमहोत्साहाः  
क्रियावन्तश्चक्लेशसहाःसारस्थिरश  
रीराभवन्तिआयुष्मन्तश्च १२० ॥

पार्ष्णि, गुल्फ, जानु, अरत्नि, जत्रु,  
चिवुक, शिर इनके पर्व स्थूल और  
स्थूलही अस्थि, नख, दंत, अस्थिसार,  
होतेहैं वे मंदोत्साही क्रियावान् क्लेशके  
सहनशील सार और स्थिर शरीर आयु-  
ष्मान् होतेहैं ॥ १२० ॥

तन्वङ्गावलवन्तःस्निग्धवर्णस्वराः  
स्थूलदीर्घवृत्तसन्धयश्चमज्जासारा  
स्तेदीर्घायुषोबलवन्तः ॥ १२१ ॥

तनु अंगवान् बलवान् वर्ण स्वरमें  
स्निग्ध, स्थूल, दीर्घ, वृत्त, संधिवान्,  
मज्जासार होतेहैं वे दीर्घ आयु, बलवान्  
होतेहैं ॥ १२१ ॥

श्रुतविज्ञानवित्तापत्यसम्मानभा  
जश्चसौम्याःसौम्यप्रेक्षिणश्चशीरपू  
र्णलोचनाइवप्रहर्षबहुलाःस्निग्धवृ  
त्तसारसमसंहतशिखरिदशनाःप्रस  
न्नस्निग्धवर्णस्वराभाजिष्णवोम  
हास्फिजश्चशुक्रसाराःतेस्त्रीप्रियाः  
प्रियोपभोगावलवन्तः ॥ १२२ ॥

श्रुत, विज्ञान, धन, संतान, सन्मानके  
भागी और सौम्यस्वभाव, सौम्य देखना  
क्षीरसे पूर्ण लोचनके समान अधिक  
आनंदी और स्निग्ध, वृत्त, सारस, असं-  
हृत (छीदे) शिखर दंत जिनके प्रसन्न  
और स्निग्धहैं वर्ण स्वर जिनके प्रकाश  
मानहैं वही स्फिज जिनकी ऐसे शुक्रसार  
होतेहैं वे स्त्रियोंको प्रिय और स्त्री उनको  
प्रिय स्त्रियोंका प्रिय है उपभोग जिनको  
ऐसे और बलवान् होतेहैं ॥ १२२ ॥

सुखैश्वर्यारोग्यवित्तसम्मानाप  
त्यभाजःस्मृतिमन्तोभक्तिमन्तः  
कृतज्ञाप्राज्ञाःशुचयोमहोत्साहा  
दक्षाधीराःसमरविक्रान्तयोधिनः  
त्यक्तविषादाःसुव्यवस्थितागम्भी  
रबुद्धिचेतसःकल्याणाभिनिवेशि  
नश्चसर्वसाराः ॥ १२३ ॥

सुख ऐश्वर्य आरोग्य धन सन्मान  
संतान इनके भोगी और स्मृतिमान्  
भक्तिमान् कृतज्ञ प्राज्ञ शुद्ध महोत्साही

चतुर धीर संग्राममें विक्रान्तयोधा विपा-  
दसे हीन अवस्थित गंभीर बुद्धि और  
चित्तवान्, कल्याणके आग्रही सत्वसार  
होते हैं ॥ १२३ ॥

तेषांस्वलक्षणैरेवगुणाव्याख्या  
ताः ॥ १२४ ॥

उनका व्याख्यान इन स्वलक्षण  
गुणोंसेही है ॥ १२४ ॥

तत्रसर्वैःसारैरुपेताःपुरुषाभवन्त्य  
तिबलाःपरंगौरवयुक्ताःक्लेशसहाः  
सर्वारंभेष्व्वात्मनिजातप्रत्ययाःक  
ल्याणाभिनिवेशिनःस्थिरसमाहि  
तशरीराःसुसमाहितगतयःसानुना  
दस्निग्धगम्भीरमहास्वराःसुखैश्व  
र्यवित्तोपभोगसम्मानभाजोमन्द  
जरसोमन्दविकाराःप्रायस्तुल्यगु  
णविस्तीर्णापत्याःचिरजीविन  
श्च ॥ १२५ ॥

उनमें जो संपूर्ण सारोंसे युक्त हैं वे  
पुरुष अति बलवान् परम गौरवसे युक्त  
क्लेशसहनशील संपूर्ण आरंभोंमें श्रेष्ठ  
अपनीही आत्मामें आशायुक्त कल्याणके  
आग्रही, स्थिर और सावधान शरीरवान्  
और भली प्रकार सावधान गति और  
शब्दसहित स्निग्ध गंभीर महान् जिन-  
का स्वर है सुख ऐश्वर्य चित्त उपभोग  
सन्मान इनके भागी, मंद बुद्ध अवस्था  
मंदविकार होते हैं प्रायः तुल्य गुण

विस्तारवाले अपत्यवान् होते हैं, चिर-  
जीवी होते हैं ॥ १२५ ॥

अतोविपरीतास्त्वसाराः ॥ १२६ ॥

इनसे जो विपरीत हैं वे असार होते  
हैं ॥ १२६ ॥

मध्यानां मध्येः सारविशेषैर्गुणवि-  
शेषा व्याख्याताः । इति साराण्य  
ष्टौ पुरुषाणां बलप्रमाणविशेषज्ञा-  
नार्थानि ॥ १२७ ॥

मध्योंके मध्यमसार विशेषोंसे गुण  
विशेष व्याख्यात होते हैं, ये आठ सार  
पुरुषोंके बल मान विशेषके ज्ञानके  
अर्थ हैं ॥ १२७ ॥

कथं नु शरीरमात्रदर्शनादेव भिषक्  
मुह्येदयमुपचितत्वाद्वलवानयम्  
अल्पबलः कृशत्वात्महावलवान-  
यमहाशरीरत्वादयमल्पशरीरत्वा-  
दल्पबल इति । दृश्यन्ते ह्यल्पशरी-  
राः कृशाश्चैके बलवन्तः तत्र पिपी-  
लिकाभारहरणवत्सिद्धिः । अत-  
श्च सारतः परीक्षेत इत्युक्तम् ॥ १२८ ॥

कैसे वैद्य शरीर मात्रके दर्शनसे ही  
मोहको प्राप्त न हो कि, यह उपचित  
होनेसे बलवान् है, यह कृश होनेसे  
अल्पबल है यह महाशरीरी होनेसे  
महाबली है यह अल्प शरीरी होनेसे  
अल्पबल है इति । क्योंकि अल्प शरीर

और कृश भी बलवान् कोई २ दीखते हैं  
उनमें पिपीलिकाके भार ले जानेके समान  
सिद्धिमें रत वैद्य सारसे परीक्षा करके  
चिकित्सा करे ॥ १२८ ॥

संहननतश्चेति संहननसंघातः संयो-  
जनमित्येकोऽर्थः ॥ १२९ ॥

और संहननसे परीक्षा करे यह भी  
कहा है, संहनन नाम संघातका है और  
संयोजन यह एकही अर्थ है ॥ १२९ ॥

तत्र समसुविभक्तास्थिसुबद्धस-  
न्धिसुनिविष्टमांसशोणितसुसंहतं  
शरीरमित्युच्यते । तत्र सुसंहत  
शरीराः पुरुषा बलवन्तो विपर्यये  
ण अल्पबलाः प्रवरावरमध्यमत्वात्  
संहननस्य मध्यबला भवन्ति ॥ १३० ॥

उसमें सम और सुविभक्त अस्थि  
सुबद्ध संधियोंमें निविष्ट मांस शोणित  
जिसमें हों उस शरीरको सुसंहत कहते हैं  
उनमें जो पुरुष सुसंहत शरीर हैं वे  
बलवान् और विपर्ययसे अल्पबल और  
संहननके प्रवर अवर मध्यम होनेसे  
मध्यबल होते हैं ॥ १३० ॥

प्रमाणतश्चेति शरीरप्रमाणं पुनर्य-  
थास्वेनांगुलिप्रमाणेनोपदेक्ष्यते ।

उत्सेधविस्तारायामैर्यथाक्रमम् ॥ १३१ ॥

प्रमाणसे जो कहा है वह शरीरका  
प्रमाण पुनः ऐसा है, जिसका अपनी  
अंगुलिके प्रमाणसे उंचाई विस्तार दीर्घसे  
यथाक्रम उपदेश करते हैं ॥ १३१ ॥

तत्रपादौचत्वारिषट्चतुर्दशचा  
ङ्गुलानि, जंघेत्वष्टादशांगुलेषो  
डशांगुलिपरिक्षेपे, जानुनीचतुरं  
गुलेषोडशांगुलिपरिक्षेपे, त्रिंशदं  
गुलपरिक्षेपावष्टादशांगुलावूरू,  
वृषणौषडंगुलदीर्घौअष्टांगुलप  
रिणाहौ, शोफःषडंगुलदीर्घपञ्चां  
गुलपरिणाहं; द्वादशांगुलपरि  
णाहोभगः, षोडशांगुलविस्तारा  
रकटी, दशांगुलवस्तिशिरः, दशां  
गुलविस्तारंद्वादशांगुलमुदरं, दशां  
गुलविस्तीर्णेद्वादशांगुलायामेपार्श्वं  
द्वादशांगुलविस्तारंस्तनान्तरंद्वयं  
गुलंस्तनपर्यन्तं, चतुर्विंशत्यंगुलवि  
शालंद्वादशांगुलोत्सेधमुरःद्वयंगुलं  
हृदयम्, अष्टांगुलौस्कन्धौ, षडंगु  
लावंशौ, षोडशांगुलौबाहू, पञ्चद  
शांगुलौपाणी, हस्तौद्वादशांगुलौ,  
कक्षौअष्टांगुलौ, त्रिकंद्वादशांगुलो  
त्सेधम्, अष्टादशांगुलोत्सेधपृष्ठं, च  
तुरंगुलोत्सेधाद्वाविंशत्यंगुलपरि  
णाहाशिरोधरा, द्वादशांगुलोत्सेधं  
चतुर्विंशत्यंगुलपरिणाहमाननं,  
पञ्चांगुलमास्यं, चिबुकौष्ठकर्णा  
क्षिमध्यनासिकाललाटानि,

चतुरंगुलानि, षोडशांगुलोत्से  
धंद्वात्रिंशदंगुलपरिणाहंशिरः  
तिपृथक्त्वेनाङ्गावयवानांमानमु  
क्तंकेवलंपुनःशरीरमंगुलिपर्वाणि  
चतुरशीतिस्तदायामविस्तारसमं  
समुच्यते ॥ १३२ ॥

उसमें पाद, चार, छः चौदह  
अंगुलके होतेहैं, जंघा तो अठारह अंगुल  
लंबी और सोलह अंगुल परिक्षेप  
( मोटाई ) की होतीहै और जानु चार  
अंगुल और सोलह अंगुल परिक्षेपके  
( फेर ) होतेहैं तीस अंगुल परि  
क्षेपमें और अठारह अंगुलके ऊरू  
होतेहैं, छः अंगुल दीर्घ वृषण  
होते हैं और उनका आठ अंगुलका  
परिणाह होताहै, छः अंगुल दीर्घ शोफ  
( लिंग ) और पांच अंगुल परिणाहमें  
होताहै, सोलह अंगुलके विस्तारकी  
कटि होती है, दश अंगुल वस्ति  
होती है बारह अंगुलके शिर और  
उदर होते हैं, दश अंगुल विस्तारमें  
बारह अंगुल दीर्घ पार्श्व होते हैं, बारह  
अंगुलका स्तनोंका अंतर होताहै, दो  
अंगुल स्तनोंका पर्यंत भाग होताहै,  
चौबीस अंगुलका विशाल बारह अंगुल  
ऊंचा उर ( छाती ) होताहै, दो अंगुल  
का हृदय होताहै आठ अंगुल स्कंध  
होते हैं छः अंगुल अंश होते हैं सोलह  
अंगुलकी बाहू और पंद्रह अंगुलके  
पाणि, दश अंगुल हस्त, कक्ष आठ अंगुल,

त्रिक वारह अंगुल ऊँचा, आठ अंगुल ऊँचा पृष्ठ चार अंगुल ऊँची बाईस अंगुल परिणाहकी शिरोधरा ( ग्रीवा ) होती है; वारह अंगुल ऊँचा चौबीस अंगुल परिणाहका आनन होता है; पाँच अंगुलका आस्य होता है। चिबुक आठ अंगुल, कर्ण अधिका मध्य नासिका ललाट ये चार २ अंगुल होते हैं। सोलह अंगुल ऊँचा बत्तीस अंगुल परिणाहका शिर होता है यह पृथक् २ करके अंगके अवयवोंका मान कहा है और पुनः केवल शरीर तो चौरासी अंगुलियोंके पर्वभर आयाम और विस्तारमें समान कहा है ॥ १३२ ॥

तत्रायुर्वलमोजःसुखमैश्वर्यवित्त  
मिष्टाश्वापरेभावाभवन्त्यायत्ताः  
प्रमाणवतिशरीरेविपर्ययस्तुही  
नेऽधिकेवा ॥ १३३ ॥

उस शरीरसे आयुः, वल, ओज, सुख ऐश्वर्य, धन और इष्ट जो अन्यभाव हैं वे आयत्त ( आधीन ) प्रमाणवाले शरीरमें होते हैं और विपर्यय तो हीन वा अधिक जो है उसमें होता है ॥ १३३ ॥

सात्म्यतश्चेति । सात्म्यं नाम तद्य  
त्सातत्येनोपयुज्यमानमुपशेतेत  
त्रयैधृतक्षीरतैलमांसरससात्म्याः  
सर्वरससात्म्याश्च ते बलवन्तः क्लेश  
सहाश्चिरजीविनश्च भवन्ति । रू  
क्षानित्याः पुनरेकरससात्म्याश्च ये ते

प्रायेणाल्पबलाश्चाक्लेशसहाअल्पा  
युपोऽल्पसाधनाश्च भवन्ति १३४ ॥

सात्म्यसे परीक्षा करै, सात्म्य नाम वह है जो निरंतर सेवन कीजानेसे अनुकूल रहे उसमें जो घृत दूध तेल मांस रस सात्म्य और सब रसोंके सात्म्य मनुष्यों हैं वे बलवान् क्लेशके सहनशील चिरजीवी होते हैं और जो नित्य रूक्ष भोजी हैं और एक रस सात्म्य हैं वे प्रायः अल्प बली क्लेशके असहनशील अल्पायुः अल्पसाधन होते हैं ॥ १३४ ॥

व्यामिश्रसात्म्यास्तु ये ते मध्यबलाः  
सात्म्यनिमित्ततः ॥ १३५ ॥

और जो व्यामिश्र सात्म्य हैं वे मध्य बल सात्म्यके निमित्तसे होते हैं १३५

सत्त्वतश्चेति । सत्त्वमुच्यते म  
नस्तच्छरीरस्य तन्त्रकमात्मयो  
गात्तत्रिविधं बलभेदेन प्रवरं मध्य  
मवरोमिति । अतश्च प्रवरमध्या  
वरसत्त्वाश्च पुरुषा भवन्ति । तत्र  
प्रवरसत्त्वाः सत्त्वसाराः सारेषु उप  
दिष्टाः स्वल्पशरीराह्यपि ते निजा  
गन्तुनिमित्तासु महतीष्वपि पीडा  
स्वव्यग्रादृश्यन्ते सत्त्वगुणवैशे  
ष्यात् ॥ १३६ ॥

और सत्त्वसे परीक्षा करै, सत्त्व मनको कहते हैं वह शरीरका तंत्रक आत्माके संयोग निमित्तसे है और वह तीन प्रका-



रका, बलके भेदसे प्रवर, मध्यम, अव-  
रहे इसीसे प्रवर अवर मध्यम सत्व  
वाले पुरुष होतेहैं, उनमें प्रवर सत्व जो  
हैं वे सत्वसारहैं उनका सारोंमें उपदेश-  
कर आये स्वल्प शरीरभी वे निज और  
आगंतु निमित्तसे हुई बड़ी २ भी पीडा-  
ओंमें दुःखसे रहित दासत्व गुणकी विशे-  
पतासे दीखतेहैं ॥ १३६ ॥

मध्यसत्त्वास्तुपरानात्मनिउपनिधा-  
यसंस्तम्भयन्तिआत्मनाआत्मानं  
परैःवापिसंस्तम्भयन्तेहीनसत्त्वास्तु  
नात्मनानचपरैःसत्त्वबलंशक्यन्ते  
उपस्तम्भयितुंमहाशरीराह्यपिते  
स्वल्पानामपिवेदनानामसहादृश्य  
न्ते । सन्निहितभयशोकलोभमो-  
हमाना रौद्रभैरवद्विष्टबीभत्सवि-  
कृतसङ्कथासुअपिचपशुपुरुषमां-  
सशोणितानिचावेक्ष्यविषादवैव-  
र्ण्यमूर्च्छोन्मादभ्रमप्रपतनानामन्य-  
तममामुवन्त्यथवामरणमिति १३७

मध्यसत्त्वतो अपरोंकोभी अपने ऊपर  
रखकर संस्तम्भन करते हैं आत्मासे  
आत्माका और अन्योसे अपने संस्तम्भन-  
को कराते हैं, हीन सत्व तो न आत्मासे न  
अन्योसे सत्व बलके प्रति संस्तम्भन  
करनेको समर्थ नहीं होते, महा शरीरभी  
वे स्वल्पभी वेदनाओंके असहनशील  
दीखते हैं और निकट हैं भय शोक

लोभ मोह मान जिनके और रौद्र भैरव  
शत्रु बीभत्स ( भयानक ) विकृत संक-  
थाओंमें और पशु पुरुष इनके मांस  
रुधिरोंको देखकर, विषाद वैवर्ण्य  
मूर्च्छा उन्माद भ्रम प्रपतन इनमेंसे  
कोईसेको वा मरणको प्राप्त होतेहैं १३७  
आहारशक्तितथेति । आहार  
शक्तिरभ्यवहरणशक्त्याजरणश-  
क्त्याचपरीक्ष्यबलायुपीत्याहारा-  
यत्ते ॥ १३८ ॥

आहार शक्तिसे परीक्षा करै, आहा-  
रकी शक्ति भोजन शक्तिसे वा जरण  
शक्तिसे परीक्षा करने योग्यहै क्योंकि बल  
और आयु आहारके आधीन हैं ॥ १३८ ॥

व्यायामशक्तितथेति । व्याया-  
मशक्तिमपिकर्मशक्त्यापरीक्ष्या  
कर्मशक्त्याह्यनुमीयतेबलं त्रिवि-  
धम् ॥ १३९ ॥

व्यायाम शक्तिसे परीक्षा करै, व्या-  
याम शक्तिभी कर्मकी शक्तिसे परीक्षाके  
योग्य है और कर्म शक्तिसे तीन प्रकारका  
बल अनुमान किया जाता है ॥ १३९ ॥

वयस्तथेति । कालप्रमाणविशे-  
षापेक्षिणीहिशरीरावस्थावयोऽ-  
भिधीयते । तद्वयोयथावस्थान  
भेदेनत्रिविधं बालं मध्यं जीर्णमिति

अवस्थासे परीक्षाकरै कालविशे-  
षकी अपेक्षा जिसे हो ऐसी शरीरकी

अवस्थाको वय कहतेहैं वह वय यथा अवस्थानके भेदसे तीन प्रकारका है बाल, मध्य जीर्ण इति ॥ १४० ॥

तत्रबालमपरिपक्वधातुगुणमजात व्यञ्जनंसुकुमारमक्लेशसहमसम्पूर्णबलं श्लेष्मधातुप्रायमापोदश वर्षम् । विवर्द्धमानधातुगुणंपुनः प्रायेणानवस्थितसत्त्वमात्रिंशद्वर्षमुपदिष्टम् । मध्यंपुनःसमर्थागतबलवीर्य्यपौरुषपराक्रमग्रहणधारणस्मरणवचनविज्ञानसर्वधातुगुणं बलस्थितमवस्थितसत्त्वमविशीर्य्यमाणधातुगुणं पित्तधातुप्रायमापष्टिवर्षमुदिष्टम् । अतः परं परिहीयमाणधात्विन्द्रियबलपौरुषपराक्रमग्रहणधारणस्मरणवचनविज्ञानंभ्रश्यमानधातुगुणंवा तधातुप्रायंक्रमेणप्रजीर्णमुच्यते आवर्षशतम् ॥ १४१ ॥

उन तीनोंमें जिसके धातुगुण परिपक्व न हों जात व्यञ्जन नहो अर्थात् पुंस्त्व प्रकट नहो सुकुमारहो क्लेशको न सह सकें संपूर्ण बल नहो प्रायः कफ धातु हो ऐसा जो सोलह वर्ष पर्यंत हो फिर जिसकी धातुओंके गुण विशेषकर वर्द्धमान हो और प्रायः सत्त्वकी अवस्थिति नहो यह दशा जिसकी तीस वर्ष पर्यंत

हो वह बालक कहाँ और जिसके सामर्थ्यसे बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम, ग्रहण, धारण, स्मरण, वचन, विज्ञान, सब धातुओंके गुणहों बलसे स्थितहो, अवस्थित सत्त्वहो, धातुओंकी गुणोंके हानि नहो प्रायः पित्त धातुहो वह साठ वर्ष तक मध्य कहाँ है इससे परे जिसके धातु इंद्रिय, बल, पौरुष, पराक्रम, ग्रहण, धारण, स्मरण, वचन, विज्ञान, ये परिहीयमान ( कम ) हों धातुओंके गुण भ्रश्यमान ( नष्ट ) हों प्रायः वात धातु हो वह क्रमसे सौवर्ष पर्यंत प्रजीर्ण कहाँता है ॥ १४२ ॥

वर्षशतंखलुआयुपःप्रमाणमस्मिन्काले । सन्तिपुनरधिकोनवर्षशतजीविनोमनुष्याः । तेषां विकृतिवर्ज्यैःप्रकृत्यादिवलविशेषैरायुपोलक्षणतश्चप्रमाणमुपलभ्य वयसस्त्रित्वंविभजेत् । एवंप्रकृत्यादीनांविकृतिवर्ज्यानांभावानां प्रवरमध्यावरविभागेनबलविशेषं विभजेत् । विकृतिबलत्रैविध्येन तु दोषबलंत्रिविधमनुमीयते । ततोभैषज्यस्यतीक्ष्णमृदुमध्यविभागेनत्रित्वंविभज्ययथादोषंभैषज्यमवचारयेदिति ॥ १४३ ॥

इसकालमें आयुका प्रमाण निश्चयसे सौ वर्षकाहै और सौ से अधिक और

न्यून वर्षतक जीनिवालेभी मनुष्यहैं उनके विकृतिसे भिन्न प्रकृति आदिके बल विशेषोंसे और लक्षणोंसे आयुके प्रमाणको जानकर अवस्थाके तीन भाग करें; तीन विकारसे भिन्न प्रकृति आदि भावोंके प्रवर मध्य अवर विभागसे बल विशेषका विभाग करें तीन प्रकारके विकार बलसे तीन प्रकारके दोष, बलका अनुमान करें फिर भेषज्यके तीक्ष्ण मृदु, मध्य, विभागसे तीन प्रकार विभाग करके यथायोग औषधका प्रचार करें इति ॥ १४२ ॥

आयुषःप्रमाणज्ञानहेतोःपुनरिन्द्रियेषुजातिसूत्रीयेचलक्षणान्युपेक्ष्यन्ते ॥ १४३ ॥

और आयुके प्रमाण ज्ञानके हेतु इंद्रियोंमें और जातिसूत्रीयमें लक्षणोंका उपदेश करेंगे ॥ १४३ ॥

कालःपुनःसंवत्सरश्चातुरावस्था च । तत्रसंवत्सरोद्विधात्रिधाषोढाद्वादशधाभूयश्चातःप्रविभज्यते तत्तत्कार्यमभिसमीक्ष्य ॥ १४४ ॥

काल संवत्सरहै और आतुरकी अवस्थाहै उनमें संवत्सर दो प्रकारकाहै और तीन प्रकारका छःप्रकारका बारह प्रकारकाहै और फिर इनमेंसेभी तिस २ कार्यको देखकर वर्षका विभाग किया जाता है ॥ १४४ ॥

तत्रखलुतावत्पोढाप्रविभज्यकार्यमुपदेक्ष्यते । हेमन्तोऽग्रीष्मोवर्षाश्चेतिशीतोष्णवर्षलक्षणास्त्रयः ऋतवोभवन्ति । तेषामन्तरेष्वितरेसाधारणलक्षणास्त्रयःऋतवः प्रावृट्शरद्वसन्ताइति । प्रावृट् इतिप्रथमःप्रावृष्टेःकालस्तस्यअनुबन्धोवर्षाएवमेतेसंशोधनमधि कृत्यपङ्क्तिविभज्यन्तेऋतवः १४५

और उसका निश्चयसे प्रथम छः प्रकारसे विभाग करके कार्यका उपदेश करतेहैं, हेमन्त ग्रीष्म और वर्षा ये शीत उष्ण वर्षा लक्षणकी तीन ऋतु होतीहैं और उनके मध्यमें इतर साधारण लक्षणकी तीन ऋतु, प्रावृट् शरद् वसन्त नामकी होतीहैं, प्रावृट् यह, प्रावृष्टिका प्रथम कालहै उसका अनुबन्ध वर्षा है इस प्रकार ये छःऋतु संशोधनके अधिकारसे विभाग कियेजातेहैं ॥ १४५ ॥

तत्रसाधारणलक्षणेऽप्युपवमनादीनांप्रवृत्तिर्विधीयतेनिवृत्तिरितरेषु । साधारणलक्षणाहिमन्दशीतोष्णवर्षत्वात्सुखतमाश्वभवन्ति अविकल्पाश्चशरीरौषधानामितरेपुनरत्यर्थशीतोष्णवर्षत्वाद्दुःखतमाश्वभवन्तिविकल्पाश्चशरीरौषधानाम् ॥ १४६ ॥

उनमें साधारण लक्षणकी ऋतुओंमें वमन आदिकी प्रवृत्ति कहीहै और इतरोंमें निवृत्ति युक्त है क्योंकि साधारण लक्षणकी ऋतु शीत उष्ण वर्षा इनकी मंदतासे अति सुखकी दाता और शरीरकी औषधोंके विकल्पसे रहित होतीहै और इतर ऋतु शीत उष्ण वर्षाके अत्यंत होनेसे अतीव दुःखदायी होतीहै और शरीर औषधोंमें विकल्पवान् होतीहै ॥ १४६ ॥

तत्रहेमन्तेत्यतिमात्रशीतोपहत त्वाच्छरीरमसुखोपपन्नंभवति । अतिशीतवाताध्मातमतिदारुणी भूतमवनद्धदोषम् । भेषजंपुनः संशोधनार्थमुष्णस्वभावमन्तेशी तोपहतत्वान्मन्दवीर्यत्वमापद्यते । तस्मात्तयोःसंयोगेसंशोधन मयोगायोपपद्यतेशरीरश्चवातोप द्रवाय ॥ १४७ ॥

उनमें हेमन्तमें अत्यंत शीतसे उपहत होनेसे असुखसे युक्त शरीर होताहै और शीतल वातसे धमाया अति दारुण, दोषोंसे अवबद्ध होताहै और भेषजभी संशोधनके लिये उष्ण स्वभावभी अन्तमें शीतसे उपहत होनेसे मंदवीर्य हो जातीहै तिससे उन दोनोंके संयोगसे संशोधन अयुक्त होताहै और शरीरमें वातका उपद्रव होताहै ॥ १४७ ॥

ग्रीष्मेपुनर्भूशोष्णोपहतत्वाच्छरी

रमसुखोपपन्नंभवति । उष्णवा तातपाध्मातमतिशिथिलमत्यन्त प्रविलीनदोषंभेषजंपुनःसंशोधनार्थमुष्णस्वभावमेवात्युष्णानुगम नार्त्तीक्ष्णतरत्वमापद्यते । तस्मात्तयोःसंयोगेसंशोधनमतियोगा योपपद्यतेशरीरमपिपिपासोपद्रवाय ॥ १४८ ॥

और ग्रीष्ममें अत्यंत उष्णसे उपहत होनेसे शरीर असुखसे युक्त होताहै उष्णसे उष्ण वातसे धमाया अति शिथिल अत्यंत प्रविलीन दोष होताहै, भेषजभी संशोधनके लिये उष्ण स्वभावभी उष्णके अनुगमनसे तीक्ष्ण तरताकी प्राप्त हो जातीहै तिससे तिनके संयोगमें संशोधन अति योगकी प्राप्त होताहै अर्थात् अति योगसे श्रेष्ठ नहीं शरीरमेंभी पिपासाका उपद्रव होताहै ॥ १४८ ॥

वर्षासुतुमेवजालावततेगूढार्कचन्द्रतारेधाराकुलेवियतिभूमौपङ्कजलपटलसंवृतायामत्यर्थापक्लिन्न शरीरेषुभूतेषुविहतस्वभावेपुचकेवल्लेषुऔषधग्रामेषुतोयदानुगतमारुतसंसर्गोपहतेषुगुरुप्रवृत्तीनिवमनादीनिभवन्ति । गुरुसमुत्थाना निशरीराणि । तस्माद्मनादीनां निवृत्तिर्विधीयतेवर्षान्तेषुऋतुषुन चेदात्ययिकेकर्म ॥ १४९ ॥

वर्षाओंमें तो मेघ जालके विस्तारसे छिपे हुये चंद्र सूर्य तारागण होतेहैं आकाश धारासे व्याकुल और भूमि पंकजलके समूहसे ढकी हुई रहतीहै भूतोंके शरीर अत्यंत उपाकृन्न होतेहैं और औषधियोंके समूहोंके स्वभाव केवल नष्ट हो जातेहैं जलदके अनुगामी पवनके संसर्गसे गुरुतासे प्रवृत्त वमन आदि होतेहैं और गौरवसे शरीर उठतेहैं तिससे वर्षामें वर्षात ऋतुओंमें वमन आदिकी निवृत्ति करनी आवश्यक कर्म न होयतो अर्थात् वमन आदि न करावै ॥ १४९ ॥

आत्ययिकेपुनःकर्मणिकाममृतं  
विकल्प्यकृत्रिमगुणोपधानेनय  
थर्तुगुणविपरीतेनभैषज्यसंयोग  
संस्कारप्रमाणविकल्पेनउपपाद्य  
प्रमाणवीर्य्यसमंस्कृत्वाततःप्रयोज  
येदुत्तमेनयत्नेनअवहितः १५० ॥

और आवश्यक कर्ममें तो यथेच्छ ऋतुके विकल्पसे कृत्रिम गुणके उपधानसे जैसे ऋतुके गुणसे विपरीत हो तैसे संयोग संस्कार प्रमाणके विकल्पसे भैषज्यको करके प्रमाण वीर्यके सम करके फिर उत्तम यत्नसे सावधान होकर औषधको प्रयुक्तकरै ( देवै ) ॥ १५० ॥

आतुरावस्थास्वपितुकार्य्याका  
र्य्यप्रतिकालाकालसंज्ञातद्यथा  
अस्यामवस्थायामस्यभेषजस्य  
कालोऽकालःपुनरस्येति ॥ १५१ ॥

रोगकी अवस्थाओंमेंभी कार्य अकार्यके प्रतिकाल कालकी संज्ञाहै वह ऐसेहै कि इस अवस्थामें इस भेषजका कालहै और इसका अकालहै ॥ १५१ ॥

एतदपिभवतिअवस्थाविशेषेणत  
स्मादातुरावस्थास्वपिहिकाला  
कालसंज्ञा । तस्यपरीक्षामुहुर्मुहु  
रातुरस्यसर्वावस्थाविशेषावेक्षणं  
यथावत्भेषजप्रयोगार्थम् । नह्य ।  
तिपतितकालमप्राप्तकालंवाभेष  
जमुपयुज्यमानंयौगिकंभवति ।  
कालोहिभैषज्यप्रयोगपर्य्याप्तिम  
भिनिर्वर्त्तयति ॥ १५२ ॥

यहभी अवस्थाके विशेषसे होताहै तिससे आतुरकी अवस्थाओंमेंभी काल अकालकी संज्ञाहै उसकी परीक्षा बारंबार आतुरकी संपूर्ण अवस्थाओंके विशेषोंको यथार्थभेषज प्रयोगार्थ देखना क्योंकि अत्यंत पतित ( गये ) कालमें वा अप्राप्त कालमें प्रयुज्यमान भेषज योगसे युक्त नहीं होती क्योंकि काल भेषजके योगकी पूर्णताको करताहै ॥ १५२ ॥

प्रवृत्तिस्तुप्रतिकर्मसमारंभः ।  
तस्यलक्षणंभिषगातुरौपधपरिचा  
रकाणांक्रियासमायोगः ॥ १५३ ॥

प्रवृत्ति तो कर्म २ के प्रति समारंभहै उसका लक्षण भिषक् रोगी औषध सेवक इनकी क्रियाका भली प्रकार योगहै ॥ १५३ ॥

उपायः पुनर्भिषगादीनां सौष्ठवमभि  
सन्धानञ्च सम्यक् । तस्य लक्षणं  
भिषगादीनां यथोक्तगुणसंपदेश  
कालप्रमाणसात्म्यक्रियादिभिश्च  
निष्कारणैः सम्यगुपपादितस्यौ  
पधस्यावधारणमिति । एवमेतेद  
शपरीक्ष्यविशेषाः पृथक्पृथक्प  
रीक्षितव्याभवन्ति । परीक्षायास्तु  
स्वलुप्रयोजनप्रतिपत्तिज्ञानम् १५४

और उपाय तो भिषक् आदिकोंकी  
उत्तमता और सम्यक् अभिसंधानहै  
उसका लक्षण यह है कि भिषक् आदिके  
यथोक्त गुणोंकी संपदा देश काल प्रमाण  
सात्म्य क्रिया आदि जो सिद्धिके कारण  
हैं उनसे उपपादित ( सिद्ध ) की हुई  
औपधका अवधारण ( देना ) है, इस  
प्रकार ये दश परीक्षा योग्योंके विशेष  
पृथक् २ परीक्षा करने योग्य हैं और  
परीक्षाका प्रयोजन तो निश्चयसे प्रति  
पत्ति ( सिद्धि ) का ज्ञान है ॥ १५४ ॥

प्रतिपत्तिर्नामसयस्तुविकारः यथा

प्रतिपत्तव्यतस्य तथानुष्ठानज्ञानम् ।

प्रतिपत्ति तो यह है जो विकार जैसे  
ज्ञानों योग्य है उसका वैसाही अनुष्ठान  
करना ॥ १५५ ॥

यत्र तु खलु वमनादीनां प्रवृत्तिर्यत्र च  
निवृत्तिस्तद्व्यासतः सिद्धिपूत्रका  
लमुपदेक्ष्यते । प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षण

संयोगे तु खलु गुरुलाघवं संप्रधार्य  
सम्यगध्यवस्येदन्यतरनिष्ठायां ।  
सन्ति हि व्याधयः शास्त्रेषु उत्सर्गा  
पवादैरुपक्रमप्रतिनिर्दिष्टाः । तस्मा  
दुरुलाघवं संप्रधार्य सम्यगध्य  
वस्येदित्युक्तम् ॥ १५६ ॥

और जहां वमन आदिकी प्रवृत्ति है  
और जिनमें निवृत्ति है उसका विस्तार  
से सिद्धियोंमें आगे उपदेश करेंगे और  
प्रवृत्ति और निवृत्तिके लक्षणोंके संयोगमें  
तो गुरु लाघवका निश्चय करके और  
भली प्रकार जांचकर एककी सिद्धिमें  
निश्चय करें, क्योंकि शास्त्रमें उत्सर्ग  
अपवाद रूपसे व्याधि उपक्रम २ के  
प्रति दिखाई हैं तिससे गुरु लाघवको  
जांच करके भली प्रकार निश्चय करें  
यह कहा है ॥ १५६ ॥

यानि तु खलु वमनादिपुभेषजद्रव्या  
ण्युपयोगं गच्छन्ति तान्यनुव्य  
ख्यास्यन्ते । तद्यथा—फलजीमू  
तके क्ष्वाकुधामार्गवकुटजकाण्ड  
काष्ठतवेधनफलानि । जीमूतके  
क्ष्वाकु कुटजकाष्ठतवेधनपत्रपुष्पा  
णि । आरग्वधवृक्षकमदनस्वादु  
कण्टकपाठापाटलाशार्ङ्गामूर्वा  
सप्तपर्णनक्तमालपिचुमर्दपटोल  
सुषवी-गुडूचीसोमवल्कचित्रक

द्वीपिशिशुमूलकषायैश्च । मधुम  
धूककोविदारकर्बुदारनीपनिचु  
लविम्बीशणपुष्पीसदापुष्पीप्रत्य  
क्पुष्पीकषायैश्चएलाहरेणुप्रिय  
ङ्गु-पृथ्वीका-कुस्तुम्बुरुतगरनल  
दहीवेरतालीशोशीरकषायैश्च ।  
इक्षुकाण्डेक्षिवक्षुवालिकादर्भपोट  
गलकालङ्कृतकषायैश्चासुमनाःसौ  
मनसायिनीहरिद्रादारुहरिद्रावृश्ची  
रपुनर्नवामहासहाक्षुद्रसहाकषा  
यैश्चशाल्मलिशाल्मकभद्रपर्ण्ये  
लापर्ण्युपोदिकोद्दालकधन्वनरा  
जादनोपचित्रागोपीशृङ्गाटिका  
कपिकच्छुकषायैश्च । पिप्पली  
पिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवे  
रसर्षपफाणितक्षीरक्षारलवणोद  
कैश्चयथोपलाभयथेष्टवाप्युपसंस्कृ  
त्यवर्तिक्रियाचूर्णावलेहस्नेहकषाय  
मांसरसयवागूयूषकाम्बलिकक्षी  
रोपधेयान्मोदकानन्यांश्चयोगान्वि  
विधाननुविधाययथाहवमनार्हाय  
दद्याद्विधिवद्रसनमितिकल्पसंग्र  
होवमनद्रव्याणांकल्पस्त्वेषांवि  
स्तरेणोत्तरकालमुपदेक्ष्यते १५७ ।

और जो भेषज द्रव्य वमन आदिमें  
उपयोगको प्राप्त होते हैं उनका अव

व्याख्यान करते हैं वे ऐसे हैं कि फल  
जीमूतक इक्ष्वाकु धामार्गव कुटज कां-  
डिका कृतवेधन इनके फल और जी-  
मूतक इक्ष्वाकु कुटज कृतवेधन इनके  
पत्र और पुष्प और अमलतासवृक्षक  
मैनफल स्वादुकंटक पाठा पाटला शार्ङ्गष्टा  
मुरहर सप्तपर्ण नक्तमाल पिचुमर्द (निंव)  
पटोल सुषवी गिलोह सोमवल्क चीता  
द्वीप, शिशु (सौहिंजना) इनके मूल,  
इनके काथोंसे मधु मधुक कोविदार  
कचूर नीप निचुल विम्बी शणपुष्पी  
सदापुष्पी प्रत्यक्पुष्पी इनके कषायोंसे,  
इक्षु कांडेक्षु इक्षुवालिका दर्भ पोटागल  
कालकतक इनके कषायोंसे, सुमना  
सौमन सायिनी हरिद्रा दारुहलदी  
वृश्चीर पुनर्नवा (सांठी) महा सहा  
क्षुद्रसहा इनके कषायोंसे, शाल्मलि  
शाल्मलक भद्रपर्णी एलापर्णी उपोदका  
(पोई) उद्दालक धवांसा राजादन  
उपाचित्रा गोपी शृङ्गाटिका कपिकच्छु  
इनके कषायोंसे पीपल पीपलामूल  
चव्य चित्रक शृङ्गवेर (अदरख) सरसों  
फाणित क्षीर क्षार लवणोदक इनसे,  
यथा लाभ वा यथेष्ट उपसंस्कार (इकट्ठे)  
करके वर्तिक्रिया चूर्ण आसव अवलेह  
स्नेह कषाय मांस रस यवागू यूष कां-  
बलिक क्षीरके उपधेयोंके मोदकोंको  
और अन्य अनेक प्रकारके योगोंको  
करके वमन कराने योग्यको यथायोग्य  
दे तो विधिसे वमन होनेका यह कल्प  
संग्रह है, इन वमनके द्रव्योंका कल्प

तो विस्तारसे उत्तरकालमें उपदेश  
करेंगे ॥ १५७ ॥

विरेचनद्रव्याणितुश्यामात्रिवृच्चतु  
रंगुलतिल्वकमहावृक्षसप्तलाशंखि  
नीदन्तीद्रवन्तीनाक्षीरमूलत्वक्पत्र  
पुष्पफलानियथायोगमेतैश्वक्षीर  
मूलत्वक्पत्रफलपुष्पफलैर्विकृता  
विकृतैःअजगन्धाश्वगन्धाजशङ्गी  
क्षीरिणीनीलिनीक्रीतककषायैश्चप्र  
कीर्योदकीर्यामसूरविदलाक  
म्पिलकविडङ्गगवाक्षीकषायैश्च  
पीलूप्रियालमृद्वीकाकाशमर्यपल्ल  
पक-वदरदाडिमामलक-हरीतकी  
विभीतकवृश्चीरपुनर्नवाविदारिग  
न्धादिकषायैश्चशीधुसुरासौवीरक  
तुषोदकमैरेयमेदक-मदिरामधुमधू  
लकधान्याम्लकुवलवदर-खर्जूरक  
र्कन्धुभिश्चदधिमण्डोदश्विद्धि  
श्वगोमहिष्यजावीनाश्वक्षीरमूत्रै  
र्यथोपलाभंयथेष्टंवाप्युपसंस्कृत्य  
वर्तिकायाचूर्णावलेहस्नेहकषाय  
मांसरसयूषकाम्बलिकयवागूक्षीरो  
पधेयान्मोदकानन्यांश्चभक्ष्यविका  
रान्विविधांश्चयोगान्भिविधायय  
थाहंविरेचनार्हायदद्याद्विरेचनामि

तिकल्पसंग्रहोविरेचनद्रव्याणाम्  
कल्पस्त्वेषांविस्तरेणोपदेक्ष्यतेउ  
त्तरकालम् । ॥ १५८ ॥

विरेचनके द्रव्य तो इयामा ( हरड़े )  
निशोथ चतुरंगुल तिल्वक महावृक्ष  
सप्तला शंखिनी दन्ती द्रवन्ती इनके क्षीर  
मूल त्वचा पत्र पुष्प फल यथायोग ले,  
और इन्ही क्षीर मूल त्वचा पत्र पुष्प  
फलोंसे विकृत अविकृत ( मिले अ-  
मिले ) जो अजगन्धा असगन्ध अज-  
शृंगी क्षीरिणी नीलिनी क्रीतक इनके  
कषायोंसे प्रकीर्या उदकीर्या मसूर विद-  
ला कंपिल्यक वायविडंग गवाक्षी इनके  
कषायोंसे, पीलु पियालु मुनक्का काश्मर्य  
परुषक ( फालसे ) बेर दाडिम आंवले  
हरड़े वहेड़ा वृश्चीर पुनर्नवा विदारगन्धा  
आदिके कषायोंसे, शीधु सुरा सौवीरक  
तुषोदक मैरेय मेदक मदिरा मधु धान्य  
अम्ल कुवल वदर खर्जूर कर्कंधू इनसे  
दधि दधिमंड तक्र इनसे गौ भेड अजा  
आदिके क्षीर मूत्रोंसे यथालाभ यथेष्ट  
उपसंस्कार करके वर्तिकाया चूर्ण आसव  
अवलेह स्नेह कषाय मांस रस यूषका-  
म्बलिक यवागू दूध आदि उपधेयके  
मोदकोंको और अन्य भक्ष्यके विका-  
रोंको और अनेक प्रकारके योगोंको  
करके यथायोग्य विरेचन योग्यको विरे-  
चन दे यह विरेचनके द्रव्योंका कल्प  
संग्रह है इनका कल्प तो विस्तारसे आगे  
उपदेश करेंगे ॥ १५८ ॥



आस्थापनेपुतुभूयिष्ठकल्पानिस्तु  
द्रव्याणिनामतोविस्तरेणोपदिश्य  
मानानिअपरिसंख्येयानिस्तुरति  
बहुत्वात् । इष्टश्चानतिसंक्षेपवि  
स्तरोपदेशस्तन्त्रेइष्टश्चकेवलंज्ञानं  
तस्माद्रसतएवतान्यनुव्याख्या  
स्यन्ते ॥ १५९ ॥

आस्थापनोमें तो प्रायः बहुतसे द्रव्य  
नामसे विस्तारसे उपदेश किये हुये  
अति अधिक होनेसे अपरिसंख्येय हैं  
और अल्पता और विस्तारसे रहित जो  
उपदेश वही इष्ट है और केवल ज्ञान  
इष्ट है तिससे रससेही उन द्रव्योंका  
व्याख्यान करते हैं ॥ १५९ ॥

रससंसर्गविकल्पविस्तारोद्देपाम  
परिसंख्येयःसमवेतानांरसानामं  
शांशबलविकल्पातिबहुत्वानस्मा  
द्रव्याणाञ्चैकदेशमुदाहरणार्थरसे  
ष्वनुविभज्यरसैकैकदेशेनचनाम  
लक्षणार्थश्चषडास्थापनस्कन्धार  
सतोऽनुविभज्यव्याख्यास्यन्ते ।  
यत्तुषड्विधमास्थापनमाचक्षतेभि  
षजस्तदुल्लभतरंसंस्पृष्टरसभूयिष्ठ  
त्वाद्व्याणाम् । तस्मान्मधुराणि  
मधुरप्रायाणिमधुरप्रभावाणिमधु  
रप्रभावप्रायाण्यपिचमधुरस्कन्धे

मधुराण्येवकृत्वोपदेक्ष्यन्ते । तथा  
इतराणिद्रव्याण्यपितद्यथा,-जीव  
कर्षभकौजीवन्तीवीरातामलकी  
काकोलीक्षीरकाकोलीमुद्गपर्णी  
मापपर्णीशालपर्णीपृश्निपर्ण्यसनप  
र्णी-मेदामहामेदाकर्कटशृङ्गीशृ  
ङ्गाटिकाछिन्नरुहाच्छत्रातिच्छ  
त्राश्रावणीमहाश्रावणीअलम्बुचा  
सहदेवाविश्वदेवाशुक्लाक्षीरशुक्लाव  
लातिबलाविदारी, क्षीरविदारी,  
क्षुद्रसहामहासहा-ऋष्यगन्धाश्व  
गन्धा-पयस्यावृश्चीर-पुनर्नवावृह  
ती-कण्टकारिकैरण्डमोरटश्वदंष्ट्रा  
संहर्पाशतावरीशतपुष्पामधूकपु  
ष्पीयष्टिमधुमधूलिकामृद्वीकाख  
जूर-परूपकात्मगुप्तापुष्करबीज-  
कशेरुकाराजकशेरुकाकालङ्क  
तककाश्मर्यशीतपात्रयोदनपाकी  
तालखजूरमस्तकेक्षिवक्षुवालिका  
दर्भकुशकाशशालिगुन्द्रेत्कटकश  
रमूलराजक्षवकर्प्यप्रोक्ता-द्वारदा  
भारद्वाजीवनत्रपुष्यभीरुपत्रीहंस  
पदीकाकनासाकुलिङ्गाक्षीक्षीर  
वल्लीकपोतवल्लीगोपवल्लीमधुव  
ल्लीसोमवल्लीति । एषामेवं

विधानामन्येषाञ्चमधुरवर्गपरिसं  
ख्यातानामौषधद्रव्याणां छेद्यानि  
खण्डशश्छेदयित्वा भेद्यानि चाणु  
शोभेदयित्वा प्रक्षाल्य पानीयेन सु  
प्रक्षालितायां स्थाल्यां समवाप्य प  
यसा अर्द्धादिकेनाभ्यासिच्य साधये  
द्वय्यासततमुपघट्टयन्तदुपयुक्तं भू  
यिष्टेऽभ्यासिगतरसेष्वौषधेषु पयसि  
चानुपदग्धस्थालीमुपहत्य पारिस्तुतं  
पूतं पयः सुखोष्णं घृततैलवसामज्जां  
लवणफाणितोषहितं वस्तिवातवि  
कारिणे विधिज्ञो विधिवद् दद्यात् ।  
शीतन्तु मधुसर्पिर्भ्यामुपसंसृज्यपि  
तत्कारिणे दद्यादिति मधुरस्कन्धः

रसोंके संसर्गके विकल्पका विस्तार भी  
इनका अपरि संख्येय है, इकट्ठे हुये  
रसोंके अंश अंशवल विकल्प ये अत्यंत  
अधिक हैं तिससे उदाहरणके लिये  
द्रव्योंका एकदेश रसोंके विषे विभाग  
करके और रसके एक एक देशसे नाम  
लक्षणके लिये छः आस्थापन स्कंधोंका  
रसोंमें विभाग करके व्याख्यान करते हैं  
जिससे वैद्य छः प्रकारका आस्थापन  
कहते हैं वह द्रव्योंको संसृष्ट रसोंके  
अधिक होनेसे अति दुर्लभ है तिससे  
मधुर, मधुरप्राय, मधुरप्रभाव, मधुर  
प्रभावप्रायभी द्रव्य इस मधुर स्कंधमें  
मधुर कहकेही उपदेश करेंगे तिसी

प्रकारसे इतरोका उपदेश करेंगे, वह  
ऐसे है कि जीवक ऋषभक जीवन्ती वीरात  
आमलकी काकोली क्षीरकाकोली मुद्गपर्णी  
मापपर्णी सालपर्णी पृथ्वीपर्णी सनपर्णी  
मेदा महामेदा काकडासींगी सिंघाडा  
छिन्नरुहा छत्रा अतिछत्रा श्रावणी महा-  
श्रावणी अलंबुषा सहदेवा विश्वदेवा शुक्ला  
क्षीरशुक्ला बला अतिबला विदारी क्षीरवि-  
दारी क्षुद्रसहा महासहा ऋष्यगंधा  
अश्वगंधा पयस्या वृश्चीर पुनर्नवा बृहती-  
कंटकारिका अरंड मोरट श्वदंष्ट्रा संहर्षा  
शतावरी सोंफ मधूकपुष्पी मुलहठी मधू-  
लिका मुनक्का खजूर परूपक ( फालसे )  
आत्मशुभा पुष्करबीज कसेरु राजकसेरु  
कालंकतक काश्मर्य शीतपाकी ओदन-  
पाकी तालखजूर मस्तकेक्षु इक्षुवालिका  
दर्भ कुशकाश शालिगुंद्र उत्कटक शर-  
मूल, राजक्षवक, ऋष्यप्रोक्ता द्वारदा  
भारद्वाजीवन त्रुण्य भीरपत्री हंसपदीकाक  
नाशा कुलिंगा, क्षीरवल्ली, कपोतवल्ली  
गोपवल्ली, मधुवल्ली, सोमवल्ली, इति इस  
प्रकारके, ये जो मधुर वर्गमें, संख्यात  
औषध द्रव्य हैं उनके टुकड़ोंके खंड २  
छेदन करके और भेदनके योग्योंका  
सूक्ष्म २ भेदन करके पानीसे धोकर  
भली प्रकार प्रक्षालनकी हुई स्थालीमें  
डालकर दूध वा जलसे सींचकर कलछीसे  
निरंतर घोटता हुआ बहुतसे जलमें  
पकावै जब औषधी गतरस होजाय  
और जल दग्ध होजाय स्थालीको उतार  
कर परिपूतजो श्रुत पय ( जल ) है

सुखोष्ण उसको घी, तेल, वसा, मज्जा, लवण, फाणित, इनसे वस्तिको ढककर वातविकार वालेको विधिका ज्ञाता वैद्य विधिसे दे शीतलतो मधु घी मिलाकर पित्तके विकारीको दे इति मधुरस्कंधः १६०

आम्रात्रातकलकुचकरमर्दवृक्षा  
म्लाम्लवेतसकुवलयवदरदाडिममा  
तुलुङ्गकण्डीरामलकनन्दीतकला  
लतिकाशीतदन्तशठैरावतकको  
षाम्रधन्वनानां फलानि पत्राणि  
च अश्मन्तकचाङ्गेरीणां चतु  
र्विधानांचाम्लिकानांद्वयोःको  
लयोर्द्वयोश्चआमशुष्कयोःद्वयो  
श्चशुष्काम्लिकयोर्ग्राम्यारण्य  
योश्चासवद्रव्याणिचसुरासौवीर  
तुपोदकमैरेयमेदकमदिरामधुशी  
धुशक्तिदधि-दधिमण्डोदधि-द्धा  
न्याम्लादीनिष्णामेवंविधानाश्चा  
न्येषाश्चाम्लवर्ग-परिसंख्याताना  
मौषधद्रव्याणांछेद्यानिखण्डशः  
छेदयित्वाभेद्यानिचाणुशोभेदयि  
त्वाद्रवैःस्थितानिअवसिच्यसाध  
यित्वोपसंस्कृत्ययथावत्तैलवसा  
मधुमज्जालवणफाणितोपहितंसु  
खोष्णवस्तिवातविकारिणेविधि  
वद्द्यादितिअम्लस्कंधः ॥ १६१ ॥

आम्र आम्रातक लकुच करमर्द  
वृक्षाम्ल, अम्लवेत, कुवलय, वदर, दाडिम,  
मातुलुंग, कंडीर, आमलक, नंदीतक,  
लालतिकासीत, दंतशठ, ऐरावतक कोशाम्र  
धवासा इनके फल और पत्ते आम्रातक  
अश्मांतक चांगेरी इनके और चार  
प्रकारके आम्लिकोंका और दोनों को-  
लका और दो आम शुष्कोंका और दो  
शुष्क अम्लिकोंका ग्राम्य और वनकोंका  
जो सब प्रकारके आसव द्रव्यहैं उसको  
सुरा सौवीर तुपोदक मैरेय मेदक मदिरा  
मधु, शीधु, शुक्ति, दधि, दधिमंड तक्र  
इनके और अन्नके अम्ल, आदि इनके इस  
प्रकारके अन्य, अम्ल, वर्गमें परिसंख्यात  
औषध, द्रव्योंके छेद्योंको खंड २ कर  
छेदन करके और भेद्योंका सूक्ष्म २  
भेदन करके द्रवोंसे स्थिरोंको सींचकर  
साधनसे संस्कार करके यथार्थ रीतिसे  
तैल, वसा, मज्जा, लवण, फाणित इनसे  
उपहित ( ढकी ) सुखोष्ण वस्तिको वात  
विकारवान्को विधिका ज्ञाता वैद्य विधिसे  
दे इति अम्लस्कंधः ॥ १६१ ॥

सैन्धवसौवर्चलकालविडपाक्या  
नूपकूप्यबालकैलमूलकसामुद्ररो  
मकौद्भिदौषरपाटेयकपांशुजानी  
तिएवंप्रकाराणिचान्यानि लवण  
वर्गपरिसंख्यातानि एतानि अम्लो  
पहितानि उष्णोदकोपहितानि वा  
स्नेहवन्ति सुखोष्णवस्तिवातवि

कारिणेविधिज्ञोविधिवद्दद्यादिति  
लवणस्कन्धः ॥ १६२ ॥

सैधव, सौवर्चल (कालानोन) काल  
विड पाकी अनूपकूप्यवालक एला मूलक  
सामुद्र रोमक उद्भिद उषर पाट्यक  
पांसुज ये और इसप्रकारके जो अन्य  
लवण वर्गमें परिसंख्यातहैं अम्लसे उप  
हित इनको वा जलसे उपहितोंको स्नेह  
मिलाकर सुखोष्ण वस्तिको वात विकार  
वान्को विधिसे विधिका ज्ञाता वैद्य दे  
इति लवण स्कन्धः ॥ १६२ ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलहस्तिपिप्प  
लीचव्यचित्रकशृङ्गवेरमरिचाज  
मोदार्द्रकविडङ्गकुस्तुम्बुरुपीलुते  
जोवत्येलाकुष्ठमल्लताकास्थिहिङ्गु  
किलिममूलकसर्पप-लशुन-करञ्ज  
शिशुकमधुरा-शिशुकखरपुष्पाभू  
स्तृणसुमुखसुरस-कुठेरक-काण्डी  
रकालमालकपर्णासक्षवकफणि  
ज्जकक्षारमूत्रपित्तानामेषामेवंवि  
धानाश्चअन्येषांकटुकवर्गपरिसं  
ख्यातानामौषधद्रव्याणांछेद्यानि  
खण्डशःछेदयित्वाभेद्यानिचाणुशो  
भेदयित्वागोमूत्रेणसहसाधयित्वो  
पसंस्कृत्ययथावन्मधुतैललवणोप  
हितसुखोष्णवस्तिश्लेष्मविकारि  
णेविधिज्ञोविधिवद्दद्यात् इतिकटु  
कस्कन्धः ॥ १६३ ॥

पीपल पीपलामूल हस्ति (वडी)  
पीपल, चव्य, चीता, शृंगवेर, मिरच,  
अजमोद, अदरख, वायविडंग, तुंबुरु,  
पीलु, तेजोवती, एला, कूट, भिलावेंकी,  
गुठली, हींग, किलिम, मूलक, सरसों,  
लसुन, करंज वा, शिशुक, मधुर, शिशुक,  
खरपुष्पा, भूस्तृण (मोथा) सुमुख, सुरस,  
कुठेरक, कांडीर, कालमालक, पर्णास  
क्षवक, फणिज्जक, क्षार, मूत्र, पित्त, इनके  
और इसप्रकारके अन्य कटुक, वर्गमें  
परिसंख्यात औषध द्रव्योंके छेद्योंको  
खंड २ करके छेदनकरके और भेद्योंको  
सूक्ष्म २ भेदन करके गोमूत्र मिलाकर  
संस्कार करके यथायोग्य मधु, तैल,  
लवणसे युक्त सुखोष्ण वस्तिको श्लेष्म,  
विकारवान्को विधिका ज्ञाता वैद्य विधिसे  
दे इति कटुकस्कन्धः ॥ १६३ ॥

चन्दननलदल्लतमालनक्तमालनि  
म्बतुम्बुरुकुटजहरिद्रादारुहरिद्रा  
मुस्तमूर्वाकिराततिक्तककटुरो  
हिणीत्रायमाणाकरवीरकेवुकक  
टिल्लकवृषमण्डूकपर्णीकर्कोटक  
वार्त्ताकुर्कशकाकमाचीकारवे  
ल्लकाकोदुम्बरिकासुषव्यतिवि  
षापटोलकुणकपाठागुडूचीवेत्रा  
श्वेतसविकङ्कतवकुलसोमव  
ल्कसप्तपर्णसुमनोऽर्कावल्गुज  
वचातगरागुरुबालकोशीराणा

म् ॥ एषामेवंविधानाश्चान्येषां  
तिक्तवर्गपरिसंख्यातानामौषधद्र  
व्याणां छेद्यानि खण्डशः छेदयि  
त्वाभेद्यानि चाणुशोभेदयित्वा प्र  
क्षाल्य पानीयेनाभ्यासिच्य साध  
यित्वोपसंस्कृत्य यथावन्मधुतैल  
लवणोपहितं सुखोष्णं वस्ति श्लेष्म  
विकारिणे विधिज्ञो विधिवद् दद्यात् ।  
शीतन्तुमधुसर्पिर्भ्यामुपसंस्कृत्य  
पित्तविकारिणे दद्यादिति तिक्त-  
स्कन्धः ॥ १६४ ॥

चंदन, नलद, कृतमाल, नक्तमाल,  
निंब, तुंबी, कूट, हलदी, दारुहलदी,  
मोथा, मूर्वा, चिरायता, तिक्तक, कटु,  
रोहिणी, त्रायमाणा, करीर, केवुक, कटि  
ल्लक, वृष, मंडूकपर्णी, कर्कोटक, वार्ताकु  
कर्कश, काकमाची, करेला, काकोदुंब-  
रिका, सुखवी, अतीस, पटोल, कुणक,  
पाठा, गिलोह, वेंत, अग्रवेंत, विकंकत,  
वकुल, सोमवलक, सप्तपर्ण, सुम-  
नोर्क, बलाज, वच, तगर, अगर, बालक,  
उशीर, इनके और इसप्रकारके अन्य,  
तिक्त वर्गमें परिसंख्यात औषधद्रव्योंके  
छेद्योंको खंड २ से छेदन करके और  
भेद्योंको सूक्ष्म २ भेदन करके जलसे  
सींचकर साधनसे संस्कार करके यथा  
योग्य तैल, लवणसे उपहित सुखोष्ण  
वस्ति को श्लेष्मविकारवान्को विधिका

ज्ञाता वैद्य विधिसे दे और शीतल तो  
शहत घी मिलाकर पित्तविकारीको दे  
इति तिक्तस्कन्धः ॥ १६४ ॥

प्रियङ्गुवनन्ताम्रास्थिअम्बुष्टकी  
कटुङ्गलोध्रमोचरससमङ्गाधात  
कीपुष्पपद्मापद्मकेशरजम्बुवाग्रपु  
क्षवटकपीतनोदुम्बराश्वत्थभल्ला  
तकाश्मन्तकाशिरीषशिशपासो  
मवलकतिन्दुकपियालवदरखदि  
रसतपर्णाश्वकर्णस्यन्दनार्जुनास  
नारिमेदेलबालुक-परिपेलवकद  
म्बशलकीजिङ्गिनीकाशकशेरु  
काराजकशेरुकाकटफलवंशप  
द्मकाशोकशालधवसर्जभूर्जशण  
पुष्पीशमीमाचीकवरकतुङ्गाज  
कर्णाश्वकर्णस्फुर्जकविभीतककु  
म्भीकपुष्करबीजविसमृणाल—  
त, लखजूरतरुणीनामेषामेवंविधा  
नाश्चान्येषां कपायवर्गपरिसंख्या  
तानामौषधद्रव्याणां छेद्यानि ख  
ण्डशः छेदयित्वा भेद्यानि चाणुशो  
भेदयित्वा प्रक्षाल्य पानीयेन सह सा  
धयित्वोपसंस्कृत्य यथावन्मधुतैल  
लवणोपहितं सुखोष्णं वस्ति श्लेष्म  
विकारिणे दद्यादिति । शीतन्तुम

धुसर्पिर्भ्यामुपसंस्कृत्यपित्तविका  
रिणेदद्यादितिकपायस्कन्धः १६५

प्रियंगु अनंता आमकीगुठली अंव-  
ष्टकी, कटुंग लोध्र, मोचरससमंगा, धायक-  
फूल, पद्मास्र, पद्मकेशर, जामुन, आम,  
पिलखन, वड़, कपीतन, गूलर, पीपल,  
भिलावा, अश्मंतक, शिरस, सीसम,  
सोमवल्क तेंदु पियाल वदर खदिर  
सप्तपर्ण अश्वकर्ण स्यंदन अर्जुन,  
असन अरिमेद एला बालुक परिपेलव  
कदंब सल्लकी जिगिणी कासकंसेरु  
राजकसेरु कायफल वंश पद्मास्र अशोक  
शाल धवासा भोजपत्र शणपुष्पी,  
शमी माचीक, वरक, तुंगा अजकर्ण  
अश्वकर्ण स्फूर्जक वहेडा, कुंभील पोह-  
करबीज, विसमृगाल तालखजूर  
तरुण इति इनकी और इस प्रकारके  
अन्य जो कपाय वर्गमें परिसंख्यात  
औषध द्रव्य हैं उनके छेद्योंको खंड २  
छेदन करके और भेद्योंको भेदनसे सूक्ष्म  
चूर्ण करके पानीके संग मिलाकर संस्कार  
करके यथायोग्य मधुतेल लवणसे युक्त  
मुखोष्ण वस्तिको श्लेष्म विकारवान्को  
दे और शीतल तो मधु घी सहित  
संस्कार करके पित्तके विकारीको दे-  
इति कपायस्कंधः इति ॥ १६५ ॥

तत्र श्लोकाः ।

षड्वर्गाः परिसंख्याताय एते रस  
भेदतः । आस्थापनमभिप्रेत्य तान्  
विद्यात्सार्वयौगिकान् ॥ १६६ ॥

उसमें ये श्लोक हैं कि ये जो रसोंके  
भेदसे छः वर्ग कहे हैं उनको आस्था-  
पनके अभिप्रायसे सार्वयौगिक अर्थात्  
सब योगोंके साधक जानै ॥ १६६ ॥

सर्वतोहिप्रणिहिताः सर्वरोगेषु ज्ञान  
ता । सर्वान् रोगान्नियच्छन्ति ये  
भ्य आस्थापनं हितम् ॥ १६७ ॥

सब रोगोंके विषे जानते हुये वैद्यने  
सर्वत्र दी हुई ये भेषज उन सब रोगोंको  
दूर करती हैं जिनके लिये आस्थापन  
हित है ॥ १६७ ॥

येषां येषां प्रशान्त्यर्थं ये येन परिकी  
र्त्तिताः । द्रव्यवर्गाविकाराणां ते  
पांते परिकोपकाः ॥ १६८ ॥

और तिन २ की शांतिके लिये जो  
२ नहीं कहे हैं वे द्रव्योंके वर्ग उन विका-  
रोंके कोपन होते हैं ॥ १६८ ॥

इत्येते षडास्थापनस्कन्धारसतोऽ  
नुविशज्य व्याख्याताः । तेभ्यो  
भिषग्बुद्धिमान्परिसंख्यातमपि  
यद्द्रव्यमयौगिकं मन्येत तदपकर्ष  
येत् । यद्यच्चानुक्तमपि यौगिकं  
वामन्येत तत्तद्व्यात् । वर्गभपिव  
र्गेण उपसंसृजेदेकमेकेन अनेकेन वा  
युक्तिं प्रमाणीकृत्य । प्रचरणमि  
व भिक्षुकस्य बीजमिव कर्षकस्य सू

त्रंबुद्धिमतामल्पमपिअनल्पज्ञाना  
यभवति ॥ १६९ ॥

ये छः आस्थापन स्कंध रसोंके विभागसे कहे उनमेंसे बुद्धिमान् भिषक् परिसंख्यातभी जो द्रव्यहै उसको आयौगिकमानै तो उसको स्थापन न करै (नडारै) जो २ अनुक्तभी यौगिक समझै उस२को देदे वर्गकोभी वर्गके संग संसृष्ट कर दे युक्तिको प्रमाण करके एकको एकके संग वा अनेकके संग मिलावे जैसे भिक्षुकका विचरना और जैसे किसानका बीज है बुद्धिमानोंको तिसी प्रकार अल्पभी सूत्र अधिक ज्ञानके लिये होता है ॥ १६९ ॥

तस्माद्बुद्धिमतामूहापोहवितर्का  
मन्दबुद्धेस्तुयथोक्तानुगमनमेवश्रे  
यः ॥ १७० ॥

तिससे बुद्धिमानोंका ऊहापोह ( मेलत्याग ) की रचना हैं मंदबुद्धिकी तो यथोक्तका अनुगमनहीं श्रेष्ठ है ॥ १७० ॥

यथोक्तं हि मार्गमनुगच्छन्निपक्सं  
साधयति वा कार्यमनतिमहत्त्वाद्  
नतिह्रस्वत्वाद्दुदाहरणस्येति १७१

क्योंकि यथोक्त मार्गका अनुगमन करता हुआ भिषक् कार्यका संसाधन करताहै क्योंकि उदाहरण अत्यंत बड़ाहै न अत्यंत ह्रस्व है ॥ १७१ ॥

अतः परमनुवासनद्रव्याणिअनु  
व्याख्यास्यन्ते । अनुवासनन्तु

स्नेहएव । स्नेहस्तुद्विविधः । स्था  
वरोजङ्गमात्मकश्चतत्रस्थावरा  
त्मकःस्नेहःतैलमतैलश्च । तत्रतै  
लमेवकृतवोपदिश्यतेसर्वतस्तैलप्रा  
धान्यात् । जङ्गमात्मकस्तुवसा  
मज्जासर्पिरिति ॥ १७२ ॥

इससे आगे आनुवासनके द्रव्योंका व्याख्यान करते हैं अनुवासन तो स्नेहही है, स्नेह तो दो प्रकारका है स्थावर और जंगमरूप उनमें स्थावररूप स्नेह तैल और अतैल करके उपदेश किया जाताहै क्योंकि सबसे प्रधानता तैलकीहै जंगमरूप तो वसा मज्जा घृतहै ॥ १७२ ॥

तेपांतैलवसामज्जासर्पिपांतुयथा  
पूर्वश्रेष्ठम् । वातश्लेष्मविकारेषु  
अनुवासनीयेषुयथोत्तरं पित्तविका  
रेषुसर्वएववासर्वेषुयोगमायान्तिसं  
स्कारविधिविशेषादिति ॥ १७३ ॥

तैल वसा मज्जा घी इनमें पूर्व २ क्रमसे श्रेष्ठ अनुवासनके योग्य जो वात श्लेष्म विकारहैं उनमें क्रमसे होतेहैं, और पित्तके विकारोंमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होतेहैं वा संपूर्णही सब विकारोंमें संस्कार विधिके विशेषसे योगको प्राप्त होतेहैं, इति ॥ १७३ ॥

शिरोविरेचनद्रव्याणिपुनःअपामा  
र्गपिप्पलीमरिचविडङ्गशिग्रुशिरी

प-कुस्तुम्बुरु-विल्वाजाज्याजमो  
दावार्ताकीपृथ्वीकैलाहरेणुफला  
निच । सुमुखसुरसकुठेरकग  
ण्डीरककालमालकपर्णासक्षवक  
फणिज्जकहरिद्राशृङ्गवेरमूलक  
लशुनतर्कारीसर्पपत्राणिच । अ  
र्कालर्ककुठनागदन्तीवचाभागी  
श्वेताज्योतिष्मतीगवाक्षीगण्डीरा  
वाक्पुष्पीवृश्चिकालीवयस्थाति  
विषामूलानिच । हरिद्राशृङ्गवेर  
मूलकलशुनकन्दाश्वलोध्रमदनस  
त्रपर्णानिम्बार्कपुष्पाणिच । देवदा  
र्वगुरुसरलशल्लकीजिङ्गिन्यसनहिं  
गुनिर्यासाश्वतेजोवराङ्गगुदीशो  
भाजनवृहतीकण्टकारिकात्वगि  
ति । शिरोविरेचनंसप्तविधंफलप  
त्रमूलकन्दपुष्पनिर्यातत्वगाश्रय  
भेदात् ॥ १७४ ॥

शिरके विरेचन द्रव्य तो पुनः ये हैं  
अपामार्ग पीपल मिरच वायविडंग शिशु  
सिरस तुन्दुरु विल्व अजाजी अजमोद  
वार्ताक पृथ्वीका एला हरेणुका और  
फल, सुमुख सुरस कुठेरक कंडीर काल  
मालक पर्णास क्षवक फणिज्जक हलदी  
शृंगवेर मूलक लशुन तर्कारी सरसों  
इनके पत्ते अर्क अलर्क कूट नागदन्ती  
वचा भागी श्वेता ज्योतिष्मती गवाक्षी

कंडीर अवाक्पुष्पी वृश्चिकाली वयस्था  
अतिविषा ( अतीस ) इनके मूल,  
हलदी शृंगवेर मूलक लशुन ये कंद,  
लोध मौलसरी सप्तपर्ण निंब आक इनके  
पुष्प, देवदारु अगरु सरल शल्लकी  
जिंगिणी आसन हिंगुक गोंद, तेजोवती  
वरांगा इंगुदी सैहजिना वृहती कंटका-  
रिका ये त्वचा यह शिरका विरेचन फल  
पत्र मूल कंद पुष्प निर्यास त्वचा इन  
आश्रयोंके भेदसे सात प्रकारकाहै १७४

लवणकटुतिक्तकपायाणिचइन्द्र  
योपशयानितथापराण्यनुक्तान्य  
पिद्रव्याणियथायोगविहितानिशी  
रोविरेचनार्थमुपदिश्यन्तेइति १७५

और लवण कटु तिक्त कपाय इंद्रि-  
योंके उपशय हैं तिसी प्रकार अन्यभी  
अनुक्त द्रव्य यथा योगसे कहे हुये शिरके  
विरेचनके लिये उपदेश किये जातेहैं  
इति ॥ १७५ ॥

तत्र श्लोकाः ।

लक्षणाचार्यशिष्याणांपरीक्षा  
कारणञ्चयत् । अध्येयाध्याप  
नविधिःसम्भाषाविधिरेवच १७६

उसमें ये श्लोकहैं कि लक्षण और  
आचार्य और शिष्योंकी परीक्षा और  
कारण अध्ययन और अध्यापनकी विधि  
और संभाषाकी विधि ॥ १७६ ॥

षडभिर्न्यूनानिषश्चाशद्वादशार्थ



पदानिच । पदानिदशचान्यानि  
कारणादीनितत्त्वतः ॥ १७७ ॥

और छःसे न्यून पंचाशत् और द्वादश  
अर्थपद और दश अन्यपद और तत्त्वसे  
कारण आदि ॥ १७७ ॥

सम्प्रश्नश्चपरीक्षादेर्नवकोवमनादि  
पु । भिषग्जितीयेरोगाणांविमा  
नेसम्प्रदर्शितः ॥ १७८ ॥

संप्रश्न परीक्षा आदि नौ वमन  
आदिकोंमें इन सबका भलीप्रकार प्रकाश  
भिषग्जितीय नामके रोगोंके विमानमें  
कियाहै ॥ १७८ ॥

बहुविधमिदमुक्तमर्थजातंबहुवि  
धवाक्यविचित्रमर्थजातम् । बहु  
विधशुभशब्दसन्धियुक्तंबहुविध  
वादनिसूदनंपरेषाम् ॥ १७९ ॥

अनेक प्रकारका यह अर्थोंका समूह  
अनेक प्रकारके वाक्योंसे विचित्र और  
अर्थसे सुंदर, बहुत प्रकारके शुभ शब्दोंकी  
संधिसे युक्त और पदोंके बहुत प्रकारके  
वादका नाशक, यह कहा है ॥ १७९ ॥

इमांमतिंबहुविधहेतुसंश्रयांविज  
ज्ञिवान्परमतवादसूदनीम् । नि  
लीयतेपरवचनावमर्दनेनशक्यते  
परवचनैश्चमर्दितुम् ॥ १८० ॥

अनेक प्रकारके हेतुओंसे युक्त और  
परके वादकी नाशक इस मतिको जो  
जानताहै वह पराये वचनोंके मर्दनोसे

लीन नहीं होता है और पराये वचन  
उसका भेदनभी नहीं कर सकते ॥ १८० ॥

दोषादीनांतुभावानांसर्वपामेवहे  
तुना । मानात्समस्तमानानिनिरु  
क्तानिविभागशः ॥ १८१ ॥

विमानस्थानं समाप्तम् ।

दोष आदि संपूर्ण भावोंका हेतुसे  
और मानसे सब प्रकारके मान विभाग-  
से इस मानस्थानमें कहे हैं ॥ १८१ ॥

इति विमानस्थानं पंडितमिहिरचन्द्रकृतभाषा  
विश्रुतिरहितं समाप्तिमगात् ॥

शरीरस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

कतिधापुरुषीयम् ।

इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अश्विवेश उवाच ।

इसके अनंतर कतिधापुरुषीय शा-  
रीरका व्याख्यान करते हैं

यह भगवान् आत्रेय कहते हैं—

अग्नि वेश बोले कि—

कतिधापुरुषोधीमन् ! धातुभेदेन  
भिद्यते । पुरुषःकारणं कस्मात्प्रभ  
वःपुरुषस्यकः ॥ १ ॥

हे धीमन् पुरुष कितने प्रकारका  
जानना जो धातुओंके भेदसे भेदको  
प्राप्त होताहै किससे पुरुष कारण है  
पुरुषका प्रभाव कौन है ॥ १ ॥

किमज्ञोऽज्ञःसनित्यःकिंकिमनि  
त्योनिदर्शितः । प्रकृतिःकाविका  
राःकेकिलिङ्गं पुरुषस्यच ॥ २ ॥

क्या वह अज्ञ है वाज्ञ है क्या वह  
नित्य दिखाया है वा अनित्य-प्रकृति  
कौन है विकार कौन हैं पुरुषका कौन  
लिंग है ॥ २ ॥

निष्क्रियश्चस्वतन्त्रश्चवशिनंसर्व  
गंविभुम् । वदन्त्यात्मानमात्म  
ज्ञाःक्षेत्रज्ञसाक्षिणंतथा ॥ ३ ॥

और क्रियासे रहित-स्वतंत्र वशी  
सर्वगामी और विभु आत्माको आत्मा-  
के ज्ञाता कहते हैं और तैसेही क्षेत्रज्ञ  
और साक्षी कहते हैं ॥ ३ ॥

निष्क्रियस्यक्रियातस्यभगवन् !  
विद्यतेकथम् । स्वतन्त्रश्चेदनिष्टा  
सुकथंयोन्योनिपुजायते ॥ ४ ॥

ये सब हे भगवन् क्रिया रहित को  
क्रियाके अर्थ कैसे युक्त हैं-और स्वतंत्र  
है तो अनिष्ट योनियोंमें क्यों पैदा  
होता है ॥ ४ ॥

वशीयद्यसुखैःकस्माद्भावैराक्रम्य  
तेबलात् । सर्वाःसर्वगतत्वाच्चवे  
दनाःकिंनवेत्तिसः ॥ ५ ॥

वशी है तो असुख भावोंसे बलसे  
कैसे आक्रमण किया जाता है अर्थात्  
दुःखी क्यों किया जाता है-सर्व और

सर्वगत होनेसे वह दुःखोंको क्यों नहीं  
जानता ॥ ५ ॥

नपश्यतिविभुःकस्माच्छैलकुड्य  
तिरस्कृतम् । क्षेत्रज्ञःक्षेत्रमथवा  
किंपूर्वमितिसंशयः ॥ ६ ॥

और विभु ( व्यापक ) है तो पर्वत  
भीत आदिसे छिपे हुयेको क्यों नहीं  
देखता-क्षेत्रज्ञ ( क्षेत्रका ज्ञाता ) है तो  
पहिले क्षेत्र क्षेत्रज्ञमें कौनहै यह संशयहै  
ज्ञेयंक्षेत्रंविनापूर्वक्षेत्रज्ञोहिनयुज्य  
ते । क्षेत्रश्चयदिपूर्वस्यात्क्षेत्रज्ञः  
स्यादशाश्वतः ॥ ७ ॥

पहिले ज्ञेय क्षेत्रके विना क्षेत्रज्ञ युक्त  
नहीं है और यदि क्षेत्र पहिले है तो  
क्षेत्रज्ञ अशाश्वत ( अनित्य ) हो  
जायगा ॥ ७ ॥

साक्षिभूतश्चकस्यायंकर्त्ताह्यन्यो  
नविद्यते । स्यात्कथञ्चाविकार  
स्यविशेषोवेदनाकृतः ॥ ८ ॥

और यह साक्षी और कर्त्ता किसका  
है अन्य तो कोई है ही नहीं-और नि-  
र्विकारको वेदना का किया विकार विशेष  
कैसे होता है ॥ ८ ॥

अथचार्त्तस्यभगवंस्तिसृणांकां  
चिकित्सति । अतीतांवेदनांवै  
द्योवर्त्तमानांभविष्यतीम् ॥ ९ ॥

और हे भगवन् आर्त्तकी तीनों वेद-  
नाओंमें कौनसी की चिकित्साको किया

चाहता है—वैद्य अतीत वर्तमान भविष्यत वेदनाओंमें कौनसी की चिकित्साको करेगा ॥ ९ ॥

भविष्यन्त्याअसंप्राप्तिरतीताया अनागमः । साम्प्रतिक्याअपि स्थानंनस्त्यर्तेःसंशयोह्यतः १०

होनेवालीको तो प्राप्ति नहीं अतीत का आगम नहीं वर्तमान का स्थान नहीं इससे इसके आर्त होनेमें संशय है १० ॥

कारणवेदनानांकिंकिमधिष्ठान मुच्यते । कचैतावेदनाःसर्वानि वृत्तियान्त्यशेषतः ॥ ११ ॥

वेदनाओंके कारण कौनहैं अधिष्ठान कौन कहाहै और ये सब वेदना किसमें संपूर्ण रूपसे निवृत्तिको प्राप्त होतीहैं ११

सर्ववित्सर्वसन्न्यासीसर्वसंयोग निःसृतः । एकःप्रशान्तोभूतात्मा कैर्लिङ्गैरुपलभ्यते ॥ १२ ॥

सबका ज्ञाता सबका त्यागी सबके संयोगसे रहित एक प्रशान्त भूतोंकी आत्मा परमेश्वर किन लिङ्गोंसे जाना जाताहै ॥ १२ ॥

वचइत्यग्निवेशस्यश्रुत्वामतिमतां वरः । सर्वयथावत्प्रोवाचप्रशान्तात्मापुनर्वसुः ॥ १३ ॥

ये अग्निवेशके वचन सुनकर, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ प्रशान्तात्मा पुनर्वसु सबको यथार्थ रीतिसे कहते भये ॥ १३ ॥

खादयश्चेतनापष्टाधातवःपुरुषः स्मृतः । चेतनाधातुरप्येकःस्मृतः पुरुषसंज्ञकः ॥ १४ ॥

आकाश आदि छः प्रकारकी चेतन रूप जो धातु हैं वह पुरुष कहा है और चेतन रूप एक धातुभी पुरुष संज्ञक कहाहै ॥ १४ ॥

पुनश्चधातुभेदेनचतुर्विंशतिकःस्मृतः । मनोदशेन्द्रियाण्यर्थाःप्रकृतिश्चाष्टधातुकी ॥ १५ ॥

और फिर धातुओंके भेदसे चौबीस प्रकारका कहाहै, मन और दश इंद्रिय और पांच विषय और आठ धातुरूप प्रकृति ॥ १५ ॥

लक्षणमनसोज्ञानस्याभावेभाव एववा । सतिह्यात्मेन्द्रियार्थानां सन्निकर्षेणवर्त्तते ॥ १६ ॥

मनका लक्षण यह है कि ज्ञानका अभाव और वा भावही, और आत्मा इंद्रिय विषय इनके सन्निकर्ष ( संबंध ) से मन वर्त्तताहै ॥ १६ ॥

वैधृत्यान्यनसोज्ञानंसान्निध्यात्तच्च वर्त्तते । अणुत्वमथचैकत्वंद्वौगुणौमनसःस्मृतौ ॥ १७ ॥

मनके वैधृत्यसे ( धारणा ) से ज्ञान और संनिधि होनेसे वह मन वर्त्तताहै और अणु और एक ये दो गुण मनके कहे हैं ॥ १७ ॥

चिन्त्यविचार्यमूह्यश्चधेयंसङ्कल्प्यमेवच । यत्किञ्चिन्मनसो ज्ञेयंतत्सर्वह्यर्थसंज्ञकम् ॥ १८ ॥

और चिंताके योग्य विचार योग्य ऊहाके योग्य ध्यानके योग्य संकल्पके योग्य जो कुछ मनका ज्ञेय है वह सब अर्थ संज्ञक है ॥ १८ ॥

इन्द्रियाभिग्रहः कर्म्यगनसस्त्वस्य निग्रहः । ऊहोविचारश्चततः परं बुद्धिः प्रवर्तते ॥ १९ ॥

इंद्रियोंका अभिग्रह मनका कर्म और अपना निग्रह ऊह और विचार है और तिससे पीछे बुद्धि प्रवृत्त होती है ॥ १९ ॥

इन्द्रियेणेन्द्रियार्थो हि समनस्केन गृह्यते । कल्प्यते मनसाप्यूहं गुणतो दोषतो यथा ॥ २० ॥

और इंद्रियसे इंद्रियका अर्थ मनके योगसे ही ग्रहण किया जाता है और पीछे-से भी गुण दोष रूपसे मनहीं कल्पना करता है ॥ २० ॥

जायते विपयेतत्र या बुद्धिर्निश्चयात्मिका । व्यवस्यते तया वक्तुं कर्तुं वा बुद्धिपूर्वकम् ॥ २१ ॥

और उस विषयमें जो निश्चयात्मक बुद्धि होती है तिससे कहने का निश्चय वा बुद्धि पूर्वक करने का निश्चय करता है ॥ २१ ॥

एकैकाधिकयुक्तानि स्वादीनामि

न्द्रियाणितु । पञ्चकर्मन्निमेया नियेत्यो बुद्धिः प्रवर्तते ॥ २२ ॥

एक २ से अधिक से युक्त आकाश आदिकी इंद्रिय पांच कर्मोंसे अनुमान करने योग्य हैं जिनसे बुद्धि प्रवृत्त होती है ॥ २२ ॥

हस्तपादगुदोपस्थजिह्वेन्द्रियमथापि वा । कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव पादौ गमनकर्मणि ॥ २३ ॥

हस्त पाद गुदा उपस्थ और जिह्वा इंद्रिय ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं-पाद गमन कर्ममें ॥ २३ ॥

पायूपस्थौ विसर्गार्थं हस्तौ ग्रहणधारणे । जिह्वा वाग्निन्द्रियं वाक् च सत्याज्योतिस्तमोऽनृता ॥ २४ ॥

गुदा और उपस्थ, त्याग कर्ममें हाथ, ग्रहण और धारण कर्ममें जिह्वा और वाक् इंद्रिय ये बोलनेमें वर्तती हैं वह सत्य ज्योति तमसे आवृत है ॥ २४ ॥

महाभूतानि खं वायुरग्निरापः क्षितिस्तथा । शब्दः स्पर्शश्चरूपश्चरसो गन्धाश्च तद्गुणाः ॥ २५ ॥

और आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी ये पांच महाभूत हैं और शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये क्रमसे उनके गुण हैं ॥ २५ ॥

तेषामेको गुणः पूर्वो गुणबुद्धिः परे परे । पूर्वः पूर्वो गुणश्चैव क्रमशो गुणेषु स्मृतः ॥ २६ ॥

तिनमें पहिलेमें एक गुण है और पर २ में गुणकी वृद्धि है और पहिला २ गुण क्रमसे गुणवानोंमें कहा है ॥ २६ ॥

खरद्रवचलोष्णत्वंभूजलानिलते  
जसाम् । आकाशस्याप्रतीघातो  
दृष्टलिङ्गं यथाक्रमम् ॥ २७ ॥

खर द्रव चल उष्ण ये क्रमसे लिंग भूमि जल पवन तेजके और आकाशका लिंग प्रतिघात ये क्रमसे लिंग देखे हैं ॥ २७ ॥

लक्षणंसर्वमेवैतत्स्पर्शनेन्द्रियगो  
चरः । स्पर्शनेन्द्रियविज्ञेयः स्पर्शो  
हिसविपर्ययः ॥ २८ ॥

और यही संपूर्ण लक्षण हैं स्पर्शन इंद्रिय का विषय और स्पर्शन इंद्रियसे जानने योग्य स्पर्श तिससे विपरीत (अस्पर्श) गुण है ॥ २८ ॥

गुणाः शरीरे गुणिनां निर्दिष्टाश्चिह्नमे  
वच । अर्थाशब्दादयो ज्ञेया गोच  
राविषया गुणाः ॥ २९ ॥

गुणवानोंके शरीरमें गुण और चिह्न कहे हैं—शब्द आदि अर्थ ज्ञेय गोचर विषय गुण जानना ॥ २९ ॥

यायदिन्द्रियमाश्रित्य जन्तोर्बुद्धिः  
प्रवर्तते । यातिसातेन निर्देशं मन  
साच मनोभवा ॥ ३० ॥

जिस इंद्रियके आश्रयसे जंतुकी जो बुद्धि प्रवृत्त होती है वह उससेही निर्देशको

प्राप्त होती है, और मनसे उत्पन्न मनके निर्देशको प्राप्त होती है ॥ ३० ॥

भेदात्कार्येन्द्रियार्थानां बहुव्योवै  
बुद्ध्यः स्मृताः । आत्मेन्द्रियम  
नोऽर्थानामेकैकासन्निकर्षजा ३१

कार्य इंद्रिय अर्थ इनकी बुद्धि बहु- तसी कही हैं आत्मा इंद्रिय मन अर्थ इनके सन्निकर्षसे उत्पन्न एक २ बुद्धि कही है ॥ ३१ ॥

अंगुल्यंगुष्ठतलजस्तन्त्रीवीणान  
खोद्भवः । दृष्टः शब्दो यथा बुद्धिर्दृ  
ष्टा संयोगजा तथा ॥ ३२ ॥

अंगुली अंगूठा तल इनसे पैदा हुआ तंत्री और वीणासे उत्पन्न शब्द जैसे देखा है तैसेही संयोगसे पैदा हुई बुद्धि होती है ॥ ३२ ॥

बुद्धीन्द्रियमनोऽर्थानां विद्याद्योग  
धरं परम् । चतुर्विंशक इत्येष राशिः  
पुरुषसंज्ञकः ॥ ३३ ॥

बुद्धि इंद्रिय अर्थ मन इनके परस्पर योगको जानै यह चौबीस प्रकारकी राशि पुरुष संज्ञक है ॥ ३३ ॥

रजस्तमोभ्यां युक्तस्य संयोगोऽयम  
नन्तवान् । ताभ्यां निराकृताभ्या  
न्तु सत्त्वबुद्ध्या निवर्तते ॥ ३४ ॥

रजोगुण तमोगुणसे युक्त आत्माका यह संयोग अनंत है उन दोनों गुणोंका सत्त्व बुद्धिसे निराकरण करने पर निवृत्त हो जाता है ॥ ३४ ॥

अन्नकर्मफलश्चाज्ञानश्चात्रप्रति  
ष्ठितम् । अन्नमोहःसुखदुःखजी  
वितंमरणंस्वतः ॥ ३५ ॥

इसीमें कर्मका फल और इसीमें ज्ञान  
प्रतिष्ठितहै इसीमें मोह सुख दुःख जीवित  
और स्वतःही मरण प्रतिष्ठित है ॥ ३५ ॥

एवंयोवेदतत्त्वेनसेवेदंप्रलयोदयौ ३६

इस प्रकार जो तत्त्वसे जानता है  
वह प्रलय और उदयको जानता है ३६

पारम्पर्यचिकित्सांचज्ञातव्यंयच्च  
किञ्चन ॥ ३७ ॥

परंपरा चिकित्सा और अन्य किंचित  
जो जानने योग्य है ॥ ३७ ॥

भास्तमःसत्यमनृतवेदःकर्मशुभा  
शुभम् । नस्यात्कर्त्तावेदिताचपु  
रूपोनभवेद्यदि ॥ ३८ ॥

प्रकाशतम सत्य अनृत वेद शुभ  
अशुभकर्म कर्त्ता और ज्ञाता ये सत्त्व न  
होते यदि पुरुष न होता ॥ ३८ ॥

नाश्रयोनसुखंनार्त्तिर्नगतिर्नागतिर्न  
वाक् । नविज्ञानंनशास्त्राणिनज  
न्ममरणंनच ॥ ३९ ॥

न आश्रय न असुख न आर्त्ति न  
गति न अगति न वाणी न विज्ञान  
न शास्त्र न जन्म न मरण ॥ ३९ ॥

नबन्धोनचमोक्षःस्यात्पुरुषोनभ  
वेद्यदि । कारणंपुरुषस्तस्मात्का  
रणज्ञैरुदाहृतः ॥ ४० ॥

न बंध न मोक्ष ये भी न होते यदि  
पुरुष न होता, तिससे कारणके ज्ञाता-  
ओंने पुरुष कारण कहाहै ॥ ४० ॥

नचकारणमात्मास्यात्वादयःस्यु  
रहेतुकाः । नचैपुसम्भवेदज्ञानंनच  
तैःस्यात्प्रयोजनम् ॥ ४१ ॥

यदि आत्मा कारण न होता तो आ  
काश आदि विनाकारणके हो जायेंगे,  
और न इनमें ज्ञान होगा और न इ-  
नका कुछ प्रयोजन होगा ॥ ४१ ॥

मृद्वण्डचक्रैश्चकृतंकुम्भकारादते  
घटम् । कृतंमृत्तृणकाष्ठैश्चगृहका  
रादिनागृहम् ॥ ४२ ॥

मिट्टी, दंड, चक्र, इनके प्रकृत,  
होनेपर, कुंभकारके विना घट, मिट्टी,  
तृण, काष्ठ, इनका किया, गृह, घरके  
कर्त्ताके विना ॥ ४२ ॥

योवदेत्सवदेदेहंसंभूयकरणैःकृत  
म् । विनाकर्त्तारमज्ञानाद्युक्त्या  
गमवहिष्कृतः ॥ ४३ ॥

जो कहे, 'युक्ति' और 'शास्त्र'से  
वाह्य वह करणोंके समूहसे किये  
हुए देहकोभी कारण रूप कर्त्ताके  
विना अज्ञानसे कहे हैं ॥ ४३ ॥

कारणंपुरुषःसर्वैःप्रमाणैरुपलभ्य  
ते । येभ्यःप्रमेयंसर्वेभ्यआगमेभ्यः  
प्रतीयते ॥ ४४ ॥

संपूर्ण प्रमाणोंसे पुरुषही कारण  
उपलब्ध होता है, जिन संपूर्ण आगमोंसे  
प्रमेयका प्रमाण किया जाता है ॥ ४४ ॥

नतेतत्सदृशास्त्वन्येपारम्पर्यसमु  
त्थिताः । साख्यप्याद्येतएवेतिनि  
दिश्यन्तेनराक्षराः ॥ ४५ ॥

वे उनके सदृश नहीं परम्परासे उत्पन्न  
हुए अन्यही हैं और समानरूपसे ये  
नरसेनर रूप भाव दिखाये जाते हैं ॥ ४५ ॥

भावास्त्वेषांसमुदयोनिरीशःसत्त्व  
संज्ञकः । कर्त्ताभोक्तानसपुमानि  
तिकेचिद्व्यवस्थिताः ॥ ४६ ॥

तिन भावोंका समुदय, ( उत्पत्ति )  
ईशरहित सत्त्वसंज्ञक है और कोई इस  
व्यवस्थामें स्थित हैं, कि वह पुमान् कर्त्ता,  
भोक्ता नहीं है ॥ ४६ ॥

तेषामन्यैःकृतस्यान्येभावाभावैर्न  
राःफलम् । भुञ्जतेसदृशाःप्राप्त्यै  
रात्मानोपदिश्यते ॥ ४७ ॥

तिनके मतमें अन्य भावोंसे किये  
हुए कर्मके फलकी अन्य सदृश नररूप  
भाव भोगते हैं जो आत्माका उपदेश  
नहीं करते ॥ ४७ ॥

कारणान्यन्यतादृशकर्तुःकर्त्तास  
एवतु । कर्त्ताहिकरणैर्युक्तःकार  
णंसर्वकर्मणाम् ॥ ४८ ॥

कारणोंका भेद होता है कर्त्ता वही  
होता है, करणोंसे युक्त कर्त्ता, सब कर्मों-  
का कारण होता है ॥ ४८ ॥

निमेषकालाद्भावानांकालःशीघ्रत  
रोऽत्यये । भग्नानांचपुनर्भावःकृतं  
नान्यमुपैतिच ॥ ४९ ॥

भावोंके निमेष कालसे अत्यय(नाश)  
में काल शीघ्र नर है और भग्नोंका  
पुनः भाव है किये हुए अन्यको नहीं  
प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥

यतंतत्त्वविदामेतद्यस्मात्कर्त्तास  
कारणम् । क्रियोपभोगेभूतानां  
नित्यःपुरुषसंज्ञकः ॥ ५० ॥

तत्त्वके ज्ञाताओंका जिससे यह मत है  
तिससे वह कारण भूतोंकी क्रिया  
उपभोग-में पुरुष संज्ञक है ॥ ५० ॥

अहङ्कारःफलकर्मदेहान्तरगातिः  
स्मृतिः । विद्यतेसतिभूतानांकार  
णेदेहमन्तरा ॥ ५१ ॥

अहंकार-फल-कर्म-अन्य देहमें गमन  
स्मृति-ये सब-देहके विनाभी कारण के  
विद्यमान रहते भूतोंको होते हैं ५१ ॥

प्रभवोनह्यनादित्वाद्विद्यतेपरमा  
त्मनः । पुरुषोराशिसंज्ञस्तुमोहे  
च्छाद्वेषकर्मजः ॥ ५२ ॥

और परमात्माके अनादि होनेसे  
प्रभव ( उत्पत्ति ) नहीं होता है-और  
राशि संज्ञक जो पुरुष है-वह मोह-इच्छा  
द्वेष-कर्म-इनसे उत्पन्न है ॥ ५२ ॥

आत्मज्ञःकरणैर्योगाज्ज्ञानंतस्य

प्रवर्तते । करणानामवैमल्याद  
योगाद्भानवर्तते ॥ ५३ ॥

और आत्माका ज्ञाता है इंद्रियोंके योगसे इसकी ज्ञानकी प्रवृत्ति होती है और करणोंकी मलिनतासे वा अयोग्यतासे ज्ञानकी प्रवृत्ति नहीं होती ॥ ५३ ॥

पश्यतोऽपियथादर्शसंक्लिष्टेनास्ति  
दर्शनम् । तद्रज्जलेवाकलुषेचेत  
स्युपहतेतथा ॥ ५४ ॥

जैसे-देखते हुएभी मनुष्यको मलीन दर्पणमें दर्शन नहीं होता—और जैसे मलिनजलमें तत्व नहीं दीखता—तैसेही चित्तके नष्ट होनेपर-ज्ञान नहीं होता ॥ ५४ ॥

करणानिमनोबुद्धिर्बुद्धिकर्मेन्द्रि  
याणिच । कर्तुःसंयोगजंकर्मवेद  
नानुद्धिरेवच ॥ ५५ ॥

करण, मन, बुद्धि, ज्ञान और कर्मेन्द्रिय, कर्ताके संयोगसे उत्पन्न कर्म वेदना, बुद्धि ॥ ५५ ॥

नैकःप्रवर्ततेकर्तुंभूतात्मानाश्रुते  
फलम् । संयोगाद्वर्ततेसर्वतमृते  
नास्तिकिंचन ॥ ५६ ॥

इनमेंसे एकभी करनेकी प्रवृत्ति नहीं होता और भूतात्मा फलका भागी नहीं होता, संयोगसे, सब होता है और उसके बिना कुछभी नहीं है ॥ ५६ ॥

नह्येकोवर्ततेभावोवर्ततेनाप्यहेतु

कः । शीघ्रगत्वात्स्वभावात्तुभा  
वोनव्यतिवर्तते ॥ ५७ ॥

एक भाव नहीं है और न बिना हेतु कोई भाव है शीघ्रगामी होनेसे अपने स्वभावका अवलंघन कोई भाव नहीं करता ॥ ५७ ॥

अनादिःपुरुषोऽनित्योविपरीतस्तु  
हेतुजः । सदाकारणवन्नित्यदृष्टं  
हेतुमदन्यथा ॥ ५८ ॥

पुरुष, अनादि, नित्य, है और उससे विपरीत पदार्थ कारणसे उत्पन्न हैं, नित्य सत् और कारणरहित है और अनित्य कारणसे उत्पन्न होता है ॥ ५८ ॥

तदेवभावादग्राह्यंनित्यत्वान्नकुत  
श्चन । भावादज्ञेयंतदव्यक्तमाचि  
न्त्यव्यक्तमन्यथा ॥ ५९ ॥

और वही किसी भावसे नित्य होनेसे ग्रहणके अयोग्य है और किसी भावसे ज्ञानके लिये अयोग्य है और अव्यक्त, अचिन्त्य है और व्यक्त चिन्त्य है ॥ ५९ ॥

अव्यक्तमात्माक्षेत्रज्ञःशाश्वतोवि  
भुरव्ययः । तस्माद्यदन्यत्तद्व्यक्तं  
वक्ष्यतेचापरंद्वयम् ॥ ६० ॥

आत्मा क्षेत्रज्ञ, सनातन, विभु, अविनाशी, अव्यक्त है, उससे जो अन्य है, वह व्यक्त है और अन्यभी, दो प्रकार के व्यक्त अव्यक्तको कहते हैं कि ॥ ६० ॥



व्यक्तश्चेन्द्रियकश्चैव गृह्यते तद्यदि  
न्द्रियैः । अतोऽन्यत्पुनरव्यक्तं  
लिङ्गं ग्राह्यमतीन्द्रियम् ॥ ६१ ॥

जो ऐन्द्रियक है, अर्थात् इंद्रियोंसे जो  
ग्रहण किया जाता है, वह व्यक्त है,  
उससे जो अन्य है, वह अव्यक्त है  
लिङ्गसे जो ग्रहण करने योग्य वह अ-  
तीन्द्रिय है ॥ ६१ ॥

खादीनिबुद्धिरव्यक्तमहङ्कारस्त  
थाष्टमः । भूतप्रकृतिरुद्दिष्टा वि  
काराश्चैव षोडश ॥ ६२ ॥

आकाश आदि ५ और बुद्धि अव्य-  
क्त और आठवां, अहंकार, ये भूतोंकी  
प्रकृति कही हैं और १६ सोलह विकार  
कहे हैं ॥ ६२ ॥

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च कर्मेन्द्रि  
याणि च । समनस्काश्च पञ्चार्था  
विकारा इति संज्ञिताः ॥ ६३ ॥

कि पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय,  
मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये  
सोलह विकार होते हैं ॥ ६३ ॥

इति क्षेत्रं समुद्दिष्टं सर्वमव्यक्तवर्जि  
तम् । अव्यक्तस्य क्षेत्रस्य क्षेत्र  
ज्ञमृषयो विदुः ॥ ६४ ॥

अव्यक्तसे भिन्न, ये संपूर्ण क्षेत्र कहा  
हैं और इस क्षेत्रका क्षेत्रज्ञ ( ज्ञाता )  
ऋषियोंने, अव्यक्त कहा है ॥ ६४ ॥

जायते बुद्धिरव्यक्ताद्बुद्ध्याहमिति  
मन्यते । परं खादीन्यहङ्कार उपा  
दत्ते यथाक्रमम् ॥ ६५ ॥

बुद्धि, अव्यक्तसे होती है बुद्धिसे  
अहंकारको मानता है और अहंकार,  
आकाश आदिका क्रमसे स्वीकार कर-  
ता है ॥ ६५ ॥

ततः संपूर्णसर्वाङ्गो जातोऽभ्युदि  
त उच्यते । पुरुषः प्रलये चेष्टैः पुन  
र्भावैर्नियुज्यते ॥ ६६ ॥

फिर, संपूर्ण, सर्वांग हुआ, पुरुष  
उत्पन्न कहाता है और प्रलयमें फिरभी  
इष्ट भावोंसे, वियुक्त हो जाता है ॥ ६६ ॥

अव्यक्ताद्व्यक्ततां याति व्यक्तादव्य  
क्ततां पुनः । रजस्तमोभ्यामावि  
ष्टश्चक्रवत्परिवर्तते ॥ ६७ ॥

और पुनः अव्यक्तसे व्यक्त रूपको  
और व्यक्तसे अव्यक्त रूपको, रजोगुण  
तमोगुणसे युक्त होकर, प्राप्त होता है  
और चक्रके समान, परिवर्तन ( फेर )  
को प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥

येषां द्वन्द्वे परासक्तिरहङ्कारपराश्च  
ये । उदयप्रलयौ तेषां न तेषां ये त्व  
तोऽन्यथा ॥ ६८ ॥

जिनके द्वन्द्व सुख दुःख आदि में  
परम आसक्ति है, और जो अहंकारमें  
तत्पर है, उनके, उदय और प्रलय होते  
हैं और इनसे जो विपरीत हैं, उनके  
उदय और प्रलय नहीं होते ॥ ६८ ॥

प्राणापानौ निमेषाद्या जीवनं मनसो  
गतिः । इन्द्रियान्तरसञ्चारः प्रेर  
णधारणश्च यत् ॥ ६९ ॥

प्राण, अपान, निमेष, आदि, जीवन  
मनकी गति इन्द्रियान्तरोंमें संचार प्रेरण  
और जो धारण है ॥ ६९ ॥

देशान्तरगतिः स्वप्ने पञ्चत्वग्रहणं  
तथा । दृष्टस्य दक्षिणेनाक्षणास  
व्येनापगमस्तथा ॥ ७० ॥

स्वप्नमें देशान्तरमें गमन, पंचत्व का  
ग्रहण ( ज्ञान ) और तिसी प्रकार दक्षि-  
ण नेत्रसे दृष्ट पदार्थका वाम नेत्रसे  
अपगम ॥ ७० ॥

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं प्रयत्नश्चेतना  
धृतिः । बुद्धिः स्मृतिरहङ्कारो लि  
ङ्गानि परमात्मनः ॥ ७१ ॥

इच्छा, द्वेष, दुःख, प्रयत्न, सुख,  
चेतना, धृति, बुद्धि, स्मृति, अहंकार ये  
परमात्माके लिंग हैं ॥ ७१ ॥

यस्मात्समुपलभ्यन्ते लिङ्गान्येता  
नि जीवतः । नमृतस्यात्मलिङ्ग  
नितस्मादाहुर्महर्षयः ॥ ७२ ॥

जिससे ये लिंग, जीवते पुरुषमें उप-  
लब्ध होते हैं, और मृतशरीरमें ये  
आत्माके लिंग महर्षियोंने नहीं कहे हैं ॥ ७२ ॥

शरीरं हि गते तस्मिच्छून्यागारमचे  
तनम् । पञ्चभूतावशेषत्वात्पञ्च  
त्वंगतमुच्यते ॥ ७३ ॥

उसका शरीरसे गमन होनेपर शू-  
न्यागार, अचेतन पंचभूतोंका अवशेष  
रहनेसे पंचत्वको प्राप्त शरीर कहाता  
है ॥ ७३ ॥

अचेतनं क्रियावच्च मनश्चेतयिताप  
रः । युक्तस्य मनसा तस्य निर्दिश्यं  
ते विज्ञोः क्रियाः ॥ ७४ ॥

और अचेतन, क्रियावांच, मन, चेतन  
करानेहारा, सर्वोत्तम है और मनसे  
युक्त उस विभुकी क्रिया दिखाई है ॥ ७४ ॥

चेतनावान्यतश्चात्मा ततः कर्तानि  
रुच्यते । अचेतनत्वाच्च मनः क्रि  
यावदापिनोच्यते ॥ ७५ ॥

जिससे आत्मा चेतनावान् है तिससे  
कर्ता कहाता है और अचेतन होनेसे  
मनको क्रियावांच कहते हैं ॥ ७५ ॥

यथास्वेनात्मनः सर्वमनः सर्वासु यो  
निषु । प्राणैस्तन्त्रयते प्राणिनस्त  
न्योऽन्यस्य तन्त्रकः ॥ ७६ ॥

जैसे मन, संपूर्ण योनियोंमें आत्मा-  
के सब कार्योंको अपने रूपसे प्राणोंसे,  
तंत्रित ( बद्ध ) करता है, तिससे इसकी  
प्राणी कहते हैं, क्योंकि उससे भिन्न  
अन्यका कोई तंत्रक नहीं है ॥ ७६ ॥

वशीतं कुरुते कर्म यत्कृत्वा फलम  
श्नुते । वशीचेतः समाधत्ते वशीसं  
व निरस्यति ॥ ७७ ॥

और मनके वशमें होकर वह कर्म करता है, जिसको करके फलको भोग-ता है और वशमें होकर चित्तका स्वीकार और त्याग करता है ॥ ७७ ॥

देहीसर्वगतो ह्यात्मास्वेस्वेसंस्पर्श  
नेन्द्रिये । सर्वाः सर्वाश्रयस्थास्तु  
नात्मातो वेत्ति वेदनाः ॥ ७८ ॥

और देही सर्वगत आत्मा अपने २ संस्पर्शन इंद्रियमें, संपूर्ण, आश्रयोंमें स्थित वेदनाओंको आत्मा मनके बिना नहीं जानसका ॥ ७८ ॥

विभुत्वमत एवास्य यस्मात्सर्वगतो  
महान् । मनसश्च समाधानात्पश्य  
त्यात्मातिरस्कृतम् ॥ ७९ ॥

इसीसे इस मनको विभु कहते हैं, जिससे सर्वगत और महान् आत्मा मनके समाधानसे तिरस्कृत ( जगत् ) को देखता है ॥ ७९ ॥

नित्यानुबन्धं मनसा देहकर्मानुपा-  
तिना । सर्वयोनिगतं विद्यादेकयो-  
नावपि स्थितम् ॥ ८० ॥

देह और कर्मके अनुगामी, मनके संग नित्य सम्बन्ध सब योनियोंमें प्राप्त एक योनिमें स्थितका भी जानना ॥ ८० ॥

आदिर्नास्त्यात्मनः क्षेत्रपारम्पर्य-  
मनादिकम् । अतस्तयोरनादि-  
त्वात्किं पूर्वमिति नोच्यते ॥ ८१ ॥

आत्माकी आदि नहीं और क्षेत्रभी परम्परासे अनादि है, इससे इन-दोनों-को अनादि होनेसे कौन पूर्व है यह नहीं कह सके ॥ ८१ ॥

ज्ञः साक्षीत्युच्यते नाज्ञः साक्षी ह्या-  
त्मा ह्यतः स्मृतः । सर्वभावाहिसर्वे  
पांभूतानामात्मसाक्षिकाः ॥ ८२ ॥

और ज्ञ, को साक्षी कहते हैं अज्ञको नहीं इससे आत्मा साक्षी कहा है, संपूर्ण भूतोंके संपूर्ण भाव, आत्मसाक्षिक है ॥ ८२ ॥

नैकः कदाचिद्भूतात्मा लक्षणैरुपल-  
भ्यते । विशेषोऽनुपलभ्यस्य तस्य  
नैकस्य विद्यते ॥ ८३ ॥

और एक भूतात्मा कदाचित् लक्ष-  
णोंसे उपलब्ध ( ज्ञात ) नहीं होता, और अनुपलब्ध हुए उसका कोई विशेष नहीं है ॥ ८३ ॥

संयोगः पुरुषस्येष्टो विशेषो वेदनाकृ-  
तः । वेदनायत्र नियता विशेषस्त-  
त्र तत्कृतः ॥ ८४ ॥

और वेदनाका किया जो संयोग है वही विशेष पुरुषको इष्ट है, और जहां वेदना नियत है, वहांही उनका किया विशेष है ॥ ८४ ॥

चिकित्सति भिषक् सर्वास्त्रिकाला-  
वेदना इति । यया युक्त्या वदन्त्ये-  
के सायुक्तिरुपधार्यताम् ॥ ८५ ॥

और भिषक् त्रिकालकी संपूर्ण वेद-  
नाओंकी चिकित्सा करता है यह कोई  
आचार्य जिस युक्तिसे वर्णन करते हैं,  
उस युक्तिको सुनो कि ॥ ८५ ॥

पुनस्तच्छिरसःशूलज्वरःसपुनरा  
गतः । पुनःसकालोवलवांश्छर्दिः  
सापुनरागता ॥ ८६ ॥

पुनः वह शिरका शूलवा पुनः वह  
ज्वर आया, फिर वो बलवान्, कास  
हुआ और पुनः वह छर्दि आई ॥ ८६ ॥

एभिःप्रसन्नैर्वचनैरतीतागमनंमत  
म् । कालश्चायमतीतानामार्त्त  
नांपुनरागतः ॥ ८७ ॥

इन प्रसन्न वचनोंसे अतीतका आग-  
मन माना है और यह काल अतीत  
पीडाओंका फिर आया ॥ ८७ ॥

तमर्त्तिकालमुद्दिश्यभेषजंयत्प्रयु  
ज्यते । अतीतानांप्रशमनंवेदना  
नांतदुच्यते ॥ ८८ ॥

उस आर्त्तिकालके, उद्देशसे जो भे-  
षज का प्रयोग किया जाता है, वह  
भेषज अतीत वेदनाओंका शमन कर्ता  
कहा है ॥ ८८ ॥

आपस्ताःपुनरागुर्यायाभिःशस्यंपु  
राहतम् । तथाप्रक्रियतेसेतुःप्रति  
कर्मतथाश्रयेत् ॥ ८९ ॥

जिह्वोंने पहिले सस्यको नष्ट किया  
था । वे जल फिर आये उन जलोंके

आनेपर जैसे सेतु किया जाता है, इसी  
प्रकार प्रतिकर्म ( चिकित्सा ) का  
आश्रय ले ॥ ८९ ॥

पूर्वरूपविकाराणांदृष्ट्वाप्रादुर्भावविष्य  
ताम् । याक्रियाक्रियतेसाचवेद  
नांहन्त्यनागताम् ॥ ९० ॥

प्रकट होनेवाले विकारोंके पूर्वरूपको  
देखकर जो क्रिया कीजाती है, वह  
अनागत वेदनाको नष्ट कर देती है ॥ ९० ॥

पारम्पर्यानुबन्धस्तुदुःखानांवि  
निवर्त्तते । सुखहेतूपचारेणसुख  
श्चापिप्रवर्त्तते ॥ ९१ ॥

और दुःखोंका जो परम्परा सम्बन्ध  
है वहभी निवृत्त होजाता है और  
सुखके हेतुओंके उपचारसे सुखकीभी  
प्रवृत्ति होती है ॥ ९१ ॥

नसमायान्तिवैषम्यंविषमाःसमतां  
नच । हेतुभिःसदृशानित्यंजायन्ते  
देहधातवः ॥ ९२ ॥

और देहकी धातु जो समं हैं, वे वि-  
षम नहीं होतीं और जो विषम हैं वे  
सम नहीं होतीं किन्तु अपने हेतुओंके  
तुल्य नित्य रहती हैं ॥ ९२ ॥

युक्तिमेतांपुरस्कृत्यत्रिकालांवेदनां  
भिषक् । हन्तीत्युक्त्वाचिकित्सा  
सानैष्ठिकीयाविनोपधा ॥ ९३ ॥

इस युक्तिको, मानकर, वैद्य, त्रिका-  
लकी वेदनाको नष्ट करता है, इससे

उपधाके बिना जो चिकित्सा है, वह नै-  
ष्ठिकी ( उत्तम ) कही है ॥ ९३ ॥

उपधाहिपरोहेतुर्दुःखदुःखाश्रय  
प्रदः । त्यागः सर्वोपधानाञ्च सर्व  
दुःखव्यपोहकः ॥ ९४ ॥

दुःख दुःखाश्रयका दाता परम हेतु  
उपधा है और संपूर्ण उपधाओंका त्याग  
सब दुःखोंका नाशक है ॥ ९४ ॥

कोषकारो यथाहंशनुपादत्तेव ध  
प्रदान् । उपादत्तेतथार्थभ्यस्तृ  
ण्णामज्ञः सदातुरः ॥ ९५ ॥

जैसे कोषकार ( मकड़ी ) मरणके  
दाता अंशुओंको स्वीकार करता है इसी  
प्रकार मूर्ख आतुर, विषयोंकी तृष्णाको  
ग्रहण करता है ॥ ९५ ॥

यस्त्वग्निकल्पानर्थान् ज्ञो ज्ञात्वा  
तेभ्यो निवर्त्तते । अनारम्भादसं  
योगात्तदुखं नोपतिष्ठते ॥ ९६ ॥

जो ज्ञानी, विषयोंको अग्निके समान  
जानकर उनसे निवृत्त होता है, वह अ-  
नारम्भ और असंयोगसे, उस दुःखके  
योगको प्राप्त नहीं होता ॥ ९६ ॥

धीधृतिस्मृतिविभ्रंशः सम्प्राप्तिः  
कालकर्मणाम् । असात्म्यार्थाग  
मश्चेति ज्ञातव्या दुःखहेतवः ॥ ९७ ॥

धी, धृति, स्मृति, इनका नाश, काल  
और कर्मकी प्राप्ति और असात्म्य विषयका  
आगमन, ये दुःखके हेतु जानना ॥ ९७ ॥

विषमाग्निनिवेशो यो नित्यानित्ये  
हिताहिते । ज्ञेयः समबुद्धिविभ्रंशः  
समबुद्धिर्हि पश्यति ॥ ९८ ॥

नित्य अनित्य और हित अहितमें  
जो विषम अभिनिवेश है, वह बुद्धिका  
विभ्रंश जानना, क्योंकि, बुद्धि, समको  
देखती है, विषमको नहीं ॥ ९८ ॥

विषयप्रवणोचित्तधृतिभ्रंशान्न श  
क्यते । नियन्तुमहितादर्थान् नृति  
र्हिनियमात्मिका ॥ ९९ ॥

विषयोंमें प्रवण ( जाता हुआ ) सत्त्व  
( चित्त ) धृतिके भ्रंशसे अहित अर्थसे  
रोकनेको शक्य नहीं होता, क्योंकि  
धृति नियमरूप होती है ॥ ९९ ॥

तत्त्वज्ञाने स्मृतिर्यस्य रजो मोहावृ  
तात्मनः । भ्रश्यते स स्मृतिभ्रंशः  
स्मर्त्तव्यं हि स्मृतौ स्थितम् १००

रजोगुण और मोहसे जिसका आत्मा  
आवृत ( ढका ) है उसको तत्त्व ज्ञान  
का स्मरण नहीं होता, वह ही स्मृतिका  
भ्रंश जानना, क्योंकि स्मृतिमें ही, स्म-  
र्त्तव्य, स्थित रहता है ॥ १०० ॥

धीधृतिस्मृतिविभ्रष्टः कर्मयत्कुरुते  
शुभम् । प्रज्ञापराधतं विद्यात्सर्व  
दोषप्रकोपणम् ॥ १०१ ॥

बुद्धि, धृति, स्मृति, इनसे भ्रष्ट म-  
नुष्य, जिस अशुभ कर्म को करता है,

रूप दीपोंके प्रकोपन, उसको प्रज्ञापराध जानै ॥ १०१ ॥

उदीरणंगतिमतामुदीर्णानाञ्च निग्रहः । सेवनसाहसानाञ्चनारीणाञ्चातिसेवनम् ॥ १०२ ॥

जो गतिमान् हैं उनका उदीरण और जो उदीर्ण हैं उनका निग्रह ( रोकना ) साहसोंका सेवन और नारियोंका अत्यंत सेवन ॥ १०२ ॥

कर्मकालातिपातश्च मिथ्यारम्भश्च कर्मणाम् । विनयाचारलोपश्च पूज्यानाञ्चाभिधर्षणम् ॥ १०३ ॥

और कर्मके कालका अतिपात ( लंघन ) कर्मोंका मिथ्यारंभ, विनय और आचारका लोप और पूज्योंका अभिधर्षण ( तिरस्कार ) ॥ १०३ ॥

ज्ञातानां स्वयमर्थानामहितानानि पेवणम् । परमौन्मादिकानाञ्च प्रत्ययानानि पेवणम् ॥ १०४ ॥

और स्वयं जाने हुये अहित अर्थोंका सेवन, पांच प्रकारके भेद आदि प्रत्ययोंका सेवन ॥ १०४ ॥

अकालादेशसञ्चारौ मैत्रीसंक्रिष्टकर्मभिः । इन्द्रियोपक्रमोक्तस्य स हृतस्य च वर्जनम् ॥ १०५ ॥

अकालमें देश संचार निंदितकर्मियोंके संग मित्रता, इंद्रियोंके प्रकरणमें कहेहुये सदाचरणका त्याग ॥ १०५ ॥

ईर्ष्यामानमदक्रोधलोभमोहमदभ्रमाः । तर्जवाकर्मयत्किष्टं किष्टं देहकर्मच ॥ १०६ ॥

ईर्ष्या मान मद क्रोध लोभ मोह मदसे भ्रम और इनसे उत्पन्न छिष्ट कर्म वा उनसे युक्त देहका कर्म ॥ १०६ ॥

यच्चान्यदीदृशं कर्म रजोमोहसमुत्थितम् । प्रज्ञापराधं तं शिष्टानुवतेव्याधिकारणम् ॥ १०७ ॥

और जो अन्यभी इस प्रकारका कर्म रज और मोहसे उत्पन्न है व्याधिके कारणोंमें उसको शिष्ट प्रज्ञापराध कहते हैं ॥ १०७ ॥

बुद्ध्या विषमविज्ञानं विषमञ्च प्रवर्तनम् । प्रज्ञापराधं जानीयान्मनसो गोचरं हितम् ॥ १०८ ॥

बुद्धिसे विषम विज्ञान और विषम प्रवृत्ति जो मनके विषय है उसको प्रज्ञापराध जानै ॥ १०८ ॥

निर्दिष्टकालसम्प्राप्तिर्व्याधीना हि तु संग्रहे । चयप्रकोपप्रशमापि तादीनां यथापुरा ॥ १०९ ॥

व्याधिके संग्रहमें व्याधियोंकी कालसंप्राप्ति कही है और जैसे पहिले पित्त आदिकोंके चय कोप प्रशमन दिखाये हैं ॥ १०९ ॥

मिथ्यातिहीनलिङ्गाश्च वर्णान्ता रोगहेतवः । जीर्णभुक्तप्रजीर्णान् कालाकालस्थितिश्च या ॥ ११० ॥

और मिथ्या अतिहीनके लिंग और वर्षा पर्यंत रोगके हेतु और जीर्ण भुक्त अजीर्ण अन्न और उसमें जो काल अकालकी स्थिति है ॥ ११० ॥

पूर्वमध्यापराह्णाश्वरात्र्यायामास्रयश्चये । येषुकालेषुनियतायेरोगास्ते च कालजाः ॥ १११ ॥

पूर्व मध्य और अपराह्न और तीन जो रात्रिके प्रहर हैं इनकालोंमें जो रोग नियत हैं वे कालज हैं ॥ १११ ॥

अन्येषुष्कोद्वयहग्राहीतृतीयकचतुर्थकौ । स्वेस्वेकालेप्रवर्तन्ते काले ह्येषांबलागमः ॥ ११२ ॥

अन्यदिनमें जो हो वह अन्यष्टुष्के और द्वयहग्राही तृतीयक और चतुर्थक ये सब अपने २ कालमें प्रवृत्त होते हैं और समयपरही इनके बलका आगमन होता है ॥ ११२ ॥

एतेचान्येचयेकेचित्कालजाविधिधागदाः । अनागते चिकित्स्यास्तेबलकालौविजानता ११३

ये और अन्य जो कोई कालसे उत्पन्न विविध रोग हैं वे बलकालके आनेसे पहिलेही ज्ञाता वैद्यको चिकित्सा करनेके योग्य हैं ॥ ११३ ॥

कालस्यपरिणामेनजरामृत्युनिमित्तजाः । रोगाःस्वाभाविकाहृष्टाःस्वभावोनिष्प्रतिक्रियः ११४

कालके परिणामसे जरा मृत्युके निमित्तसे उत्पन्न जो रोग हैं वे स्वाभाविक देखें हैं और स्वभावकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है ॥ ११४ ॥

निर्दिष्टदैवशब्देनकर्मयत्पौर्वदैहिकम् । हेतुस्तदपिकालेनरोगाणामुपलभ्यते ॥ ११५ ॥

और दैव शब्दसे जो पूर्व देहका कर्म दिखाया है वहभी समयपर रोगोंका हेतु प्रतीत होता है ॥ ११५ ॥

नहिकर्ममहत्किञ्चित्फलंयस्य नभुज्यते । क्रियाघ्नाःकर्मजारोगाःप्रशमयान्तितत्क्षयात् ११६

ऐसा कोई महान् कर्म नहीं है जिसका फल न भोगाजाय, क्रियाके नाशक जो कर्मज रोग हैं वे तिसी क्षणमें शांत हो जाते हैं ॥ ११६ ॥

अत्युग्रशब्दश्रवणाच्छ्रवणात्सर्वशोनच । शब्दानाश्चातिहीनानां भवन्तिश्रवणाज्जडाः ॥ ११७ ॥

अति उग्रशब्दके सुननेसे और संपूर्ण शब्दोंके न सुननेसेहीनशब्दोंके सुननेसे मनुष्य जड़ हो जाते हैं ॥ ११७ ॥

परुषोद्दीपणाशस्ताप्रियव्यसनसूचकैः । शब्दैःश्रवणसंयोगोमिथ्यायोगःसुउच्यते ॥ ११८ ॥

परुष भीषण अशस्त प्रिय व्यसन इनके सूचक शब्दोंसे युक्त जो होते हैं

वह श्रवणसंयोग मिथ्यासंयोग कहा-  
ताहै ॥ ११८ ॥

असंस्पर्शोऽतिसंस्पर्शोहीनसंस्पर्श  
एवच । स्पृश्यानांसंग्रहेणोक्तः  
स्पर्शनेन्द्रियबाधकः ॥ ११९ ॥

और असंस्पर्श और अतिसंस्पर्श  
और हीन संस्पर्श स्पर्शके योग्योंका  
स्पर्श जो स्पर्शन इंद्रियका बाधकहै वह  
संग्रहसे कहा ॥ ११९ ॥

योभूतविषवातानामकालेनागत  
श्वयः । स्नेहशीतोष्णसंस्पर्शोमि-  
थ्यायोगःसुच्यते ॥ १२० ॥

और जो भूत विष वात इनका अका-  
लमें और अनागत स्नेह शीत उष्ण  
संस्पर्शहै उसको मिथ्या योग कहतेहैं ॥ १२० ॥

रूपाणांभास्वतांदृष्टिर्विनश्यतिच  
दर्शनात् ॥ १२१ ॥

और प्रकाशमान रूपोंके दर्शनसे  
दृष्टि नष्ट हो जातीहै ॥ १२१ ॥

दर्शनाच्चातिसूक्ष्माणांसर्वशश्चा-  
प्यदर्शनात् ॥ द्विष्टभैरवबीभत्सदूरा-  
तिक्लिष्टदर्शनात् ॥ १२२ ॥

और अति सूक्ष्मोंके दर्शनसे और  
सबके अदर्शनसे और द्वेषयुक्त भैरव  
बीभत्स दूर अतिक्लिष्ट ( क्लेश ) इनके  
दर्शनसे ॥ १२२ ॥

तामसानाञ्चरूपाणामिथ्यासंयोग

उच्यते । अत्यादानमनादानमो-  
कसात्म्यादिभिश्चयत् ॥ १२३ ॥

और तामसरूपोंके दर्शनसे जो योग  
वह मिथ्या संयोग कहाताहै, अत्यंत  
आदान ( ग्रहण ) और अनादान और  
एकसाम्य आदिकोंको जो ॥ १२३ ॥

रसानांविषमादानमल्पादानञ्चदूष-  
णम् । अतिमृद्वतितीक्ष्णानांगन्धा-  
नामुपसेवनम् ॥ १२४ ॥

रसोंका विषम आदान और अल्प  
आदानहै वह दूषणहै, अतिमृदु और  
अतितीक्ष्ण गंधोंका उपसेवन ॥ १२४ ॥

असेवनंसर्वशश्चघ्राणेन्द्रियविना-  
शनम् । पूतिभूतविषद्विष्टागन्धा-  
ये चाप्यनार्त्तवाः ॥ १२५ ॥

और सब गंधोंका असेवन घ्राण इंद्रि-  
यका विनाशन है और पूतिभूत ( दुर्गंध )  
और विषसे द्विष्ट और विना ऋतुके जो  
गंधहै ॥ १२५ ॥

तैर्गन्धैर्घ्राणसंयोगोमिथ्यायोगःस-  
उच्यते । इत्यसात्म्यार्थसंयोग-  
स्त्रिविधोदोषकोपनः ॥ १२६ ॥

उन गंधोंके संग जो घ्राणका संयोग  
वह मिथ्यायोग कहाताहै, यह तीन  
प्रकारका जो सात्म्य अर्थका संयोगहै  
वह दोषोंका कंपनहै ॥ १२६ ॥

असात्म्यमितिताद्विधाद्यन्नयाति-  
सहात्मताम् ॥ १२७ ॥



और जो अपनी सहात्मताको प्राप्त न हो अर्थात् प्रकृतिके अनुकूल न हो उसको असात्म्य जानै ॥ १२७ ॥

मिथ्यातिहीनयोगेभ्योयोव्याधिरुपजायते । शब्दादीनांसर्वे  
योव्याधिरैन्द्रियकोबुधैः ॥ १२८ ॥

मिथ्या अभियोग हीन इनसे जो व्याधि होतीहै वह शब्द आदिकोंकी व्याधि विद्वानोंको ऐन्द्रियक जाननी ॥ १२८ ॥

वेदनानामशातानामित्येतेहेतवः

स्मृताः । सुखहेतुर्मतस्त्वेकःसमयोगःसुदुर्लभः ॥ १२९ ॥

असात्म्य वेदनाओंके ये हेतु कहेंहैं, सुखका हेतु तो एक सम योगही मानाहै वह परम दुर्लभहै ॥ १२९ ॥

नेन्द्रियाणिनचैवार्थाःसुखदुःखस्यहेतवः । हेतुस्तुसुखदुःखस्ययोगोदृष्टश्चतुर्विधः ॥ १३० ॥

सुख दुःखके हेतु न इन्द्रियहैं और न अर्थ हैं सुख दुःखका हेतु तो चार प्रकारका योग देखाहै ॥ १३० ॥

सन्तीन्द्रियाणिसन्त्यर्थयोगानचनचास्तिरुक् । नसुखकारणतस्माद्योगएवचतुर्विधः ॥ १३१ ॥

इन्द्रियभी हों और अर्थ भी हो योग न होय तो रोग भी नहीं होताहै न सुखहै तिससे चार प्रकारका योगही कारणहै ॥ १३१ ॥

नात्मेन्द्रियमनोबुद्धिगोचरं कर्म वाविना । सुखदुःखं यथायच्च बोद्धव्यं तत्तथोच्यते ॥ १३२ ॥

आत्मा इन्द्रिय और मन बुद्धिके विषय कर्म इनके विना सुख दुःख नहींहैं जैसे जो सुख दुःख जानने योग्यहै वह तिस प्रकारसे कहतेहैं ॥ १३२ ॥

स्पर्शनेन्द्रियसंस्पर्शःस्पर्शाभानस एवच । द्विविधःसुखदुःखानांवेदनानांप्रवर्तकः ॥ १३३ ॥

स्पर्शमें संस्पर्शन इन्द्रियका स्पर्श और मनके स्पर्शका योग यह दो प्रकारका सुख दुःखोंकी वेदनाओंका प्रवर्तकहै ॥ १३३ ॥

इच्छाद्वेषात्मिकातृष्णासुखदुःखात्प्रवर्तते । तृष्णाचसुखदुःखानांकारणंपुनरुच्यते ॥ १३४ ॥

और इच्छा द्वेषरूप तृष्णाभी सुख दुःखसे प्रवृत्त होतीहै और सुख दुःखोंकी तृष्णाभी कारण कहीहै ॥ १३४ ॥

उपादत्तेहिसांभावांवेदनांश्रयसंज्ञकान् । स्पृश्यतेनानुपादानोनां स्पृष्टोवेत्तिवेदनाः ॥ १३५ ॥

वह तृष्णा वेदनांके आश्रय नामके भावोंको स्वीकार करतीहै और उपादानके विना स्पर्शमें नहीं आता है और न स्पर्श किया हुआ वेदनाओंको जान सकता है ॥ १३५ ॥

वेदनानामधिष्ठानमनोदेहश्चसेन्द्रियः । केशलोमनखाग्रान्नमलद्रवगुणैर्विना ॥ १३६ ॥

वेदनाओंका अधिष्ठान मन और इंद्रियों सहित देह है, केश लोम नखोंका अग्र अन्न मल द्रव गुण इनके विना ॥ १३६ ॥

योगेमोक्षेचसर्वासावेदनानामवर्त्तनम् । मोक्षोनिवृत्तिर्निःशेषायो गोमोक्षप्रवर्त्तकः ॥ १३७ ॥

योग मोक्ष ( त्याग ) में संपूर्ण वेदनाओंकी अवृत्ति है, मोक्षमें निःशेष निवृत्ति होती है और योग मोक्षका प्रवर्त्तक है ॥ १३७ ॥

आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानांसन्निक

र्षात्प्रवर्त्तते । सुखदुःखमनारम्भादात्मस्थेमनसिस्थिते ॥ १३८ ॥

आत्मा इंद्रिय मन अर्थ इनके संयोगसे सुख दुःख प्रवृत्त होता है जब अनारंभसे मन आत्मामें स्थित होता है ॥ १३८ ॥

निवर्त्ततेतदुभयं वशित्वञ्चोपजायते । सशरीरस्ययोगज्ञास्तंयोगमुपयोविदुः ॥ १३९ ॥

तब वे दोनों निवृत्त हो जाते हैं और मन वशमें हो जाता है, योगके ज्ञाता ऋषि शरीर सहित मनके उस योगको जानते हैं ॥ १३९ ॥

आवेशश्चेतसोज्ञानमर्थानांछन्दतः

क्रिया । दृष्टिः श्रोत्रं स्मृतिः कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम् ॥ १४० ॥

चित्तका आवेश अर्थोंका ज्ञान कर्माँकी क्रिया दृष्टि श्रोत्र स्मृति कान्ति और इष्ट वस्तुकाभी अदर्शन ॥ १४० ॥

इत्यष्टविधमाख्यातं योगिनां बलमैश्वरम् । शुद्धसत्त्वसमाधानात् तत्सर्वमुपजायते ॥ १४१ ॥

यह आठ प्रकारका योगियोंकी ईश्वर संबंधि बल कहाँ है, शुद्ध सत्त्व गुणमें समाधानसे वह संपूर्ण बल होता है, १४१

मोक्षोरजस्तमोऽभावाद्बलवत्कर्म संक्षयात् । वियोगः कर्मसंयोगैरपुनर्भाव उच्यते ॥ १४२ ॥

रजोगुण तमोगुणके अभावसे और बलवान् कर्मके संक्षयसे मोक्ष होता है, कर्मके संयोगोंका जो वियोग उसकी अपुनर्भाव ( मोक्ष ) कहते हैं ॥ १४२ ॥

सतामुपासनं सम्यगसतां परिवर्जनम् । व्रतचर्योपवासश्चानियमाश्च पृथग्विधाः ॥ १४३ ॥

सत्पुरुषोंकी भलीप्रकार उपासना और असत्तोंका परिवर्जन, व्रतकी चर्या उपवास और पृथक् प्रकारके नियम १४३

धारणं धर्मशास्त्राणां विज्ञानं विजने रतिः । विषये श्वरतिर्मोक्षे व्यवसायः पराधृतिः ॥ १४४ ॥

धर्मशास्त्रोंका धारण विज्ञान विज-  
नदेशमें रमण विषयोंमें अरति, मोक्षमें  
व्यवसाय परमधैर्य ॥ १४४ ॥

कर्मणामसमारंभः कृतानाञ्च परि-  
क्षयः । नैष्कर्म्यमनहङ्कारः संयो-  
गे भयदर्शनम् ॥ १४५ ॥

कर्मोंके अनारंभ और किये हुये  
कर्मोंका परिक्षय कर्मका त्याग अनहंकार  
संयोगमें भयका दर्शन ॥ १४५ ॥

मनोबुद्धिसमाधानमर्थतत्त्वपरीक्ष-  
णम् । तत्त्वस्मृतेरुपस्थानात्सर्व-  
मेतत्प्रवर्तते ॥ १४६ ॥

मन बुद्धिका समाधान अर्थके तत्व-  
की परीक्षा इन सबकी प्रवृत्ति तत्व  
स्मृतिके होनेसे होती है ॥ १४६ ॥

स्मृतिः सत्सेवनाद्यैश्च धृत्यन्तैरुपल-  
भ्यते । स्मृत्या स्वभावं भावानां  
स्मरन्दुःखात्प्रमुच्यते ॥ १४७ ॥

सत्पुरुषों की सेवासे लेकर धृति  
पर्यंतोंसे स्मृतिकी उपलब्धि होती है  
और स्मृतिसे भावोंका स्वभाव प्रतीत  
होता है, स्मरणसे दुःखसे मुक्त होता  
है ॥ १४७ ॥

वक्ष्यन्ते कारणान्यष्टौ स्मृतिरूप-  
जायते । निमित्तरूपग्रहणात्सादृ-  
स्यात्सविपर्ययात् ॥ १४८ ॥

जिनसे स्मृति होती है उन आठ  
कारणों की कहते हैं कि निमित्त रूपके  
ग्रहणसे, सादृश्यसे विपर्ययसे ॥ १४८ ॥

सत्त्वानुबन्धादभ्यासाज्ज्ञानयोगा-  
त्पुनः श्रुतात् । दृष्टश्रुतानुभूतानां  
स्मरणात्स्मृतिरुच्यते ॥ १४९ ॥

सत्त्वके अनुबंधसे अभ्याससे ज्ञानके  
रूपसे पुनः श्रुतसे और दृष्टश्रुत अनु-  
भूत इनके स्मरणसे स्मृति होती है ॥ १४९ ॥  
एतत्तदेकमयनमुक्तैर्मोक्षस्य दर्शि-  
तम् । तत्त्वस्मृतिबलयेन गतान्  
पुनरागताः ॥ १५० ॥

यह मुक्तोंने मोक्षका एक अयन  
दिखाया है तत्त्वकी स्मृतिके बलको  
जिससे गत हुये पुनः आगत नहीं हुये  
है ॥ १५० ॥

अयनं पुनराख्यातमेतद्योगस्य यो-  
गिभिः । संख्यातधर्मेः सांख्यैश्च मु-  
क्तैर्मोक्षस्य चायनम् ॥ १५१ ॥

और योगियोंने यह योगका अयन  
( घर ) कहा है और संख्यात धर्मवाले  
सांख्योंने और मुक्तोंने मोक्षका अयन  
कहा है ॥ १५१ ॥

सर्वकारणवदुःखमस्वञ्चानित्यमे-  
व च । न चात्मा कृतकं तद्धितत्र-  
चोत्पद्यते स्वता ॥ १५२ ॥

संपूर्ण दुःख कारणोंसे होता है और  
अस्व ( जो अपना न हो ) है और  
अनित्य है और वह आत्मा का किया  
नहीं होता है स्वतः ( अपने आप ) पैदा  
हो जाता है ॥ १५२ ॥

यावन्नोत्पद्यते सत्याबुद्धिर्नैतदहं य  
या । नैतन्मम च विज्ञायज्ञः सर्वम  
तिवर्त्तते ॥ १५३ ॥

इतने वह सत्यबुद्धि उत्पन्न नहीं हो  
तो जिससे यह मैं नहीं और यह मेरा नहीं  
इसको जानकर ज्ञानी सबका अति  
वर्त्तन करता है ॥ १५३ ॥

तस्मिंश्चरमसंन्यासे समूलाः सर्ववे  
दनाः । समज्ञाज्ञानविज्ञानान्निवृ  
त्तियान्त्यशेषतः ॥ १५४ ॥

उस अंतके संन्यासमें मूल सहित  
सबवेदना समज्ञा ज्ञान विज्ञान से  
संपूर्ण रूपसे निवृत्त हो जाती हैं ॥ १५४ ॥

अतः परं ब्रह्मभूतो भूतात्मानोपल  
भ्यते । निःसृतः सर्वभावेभ्यश्चि  
हं यस्य न विद्यते ॥ १५५ ॥

इससे परे ब्रह्मरूप हुआ भूतात्मा  
उपलब्ध नहीं होता, संपूर्ण भावोंसे  
निकट जाता है उसका चिह्नभी प्रतीत  
नहीं होता ॥ १५५ ॥

गतिर्ब्रह्मविदां ब्रह्मतत्त्वाक्षरमलक्ष  
णम् । ज्ञानं ब्रह्मविदाश्चात्र नाज्ञ  
स्तज्ज्ञातुमर्हति ॥ १५६ ॥

ब्रह्मके वेत्ताओंकी गति ब्रह्म है वह  
ब्रह्म अक्षर और अलक्षण है और इसमें  
ब्रह्मवेत्ताओंको ज्ञान होता है मूर्ख उसके  
जाननेको योग्य नहीं है इति ॥ १५६ ॥

प्रश्नाः पुरुषमाश्रित्य त्रयोविंशति

रुत्तमाः । कतिधा पुरुषीयेऽस्मि  
न्निर्णीतास्तत्त्वदर्शिना ॥ १५७ ॥

उसमें यह श्लोक है कि पुरुषके आश्रयसे  
तेईस उत्तम प्रश्न इस कतिधा पुरुषीयमें  
तत्त्वके दर्शिने निर्णीत किये हैं ॥ १५७ ॥  
इति कतिधा पुरुषीयं शारीरस्थानम् ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अतुल्यगोत्रीयम् ।

इसके अनंतर अतुल्य गोत्रीय शारी-  
रका व्याख्यान करते हैं ॥

अतुल्यगोत्रस्य रजःक्षयान्तेरहो  
विसृष्टं मिथुनीकृतस्य । किं स्या  
च्चतुष्पात्प्रभवश्च षड्भ्यो यत्स्त्रीपु  
गर्भत्वमुपैति पुंसः ॥ १ ॥

अतुल्य गोत्रके रजोधर्मके वंशके  
अंतमें मैथुन करनेपर एकांतमें त्यागा  
हुआ रजवीर्य कौनरूप होता है चार  
पाद क्या हैं और छः धातुसे प्रभवक्या  
होता है जो पुरुषके द्वारा स्त्रियोंमें गर्भ  
रूप को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

शुक्रं तदस्य प्रवदन्ति धीरायुद्धीयते  
गर्भसमुद्भवा यवायुग्निभूम्यङ्गुणपा  
दवत्तं षड्भ्योरसेभ्यः प्रभवश्च तस्य २

भो धीरो वह इसका शुक्र होता है  
जो गर्भकी उत्पत्ति के लिये त्यागा जाता  
है वह वायु अग्नि भूमि जल इनके गुणों  
के पाद सहित है और छः रसोंसे उसकी  
उत्पत्ति होती है ॥ २ ॥

सम्पूर्णदेहःसमयेसुखञ्चगर्भःकथं  
केनचजायतेस्त्री । गर्भचिराद्वि  
न्दतिसप्रजापिभूत्वाथवानश्याति  
केनगर्भः ॥ ३ ॥

समयपर संपूर्ण देह और सुख और  
गर्भ और स्त्री किस प्रकार और किससे  
होते हैं और प्रजा सहितभी स्त्री चिर-  
कालसे गर्भको प्राप्त होतीहै और होकर  
गर्भ किससे नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

शुक्रासृगात्माशयकालसम्पद्य  
स्योपचाराश्वहितैस्तथार्थैः । गर्भ-  
श्चकालेचसुखीसुखञ्चसञ्जायते  
सम्परिपूर्णदेहः ॥ ४ ॥

शुक्र रुधिर आत्मा आशय काल  
इनकी संपदा और तिसी प्रकार हित-  
कारी अर्थोंसे उपचारसे समयपर गर्भ  
सुखसे होता है और सुखसे भली प्रकार  
परिपूर्ण देह होता है ॥ ४ ॥

योनिप्रदोषान्मनसोऽभितापाच्छु-  
क्रासृगाहारविहारदोषात् । अ-  
कालयोगाद्वलसंक्षयाच्चगर्भचिरा-  
द्विन्दतिसप्रजापि ॥ ५ ॥

योनिके दोषसे मनके अभितापसे  
और शुक्र रुधिर आहार विहार इनके  
दोषसे अकालके योगसे बलके क्षयसे  
प्रजासहितभी स्त्री चिर समयमें गर्भको  
धारती है ॥ ५ ॥

असृङ्गनिरुद्धंपवनेननाग्यागर्भव्य  
वस्यन्त्यबुधाःकदाचित् । गर्भस्य  
रूपंहिकरोतितस्यास्तदासृगस्त्रावि-  
विवर्द्धमानम् ॥ ६ ॥

पवनसे रुका हुआ नारीका रुधिर  
जो है उसको भी मूर्ख मनुष्य कदाचित्  
गर्भका निश्चय करते हैं और नहीं निक-  
सता हुआ बढनेसे वह उस स्त्रीके गर्भ-  
वतीके रूपको करता है ॥ ६ ॥

तदग्निभूर्यश्रमशोकरोगैरुष्णान्न  
पानैरथवाप्रवृत्तम् । दृष्ट्वासृगेकेन  
चगर्भमज्ञाःकेचिन्नराभूतहतंव-  
दन्ति ॥ ७ ॥

और अग्नि सूर्य श्रम शोक रोगोंसे  
और उष्ण अन्नपानोंसे प्रवृत्त हुआ उसको  
देखकर कोई गर्भकी संज्ञाको नहीं कहते  
और कोई भूतोंसे नष्ट हुआ कहतेहैं॥७॥

ओजोऽशनानारजनीचराणामाहा-  
रहेतोर्नशरीरमिष्टम् । गर्भहरेयु-  
र्यदितेनमातुर्लब्धावकाशनहरेयु-  
रोजः ॥ ८ ॥

ओजके भक्षक जो रजनी चरहैं उनके  
आहारके हेतु शरीर इष्ट नहीं होता  
और यदि गर्भको वे हरतेहैं तो अवकाश  
पाकर माताके ओजको भी हरतेहैं॥८॥

कन्यांसुतंवासहितौपृथग्वासुतौ  
सुतेवातनयान्बहून्वा । कस्मा

त्प्रसूते सुचिरेण गर्भमेकोऽभिवृद्धि  
अयमेऽभ्युपैति ॥ ९ ॥

कन्याको वा सुतको दोनोंको वा पृथक्  
को दो पुत्रोंको वा दो कन्याओंको वा  
बहुत पुत्रोंको किससे पैदा करती है और  
चिरकालसे गर्भको पैदा किससे करती है  
और दो बालकोंमें एक वृद्धिको क्यों  
प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

रक्तेन कन्यामाधिकेन पुत्रं शुक्रेण ते  
न द्विविधीकृतेन । बीजेन कन्या  
असुतश्च सूते यथास्व बीजान्यत  
राधिकेन ॥ १० ॥

अधिक रक्तसे कन्याको और अधिक  
शुक्रसे पुत्रको और दो प्रकारसे गये हुये  
बीजसे कन्या और पुत्र दोनोंको पैदा  
करती है यदि यथायोग्य दोनोंमेंसे एक  
बीज अधिक हो ॥ १० ॥

शुक्राधिकं द्वैधमुपैति बीजं यस्या  
सुतौ सा सहितौ प्रसूते । रक्ताधिकं  
वायुदिभेदमेति द्विधा सुते सा सहिते  
प्रसूते ॥ ११ ॥

जिसका बीज शुक्राधिक होकर दो प्रका-  
रको प्राप्त होता है वह स्त्री एक संग दो  
पुत्रोंको पैदा करती है और यदि रक्त  
अधिक होकर भेदको प्राप्त होय तो  
वह एक संग दो कन्याओंको पैदा  
करती है ॥ ११ ॥

भिनत्तियावद्बहुधा प्रपन्नः शुक्रार्त

वं वायुरतिप्रवृद्धः । तावन्त्यपत्या  
नियथाविभागं कर्मात्मकान्यस्व  
वशात् प्रसूते ॥ १२ ॥

बहुत प्रकारको प्राप्त हुआ अत्यंत  
प्रवृद्ध वायु जितने प्रकारसे शुक्रार्त  
वका भेद करता है उतनेहीं यथाविभा-  
गसे अपत्यांको कर्म रूपसे परवश  
होकर पैदा करता है ॥ १२ ॥

आहारमाभोतियदान गर्भः शोषं स  
माभोति परिसृतिं वा । तं स्त्री प्रसू  
ते सुचिरेण गर्भं पुष्टो यदा वर्षगणैर  
पि स्यात् ॥ १३ ॥

जब गर्भ आहार ( पुष्टि ) को प्राप्त  
नहीं होता तब शोषको वा परिसृत्तिको  
प्राप्त होता है उस गर्भको स्त्री सुचिरका-  
लमें पैदा करती है और जब गर्भ पुष्ट  
होता है तब वर्षके गणोंमें भी होता है ॥ १३ ॥

कर्मात्मकत्वादिषमांशभेदाच्छु-  
क्रासृजं बुद्धिमुपैति कुक्षौ । एको  
धिको न्यूनतरो द्वितीय एवं यमेऽप्य  
भ्यधिको विशेषः ॥ १४ ॥

कर्मरूप होनेसे और विषम अंशके  
भेदसे शुक्र और रुधिर कुक्षिमें वृद्धिको  
प्राप्त होते हैं जिनमें एक अधिक और  
दूसरा अतिन्यून बढ़ता है ऐसे ही यम  
( दो ) में अधिक विशेष होता है ॥ १४ ॥

कस्माद्विरेताः पवनेन्द्रियो वा संस्का-  
रवाहीनरनारिषण्डः । वक्री तथे

प्याभिरतिः कथं वा स जायते वाति  
कपण्डको वा ॥ १५ ॥

द्विरेताः वा पवनेन्द्रिय वा संस्कार  
वाही नरनारी पंड वक्र और तैसेही  
ईर्ष्या भिरति किससे होते हैं और वा-  
तिक पंडक कैसे होते है ॥ १५ ॥

बीजात्समांशादुपतप्तबीजात्स्त्रीपुं  
सलिङ्गीभवतिद्विरेताः । शुक्रा  
शयंगर्भगतस्य हत्वा करोति वायुः  
पवनेन्द्रियत्वम् ॥ १६ ॥

सम अंशके बीजसे उपतप्त बीजसे  
स्त्री और पुरुषके लिंगवान् द्विरेता होता  
है और वायु गर्भमें गतके शुक्राशयको  
हतकर पवनेन्द्रियको करती है ॥ १६ ॥

शुक्राशयद्वारविघट्टनेन संस्कार  
वाहं हिकरोति वायुः । मन्दाल्प  
बीजावबलावहर्षौ क्लीबौ च हेतुर्वि  
कृतिद्वयस्य ॥ १७ ॥

और शुक्राशयके द्वारके विघट्टनसे  
वायु संस्कार वाहीको करती है और मंद  
अल्पबीज निर्वल अहर्ष और क्लीब  
( नपुंसक ) माता पिता विकृतिद्वय  
( नरनारीपंड ) के हेतु होते हैं ॥ १७ ॥

मातुर्व्यवायप्रतिघेन वक्त्री स्याद्बी  
जदौर्बल्यतया पितुश्च । ईर्ष्याभि  
भूतावपि मन्दहर्षा विग्यारतेरेव व  
दन्ति हेतुम् ॥ १८ ॥

माताके व्यवायके प्रतिघ ( रगड ) से  
और पिताके वीर्यकी दुर्बलतासे वक्त्री  
होता है ईर्ष्यासे अभिभूत और मंद हर्ष  
माता पिताको ईर्ष्या रतिका हेतु कह-  
ते हैं ॥ १८ ॥

वायुभिदोषाद्बृषणौ तु यस्य नाशं  
गतौ वातिकपण्डकः सः । इत्येव  
मष्टाविकृतिप्रकाराः कर्मात्मका  
नामुपलक्षणीयाः ॥ १९ ॥

वायु और अग्निके दोषसे जिसके  
बृषण नाशको प्राप्त होगये हों वह वातिक  
पंडक कहाता है, इस प्रकार ये आठ  
विकृतियोंके प्रकार कर्मात्मकोंके देखने  
योग्य हैं ॥ १९ ॥

गर्भस्य सद्योऽनुगतस्य कुक्षौ स्त्रीपुं  
पुंसामुदरस्थितानाम् । किलक्षणं  
कारणमिष्यते किं सरूपतां येन च  
यात्यपत्यम् ॥ २० ॥

कुक्षिमें सद्य प्राप्त हुये गर्भका और  
उदरमें स्थित स्त्री पुरुष, नपुंसकोंका  
क्या लक्षण है और क्या कारण इष्ट है  
जिससे अपत्य सरूपताको प्राप्त होता है २०

निष्ठीविका गौरवमङ्गसादस्तन्द्रा  
प्रहर्षौ हृदयव्यथा च । तृप्तिश्च बी  
जग्रहणश्च योन्या गर्भस्य सद्योऽनु  
गतस्य लिंगम् ॥ २१ ॥

निरंतर धीवन गौरव अंगसाद तंद्रा  
प्रहर्ष हृदयमें व्यथा तृप्ति और योनिमें

बीजका ग्रहण ये सद्यः अनुगत गर्भके  
लिंग होतेहैं ॥ २१ ॥

सव्यांगचेष्टापुरुषार्थिनीस्त्रीस्त्रीस्व  
मपानाशनशीलचेष्टा । सव्यांग  
गर्भानचवृत्तगर्भासव्यप्रदुग्धास्त्रि  
यमेवमूते ॥ २२ ॥

वाम अंगमें चेष्टा और स्त्रीको पुरु-  
षकी अभिलाषा स्त्रीका स्वप्न पान अशन  
शील चेष्टा होनी सव्य अंगमें गर्भ हो  
और गोल गर्भ न हो और सव्यस्तनमें  
दुग्धका होना ये लक्षण होय तो स्त्रीकोही  
पैदा करतीहै ॥ २२ ॥

पुत्रन्त्वतोलिङ्गविपर्ययेणव्यमि  
श्रलिङ्गप्रकृतिवृत्तीयाम् । गर्भा  
पपत्तौतुमनःस्त्रियायंजन्तुं व्रजे  
त्तत्सदृशंप्रसूते ॥ २३ ॥

इससे विपरीत लिंगसे पुत्रको पैदा  
करती है और मिले हुये लिंग होय  
तो तीसरी प्रकृति ( नपुंसक ) होती है  
गर्भ होनेके समयमें स्त्रीका मन जिस  
जंतुमें जाय उसके समान संतानको पैदा  
करती है ॥ २३ ॥

गर्भस्यचत्वारिचतुर्विधानिभूतानि  
मातापितृसम्भवानि । आहार  
जन्यात्मकृतीनिचवर्षवस्यसर्वा  
णिभवन्तिदेहे ॥ २४ ॥

गर्भके चार प्रकारके जो चारों भूतोंहैं  
वे माता पितासे उत्पन्नहैं आहारसे जो

उत्पन्नहैं वे सब सबके देहमें आत्मकृत  
होतेहैं ॥ २४ ॥

तेषांविशेषाद्बलवन्तियानिभवन्ति  
मातापितृकर्मजानि । तानिव्यव  
स्येतसदृशत्वलिङ्गसत्त्वंयथानूक  
मपिव्यवस्येत् ॥ २५ ॥

उनके मध्यमें जो विशेषकर बलवान्  
होतेहैं उनको माता पिताके कर्मसे उत्प-  
न्नका निश्चय करे और तुल्यताकाहै  
लिंग जिसमें ऐसे सत्व ( मन ) कोभी  
निश्चय माता पिताके समानही करे २५

कस्मात्प्रजांस्त्रीविकृतांप्रसूतेहीना  
धिकाङ्गीविकलेन्द्रियाश्च । देहा  
त्कथं देहमुपैतिचान्यमात्मासदा  
कैरनुबध्यतेच ॥ २६ ॥

स्त्री किससे विकृत अंगकी वा हीन  
अधिक अंगकी और विकल ( नष्ट )  
इंद्रियकी प्रजाको किस हेतुसे पैदा कर-  
तीहै और एक देहसे अन्य देहको यह  
आत्मा कैसे प्राप्त होताहै और किन  
सुख दुःखोंसे संबंधको प्राप्त होताहै २६

बीजात्मकर्माशयकालदोषैर्मातु  
स्तदाहारविहारदोषैः । कुर्वन्तिदो  
षाविविधानिदुष्टाःसंस्थानवर्णेन्द्रि  
यवैकृतानि ॥ २७ ॥

बीज आत्मा कर्म आशय काल  
इनके दोषोंसे और माताके आहार  
विहाररूप दोषोंसे दूषित हुये विविध



दोष संस्थान वर्ण इन्द्रिय इनको विकृत-  
कर देतेहैं ॥ २७ ॥

वर्षासुकाष्ठाश्मघनाम्बुवेगास्तरोः  
सरित्स्रोतसिसंस्थितस्य । यथैवकु  
र्ग्युर्विकृतिं तथैव गर्भस्य कुक्षौ नित्य  
तस्य दोषाः ॥ २८ ॥

जैसे वर्षाके समयमें काष्ठ अश्म धन  
जल इनके वेग स्रोतमें स्थित वृक्षकी  
विकृतिको करतेहैं तैसेही गर्भ जो कुक्षिमें  
नित्यतहै उसके विकारको दोष कर-  
तेहैं ॥ २८ ॥

भूतैश्चतुर्भिः सहितः सुसूक्ष्मैर्मनोज  
वो देहमुपैति देहात् । कर्मात्मक  
त्वान्न तु तस्य दृश्यं दिव्यं विना दर्शन  
मस्ति रूपम् ॥ २९ ॥

सूक्ष्म चार भूतोंसे सहित आत्मा  
मनके समान वेगसे एक देहसे अन्य  
देहको प्राप्त होताहै; कर्मात्मक होनेसे  
उसका दिव्यके दर्शन विना दृश्यरूप  
नहीं है ॥ २९ ॥

सर्वगः सर्वशरीरभृच्चसर्विश्वक  
र्मासच विश्वरूपः । सचेतनाधातु  
रतीन्द्रियश्च सनित्ययुक् सानुशयः  
स एव ॥ ३० ॥

वह सर्वगामी सर्व शरीर भर्ताहै  
वही विश्वकर्मा और विश्वरूपहै वह  
चेतन अधातु अतीन्द्रिय है और वह  
नित्य है और सानुशय ( स्मरणयुक्त )  
है ॥ ३० ॥

रसात्ममातापितृसम्भवानिभूता  
निविद्यादशपट्चदेहे । चत्वारि  
तत्रात्मनिसंश्रितानि स्थितस्तथा  
त्माचचतुर्पुतेषु ॥ ३१ ॥

देहमें दश और छः भूत १६ रस  
आत्मा माता पिता इनसे उत्पन्न होते हैं  
उनमें चार आत्मामें स्थितहैं और तिसी  
प्रकार आत्मा उन चारोंमें स्थित है ३१ ॥

भूतानिमातापितृसम्भवानिरजश्च  
शुक्रश्च वदन्ति गर्भम् । आप्याग्यते  
शुक्रमसृक् च भूतैर्यैस्तानि भूतानि  
रसोद्भवानि ॥ ३२ ॥

और गर्भमें माता पिताके उत्पन्न भूत  
रज और शुक्र कहे हैं शुक्र और रुधिर  
जिन भूतोंसे पुष्टिको प्राप्त होताहै वे भूत  
रससे उत्पन्न हैं ॥ ३२ ॥

भूतानि चत्वारितुकर्मजानियाना  
त्मलीनानि विशन्ति गर्भम् । सद्बी  
जधर्मात्परापराणि देहान्तरा  
ण्यात्मनियानियानि ॥ ३३ ॥

वे चारों भूत कर्मज हैं जो आत्मामें  
लीन होकर गर्भमें प्रविष्ट होते हैं; वह  
बीज धर्मी जिन २ अपर अपर देहांत-  
रोंको आत्मामें पैदा करते हैं ॥ ३३ ॥

रूपाद्विरूपप्रभवः प्रसिद्धः कर्मात्म  
कानां मनसो मनस्तः । भवन्तिये  
त्वाकृतिबुद्धिभेदारजस्तमस्तत्र च  
कर्महेतुः ॥ ३४ ॥

उनमें रूपसे विरूपका प्रभव, कर्मा-  
त्मकोंका मनसे मनका प्रभव प्रसिद्ध है  
और जो आकृति बुद्धिके भेद होते  
हैं उसमें हेतु रजोगुण तमोगुण और  
कर्म हैं ॥ ३४ ॥

अतीन्द्रियैस्तैरतिसूक्ष्मरूपैरात्मा  
कदाचिन्नवियुक्तरूपः । न कर्म  
णानैव मनोमतिभ्यां न चाप्यहङ्का  
रविकारदोषैः ॥ ३५ ॥

और अतीन्द्रिय जो अति सूक्ष्म रूप  
हैं उनसे वियुक्त रूप आत्मा कदाचित्  
नहीं होता न कर्मसे न मन और मतिसे  
और न अहंकार विकारके दोषोंसे वियु-  
क्त होता है ॥ ३५ ॥

रजस्तमोभ्यान्तुमनोऽनुबद्धं ज्ञानं  
विना तत्र हि सर्वदोषाः । गतिप्रवृ  
त्त्योस्तु निमित्तमुक्तं मनःसदोषं बल  
वच्च कर्म ॥ ३६ ॥

रजोगुण तमोगुणसे मन अनुबद्ध  
(-बँधा ) होता है ज्ञानके विना उसमें  
सब दोष होते हैं गति और प्रवृत्तिमें  
सदोषमन और बलवान् कर्म निमित्त  
कहा है ॥ ३६ ॥

रोगाः कुतः संशमनं किमेषां हर्षस्य  
शोकस्य च किं निमित्तम् । शरीर  
सत्त्वप्रभवा विकाराः कथं न शान्ताः  
पुनरापतेयुः ॥ ३७ ॥

रोग क्यों होते हैं और उनका संश-  
मन क्या है हर्ष और शोकका क्या नि-  
मित्त है शरीर सत्त्वसे पैदा हुये विकार  
शान्त हुये फिर क्यों नहीं होते हैं ॥ ३७ ॥

प्रज्ञापराधो विपमास्तदर्थहेतुस्तृ  
तीयः परिणामकालः । सर्वमया  
नां त्रिविधा च शान्तिर्ज्ञानार्थका  
लाः समययोगयुक्ताः ॥ ३८ ॥

प्रज्ञापराध और तैसेही विपम अर्थ  
और तीसरा परिणाम काल उसमें हेतु  
है सर्व आमयोंकी शान्ति तीन प्रकारकी  
है: समययोगसे युक्त ज्ञान अर्थकाल ३८ ॥

धर्म्याः क्रियाहर्षनिमित्तमुक्तास्त  
तोऽन्यथा शोकदशनयन्ति । श  
रीरसत्त्वप्रभवास्तु दोषास्तयोरवृ  
त्त्यान भवन्ति भूयः ॥ ३९ ॥

धर्मकी क्रिया जो हर्षके निमित्तसे  
युक्त हो उससे अन्यथा शोकके वशकी  
प्राप्त करते हैं शरीर सत्त्वसे उत्पन्न जो  
दोष हैं वे उनकी अप्रवृत्तिसे फिर नहीं  
होते हैं ॥ ३९ ॥

रूपस्य सत्त्वस्य च सन्ततिर्या नोक्त  
स्तदादिर्न हि सोऽस्तिकश्चित् । त  
योरवृत्तिः क्रियते पराभ्यां धृतिस्मृ  
तिभ्यां परयाधिया च ॥ ४० ॥

रूप और सत्त्वकी जो संतति है उ-  
सकी आदि नहीं कही और न वह  
आदि रूप कोई है उनकी अप्रवृत्ति परम

जो धृति और स्मृति हैं उनसे और परम बुद्धिसे की जाती है ॥ ४० ॥

सत्याश्रयेवादिविधेयथोक्तेपूर्वग  
देभ्यःप्रतिकर्म नित्यम् । जिते  
न्द्रियनानुपतन्तिरोगास्तत्कालयु  
क्तंयदिनास्तिदैवम् ॥ ४१ ॥

और यथोक्त दो प्रकारके सत्याश्र-  
यमें रोगोंसे पहिले प्रतिकर्म नित्य है  
यदि तिस कालका योगी दैव न होय  
तो जितेन्द्रियको रोग नष्ट नहीं कर  
सकते ॥ ४१ ॥

दैवंपुरायत्कृतमुच्यतेतुतत्पौरुषं  
त्विहकर्मदृष्टम् । प्रवृत्तिहेतुर्वि  
षमःसदृष्टोनिवृत्तिहेतुस्तुसमःस  
एव ॥ ४२ ॥

जो पहिला किया कर्म है वह दैव  
और जो यहां देखा हुआ है वह मानुष  
( पौरुष ) कर्म कहता है, वही विषम  
प्रवृत्तिका और वही सम, निवृत्तिका  
हेतु देखा है ॥ ४२ ॥

हैमन्तिकंदोषचयंवसन्तेप्रवाह्य  
न्यैष्मिकमभकाले । घनात्ययेवा  
र्षिकमाशुसम्यक्प्राप्नोतिरोगान्  
तुजान्नजातु ॥ ४३ ॥

हेमन्त ऋतुका जो दोषोंका संचय है  
वह वसन्तमें और ग्रीष्म ऋतुका मेघ  
कालमें, वर्षाऋतुका घनोंके नाश होने-  
पर प्रवाह ( नाश ) को प्राप्त करता

हुआ मनुष्य ऋतुके रोगोंको कदाचित्  
भी प्राप्त नहीं होता ॥ ४३ ॥

नरोहिताहारविहारसेवीसमीक्ष्य  
कारीविषयेष्वसक्तः । दातासमः  
सत्यपरःक्षमावानातोपसेवीचभव  
त्यरोगः ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य हितकारी आहार विहार-  
का सेवीहै देखकर कर्मका कर्ता और  
विषयोंमें असक्त है, दाता सम सत्यमें  
तत्पर क्षमावान् आत्माका सेवक है वह  
नर रोगरहित होताहै ॥ ४४ ॥

मतिर्वचःकर्मसुखानुबन्धिसत्त्वं  
विधेयंविशदाचबुद्धिः । ज्ञानंत  
पस्तत्परताचयोगेयस्यास्तितनानु  
पतन्तिरोगाः ॥ ४५ ॥

मति वचन कर्म सुखसंबंधि सत्त्व  
और निर्मल बुद्धि ज्ञान तप और तपमें  
तत्परता और योग जिसके हैं उसको  
रोग प्राप्त नहीं होते ये सदैव करने  
योग्यहैं इति ॥ ४५ ॥

तत्र श्लोकः ।

इहाशिवेशस्यमहार्थयुक्तंषड्विंश  
कंप्रश्नगणंमहर्षिः । अतुल्यहोत्रे  
भगवान्यथावन्निर्णीतवान्ज्ञानवि  
बर्द्धनार्थम् ॥ ४६ ॥

उसमें यह श्लोक है, इसमें अश्विवेश-  
के जो महान् अर्थसे युक्त छब्बीस

प्रश्नोंका गणहै उसका अतुल्य गोत्रमें  
भगवान् महर्षिने ज्ञानकी वृद्धिके लिये  
यथार्थ निर्णय किया है ॥ ४६ ॥

इति अतुल्यगोत्रीयंशारीरं समाप्तम् २

### तृतीयोऽध्यायः ।

खुड्डीका गर्भावक्रान्तिः ।

पुरुषस्यानुपहृतेतसःस्त्रियाश्वाप्र  
दुष्टयोनिशोणितगर्भाशयायायदा  
भवतिसंसर्गःऋतुकाले । यदाचा  
नयोस्तथैवयुक्तयोःसंसर्गेतुशुक्र  
शोणितसंसर्गमन्तर्गर्भाशयगतंजी  
वोऽवक्रामतिसत्वसम्प्रयोगात्तदा  
गर्भोऽभिनिर्वर्त्तते ॥ १ ॥

इसके अनन्तर खुड्डीका गर्भावक्रान्ति  
शारीरका व्याख्यान करते हैं, जिसका  
रेत नष्ट न हो उस पुरुषके और योनि  
शोणित गर्भाशय थे जिसके दूषित  
न हों उस स्त्रीका ऋतुकालमें जब संसर्ग  
होताहै इन दोनोंके तथा युक्त संसर्गके  
समय जब अंतःगर्भाशयमें गत जीव,  
शुक्र शोणितके संसर्ग और सत्वके संप्र-  
योगसे अवक्रमण ( स्थिति ) करता है  
उस समय गर्भ उत्पन्न होताहै ॥ १ ॥

ससात्म्यरसोपयोगादरोगोऽभिसं  
वर्द्धतेसम्यगुपचारैश्चोपचर्यमा  
णः । ततःप्राप्तकालःसर्वेन्द्रियो  
पपन्नःपरिपूर्णसर्वशरीरोबलवर्ण

सत्वसंहननसम्पदुपेतःसुखेनजाय  
तेसमुदायादेपांभावानाम् ॥ २ ॥

और सात्म्य रसोंके उपयोगसे भली  
प्रकार उपचारोंसे उपचार किया अरोग  
बढ़ता है फिर प्राप्त कालमें सब इंद्रि-  
योंसे उपपन्न, परपूर्ण सर्वशरीर और  
इन पूर्वोक्त भावोंके समुदायसे बल वर्ण  
सत्व संहनन इनकी संपदासे युक्त मुखसे  
उत्पन्न होताहै ॥ २ ॥

मातृजश्चायंगर्भःपितृजश्चात्मज  
श्चसात्म्यजश्चरसजश्चास्तित्सत्व  
संज्ञमौपपादिकमितिहोवाचभग  
वानात्रेयः ॥ ३ ॥

यह गर्भ मातासे उत्पन्न है और पिता  
आत्मा सात्म्य रस इनसेभी उत्पन्न है  
और सत्वभी गर्भका उत्पादक है यह  
भगवान् आत्रेय कहते हैं ॥ ३ ॥

नेतिभरद्वाजः । किंकारणंहिनमा  
तानपितानात्मानंसात्म्यंनपानाश  
नभक्ष्यलेह्योपयोगागर्भजनयन्ति  
नचपरलोकादेत्यगर्भसत्वसंज्ञक  
मवक्रामति । यदिहिमातापितरौ  
गर्भजनयेतांभूयस्यश्चस्त्रियःपुमां  
सश्चभूयांसःपुत्रकामाः, तेसर्वे  
पुत्रजन्माभिसन्धायमैथुनधर्ममा  
पद्यमानाःपुत्रानेवजनयेयुर्दुहितृ  
र्वादुहितृकामाः । नचकाश्चित्

स्त्रियः केचिद्वापुरुषानिरपत्याः  
 स्युः अपत्यकामाश्च परिदेवेरन् ।  
 न चात्मात्मानं जनयति । यदि  
 ह्यात्मात्मानं जनयेज्जातो वा जनये  
 दात्मानं भजातो वा जनयति । तच्च  
 उभयथाप्ययुक्तम् । न हि जातो  
 जनयति सत्त्वान् न चैव वा जातो  
 जनयेत् सत्त्वात् तस्मादुभयथा  
 प्यनुपपत्तिस्तिष्ठतु । अथ तावदे  
 तद्यदि अयमात्मानं शक्नोति जनयितुं  
 स्यान्न तु एनमिष्टास्वेव कथं योनि  
 पुजनयेद्वा शिनमप्रतिहतगतिकाम  
 रूपिणं तेजो बलजवर्णसत्त्वसं  
 हननसमुदितमजरमरुजममरमेवं  
 विधां हि आत्मात्मानमिच्छन्नित्य  
 तो वा भूयः ॥ ४ ॥

नहीं है यह भरद्वाज कहते हैं, क्या  
 कारण है कि न माता न पिता न आत्मा  
 न सात्म्य न पान अशन भक्ष्य लेह्यके  
 उपयोग गर्भको पैदा करते हैं और न पर-  
 लोके से आनकर सत्त्व गर्भमें आवेश करता  
 है, क्योंकि जो माता पिता ही गर्भको पैदा  
 करते तो बहुत सी स्त्री और बहुत से पुरुष  
 जो पुत्र काम हैं वे सब पुत्रके जन्मका  
 अनुसंधान करके मैथुन धर्मको प्राप्त हुये  
 पुनः पुत्रियोंको न पैदा करते और पुत्रि-  
 योंकी कामनावाली कोई स्त्री पुत्रोंकी

पैदा न करती और अपत्यका भी कोई  
 पुरुष निरपत्यताका शोक न करते, और  
 आत्मा आत्माको पैदा नहीं करता, यदि  
 आत्मा आत्माको पैदा करे तो उत्पन्न  
 होकर आत्माको पैदा करे वा अनुत्पन्न  
 होकर करे दोनों प्रकारसे भी अयुक्त है  
 सत्त्वरूप होनेसे जात पैदा नहीं कर  
 सकता और सत्त्वरूप होनेसे अजात भी  
 पैदा नहीं कर सकता तिससे दोनों प्रका  
 रसे अनुपपत्ति है, प्रथम यह बात है  
 कि यदि यह आत्मा आत्माके पैदा करने  
 को शक्त होय तो इष्टही योनियोंमें पैदा  
 क्यों न करेगा, और वशी अप्रतिगति  
 कामरूपी तेज बल जब वर्ण सत्त्व संह-  
 नन इनसे युक्तको अजर अरोगी अमर  
 इस प्रकारके ही आत्माके पैदा करनेकी  
 इच्छा करेगा वा इनसे भी अधिक गुण  
 वान् के पैदा करनेकी इच्छा करेगा ॥ ४ ॥

असात्म्यजश्चायं गर्भाय दिहिसा  
 त्म्यजः स्यात्तर्हि सात्म्यसेविनमैवै  
 कान्तेन व्यक्तं प्रजा स्यात् । असा  
 त्म्यसेविनश्चानिखिलेन अनपत्याः  
 स्युस्तच्चोभयमुभयत्रैव दृश्यते ५ ॥

यह सात्म्यज भी गर्भ नहीं है यदि  
 सात्म्यसे उत्पन्न होता तो सात्म्यके से  
 वकोंके ही निश्चय करके प्रकट प्रजा  
 होती और जो असात्म्य सेवक हैं वे सब  
 अपत्य रहित हो जायेंगे, और वे दोनों  
 दोनोंमें दीखते हैं ॥ ५ ॥

अरसजश्वायंगर्भोयदिहिरसजः  
स्यान्नकेचित्स्त्रीपुरुषेपु अनपत्याः  
स्युर्नहिकश्चिदस्त्येपांयोरसान्नोप  
युङ्क्ते । श्रेष्ठरसोपयोगिनांचेद्ग  
र्भाजायन्तेइत्यतोऽभिप्रेतमित्येवं  
सति । आजोरभ्रमार्गमायूरगोक्षी  
र-दधि-घृत-मधु-तैल-सैन्धवेशुरस  
मुद्गशालिभृतानामेव एकान्तेनप्र  
जास्यात् । श्यामाकवरकोदाल  
ककोरदूपककन्दमूलभक्ष्याश्चनि  
खिलेनानपत्याःस्युःतच्चोभयमुभ  
यत्रैवदृश्यते ॥ ६ ॥

और यह गर्भ अरसजहै क्योंकि यदि  
रससे उत्पन्न होता तो कोईभी स्त्री और  
पुरुषोंमें निरपत्य न होते, इनमें कोई  
ऐसा नहीं है जो रसोंका उपयोग न कर  
ताहो, यदि श्रेष्ठ रसके उपयोगियोंकेही  
गर्भ होतेहैं तो यह मानना होगा कि  
ऐसे होनेसे अजा उरभ्र मृग मोर गौको  
दुग्ध घृत मधु तैल सैन्धव इक्षुरस मूंग  
शालि इनसे जो पुष्टहैं उनकेही निश्चयसे  
प्रजा होती और श्यामाक वरक उदालक  
कोरदूपक कंदमूलके जो भक्षक हैं वे  
सब अनपत्य हो जायंगे वे दोनों दोनोंमें  
दीखते हैं ॥ ६ ॥

नखलुअपिपरलोकादेत्यसत्त्वंग  
र्भमवक्रामति । यदित्येनमवक्रा  
मेन्नास्यकिञ्चिदेवपौर्वदेहिकस्या

दविदितमश्रुतमदृष्टंवा । सचकि  
ञ्चिदपिनस्मरतितस्मादेतद्ब्रूमहे  
अमातृजश्वायंगर्भःपितृजश्वाना  
त्मजश्वासात्म्यजश्वारसजश्चवचा  
स्तिसत्त्वमौपपादिकमितिहोवाच  
भरद्वाजः ॥ ७ ॥

और परलोकसे आकरभी सत्व गर्भमें  
नहीं आता क्योंकि यदि यह इस गर्भमें  
आता तो इसका किंचित्भी पूर्वदेहका  
वा अविदित अश्रुत और अदृष्ट कर्म न  
होयगा और वह किंचित्भी स्मरण नहीं  
करता तिससे हम यह कहतेहैं कि मातासे  
उत्पन्नभी यह गर्भ नहींहै और पितृज  
आत्मज सात्म्यज रसजभी नहीं है इससे  
सत्व उत्पादक नहीं यह भारद्वाज कह-  
तेहैं ॥ ७ ॥

नेतिभगवानात्रेयः । सर्वेभ्यएभ्यो  
भावेभ्यःसमुदितेभ्योगर्भोऽभिनि  
र्वर्त्तते । मातृजश्वायंगर्भोऽनहि  
मातुर्विनागर्भोपपत्तिःस्यान्नचज  
न्मजरायुजानाम् । यानिखलुअ  
स्यगर्भस्यमातृजानियानिचास्य  
मातृतःसम्भवतःसम्भवन्तितानि  
अनुव्याख्यास्यामः । तद्यथा,—  
त्वक्चलोहितञ्चमांसञ्चमेदश्चना  
भिश्चहृदयञ्चक्लोमचयकृच्चष्ठीहा  
चबुक्कोचवस्तिश्चपुरीषाधानञ्चा

माशयश्चपक्वाशयश्चोत्तरगुदश्चा  
धरगुदश्चक्षुद्रान्त्रश्चस्थूलान्त्रश्च  
वपाचवपावहनश्चेतिमातृजानि ८ ।

यह नहीं है यह भगवान् आत्रेय  
कहतेहैं, संपूर्णहीं इन समुदित भावोंसे  
गर्भ होताहै और यह गर्भ मातृजहै  
क्योंकि माताके विना गर्भकी उत्पत्ति  
नहीं हो सकती और जरायुजोंका जन्म  
होता इस गर्भके जो अंग मातृजहैं और  
मातासे उत्पन्न हुये जो इसमें होतेहैं  
उनका व्याख्यान करतेहैं वे ऐसेहैं कि  
त्वचा, लोहित, मांस, मेदा, नाभि,  
हृदय, क्लोम, यकृत, प्लीहा, बुक्र, वस्ति,  
पुरीषाधान, आमाशय, पक्वाशय, उत्तर  
गुद और अधर, गुद, क्षुद्रान्त्र और  
स्थूलान्त्र, वपा और वपाका वहन, ये  
सब मातृजहैं ॥ ८ ॥

पितृजश्चायंगर्भो न हि पितुर्कृते ग  
र्भोत्पत्तिः स्यान्न च जन्म जरायुजा  
नाम् । यानि खलु अस्य गर्भस्य पितृ  
जानि यानि चास्य पितृतः सम्भवतः  
सम्भवन्ति तानि अनुव्याख्या  
स्यामः । तद्यथा,--केशश्मश्रुनखलो  
मदन्तास्थिशिरास्त्रायुधमन्यः  
शुक्रमिति पितृजानि ॥ ९ ॥

और यह गर्भ पितृजहै क्योंकि  
पिताके विना गर्भकी उत्पत्ति, और जरा-  
युजोंका जन्म, न होता और इस गर्भके

जो पितृज धर्महैं और जो पितासे उत्पन्न  
हुये इसमें होतेहैं उनका अब व्याख्यान  
करते हैं वे ऐसे हैं कि केशश्मश्रु नख  
लोमदन्त अस्थि सिरा स्त्रायु धमनी शुक्र  
ये पितृजहैं ॥ ९ ॥

आत्मजश्चायंगर्भो गर्भात्मा ह्यन्त  
रात्मा यस्तमेन जीवइत्याचक्षते  
शाश्वतमरुजमजरममरमक्षयमभे  
द्यमच्छेद्यमलेह्यं विश्वरूपं विश्वक  
र्माणमव्यक्तमनादिमनिधनमक्षर  
मपि । स गर्भाशयमनुप्रविश्य शुक्र  
शोणिताभ्यां संयोगमेत्यगर्भत्वेन ज  
नयत्यात्मनात्मानमात्मसंज्ञाहि गर्भे  
तस्य पुनरात्मनोजन्मादिसत्त्वान्  
नोपपद्यते तस्मादजात एवायं जातं  
गर्भजनयति जातोऽप्यजातश्च गर्भं  
जनयति । स चैव गर्भः कालान्तरे  
ण बालयुवस्थविरभावा न वामोति

और आत्मज भी यह गर्भहै क्योंकि  
गर्भात्मा जो है वह अंतरात्मा है उसको  
ही जीव कहतेहैं वह शाश्वत अरुज अजर  
अमर अक्षय अभेद्य अच्छेद्य अलेह्य  
विश्वरूप विश्वकर्मा अव्यक्त अनादि  
अनिधन अक्षर रूपभी गर्भाशयमें प्रविष्ट  
होकर शुक्र शोणितके संयोगको प्राप्त  
होकर गर्भत्वरूपसे आत्मासे आत्माको  
जन्माताहै और गर्भमें उसकी आत्मसंज्ञा  
फिर उस आत्माके जन्म आदि होनेपर

नहीं होसकती तिससे अजातही जात गर्भको जन्माताहै जातही यह अजात गर्भको जन्माताहै और वही गर्भ कालांतरसे बाल युवा स्थविरताको प्राप्त होताहै ॥ १० ॥

सयस्यां यस्यामवस्थायां वर्तते तस्यांतस्यांजातोभवतियात्वस्य पुरस्कृतातस्यांजनिप्यमाणश्च तस्मात्सएवजातश्चाजातश्चयुगपद्भवतितस्मिंश्चैतदुभयंसम्भवति जातत्वञ्चैवजनिप्यमाणत्वञ्च । सजातोजन्यतेसचैवानागतेष्ववस्थान्तरेपुअजातोजनयत्यात्मनात्मानम् । सतोह्यवस्थानुगमनमात्रमेवहिजन्मचोच्यतेतत्रतत्र वयसितस्यांतस्यामवस्थायाम् । यथासतामेवशुक्रशोणितजीवा नांप्राक्संयोगाद्गर्भत्वंनभवतितच्च संयोगाद्भवति । यथासतस्तस्यैवपुरुषस्यप्रागपत्यात्पितृत्वंनभवतितच्चापत्याद्भवति । तथासतस्तस्यैवगर्भस्यतस्यांतस्यामवस्थायांजातत्वमजातत्वञ्चोच्यते ११

वह जिस २ अवस्थामें वर्तताहै तिस २ अवस्थामें जात होताहै और जो इसकी अवस्था पुरस्कृत ( भाविनी ) है उसमें

जनिप्यमाण ( पैदा होनेवाला ) है, तिससे वही जात और अजात युगपत् ( एकवार ) होताहै और जिसमें जातत्व और जनिप्यमाणत्व ये दोनों होतेहैं वही उत्पन्न हुआहै और उत्पन्न होगा, और वही अनागत अवस्थांतरोंमें अजात हुआ आत्मासे आत्माको जन्माताहै विद्यमान काही जो अवस्थाओंमें गमनमात्र वही तिस २ आयुमें तिस २ अवस्थामें जन्म कहाता है, जैसे विद्यमानहीं शुक्र शोणित जीवोंके संयोगसे प्राक् गर्भत्व नहीं होता और उनके संयोगसे होताहै, विद्यमानही पुरुषको अपत्यसे पहिले पितृत्व नहीं होता और अपत्यके होनेसे होता है तिसी प्रकार विद्यमानही गर्भका तिस २ अवस्थामें जातत्व अजातत्व कहा है ११

नतुखलुगर्भस्यमातुर्नपितुर्नात्मनः सर्वभावेपुयथेष्टकारित्वमस्ति । तेकिञ्चित्स्ववशात्कुर्वन्तिकिञ्चित्कर्मवशात्कचिच्चैपांकरणशक्तेर्भवतिकिञ्चिन्नभवति । यत्रसत्त्वादिकरणसम्पत्तत्रयथावलमेव यथेष्टकारित्वमतोऽन्यथाविपर्ययः । नचकरणदोषादकारणमात्मागर्भजननेसम्भवति ॥ १२ ॥

और निश्चयसे गर्भके यथेष्ट कर्ता सब भावोंमें माता पिता आत्मा नहींहैं, वे किंचित् को अपने वशसे करतेहैं और किंचित् कर्मके वशसे करतेहैं कहीं इनकी



करण शक्तिसे होता है कहीं नहीं होता है तिससे जहां सत्व आदि करणोंकी संपदा है वही यथेष्ट कर्ता अपने २ बलक अनुसार हैं इससे अन्यथा माननेमें विपर्यय है और करणके दोषसे आत्मा गर्भके जननमें अकारण नहीं होता ॥ १२ ॥

दृष्टश्चेष्टायोनिरैश्वर्यमोक्षश्चात्मविद्धिरात्मायत्नम् । न ह्यन्यः सुखदुःखयोः कर्त्तान् चान्यतोगर्भा जायते जायमानो न च अंकुरोत्पत्तिरबीजात् ॥ १३ ॥

और आत्मज्ञानियोंने चेष्टा योनि ऐश्वर्य और मोक्ष ये आत्माके अधीन देखे हैं क्योंकि अन्य सुख दुःखका कर्त्ता नहीं और न अन्यसे गर्भ पैदा होता है न जायमान है क्योंकि विना बीज अंकुरकी उत्पत्ति नहीं होती ॥ १३ ॥

यानितुखलु अस्य गर्भस्यात्मजानि यानि च अस्यात्मतः सम्भवतः सम्भवन्ति तानि अनुव्याख्यास्यामः । तद्यथा, तासु तासु योनिषु उत्पत्तिरायुरात्मज्ञानं मन इन्द्रियाणि प्राणापानौ प्रेरणधारणमाकृतिस्वरवर्णविशेषाः सुखदुःखे इच्छा द्वेषौ चेतना धृति बुद्धि स्मृतिरहंकारः यत्नश्चेत्यात्मजानि ॥ १४ ॥

और जो इस गर्भके आत्मज लिंग हैं और आत्मासे उत्पन्न होते हुये जो होते हैं

उनका अब व्याख्यान करते हैं, वे ऐसे हैं कि तिन २ योनियोंमें उत्पत्ति आयु आत्मज्ञान मन इन्द्रिय प्राण अपान प्रेरण धारण आकृति स्वर वर्ण इनके विशेष और सुख दुःख इच्छा द्वेष चेतना धृति बुद्धि स्मृति अहंकार प्रयत्न ये सब आत्मज हैं ॥ १४ ॥

सात्म्यजश्चायं गर्भः न हि असात्म्यसेवित्वमन्तरेण स्त्री पुरुषयोर्वन्ध्यत्वमस्ति गर्भपुत्रा अनिष्टो भावः । यावत्खलु असात्म्यसेविनां स्त्री पुरुषाणां त्रयोदोषाः प्रकुपिताः शरीरमुपसर्पन्तो न शुक्रशोणितगर्भा शयोपधाता योपपद्यन्ते तावत्समर्था गर्भजननाय भवन्ति । सात्म्यसेविनां पुनः स्त्री पुरुषाणामनुपहतशुक्रशोणितगर्भा शयाना मृतकाले सन्निपातितानां जीवस्यानवक्रमणा द्रर्भान प्रादुर्भवन्ति । न हि केवलं सात्म्यज एवायं गर्भः समुदायोऽत्र कारणमुच्यते ॥ १५ ॥

और यह गर्भ सात्म्यज भी है क्योंकि असात्म्य सेवनके विना स्त्री और पुरुष बन्ध्य नहीं हो सकते और गर्भोंमें अनिष्ट भाव भी नहीं हो सकता और जितने असात्म्यसेवी स्त्री पुरुषोंको दोष-कुपित होकर शरीरमें फैलते हुये शुक्र

शोणित गर्भाशयके उपघात ( नाश ) के लिये नहीं होतेहैं तितनेही गर्भजननमें समर्थ होतेहैं और सात्म्यसेवी जो स्त्री पुरुषहैं अनष्ट शुक्र शोणित गर्भाशय उनके ऋतुकालमें संयोगसे जीवका गमन न होय तो गर्भ प्रकट नहीं होते क्योंकि केवल सात्म्यजही यह गर्भ नहीं है इसमें समुदाय कारण कहाहै १५

यानितुखल्वस्यगर्भस्यसात्म्यजा  
नियानिचअस्यसात्म्यतःसम्भवतः  
सम्भवन्तितानिअनुव्याख्यास्या  
मः । तद्यथा—आरोग्यमनालस्य  
मलोलुपत्वमिन्द्रियप्रसादःस्वरव  
र्णवीजसम्पत्प्रहर्षभूयस्त्वञ्चेतिसा  
त्म्यजानि ॥ १६ ॥

और जो इस गर्भके सात्म्यजहैं जो इसमें सात्म्यसे होतेहैं उनका अव व्याख्यान करतेहैं वे ऐसेहैं आरोग्य अनालस्य अलोलुपता इंद्रियोंकी प्रसन्नता स्वर वर्ण वीज इनकी संपदा प्रहर्षकी अधिकता ये सात्म्यजहैं ॥ १६ ॥

रसजश्चायंगर्भो न हिरसादते मातुः  
प्राणयात्रापि स्यात्किं पुनर्गर्भजन्म  
न चैवास्य सम्यगुपयुज्यमानारसा  
गर्भमभिनिर्वर्तयन्ति । न च केवलं  
सम्यगुपयोगादेव रसानां गर्भाभि  
निर्वृत्तिर्भवति समुदायोऽप्यत्र का  
रणमुच्यते ॥ १७ ॥

और रसजभों यह गर्भ है क्योंकि रसके बिना प्राणयात्राभी नहीं होती गर्भका जन्म तो पुनः कहांसो ही और इसके भली प्रकारसे उपयोग किये रस गर्भको पैदा नहीं करते और रसोंके सम्यक् उपयोगसेही गर्भकी उत्पत्ति नहीं होती इसमेंभी समुदायही कारण कहाहै ॥ १७ ॥

यानितुखल्वस्यगर्भस्यरसजानि  
यानिचास्यरसतःसम्भवतःसम्भ  
वन्तितान्यनुव्याख्यास्यामः ।  
तद्यथा;—शरीरस्याभिनिर्वृत्तिरभि  
वृद्धिः प्राणानुबन्धस्तृप्तिः पुष्टिरु  
त्साहश्चेति रसजानि ॥ १८ ॥

और जो इस गर्भके रसजलिंग हैं और जो रससे संभव हुये इसमें होतेहैं उनका व्याख्यान करतेहैं वे ऐसेहैं कि शरीरकी अभिनिवृद्धि प्राणोंका संबंध तृप्ति पुष्टि उत्साह ये रससे उत्पन्नहैं ॥ १८ ॥

अस्ति खल्वपि सत्वमौषपादिकं  
यज्जीवस्पृक्शरीरेणाभिसम्बध्ना  
ति । यस्मिन्नपगमनपुरस्कृतेशी  
लमस्यव्यावर्तते भक्तिर्विपर्यस्य  
ते सर्वेन्द्रियाण्युपतप्यन्ते बलंही  
यते व्याधय आप्यायन्ते । यस्मा  
द्धीनः प्राणाजहाति यदिन्द्रियाणा

मभिग्राहकश्चमनइत्यभिधीयतेत  
त्रिविधमाख्यायतेशुद्धंराजसंताम  
सञ्चइति ॥ १९ ॥

और इस गर्भका सत्वभी उत्पादक है जो सत्व जीवका स्पर्श करके शरीरके संबंधको प्राप्त होता है जिसके अपगमन होनेपर इसका शील नष्ट हो जाता है भक्ति ( भोजन ) विपर्यय होता है सब इंद्रिय तपायमान होती हैं बलहीन होता है व्याधि पुष्ट होती है जिस सत्वसे हीन यह प्राणोंको त्यागता है और जो वह सत्व इंद्रियोंका अभिग्राहक है जिसको मन कहते हैं और जिसको शुद्ध ( सत्व ) राजस तामस भेदसे तीन प्रकारका बुद्धिमानोंने कहा है ॥ १९ ॥

येनास्यखलुप्रयतोभूयिष्ठतेनद्विती  
यायामाजातौसम्प्रयोगोभवति ।  
यदातुतेनैवशुद्धेनसंयुज्यतेतदाजा  
तेरतिक्रान्तायाश्चस्मरति । स्मा  
र्त्तहिज्ञानमात्मनस्तस्यैवमनसोऽनु  
बन्धदनुवर्त्ततेयस्यानुवृत्तिपुरस्कृ  
त्यपुरुषोजातिइत्युच्यतेइतिसत्व  
मुक्तम् ॥ २० ॥

जिससे भूयिष्ठ ( अति ) प्रयत्न करते हुये इस आत्माको तिस सत्वसेही दूसरे जन्मका योग निश्चयसे होता है और जब तिसी शुद्ध मनसे संयुक्त होता है तब अतिक्रान्त ( वीति ) जन्मकाभी स्मरण

करता है, स्मार्त्त ज्ञानको कहते हैं वह आत्माको तिसी मनके संबंधसे होता है जिसकी अनुवृत्तिके पुरस्कारसे पुरुषको जाति स्मर कहते हैं यह सत्व कहा २०

यानिखल्वस्यगर्भस्यसत्त्वजानि  
यानिचअस्यसत्त्वतःसंभवतःस  
म्भवन्तितानिअनुव्याख्यास्या  
मः । तद्यथा—भक्तिःशीलंशौचं  
द्वेषःस्मृतिर्माहस्यागोमात्सर्यंशौ  
र्यभयंक्रोधस्तन्द्राउत्साहस्तेक्ष्ण्य  
मार्दवंगाम्भीर्यमनवस्थितत्वमि  
त्येवमादयश्चान्येतेसत्त्वजाविका  
रायानुत्तरकालंसत्त्वभेदमधिकृ  
त्यउपदेक्ष्यामइतिसत्त्वजानि ।  
नानाविधानितुखलुसत्त्वानितानि  
सर्वाणिएकपुरुषेभवन्तिनचभवं  
न्तिएककालम्, एकन्तुप्रायोऽनु  
वृत्त्याह । एवमयंनानाविधानामे  
षांगर्भकराणांभावानांसमुदाया  
दभिनिर्वर्त्ततेगर्भः ॥ २१ ॥

और जो इस गर्भके सत्वज धर्म हैं और सत्वसे संभव होते हुये इसमें सत्वसे जो होते हैं उनका अव व्याख्यान करते हैं, ऐसे हैं कि भक्ति शील शौच स्मृति मोह त्याग मात्सर्य शूरता भय क्रोध तन्द्रा उत्साह तीक्ष्णता मृदुता गाम्भीर्य अनवस्थितता इत्यादि

और इसी प्रकारके अन्यभी जो सत्वज विकारहैं जिनका आगे उपदेश सत्व भेदके अधिकारमें करेंगे, ये सत्वजहैं और नाना प्रकारके सत्वज हैं वे संपूर्ण एक पुरुषमें होतेहैं और एक कालमें नहीं होते और एककी अनुवृत्ति करके प्रायः कहतेहैं, इस प्रकार यह गर्भ नाना प्रकारके इन गर्भकारक भावोंके समुदायसे उत्पन्न होताहै ॥ २१ ॥

यथाकूटागारंनानाद्रव्यसमुदया  
यथावारथोनानारथाङ्गसमुदया  
तस्मादेतदवोचाममातृजश्चायं  
र्भःपितृजश्चात्मजश्चसात्म्यजश्च  
रसजश्च । अस्तिसत्वमौषपादि  
कमितिहोवाचभगवानात्रेयः २२

जैसे नाना द्रव्योंके समुदयसे कूटा-  
गार नाना अंगोंके समुदयसे रथ होताहै  
तिसैसे हम यह कहतेहैं कि यह गर्भ  
मातृजहै पितृजहै आत्मजहै सात्म्यजहै  
और रसजहै, सत्वभी उत्पादकहै यह  
भगवान् आत्रेय कहतेहैं ॥ २२ ॥

भरद्वाजउवाच । यद्ययमेषानाना  
विधानांगर्भकराणांभावानांसमुदा  
यादभिनिर्वर्ततेगर्भःकथमयंसन्धी  
यते । यदिचापिसन्धीयतेकस्मा  
त्समुदायप्रभवःसन्गर्भोमनुष्यवि  
ग्रहेणजायतेमनुष्यश्चमनुष्यप्रभव  
उच्यते । तत्रचेदिष्टमेतद्यस्मान्म

नुष्योमनुष्यप्रभवस्तस्मान्मनुष्य  
विग्रहेणजायते । यथागौर्गो  
प्रभवःयथाचाश्वोऽश्वप्रभवइत्ये  
वंयदुक्तमग्रेसमुदायात्मकइतित  
दयुक्तंयदिचमनुष्योमनुष्यप्रभ  
वःकस्माज्जडान्धकुब्जमूकवाम  
नमिन्निनव्यङ्गोन्मत्तकुष्ठकिला  
सिभ्योजाताःपितृसदृशरूपान  
भवन्ति । अथात्रापिबुद्धिरेवं  
स्यात्स्वेनैवायमात्माचक्षुषारूपा  
णिवेत्तिश्रोत्रेणशब्दान्घ्राणेनग  
न्धान्रसनेनरसान्स्पर्शनेनस्पर्शान्  
बुद्ध्याबोद्धव्यमित्येनेनेहेतुनाजडा  
दिभ्योजाताःपितृसदृशाभवन्ति।  
अत्रापिप्रतिज्ञाहानिदोषःस्यादे  
वमुक्तेह्यात्मासत्स्विन्द्रियेषुज्ञः  
स्यादसत्स्वज्ञोयत्रचैतदुभयंसम्भ  
वतिज्ञत्वमज्ञत्वञ्चसविकारप्रकृ  
तिकश्चात्मानिर्विकारोज्ञश्च ।  
यदिचदर्शनादिभिरात्माविषया  
न्वेत्तिनिरिन्द्रियोदर्शनादिविरहा  
दज्ञःस्यादज्ञत्वाच्चकारणमकारण  
त्वाच्चानात्मेतिवाग्वस्तुमात्रमेतद्व  
चनमनर्थकंस्यादितिहोवाचभर  
द्वाजः ॥ २३ ॥

भरद्वाज बोले कि यदि यह गर्भ इन नाना प्रकारके गर्भ कारक भावोंके समुदयसे होता है तो यह कैसे संधानको प्राप्त होता है और संधानको प्राप्त होता भी है तो किससे समुदायका प्रभव होता है वह गर्भ मनुष्य विग्रहसे होता है और मनुष्य मनुष्यसे प्रभव कहाता है, उसमें यदि यह इष्ट है जिससे मनुष्य मनुष्य प्रभव है तिससे मनुष्यके विग्रह (शरीर) से होता है जैसे गौ गौसे प्रभव है जैसे अश्व अश्वसे प्रभव है इस प्रकार होनेसे जो पहिले कहा है कि समुदायरूप है इति, वह अयुक्त है और यदि मनुष्य मनुष्य प्रभव है तो जड अंध कुब्ज मूक वामन मिन्मिण व्यंग उन्मत्त कुष्ठ किलासी इनसे पैदा हुये पिताओंकी सदृश क्यों नहीं होते और इसमें भी ऐसी बुद्धि हो कि यह आत्मा अपने ही चक्षुसरूपोंको जानता है श्रोत्रसे शब्दोंको घ्राणसे गंधोंको रसनासे रसोंको स्पर्शनसे स्पर्शोंकी बुद्धिसे बोद्धव्यको जानता है इस हेतुसे जड आदिकोंसे उत्पन्न पिताकी सदृश होते हैं इसमें भी प्रतिज्ञा हानि दोष हो जायगा, इस प्रकार कहनेमें आत्मा इंद्रियोंके विद्यमान होनेपर ज्ञ हो जायगा और इंद्रियोंके अविद्यमान होनेपर अज्ञ हो जायगा और जिसमें ज्ञत्व और अज्ञत्व ये दोनों होते हैं वह विकार है और आत्मा प्रकृतिसे निर्विकार है और ज्ञ है और यदि आत्मा दर्शन आदिसे विषयोंको जानता है तो निरिन्द्रिय, दर्शन

आदिके विग्रहसे अज्ञ हो जायगा और अज्ञ होनेसे अकारण होगा अकारण होनेसे अनात्मा होगा इति यह वाग्वस्तु मात्र वचन अनर्थक हो जायगा यह भरद्वाजने कहा है ॥ २३ ॥

आत्रेय उवाच । पुरस्तादेतत्प्रति ज्ञातंसत्त्वजीवस्पृक्शरीरेणाभि सम्बध्नातीति । यस्मात्तु समुदाय प्रभवःसंगर्भोमनुष्यविग्रहेण जायतेमनुष्यश्चमनुष्यप्रभवइत्युच्यतेतदवक्ष्यामः ॥ २४ ॥

आत्रेय बोले पहिले ही यह प्रतिज्ञा की है कि सत्त्व जीवका स्पर्श करके शरीरके संग संबंधको प्राप्त होता है और जिससे गर्भ समुदायसे प्रभव होकर मनुष्य विग्रहसे होता है और मनुष्य मनुष्य प्रभव कहा है तिससे हम कहते हैं ॥ २४ ॥

भूतानांचतुर्विधायोनिर्भवतिजराप्यण्डस्वेदोद्भिदः । तासांखलुचतसृणामपियोनीनामेकैकायोनिरपरिसंख्येयभेदाभवतिभूतानामाकृतिविशेषपरिसंख्येयत्वात् । तत्रजरायुजानामण्डजानांप्राणिनामेतेगर्भकराभावायायां योनिमापद्यन्तेतस्यांतस्यांयोनौ

तथातथारूपाभवन्ति । तद्यथा  
कनकरजतताम्रत्रपुसीसाआसि  
च्यमानास्तेपुतेपुमधूच्छिष्टविम्बे  
पुतेयदामनुप्यविम्बमापद्यन्तेतदा  
मनुप्यविग्रहेणजायन्ते । तस्मा  
त्समुदायात्मकःसन्गर्भमनुप्यवि  
ग्रहेण जायतेमनुप्योमनुप्यप्रभवइ  
त्युच्येततद्योनित्वात् ॥ २५ ॥

कि भूतोंकी योनि जरायुज अंडज  
स्वेदज उद्भिज्ज भेदसे चार प्रकारकी है  
उन चारोंभी योनियोंमें एक २ योनिके  
अपरि संख्येय भेद होते हैं क्योंकि  
भूतोंकी आकृतिके भेद अपरि संख्येय हैं  
उनमें जरायुज अंडज प्राणियोंमें ये गर्भ  
कारक भाव जिस २ योनिको प्राप्त होते  
हैं तिस २ योनिमें तथा २ रूपवान् होते हैं  
जैसे कनकरजत ताम्र त्रपु सीसा ये सेचन  
किये हुये तिन २ मधूच्छिष्ट विम्बोंमें  
होते हैं वे जव मनुप्य विंवकी प्राप्त  
होते हैं तव मनुप्य विग्रह होते हैं तिससे  
समुदायात्मक हुआ गर्भ मनुप्य विग्रहसे  
होता है और मनुप्यकीही योनि होनेसे  
मनुप्य मनुप्यप्रभव कहा है ॥ २५ ॥

यच्चोक्तंयदिचमनुप्योमनुप्यप्रभ  
वःकस्मान्नजडादिभ्योजाताःपि  
तृसदृशरूपाभवन्तीतितत्रउच्यते  
यस्ययस्यहिअङ्गावयवस्यबी  
जेबीजभावउपततोभवतितस्यत

स्याङ्गावयवस्यविकृतिरुपजाय  
तेनउपजायतेचअनुतापात्तस्मा  
दुभयोपपात्तिरपिअत्रसर्वस्यचात्म  
जानिइन्द्रियाणितेपांभावाभाव  
हेतुर्देवंतस्मान्नैकान्ततोजडादि  
भ्योजाताःपितृसदृशरूपाभव  
न्ति ॥ २६ ॥

और जो यह कहा है कि, यदि मनुप्य  
मनुप्यप्रभव है तो जड आदि  
पिताओंसे उत्पन्न हुये पिताके सदृश  
क्यों नहीं होते इससे कहते हैं कि जिस  
२ अंगके अवयवका बीजभाव बीजमें  
उपतप्त होता है तिस २ अंगके अवय-  
वकी विकृति हो जाती है और अनुता-  
पसे नहींभी होती है तिससे दोनों प्र-  
कारकी उपपत्ति है, यहां सबकी आत्मज  
इंद्रिय हैं तिनका भाव अभावमें हेतु देव  
हैं तिससे एकांत रूपसे जड आदिसे  
उत्पन्न पिताके सदृश नहीं होते ॥ २६ ॥

नचात्मासत्स्विन्द्रियेषुअज्ञोऽस  
त्सुवाभवत्यज्ञोनह्यसत्वःकदाचिदा  
त्मासत्वविशेषाच्चउपलभ्यतेज्ञान  
विशेषइति ॥ २७ ॥

और आत्मा इंद्रियोंके सत् असत्  
होनेपर अज्ञ नहीं होता क्योंकि आत्मा  
कदाचित् असत्त्व नहीं है और सत्वके  
विशेषसे ज्ञानका विशेष उपलब्ध होता  
है इति ॥ २७ ॥

भवन्तिचात्र ।

नकर्तुरिन्द्रियाभावात्कार्यज्ञानं  
प्रवर्तते । यैः क्रियावर्ततेयातुसा  
विनातैर्नवर्तते ॥ २८ ॥

इसमें ये श्लोक हैं कि कर्ताको इंद्रि-  
योंके अभावसे कार्यज्ञानकी प्रवृत्ति नहीं  
होती जिनसे क्रिया वर्तती है वह क्रिया  
उनके विना नहीं होती है ॥ २८ ॥

जानन्नपिमृदोभावात्कुम्भकृन्नप्र  
वर्तते । श्रूयताञ्चेदमध्यात्ममा  
त्मज्ञानबलमहत् ॥ २९ ॥ -

जानता हुआभी कुम्भकार मृदके अ-  
भावसे प्रवृत्त नहीं होता और यह  
अध्यात्म आत्मज्ञानका महान् बल  
सुनो ॥ २९ ॥

देहेन्द्रियाणिसंक्षिप्यमनःसंगृह्य  
चञ्चलम् । प्रविश्याध्यात्ममात्म  
ज्ञःस्वेज्ञानेपर्यवस्थितः ॥ ३० ॥

देह इंद्रियोंका संक्षेप करके चंचल  
मनका संग्रह करके अध्यात्ममें प्रविष्ट  
होकर आत्मज्ञानी अपने ज्ञानमें पर्य-  
वस्थित है ॥ ३० ॥

सर्वत्र विहितज्ञानःसर्वभावान्प  
रीक्षते । गृहीष्वेदमपरंभरद्वाज  
विनिर्णयम् ॥ ३१ ॥

और सर्वत्र अहत ( विहित ) ज्ञान  
हुआ सब भावोंकी परीक्षा करता है

और इस अपरभी भरद्वाजके विनिर्णय  
को ग्रहण करो ॥ ३१ ॥

निवृत्तेन्द्रियवाक्चेष्टःसुप्तःस्वप्नग  
तोयदा । विषयान्सुखदुःखेचवे  
त्तिनाज्ञोऽप्यतःस्मृतः ॥ ३२ ॥

जब सुप्त स्वप्नमें गत इंद्रिय वाणीकी  
चेष्टासे निवृत्त होताहै तब विषय और  
सुखदुःखोंको नहीं जानता इससे अज्ञ  
कहाता है ॥ ३२ ॥

नात्माज्ञानादतेचैकंज्ञानंकिञ्चि  
त्प्रवर्तते । नह्येकोवर्ततेभावोवर्त  
तेनाप्यहेतुकः ॥ ३३ ॥

आत्मज्ञानके विना किंचित् ज्ञानभी  
प्रवृत्त नहीं होता और एकभी भाव नहीं  
है न अहेतुक कोई भाव वर्तताहै ॥ ३३ ॥

तस्माद्भूतःप्रकृतिश्चात्माद्रष्टाकार  
णमेवच । सर्वमेतद्भरद्वाज ! नि  
र्णीतंजहिसंशयमिति ॥ ३४ ॥

तिससे ज्ञाता प्रकृति द्रष्टा कारण  
आत्मा है हे भरद्वाज ! यह संपूर्ण ऐसे  
निर्णीत है, तुम संदेहको त्याग दो ॥ ३४ ॥

तत्र श्लोकौ ।

हेतुगर्भस्यनिवृत्तौवृद्धौजन्मनिचै  
व यः । पुनर्वसुमतिर्याचभरद्वाज  
मतिश्चया ॥ ३५ ॥

उसमें ये दो श्लोक हैं गर्भकी सिद्धिमें  
जो हेतु है और वृद्धि और जन्ममें जो  
हेतु है और पुनर्वसुकी जो मति है और  
भरद्वाजकी जो मति है ॥ ३५ ॥

प्रतिज्ञाप्रतिषेधश्चविशदश्चात्मनि  
र्णयः । गर्भावक्रान्तिमुद्दिश्यखु  
ड्डीकंसम्प्रकाशितम् ॥ ३६ ॥

प्रतिज्ञा और प्रतिषेध और विशद  
आत्माका विनिर्णय और गर्भकी अवक्रां  
तिके उद्देशको करके खुड्डीका प्रकाश  
भली प्रकार किया ॥ ३६ ॥

इति खुड्डीका गर्भावक्रान्तिःशारीरःसमाप्तः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

महती गर्भावक्रान्तिः ।

इसके अनंतर महती गर्भावक्रान्ति  
शारीरका व्याख्यान करते हैं कि-

यतश्चगर्भःसम्भवतियस्मिंश्चगर्भ  
संज्ञायद्विकारश्चगर्भोयथाचानु  
पूर्व्याभिनिर्वर्ततेकुक्षौयश्चास्यवृ  
द्धिहेतुर्यतश्चास्यावृद्धिर्भवतियत  
श्चजायमानःकुक्षौविनाशंप्राप्नोति  
यतश्चकात्स्न्येनाविनश्यन्विकृति  
मापद्यतेतदनुव्याख्यास्यामः १ ॥

जिससे गर्भ होता है और जिसमें  
गर्भ संज्ञाहै और गर्भ जिसका विकार  
है और जैसे आनुपूर्वीसे कुक्षिमें होताहै  
और जो इसकी वृद्धिका हेतु है और  
जिससे इसकी अवृद्धि होती है और  
जायमान जिससे कुक्षिमें विनाशको  
प्राप्त होताहै और जिससे संपूर्ण रूपसे

अविनाशको प्राप्त हुआ विकृतिकी प्राप्त  
होताहै इन सबका व्याख्यान करते हैं १

मातृतःपितृतआत्मतःसात्म्यतो  
रसतःसत्त्वतइत्येतेभ्योभावेभ्यः  
समुदितेभ्योगर्भःसम्भवति । तस्य  
येयेऽवयवायतोयतःसम्भवतःस  
म्भवन्तितान्विभज्यमातृजादी  
नवयवान्पृथक्पृथक्गुक्तमग्रे । शु  
क्रशोणितजीवसंयोगेतुखलुकुक्षि  
गतेगर्भसंज्ञाभवति ॥ २ ॥

कि मातासे पितासे आत्मासे सा-  
त्म्यसे रससे सत्त्वसे इन समुदित भावोंसे  
गर्भ होताहै जिसके जो२ अवयव जिस२  
के संभवसे होते हैं उन मातृज आदि  
अवयवोंका विभाग करके पृथक्पृथक्  
कह आए और शुक्र शोणित जीव इनके  
संयोगके निश्चयसे कुक्षिगत होनेपर गर्भ  
संज्ञा होती है ॥ २ ॥

गर्भस्तुखलुअन्तरीक्षवाय्वग्नि  
तोयभूमिविकारश्चेतनाधिष्ठानभू  
तएवमनयैवयुक्त्यापञ्चमहाभूत  
विकारसमुदायात्मकोगर्भश्चेतना  
धात्वधिष्ठानभूतःसहस्यपष्टोधा  
तुरुक्तः ॥ ३ ॥

और गर्भ तो निश्चयसे अंतरिक्ष वायु  
अग्नि जल भूमि इनका विकार चेतनका  
अधिष्ठानभूत है इस प्रकार इसी युक्ति-



से पांच महाभूत विकारोंका समुदाय रूप गर्भ चेतनका अधिष्ठान भूत है क्योंकि वह चेतन इसकी छठी धातु कहा है ॥ ३ ॥

यथात्वानुपूर्व्याभिनिर्वर्ततेकुक्षौ  
तदनुव्याख्यास्यामः । गतेपुरा  
णेरजसिनवेचअवस्थितेपुनःशु  
द्धस्नातांस्त्रियमव्यापन्नयोनिशो  
णितगर्भाशयामृतुमतीमाचक्ष्महे  
तयासहतथाभूतयायदापुमानव्या  
पन्नबीजोमिश्रीभावंगच्छतितस्य  
हर्षोदीरितःपरःशरीरधात्वात्माशु  
क्रभूतोऽङ्गादङ्गात्सम्भवति । स  
तथाहर्षभूतेनात्मनोदीरितश्चअ  
धिष्ठितबीजधातुःपुरुषशरीरादभि  
निष्पद्योदितेनहितेनपथागर्भाश  
यमनुप्रविश्यार्त्तवेनाभिसंसर्गमेति ।  
तत्रपूर्वचेतनाधातुःसत्त्वकरणोगु  
णग्रहणायपुनःप्रवर्तते । सहिहेतुः  
कारणनिमित्तमक्षरं कर्त्तामन्तावे  
दिताबोद्धाद्रष्टाधाताब्रह्माविश्वक  
र्माविश्वरूपःपुरुषःप्रभवोऽव्ययो  
नित्यःगुणीग्रहणंप्राधान्यमव्यक्तं  
जीवोज्ञःप्रकुलश्चेतनावान्विभुर्भू  
तात्माचेन्द्रियात्माचान्तरात्मा  
चेति ॥ ४ ॥

और कुक्षिमें जैसे आनुपूर्वी ( क्रम ) से होता है उसका व्याख्यान करते हैं कि पुराने रजके नष्ट होनेपर नवीन रजकी स्थितिके समय शुद्धस्नान और नीरोग हैं योनि और शोणित गर्भाशय जिसके ऐसी स्त्रीको हम ऋतुमती कहते हैं, तिस प्रकारकी तिसके संग अनष्ट बीज पुरुष जब संयोगको प्राप्त होता है उसका हर्षसे प्रेरित परमशरीर धातुरूप जो शुक्रभूत है वह अंग २ से पैदा होता है तिस प्रकार प्रसन्न हुये आत्माका प्रेरण हुआ वह बीजधातु पुरुषके शरीर-मेंसे पड़कर तिस मार्गसे गर्भाशयमें प्रविष्ट होकर ऋतुके रजके संग संसर्गको प्राप्त होता है उसमें पहिले चेतनारूप धातु जो सत्त्वकरण है वह गुणग्रहणके लिये प्रवृत्त होता है और वह हेतु कारण निमित्त अक्षर कर्त्ता मन्ता वेदिता बोद्धा द्रष्टा धाता ब्रह्मा विश्वकर्मा विश्वरूप पुरुष प्रभव अव्यय नित्य गुणी ग्रहण प्राधान्य अव्यक्त जीव अज्ञ प्रकुल चेत-नावान् विभु भूतात्मा इंद्रियात्मा, अंत-रात्मा, रूप है ॥ ४ ॥

सगुणोपादानकालेऽन्तरिक्षं पूर्वतर  
मन्येभ्योगुणेभ्यउपादत्तेयथाप्रल  
यात्ययेसिसृक्षुर्भूतान्यक्षरभूतःस  
त्त्वोपादानं पूर्वतरमाकाशंसृजति ।  
ततःक्रमेणव्यक्ततरगुणान्धातून्  
वाय्वादींश्चतुरः । तथादेहग्रह  
णेऽपिप्रवर्त्तमानःपूर्वतरमाकाशमे

वोपादत्तेततःक्रमेणव्यक्ततरगुणा  
न्धातून्वाग्वर्वादींश्चतुरः । सर्वम  
पितुस्त्वत्वेतद्गुणोपादानमणुना  
कालेनभवति ॥ ५ ॥

वह गुणोंके उपादानके समय अन्य  
गुणोंसे पूर्व अंतरिक्षको ग्रहण करता है  
जैसे प्रलयके नाश होनेपर भूतोंकी  
सृष्टिका अभिलाषी अक्षर भूत सत्वो-  
पादान ब्रह्मा सबसे पहिले आकाशको  
रचता है फिर क्रमसे अत्यंत प्रगट हैं  
गुण जिनके उन वायु आदि चार धातु-  
ओंकी रचना करता है, तैसेही देहके  
ग्रहण समयमेंभी प्रवृत्त हुआ सबसे  
पहिले आकाशको ग्रहण करताहै फिर  
क्रमसे अत्यंत प्रकटहैं गुण जिनके ऐसे  
वायु आदि चार धातुओंको क्रमसे  
ग्रहण करताहै ॥ ५ ॥

ससर्गगुणवान्गर्भत्वमापन्नःप्रथमे  
मासिसंमूर्च्छितःसर्वधातुकलुपीकृ  
तःखेटभूतोभवतिअव्यक्तविग्रहः  
सचसदसद्रूताङ्गावयवः ॥ ६ ॥

और संपूर्णभी इन गुणोंका उपादान  
अल्पही कालसे होताहै, सर्व गुणवान्  
वह गर्भत्वको प्राप्त हुआ पहिले मासमें  
संमूर्च्छित मलीन सब धातुओंका कर्ता  
होनेसे खेटभूत ( पक्षी ) होताहै और  
शरीरसे अव्यक्त रहताहै और हुयेहैं  
अंगावयव जिसके ऐसा वह होताहै ॥ ६ ॥

द्वितीयेमासिधनःसम्पद्यतेपिण्डपे  
श्यर्बुदंवातत्रघनःपुरुषःस्त्रीपेशीअं  
र्बुदनपुंसकम् ॥ ७ ॥

दूसरे मासमें घन होजाताहै पिंड वा  
पेशी वा अर्बुद होताहै उनमें घन होयतो  
पुरुष-पेशीस्त्री अर्बुद न पुंसक होताहै ७  
तृतीयेमासिसर्वेन्द्रियाणिसर्वाङ्गा  
वयवाश्चयौगपथेनअभिनिर्वर्तन्ते  
तीसरे मासमें सब इंद्रिय और संपूर्ण  
अंगके अवयव एकवारही हो जातेहैं ८ ॥  
तत्रास्यकेचिदङ्गावयवामातृजा  
दीनवयवान्विभज्यपूर्वमुक्तायथा  
वन्महाभूतविकारप्रविभागेनतुंडंदा  
नीमस्यतांश्चैवअङ्गावयवान्कां  
श्चित्पार्श्वान्तरेणपरांश्चअनुव्या  
ख्यास्यामः ॥ ९ ॥

उसमें इसके केचित् अवयव मातृज  
आदि अवयवोंके विभाग करके पहिले  
कहेहैं-और यथार्थ रीतिसे महाभूतोंके  
विकार विभागसे तो अब इसके उन्ही  
अंगावयवोंको और किन्हीं अन्य नामोंसे  
अन्यभी अंगके अवयवोंका व्याख्यान  
करतेहैं ॥ ९ ॥

मातृजादयोऽप्यस्यमहाभूतविका  
राएवतत्रास्याकाशात्मकंशब्दः  
श्रोत्रंलाघवंसौक्ष्म्यंविवेकश्च १०

कि मातृज आदिभी इसके अंग महा  
भूतोंकेही विकारहैं उनमेंभी इसके आका

शात्मक-शब्द श्रोत्र लाघव सूक्ष्मता  
विवेकहैं ॥ १० ॥

वाय्वात्मकंस्पर्शःस्पर्शनञ्चरौक्ष्यं  
प्रेरणं धातुव्यूहनंचेष्टाश्चशारीर्यः ॥

और वाय्वात्मक स्पर्श स्पर्शन रूक्षता  
प्रेरण धातुओंका व्यूहन और शरीरकी  
चेष्टाहैं ॥ ११ ॥

अग्न्यात्मकरूपदर्शनंप्रकाशःप  
क्तिरौष्ण्यञ्च ॥ १२ ॥

और अग्न्यात्मक-रूप दर्शन प्रकाश  
पचन उष्णता हैं ॥ १२ ॥

अवात्मकरसोरसनंशैत्यंमार्दवः  
स्नेहःक्लेदश्च ॥ १३ ॥

और जलात्मकरस रसना शीतता  
मृदुता स्नेह क्लेदहैं ॥ १३ ॥

पृथिव्यात्मकोगन्धःघ्राणंगौरवं  
स्थैर्यमूर्तिश्च ॥ १४ ॥

और पृथिव्यात्मक गंध घ्राण गौरव  
स्थिरता मूर्ति हैं ॥ १४ ॥

एवमयंलोकसम्मतःपुरुषः । याव  
न्तोहिलोकेभावविशेषाःतावन्तः  
पुरुषेयावन्तःपुरुषेतावन्तोलोके  
इतिबुधास्त्वेवंद्रष्टुमिच्छन्ति १५ ॥

इस प्रकार यह पुरुष लोक संमित  
( तुल्य ) है क्योंकि जितने भाव विशेष  
लोकमें हैं उतनेहीं पुरुषमें हैं और जितने  
पुरुषमें हैं उतनेहीं लोकमें हैं बुद्धिमान्  
तो इस प्रकार देखना चाहतेहैं ॥ १५ ॥

एवमस्येन्द्रियाणिअङ्गावयवाश्च  
यौगपद्येनाभिनिर्वर्तन्तेअन्यत्रते  
भ्योभावेभ्योयेऽस्यजातस्योत्तर  
कालंजायन्तेतद्यथा,दन्ताव्यञ्ज  
नानिव्यक्तीभावःतथायुक्तानिचा  
पराणिएषाप्रकृतिविकृतिःपुनरतो  
ऽन्यथा । सन्तिखलुअस्मिन्गर्भे  
नित्याभावाःसन्तिचानित्याःत  
स्ययएवाङ्गावयवाःसन्तिवृन्तेत  
एवस्त्रीलिङ्गंपुरुषलिङ्गंनपुंसकलि  
ङ्गंवाविभ्रति ॥ १६ ॥

इसी प्रकार इसकी इंद्रिय और अंगके  
अवयव एक वार उत्पन्न हो जाते हैं  
उन भावोंको छोड़कर जो इसके उत्प-  
त्तिसे उत्तर कालमें होतेहैं वे ऐसे हैं कि  
दंतोंकी अप्रकटता और प्रकटता और  
तिसी प्रकारके युक्त अन्य अवयव यह  
प्रकृतिहै और विकृति तो इससे अन्यथा-  
है और इस गर्भमें नित्यभी भावहैं और  
अनित्यभी हैं, तिस गर्भके जो अंगके  
अवयव स्थितिको प्राप्त होतेहैं वेही स्त्रीके  
लिंगको पुरुष लिंगको नपुंसक लिंगको  
धारण करतेहैं ॥ १६ ॥

ततःस्त्रीपुरुषयोर्येवैशेषिकाभावाः  
प्रधानसंश्रयागुणसंश्रयाश्चतेषांय  
तोभूयस्त्वन्ततोऽन्यतरभावः । त  
द्यथाक्लेब्यंभीरुत्वमवैशारद्यंमोहो

ऽवस्थानमधोगुरुत्वमसंहनंशौथि  
त्यंमार्दवंगर्भाशयबीजभागस्तथा  
युक्तानिचापराणिस्त्रीकराणि ।  
अतोविपरीतानिपुरुषकराणिउभ  
यभागभावानिपुंसककराणि ।  
यस्ययत्कालमेवइन्द्रियाणिसन्ति  
ष्टन्तेतत्कालमेवास्यचेतसिवेदना  
निबन्धंप्राप्नोति । तस्मात्तदाप्रभृ  
तिगर्भःस्पन्दतेप्रार्थयतेचजन्मान्त  
रानुभूतमिहयत्किञ्चित्तद्वैहृदय्य  
माचक्षतेवृद्धाः । मातृजञ्चास्य  
हृदयंमातृहृदयाभिसम्बद्धंरसवा  
हिनीभिःसंवाहिनीभिस्तस्मात्त  
योस्ताभिर्भक्तिःसम्पद्यते । त  
च्चैवकारणमवेक्षमाणानद्वैहृदय्यं  
विमानितंगर्भमिच्छन्तिकर्तुंविमा

नेहस्यदृश्यतेविनाशोविकृतिर्वा १७

तिससे स्त्री पुरुषके जो भेदक भावहैं  
और प्रधान संश्रयहैं उनकी जिससे  
अधिकता हो उनमेंसे कोई एक भाव  
होताहै वह ऐसे है कि क्लीवता भीरुता  
अविशारदता मोह अवस्थान नीचे गुरुता  
असंहनन शिथिलता मृदुता गर्भाशय,  
बीजका भाग और तिसी प्रकार युक्त  
अपर भाव ये स्त्रीकारक होतेहैं इनसे  
विपरीत पुरुष कारक होतेहैं, दोनों भागोंके  
जो भावहैं वे नपुंसक कारी होतेहैं, जिसके

जितने काल पर्यंत इंद्रिय स्थिर होती हैं  
तिसी कालमें चित्तमें वेदनाके निबन्धको  
प्राप्त होताहै तिससे उससे लेकर गर्भ स्यं-  
दनको प्राप्त होताहै और किञ्चित् जन्मांतर  
के अनुभूतकी प्रार्थनाभी करताहै उसको  
वृद्ध द्वै हृदय्य ( दो हृदय्य सहित ) कह-  
तेहैं—और इसका हृदय मातृज है माताके  
हृदयमें रस वाहिनी संवाहिनी ( नाडी )  
यांसे सम्बद्धहै तिससे उन दोनों हृद-  
योंकी भक्ति ( विभाग ) को और तिसीसे  
भलीप्रकार स्यंदन ( चलन ) को प्राप्त  
होताहै और उसकोभी कारणकी अपेक्षा  
करते हुये कोई दोहृदयवाले गर्भकी संग  
विमान न करनेको नहीं चाहते क्योंकि  
विमाननमें इसका विनाश वा विकृति  
देखी जातीहै ॥ १७ ॥

समानयोगक्षेमाहिमातातदागर्भेण  
केषुचिदर्थेषुतस्मात्प्रियहिताभ्यांग  
भिर्णीविशेषेणोपचरन्तिकुशलाः

क्योंकि समान हैं योग क्षेम जिसके  
ऐसी माता तब गर्भके संग किन्ही २  
अर्थोंमें होतीहै तिससे कुशलमनुष्य  
प्रिय और हित वस्तुसे गर्भिणीका विशेष  
कर उपचार करतेहैं ॥ १८ ॥

तस्याद्वैहृदय्यस्यचविज्ञानार्थलि  
ङ्गानिसमासेनउपदेक्ष्यामः १९ ॥

उस स्त्रीको गर्भकी प्राप्ति और द्वै  
हृदय्यके विज्ञानके लिये संक्षेपसे लिंगोंका  
उपदेश करतेहैं ॥ १९ ॥

उपचारसंबोधनं ह्यस्याज्ञाने दोषज्ञानं  
अलिङ्गतस्तस्मादिष्टो लिङ्गोप-  
देशस्तद्यथा आर्तवादर्शनमास्यसं-  
स्रवणमनन्नाभिलाषश्छर्दिरोच-  
कोऽम्लकामताचविशेषेण । श्र-  
द्धाप्रणयनश्चोच्चावचेषु भावेषु गुरु-  
गात्रत्वं च क्षुण्णोग्लानिः स्तनयोः स्त-  
न्यमोष्ठयोः स्तनमण्डलयोश्च का-  
ण्ड्यमत्यर्थं श्वयथुः पादयोरीषष्ठो-  
मराज्युद्गमो योन्याश्वाटालत्वमि-  
ति गर्भोपपत्त्या गते रूपाणि भवन्ति २०

क्योंकि उपचारोंका संबोधन (जताना)  
इसके ज्ञान होनेपर है और वही अज्ञा-  
नमें दोष है और ज्ञान लिंगसे होता है  
तिससे लिंगोंका उपदेश इष्ट है वह ऐसे है  
कि आर्तव (रज) का अदर्शन आस्यका  
संस्त्रव ( थूक आना ) अन्नकी अनिच्छा  
छर्दि अरोचक अम्लकी इच्छा विशेष  
होनी और ऊंचे नीचे भावोंमें श्रद्धाका  
होना गात्रोंमें गौरव नेत्रोंमें ग्लानि  
स्तनोंमें दूध ओष्ठ और स्तन मंडलोंमें  
कृष्णता अत्यंत श्वयथु ( सूजन )  
पादोंमें होना और लोमराजीका उठना  
और योनिमें किंचित् जाल ये रूप गर्भके  
होनेपर होते हैं २० ॥

सा यद्यदिच्छेत्तत्तदस्यैद-  
द्यादन्यत्र गर्भोपघातकरेभ्यो  
भावेभ्यः । गर्भोपघातकरास्ति

मे भावाः तद्यथा सर्वमतिगुरुष्ण  
तीक्ष्णदारुणाश्च चेष्टा इमांश्चान्यान्  
पदिशन्ति वृद्धाः । देवतारक्षोऽनु-  
चरपरिरक्षणार्थं न रक्तानि वासांसि  
विभृयान्नमदकराणि चाद्यान्ना-  
भ्यवहरेन्नयानमधिरोहेन्नमांसम-  
श्रीयतात्सर्वेन्द्रियप्रतिकूलं श्वभा-  
वान्दूरतः परिवर्जयेत् ॥ २१ ॥

वह स्त्री जो २ इच्छा करे वही २  
गर्भके नाश कारक भावोंको छोड़कर  
उस स्त्रीको दे, और गर्भके नाशक भाव  
जो हैं वे ऐसे हैं कि, सब प्रकार के  
अत्यंत गुरु उष्ण तीक्ष्ण पदार्थ और  
दारुण चेष्टा और इन अन्योंका भी उप-  
देश वृद्ध करते हैं कि देवता राक्षसोंके  
अनुचरोंसे रक्षाके लिये रक्त वस्त्रोंको  
धारण न करे और न मद कारक जो  
भक्ष्य हैं उनका भक्षण भोजन करे यानपर  
न चढ़े मांस भक्षण न करे और संपूर्ण  
इंद्रियोंके प्रतिकूल भावोंको दूरसे  
वर्जदे ॥ २१ ॥ -

यच्चान्यदपि किञ्चित्स्त्रियोविदुस्ती-  
व्रायान्तु खलु प्रार्थनायां काममहि-  
तमप्यस्यैहितेनोपसंहितं दद्यात् प्रा-  
र्थनाविलयनार्थम् । प्रार्थनासन्धा-  
रणाद्धि वायुः कुपितोऽन्तःशरीर-  
मनुचरन् गर्भस्यापद्यमानस्य विना-  
शं वैरूप्यं वा कुर्व्यात् ॥ २२ ॥

और जो अन्यभी किंचित् स्त्री अहित जानें वह न दे और बड़ी भारी प्रार्थनामें तो अहित पदार्थकीभी इस स्त्रीको हितको मिलाकर प्रार्थनाके विनयके लिये दे क्योंकि प्रार्थनाके संधारणसे कुपित वायु अंतः शरीरमें विचरता हुआ प्राप्त हुये गर्भका विनाश वा विरूपताको करताहै ॥ २२ ॥

चतुर्थमासिस्थिरत्वमापद्यतेगर्भस्तस्मात्तदागर्भिणीगुरुगात्रत्वमधिकमापद्यतेविशेषेण ॥ २३ ॥

चौथे मासमें स्थिर हो जाताहै तिससे तब गर्भिणी विशेषकर गुरु गात्रताको प्राप्त हो जातीहै ॥ २३ ॥

पञ्चमेमासिगर्भस्यमांसशोणितोपचयोभवतिअधिकमन्येभ्योमासेभ्यस्तस्मात्तदागर्भिणीकाश्च्यमापद्यतेविशेषेण ॥ २४ ॥

पांचमें मासमें गर्भके मांस शोणितकी वृद्धि अन्यमासोंसे अधिक होती है तिससे तब गर्भिणी विशेषकर कुश हो जातीहै ॥ २४ ॥

षष्ठेमासिगर्भस्यबलवर्णोपचयोभवतिअधिकमन्येभ्योमासेभ्यस्तस्मात्तदागर्भिणीबलवर्णहानिमापद्यतेविशेषेण ॥ २५ ॥

छठे मासमें गर्भमें बलवर्णकी वृद्धि अन्य मासोंसे अधिक होती है तिससे

तब गर्भिणी विशेषकर बलवर्णकी हानिको प्राप्त होतीहै ॥ २५ ॥

सप्तमेमासिगर्भःसर्वभावैराप्यायतेऽस्याः । तस्मात्तदागर्भिणीसर्वाकारैःकृान्ततमाभवति ॥ २६ ॥

सातवें मासमें गर्भ सहसा सब भावोंसे पुष्ट होताहै तिससे गर्भिणी सब भावोंसे अत्यंत कृान्त हो जातीहै ॥ २६ ॥

अष्टमेमासिगर्भश्चमातृतोगर्भतश्चमातारसवाहिनीभिःसंवाहिनीभिर्मुहुर्मुहुरोजःपरस्परतआददातिगर्भस्यसम्पूर्णत्वात्तस्मात्तदागर्भिणीमुहुर्मुहुःमुदायुक्ताभवतिमुहुर्मुहुश्चग्लानातस्मात्तदागर्भस्यजन्मव्यापत्तिमद्भवत्योजसोऽनवस्थितत्वात्तत्रैवमभिसमीक्ष्याष्टममासमगर्भण्यमित्याचक्षतेकुशलाः २७

आठवें मासमें गर्भ मातासे और माता गर्भसे रस वाहिनी संवाहिनीयोंसे वारंवार परस्पर ओजका आदान करतेहैं क्योंकि गर्भ संपूर्ण हो जाताहै तिससे गर्भिणी तब वारंवार आनंदसे युक्त और वारंवार ग्लानिसे युक्त होती है तिससे तब ओजके अनवस्थित होनेसे गर्भको जन्मकी व्यापत्ति होती है तिसको इस प्रकारसे देखकर अष्टम मासको अगर्भण्य ( गर्भवतीको अहित ) कुशल कहतेहैं २७

तस्मिन्नेकदिवसातिक्रान्तेऽपि न  
वर्ममासमुपादायप्रसवकालमित्या  
हुरादशमान्मासादेतावान्कालो  
वैकारिकम् ॥ २८ ॥

उसके एक दिन बीतने परभी नवम  
मासको लेकर दशम मासपर्यंत प्रसव-  
काल कहतेहैं इतना काल वैकारिक  
मानाहै ॥ २८ ॥

अतःपरंकुक्षौस्थानंगर्भस्य । एव  
मनयानुपूर्व्याभिनिर्वर्ततेकुक्षौ २९

इससे परे कुक्षिमें गर्भका स्थानहै  
इस प्रकार यह गर्भ इस आनुपूर्वीसे  
कुक्षिमें निष्पन्न होताहै ॥ २९ ॥

मात्रादीनान्तुखलुगर्भकराणांभा  
वानांसम्पदस्तथातिवृत्तस्यसौष्ठ  
वान्मातृतथैवोपस्नेहोपस्वेदाभ्यां  
कालपरिणामात्स्वभावसंसिद्धे  
श्चकुक्षौवृद्धिंप्राप्नोति । मात्रादी  
नान्तुखलुगर्भकराणांभावानांव्या  
पत्तिनिमित्तमस्याजन्मभवति ३०

माता आदिके जो गर्भ कारक भावहैं  
उनकी संपदासेही उत्पन्नकी श्रेष्ठतासे  
और माताके उपस्नेह उपस्वेदोंसे कालके  
परिणामसे स्वभावकी संसिद्धिसे कुक्षिमें  
वृद्धिको प्राप्त होताहै- माता आदिके जो  
गर्भकारक भाव हैं उनकी व्यापत्तिका  
निमित्ततो इस गर्भको जन्मसे लेकर  
होताहै ॥ ३० ॥

येत्वस्यकुक्षौवृद्धिहेतुसमाख्याता  
भावास्तेषांविपर्ययादुदरेविना  
शमापद्यतेऽथवाप्यचिरजातः  
स्यात् ॥ ३१ ॥

जो भाव इसकी कुक्षिमें वृद्धिके हेतु  
कहेहैं तिनके विपर्ययसे उदरमें विनाशको  
प्राप्त होजाताहै अथवा अचिर जात  
होताहै ॥ ३१ ॥

यतस्तुकात्स्न्येनाविश्यन्विक्रति  
मापद्यतेतदनुव्याख्यास्यामः ३२

और जिससे संपूर्ण रूपसे अविना-  
शको प्राप्त हुआ विकृतिको प्राप्त होताहै  
उसका अब व्याख्यान करतेहैं ॥ ३२ ॥

यदास्त्रियादोषप्रकोपनोक्तान्या  
सेवमानायादोषाःप्रकुपिताःशरी  
रमुपसर्पन्तःशोणितगर्भाशयौदू  
षयन्तितदायंगर्भलभतेस्त्रीतदाग  
र्भस्यमातृजानामवयवानामन्यत  
मोऽवयवोविक्रतिमापद्यतेएकोऽ  
थवानेकः ॥ ३३ ॥

जब दोषोंके प्रकोपसे उक्तसे अन्यका  
सेवन करती हुईके प्रकुपित दोष शरीरमें  
फैलतेहुये शोणित गर्भाशयको दूषित  
करतेहैं तब स्त्री जिस गर्भको प्राप्त  
होतीहै तब उस गर्भके जो मातृज अव  
यवोंका अवयवहै वह एक अथवा अनेक  
विकृतिको प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥

यस्ययस्यह्यवयवस्यबीजेबीजभा  
गेवादोषाःप्रकोपमापद्यन्तेतंतमव  
यवंचिकृतिराविशति ॥ ३४ ॥

इसके जिस २ अवयवके बीजमें वा  
बीजभागमें दोष प्रकोपको प्राप्त होतेहैं  
उस २ अवयवमें विकारका प्रवेश होजा-  
ताहै ॥ ३४ ॥

यदाह्यस्याःशोणितगर्भाशयबीज  
भागःप्रदोषमापद्यतेतदावन्ध्यांज  
नयति । यदापुनरस्याःशोणितेग  
र्भाशयबीजभागावयवःप्रदोषमा  
पद्यतेतदापूतिप्रजांजनयति ३५ ॥

जब इस स्त्रीका शोणितमें गर्भाशयका  
बीज भाग विकृतिको प्राप्त होताहै तब  
बंध्याको पैदा करतीहै और जब इसके  
शोणितमें गर्भाशयके बीजभागका अव-  
यव प्रदोषको प्राप्त होताहै तब पूतिप्रजा-  
को पैदा करतीहै ॥ ३५ ॥

यदात्वस्याःशोणितगर्भाशयबीज  
भागावयवःस्त्रीकराणाञ्चशरीर  
बीजभागानामेकदेशःप्रदोषमाप  
द्यतेतदास्त्र्याकृतिभूयिष्ठामस्त्रियंवा  
र्त्तानामजनयतितांस्त्रीव्यापदमाच  
क्षते ॥ ३६ ॥

और जब इसके शोणितगर्भाशयके  
भागका अवयव और स्त्रीकारक शरी-  
रके बीजभागोंका एक देश प्रकोपको  
प्राप्त होता है तब स्त्रीको आकारकी

बहुधा अस्त्री वार्ता नामको पैदा करती  
है उसको स्त्री व्यापद कहते हैं ॥ ३६ ॥

एवमेवपुरुषस्यबीजदोषेपितृजा  
वयवविकृतिविधायदापुनरस्म  
बीजेबीजभागावयवःप्रदोषमाप  
द्यतेतदापूतिप्रजांजनयति ॥ ३७ ॥

इसी प्रकार पुरुषके बीजदोषमें  
पितृजही अवयवोंके विकारों को जानै  
जब इस पुरुषके बीजमें बीजका भाग  
प्रदोषको प्राप्त होता है तब बंध्या की  
जनता है और जब इसके बीजमें बीज-  
भागका अवयव दोषको प्राप्त होता है  
तब पूति प्रजाको पैदा करता है ॥ ३७ ॥

यदात्वस्यबीजेबीजभागावयवः  
पुरुषकराणाञ्चशरीरबीजभागा  
नामेकदेशःप्रदोषमापद्यतेतदापुरु  
षाकृतिभूयिष्ठमपुरुषंतृणपूलिकं  
नामजनयतितांपुरुषव्यापदमाच  
क्षते ॥ ३८ ॥

और जब इसके बीजमें बीजभागका  
अवयव और पुरुषकारक शरीरके बीज-  
भागोंका एक देश प्रदोष को प्राप्त होता  
है तब पुरुषकी अधिक आकृतिके अपु-  
रुष तृणपूलिक नामको पैदा करेहै  
उसको पुरुषव्यापद कहते हैं ॥ ३८ ॥

एतेनमातृजानापितृजानाञ्चावय  
वानांचिकृतिव्याख्यानेनसात्म्य



जानां रसजानां सत्त्वजानां चावय  
वानां विकृतिर्व्याख्याता ॥ ३९ ॥

इस मातृज और पितृज अवयवों की  
विकृति के व्याख्यानसे सात्म्यज और  
रसज और सत्त्वज अवयवों की विकृति  
कही है ॥ ३९ ॥

निर्विकारः परस्त्वात्मा सर्वभूतानां  
निर्विशेषः सत्त्वशरीरयोस्तु विशेषा  
द्विशेषोपलब्धिः ॥ ४० ॥

निर्विकार जो परमात्मा है वह सब  
भूतोंको समान है और सत्त्व और शरी-  
रके विशेषसे विशेषकी उपलब्धि होती  
है ॥ ४० ॥

तत्र त्रयस्तु शरीरदोषावातपित्त  
श्लेष्माणस्तेशरीरं दूषयन्ति ४१ ॥

उस में वात, पित्त, श्लेष्मा, ये जो शरीरके दोष हैं वे शरीरको दूषित करते हैं ४१

द्वौ पुनः सत्त्वदोषौ रजस्तमश्च । तौ  
सत्त्वं दूषयतस्ताभ्यां च सत्त्वशरी-  
राभ्यां दुष्टाभ्यां विकृतिरुपजायते  
नोपजायते चाप्रदुष्टाभ्याम् ४२ ॥

और दो रज और तम सत्त्वके दोष  
हैं वे सत्त्वको दूषित करते हैं उन दुष्ट  
हुये सत्त्व शरीरोंसे विकृति हो जाती है  
और अप्रदुष्टोंसे नहीं होती है ॥ ४२ ॥

तत्र शरीरं योनिविशेषाच्चतुर्विधमु-  
क्तमग्नेत्रिविधं खलु सत्त्वं शुद्धं राज-

संतामसमिति । तत्र शुद्धमदोषमा-  
ख्यातं कल्याणांशत्वात् । राज-  
संसदोषमाख्यातं रोपांशत्वात् ।  
तथा तामसमपि सदोषमाख्यातं मो-  
हांशत्वात् ॥ ४३ ॥

उसमें शरीर, योनिविशेषसे चार  
प्रकारका पहिले कहा है और तीन प्र-  
कारका सत्त्व है, शुद्ध राजस तामस उन-  
में शुद्ध, निर्दोष, कल्याणका अंश  
होनेसे कहा है और रोपका अंश होनेसे  
राजस दूषित कहा है तामसभी मोह-  
का अंश होनेसे सदोष कहा है ॥ ४३ ॥

तेषां नु त्रयाणामपि सत्त्वानामे-  
कैकस्य भेदाग्रमपरिसंख्येयं तत-  
मयोगाच्छरीरयोनिविशेषेभ्यश्चा-  
न्योन्यानुविधानत्वाच्च । शरी-  
रमपि सत्त्वमनुविधीयते सत्त्वश्च श-  
रीरं तस्मात्कतिचिच्च सत्त्वभेदान  
नूकसादृश्याभिनिर्देशेन निदर्शना-  
र्थमनुव्याख्यास्यामः ॥ ४४ ॥

उन तीनों प्रकारके भी सत्त्वोंमें एक  
२. का भेदाग्र अपरिसंख्येय है तार-  
तम्यके योगसे शरीरकी योनिके  
विशेषोंसे अन्योन्य अनुविधानसे, शरी-  
रभी सत्त्वके अनुसार होता है और सत्त्व  
शरीर है तिससे कितनेक सत्त्व भेदोंको  
अनूक ( अनुकारी ) सादृश्यके अभि-

निर्देशसे दृष्टांतके लिये अब व्याख्यान करते हैं ॥ ४४ ॥

तद्यथाशुचिसत्याभिसन्धंजिता  
त्मानंसंविभागेनज्ञानविज्ञानवच  
नप्रतिवचनशक्तिसम्पन्नस्मृतिम  
न्तंकामक्रोधलोभमानमोहेर्ष्याह  
र्षापेतेसमंसर्वभूतेषुब्राह्म्यंविद्या  
त् ॥ ४५ ॥

वे ऐसे हैं कि, शुचि सत्वका अभि  
संधि जितात्मा संविभागी, ज्ञान, विज्ञान,  
वचन, प्रतिवचन इनकी शक्तिसे संपन्न,  
स्मृतिमान्, काम, क्रोध, लोभ, मान,  
मोह, ईर्ष्या, हर्ष इनसे रहित संपूर्ण भूतोंमें  
सम ऐसेको ब्राह्म्य जानै ॥ ४५ ॥

इज्याध्ययनव्रतहोमब्रह्मचर्य्यम  
तिथिव्रतमुपशान्तमदमानराग  
द्वेषमोहलोभरोपप्रतिभावचनवि  
ज्ञानोपधारणशक्तिसम्पन्नमार्प  
विद्यात् ॥ ४६ ॥

इज्या, अध्ययन, व्रत, होम, ब्रह्मचर्य्य,  
अतिथिव्रत हो उपशांतहैं. मद, मान,  
राग, द्वेष, मोह, लोभ रोष जिसके और  
प्रतिभा वचन विज्ञान उपधारणकी शक्ति-  
संपन्न को आर्प जानै ॥ ४६ ॥

ऐश्वर्य्यवन्तमादेयवाक्ययज्वानं  
शूरमोजस्विनंतेजसोपेतमक्लिष्टक  
र्माणंदीर्घदर्शिनंधर्मार्थकामाभिर  
तमैन्द्रंविद्यात् ॥ ४७ ॥

ऐश्वर्यवान् हो वाक्य जिसका ग्राह्य  
हो यज्वा हो शूर ओजस्वी हो तेजसे  
युक्त अक्लिष्टकर्मा दीर्घदर्शी धर्म, अर्थ,  
काममें अभिरतको ऐंद्र जानै ॥ ४७ ॥

लेखास्थवृत्तंप्राप्तकारिणमसंहाय्य  
मुत्थानवन्तंस्मृतिमन्तमैश्वर्य्या  
लम्बिनंव्यपगतरागद्वेषमोहंयाम्यं  
विद्यात् ॥ ४८ ॥

लेखमें स्थित वृत्त प्राप्तकारी असं-  
हारी ( मारने अयोग्य ) उत्थानवान् हो  
स्मृतिमान् ऐश्वर्य्यका अवलंबी राग, द्वेष,  
मोह इनसे रहितको याम्य जानै ॥ ४८ ॥

शूरंधीरंशुचिमशुचिद्वेपिणंयज्वान  
मम्भोविहाररतिमक्लिष्टकर्माणंस्था  
नकोपप्रसादंवारुणंविद्यात् ॥ ४९ ॥

शूर, धीर, शुचि अशुचिका द्वेपी यज्ञ,  
यज्ञकर्ता, जलका विहारी, अक्लिष्ट कर्मा,  
समयपर क्रुद्ध और प्रसन्नको वारुण  
जानै ॥ ४९ ॥

स्थानमानोपभोगंपरिवारसम्पन्नं  
सुखविहारंधर्मार्थकामनित्यंशुचिं  
व्यक्तकोपप्रसादंकौबेरंविद्यात् ५०

स्थान, मान, उपभोग, परिवार इनसे  
युक्त धर्म, अर्थ, काममें नित्य तत्पर  
शुचि, सुखविकार, कोप, प्रसादकी  
प्रगटतावाला उसको कौबेर जानै ॥ ५० ॥

प्रियनृत्यगीतवादित्रोल्लापकंश्लो  
कारव्यायिकेतिहासपुराणेषुकुशलं

गन्धमाल्यानुलेपनवसनस्त्रीविहार  
कामनित्यमनसूयकंगान्धर्वविद्या  
त् ॥ ५१ ॥

जिसको नृत्य, गीत, वादित्र, उल्लाप  
ये प्रिय हों और श्लोक, आख्यायिका,  
इतिहास पुराण इनमें कुशल हो और  
गन्ध, माल्य, अपनयन, वस्त्र, स्त्रीविहार ये  
जिसे नित्य हों असूयारहित हों उसको  
गान्धर्व जानै ॥ ५१ ॥

इत्येवंशुद्धस्यसत्त्वस्यसप्तविधंभे  
दांशंविद्यात्कल्याणांशत्वात्तत्सं-  
योगात्तुब्राह्म्यमत्यन्तशुद्धंव्यव-  
स्येत् ॥ ५२ ॥

इस प्रकार शुद्धके सात प्रकारके  
भेदांश जानै क्योंकि वह कल्याणका  
अंश है और उनके संयोगसे तो ब्राह्म्यको  
अत्यन्त शुद्ध निश्चय करै ॥ ५२ ॥

शूरचण्डमसूयकमैश्वर्यवन्तमौद-  
रिकंरौद्रमननुक्रोशकमात्मपूजक  
मासुरंविद्यात् ॥ ५३ ॥

और शूर, चंड, असूयक, ऐश्वर्यवान्,  
औदारिक, रौद्र, अनुक्रोशरहित आत्म,  
पूजक उसको आसुर जानै ॥ ५३ ॥

अमर्षिणमनुबन्धकोपच्छिद्रप्रहा-  
रिणंक्रूरमाहारातिमात्ररुचिमामि-  
पप्रियतमंस्वभायासबहुलमीर्षुरा-  
क्षसंविद्यात् ॥ ५४ ॥

अमर्षण अनुबन्धसे कोप और छिद्रसे  
प्रहारी, क्रूर, भोजनमें अतिमात्र रुचि,  
अत्यन्त मांसप्रिय, स्वप्नमें बहुधा आ-  
यासी, अत्यन्त ईर्षु जो है उसको राक्षस  
जानै ॥ ५४ ॥

महालसंस्त्रैणंस्त्रीरहस्काममअशु-  
चिंशुचिद्वेषिणंभीरुभीषयितारं  
विकृतिविहारहारशीलपैशाचंवि-  
द्यात् ॥ ५५ ॥

महा आलसी, स्त्रीलंपट, स्त्रीका ए-  
कांतमें कामी, अशुचि, शुद्धद्वेषी भीरु-  
भीषणकारी, विकृतविहार आहारमें रत  
उसको पैशाच जानै ॥ ५५ ॥

क्रुद्धंशूरंअक्रुद्धभीरुंतीक्ष्णमाया  
सबहुलंमन्त्रमुगोचरमाहारविहा-  
रपरंसार्षविद्यात् ॥ ५६ ॥

क्रुद्ध, शूर, प्रकृष्ट, भीरु, तीक्ष्ण, बहुल  
आयासी मन्त्रमुगोचर ( संमति दाता )  
आहारविहारमें तत्पर उसको सार्ष  
जानै ॥ ५६ ॥

आहारकाममतिदुःखशीलाचारो-  
पचारमसूयकमसंविभागिनमति  
लोलुपमकर्मशीलंप्रैतंविद्यात् ५७

आहारकामी अति दुःखदायी जो  
शील आचार उपचार उनसे युक्त अ-  
सूयक संविभागरहित, अति लोलुप  
अकर्मशील उसको प्रैत जानै ॥ ५७ ॥

अनुषक्तकाममजस्रमाहारविहार

परमनवस्थितममर्षिणमसञ्चयं  
शाकुनंविधात् ॥ ५८ ॥

अनुसक्तका कामी, निरंतर आहारमें  
तत्पर, अनवस्थित, अमर्षण, असंचय  
उसको शाकुन जानै ॥ ५८ ॥

इत्येवंखलुराजसस्यसत्त्वस्यपङ्क-  
विधंभेदांशंविद्याद्रोपांशत्वात् ५९

इस प्रकार राजस सत्त्वके छः प्रका-  
रके भेदांश जानै, क्योंकि वह रोपां-  
शहै ॥ ५९ ॥

निराकरिणुमधमवेपमजुगुप्ति  
तारम् । आहारविहारमैथुनपरं  
स्वमशीलं पाशवंविधात् ॥ ६० ॥

और निराकरणशील, अधमवेप,  
जुगुप्सारहित, आहार विहार मैथुनमें  
तत्पर, स्वप्रशील उसको पाशव जानै ६०

भीरुमबुधमाहारलुब्धमनवस्थित  
मनुपक्तकामक्रोधसरणशीलंतोय  
कामं मात्स्यंविधात् ॥ ६१ ॥

भीरु अबुध आहारमें लुब्ध अन-  
वस्थित अनुपंग है काम क्रोधमें जिसे-  
सरण शील, जलकाम उसको मात्स्य  
जानै ॥ ६१ ॥

अलसंकेवलमभिनिविष्टमाहारेस  
र्वबुद्ध्यङ्गहीनं वानस्पत्यंविधा-  
त् ॥ ६२ ॥

अलस, केवल आहारमें अभिनिविष्ट,  
सब बुद्धियोंके अंगोंसे हीन उसको वान-  
स्पत्य जानै ॥ ६२ ॥

इत्येवंखलुतामसस्यसत्त्वस्यत्रि-  
विधंभेदांशंविद्यान्मोहांशत्वात् ६३

इस प्रकार तामस सत्त्वके तीन  
प्रकारके भेदांशको जानै क्योंकि वह  
मोहका अंशहै ॥ ६३ ॥

इत्यपरिसंख्येयभेदानांखलुत्रया-  
णामपिसत्त्वानांभेदैकदेशोव्या-  
ख्यातः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार अपरिसंख्येयहैं भेद  
जिनके ऐसे तीनोंभी सत्त्वोंके भेदोंका एक  
देश व्याख्यात किया ॥ ६४ ॥

शुद्धस्यसत्त्वस्यसप्तविधोब्रह्मर्षि-  
शक्रवरुणयमकुबेरगन्धर्वसत्त्वा-  
नुकरेण । राजसस्यपङ्कविधोदै-  
त्यराक्षसपिशाचसर्पप्रेतशकुनि  
सत्त्वानुकरेण । तामसस्यत्रि-  
विधःपशुमत्स्यवनस्पतिसत्त्वानु-  
करेण । कथञ्चयप्यासत्त्वमुप-  
चारःस्यादिति । केवलश्चायं  
मुद्देशःयथोद्देशमभिनिर्दिष्टोभव-  
ति । गर्भावक्रान्तिसंप्रयुक्तस्या-  
र्थस्यविज्ञानेसामर्थ्यगर्भकराणाञ्च  
भावानामनुसमाधिर्विधातश्चावि-  
धातकराणांभावानामिति ॥ ६५ ॥

शुद्ध सत्वका ब्रह्मऋषिः, शक्र, वरुण, यम, कुबेर, गंधर्व सत्वके अनुकारसे सात प्रकारका—और राजसका दैत्य, राक्षस, पेशाच, सर्प, प्रेत, शकुनि सत्वके अनुकारसे छः प्रकारका और तामसका—पशु, मत्स्य वनस्पति सत्वके अनुकारसे तीन प्रकारका, है तो किस प्रकारसे यथासत्त्व उपचार हो इति । और केवल यह उद्देश उद्देशके अनुसार दिखायाहै गर्भकी अवकांतिसे संप्रयुक्त जो अर्थ है उसके विज्ञानमें सामर्थ्य और गर्भकारक जो भावहैं उनकी अनुसमाधि और विघातकारकोंका विघात जानना इति ॥ ६५ ॥

तत्रश्लोकाः ।

निमित्तमात्माप्रकृतिवृद्धिःकुक्षौ  
क्रमेणच । वृद्धिहेतुश्चगर्भस्यप  
श्चार्थाःशुभसंज्ञिताः ॥ ६६ ॥

उसमें ये श्लोकहैं, कि, निमित्त, आत्मा, प्रकृति कुक्षिमें क्रमसे वृद्धि और गर्भकी वृद्धिका हेतु ये पांच अर्थ शुभ संज्ञकहैं ६६ यज्जन्मनिचयोहेतुर्विनाशेविकृतावपि । इमांस्त्रीनिशुभान्भावानाहुर्गर्भविघातकान् ॥ ६७ ॥

और जन्ममें जो हेतु है विनाश और विकृतिमें जो हेतु है इन तीन अशुभ भावोंको गर्भ विघातक कहते हैं ॥ ६७ ॥

शुभाशुभसमाख्यातानष्टौभावा  
निमान्भिपक् । सर्वथावेदयःस

र्वान्सराज्ञःकर्तुमर्हति ॥ ६८ ॥

शुभ अशुभ कहेहुये इन सब आठ भावोंको सर्वथा जानता हुआ भिपक् जो है वह राजाकी चिकित्सा करने योग्य है ॥ ६८ ॥

अवाप्त्युपायान्गर्भस्यसएवंज्ञातु  
मर्हति । । येचगर्भविघातोक्ता  
भावास्तांश्चाप्युदारधीः ॥ ६९ ॥

और वह गर्भकी प्राप्तिके जो उपाय हैं और जो गर्भके विघातक भाव कहे हैं उनकोभी उदार बुद्धि होनेसे जानने योग्य हैं ॥ ६९ ॥

इति महती गर्भावकांतिशारीरसमाप्तम् ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

पुरुषविचयः ।

इसके अनंतर पुरुष विचयशारीरका व्याख्यान करते हैं कि—

पुरुषोऽयंलोकसंमितइत्युवाच  
भगवान्पुनर्वसुरात्रेयः । यावन्तो  
हिमूर्तिमन्तोलोकेभावविशेषा  
स्तावन्तःपुरुषे, यावन्तःपुरुषे, ताव  
न्तोलोके ॥ १ ॥

यह पुरुष लोकसंमित है यह भगवान् पुनर्वसु आत्रेयने कहा है जितने लोकमें मूर्तिमान् भाव विशेष हैं उतने पुरुषमें जितने पुरुषमें हैं उतने लोकमें हैं ॥ १ ॥

इत्येवंवादिनं भगवन्तमात्रेयमग्निवे  
शउवाच । नैतावता वाक्येनोक्तं वा  
क्यार्थमवगाहामहे । भगवता ब्रु  
ह्मचाभूयस्तरमतोऽनुव्याख्यायमा  
नं शुश्रूषामहे ॥ २ ॥

इस प्रकार कहते हुये भगवान् आ-  
त्रेयको अग्निवेश बोले—कि, इतने वाक्यसे  
उक्त वाक्यार्थका हम अवगाहन (समझ)  
नहीं कर सकते भगवान् ( आप ) की  
बुद्धिसे अत्यंत अधिक व्याख्यान किये  
को सुना चाहते हैं इति ॥ २ ॥

इतितमुवाच भगवानात्रेयः । अ  
परिसंख्येया लोकावयवविशेषाः  
पुरुषावयवविशेषा अप्यपरिसंख्ये  
याः । यथा यथा प्रधानश्च ते पां यथा  
स्थूलं भावान् सामान्यमभिप्रेत्योदा  
हरिष्यामः । तानेकमनानि बोधस  
म्यगुपवर्ण्यमानानि अग्निवेश ! पङ्  
धातवः समुदिता लोक इति शब्दं ल  
भन्ते । तद्यथाः—पृथिव्यापस्ते  
जो वायुराकाशं ब्रह्म चाव्यक्तमित्ये  
त एव च पङ्धातवः समुदिताः पुरुष  
इति शब्दं लभन्ते । तस्य पुरुषस्य  
पृथिवीमूर्तिरापः क्लेदस्तेजोऽभिस  
न्तापो वायुः प्राणो वियच्छिद्राणि  
ब्रह्मान्तरान्मा ॥ ३ ॥

उसके प्राति भगवान् आत्रेय बोले—कि,  
लोकके अवयवोंके विशेष अपरिसंख्ये-  
यहैं और पुरुषके अवयवविशेष भी अपरि  
संख्येय हैं—जैसे प्रधान हैं उन स्थूल भावोंके  
सामान्यके अभिप्रायसे उदाहरण दिखा-  
ते हैं कि, उनको सावधान मनसे भली  
प्रकारसे वर्णन किये हुयोंको हे अग्निवेश!  
तु सुन—छः धातु समुदित होकर लोक  
इस शब्दको प्राप्त होती हैं—वह ऐसे हैं कि,  
पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश और  
अव्यक्त ब्रह्म ये ही छः धातु समुदित  
हुई पुरुष इस शब्दको प्राप्त होती हैं उस  
पुरुषकी पृथिवी मूर्ति, जल, क्लेद, तेज,  
अभिसन्ताप, वायु, प्राण, आकाश, छिद्र  
और ब्रह्म अंतरात्मा है ॥ ३ ॥

यथा खलु ब्राह्मी विभूतिर्लोकैतथापु  
रुषेऽप्यान्तरात्मिकी विभूतिर्ब्रह्म  
णो विभूतिर्लोकैः प्रजापतिरन्तरात्म  
नो विभूतिः पुरुषे सत्त्वम् । यस्तिव  
न्द्रो लोके स पुरुषेऽहङ्कारः आदि  
त्यास्तु आदानं रुद्रो रोषः सोमः प्रसा  
दो वसवः सुखमश्विनौ कान्तिर्मरुदु  
त्सा हो विश्वे देवाः सर्वेन्द्रियाणि स  
र्वेन्द्रियार्थाश्च तमो मोहो ज्योतिर्ज्ञा  
नम् । यथा लोकस्य स्वर्गादिस्तथा  
पुरुषस्य गर्भाधानं यथा कृतयुगमेवं  
बाल्यम् । यथा त्रेता तथा यौवनं  
यथा द्वापरस्तथा स्थाविर्यथा क

लिखेवमातुर्ग्ययथायुगान्तस्तथाम  
रणमित्येवमनुमानेनानुक्तानामपि  
लोकपुरुषयोरवयवविशेषाणाम  
शिवेश ! सामान्यं विद्यात् ॥ ४ ॥

और जैसे निश्चयसे लोकमें ब्रह्मकी  
विभूतिहै तैसे पुरुषमें भी अंतरात्माकी  
विभूतिहै—लोकमें ब्रह्मकी विभूतिहै प्रजा-  
पतिहै और पुरुषमें अंतरात्माकी विभूति-  
सत्त्वहै और जो लोकमें इंद्र है वह पुरु-  
षमें अहंकार है—आदित्य आदान है—  
रुद्र दोषहै—सोम प्रसादहै—वसु सुख है—  
अश्विनीकुमार कान्तिहै—मरुत् उत्साहहै—  
विश्वदेवा संपूर्ण इंद्रियहैं—और सब इंद्रि-  
योंके विषयहैं—तम मोहहै—ज्योति ज्ञानहै—  
जैसे लोकका सर्ग आदिहैं—ऐसा पुरुषका  
गर्भका आधानहै—जैसा कृतयुगहै—  
तैसा बाल्यहै जैसा त्रेतायुग तैसा  
यौवन, जैसा द्वापर तैसी स्थविरता,  
जैसा कलियुग तैसी आतुरता और जैसा  
युगांत तैसा मरण है इसी प्रकार अनु-  
मानसे अनुक्तभी लोक और पुरुषके  
अवयव विशेषोंकी समानताको हे अग्नि-  
वेश ! जानै ॥ ४ ॥

इत्येवंवादिनं भगवन्तमात्रेयमग्नि  
वेश उवाच । एवमेतत्सर्वमनपवादं य  
थोक्तं भगवता लोकपुरुषयोः सामा  
न्यं किन्तु अस्य सामान्योपदेशस्य  
प्रयोजनमिति ॥ ५ ॥

इस प्रकार कहते हुये भगवान् आत्रे-  
यको अग्निवेश बोले—कि, जैसे भगवान् ने  
यह लोक पुरुषकी समानता कही है  
यह सब इसी प्रकार अनपवादहै; परंतु  
इस सामान्य उपदेशका प्रयोजन क्या है  
इति ॥ ५ ॥

भगवानुवाच । कथमग्निवेश ! सर्व  
लोकमात्मन्यात्मानश्च सर्वलोके  
समनुपश्यतस्तस्यात्मबुद्धिरुत्पद्य  
ते इति । सर्वलोकं हि आत्मनि प  
श्यतो भवति आत्मैव सुखदुःखयोः  
कर्त्तानान्य इति कर्मात्मकत्वाच्च ।  
हेत्वादिभिरयुक्तं सर्वलोकोऽहमि  
ति विदित्वा ज्ञानं पूर्वमुत्थाप्य तेऽप  
वर्गायेति ॥ ६ ॥

भगवान् बोले—कि, हे अग्निवेश ! सब  
लोकको आत्मामें और आत्माको सब  
लोकमें सम्यक् देखते हुये उसकी कैसे  
आत्मबुद्धि उत्पन्न न होगी क्योंकि सर्व  
लोकको आत्मामें देखते हुयेको आत्माही  
सुख दुःखका कर्त्ता है अन्य नहीं यह बुद्धि  
हीगी और कर्मात्मक होनेसे अयुक्त वह  
सर्व लोक में है यह जानकर ज्ञानपूर्वक  
उत्थान अपवर्गके लिये करेगा ॥ ६ ॥

तत्र संयोगापेक्षी लोकशब्दः षड्धा  
तु स मुदा यो हि सामान्यतः सर्वलोकः  
तस्य हेतु रूपत्तिर्बुद्धिरुपप्लवो वियो  
गश्च । तत्र हेतु रूपत्तिकारणमुत्प  
त्तिर्जन्मबुद्धिराप्यायनमुपप्लवोदुः

स्वागमः पञ्चधातुविभागो वियोगः ।  
सजीवापगमः सप्राणनिरोधः सभ  
ङ्गः सलोकस्वभावः ॥ ७ ॥

उसमें संयोगापेक्षी लोक शब्द है, सामान्यसे छः धातुओंका समुदाय सर्व लोक है उसका हेतु उत्पत्ति, वृद्धि, उपप्लव, वियोग है, उसमें हेतु उत्पत्तिको कारण होता है, उत्पत्तिको जन्म वृद्धिको आप्यायन, उपप्लवको दुःखका आगमन छः धातुओंके विभागको वियोग कहते हैं वही जीवका अपगम, वही प्राणविरोध, वही भंग, वही लोकका स्वभाव है ॥ ७ ॥

तस्य मूलं सर्वोपप्लवानां प्रवृत्तिर्निवृ  
त्तिरुपरमश्च प्रवृत्तिर्दुःखं निवृत्तिः सुख  
मितियज्ज्ञानमुत्पद्यते तत्सत्यम् ।  
तस्य हेतुः सर्वलोकसामान्यज्ञानमे  
तत्प्रयोजनं सामान्योपदेशस्येति ॥

उसका मूल सब उपप्लवोंकी प्रवृत्ति, निवृत्ति और उपरम है, प्रवृत्ति, दुःख और निवृत्ति सुख है, यह जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह सत्य है तिसका हेतु सर्व लोक सामान्यज्ञान है यह प्रयोजन सामान्योपदेशका है ॥ ८ ॥

अथाग्निवेश उवाच । किं मूलाभ  
गवन् ! प्रवृत्तिर्निवृत्तौ वा उपाय  
इति ॥ ९ ॥

इसके अनन्तर अग्निवेश बोले—कि, हे भगवन् ! प्रवृत्तिका क्या मूल है और निवृत्ति का कौन उपाय है ॥ ९ ॥

भगवानुवाच । मोहेच्छाद्वेषकर्म  
मूला प्रवृत्तिस्तज्जाह्वहङ्कारसङ्गस  
न्देहाभिसंप्लवाभ्यवपातविप्रत्यया  
विशेषानुपायाः । तरुणमिव द्रुम  
मतिविपुलशाखास्तरवोऽभिभूयः  
पुरुषमवतत्योत्तिष्ठन्ते यैरभिभूतो  
न सत्तामतिवर्त्तते ॥ १० ॥

भगवान् बोले—कि, मोह, इच्छा, द्वेष, कर्म ये प्रवृत्ति के मूल हैं और उस प्रवृत्तिसे उत्पन्न अहंकार संग, संदेह, अभिसंप्लव, अभ्यवपात, विप्रत्यय, अविशेष, अनुपाय जो हैं वे तरुण द्रुमका अति विपुल शाखावाले वृक्ष जैसे अभिभव करते हैं तैसेही पुरुषको आच्छादन करके अहंकार आदि उठते हैं, जिन करके अभिभूत यह सत्ताका अवलंघन नहीं करता है ॥ १० ॥

तत्रैवं जातिरूपवित्तबुद्धिशीलवि  
द्याभिजनवयोवीर्यप्रभावसम्प  
न्नोऽहमित्यहङ्कारः ॥ ११ ॥

उसमें इस प्रकार जाति, रूप, वित्त, ( धन ) बुद्धि, शील, विद्या, अभिजन, अवस्था, वीर्य, प्रभाव इनसे संपन्न मैं हूँ यह अहंकार है ॥ ११ ॥

यन्मनोवाक्कायकर्मनापवर्गाय स  
सङ्गः ॥ १२ ॥

जो जो मन, वाक्, काया, कर्म, अपवर्ग के लिये न हो वह संग है ॥ १२ ॥



कर्मफलमोक्षपुरुषप्रेत्यभावादयः  
सन्तिवानेतिसंशयः ॥ १३ ॥

कर्म, फल, मोक्ष, पुरुष, प्रेत्यभाव  
आदि हैं वा नहीं यह संशय है ॥ १३ ॥

सर्वास्ववस्थास्वनन्योऽहमहंस्व  
ष्टास्वभावसंसिद्धोऽहमहंशरीरेन्द्रि  
यबुद्धिस्मृतिविशेषराशिरितिग्र  
हणमभिसंप्लवः ॥ १४ ॥

सबमें अवस्थित में अनन्य हूं, मैं  
स्वष्टा हूं, स्वभावसंसिद्ध हूं, मैं शरीर,  
इंद्रिय, बुद्धि, स्मृतिविशेषकी राशि हूं,  
यह ग्रहण ( ज्ञान ) को अभिसंप्लव है ॥ १४ ॥

मममातृपितृभ्रातृदारापत्यबन्धु  
मित्रभृत्यगणोगणस्यचाहमित्य  
भ्यवपातः ॥ १५ ॥

मेरे माता, पिता, भ्राता, दारा, अपत्य,  
बंधु, मित्र, भृत्यगण हैं और गणका में  
हूं यह अभ्यवपात है ॥ १५ ॥

कार्यकार्यहिताहितेशुभाशुभे  
षुविपरीताभिनिवेशोविप्रत्ययः १६

कार्य, अकार्य, हित, अहित, शुभ, अशुभ  
में जो विपरीत अभिनिवेश ( आग्रह )  
उसको विप्रत्यय कहते हैं ॥ १६ ॥

ज्ञाज्ञयोःप्रकृतिविकारयोःप्रवृत्ति  
निवृत्तयोश्चासामान्यदर्शनविशे  
षः ॥ १७ ॥

ज्ञानी अज्ञानी, प्रकृति, विकार, प्रवृत्ति,  
निवृत्ति इनको सामान्य देखना अवि-  
शेष है ॥ १७ ॥

प्रोक्षणानशनाग्निहोत्रत्रिपवणाभ्यु  
क्षणवाहनयजनयाजनयाचनस  
लिलहुताशनप्रवेशनादयःसमा  
रम्भाःप्रोच्यन्तेह्यनुपायाः ॥ १८ ॥

प्रोक्षण, अनशन, अग्निहोत्र त्रिकाल  
स्नान, अभ्युक्षण, आवाहन, यजन, याजन,  
याचन, सलिल, हुताशन प्रवेशन आदि  
समारंभ अनुपाय कहाते हैं ॥ १८ ॥

एवमयमधीश्रुतिस्मृतिरहङ्कारा  
भिनिविष्टःसंसक्तःसंशयोऽभि  
संप्लुतबुद्धिरन्यवपतितोऽन्यथादृ  
ष्टिर्विशेषग्राहीविमार्गगतिर्निवा  
सवृक्षःसत्त्वशरीरदोषमूलानामूलं  
सर्वदुःखानांभवति ॥ १९ ॥

इस प्रकार यह अबुद्धि, अस्मृति,  
अहंकारमें अभिनिविष्ट, संक्त और संशय-  
सहित अभिसंप्लुतबुद्धि अभ्यवपतित है  
अन्यथा दृष्टि विशेषका ग्राही विमार्ग-  
गामी निवास वृक्ष सत्त्व शरीर दोषोंके  
मूल, सब दुःखोंका मूल, आश्रय  
होता है ॥ १९ ॥

इत्येवमहंकारादिभिर्दोषैर्भास्य  
माणोनातिवर्त्ततेप्रवृत्तिःसामूल  
मघस्य ॥ २० ॥

इस प्रकार अहंकार आदि दोषोंसे  
भ्राम्यमाण हुआ प्रवृत्तिका अवलंघन  
नहीं करताहै वह प्रवृत्ति पापका  
मूलहै ॥ २० ॥

निवृत्तिरपवर्गस्तत्परंप्रशान्ततद  
क्षरंतद्रहसमोक्षः । तत्रमुमुक्षूणा  
मुदयनानिव्याख्यास्यामः । तत्र  
लोकदोषदर्शिनोमुमुक्षोरादितए  
वाचार्याभिगमनंतस्योपदेशानु  
ष्ठानम् ॥ २१ ॥

निवृत्ति अपवर्ग है, उससे परे प्रशान्त  
वह है, जो अक्षरब्रह्महै, वह मोक्षहै,  
उसमें मुमुक्षुताके उदयनोंका व्याख्यान  
करते हैं, उसमें लोकके दोषदर्शक  
मुमुक्षुका प्रथमही आचार्यके समीप  
गमनहै, उसके उपदेशका अनुष्ठानहै २१

अग्रेरेवोपचर्याधर्मशास्त्रानुगमनं  
तदर्थवबोधस्तेनावष्टम्भःतत्रयथो  
क्ताःक्रियाःसतामुपासनमसतांप  
रिवर्जनंनसङ्गतिर्दुर्जनेनसत्यंस  
र्वभूतहितमपरुषमनतिकालेपरी  
क्ष्यवचनंसर्वप्राणिषुआत्मनीवा  
वेक्षासर्वासामस्मरणमसंकल्पन  
मप्रार्थनाअनभिभाषणञ्चस्त्रीणां  
सर्वपरिग्रहत्यागःकौपीनंप्रच्छा  
दनार्थधातुरागनिवसनंकन्थासी  
वनहेतोःसूचीपिप्पलकंशौचाधा

नहेतोःजलकुण्डिकादण्डधारणं  
भक्ष्यचर्यार्थपात्रंप्राणधारणां  
र्थमेककालमग्राम्योयथोपपन्नए  
वाव्यवहारः । श्रमापनयनार्थं  
शीर्णशुष्कपर्णतृणास्तरणोपधा  
नंध्यानहेतोःकायनिबन्धनंवनेषु  
अनिकेतवासस्तन्द्रानिद्रालस्यादि  
कर्मवर्जनमिन्द्रियार्थेषुअनुरागोप  
तापनिग्रहःसुप्तस्थितगतप्रेक्षिताहा  
रविहारप्रत्यङ्गचेष्टादिकेषुआर  
म्भेषुस्मृतिपूर्विकाप्रवृत्तिःसत्कार  
स्तुतिगर्हावमानक्षमत्वंक्षुत्पिपासा  
यासश्रमशीतोष्णवातवर्षासुखदुः  
खसंस्पर्शसहत्वंशोकदैन्यद्वेषमद  
मानलोभरागेर्ष्याभयक्रोधादिभि  
रसञ्चलनमहङ्कारादिषूपसर्गसंज्ञा  
लोकपुरुषयोःसर्गादिसामान्यावे  
क्षणंकार्यकालात्ययभययोगार  
म्भेसततमनिर्वदःसत्वोत्साहापव  
र्गायधीधृतिस्मृतिबलाधानंनियम  
नमिन्द्रियाणांचेतसिचेतसआत्म  
न्यात्मनश्चधातुभेदेनशरीरावयवसं  
ख्यानामभीक्षणसर्वकारणबहुःख  
मस्वमनित्यमित्यवभ्युपगमः । स  
र्वप्रवृत्तिषुदुःखसंज्ञासर्वसंन्यासेसु  
खमित्यभिनिवेशेषमार्गोऽपवर्गा

यथतोऽन्यथाबध्यतेइत्युदयना  
निव्याख्यातानि ॥ २२ ॥

अग्निके समान सेवन, धर्मशास्त्रके अनुगमन, उसके अर्थका बोध, उसके संग अवष्टंभ उसमें यथोक्त क्रिया, सत्पुरुषोंकी उपासना, दुर्जनका असंग, सत्य, सब भूतोंका हित और समयपर परीक्षा करके अकठोरवचन, सब प्राणियोंमें आत्माके समान देखना, संपूर्ण स्त्रियोंका अस्मरण, असंकल्प, अप्रार्थन, असंभाषण और संपूर्ण परिग्रहोंका त्याग, कोपीन और प्रच्छादन के लिये धातुसे रंगावस्त्र कंथा सीनेके लिये सूची और पिप्पलक ( सूत ) शौच आदानके लिये जलकुंडिका, दंडधारण, भैक्ष्यचर्याके लिये पात्र, प्राणधारणके लिये एक काल ग्रामभिन्नमें यथायोग्य व्यवहार, श्रम अपनयनके लिये गिरे जो शुष्कपर्णतृण इनका आस्तरण उपधान, ध्यान के हेतु कायाका निर्वन्धन, वनोंमें स्थानके विना वास, तंद्रा, निद्रा, आलस्य, आदि कर्मका वर्जन, इंद्रियोंके विषयोंमें अनुराग और उपतापका निग्रह, सुप्त, स्थित, गत, दर्शन, आहार, विहार, प्रत्यंग, चेष्टा आदि आरंभोंमें स्मरणपूर्वक प्रवृत्ति, सत्कार, स्तुति, निंदा, अवमान इनकी सहना, क्षुधा, पिपासा, आयास, श्रम, शीत, उष्ण, वात, वर्षा, सुख, दुःख संस्पर्श इनकी सहना, शोक, दीनता, द्वेष, मद, मान, लोभ, राग, भय, ईर्ष्या, क्रोध आदिसे असंचलन, अहंकार आदिमें उपसर्गसंज्ञा

लोक पुरुषमें सर्ग आदि सामान्यका देखना, कार्यकालके वीतनेमें भय, योगारंभमें निरंतर अनिर्वेद, ( असंतोष ) सत्व, उत्साह, अपवर्गके लिये बुद्धि, धृति, स्मृति इनके बलका आधान, इंद्रियोंका नियमन-चित्तमें चित्तका आत्मामें आत्माका नियम धातुओंके भेदसे शरीरके अवयवोंका संख्यान, निरंतर संपूर्ण कारणवान् है, अपना नहीं है अनित्य है यह जानना; सब प्रवृत्तियोंमें अध ( पाप ) संज्ञा, सबके संन्यासमें सुख है यह आग्रह, यह मार्ग अपवर्गके लिये है, इससे अन्यथा बंधनको प्राप्त होता है ये सब उदयनके लक्षण कहे हैं २२

भवन्तिचात्र ।

एतैरविमलसत्त्वं शुद्ध्युपायैर्विशु  
ध्यति । मृज्यमान इवादर्शस्तैल  
चेलकचादिभिः ॥ २३ ॥

इसमें ये श्लोक हैं—कि, इन शुद्धिके उपायोंसे अविमल सत्व इस प्रकार शुद्ध होता है जैसे तैल, वस्त्र, केश आदिसे माँजा हुआ आदर्श ॥ २३ ॥

ग्रहाम्बुदरजोधूमनीहारैरसमावृत  
म् । यथार्कमण्डलं भाति भातिस  
त्वं तथा मलम् ॥ २४ ॥

ग्रह, मेघ, रज, धूम, नीहार इनसे अनाच्छादित सूर्यमंडल जैसे भासता है तैसे निर्मल सत्व भासता है ॥ २४ ॥

ज्वलत्यात्मनिरुद्धं तत्सत्त्वं संवृ  
तायने । शुद्धः स्थिरः प्रसन्नार्चिर्दी  
पो दीपाशये यथा ॥ २५ ॥

संवृत अयनरूप आत्मा में भली  
प्रकार रुका हुआ वह सत्व ऐसे प्रका-  
शित होता है शुद्धि दीपक जैसे स्थिर  
प्रसन्न दीपाशय में प्रकाशित होता है २५

शुद्धसत्त्वस्ययाशुद्धासत्याबुद्धिः  
प्रवर्तते । ययाभिनत्यतिबलंमहा  
मोहमयंतमः ॥ २६ ॥

शुद्ध सत्व मनुष्यकी वह सत्वबुद्धि  
प्रवृत्त होती है जिससे महामोहरूप  
अति बलवान् तमको भेदन करता है २६  
सर्वभावस्वभावज्ञोययाभवतिनि  
स्पृहः । योगंययासाधयतेसांख्यः  
सम्पद्यतेयया ॥ २७ ॥

सब भावोंके स्वभावोंका ज्ञाता  
जिससे निस्पृह होता है और जिससे  
योगको साधता है जिससे सांख्य हो-  
ता है ॥ २७ ॥

ययानोपैत्यहङ्कारंनोपास्तेकारणं  
यया । ययानालम्बतेकिञ्चि  
त्सर्वसंन्यस्यतेयया ॥ २८ ॥

जिससे अहंकारको प्राप्त नहीं होता,  
जिससे कारणकी उपासना नहीं करता,  
जिससे किञ्चित् आलंबकी प्राप्त नहीं  
होता, जिससे सबका संन्यास करता है ॥

यातिब्रह्माययानित्यमजरःशान्त  
मक्षरम् । विद्यासिद्धिर्मतिर्मैधा  
प्रज्ञाज्ञानञ्चसामता ॥ २९ ॥

जिससे नित्य अजर, शान्त, अव्यय  
ब्रह्मको प्राप्त होता है और वही विद्या-

सिद्धि, मति, मेधा, प्रज्ञा और ज्ञान मा-  
नी है ॥ २९ ॥

लोकेविततमात्मानंलोकश्चात्मानि  
पश्यतः । परावरदृशःशान्तिर्ज्ञा  
नमूलाननश्यति ॥ ३० ॥

लोकमें विदित आत्माको आत्मा में  
लोकको देखते और पर अवरके दृष्टाकी  
ज्ञानका मूल शान्ति नष्ट नहीं होती ३० ॥

पश्यतःसर्वभूतानिसर्वावस्थासुस  
र्वदा । ब्रह्मभूतस्यसंयोगोनशुद्ध  
स्योपपद्यते ॥ ३१ ॥

संपूर्ण अवस्थाओंमें सब भूतोंकी  
सर्वदा देखते हुये और ब्रह्मभूत शुद्धका  
संयोग नहीं होता ॥ ३१ ॥

नात्मनःकारणाभावाल्लिङ्गमप्यु  
पलभ्यते । ससर्वकारणत्यागान्मु  
क्तइत्यभिधीयते ॥ ३२ ॥

और आत्माका लिंगभी कारणके  
अभावसे उपलब्ध नहीं होता—वह  
संपूर्ण कारणोंके त्यागसे मुक्त कहाता है ३२

विपापंविमर्जःशान्तंपरमक्षरमव्य  
यम् । अमृतंब्रह्मनिर्वाणंपर्यायैः  
शान्तिरुच्यते ॥ ३३ ॥

विपाप, विमर्ज, शान्त, पर, अक्षर, अव्यय,  
अमृत, ब्रह्म, निर्वाण इन पर्यायोंसे शान्ति  
कही है ॥ ३३ ॥

एतत्तत्सौम्यविज्ञानंयज्ज्ञात्वाभु

क्तसंशयाः । मुनयःप्रशमंजमु  
वर्तिमोहरजःस्पृहाः ॥ ३४ ॥

हे सौम्य ! यह वह विज्ञान है जिसको जानकर मुक्तसंशय और मोह, रज, स्पृहा से रहित मुनि प्रशान्तिको प्राप्त हुये इति ॥ ३४ ॥

तत्रश्लोकौ ।

सप्रयोजनमुद्दिष्टलोकस्यपुरुषस्य  
च । सामान्यमूलमुत्पत्तौनिवृत्तौ  
मार्गएवच ॥ ३५ ॥

उसमें ये दो श्लोक हैं—कि, लोक और पुरुषका प्रयोजन सहित उत्पत्तिका मूल सामान्य और निवृत्तिका मार्ग कहा ३५

शुद्धसत्त्वसमाधानंसत्यावुद्धिश्चनै  
ष्ठिकी ॥ विचयेपुरुषस्योक्तानिष्ठाच  
परमर्षिणा ॥ ३६ ॥

और शुद्धसत्त्वका समाधान और नैष्ठिकी सत्यवृद्धि और विचयमें पुरुषकी निष्ठा परमर्षिने कही है ॥ ३६ ॥

इति पुरुषविचयं शरीरं समाप्तम् ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

शरीरविचयः ।

इसके अनंतर शरीरविचय शरीरका व्याख्यान करते हैं कि—

शरीरविचयःशरीरोपकारार्थमि  
ष्यतेभिषग्विद्यायाम् । ज्ञात्वाहि  
शरीरतत्त्वंशरीरोपकारकरेषुभावे

पुज्ञानमुत्पद्यतेतस्माच्छरीरविच  
यंप्रशंसन्तिकुशलाः ॥ १ ॥

शरीरका विचय शरीरके उपकारार्थ इष्ट है क्योंकि शरीरके तत्त्वको जानकर शरीरके उपकारक भावोंमें ज्ञान पैदा होता है तिससे कुशल मनुष्य शरीरके विचयकी प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

तत्रशरीरं नामचेतनाधिष्ठानभूतंप  
ञ्चभूतविकारसमुदायात्मकम् ॥ २ ॥

उसमें शरीर नाम चेतनका अधिष्ठान-भूत पंचभूतोंके विकारोंका समुदायरूप है ॥ २ ॥

समयोगवाहिनोयदाह्यस्मिच्छरी  
रेधातवोवैषम्यमापद्यन्तेतदायं  
क्लेशंविनाशंवाप्राप्नोतिवैषम्यगम  
नंवापुनर्धातूनांवृद्धिहासगमनम  
कात्स्न्येन ॥ ३ ॥

क्योंकि जब इस शरीरमें समयोग वाहिनी धातु विषम हो जाती है तब यह पुरुष क्लेश वा विनाशको वा धातुओंके वैषम्य गमनको प्राप्त होता है फिर धातुओंकी वृद्धि और न्यूनता असंपूर्ण रूपसे होते हैं ॥ ३ ॥

प्रकृत्याचयौगपद्येनतुविरोधिनां  
धातूनांवृद्धिहासौभवतः ॥ ४ ॥

और प्रकृतिसे युगपत् ( एकवार ) भी विरोधि धातुओंके वृद्धि हास होते हैं ॥ ४ ॥

यद्धियस्यधातोर्वृद्धिकरंतत्ततोवि  
परीतगुणस्यधातोःप्रत्यवायकर  
न्तुसम्पद्यते । तदेवतस्माद्भेषजं  
सम्यगवधार्यमाणंयुगपन्न्यूनाति  
रिक्तानांधातूनांसाम्यकरंभवति  
अधिकमपकर्षतिन्यूनमाप्याय  
यति । एतावदेवहिभेषज्यप्रयो  
गेफलमिष्टंस्वस्थवृत्तानुष्ठानञ्चया  
वद्धातूनांसाम्यंस्यात् ॥ ५ ॥

जो पदार्थ जिस धातुकी वृद्धिका  
कर्ता है वह उससे विपरीत गुणवान्  
धातुका नाशकारक हो जाता है और  
वही तिससे भली प्रकार निश्चय किया  
भेषज एकवार ऊन अतिरिक्त धातुओंकी  
समताकारक होता है अधिककी न्यू-  
नताको और न्यूनकी पुष्टिकी कर  
ताहै इतनाहीं भेषज्यप्रयोगमें फल  
इष्ट कहाहै और स्वस्थ वृत्तका अनु-  
ष्ठान तबतक करै जबतक धातुओंका  
साम्य हो ॥ ५ ॥

स्वस्थस्यापिसमधातूनांसाम्यानु  
ग्रहार्थमेवकुशलारसगुणानाहार  
विकारांश्चपथ्यायेणेच्छन्तिउप  
योक्तुम् । सात्म्यसमाख्यातानेक  
प्रकारभूयिष्ठांश्चोपयुञ्जानास्तद्वि  
परीतकरणलक्षणसमाख्यातचेष्ट  
यासममिच्छन्तिकर्तुम् ॥ ६ ॥

क्योंकि कुशल मनुष्य स्वस्थकाभी  
सम धातुओंके साम्यके अनुग्रहके अर्थ  
रससे गुणकारी आहारविकारोंके पर्यायसे  
उपयोग करनेकी इच्छा करते हैं सात्म्य  
समाख्यात ( नामके ) अनेक प्रकारोंका  
अधिक उपयोग करते हुये जो हैं  
उससे विपरीतकारी समाख्यात चेष्टासे  
सम करनेकी इच्छा करतेहैं ॥ ६ ॥

देशकालात्मगुणविपरीतानांहिक  
र्मणामाहारविकाराणाञ्चक्रमेणो  
पयोगःसम्यक् । सर्वाभियोगो  
नुदीर्णानांसन्धारणमसन्धारणमु  
दीर्णानाञ्चगतिमतांसाहसानाञ्च  
वर्जनम् । स्वस्थवृत्तमेतावद्धातू  
नांसाम्यानुग्रहार्थमुपदिश्यते ॥ ७ ॥

देश, काल, आत्माके गुणसे विपरीत  
कर्मोंका और आहारविकारोंका जो  
क्रमसे सम्यक् उपयोगहै और जो  
उदीर्णनहींहै उनका सर्वाभियोग और  
उदीर्णोंका संधारण असंधारण और गति-  
मानोंका और साहसोंका वर्जन इतनाहीं  
स्वस्थ वृत्त धातुओंकी समताके अनुग्रहके  
अर्थ कहाहै ॥ ७ ॥

धातवःपुनःशारीराःसमानगुणैःस  
मानगुणभूयिष्ठैर्वापिआहारविहा  
रैरभ्यस्यमानैर्वृद्धिंप्राप्नुवन्ति ।  
हासन्तुविपरीतगुणैर्विपरीतगुणभू  
यिष्ठैर्वाप्याहारैरभ्यस्यमानैः ॥ ८ ॥

और शरीरकी धातु, समान गुणवान् और अधिक समान गुणवान् जो आहार विहारहैं उन आहारोंके अभ्याससे वृद्धिको प्राप्त होतेहैं और जो विपरीत गुण हैं वा जिनमें विपरीत गुण अधिकहैं उनके अभ्याससे न्हासको प्राप्त होतेहैं ॥ ८ ॥

तत्रेशरीरधातुगुणाःसंख्यासामर्थ्यरूपकरास्तद्यथागुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षमन्दतीक्ष्णस्थिरसरमृदुकठिनविषदपिच्छिलश्लक्ष्णखरसूक्ष्मस्थूलसान्द्रद्रवाः ९

उसमें ये शरीरकी धातुओंके गुण संख्याके सामर्थ्य कारकहैं वे ऐसेहैं कि, गुरु लघु शीत उष्ण स्निग्ध रूक्ष मंद तीक्ष्ण स्थिर सर मृदु कठिन विषद पिच्छिल श्लक्ष्ण खर सूक्ष्म स्थूल सान्द्र द्रव ये गुणहैं ॥ ९ ॥

तेषुयेगुरवोधातवोगुरुभिराहारविकारगुणैरभ्यस्यमानैराप्याय्यन्ते लघवश्चहसन्ति । लघवस्तुलघुभिरैवाप्याय्यन्तेगुरवश्चहसन्त्येवमेवसर्वधातुगुणानांसामान्ययोगाद्वृद्धिविपर्ययाद्भासः ॥ १० ॥

उनमें जो धातु गुरुहैं वे गुरु आहारके गुणोंके अभ्याससे पुष्ट होती हैं और लघु न्हासको प्राप्त होती हैं और लघुधातु लघुद्रव्योंसे

पुष्ट होतीहैं गुरु धातु न्हासको प्राप्त होतीहैं इसी प्रकार संपूर्णधातुओंके गुणोंका सामान्य योगसे वृद्धि और विपर्ययसे न्हास होताहै ॥ १० ॥

तस्मान्मांसमाप्याय्यतेमांसेनभूयोन्येभ्यःशरीरधातुभ्यः । तथा लोहितंलोहितेनमेदोमेदसावसावसयाअस्थितरुणास्थनामज्जामज्जयाशुक्रंशुक्रेणगर्भस्त्वामगर्भेण ११

तिससे मांस मांसकी अन्य शरीरकी धातुओंसे अधिक पुष्टि करताहै जैसे रुधिर रुधिरसे मेदा मेदासे वसा वसासे अस्थि तरुणअस्थिसे मज्जा मज्जासे शुक्र शुक्रसे और गर्भ आमगर्भसे पुष्टिको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

यत्रतुण्वंलक्षणेनसामान्येनसामान्यवतामाहारविकाराणामसान्निध्यं स्यात् । सन्निहितानांवापिअयुक्तत्वान्नोपयोगोधृणित्वादन्यस्माद्वाकारणात्सचधातुरभिवर्द्धयितव्यःस्यात् । तस्ययेसमानगुणाःस्युःआहारविकारा असेव्याश्वतत्रसमानगुणभूयिष्ठानामन्यप्रकृतीनामपिआहारविकाराणामुपयोगःस्यात् ॥ १२ ॥

और जहां सामान्यलक्षणसे सामान्यवाले आहारविकारों का असा-

निध्य ( अलाभ ) हो जाय और सन्निहितोंकोभी अयुक्त होनेसे उपयोग न हो घृणावान् होनेसे वा अन्य कारणसे उपयोग न हो उस धातुकी अभिवृद्धि करनी चाहिये उसके जो समान गुणके आहारविकार हों और सेवनके अयोग्य हों उनमें समान गुण जिनमें अधिक हों उनका और अन्य प्रकृतिकेभी आहारविकारों का उपयोग होना चाहिये ॥ १२ ॥

तद्यथा--शुक्रक्षयेक्षीरसर्पिषोरुपयोगमधुरस्निग्धसमाख्यातानाञ्चापरेषामेवद्रव्याणाम् । मूत्रक्षयेपुनरिक्षुरसवारुणीमण्डद्रवमधुराम्ललवणोपक्लेदिनाम् । पुरीषक्षयेकुल्माषमाषकुण्डाजमध्ययवशाकधान्याम्लानाम् । वातक्षयेकटुतिक्तकषायरूक्षलघुशीतानाञ्च । पित्तक्षयेम्ललवणकटुकक्षारोष्णतीक्ष्णानाम् । श्लेष्मक्षयेस्निग्धगुरुमधुरसान्द्रपिच्छिलानांद्रव्याणां कर्मापिचयद्यस्य धातोर्वृद्धि करंतत्तदनुसेव्यम् ॥ १३ ॥

वह ऐसे हैं कि, शुक्रके क्षयमें दूध की का और मधुर स्निग्ध नाम के अन्यहीं द्रव्योंका उपयोग मूत्रके क्षयमें इक्षुका रस वारुणी मंडद्रव मधुर अम्ल लवण उपक्लेदी इनका उपयोग पुरीषके क्षयमें कुल्माष उडद कुण्डाज

मध्ययव शाक धान्य अम्ल इनका उपयोग, वातके क्षयमें कटुक तिक्त कषाय रूक्ष लघु शीत इनका उपयोग, पित्तके क्षयमें अम्ल लवण कटुक क्षार उष्ण तीक्ष्णोंका उपयोग, श्लेष्मके क्षयमें स्निग्ध गुरु मधुर सान्द्र पिच्छिल द्रव्योंका उपयोग हित है और कर्मभी जो जिस धातुका वृद्धिकारी हो वह उस समय सेवनके योग्य है ॥ १३ ॥

एवमन्येषामपिशरीरधातूनांसामान्यविपर्ययाभ्यांवृद्धिहासोयथा कालंकार्याविति । सर्वधातूनामेकैकशोऽतिदेशतश्चवृद्धिहासकराणि व्याख्यातानि भवन्ति ॥ १४ ॥

इसी प्रकार अन्यभी धातुओंके सामान्य विपर्ययोंसे वृद्धि और हास यथा काल में करने इति संपूर्ण धातुओंके और एक-एक के अतिदेशसे वृद्धि और हासके कारकोंका यह व्याख्यान किया ॥ १४ ॥

कृत्स्नशरीरपुष्टिकरास्त्वमेभावाः कालयोगः स्वभावसिद्धिराहारसौष्ठवमविधातश्चेतिबलवृद्धिकरास्त्वमेभावाभवन्ति । तद्यथा--बलवत्पुरुषेदेशेजन्मबलवत्पुरुषेच काले । सुखश्चकालयोगोबीजक्षेत्रगुणसम्पच्चाहारसम्पच्चशरीरसम्पच्चसात्म्यसम्पच्चसत्त्वसम्पच्चस्व



भावसंसिद्धिश्चयौवनञ्चकर्मचसं  
हर्षश्चेति ॥ १५ ॥

संपूर्ण शरीरकी पुष्टिके कारक तो ये भावें हैं कि, काल योग, स्वभाव सिद्धि, उत्तम आहार और अविघात और बलकी वृद्धि करनेवाले, तो ये भाव होते हैं, वे ऐसे हैं कि, बलवान् पुरुषवाले देशमें जन्म और बलवान् पुरुषवाले समयमें जन्म, सुखके समयका योग बीज क्षेत्र गुणकी संपदा और आहारकी संपदा शरीर, सात्म्य सत्त्व इनकी संपदा, स्वभावकी संसिद्धि यौवन और कर्म हर्ष ये सब शरीरके पोषक हैं ॥ १५ ॥

आहारपरिणामकरास्तु इमे भावा  
भवन्ति । तद्यथा उष्मा, वायुः,  
क्लेदः, स्नेहः, कालः, संयोगश्चेति १६

आहारके परिणामकारी तो ये भाव हैं वे ऐसे हैं कि, ऊष्मा वायु क्लेद स्नेह काल और संयोग इति ॥ १६ ॥

तत्र तु खल्वेषामुष्मादीनामाहारा  
परिणामकराणां भावानामिमेक  
मविशेषाः भवन्ति तद्यथा । उष्मा  
पचति वायुरपकर्षति क्लेदः शैथिल्य  
मापादयति स्नेहो मार्दवं जनयति  
कालः पर्य्याप्तिमभिनिर्वर्तयति सं  
योगस्तु एषां परिणामधातुसाम्यक  
रः सम्पद्यते ॥ १७ ॥

और उसमें निश्चयसे इन आहारके परिणामकारी ऊष्मा आदि भावोंकी ये कर्म विशेष हैं वे ऐसे हैं कि, ऊष्मा पचाता है वायु अपकर्ष करता है, क्लेद शिथिलताको करता है, स्नेह मृदुताको जन्माता है काल पूर्णताको करता है संयोग तो इनकी परिणाम धातुओंका साम्य कर्ता होता है ॥ १७ ॥

परिणामतस्त्वाहारस्य गुणाः शरी  
रगुणभावमापद्यन्ते यथा स्वभावमवि  
रुद्धा विरुद्धाश्च विहन्युर्विहताश्च  
विरोधिभिः शरीरम् ॥ १८ ॥

परिणामसे तो आहारके वे गुण शरीरके गुण भावको प्राप्त होते हैं जो यथार्थ अविरुद्ध हों और विरुद्ध तो और विरोधियोंके हते हुये शरीरको नष्ट कर देते हैं ॥ १८ ॥

शरीरधातवस्त्वेवं द्विविधाः संग्रहे  
ण मलभूताः प्रसादभूताश्च । तत्र  
मलभूतास्तेशरीरस्य ये बाधकराः  
स्युस्तद्यथा शरीरच्छिद्रेषु उपदेहाः  
पृथग्जन्मानो बहिर्मुखाः परिपक्वा  
श्च धातवः । प्रकुपिताश्च वात  
पित्तश्लेष्माणो ये चान्येऽपिकेचि  
च्छरीरेतिष्ठन्ति भावाः शरीरस्यो  
पघातायोपपद्यन्ते सर्वास्तान्मला  
न्संप्रचक्ष्महे । इतरास्तु प्रसादे गुर्वा

दीर्घद्रव्यान्तान्गुणभेदेनरसादींश्च  
शुक्रान्तान्द्रव्यभेदेन ॥ १९ ॥

शरीरकी धातु तो इस प्रकार संग्र-  
हसे द्विविधहैं मलभूत और प्रसादभूत,  
उनमें मलभूत वे हैं जो शरीरके बंध-  
कारकहैं, वे ऐसे हैं कि शरीरके छिद्रोंमें  
उपदेह पृथक् २ जन्म वाले हैं और  
बहिर्मुख और परिपक्व धातु हैं और  
प्रकुपित हुये वात पित्त श्लेष्मा और जो  
कोई अन्यभी शरीरमें टिकते हुये भाव  
हैं जो शरीरके उपघातक होते हैं उन  
सबको हम मल कहते हैं इतरोकी तो  
प्रसादमें कहते हैं कि गुरुसे आदि लेकर  
द्रव्यपर्यंत और गुणके भेदसे रस आ-  
दिसे शुक्रपर्यंत द्रव्यके भेदसे ॥ १९ ॥

तेषांसर्वेषामेववातपित्तश्लेष्माणो  
दुष्टादूषयितारोभवन्तिदोषत्वा  
द्वातादीनांपुनर्धात्वन्तरेकालान्त  
रेप्रदुष्टानांविविधाशितपीतियेऽ  
ध्यायेविज्ञानान्युक्तानि एतावत्ये  
वदुष्टदोषगतिर्यावत्संस्पर्शनाच्छ  
रीरधातूनाम् । प्रकृतिभूतानान्तु  
खलुवातादीनांफलमारोग्यंतस्मा  
देषांप्रकृतिभावेप्रयतितव्यंबुद्धि  
मद्भिः ॥ २० ॥

तिन संपूर्णोंकीभी दुष्ट हुये वात पित्त  
श्लेष्मा, दूषणकारी होते हैं और दोष  
होनेसे अन्य में धातु और कालांतरमें

प्रदुष्ट जो वात आदि हैं उनके विज्ञान  
विविधाशित पीतीय अध्यायमें कहे हैं  
इतनीहीं दुष्ट दोषोंकी गति प्रमाणसे है  
जो शरीरकी धातुओंके संस्पर्शसे होती  
है और प्रकृति भूत तो वात आदिकों  
का फल आरोग्य है तिससे बुद्धिमानों  
को इनके प्रकृति भावमें यत्न करना  
चाहिये इति ॥ २० ॥

तत्रश्लोकः ।

सर्वदासर्वथासर्वशरीरवेदयोभिष  
क् । आयुर्वेदसकात्स्न्येनवेदलो  
कसुखप्रदम् ॥ २१ ॥

उसमें यह श्लोक है सब कालमें  
सर्वथा सब शरीरको जो भिषक् जानता  
है वह संपूर्ण सुखदायी आयुर्वेदको  
जानता है इति ॥ २१ ॥

तमैवमुक्तवन्तंभगवन्तमात्रेयम  
ग्निवेशउवाच । श्रुतमेतद्यदुक्तं  
भगवताशरीराधिकारेवचः । कि  
न्नुखलुगर्भस्याङ्गपूर्वमभिनिर्वर्त्त  
तेकुक्षौकुतोमुखंकथंवाचान्तर्गत  
स्तिष्ठति । किमाहारश्चवर्त्तयति  
कथंभूतश्चनिष्क्रामतिकैश्चायमा  
हारोपचारैर्जातस्त्वव्याधिरभिव  
द्धतेसद्योहन्यतेकैःकथञ्चास्यदेवा  
दिप्रकोपनिमित्ताविकाराउपलभ्य  
न्तेआहोस्मिन्नकिञ्चास्यकाला

कालमृत्योर्भावाभावयोर्भगवान्  
ध्यवस्यति । किञ्चास्यपरमायुः  
कानिचास्यपरमायुषोनिमित्ता  
नीति ॥ २२ ॥

तिससे इस प्रकार कहते हुये भगवान्  
आत्रेयको अग्निवेश बोले कि जो भग-  
वान् ने यह वचन शरीरके अधिकारमें  
कहा वह सुना गर्भका अंग निश्चयसे  
कुक्षिमें पहिले क्यों होता है कैसे मुख  
होता है और अंतर्गत कैसे टिकता  
है क्या आहार है कैसे वर्तता है कैसा  
हुआ निकसता है और किन आहार  
विहारों से जात हुआ यह शीघ्र कि-  
नसे नष्ट होजाता है व्याधि रहित ब-  
ढता है और देव आदिके प्रकोप निमित्त  
विकार इसको कैसे होते हैं वा नहीं होते  
हैं और इसके काल अकाल मृत्युओंके  
भाव अभावमें आपने क्या निश्चय  
किया है और इसकी परम आयु क्या है  
इसकी परम आयुके कौन निमित्त हैं २२

तमेवमुक्तवन्तमग्निवेशं भगवान्  
पुनर्वसुरात्रेय उवाच । पूर्वमुक्तमे-  
तद्गर्भावक्रान्तौ यथायमभिनिर्वर्त-  
ते कुक्षौ यच्चास्य यदा सन्तिष्ठतेऽङ्ग-  
जातम् । विप्रतिपत्तिवादास्तत्त्वत्रं  
बहुविधाः सूत्रकारिणामृषीणां स-  
न्तिसर्वेषां तानपि निबोध उच्यमा-  
नान् । शिरःपूर्वमभिनिर्वर्तते कु-

क्षावितिकुमारशिराभरद्वाजः पश्य  
तिसर्वेन्द्रियाणां तदधिष्ठानमिति हृद-  
यमितिकाङ्क्षायनोवाह्नीकभिष-  
क्चेतनाधिष्ठानत्वात् । नाभिरि-  
ति भद्रकाप्य आहारागमइति कृ-  
त्वापक्वगुदमिति भद्रशौनकोमारु-  
ताधिष्ठानत्वात् । हस्तपादमिति  
वडिशस्तत्करणत्वात् पुरुषस्य इ-  
न्द्रियाणीति जनको वैदेहस्तान्य-  
स्य बुद्ध्यधिष्ठानानीति कृत्वा ।  
बुद्धिपरोक्षत्वादचिन्त्यमिति मा-  
रीचिः कश्यपः सर्वाङ्गनिर्वृत्तियुग-  
पदिति धन्वन्तरिः । तदुपपन्नं  
सर्वाङ्गानां तुल्यकालाभिनिर्वृ-  
त्तत्वाद्धृदयप्रभृतानाम् । सर्वा-  
ङ्गानां ह्यस्य हृदयं मूलमधिष्ठान-  
श्च केषांश्चिद्भावानां न च तस्मात्पूर्-  
वाभिनिर्वृत्तिरेषान्तस्माद्धृदयपूर्-  
वाणां सर्वाङ्गानां तुल्यकालाभि-  
निर्वृत्तिः सर्वभावाह्यन्योन्यप्रति-  
बद्धास्तस्माद्यथाभूतं दर्शनम् २३

तिससे इस प्रकार कहते हुये अग्निवे-  
शको भगवान् पुनर्वसु आत्रेय बोले, कि  
यह पहिले गर्भावक्रांतिमें कह आये  
जैसे यह कुक्षिमें उत्पन्न होता है जो  
इसका अंग जात जब भली प्रकार

टिकताहै और विप्राप्ति पत्ति ( विवाद ) के वाद तो इसमें बहुत प्रकारके सूत्रकारक संपूर्ण ऋषियोंके हैं, उनकोभी मेरे कहे हुयोंको तू जान कि पहिले कुक्षिमें शिर पैदा होताहै यह कुमारशिराभरद्वाज देखताहै क्योंकि वह संपूर्ण इंद्रियोंका अधिष्ठानहै हृदय होताहै यह कांकायन वाल्हीक भिषक् कहते हैं क्योंकि वह चेतनका अधिष्ठानहै, नाभि होतीहै यह भद्रकाप्य, क्योंकि आहारका आगम उससे है पक्क गुद होताहै यह भद्रशौनिक क्योंकि वह मारुतका अधिष्ठान है हस्त पाद होतेहैं यह वडिश, तिनको कारण होनेसे, पुरुषकी इंद्रिय होती हैं यह जनक वैदेह क्योंकि वे इसकी बुद्धिका अधिष्ठानहैं, बुद्धिका परोक्ष होनेसे अचिंत्यहै यह मारीचिकश्यप, सब अंगकी निर्वृत्ति एकवार होती है यह धन्वंतरि कहतेहैं तिससे उपपन्नहै कि सब अंगोंको तुल्य कालमें अभिनिर्वृत्त होनेसे हृदय आदि सब अंगोंका इसका हृदय मूल और अधिष्ठानहै, किन्हीभी इन भावोंकी तिससे पूर्व अभिनिर्वृत्ति नहीं है तिससे हृदय पूर्वक सब अंगोंकी एक कालमें अभिनिर्वृत्ति होती है क्योंकि सब भाव अन्योन्य प्रतिबद्ध होते हैं तिससे दर्शन ( शास्त्र ) यथार्थ है ॥ २३ ॥

गर्भस्तुखलुमातुःपृष्ठाभिमुखऊर्ध्व  
शिराःसंकुच्याङ्गान्यास्तेजरायु

वृतःकुक्षौ । व्यपगतपिपासाबुभु  
क्षस्तुखलुगर्भःपरतन्त्रवृत्ति  
मतिरमाश्रित्यवर्त्तयतिउपस्नेहोप  
स्नेदाभ्याम् । गर्भस्तुसदसद्भूताङ्गा  
वयवस्तदन्तरंह्यस्यलोमकूपायनै  
रुपस्नेहःकश्चिन्नाभिनाड्ययनैःना  
भ्यांह्यस्यनाडीप्रसक्तासानाभ्या  
श्चामरामराचास्यमातुःप्रसक्ताहृ  
दयेमातृहृदयंह्यस्यताममरामभिसं  
पुवतेशिराभिःस्यन्दमानाभिः २४

और गर्भ तो निश्चयसे माताके पृष्ठ के अभिमुख ऊर्ध्वशिर हुआ अंगोंके संकोचसे कुक्षिके मध्यमें टिके हैं और पिपासा क्षुधा रहित गर्भ अन्यके आधीन हुआ माताके आश्रयसे उपस्नेह स्वेदको प्राप्त हुआ वर्त्तताहै और सत् असत् भूत है अंगके अवयव जिसके ऐसा गर्भ होताहै उसके अनंतर इसका लोम-कूपोंके अयनोंसे उपस्नेह होताहै और कोई उपस्नेह नाभिकी नाडीके अयनोंसे होता है क्योंकि नाभिमें इसकी नाडी प्रसक्त है और उस नाडीमें छोटी २ इसकी माताकी नाडी प्रसक्त हैं इसके हृदयमें माताका हृदय प्रसक्त है उस अवर नाडीके सन्मुख भली प्रकार स्पंदमान शिराओंसे संप्लव ( चेष्टा ) करता है ॥ २४ ॥

सतस्यरसोसर्वबलवर्णकरःसम्पद्य  
तेच । सचसर्वरसवानाहारःस्त्रिया  
ह्यापन्नगर्भायाःस्त्रिधारसःप्रतिपद्यते  
स्वशरीरपुष्टयेस्तन्यायगर्भवृद्ध  
येचसतेनाहारेणोपस्तब्धोवर्त्तय  
तिअन्तर्गतः ॥ २५ ॥

वह रस उसके संपूर्ण बल वर्ण का-  
रक आहार है क्योंकि प्राप्त गर्भ स्त्रीको  
तीन प्रकारसे रस प्राप्त होते हैं कि  
अपने शरीरकी पुष्टि और दूध और  
गर्भकी वृद्धिके लिये, वह गर्भ उस आ-  
हारसे उपयुक्त हुआ अंतर्गत होकर  
वर्त्तता है ॥ २५ ॥

सचोपस्थितकालेजन्मनिप्रसूति  
मारुतयोगात्परिवृत्त्याऽवाक्शिरा  
निष्क्रामत्यपत्यपथेन । एषाप्रकृ  
तिर्विकृतिरतोऽन्यथापरन्त्वतएव  
स्वतन्त्रवृत्तिर्भवति ॥ २६ ॥

और वह उपस्थित कालमें जन्मके  
समय प्रसूति मारुतके योगसे उलटा  
होकर नीचे शिर किये अपत्यके मार्गसे  
निकसताहै यह तो प्रकृतिहै और विकृति  
इससे अन्यथा है, परंतु इससेही स्वतंत्र  
वृत्ति होता है ॥ २६ ॥

तस्याहारोपचारौजातिसूत्रीयोप  
दिष्टौअविकारकरौचाभिवृद्धिक  
रौभवतः । ताभ्यामेवचसेविता

भ्यांविषमाभ्यांजातंसद्यअपहन्यते  
तरुरिवाचिरव्यपरोपितोवातात  
पाभ्यामप्रतिष्ठितमूलः ॥ २७ ॥

उसके आहार उपचार जो जात  
सूत्रीयमें कहेहुये अविकारकारी और  
अभिवृद्धिकारी होते हैं और उनकेही  
विषम सेवनसे जात समयमेंही इस  
प्रकार शीघ्र नष्ट होजाताहै जैसे प्रथ-  
महीं व्यथाके विना लगाया वृक्ष वात  
आतपसे अप्रतिष्ठित मूल होकर नष्ट  
होताहै ॥ २७ ॥

आप्तोपदेशादद्भुतरूपदर्शनात्स  
मुत्थानलिङ्गचिकित्सितविशेषा  
चदोषप्रकोपानुरूपाश्चदेवादिप्रको  
पनिमित्ताश्चविकाराःसमुपलभ्य  
न्ते ॥ २८ ॥

आप्तके उपदेशसे अद्भुत रूपके  
दर्शनसे समुत्थान लिंग चिकित्साके  
विशेष और दोषोंके प्रकोपके अनुरूप  
देव आदिके प्रकोप निमित्तके विकारभी  
उपलब्ध होतेहैं ॥ २८ ॥

कालाकालमृत्यौस्तुखलुभावा  
भावयोरिदमध्यवसितंनः । यःक  
श्चिन्म्रियतेसर्वःकालएवसाम्रिय  
तेनहिकालच्छिद्रमस्तीत्येकेभा  
षन्ते । तच्चासम्यक्नह्यच्छिद्रता

सच्छिद्रतावाकालस्योपपद्यते

कालस्वलक्षणभावात् ॥ २९ ॥

और काल अकाल मृत्युके होने न होनेमें तो हमने यह निश्चय किया है—कि, जो कोई सन्ध मरता है वह कालसे मरता है क्योंकि कालमें छिद्र नहीं है यह कोई कहते हैं सो ठीक नहीं है क्योंकि कालकी अच्छिद्रता सच्छिद्रता हां नहीं सकती क्योंकि कालका स्वलक्षण स्वभाव यही है ॥ २९ ॥

तथाहुरपरेयोयदाप्रियतेसतस्य  
नियतोमृत्युकालःससर्वभूतानां  
सत्यःसमक्रियत्वादिति । तदपि  
चान्यथार्थग्रहणंनहिकश्चिन्नप्रि  
यतेइतिसमाक्रियःकालःपुनरायुपः  
प्रमाणमधिकृत्योच्यते ॥ ३० ॥

तैसेही अपर कहते हैं—कि, जो जिस कालमें मरता है वह उसका नियत मृत्यु-काल है वह समक्रिय होनेसे सब भूतोंमें सत्य है और वहभी अन्यथा अर्थका ग्रहण है कि, कोई नहीं मरता है और काल समक्रिय है यह आयुको प्रमाणके अधिकारकरके कहा है ॥ ३० ॥

यस्यचेष्टयोयदाप्रियतेतस्यसनि  
यतमृत्युकालइतितस्यसर्वेभावाय  
थास्वानियतकालाभविष्यन्ति ।  
तच्चनोपपद्यतेप्रत्यक्षंहाकालाहार  
वचनकर्मणाफलमनिष्टविपर्यये

चेष्टम् । प्रत्यक्षतश्चापलभ्यतेस्व  
लुलालाकालयुक्तिस्तासुतासुअ  
वस्थासुतंतमर्थमभिसमीक्ष्य । त  
यथाकालोऽयमस्यतुव्याधराहार  
स्यौषधस्यप्रतिकर्मणोविसर्गस्य  
चाकालोवेतिलोकेऽप्येतद्भवति ।  
कालेदेवोवर्षत्यकालेदेवोवर्षति  
कालेशीतमकालेशीतंकालेतपत्य  
कालेतपतिकालेपुष्पफलमकाले  
पुष्पफलमिति । तस्मादुभयमस्ति  
कालेमृत्युरकालेचनैकान्तिकम  
त्र । यदिह्यकालेमृत्युर्नस्यान्निय  
तकालप्रमाणमायुःसर्वस्यात् ३१

और जिसको यह इष्ट है कि, जो जब मरता है वह उसका नियत मृत्युकाल है उसके संपूर्ण भाव यथायोग्य नियत काल होते हैं वहभी नहीं होसकता क्यों कि, अकालके आहार वचन कर्मका फल अनिष्ट प्रत्यक्ष है और विपर्ययमें इष्ट प्रत्यक्षसे उपलब्ध होता है—काल अकालकी प्रकटता तिन अवस्थाओंमें तिस अर्थको देखकर होती है वह ऐसे हैं कि, इस व्याधिका आहारका औषधका प्रतिकर्म वा विसर्गका यह अकाल है वा अकाल है लोकमेंभी यह होता है कि, काल में देव वर्षता है कालमें वर्षता है, कालमें शीत अकालमें शीत कालमें तपता है अकालमें तपता है कालमें पुष्पफल

अकालमें पुष्पफल होते हैं इति तिससे कालमें मृत्यु अकालमें मृत्यु ये दोनों हैं इसमें एकांतिक ( एक बात ) नहीं है क्योंकि यदि अकालमें मृत्यु न होय तो सबकी आयुके प्रमाणका काल नियत होता ॥ ३१ ॥

एवंगतेहिताहितज्ञानभकारणस्या  
प्रत्यक्षानुमानोपदेशाश्चाप्रमाणी  
स्युः ये प्रमाणभूताः सर्वतन्त्रेषु यैरा  
युष्याण्यनायुष्याणि चोपलभ्यन्ते  
वाग्वस्तुमेतद्वादमृपयोमन्यन्तेना  
कालमृत्युरस्तीति ॥ ३२ ॥

ऐसा होनेपर हित अहितका ज्ञान निकारण होता और प्रत्यक्ष अनुमान उपदेश ये प्रमाण न होंगे, जो सब शास्त्रोंमें प्रमाणभूत हैं जिनसे आयुष्य और अनायुष्योंकी उपलब्धि होती है इसको वाक् वस्तुमात्र वाद ऋषि मानते हैं जो यह कहते हैं कि, अकाल मृत्यु नहीं है ॥ ३२ ॥

वर्षशतंखलु आयुषः प्रमाणमस्मि  
नूकालेतस्य निमित्तं प्रकृतिगुणात्म  
सम्पत्सात्म्योपसेवनञ्चेति ॥ ३३ ॥

क्योंकि इस कालमें शतवर्ष आयुका प्रमाण है उसका निमित्त प्रकृति और गुणोंकी संपदा और सात्म्य पदार्थोंका उपसेवन है इति ॥ ३३ ॥

तत्र श्लोकाः ।

शरीरं यदुपधातवर्तते क्लिष्टमा  
मयैः । यथाक्लेशं विनाशश्च याति  
ये चास्य धातवः ॥ ३४ ॥

उसमें ये श्लोक हैं कि, जो शरीर जैसा है वह रोगोंसे क्लेशित वर्तता है और क्लेशके अनुसारही विनाशको प्राप्त हो जाता है ॥ ३४ ॥

वृद्धिहासौ तथा चैषां क्षीणानामौष  
धश्च यत् । देहवृद्धिकराभावाव  
लवृद्धिकराश्च ये ॥ ३५ ॥

और जो इसकी धातु हैं और इनके वृद्धि हास जैसे होते हैं और क्षीणोंकी जो औषध है और देहके वर्द्धक और बलके वर्द्धक जो भाव हैं ॥ ३५ ॥

परिणामकराभावायाचतेषां पृथक्  
क्रिया । मलाख्याः सम्प्रसादाख्या  
धातवः प्रश्न एव च ॥ ३६ ॥

परिणामकारी जो भाव हैं उनकी जो पृथक् २ क्रिया हैं, मलकी आख्या ( नाम ) और संप्रसादाख्या ( प्रसन्नता ) धातु और प्रश्न ॥ ३६ ॥

नवको निर्णयश्चास्य विधिवत्सम्प्र  
काशितः । तथा शरीरविचये  
शरीरे परमर्पिणा ॥ ३७ ॥

इन नौका निर्णय इस अध्यायमें विधिसे प्रकाश सत्यरूपसे शरीर विचय शरीरमें परमर्पिने किया ॥ ३७ ॥

इति शरीर विचयः शरीरः समाप्तः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

शरीरसंख्या ।

इसके अनंतर शरीरसंख्या नामके शरीरका व्याख्यान करतेहैं, कि—

शरीरसंख्यामवयवशः कृत्स्नं शरीरं प्रविभज्य सर्वशरीरसंख्यानप्रमाणज्ञानहेतोर्भगवन्तमात्रेयमग्निवेशः प्रपच्छ ॥ १ ॥

शरीरकी संख्या अवयव और शरीरके विभागसे सब शरीरका संख्यान प्रमाण ज्ञानके हेतु भगवान् आत्रेयको अग्निवेशने पूछा ॥ १ ॥

तमुवाच भगवान् आत्रेयः । शृणु मत्तोऽग्निवेश ! सर्वशरीरमभिचक्षणाय तथा प्रश्नमेकमनाः ॥ २ ॥

उसको भगवान् आत्रेय बोले, कि— हे अग्निवेश ! मेरेसे एक मन होकर यथार्थ श्रवणकरो संपूर्ण शरीरको कहते हुये आपके जैसे प्रश्नहैं ॥ २ ॥

यथावच्छरीरेषु त्वचस्तद्यथा—उदकधरा त्वग्वाह्याद्वितीया त्वगसृग्धरा तृतीया सिध्मकिलाससम्भवाधिष्ठाना चतुर्थी कुष्ठसम्भवाधिष्ठाना पञ्चमी अलजीविद्रधीसम्भवाधिष्ठाना षष्ठी तु यस्यां छिन्नायां ताम्यत्यन्ध इव च तमः प्रविशति

यांचाप्यधिष्ठाया रूपि जायन्ते पर्वसन्धिपुरुष्ण रक्तानि स्थूलमूला निदुश्चिकित्स्य तमानीति पदत्वच एताः पडङ्गं शरीरमवतत्यतिष्ठन्ति ।

शरीरमें छः त्वचाहैं वे ऐसेहैं—उदकधरा त्वचा वाह्याहै—दूसरी तो अमुक्धराहै तीसरी सिध्म किलासके संभवका अधिष्ठानहै—चौथी दद्रुकुष्ठके संभवका अधिष्ठानहै—पांचवीं अलजी विद्रधिके संभवका अधिष्ठानहै और छठीं तो वह है जिसके छिन्न होनेपर अंधके समान ग्लानिको प्राप्त होताहै तममें प्रविष्ट होताहै और जिसमें इसके ऐसे अरुपी पर्वोंमें होतेहैं जो कृष्ण रक्त मूलमें स्थूल दुःखसे चिकित्सायोग्य होतेहैं ए छः त्वचा छः अंगवाले शरीरको ढककर टिकती हैं ॥ ३ ॥

तत्रायं शरीरस्याङ्गविभागः तद्यथा—द्वौ बाहू द्वे सक्थिनी शिरो ग्रीवमन्तराधिरिति पडङ्गमङ्गम् ॥ ४ ॥

उसमें यह शरीरके अंगका विभाग है, वह ऐसे है कि दो भुजा दो सक्थि शिरकी ग्रीवा अंतराधि इन छः अंगवान् अंग होता है ॥ ४ ॥

त्रीणि षष्ठ्यधिकानि शतान्यस्थनां सहदन्तो लूखलनखैस्तद्यथा—द्वा त्रिंशदन्तो लूखलानि द्वा त्रिंशदन्ता विंशतिर्नखा विंशतिः पाणि



पादशलाकाश्चत्वार्यधिष्ठानान्या  
 सांचत्वारिपाणिपादपृष्ठानिषष्ठिरं  
 गुल्यस्थानिद्वेपाण्येर्द्विकूर्चाधश्च  
 त्वारःपाण्येर्मणिकाश्चत्वारःपा  
 दयोर्गुल्फाःचत्वार्यरत्नयोरस्थी  
 निचत्वारिजंघयोर्द्वेजानुनोर्द्विकूर्प  
 रयोर्द्वेऊर्वोर्द्वेबाह्वोःसांसयोःद्वाव  
 क्षकौद्वेतालूनिद्वेश्रोणिफलकेएकं  
 भगास्थिपुंसामेढास्थिएकंत्रिकसं  
 श्रितमेकंगुदास्थिपृष्ठगतानिपञ्च  
 त्रिंशत्पञ्चदशास्थीनिग्रीवायां  
 द्वेजत्रुण्येकंहन्वस्थिद्वेहनुमूलव  
 न्धनेद्वेललाटेद्वेअक्ष्णोर्द्वेगण्डयो  
 र्नासिकायांत्रीणिघोणाख्यानिद्व  
 योःपार्श्वयोश्चतुर्विंशतिश्चतुर्विंश  
 तिःपञ्जरास्थीनिचपार्श्वकानि ।  
 तावन्तिचैषांस्थालिकान्यर्बुदा  
 काराणितानिद्विसप्ततिर्द्वौशंखकौ  
 चत्वारिशिरःकपालानिवक्षसि  
 सप्तदशोत्तित्रीणिषष्ठ्यधिकानिश्  
 तान्यस्थामिति ॥ ५ ॥

तीनसौ साठ ३६० अस्थि दंत उलू-  
 खल नख इन सहित होते हैं वे ऐसे हैं  
 कि, वत्तीस दांतोंके उलूखल वत्तीस  
 दांत बीस नख बीस पाणि पादकी  
 शलाका और इनके चार अधिष्ठान चार

पाणि पादके पृष्ठ साठ अंगुलियोंके  
 अस्थि दो पार्पणियोंके दो कूर्चके नीचे  
 चार पाणियोंके मणिक, पादोंके गुल्फ  
 चार अरलियोंके अस्थि चार, चार  
 जंघाओंके दो जानुओंके दो कूर्परोके  
 दो ऊरुओंके दो बाहुओंके और अंसोंके  
 दो अक्षक दो तालुमें दो श्रोणिफलकमें  
 एक भगका अस्थि, पुरुषोंके लिंगास्थि  
 एक त्रिकमें आश्रित एक गुदाका अस्थि  
 पैंतीस पृष्ठके अस्थि पंद्रह अस्थि ग्रीवामें  
 दो जत्रुमें एक हनुका अस्थि दो हनु-  
 मूलके बंधन दो ललाटमें दो नेत्रोंमें दो  
 गंडोंमें तीन नासिकामें घोणा नाम के  
 दोनों पार्श्वोंमें चौबीस चौबीस पंजरके  
 अस्थि पार्श्वक नामके उतनेहीं इनके  
 अर्बुद आकारके स्थालिक होते हैं वे  
 बहत्तर ७२ हुये दो शंखक चार शिरके  
 कपाल सत्रह वक्षस्थलमें हैं, ये तीनसौ  
 साठ अस्थि हैं ॥ ५ ॥

पञ्चेन्द्रियाधिष्ठानानितद्यथा—त्व

ग्निह्वानासिकाक्षिणीकर्णौच ६

पांच इंद्रियोंके अधिष्ठान हैं वे ऐसे  
 हैं त्वचा जिह्वा नासिका अक्षि कर्ण ॥ ६ ॥

पञ्चबुद्धीन्द्रियाणितद्यथा—स्पर्श

र्शनरसनंघ्राणंदर्शनंश्रोत्रमिति ७

पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं वे ऐसे हैं स्पर्शन  
 रसन घ्राण दर्शन श्रोत्र ॥ ७ ॥

पञ्चकर्मन्द्रियाणितद्यथाहस्तौ

पादौपायुरुपस्थोजिह्वाचेति ॥ ८ ॥

पांच कर्मेन्द्रिय हैं वे ऐसे हैं हस्तपाद  
पायु उपस्थ जिह्वा ॥ ८ ॥

हृदयं चेतनाधिष्ठानमेकम् ॥ ९ ॥

चेतन का अधिष्ठान हृदय एक है ॥

दशप्राणायतनानितयथामूर्द्धा

कण्ठो हृदयं नाभिगुदवस्तिरोजः

शुक्रं शोणितमांसमिति । तेषु

दृष्ट्वाणि मर्मसंख्यातानि ॥ १० ॥

दश प्राणोंके आयतन हैं वे ऐसे हैं  
मूर्द्धा कंठ हृदय नाभि गुदा वस्ति ओज  
शुक्र शोणित मांस, इन दशोंमें छः  
पहिले मर्म नामसे संख्यात हैं ॥ १० ॥

पञ्चदशकोष्ठाङ्गानितयथानाभि

श्च हृदयश्च क्लोमचयकृच्छ्रीहाचवृ

क्कौचवस्तिश्च पुरीषाधारश्चामाश

यश्चेति पक्वाशयश्चोत्तरगुदश्चाधर

गुदश्च क्षुद्रान्त्रश्च स्थूलान्त्रश्च वपा

वहनश्चेति ॥ ११ ॥

पंद्रह कोष्ठके अंग हैं वे ऐसे हैं नाभि  
हृदय क्लोम यकृत प्रीहा वृक्क २ दो,  
वस्ति पुरीषका आधार आमाशय, इति  
और पक्वाशय और उत्तरगुद क्षुद्रान्त्र  
और स्थूलान्त्र और वपाका अवहन  
( बंधन ) ॥ ११ ॥

षट्पञ्चाशत्प्रत्यङ्गानि षट्सु अङ्गे

षु उपनिबद्धानि यान्यपरिसंख्या

तानि पूर्वमङ्गेषु परिसंख्यायमानेषु

तान्यन्यैः पर्यायैरिह प्रकाशय व्या

ख्यातानि भवन्ति । तद्यथा—द्वे

जंघा पिण्डके द्वे ऊरु पिण्डके द्वौ

स्फिचौ द्वौ वृषणौ एकं शोफः द्वे उखे

द्वौ वंक्षणौ द्वौ कुकुन्दरौ एकं वस्ति

शीर्षमेकमुदरं द्वौ स्तनौ द्वौ भुजौ

द्वे चाहु पिण्डके चिबुकमेकं द्वावो

द्वौ द्वे मृक्कण्यौ द्वौ दन्तवेष्टकौ एकं ता

लु एका गलशुण्डिका द्वे उपजिह्विके

एका गोजिह्विका द्वौ गण्डौ द्वे कर्णश

ण्कुलिके द्वौ कर्णपुत्रकौ द्वे अक्षिकूटे

चत्वारि अक्षिवर्तमानि द्वे अक्षिकनी

निके द्वे भ्रुवौ एकमवटु चत्वारि पाणि

पादहृदयानि नवमहान्ति छिद्राणि

सप्तशिरसि द्वे चाधः ॥ १२ ॥

ये छप्पन प्रत्यंग हैं छओं अंगोंमें  
उपनिबद्ध जो अपरिसंख्यात हैं पहिले  
अंगोंके परिसंख्या न करनेमें वे अन्य-  
पर्यायोंसे यहां प्रकाशित किये जाते हैं  
वे ऐसे हैं कि दो जंघाओंकी पिण्डिका, दो  
ऊरुओंकी पिण्डिका दो स्फिज दो वृषण,  
एक लिंग दो उखा दो वंक्षण दो कुकुं-  
दर एक वस्ति शीर्ष एक उदर दो स्तन  
दो भुजा दो भुजाओंकी पिण्डिका एक  
चिबुक दो ओष्ठ दो मृक्किणी दो दंत  
वेष्टक एक तालु, एक गलशुण्डिका, दो  
उपजिह्वा एक गोजिह्विका दो गंड दो

कर्णशकुलि दो कर्णपुत्रक दो अक्षि-  
कूट चार अक्षियोंके वर्त्म दो अक्षियोंकी  
कनीनिका दो भ्रू एक अवटु चार  
पाणि पाद हृदय नौ बडे छिद्र सात  
शिरमें और दो नीचे ॥ १२ ॥

एतावद्दृश्यं शक्यमपि निर्देष्टुमनिर्दे-  
श्यमतः परंतर्क्यमेव तद्यथानवस्त्रा  
युशतानिसप्तशिराशतानि द्वे धमनी  
शते पञ्चपेशीशतानिसप्तोत्तरं मर्म  
शतं द्वे पुनः सन्धि शते ॥ १३ ॥

इतना तो दृश्य निर्देश करनेको श-  
क्य है इससे परे अनिर्देश्य तर्क-  
नाके योग्य ही है वह ऐसे है कि  
नौसौ स्त्रायु सातसौ शिरा, दोसौ धमनी  
चारसौ पेशी, एकसौ सातमर्म और  
दोसौ संधि ॥ १३ ॥

त्रिंशच्छतसहस्राणि नवचशतानि  
षट्पञ्चाशत्सहस्राणि शिराधमनी  
नामणुशः प्रविभज्यमानानां मुखा  
ग्रपरिमाणम् । तावन्ति चैव केश  
श्मश्रुलोमानीत्येतद्यथावद्यत्संख्या  
तत्त्वक्प्रभृतिदृश्यमतः परंतर्क्यम् ॥

तीससौ सहस्र और नौसौ, छप्पन, सहस्र  
अणुरूपसे ३०५६०९ विभागकी शिरा धम  
नियोंका मुखाग्र परिमाण है उतनेही  
केश श्मश्रुलोम हैं यह यथावत्परि  
संख्यात किया त्वचा आदि दृश्य है  
इससे परतर्क्य है ॥ १४ ॥

एकेतदुभयमपि न विकल्पयन्ते प्रकृ-  
तिभावाच्छरीरस्य यत्त्वञ्जलिसं-  
ख्येयंतदुपदेक्ष्यामः तत्परंप्रमाण  
मभिज्ञेयंतच्च वृद्धिहासयोगितर्क्य  
मेव तद्यथादशोदकस्याञ्जलयः श-  
रीरेस्वेनाञ्जलिप्रमाणेयत्तु प्रच्य  
वमानं पुरीषमनुबध्नाति अतियोगे  
न । तथामूत्रं रुधिरमन्यांश्च श-  
रीरधातून् यत्तु सर्वशरीरचरं  
बाह्यत्वग्विभर्त्तियत्तु त्वगन्तरेव  
गतं लसीकाशब्दं लभते यच्चोष्मणा  
नुबद्धं लोमकूपेभ्यो निष्पतत्स्वेद  
शब्दमवाप्नोति तदुदकं दशाञ्जलि  
प्रमाणम् ॥ १५ ॥

कोई यह कहते हैं वे दोनों भी शरीरके  
प्रकृतिभावसे विकल्पको प्राप्त नहीं होते  
हैं, जो यह अंजलिकी संख्या है उस का  
उपदेश करते हैं, उससे परे प्रमाण जा-  
नने योग्य हैं और वह वृद्धि हासका  
योगी तर्कनाके योग्य ही है वह ऐसे है  
दशजलकी अंजलि शरीरमें अपनी अंजलि  
के प्रमाणसे होती हैं जो ग्रच्यवमान  
हुआ पुरीषको आति योगसे बांधता है  
तैसेही मूत्र रुधिर और अन्य शरीरकी  
धातुओंको बांधता है और जो सर्व शरीर  
चर है वह बाह्य त्वचाको धारण करता  
है और जो त्वचाके अन्तर व्रणगत है

वह लसीका कहाता है और जो ऊष्मासे अनुवद्ध हुआ लोमकूपोंसे गिरता हुआ स्वेद शब्दको प्राप्त होता है, वह जल दश अंजलि प्रमाण है ॥ १५ ॥

नवाञ्जलयःपूर्वस्याहारपरिणाम धातोर्यद्रसमित्याचक्षते । अष्टौ शोणितस्यसप्तपुरीपस्यपट्श्लेष्म णःपञ्चपित्तस्यचत्वारोमूत्रस्यत्र योवसायाद्वैमेदसःएकोमज्ज्ञः । मस्तिष्कस्यअर्द्धाञ्जलिःशुक्रस्य तावदेवप्रमाणंतावदेवश्लेष्मणश्चो जसइत्येतच्छरीरतत्त्वमुक्तम् १६

आहार परिणाम धातुमें जो पूर्व जल है उसकी नौ अंजलि जिसको रस कहते हैं आठ अञ्जलि शोणितकी सात पुरीषकी छः श्लेष्माकी पांच पित्तकी चार मूत्रकी तीन वसाकी दो मेदा की एक मज्जाकी मस्तिष्ककी अर्धांजलि, शुक्रका भी इतनाहीं प्रमाण है, उतनाहीं श्लेष्मका ओजका प्रमाणहै यह शरीरका तत्त्व कहा ॥ १६ ॥

तत्रयद्विशेषतःस्थूलंस्थिरंमूर्त्तिम द्रुखरकठिनमङ्गनखास्थि-दन्त मांसचर्मवर्चःकेशश्मश्रुनखलोम कण्डरादितत्पार्थिवंगन्धोग्राणश्च

उसमें जो विशेषकर स्थूलहै स्थिर मूर्त्तिमान् गुरु खर कठिन अंगहै नखोंके अस्थि दंत मांस चर्म वर्च केश श्मश्रु

नख लोम कंडरा आदिहैं और गंध घ्राण वह सब पार्थिवहै ॥ १७ ॥

यद्रवसरमन्दस्निग्धमृदुपिच्छिल रसरुधिरवसाकफपित्तमूत्रस्वेदा दितदाप्यंरसोरसनश्च ॥ १८ ॥

और जो द्रव सर मंद स्निग्ध मृदु पिच्छिल रस रुधिर वसा कफ पित्त मूत्र स्वेद आदि हैं और रस और रसन वह आप्य ( जलीय ) है ॥ १८ ॥

यत्पित्तमुष्माचयोयाचक्षाःशरीरेत त्सर्वमाग्नेयंरूपदर्शनश्च ॥ १९ ॥

और जो पित्त और जो ऊष्मा और जो भा ( प्रकाश ) शरीरमें है और रूप और दर्शन वह सब आग्नेयहै १९

यदुच्छ्वासप्रश्वासोन्मेषनिमेषाकुञ्च नप्रसारणगमनप्रेरणधारणादितद्वा यवीयंस्पर्शःस्पर्शनश्च ॥ २० ॥

और जो उच्छ्वास प्रश्वास उन्मेष निमेष आकुंचन प्रसारण गमन प्रेरण धारण आदि और स्पर्श और स्पर्शन वह वायवीयहै ॥ २० ॥

यद्विविक्तमुच्यतेमहान्तिचाणूनि चस्रोतांसितदान्तरिक्षंशब्दःश्रोत्र च ॥ २१ ॥

और जो विविक्त रूपसे कहा जाताहै बड़े और अणु स्रोत और शब्द और श्रोत्र वह सब आंतरिक्षहै ॥ २१ ॥

यत्प्रयोक्तुतत्तत्प्रधानंबुद्धिर्मनश्चे  
तिशरीरावयवसंख्यायथास्थूलभे  
देनावयवानांनिर्दिष्टा ॥ २२ ॥

जो प्रयोक्ताहै और बुद्धि और मन  
वह प्रधानहै ये शरीरके अवयवोंकी  
संख्या अवयवोंका यथा स्थूल भेदसे  
दिखायी ॥ २२ ॥

शरीरावयवास्तुपरमाणुभेदेनापरि  
संख्येयाभवन्त्यतिबहुत्वादतिसौ  
क्ष्म्यादतीन्द्रियत्वाच्च । तेषांसंयो  
गविभागेवायुःपरमाणूनांकारणं क  
र्मस्वभावश्चतदेतच्छरीरसंख्यातम्  
नेकावयवंदृष्टमेकत्वेनसङ्गःसंख्या  
तम् । पृथक्त्वेनापवर्गःतत्रप्रधा  
नमशक्तंसर्वसत्त्वातिवृत्तौनिवर्त  
ते इति ॥ २३ ॥

शरीरके अवयव तो परमाणुके भेदसे  
अपरि संख्येय होतेहैं क्योंकि वे अति  
बहुतहैं अति सूक्ष्महैं अतीन्द्रियहैं, उन पर-  
माणुओंके संयोग विभागमें वायु कारणहै  
और कर्म और स्वभावहैं तिससे यह  
पूरी संख्यात अनेकावयव देखाहै एक-  
त्वसे संगकी संख्यात कहतेहैं और  
पृथक्से अपवर्ग उसमें प्रधान असक्तहै  
संपूर्ण तत्वोंकी अतिवृत्तिमें निवृत्त  
होताहै इति ॥ २३ ॥

तत्रश्लोकौ ।

शरीरसंख्यायोवेदसर्वावयवशो

भिपक् । तदज्ञाननिमित्तेनसमो  
हेननयुज्यते ॥ २४ ॥

उसमें ये दो श्लोकहैं कि संपूर्ण अव-  
यवोंसे जो वैद्य शरीरकी संख्याको जान-  
ताहै तिसके अज्ञान निमित्त मोहसे वह  
युक्त नहीं होताहै ॥ २४ ॥

अमूढोमोहमूलैश्चनदोषैरभिभूयते  
निर्दोषोनिःस्पृहःशान्तःप्रशाम्य  
त्यपुनर्भवः ॥ २५ ॥

और अमूढ वह मोहके मूल दोषोंसे  
तिरस्कृत नहीं होता और निर्दोष  
निःस्पृह शान्त अपुनर्भव वह शान्तिको  
प्राप्त होताहै ॥ २५ ॥

इति शरीरसंख्यःशरीरःसमाप्तः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

जातिसूत्रीयम् ।

इसके अनंतर जातिसूत्रीय शारीरका  
व्याख्यानकरतेहैं कि

स्त्रीपुरुषयोरव्यापन्नशुक्रशोणित  
योनिगर्भाशययोःश्रेयसीप्रजामि  
च्छतोस्तन्निवृत्तिकरं कर्मोपदेक्ष्या  
मः ॥ १ ॥

नहीं व्यापन्न ( नष्ट ) है शुक्र शोणित  
योनिगर्भाशय जिनके श्रेष्ठ प्रजाके  
अभिलाषी उन स्त्री पुरुषोंके उस अर्थ  
की सिद्धिके कर्ता कर्मका उपदेश कर-  
तेहैं ॥ १ ॥

अथाप्येतौस्त्रीपुरुषौश्रेहस्वेदाभ्या  
मुपपाद्यवमनविरेचनाभ्यांसंशो  
ध्यक्रमात्प्रकृतिमापादयेत्संशुद्धौ  
चास्थापनानुवासनाभ्यामुपाचरे  
दुपाचरेच्चमधुरौषधसंस्कृताभ्यां  
घृतक्षीराभ्यांपुरुषंस्त्रियन्तुतैलमां  
साभ्याम् ॥ २ ॥

अथ इन दोनों स्त्री पुरुषोंको स्नेह  
और स्वेदकराकर वमन और विरेचनसे  
संशोधन करके क्रमसे प्रकृतिसे युक्त करै  
और सम्यक् शुद्धोंका स्थापन अनुवास  
नसे उपचार करै और मधुर औषधियोंसे  
संस्कृत घृत और क्षीरसे पुरुषका उप-  
चारकरै और स्त्रीका तो तैल और मांससे  
करै ॥ २ ॥

ततःपुष्पात्प्रभृतित्रिरात्रमासी  
ब्रह्मचारिण्यधःशायिनीपाणिभ्या  
मन्नमज्जर्जरपात्रेभुञ्जानानचका  
श्विदेवमृजामापयेत् ॥ ३ ॥

तिसके अनंतर पुष्पसे लेकर त्रिरात्र  
वैठी रहै ब्रह्मचारिणी अधःशायिनी  
हाथोंसे अजीर्ण पात्रमें अन्न खाती हुई  
कोईभी शुद्धिको न करै ॥ ३ ॥

ततश्चतुर्थेऽहन्येनामुत्साद्यसशिर  
स्कंस्नापयित्वाशुक्लानिवासांस्या  
च्छादयेत्पुरुषश्च ॥ ४ ॥

फिर चौथे दिन उस अशुद्धिको दूर  
करके शिर सहित स्नान कराकर शुद्ध

वस्त्रोंका आच्छादन करावै और पुरुष-  
कोभी शुद्ध वस्त्र धारण करावै ॥ ४ ॥

ततःशुक्लवाससौचस्रग्विणौसुमन  
सावन्योन्यमभिकामौसंवसेतामि  
तिब्रूयात् ॥ ५ ॥

फिर दोनों शुद्ध वस्त्र धारण किये  
माला धारे सुमन हुये अन्योन्यका  
मना करते हुये संवास करो ( अर्थात्  
सोओ ) यह कहै ॥ ५ ॥

स्नानात्प्रभृतियुग्मेष्वहःसुसंवसे  
तांपुत्रकामौतौचायुग्मेपुदुहितृ  
कामौ ॥ ६ ॥

स्नानसे लेकर युग्मदिनोंमें शयनको  
पुत्रके अभिलाषी करै और कन्याके  
अभिलाषी अयुग्म दिनोंमें शयन  
करै ॥ ६ ॥

नचन्युब्जांपार्श्वगतांवासंसेवेत ।  
न्युब्जायावातोवलवान्सयोनिं  
पीडयति । पार्श्वगतायादक्षिणे  
पार्श्वेऽपिदधाति  
गर्भाशयम् । वामेपार्श्वेपित्तद  
स्यापीडितंविदहतिरक्तशुक्रंतस्मा  
दुत्तानासतीबीजंगृह्णीयात् । त  
स्याहियथास्थानमवतिष्ठन्तेदोपाः  
पर्यामिचैनंशीतोदकेनपरिपि  
श्वेत् ॥ ७ ॥

और न्युञ्ज ( ओंघी ) वा पार्श्वमें गत स्त्रीका संग न करै क्योंकि न्युञ्जकी योनिको बलवान् वात, पीडित करताहै, पार्श्वगताके दक्षिण पार्श्वमें गिरता हुआ श्लेष्मा गर्भाशयको ढक लेताहै वाम उस के पार्श्वमें पीडित हुआ पित्त रक्त शुक्रका विदाह करताहै तिससे उत्तान ( सीधी ) हुई बीजको ग्रहण करै क्योंकि तिसके दोष यथास्थान टिकते हैं और तृप्ति होने पर इसका शीतल जलसे परिषेचन करै ७ तत्रात्यशिताक्षुधितापिपासिता भीताविमनाःशोकार्त्ताक्रुद्धाचान्यश्चपुमांसमिच्छन्तीमैथुनेचा तिकामावानारीगर्भनधत्तेविगुणां वाप्रजांजनयति ॥ ८ ॥

उस समय अत्यंत तृप्त भूखी प्यासी भीत उदासीन शोकसे आर्त क्रुद्ध और अन्यपुरुषको चाहती और अतिमैथुनकी इच्छावती नारी गर्भको धारण नहीं करती वा निर्गुण प्रजाको जनतीहै ॥ ८ ॥

अतिबालामतिवृद्धादीर्घरोगिणी मन्येनवाविकारेणोपसृष्टां वर्जयेत् ॥ ९ ॥

अत्यंत बाल अति वृद्ध दीर्घ रोगिणी और अन्य विकारसे संयुक्त जो हो उनको वर्जदे ॥ ९ ॥

पुरुषेऽप्येतएवदोषाः । अतःसर्व दोषवर्जितौस्त्रीपुरुषौसंसृज्येया ताम् ॥ १० ॥

पुरुषमेंभी ये ही दोषहैं इससे सब दोषोंसे वर्जित स्त्री पुरुष संसर्गको प्राप्त हों ॥ १० ॥

सजातहर्षौमैथुनेचानुकूलाविष्ट गन्धंसास्तीर्णसुखंशयनमुपकल्प्य मनोज्ञंहितमशनमशित्वादक्षिण पादेनपुमान्वामपादेनस्त्रीचाराहे तत्रमंत्रंप्रयुज्जीत । अहिरसिआयुरसिसर्वतःप्रतिष्ठासिधातात्वादधातुविधातात्वादधातुब्रह्मवर्चसाभवेदिति ॥ ११ ॥

आनंदसे युक्त मैथुनमें अनुकूल हुये और इष्टगंध सुंदरआस्तरण सुख शयन वनाकर मनोज्ञ हित भोजनको खाकर ( अत्यंत भोजनके त्यागी दोनों ) दक्षिण पादसे पुरुष और वाम पादसे स्त्री शय्या पर आरोहण करें—उससमय यह मंत्र पढ़े कि अहि रसि विहरसि आयुरसि सर्वतः प्रतिष्ठासि धातात्वादधातु विधाता त्वादधातु ब्रह्ममर्चसाभव इति अर्थ मंत्रका यह है कि तू आहार विहारकरतीहै आयुरूपहै सर्वत्रस्थितहै धाता और विधाता तेरेमें आधान करो तू ब्रह्मतेज वालीहो ॥ ११ ॥

ब्रह्माबृहस्पतिर्विष्णुःसोमःसूर्यस्तथाश्विनौ । भगोऽथमित्रावरुणौपुत्रंवीरंदधातुमे ॥ १२ ॥

और ब्रह्मा बृहस्पति विष्णु सोम सूर्य

और अश्विनी कुमार भग और मित्रा  
वरुण मुझे वीर पुत्रको दो ॥ १२ ॥

इत्युक्तासंवसेताम् ॥ १३ ॥

यह कहकर दोनों शयन करें ॥ १३ ॥

साचेदेवमासीतवृहन्तमवदातंह  
र्यक्षमोजस्विनंशुचिसत्वसम्पन्नं  
पुत्रमिच्छेमिति । शुद्धस्नानात्  
प्रभृत्यस्यैमन्थमवदातंयवानामधुस  
र्पिभ्यांसंसृज्यश्वेतायागोःसरूप  
वत्सायाःपयसालोढ्यराजतेकां  
स्येवापात्रेकालेकालेसप्ताहंसततंप्रय  
च्छेत्पानायप्रातश्चशालियवात्र  
विकारान्दधिमधुसर्पिर्भिःपयोभि  
र्वासंसृज्यभुञ्जीत ॥ १४ ॥

यदि वह स्त्री ऐसी आशाकरै कि  
वडा, शुद्ध, हर्यक्ष, ओजस्वी, शुचि, सत्वसे  
संपन्न पुत्रको मैं चाहतीहूँ तो शुद्ध  
स्नानसे लेकर उस स्त्रीको शुद्ध जोका  
मन्थ मधु घी मिलाकर और समान  
रूपहै वत्स जिसका ऐसी श्वेत गौके  
दूधके संग मिलाकर चांदी वा कांसके  
पात्रमें समय २ पर सात दिनतक  
निरंतर पीनेके लिये दे और प्रातः-  
काल शालि जो अन्नके जो विकार हैं  
उनमें दधि मधु घी वा दूधका संसर्ग  
करके भोजन करै ॥ १४ ॥

तथासायमवदातशरणशयनासन  
यानवसनभूषणवेषाचस्यात् १५

तिसी प्रकार सायंकालको शुद्ध,  
घर शय्या आसन यान वसन भूषण  
वेषवाली रहै ॥ १५ ॥

सायंप्रातश्चशश्वत्श्वेतंमहान्तम्  
ऋषभम्आजानेयंहरिचन्दनाङ्घ्रि  
तंपश्येत् । सौम्याभिश्चैनांकथा  
भिर्मनोऽनुकूलानिरुपासीत । सौ  
म्याकृतिवचनोपचारचेष्टांश्चस्त्री  
पुरुषानितरानपिचेन्द्रियार्थानवदा  
तान्पश्येत् । सहचर्यश्चैनांप्रिय  
हिताभ्यांसततमुपचरेयुःतथाभर्त्ता  
नचमिश्रीभावमापयेयाताम् १६

और सायंकाल और प्रातःकाल  
निरंतर श्वेत महान् बैल और अजा-  
पुत्रोंको उनको यह देखे जो हरिचंदनसे  
अंकितहों और सौम्य कथा जो मनके  
अनुकूल है वे इस स्त्रीको सुनावै और  
सौम्य आकारके वचन उपचार चेष्टावाले  
जो स्त्री पुरुष हैं और इतरभी जो शुद्ध  
इंद्रियोंके विषय हैं उनको देखे और  
इस स्त्रीकी जो सहचरी हैं वे भी इसको  
प्रिय और हितसे निरंतर उपचार करें  
तिसी प्रकार भर्त्ताभी करै और मिश्री-  
भाव ( मेल ) को प्राप्त नहो ॥ १६ ॥

इत्यनेनविधिनासप्तरात्रंस्थित्वाष्ट  
मेऽह्न्यापुत्याङ्घ्रिःसशिरस्कंसह  
भर्त्ताचाहतानिवस्त्राणिआच्छाद



येदवदातानिअवदाताश्चस्रजोभू  
षणानिचिभूयात् ॥ १७ ॥

इस विधिसे सात राततक टि-  
ककर आठवें दिन शिर सहित स्नान  
करके भर्त्ता सहित उन नवीन वस्त्रोंको  
धारण करै जो निर्मल हों और निर्मलही  
माला और भूषणोंका धारण करै ॥ १७ ॥

ततऋत्विक्प्रागुत्तरस्यांदिशिआ  
गारस्यप्राक्प्रवणमुदक्प्रवणंवाप्र  
देशमभिसमीक्ष्यगोमयोदकाभ्यां  
स्थण्डिलमुपसंलिप्यप्रोक्ष्यचोद-  
केनवेदिमस्मिन्स्थापयेत् । तां  
पश्चिमेनानाहतवस्त्रसञ्चयेश्वेतार्ष  
भेवाप्यजिनउपविशेद्ब्राह्मणप्रयु-  
क्तोराजन्यप्रयुक्तस्तुवैयाग्रेचर्म  
ण्यानुदूहेवावैश्यप्रयुक्तस्तुरौरवे  
वास्तेवा । तत्रोपविष्टःपालाशी  
भिरेगुदीभिरौदुम्बरीभिर्माधूकी  
भिर्वासमिद्भिरग्निमुपसमाधायकु-  
शैःपरिस्तीर्य्यपरिधिभिश्चपरिधा-  
यलाजैःशुक्लाभिश्चगन्धवतीभिः  
सुमनोभिरुपकिरेत् । तत्रप्रणी-  
योदपात्रंपवित्रंपूतमुपसंस्कृत्यस-  
र्पिराज्यार्थयथोक्तवर्णानाजाने  
यादीन्समन्ततःस्थापयेत् ॥ १८ ॥

फिर ऋत्विक् घरकी पूर्व उत्तरकी  
दिशामें पूर्वको नीचा वा उत्तरको नीचा  
देश देखकर गोमय उदकसे स्थण्डिलको  
लीपकर जलसे प्रोक्षण करके इसमें वे-  
दीका स्थापन करै उस वेदीके पश्चिममें  
उसको नवीन वस्त्रोंके संचय पर वा श्वेत  
बैलके अजिनपर बैठवै यदि ब्राह्मण  
प्रयुक्त हो क्षत्रियका प्रयुक्ततो व्याघ्रके  
चर्मपर वा बैलके पर और वैश्य प्रयु-  
क्ततो रुरु मृगके वा भेडके चर्मपर  
बैठावै—उन पर बैठा हुआ वह पलाशकी  
इंगुदीकी गूलरकी महुवेकी समिधोंसे  
अग्निका उप समाधान करके कुशाओंका  
परिस्तरण परिधियोंका परिधान करके  
सपेद गंधवती मनोहर लाजोंसे और  
पुष्पोंसे उपाकिरण करै ( वस्त्रै ) वहां  
उद पात्रका प्रणयन करके और पवि-  
त्रीसे पूत उसका संस्कार करके सर्पिं  
आज्यके लिये यथोक्त वर्णकी अजाअवि  
आदिको समंततः स्थापन करै ॥ १८ ॥

ततःपुत्रकामापश्चिमतोऽग्निंदाक्षि  
णतोब्राह्मणमुपवेश्यअन्वाल्भेत  
सहभर्त्रायथेष्टंपुत्रमाशासाना ।

ततःतस्याआशासानायाऋत्विक्  
प्रजापतिमग्निनिर्दिश्योनौतस्याः  
कामपरिपूरणार्थंकाम्यामिष्टिनि  
र्वपेद्विष्णुर्योनिकल्पयत्वित्यन्वया  
र्चाततश्चैवाज्येनस्थालीपाकमग्नि

संसार्यत्रिर्जुहुयात् । यथाम्नाय  
ओपमन्त्रितमुदकपात्रंतस्यैदधात्  
सर्वोदकार्थान्कुरुष्वेति ॥ १९ ॥

फिर पुत्र कामा स्त्री अग्निसे पश्चिम  
और दक्षिणमें ब्राह्मण से बैठकर येथे  
पुत्रकी आशा करती हुई । भर्ताके संग  
अन्वाल्भ ( स्पर्श ) करे फिर आशा  
करती हुई उसके होतसंते ऋत्विज् प्र-  
जापतिके नामसे उसकी योनिमें काम  
देवके पीरपूर्णके लिये काम्य इष्टिका  
निर्वाप करे विष्णु योनिको समर्थ करो  
यह कहकर अन्वयर्चको करे फिर  
आज्यसे स्थालीपाकको सौंचकर तीन  
आहुति दे और आम्नाय ( कुलरीति )  
से उपमन्त्रित किये उदपात्रको उस स्त्री  
को दे संपूर्ण जलसे कार्योंको कर यह  
मंत्र पढ़े ॥ १९ ॥

ततःसमातेकर्मणिपूर्वदक्षिणपाद  
मभिहरन्तीप्रदक्षिणमग्निमनुपारि  
क्रमेत्ततोब्राह्मणान्स्वस्तिवाच  
यित्वासहभर्त्राआज्यशेषंप्राश्नी  
यात् । पूर्वपुमान्पश्चात्स्त्रीनचउ  
च्छिष्टमवशेषयेत्ततस्तौसहसंवसे  
तामष्टरात्रंतथाविधपरिच्छदावे  
वचस्यातांतथेष्टपुत्रंजनयेताम् २०

फिर कर्मके समाप्त होनेपर पहिले  
दक्षिण पादको रखती हुई अग्निकी प्रद  
क्षिणा करे फिर प्रदक्षिणा करके ब्राह्म-

णोंसे स्वस्तिवाचन कराकर भर्ताके  
संग आज्यके शेषका प्राशन करे पहिले  
पुरुष पीछे स्त्री भोजन करे और उच्छि  
ष्ट न छोड़े फिर वे दोनों आठ रात्रतक  
संवास वैसेही वस्त्र आदि सहित करें  
अर्थात् भोगकी शय्यापर शयन करें  
तैसे करनेसे इष्ट पुत्रको जनते हैं ॥ २० ॥

यातुस्त्रीश्यामंलोहिताक्षंव्यूढोर  
स्कंमहाबाहुंपुत्रमाशासीत । या  
वारुण्णंरुण्णमृदुदीर्घकेशंशुक्ला  
क्षंशुक्लदन्तंतेजस्विनमात्मवन्तम्  
एषएवानयोरपिहोमविधिःकिन्तु  
परिवर्हवर्णवर्ज्यस्यात्पुत्रवर्णा  
नुरुपस्तुयथाशीरेवतयोःपरिव  
र्होऽन्यःकार्ग्यःस्यात् ॥ २१ ॥

और जो स्त्री श्याम लोहित नेत्र  
विपुल वक्षस्थल महाबाहु पुत्रकी  
आशा करे और जो कृष्ण और कृष्ण  
मृदु दीर्घ जिसके केश हों शुक्ल नेत्र  
शुक्ल दंत तेजस्वी आत्मज्ञानी पुत्रको  
चाहे, इन दोनोंकेभी होमकी विधि यही  
है परंतु परिवर्ह वर्णसे वर्जित होतीहै  
पुत्रके वर्णानुरूप तो यथा आशीः  
( आशीके अनुसार ) परिवर्ह है वह  
अन्यही करना ॥ २१ ॥

द्विजेभ्यःशूद्रातुनमस्कारमेवकु  
र्याद्देवगुरुतपस्विसिद्धेभ्यश्च २२

और देव गुरु तपस्वी सिद्धोंको शूद्रा  
तो ब्राह्मणोंको नमस्कारही करे ॥ २२ ॥  
यायाचयथाविधंपुत्रमाशासीत  
तस्यास्तस्यास्तांतांपुत्राशिषमनुनि

शम्यतांस्तान् जनपदानां मनुष्या  
णामनुरूपं पुत्रमाशासीतसासतेषां  
तेषां जनपदानामाहारविहारोपचार  
परिच्छदाननुविधीयस्वेतिवाच्या  
स्यात् । इत्येतत्सर्वपुत्राशिपांसं  
मृद्धिकरं कर्म व्याख्यातं भवति २३

और जो २ जिस प्रकारके पुत्रकी  
आशा करें तिस २ की उसी २ पुत्रकी  
आशाको समझकर तिन २ जनपदोंके  
मनुष्योंके अनुरूप पुत्रकी आशा करें  
वह २ उन २ जनपदोंके आहार विहार  
उपचारोंको तू कर यह कहने योग्य होती  
है, यह संपूर्ण पुत्रकी आशियोंकी समृ  
द्धिका कर्ता कर्म व्याख्यात हुआ ॥ २३ ॥

नतु खलु केवलमेतदेव कर्म वर्णानां  
वैशेष्यकरमपितु तेजोधातुरप्युद  
कान्तरीक्षधातुप्रायोऽवदातवर्णक  
रो भवति । पृथिवीवायुधातुप्रायः  
कृष्णवर्णकरः समसर्वधातुप्रायः  
श्यामवर्णकरः ॥ २४ ॥

और केवल यही कर्म वर्ण विशेष-  
णता कारक ही नहीं है, किंतु तेज धातु  
और प्रायः उदकांतरिक्ष धातु श्वेत  
वर्णकारक भी है, और पृथिवी वायु धातु  
प्रायः श्याम वर्णकारक है सम सर्व धातु  
प्रायः श्यामवर्ण कारक होती है ॥ २४ ॥

सत्त्ववैशेष्यकराणि पुनस्तेषां तेषां  
प्राणिनां मातापितृसत्त्वान्यन्तर्व

त्न्याः श्रुतयश्चाभीक्षणं स्वेचितश्च  
कर्मसत्त्वविशेषाभ्यासश्चेति ॥ २५ ॥

और प्राणियोंके तिन २ सत्त्वकी  
विशेषताके कारक माता पिताके  
सत्त्व है और गर्भवतीको बारंवार उत्तम  
कथाकी श्रुति है और अपना उचित कर्म  
हैं और सत्त्व विशेषका अभ्यास है ॥ २५ ॥

यथोक्तेन विधिनोपसंस्कृतशरीर  
योः स्त्रीपुरुषयोस्तु मिश्रीभावमाप  
न्नयोः शुक्रं शोणितेन सह संयोगसमे  
त्या व्यापन्नमव्यापन्नेन योनावनुप  
हतायामप्रदुष्टे गर्भाशये गर्भमभिनि  
र्वर्त्तयति एकान्तेन । यथानिर्मले वास  
सिमुपरिकल्पते रज्जनं समुदितगुणमु  
पनिपातादेव रागमभिनिर्वर्त्तयति  
तद्वत् । यथा वाक्षीरं दध्नाभियुत  
मभिषवणाद्विहाय स्वभावमापद्य  
ते दधिभावं शुक्रं तद्वत् ॥ २६ ॥

इस प्रकार यथोक्त प्रकारसे संस्कृत शरी  
रवाले स्त्री पुरुष का रोगहीन शुक्र रोगहीन  
शोणित के संग मिलकर अनुपहत शुद्ध  
योनिमें अप्रदुष्ट गर्भाशयमें गर्भको निश्च-  
यसे उत्पन्न करता है भलीप्रकार सिद्ध  
किये निर्मल वस्त्रमें जैसे रंग पड़नेके  
समयमें ही उत्तम गुणके रंगको सिद्ध  
करता है तिसीप्रकार निर्मल गर्भाशयमें  
गर्भ रहता है और जैसे दूध दधिसे युक्त

हुआ संसर्गसे अपने प्रवभावको छोड़कर  
दधिरूप हो जाता है तिसी प्रकार शुक्र  
गर्भ होता है ॥ २६ ॥

एवमग्निनिर्वर्तमानस्य गर्भस्य तु स्त्री  
पुरुषत्वे हेतुः पूर्वमुक्तः ॥ २७ ॥

और इस प्रकार उत्पन्न हुये गर्भके स्त्री  
पुरुष होनेमें पहिले हेतुको कह आये हैं ॥ २७ ॥  
यथा हि बीजमनुपतप्तमुभंस्वांस्वां  
प्रकृतिमनुविधीयते ब्रीहिर्वा ब्रीहि  
त्वं यवो वा यवत्वं तथा स्त्री पुरुषाव  
पियथोक्तं हेतुविभागमनुविधीय  
ते ॥ २८ ॥

क्योंकि जैसे नहीं तपाया और बोया  
हुआ बीज अपनी २ प्रकृतिके अनुसार  
होता है ब्रीहि ब्रीहिको, जौ जौको, पैदा  
करे है तैसेही स्त्री पुरुषभी यथोक्त विभा-  
गके अनुसार होते हैं ॥ २८ ॥

तयोः कर्मणा वेदोक्तेन विवर्तनमु  
पदिश्यते प्राग्व्यक्तीभावात् ॥ २९ ॥

उन दोनोंका वेदोक्त कर्मसे विशेष-  
कर वर्तना गर्भकी प्रकटतासे पहिले  
शास्त्र कारणोंने कहा है ॥ २९ ॥

प्रयुक्तेन सम्यक् कर्मणा हि देशकाल  
सम्पदुपेतानां नियतमिष्टफलत्वं  
तथे तरेषामितरत्वम् । तस्मादाप  
न्न गर्भास्त्रियमभिसमीक्ष्य प्राग्व्य  
क्तीभावाद् गर्भस्य पुंसवनमस्यैदया  
त् ॥ ३० ॥

क्योंकि कर्मोंके भली प्रकार प्रयो-  
गसे देशकालकी संपदासे युक्तोंको निय-  
मसे इष्ट फल होता है और तैसेही इत-  
रोंको अनिष्ट फल होता है, तिससे प्राप्त  
गर्भा स्त्रीको देखकर गर्भके प्रकट होनेसे  
पहिले इस स्त्रीको पुंसवन दे ॥ ३० ॥

गोष्ठे जातस्य न्यग्रोधस्य प्रागुत्तरा  
भ्यां शाखाभ्यां शुद्धेऽनुपहते आदा  
य द्वाभ्यां धान्यमापाभ्यां सम्पदुपे  
ताभ्यां गौरसर्पपाभ्यां वा सह दधि  
प्रक्षिप्य पुण्ये नक्षत्रेऽपि वेत् ॥ ३१ ॥

गोष्ठमें पैदा हुये वृद्धके पूर्व उत्तरकी  
शाखाओंके दो अनष्ट गुंठे लेकर संपदा  
सहित ( नये ) दो माप धान्य वा गौर  
सर्पोंके संग मिलाकर पुण्य नक्षत्रमें  
पीवै ॥ ३१ ॥

तथैव अपरान् जीवक ऋषभक अपा-  
मार्ग सहचर कल्कांश्च युगपदेकैकशो  
यथेष्टं वाप्युपसंस्कृत्य पयसा ३२

तैसेही जौको जीवक ऋषभक अपा-  
मार्ग और सहचर इनके कल्क ( खल )  
मिलाकर सबको वा एक २ की यथार्थ  
संस्कार ( शुद्धि ) करके, दूधके संग दे ३२  
कुड्यकी टकं मत्स्यकश्चोदकाञ्ज  
लौ प्रक्षिप्य पुण्येऽपि वेत् ॥ ३३ ॥

कुड्यका कीट और मत्स्य कीट जलकी  
अंजलीमें डालकर पुण्य नक्षत्रमें सबको  
पीवै ॥ ३३ ॥

तथाकनकमयात्राजतानायसांश्च  
पुरुषकानश्चिवर्णाननुप्रमाणान्दक्षि  
पयसिउदकाञ्जलौवाप्रक्षिप्यपिवे  
दनवशेषतःपुण्येण ॥ ३४ ॥

तैसे सुवर्णके चांदीके लोहेके पुरुष  
जोअग्नि वर्णके और सूक्ष्म प्रमाणके हैं  
उनको दधि दूध वा उदकांजलिमें  
डालकर पुण्य नक्षत्रमें निःशेषको पीवें ३४  
पुण्येणैवचपिष्टस्यपच्यमानस्योष्मा  
णमुपघ्रायतस्यैवचपिष्टस्योदकसं  
सृष्टस्यरसंदेहलीमुपनिधायदक्षिणे  
नासापुटेस्वयमासिञ्चेत्पिचुना ३५

और पुण्यनक्षत्रमें संगही पीसेहुये अन्न  
आदिकी पाकके समयकी ऊष्माको सूँघ-  
कर और उसी पिसेहुये और जल  
मिलेके रसको देहली पर रखकर दक्षिण-  
नासा पुटमें पिचुसे स्वयं सींचे ॥ ३५ ॥  
इतिपुंसवनानियच्चान्यदपिब्राह्म  
णाब्रूयुरातावापुंसवनमिष्टंतच्चानु  
ष्ठेयम् ॥ ३६ ॥

ये पुंसवनहै और अन्यभी ब्राह्मण वा  
आतकहैं वहभी पुंसवन इष्ट है वह भी  
करना योग्यहै ॥ ३६ ॥

अतऊर्द्ध्वगर्भस्थापनानिव्याख्या  
स्यायः ॥ ३७ ॥

इसके अनंतर गर्भके आस्थापनोंका  
व्याख्यानकरतेहैं कि ॥ ३७ ॥

ऐन्द्रीब्राह्मीशतवीर्यासहस्रवीर्या  
अमोघाअव्यथाशिवावलाअरिष्टा  
वाट्यपुष्पीविश्वक्सेनकान्ताचआ  
सामोपधीनांशिरसादक्षिणेनपाणि  
नाधारणमेताभिश्चैवसिद्धस्यपयसः  
सर्पिपोवापानमेताभिश्चैवपुण्येपुण्ये  
स्नानंसदाचैताभिःसमालभेत ३८ ॥

ऐंद्री, ब्राह्मी, शतवीर्या सहस्रवीर्या अमोघा  
अव्यथा शिवा वला अरिष्टा वाट्यपुष्पी  
विश्वक्सेनकान्ता इनको और अन्य  
औषधियोंको दक्षिण हाथसे शिरपर धारण  
करै और इनसेही सिद्ध किये दूध वा घीका  
पान और इनसेही पुण्य २ नक्षत्रमें  
स्नान और सदैव इनका स्पर्श करै ॥ ३८ ॥

तथासर्वासांजीवनीयोक्तानामोष  
धीनांसदोपयोगस्तैस्तैरुपयोगवि  
धिभिरितिगर्भस्थापनानिव्याख्या  
तानिभवन्ति ॥ ३९ ॥

और तैसेही संपूर्ण जीवनीय गणमें  
उक्त औषधियोंका सदा उपयोग तिन २  
उपयोग विधियोंसे करना ये गर्भके आस्था  
पन कहैहैं ॥ ३९ ॥

गर्भोपघातकरास्त्वमेभावाभव  
न्तितद्यथाउत्कटुकविषमस्थान  
कठिनासनसेविन्यावातमूत्रपुरी  
षवेगानुपरुन्धत्यादारुणानुचि  
तव्यायामसेविन्यास्तीक्ष्णोष्णा

तिमात्रसेविन्याप्रमिताशनसेवि  
न्यागर्भोऽप्रियतेऽन्तःकुक्षेरकाले  
वास्त्रंसेतेशोपीवाभवति ॥ ४० ॥

गर्भके उपघात कारक तो ये भावहों  
वे ऐसे हैं कि उत्कटुक विषमस्थान  
कठिन आसनोंका सेवन और वात मूत्र  
पुरीष इनके वेगोंका अवरोध और दारुण  
अनुचित व्यायामका सेवन और अति  
तीक्ष्ण पदार्थोंका सेवन और प्रमित  
भोजनका सेवन इनको करतीहुई  
स्त्रीका गर्भ कुक्षिके अंतरमें मरजाताहै  
वा अकालमें पतित होताहै वा शुष्क  
होताहै ॥ ४० ॥

तथाभिघातप्रपीडनैःश्वभ्रकूपप्रपात  
देशावलोकनैर्वाभिर्क्षणातुःप्रपत  
त्यकाले। तथातिमात्रसंक्षोभिभिर्या  
नैरप्रियातिमात्रश्रवणैर्वा । प्रततो  
त्तानशायिन्याःपुनर्गर्भस्यनाभ्या  
श्रयानाडीकण्ठमनुवेष्टयति ॥ ४१ ॥

तेसेही अभिघात प्रपीडनसे और  
श्वभ्र कूप प्रपात और ऊँचा देश इनके  
बारबार माताके देखनेसे गर्भ अकालमें  
गिरताहै तिसी प्रकार अतिमात्र संक्षो-  
भके यानसे गमन अप्रियोंका अतिमात्र  
श्रवण इनसे भी गिरताहै और उत्तान  
सोती हुईके गर्भकी जो नाभिमें वर्तमान  
नाडीहै वह कंठको वेष्टन करतीहै ॥ ४१ ॥

विवृतशायिनीनक्तश्चारिणीचो  
न्मत्तजनयत्यपस्मारिणंपुनःकलि

कलहाचारशीला । व्यवयशी  
लादुर्वपुपमहीकंस्त्रेणंवाशोकनि  
त्याभीतमपचितमल्पायुपंवा। अभि  
ध्यात्रीपरोपतापिनर्भ्युस्त्रेणंवा ।  
तेनात्यायासबहुलमतिद्रोहिणम  
कर्मशीलंवा । अमर्षिणीचण्डमौ  
पाधिकमसूयकंवा । स्वमनित्या  
तन्द्रालुमबुधमल्पाग्निंवा । मद्य  
नित्यापिपासालुमनवस्थितचित्तं  
वा । गोधामांसप्रियाशर्करिणम  
श्मारिणंशनैर्महिंनंवा । वराहमांस  
प्रियारक्ताक्षंक्रथनमनतिपरुपरो  
माणंवा । मत्स्यमांसनित्याचि  
रनिमिपं स्तब्धाक्षंवा । मधुर  
नित्याप्रमेहिणंमूकमभिस्थूलंवा ।  
अम्लनित्यारक्तपित्तिनंत्वगक्षिरो  
गिणंवा । लवणनित्याशीघ्रवली  
पलितखालित्यरोगिणंवा कटुकनि  
त्यादुर्बलमल्पशुक्रमनपत्यंवा। ति  
क्तनित्याशोपिणमवलमपचितंवा  
कपायनित्याश्यावमानाहिनमुदा  
वर्त्तिनंवा ॥ ४२ ॥

और नग्न सोती हुई और रात्रिमें  
विचरती हुई उन्मत्तकी और कलि कल-  
हमें आचार शील, अपस्मारीकी, और

मैथुनशील दुष्पुरुष अहीकको वा स्त्री-  
लंपटको और नित्य शोकवती भीत  
अपचित ( दुर्बल ) को वा अल्पायुषको  
और अभिध्यानशील परोपतापी ईर्ष्यु  
को वा स्त्रैणको वा चौर अति  
आयास जिसमें अत्यंत हो अतिद्रोही  
वा अकर्मशीलको, और अमर्षणा  
( क्रोधिन् ) चंड औपाधिक असूषकको  
सदा स्वप्नवाली, तंद्रालु अबुध अल्पा-  
ग्रिको, नित्य मद्यशील प्यासेको वा  
अनवस्थितको गोधाकामांस जिसका  
प्रायः भक्षण हो वह शार्करी अश्मरीको  
वा शनैर्महीको, वराहका मांस जो प्रायः  
भक्षण करै वह रक्ताक्ष हिंसक अनति  
कठोर ( मृदु ) रोमवान्को नित्य मद्य  
मांस भक्षक चिर निमिषको वा स्तब्धा-  
क्षको नित्य मधुरभक्षक प्रमेहीको मूक  
वा अतिस्थूलको नित्य अम्लभक्षक  
रक्तपित्ती वा त्वचा नेत्रके रोगीको,  
नित्य लवणभक्षक शीघ्र वलीपलितको  
वा खालित्य रोगीको, नित्य कटुभक्षक  
दुर्बल अल्पशुक्रको वा अनपत्यको, नित्य  
तिक्तभक्षक शोषी अवल वा अपचितको  
नित्य कषाय भक्षक श्याव अनाहितको  
वा उदावर्तीको पैदा करती है ॥ ४२ ॥

यद्यच्चयस्ययस्यव्याधेर्निदानमुक्तं  
तत्तदासेवमानान्तर्वत्नीतद्विकारव  
हुलमपत्यंजनयति ॥ ४३ ॥

और जो २ जिस २ व्याधिका  
निदान कहा है उसका उस समय सेवन

करती हुई गर्भवती उसी अधिक विकार  
वान् अपत्यको पैदा करती है ॥ ४३ ॥

पितृजास्तुशुक्रदोषामातृजैरपचा  
रेव्याख्याताइतिगर्भपिन्धातकरा  
भावाव्याख्याताः ॥ ४४ ॥

पितृज जो शुक्रके दोष हैं वे मातृज  
अपचारोंसे व्याख्यात हैं ये गर्भोपघात  
कारक भाव व्याख्यात किये ॥ ४४ ॥

तस्मादहितानाहारविहारान्प्रजा  
सम्पदमिच्छन्तीस्त्रीविशेषेणवर्जये  
त्साध्याचाराचात्मानमुपचरेद्विता  
भ्यामाहारविहाराभ्याम् ॥ ४५ ॥

तिससे प्रजा संपदको चाहती हुई  
स्त्री विशेषकर अहित आहार विहारोंको  
वर्ज दे और साधु आचरण करती हुई  
हितकारी आहार विहारोंसे उपचार  
करै ॥ ४५ ॥

व्याधींश्चास्यामृदुमधुरशिशिर  
सुखसुकुमारप्रायैरौषधाहारोप  
चारैरुपचरेत् । नचास्यावमन  
विरेचनशिरोविरेचनानिप्रयोज  
येन्नरक्तमवसेचयेत् । सर्वकाल  
श्चनास्थापनमनुवासनंवाकुर्व्या  
दन्यत्रात्ययिकाद्व्याधिः । अष्ट  
मंमासमुपादायवमनादिसाध्येषु  
पुनर्विकारेषुआत्ययिकेषुमृदुभि  
र्वमनादिभिर्वोपचारःस्यात् ४६ ॥

और इसकी व्याधियोंका उपचारभी मृदु मधुर शीतल सुखद सुकुमार जो प्रायः औषध आहार उपचार हैं उनसे करै और इसको वमन विरेचन शिरो-विरेचनसे विरेचन न करावै और न रक्तका अवसेचन करै और सब कालमें आस्थापन अनुवासनको न करै और अष्टम मास आदिको छोडकर वमन आदिसे साध्य आवश्यक विकारोंमें मृदु वमन आदिसे वा मृदुवमन आदिके फल कारकोंसे उपचार होताहै ॥ ४६ ॥

पूर्णमिवतैलपात्रमसंक्षोभ्याऽन्त  
वर्तनीभवत्युपचर्या ॥ ४७ ॥

जैसे पूर्ण तैलके पात्रका संक्षोभ न हो इस प्रकार गर्भवती उपचार करने योग्यहै ॥ ४७ ॥

साचेदपचारादयोस्त्रिपुमासेपुपु  
प्पं पश्येन्नास्यागर्भःस्थास्यतीति  
विद्यात् । अजातसाराहितस्मि  
न्कालेभवन्तिगर्भाः ॥ ४८ ॥

यदि वह उपचारसे दो तीन मासोंमें पुष्पको देखै तो इसका गर्भ स्थित न रहैगा यह जानले, क्योंकि उस कालके गर्भ सारहीन होते हैं ॥ ४८ ॥

साचेच्चतुष्प्रभृतिपुमासेषुक्रोधशो  
कासूयेर्ष्याभयत्रासव्यवायव्या  
यामसंक्षोभसन्धारणविषमाशन  
शयनस्थानक्षुत्पिपासायतियोगा

त्कदाहाराद्वापुष्पं पश्येत्तस्यागर्भ  
स्थापनविधिमुपदेक्ष्यामः ॥ ४९ ॥

यदि वह स्त्री चार आदि मासोंमें क्रोध शोक, ईर्ष्या, भय, त्रास, व्यवाय, व्या-याम, संक्षोभ, सन्धारण विषम, आसन, शयन, स्थान, क्षुधा, पिपासा, इनके अति योगसे या कुत्सित आहारसे पुष्पको देख ले तो उसके गर्भ स्थापन विधिका उपदेश करते हैं ॥ ४९ ॥

पुष्पदर्शनादेवैर्नात्रयाच्छयनंताव  
न्मृदुसुखशिशिरास्तरणसंस्तीर्ण  
मीपदवनतशिरस्कंप्रतिपद्यस्वेति ।  
ततोयष्टिमधुकसर्पिर्भ्यांपरमशिशि  
रवारिणिसंस्थिताभ्यांपिचुमाष्टा  
व्योपस्थसमीपेस्थापयेत् । तस्याः  
तथागतधौतसहस्रधौताभ्यांसर्पि  
र्भ्यामधोनाभेःसर्वतःप्रदिह्यात् ।  
गव्येनचैनांपयसामुशीतेनमधुका  
म्बुनावान्यग्रोधादिकपायेणवाप  
रिपेचयेदधोनाभेः । उदकंवासु  
शीतमवगाहयेत्क्षीरिणांकपायद्रु  
माणाश्चस्वरसपारिपीतानिचेला  
निग्राहयेत् । न्यग्रोधादिसिद्धयो  
र्वाक्षीरसार्पिणोःपिचुंग्राहयेदतश्चै  
वाक्षमात्रंप्राशयेत्प्राशयेद्वाकेवल  
श्चक्षीरसर्पिः ॥ ५० ॥



पुष्पके दीखतेही इस स्त्रीको कहै किंतु अब, मृदु, सुखदायी शीतल आस्तरण विछे हुए, शिरकी तरफ किंचित् ऊंचे शयनको स्वीकार कर और मुलहटी, महुआ घी, जो परम शीतल जलमें स्थित हों उनकी पिचोंको, जलसे भिगोयकर योनिके समीप स्थापन करै और शतवार वा सहस्रवार, बहुत धुले घीसे उसकी नाभिके अधो भागको सर्षतः सींचै अथवा शीतल गौके दूधसे, वा मीठे जलसे वा वट आदिके कषायसे नाभिको नीचे सींचन करै वा आति शीतल जलसे स्नान करावै, दग्धवाले, कसैले जो द्रव वृक्षहैं उनके शृंगो ( पत्तेकी डोडी ) के स्वरसमें भिगोये वस्त्रोंको ग्रहण करावै, वा वटके शृंग आदिमें सिद्ध, घीके पिचुको ग्रहण करावै और अक्षमात्रको पान करावै और केवल दूध घीकोही खिलावै ॥ ५० ॥

पद्मोत्पलकुमुदकिञ्जल्कांश्वास्यै  
समधुशर्करालेहार्थदद्यात् । शृ-  
ङ्गाटकपुष्करबीजकशेरुकान्भ-  
क्षणार्थम् । गन्धप्रियंगुसितोत्पल-  
शालुकोदुम्बरशालाटुन्यग्रोधशु-  
ङ्गानिवापाययेदेनामाजेनपयसा ५१

और पद्म, उत्पल, कुमुद, इनके किंजल्कभी, सहत और शर्कर, मिलाकर, चाटनेके लिये दे और सिंघाड़े, पुष्कर बीज, इनको भक्षणके लिये और गंध,

प्रियंगु, सितउत्पल, शालूक, गूलर, सलाटू, वट, इनके शृंगोंको बकरीके दूधके संग इसको पिलावै ॥ ५१ ॥

पयसाचैनांबलातिबलाशालिय-  
ष्टिकेक्षुमूलकाकोलीशृतेनसमधु-  
शर्कररक्तशालीनामोदनमृदुसु-  
रभिशीतंभोजयेत् । लावकपि-  
ञ्जलकुरङ्गशम्बरशशहरिणै-  
कालपुच्छकरसेनवाघृतसलिल-  
सिद्धेनसुखशिशिरोपवातदेशस्थां  
भोजयेत् ॥ ५२ ॥

बला, अतिबला, शाली, सांठी, इक्षु, मूलिका, काकोली इनमें पकाये हुए दूधके संग रक्तशालीके ओदनको सहत और खांड मिलाकर मृदु सुगंधित शीतल भोजन करावै, और लाव, कपिंजल, कुरंग, शांवर, शश, हरिण, एण, काल-पुच्छ, इनके रसको, घी जलमें पकाकर सुखदायी, शीतल पवन देशमें वैठीहुई को, भोजन करावै ॥ ५२ ॥

तथाक्रोधशोकायासव्यवायव्या-  
यामतश्चाभिरक्षेत्सौम्याभिश्चैनां  
कथाभिर्मनोऽनुकूलाभिरुपासी-  
तथास्यागर्भस्तिष्ठति ॥ ५३ ॥

और क्रोध, शोक, आयास, व्यवाय न्यायाम, इनसे रक्षा करावै और सौम्य और मनके अनुकूल जो कथा हैं वे इसको सुनावै, तिस प्रकार करनेसे इसका गर्भस्थित रहताहै ॥ ५३ ॥

यस्याः पुनरामान्वयात्पुष्पदर्शनं  
स्यात्प्रायस्तस्यास्तद्गर्भाधकं भव  
ति विरुद्धोपक्रमत्वात्तयोः ॥ ५४ ॥

और जिसको आम गर्भके सम्बन्धमें  
पुरुषका दर्शन होता है, प्रायः वह उसको  
विरुद्ध उपक्रमसे गर्भका बाधक होता है ॥ ५४ ॥

यस्याः पुनरुष्णतीक्ष्णोपयोगाद्  
र्भिण्यामहतिसंजातसारेर्गर्भपुष्पद  
र्शनं स्यादन्योवायोनिप्रस्रावः ।  
तस्यागर्भोवृद्धिर्नामोतिनिःसृत  
त्वात्सकालान्तरमवतिष्ठतेऽति  
मात्रं तमुपविष्टकमित्याचक्षते के  
चित् ॥ ५५ ॥

और जिस गर्भिणीको उष्ण, तीक्ष्ण,  
वस्तुओंके उपयोगसे जातसार, ( पूर्ण )  
महान् गर्भमें पुष्प दर्शन हो, वा अन्ययो-  
नि आदि हो उसका गर्भ निरन्तर स्रुत  
होनेसे वृद्धिको प्राप्त नहीं होता वह बहुत  
काल तक अतिमात्र टिकता है, उसको  
कोई आचार्य उपविष्टक कहते हैं ॥ ५५ ॥

उपवासव्रतकर्मपरायाः पुनः कदा  
हारायाः स्नेहद्वेषिण्यावातप्रकोप  
नोक्तान्यासेवमानायागर्भो न वृद्धिं  
प्राप्नोति परिशुष्कत्वात् । सचा  
पिकालान्तरमवतिष्ठतेऽतिमात्रं  
स्पन्दनञ्च भवति । तन्तुनागोदर  
मित्याचक्षते ॥ ५६ ॥

और जो उपवास व्रत करनेमें तत्पर  
है, वा निन्दित आहार, स्नेहमें द्वेष और  
वातके प्रकोपसे शास्त्रोक्तसे अन्यका  
सेवन इनको करती है, उसका गर्भ, चारों  
तरफसे शुष्क होनेसे वृद्धिको प्राप्त नहीं  
होता, वह भी अतिमात्र कालतक टिक-  
ता है और अतिमात्र प्रसृत होता है उसको  
नागोदर कहते हैं ॥ ५६ ॥

नाय्योस्तयोरुभयोरपि चिकित्सि  
तविशेषमुपदेक्ष्यामः ॥ ५७ ॥

इन दोनों नारियोंकी चिकित्साके  
विशेषका उपदेश करते हैं ॥ ५७ ॥

भौतिकजीवनीयवृंहणीयमधुरवा  
तहरसिद्धानांसर्पिषामुपयोगः ।  
नागोदरेतुयोनिव्यापन्निर्दिष्टपय  
सामामगर्भाणाञ्च गर्भवृद्धिकराणा  
ञ्च सम्भोजनमेतैरेव सिद्धैश्च घृतादि  
भिः सुबुभुक्षायामभीक्षणं यानवा  
हनापमार्जनावजृम्भणैरुपपादन  
मिति ॥ ५८ ॥

भौतिक (भूमिके) जो जीवनीय, और  
वृंहणीय, मधुर, वातहर, पदार्थ हैं, उनमें  
सिद्धीका उपयोग है, नागोदरमें तो  
योनिकी व्यापत्तिमें कहे दूधका उपयो-  
ग है आमगर्भोंको गर्भकी वृद्धि  
कारकोंका उपयोग है और अति क्षुधा  
होनेपर इनसे ही सिद्ध घृत आदिसे  
संभोजन है और बारंवार यान वाहन  
अपमार्जन अवजृम्भण इनका करना है ॥ ५८ ॥

यस्याः पुनर्गर्भः प्रसूतो न स्पन्दते तां  
श्येन मत्स्यगवयतिक्षिरताम्रचूड  
शिखिना मन्यत मस्य सर्पिष्मतारसे  
न माषयूषेण वा प्रभूतसर्पिषामूलक  
यूषेण वारक्तशालीनामोदनं मृदुम  
धुरशीतं भोजयेत् । तैलाभ्यंगेनास्या  
श्याभीक्षणमुदरवंक्षणोरुकटीपार्श्व  
पृष्ठप्रदेशानीषदुष्णो नोपाचरेत् ॥ ५९ ॥

और जिसका गर्भ प्रसूत हुआ चला-  
यमान नहीं उसको श्येन मत्स्य गवय  
तिक्षिर ताम्रचूड मोर इनमेंसे किसीके  
घी मिले रससे, उडदके यूपसे, वा अधिक  
घी मिले मूलीके यूपसे, मिलेहुये रक्त  
शालियोंके ओदनको मृदु मधुर शीतल  
करके भोजन करावै और किंचित् उष्ण  
तैलाभ्यंगसे वारम्बार इसके उदर वंक्षण  
ऊरु कटी पार्श्व पृष्ठप्रदेश इनका मर्दन  
करै ॥ ५९ ॥

यस्याः पुनरुदावर्तविवन्धः स्याद  
ष्टमे मासेन चानुवासनसाध्यं मन्यते  
ततस्यास्तद्विकारप्रशमनमुपक  
ल्पयेन्निरूहमुदावर्तो ह्युपेक्षितः  
सगर्भसगर्भा गर्भिणीं वानिपात  
येत् ॥ ६० ॥

और जिसको अष्टम मासमें उदावर्त  
विवन्ध होजाय और वह अनुवासनसे  
साध्य न दीखै तो फिर इसके उस विकार  
की शांतिके लिये निरूह वास्तिको करै,

क्योंकि उदावर्त, उपेक्षा करनेसे, गर्भ  
सहित गर्भिणीको, अथवा, गर्भको, गिरा-  
देता है ॥ ६० ॥

तत्र वीरणशालिपट्टिककुशकाशे  
क्षुबालिकावेतसपरिव्याधमूलानां  
भूतौकानन्ताकाश्मर्यपरुषकमधु  
कमृद्वीकानाञ्चपयसार्द्धोदकेनोद  
मय्यरसं पियालविभीतकमज्जातिल  
कल्कसम्प्रयुक्तमीषलवणमनत्यु  
ष्णानिरूहं दद्यात् ॥ ६१ ॥

उसमें वीरणशाली पट्टिक कुश काश इक्षु  
बालिका वेतस परिव्याध, इनके मूल, और  
भूतिका अनन्ता, काश्मरी, परुषक,  
मधुक, मुनक्का, इनके अर्द्धोदक दुग्धके  
मध्यमें रसको पियाल ( चिरौजी )  
बहेडीकी गुठली, तिलकीखल, इनको  
मिलाकर, किंचित् लवण सहित अल्प-  
उष्ण, किये, इस निरूहको द ॥ ६१ ॥

व्यपगतविवन्धाश्चैनां मुखसलिल  
परिषिक्तांगीस्थैर्यकरमविदाहि  
नमाहारं भुक्तवतीं सायं मधुरकसि  
द्धेन तैलेनानुवासयेन्न्युज्जान्त्वेना  
मास्थापनानुवासनाभ्यामुपचरे  
त् ॥ ६२ ॥

और जब विवन्ध जाता रहै, तब  
सुखदायी सलिलोंसे इसके अंगोंको सींच-  
कर क्षीर और स्थिरताकारक अविदाही  
भोजन कराकर - सायंकालको मधुर

रससे सिद्ध, तैलका अनुवासन करावै, और, न्युञ्ज ( झुकी ) हुई इसका आस्थापन और अनुवासनसे उपचार, करै ॥ ६२ ॥

यस्याः पुनरतिमात्रदोषोपचयोद्वा  
तीक्ष्णोष्णातिमात्रसेवनाद्वातमूत्र  
पुरीषवेगधारणैर्वाविषमाशनशय  
नस्थानसंपीडनैर्वाक्रोधशोकेर्ष्या  
सूयाभयत्रासादिभिर्वापरैः कर्मभिर  
न्तःकुक्षौर्गर्भोऽप्रियते । तस्याः स्ति  
मितस्तब्धमुदरमाततं शीतमाश्मा  
न्तर्गतमिव भवत्यस्पन्दनोर्गर्भः शूल  
मधिकमुपजायते न चाव्यः प्रादु  
र्भवन्तियोनिर्नप्रस्रवत्यक्षिणी चा  
स्याः स्रस्ते भवतः ताम्यतिव्यथते  
भ्रमते श्वसित्यरतिवहुला च भवति  
न वास्यावेगप्रादुर्भावो वा यथा वदु  
पलभ्यते इत्येवं लक्षणां स्त्रियं मृतग  
र्भेयमिति विद्यात् ॥ ६३ ॥

और जिसका अत्यंत दोषोंके उप-  
चारसे और तीक्ष्ण उष्णके अतिमात्र से-  
वनसे वा वात मूत्र पुरीषके वेग धारणसे  
वा विषम आसन शयन स्थान संपीडन  
इनसे वा क्रोध शोक ईर्ष्या भय त्रास  
आदिसे वा साहसके अन्य कर्मोंसे कुक्षि-  
के भीतर गर्भ मरजाय उस स्त्रीका स्ति-  
मित स्तब्ध उदर आतत (बड़ा) शीतल  
अंतर्गत पत्थरके समान होता है और

अचंचल गर्भ और अधिक शूल होता है  
और न आवि प्रकट होती हैं और योनि  
मेंसे जल नहीं आता और इसके नेत्र  
स्रस्त होजाते हैं गुनि व्यथा भ्रम श्वास  
अधिक अरतिको प्राप्त होती है और  
इसके वेगका प्रादुर्भाव यथार्थ प्रतीत  
नहीं होता इस प्रकारके लक्षण जिसके  
हों उसको जानै कि यह मृत गर्भा हे ६३

तस्य गर्भशल्यस्य जरायु प्रपातनं क  
र्मसंशमनमित्यादुरेके । मन्त्रादि  
कमथर्ववेदविहितमित्येके । परि  
दृष्टकर्मणाशल्यहर्त्राहरणमित्येके

उस गर्भके शल्यका जरायु प्रपातन  
करना संशमन है यह कोई कहते हैं  
और कोई अथर्व वेदमें विहित मंत्र  
आदि कर्मको और कोई ज्ञात कर्म  
वाले शल्य हर्तासे हरण ( निकासना )  
को कहते हैं ॥ ६४ ॥

व्यपगत गर्भशल्यान्तुस्त्रियमामग  
र्भासुराशीध्वरिष्टमधुमदिरासवा  
नामन्यतममग्रे सामर्थ्यतः पाययेत्  
गर्भकोष्ठविशुद्ध्यर्थमर्त्तिविस्मर  
णार्थप्रहर्षणार्थञ्च ॥ ६५ ॥

और नष्ट हुआ है गर्भ शल्य जिसका  
उस आम गर्भा स्त्रीको सुरा शीधु अरि  
ष्ट मधु मदिरा इनमें से किसीके आसव  
को सामर्थ्यके अनुसार गर्भ शुद्धीके  
पीड़ा विस्मरणके, प्रहर्षणके, लिये  
प्रथम पिलावै ॥ ६५ ॥

अतःपरंवृंहणैर्वलानुरक्षिभिःस्नेह  
सम्प्रयुक्तैर्यवाग्वादिभिर्विलेप्यादि  
भिर्वातत्कालयोगिभिराहारैरुपा  
चरेदोषधातुक्लेदविशोषणमात्रं त  
त्कालम् ॥ ६६ ॥

इससे आगे बलके रक्षक जो संग्रीण  
न वृंहण हैं उनसे वा स्नेह मिले यवागू  
आदिसे वा विलेपन आदिसे और वा  
उस कालके योग्य आहारोंसे तबतक  
उपचार करै जबतक दोष धातुका  
क्लेद न शोषण हो ॥ ६६ ॥

अतःपरंस्नेहपानैर्वस्तिभिराहारवि  
धिभिश्चदीपनीयजीवनीयवृंहणी  
यमधुरवातहरसमाख्यातैरुपचारै  
रुपाचरेत् ॥ ६७ ॥

इससे परे स्नेह पान वस्ति आहारकी  
विधि जो दीपनीय जीवनीय वृंहणीय  
मधुर वात हर नामसे प्रसिद्ध हैं उन  
उपाचारोंसे उपचार करै ॥ ६७ ॥

परिपक्वगर्भशल्यायाःपुनर्विमुक्त  
गर्भशल्यायास्तदहरेवस्नेहोपचा  
रःस्यात् ॥ ६८ ॥

और जब गर्भके शल्यका परिपाक  
होजाय वा शल्यका अभाव हो जाय तब  
तो उसीदिन स्नेहका उपचार होता है ॥ ६८ ॥

परमतोनिर्विकारमाप्यायमानस्य  
गर्भस्यमासेमासेकर्मोपदेक्ष्यामः ॥

इससे परे निर्विकार पुष्ट हुये गर्भका  
मास २ में कर्मका उपदेश करते हैं—  
कि ॥ ६९ ॥

प्रथमेमासेशङ्कितान्चेद्गर्भमापन्ना  
क्षीरमनुपस्कृतंमात्रावच्छीतंका  
लेपिवेत्सात्म्यश्चभोजनंसायंप्रात  
श्चभुञ्जीत ॥ ७० ॥

प्रथम मासमें गर्भवती प्राप्तहुये गर्भ  
की शंकायुक्त होनेसे उपस्कार ( केवल )  
रहित दूधको मात्रासे शीतल समय पर  
पीवै, और सात्म्यही भोजन सायं प्रातः  
करै, ॥ ७० ॥

द्वितीयेमासेक्षीरमेवचमधुरौषध  
सिद्धम्।तृतीयेमासेक्षीरंमधुसर्पि  
र्भ्यामुपसंसृज्य।चतुर्थेमासेतुक्षीर  
नवनीतमक्षमात्रमश्नीयात्।पञ्च  
मेमासेक्षीरसर्पिः।षष्ठेमासेक्षीरस  
र्पिर्मधुरौषधसिद्धंतदेवसप्तमेमा  
से ॥ ७१ ॥

और दूसरे मासमें मधुर औषधोंसे सिद्ध  
दूध कोही पीवै, तीसरे मासमें शहत घी  
मिले दूधको पीवै, चौथे मासमें दूधका  
नौनीत अक्षमात्र भक्षण करै, पंचम मासमें  
दूधघीको, छठे मासमें वही मधुर औष-  
धोंसे सिद्ध दूध घी पीवै, और उसको ही  
सप्तम मासमें पीवै ॥ ७१ ॥

तत्रगर्भस्यकेशाजायमानामातुर्वि  
दाहंजनयन्तीतिस्त्रियोभाषन्तेत

त्रेतिभगवानात्रेयः। किन्तु गर्भो  
त्पीडनाद्वातपित्तश्लेष्माणउरःप्रा  
प्यविदहन्ति ततः कण्डूरुपजायते  
कण्डूमूलाचक्रिकाशावाभिर्भव  
तितत्रकोलेदकेननवनीतस्यम  
धुरौपधसिद्धस्यपाणितलमात्रं  
कालेऽस्यैदयात् । चन्दनमृणा  
लकल्कैश्चास्याः स्तनोदरं विमृष्टी  
यात् । शिरीषधातकीसर्प  
पमधुकचूर्णैः कुटजार्जकबीजमु  
स्तहरिद्राकल्कैर्वानिम्बकोलसु  
रसमञ्जिष्ठाकल्कैर्वा । पृषद्धरि  
णशशरुधिरयुतयात्रिफलायावा  
करवीरकपत्रसिद्धेनवातैलेनाभ्य  
ङ्गः । परिपेकः पुनर्मालतीमधुक  
सिद्धेनाम्भसाजातकण्डूयाचक  
ण्डूयनं वर्जयेत्त्वग्भेदनवैरूप्यपरि  
हारार्थमशक्यायान्तुकण्ड्वामुन्म  
र्दनोद्धर्षणाभ्यां परिहारः स्यात् ।  
मधुरमाहारजातं वातहरमल्पमल्प  
स्नेहलवणमल्पोदकानुपानञ्च भु  
ञ्जीत ॥ ७२ ॥

वहां पैदा होते हुये गर्भके केश माता-  
को विदाह पैदा करते हैं यह स्त्री कहती  
हैं वह बात नहीं यह भगवान् आत्रेय

कहते हैं, किन्तु गर्भके उत्पीडनसे वात  
पित्त श्लेष्मा उरमें प्राप्त होकर विदाह  
करते हैं उससे कंडू उत्पन्न होती है, कंडूसे  
क्विकाशाकी प्राप्ति होजाती है उसमें  
कोलोदक मात्र नवनीत जो मधुर औषधों  
से सिद्ध है उसका पाणितलमात्र इस  
स्त्रीको दे, और चंदन मृणालके कल्कोंसे  
इसके स्तनोंदरको भली प्रकार मलै वा  
सिरस धातकी सरसों मधुक इनके चूर्णोंसे  
वा कुटज अर्जकके बीज मोथा हरिद्रा  
इनके कल्कोंसे वा निंब कोलक सुरस  
मर्जीठ इनके कल्कोंसे वा पृषत हरिण  
शशा इनके रुधिर मिली त्रिफलासे वा  
करवीर पत्रसे सिद्ध जलसे स्तनोंदरको  
मलै और परिपेक तो मालती महुआ  
इनसे सिद्ध जलसे करै और कंडू पैदा  
होय तो कंडूयनको वर्ज दे और असह्य  
कंडू होय तो त्वचाका भेदन और वैरू-  
प्यके परिहारके लिये उन्मर्दन और  
उद्धर्षणसे कंडूका परिहार होता है, मधुर  
जो आहार समूह वातहारक वह अल्प  
स्नेह लवण रहित, अल्पजलके अनुपा-  
नसे भोजन करै ॥ ७२ ॥

अष्टमेतुमासेक्षीरयवागूं सर्पिष्मतीं  
कालेकालेपिबेत् । तत्रेतिभद्र  
काप्यः, पैङ्गल्यावाधोह्यस्यागर्भ  
मागच्छेदिति । अस्त्वत्रपैङ्गल्या  
वाधइत्याहभगवान्पुनर्वसुरात्रेयो  
नह्येतदकार्यएवंकुर्वतीत्यारोग्य

बलवर्णस्वरसंहननसम्पदुपेतंज्ञा  
तीनामपिश्रेष्ठमपत्यंजनयति ७३

अष्टम मासमें तो दूधकी थवागूको घी  
मिलाकर समय २ में पीवै, नपीवै यह भद्र-  
काव्य कहतेहैं क्योंकि इसका गर्भ पिंग-  
लकी वाधाको प्राप्त हो जाताहै, इसमें  
पेंगल्या वाध हो यह भगवान् पुनर्वसु  
आत्रेय कहतेहैं कि ऐसा न करै यह  
नहीं है क्योंकि इस प्रकार करतीहुई  
गर्भिणी रोग रहित हुई अरोग बल वर्ण स्वर  
संहनन इनकी संपदासे युक्त ज्ञातीमें  
श्रेष्ठ अपत्यको पैदा करती है ॥ ७३ ॥

नवमेतुखलुएनांमासेमधुरौषधसि  
द्धेनतैलेनानुवासयेत् । अतश्चा  
स्यास्तैलंपिचुमिश्र्योनौप्रणयेद्गर्भ  
स्थानमार्गस्नेहनार्थम् ॥ ७४ ॥

नवम मासमें तो इसको निश्चयसे  
मधुर औषधोंसे सिद्ध तैलसे अनुवासन  
करावै, इसके अनंतर गर्भस्थानके मार्गके  
स्नेह करणार्थ तैल पिचु मिश्रित औषध,  
योनिमें डालै ॥ ७४ ॥

यदिदं कर्म प्रथममासमुपादायोप  
दिष्टमानवमान्मासात् । तेन गर्भि  
ण्या गर्भसमये गर्भधारणे कुक्षिकटी  
पार्श्वपृष्ठं मृदु भवति वातश्चानुलोमः  
सम्पद्यते मूत्रपुरीषे च प्रकृतिभूते सु  
खेन मार्गमनुपयेत चर्मनखानि च  
मार्दवमुपयान्ति बलवर्णौ चोपची

येते पुत्रं चेष्टसम्पदुपेतं सुखिनं सुखे  
नैषाकालेन प्रजायत इति ॥ ७५ ॥

जो यह कर्म प्रथममाससे लेकर  
नवम मास पर्यंत उपदेश कियाहै तिससे  
गर्भिणीके गर्भसमयमें गर्भधारणमें कुक्षि  
कटी पार्श्व पृष्ठ ये मृदु हो जाते हैं और  
वात अनुलोम हो जाता है और प्रकृति  
भूत मूत्र पुरीष सुखसे मार्गमें आजाते  
हैं और चर्म नख मृदु हो जाते हैं, बल  
वर्ण पुष्ट होते हैं और पुत्रभी इष्ट संपदासे  
युक्त सुखी समयपर होताहै इति ॥ ७५ ॥

प्राक्चैवास्यानवमान्मासात् सूति  
कागारंकारयेदपहृतास्थिशर्करा  
कपालदेशं प्रशस्तरूपरसगन्धायाम्  
भूमौ प्राग्द्वारमुदग्द्वारं वा ॥ ७६ ॥

और नवम माससे पहिले सूतिकाके  
गृहको बनावै, जिस देशमें कपाल अस्थि  
कंकर न हों और जिस भूमिमें प्रशस्त  
रूप रस गंधहों उसमें पूर्व वा उत्तर द्वार-  
का हो ॥ ७६ ॥

तत्र वैल्वानां काष्ठानां तिन्दुकैर्गुदा  
नां भल्लातकानां वारुणानां खदिरा  
णां वा यानि चान्यान्यपि ब्राह्मणाः  
शंसेयुरथर्ववेदविदस्तद्वसनालेप  
नाच्छादनापिधानसम्पदुपेतं वास्तु  
विद्यात् । हृदययोगेनाग्निसलिलो  
लूखलवर्चःस्थानस्नानभूमिमहान  
समृतुमुखश्च ॥ ७७ ॥

उसमें बेलके काष्ठोंसे वा तिंदुक इंगुदीके वा भल्लातकके वा वारणोंके वा खदिरके काष्ठोंसे और अन्यभी जो अथर्व वेदी ब्राह्मण कहें उन काष्ठोंसे घर बनावै वह घर वस्त्र लेपन आच्छादन पिधान इनकी संपदासे युक्त हो, वास्तु हृदयका योग अग्नि जल उलूखल मलस्थान स्नान भूमि महानस ऋतुमें सुखदायी हो ॥ ७७ ॥

तत्र सर्पिस्तैलमधुसैन्धवसौवर्चल काललवणविडङ्गगुडकुष्ठकिलि मनागर-पिप्पलीमूल-हस्तिपिप्पलीमण्डूकपर्ण्यलालाङ्गलीवचाच व्य-चित्रक-चिरविल्वहिङ्गुसर्पपलशुनकणकणिकानीपातसीवल्विजभूर्जाःकुलत्थमैरेयसुरासवाःसन्निहिताःस्युः ॥ ७८ ॥

घी तेल मधुर सैन्धव सौवर्चल काललवण विडङ्ग गुड कूट किलिम सोंठ पीपलीमूल हस्ति (बडी) पीपल मंडूकपर्णी इलायची लालगली वच चीता चिरविल्व हींग सरसों लशुन कनक नीप अलसी वल्वज भोजपत्र कुलथी मैरेय सुरासव ए सब संनिहित हों ॥ ७८ ॥

तथाश्मानौद्वौद्वेचण्डमुसलेद्वेउलूखले खरोवृषभश्वद्वौचतीक्ष्णौसूचीपिप्पलकौसौवर्णराजतौद्वेशस्त्राणि चतीक्ष्णायसानिद्वौचबिल्वमयौ पर्ण्यङ्गौतैन्दुकैर्गुदानिचकाष्ठानि

अग्निसन्धुक्षणानिस्त्रियश्ववह्नयो बहुशःप्रजाताःसौहार्दयुक्ताःसततमनुरक्ताःप्रदक्षिणाचाराःप्रतिपत्ति कुशलाःप्रकृतिवत्सलास्त्यक्तविपादाःक्लेशसहिष्णवोऽभिमतब्राह्मणश्चाथर्ववेदविदोयच्चान्यदपितत्र समर्थमन्येतयच्चब्राह्मणाब्रूयुःस्त्रियश्ववृद्धास्तत्कार्यम् ॥ ७९ ॥

तैसेही दो पत्थर दो चंडऊपल दो उलूखल खर वृषभ ये दोनों और दो तीक्ष्णसूची चिमलक सुवर्ण और चांदीके शस्त्र और अनेक प्रकारके लोहेके तीक्ष्णशस्त्र और दो बिल्वके पर्यंक और तिंदुक और इंगुदीके काष्ठ अग्निप्रज्वलन के लिये और बहुतसी बे स्त्री जो बहुतवार प्रजात हों सौहार्दयुक्त हों, निरंतर अनुरक्त हों, कुशलाचरण प्रतिपत्तिमें कुशल प्रकृतिसे वत्सल विपादसे रहित क्लेश सहनशील और अभिमत हों उनको और अथर्ववेद विद्याके ज्ञाता ब्राह्मण और अन्यभी जो उस समयमें समर्थ समझे और जिसको ब्राह्मण कहें वा वृद्ध स्त्री कहें वह करना चाहिये ॥ ७९ ॥

ततःप्रवृत्तेनवमेमासिपुण्येऽहनिप्रशस्तनक्षत्रयोगमुपगतेभगवतिशशिनिकल्याणकरणेमैत्रेमुहूर्तेशान्तिहुत्वागोब्राह्मणमग्निमुदकञ्चादौप्रवेश्यगोभ्यस्तृणोदकमधुला



जांश्चप्रदायब्राह्मणेभ्योऽक्षतान्सु  
मनसोनान्दीमुखानिचफलानीष्टा  
निदत्वाउदक्पूर्वमासनस्थेभ्योऽ  
भिवाद्यपुनराचम्यस्वस्तिवाचये  
त्ततःपुण्याहशब्देनगोब्राह्मणम  
न्वावर्त्तमानाप्रविशेत्सूतिकागार  
म् । तत्रस्थाचप्रसवकालप्रती  
क्षेत ॥ ८० ॥

फिर नवम मासके प्रवृत्त होनेपर  
पुण्यदिनमें जिसमें उत्तम नक्षत्रके योग-  
पर भगवान् चंद्रमा प्रशस्त हो, कल्याण-  
करण हो मैत्र मुहूर्त हो उसमें होम-  
शांतिकी करके प्रथम गौ ब्राह्मण अग्नि  
जल इनकी प्रवेश करके गौओंको तृण  
जल मधु लाजा देकर और ब्राह्मणोंको  
अक्षत पुष्प और नांदीमुखके फल  
देकर उत्तरको पूर्व जिनका ऐसे आस-  
नोंपर बैठे हुआओंको नमस्कार करके फिर  
आचमन करके स्वस्तिवाचन करावै  
फिर पुण्याह शब्दकी कहती हुई गौ  
ब्राह्मणोंके परिक्रमा करके सूतिकागारमें  
प्रवेश करै उसमें बैठी हुई प्रसवकालकी  
प्रतीक्षा करै ॥ ८० ॥

तस्यास्तुखलुङ्गमानिलिङ्गानिप्रज  
ननकालमभितोभवन्तितयथाक्ल  
मोगात्राणांग्लानिराननस्यअ  
क्ष्णोःशैथिल्यंविमुक्तबन्धनत्वमि  
ववक्षसःकुक्षेरवस्त्रंसनमधोगुरुत्वं

वंक्षणवस्तिकटीपार्श्वपृष्ठनिस्तो  
दोयोनेःप्रस्रवणमनन्नाभिलाषश्चे  
ति । ततोऽनन्तरमावीनांप्रादुर्भा  
वःप्रसेकश्चगर्भोदकस्य ॥ ८१ ॥

और उसके थे निश्चित लिंगहैं वे पू-  
जनकालके प्रथम वा अनंतर होतेहैं  
वे ऐसे हैं गात्रोंमें क्लम, मुखमें श्लानि,  
नेत्रोंकी शिथिलता मानो छांतीका बंधन  
खुलताहै कुक्षिका अवस्त्रंसन, नीचे गुरु-  
ता, वंक्षण वस्ति कटी पार्श्व पृष्ठ इनमें  
निरंतर पीडा योनिका प्रस्रवण अन्नकी  
अनभिलाषा इति उसके अनंतर आवि-  
योंकी प्रकटता और गर्भके जलका प्रसेक  
होताहै ॥ ८१ ॥

आवीप्रादुर्भावेतुभूमौशयनंविद  
ध्यान्मृदास्तरणोपपन्नंतदध्यासी  
नांतांततःसमन्ततःपरिवार्य्यथो  
क्तगुणाःस्त्रियःपर्युपासीरन्नाश्वा  
सयन्त्योवाग्भिर्ग्राहिणीभिरुपदि  
ष्टवदर्थभिधायिनीभिः ॥ ८२ ॥

आवीयोंकी प्रकटता होनेपर भूमिमें  
शयन करै और जो मृदु आस्तरणवान्  
हो वह उसपर बैठी हुईको वे स्त्री जो  
पूर्वोक्त गुणवती हैं वे चारोंतरफ परिवार  
करके आश्वासन करती हुई उपदेशके  
अर्थसहित ग्राहक वाणीयोंसे उपासना  
करें और शांतिकी ग्राहक वाणी कहें ८२

साचेदावीभिःसंक्लिश्यमानानप्रजा  
येताथैनांयूयादुत्तिष्ठमुसलमन्य  
तरश्चगृह्णीष्वानेनैतदुदूखलधान्य  
पूर्णमुहुर्मुहुरधिजहिमुहुर्मुहुरवजृ  
म्भस्वचक्रमस्वचान्तरान्तरादित्ये  
वमुपदिशन्त्येके ॥ ८३ ॥

यदि वह आवियोंसे क्लेशको प्राप्त  
हुई प्रजाको पैदा न करे तो फिर उसको  
कहे कि, खडी हो और मुसल ऊखल-  
मेंसे किसीको ग्रहण कर और धान्यसे  
भरे उस ऊखलको वारंवार कूट  
और वारंवार जृम्भण कर, दहलनाभी  
मध्यमें कर, कोई इस प्रकार उपदेश  
करते हैं ॥ ८३ ॥

तन्नेत्याहभगवानात्रेयः । दारुण  
व्यायामवर्जनंहिगर्भिण्याःसततमु  
पदिश्यते । विशेषतश्चप्रजननका  
लेप्रचलितसर्वधातुदोषायाःसुकु  
मार्यानाग्यामुसलव्यायामसमी  
रितोवायुरन्तरंलब्ध्वाप्राणान्हिं  
स्याद्दुष्प्रतीकारतमाहितस्मि  
न्कालेविशेषेणभवतिगर्भिणी ।

तस्मान्मुसलग्रहणंपरिहार्यमृपयो  
मन्यन्तेजुम्भणश्चक्रमणश्चपुनरनु  
ष्ठेयमिति ॥ ८४ ॥

वह ठीक नहीं यह भगवान् आत्रेय  
कहते हैं-क्योंकि गर्भिणीको दारुण व्या-

यामके वर्जनका निरंतर उपदेश किया  
है और प्रजननकालमें तो विशेष कर  
कहाहै प्रचलितहैं सर्व धातुदोष जिसके  
उस सुकुमारीके मुसल व्यायामसे समी-  
रित वायु अंतरको पाकर प्राणोंकी  
हिंसा करदेताहै क्योंकि उस समयमें  
गर्भिणी अत्यंत कष्टसे चिकित्सा करने  
योग्य होती है तिससे मुसलके ग्रहणको  
त्यागने योग्य ऋपि मानते हैं और  
जृम्भण और चक्रमण तो करना चाहिये  
इति ॥ ८४ ॥

अथास्यैदयात्कुष्ठैलालाङ्गलिकी  
वचाचित्रकचिरविल्वचूर्णमुपघ्रा  
तुंसातन्मुहुर्मुहुरुपजिघ्रेत् । तथा  
भूर्जपत्रधूमंशिशपासारधूमंतस्या  
श्चान्तरान्तरा । कटीपार्श्वपृष्ठस  
क्थिदेशादीपदुष्णेनतैलेनाभ्य  
ज्यानुसुखमवमृदुनीयादित्यनेनतु  
कर्मणागर्भोऽवाक्प्रतिपाद्यते । स  
यदाजानीयाद्विमुच्यहृदयमुदरम  
स्यास्त्वाविशतिचस्तिशिरोऽवगृ  
ह्णातित्वरयन्तिणामाव्यःपरि  
वर्त्ततेअस्याअवाग्भट्टित्यस्याम  
वस्थायांपर्यङ्कमेनामारोप्यप्रवा  
हितमुपक्रमेतकर्णचास्यामन्त्रमि  
ममनुकूलास्त्रीजपेत् ॥ ८५ ॥

फिर इसको कूट इलायची लांगलिकी बच चीता चिरवित्व इनके चूर्णको, सूंघनेके लिये दे वह उसे बारंवार सूंघे, तैसेही भोजपत्रकी धूम दे और उसको बीच बीचमें शिंशपासारका धूप दे और कटि, पार्श्व, पृष्ठ, सक्थि देशोंको किञ्चित् उष्ण तेलसे मले, इस कर्मसे, गर्भ नीचेके मार्गको प्राप्त होताहै, वह जब जानै कि, हृदयको छोडकर गर्भ इसके उदरमें प्रविष्ट होताहै, वस्ति, शिरका अवग्रह करताहै, आवी शीघ्रता इसको करता है इसका गर्भ अधोभागमें परिवर्तित होताहै, इस प्रकारकी, अवस्थामें पर्यंकपर बैठाकर प्रवाहित चिकित्सोंको करे और इसके कानमें अनुकूल स्त्री इस मंत्रको जपे कि, ॥ ८५ ॥

क्षितिर्जलं वियत्तेजोवायुर्विष्णुः प्रजापतिः । सगर्भात्वांसदापान्तु वैशल्यञ्च दिशन्तुते ॥ ८६ ॥

पृथिवी, जल, आकाश, तेज, वायु, विष्णु, प्रजापति, ये गर्भवती तुम्हारी सदैव रक्षा करें और दुःखके अभावको दें ॥ ८६ ॥

प्रसुवत्वमविक्लिष्टमविक्लिष्टा शुभानने ! कार्तिकेयद्युतिपुत्रं कार्तिकेयाभिरक्षितमिति ॥ ८७ ॥

और हे शुभानने तू क्लेशको त्यागकर, क्लेश रहित प्रसवकोकर और स्वामिकार्तिकने, कीहै सर्वतः रक्षा

जिसकी ऐसे स्वामिकार्तिकके समान कांतिवाले, पुत्रको पैदाकर, इति ॥ ८७ ॥

ताश्चैनां यथोक्तगुणाः स्त्रियोऽनुशिष्युरनागतावीर्माप्रवाहिष्ठाः याह्यनागतावीः प्रवाहयते व्यर्थमेवास्यास्तत्कर्म भवति । प्रजाचास्या विकृतिमापन्ना चश्वासका सशोपप्लीहप्रसक्ता भवति यथा हि क्षवथूद्गारवातमूत्रपुरीषवेगान्प्रयतमानोऽप्यप्राप्तकालाच्चलभते कच्छेण व्याप्यवाप्नोति तथा नागतकालं गर्भमपि प्रवाहमाणा यथा चैषामेव क्षवश्वादीनां सन्धारणमुपघातां योपपद्यते तथा प्राप्तकालस्य गर्भस्याप्रवहणमिति । सायथानिर्देशं कुर्वेति वक्तव्या स्यात् । तथा च कुर्वती शनैः शनैः पूर्वप्रवाहेत ततोऽनन्तरं बलवत्तरमिति तस्याश्च प्रवाहमाणायां स्त्रियः शब्दं कुर्युः प्रजाता प्रजाता धन्यं धन्यं पुत्रमिति तथा स्यादर्पेणाप्यायन्ते प्राणाः ॥ ८८ ॥

वे पूर्वोक्त गुणवती स्त्री इस गर्भिणीको शिक्षाको दे, कि, विना आये आवियोंके गर्भका प्रवाह मत करियो, क्योंकि, जो अनागत गर्भका प्रवाह करती है उसका

प्रवाह रूप कर्म, व्यर्थही होताहै और इसकी प्रजा अविकारीभी, विकारको प्राप्त होकर, श्वास, कास, रोगमें प्रसक्त होती है, क्योंकि, जैसे क्षवथु, उद्गार, वात, मूत्र, पुरीष इनके वेगोंका यत्न करता ( रोकता ) हुआभी मनुष्य, समयसे पहिले नहीं करसक्ता, वा कष्टसे करता है, तैसेही अनागतकाल गर्भका प्रवाह करती हुई प्रसवको प्राप्त नहीं होती और जैसे इनही क्षवथु, आदिका सन्धारण उपघातक होताहै, तिसी प्रकार प्राप्त-काल गर्भका, अप्रवाहणभी उपघातक होताहै, इससे गर्भिणीको कहै कि, हमारी आज्ञाके अनुसारकर तैसे करती हुई वह पहिले शनैः २ प्रवाह करै, फिर अत्यन्त बलसे करै, प्रवाह करती हुई उसके स्त्री, इस शब्दको करै कि प्रजात हुई २ धन्य २ पुत्र है, तैसे करनेसे इसके प्राण हर्षसे पुष्ट होते हैं ॥ ८८ ॥

यदाचप्रजातास्यात्तदेनामवेक्षेत्  
काचिदस्याममराप्रपन्नावाप्रप  
न्नानेति । तस्याश्चेदमरानप्रप  
न्नास्यादथैनामन्यतमास्त्रीदक्षिणे  
नपाणिनानाभेरुपरिष्ठाद्वलवन्निपी  
ड्यसव्येनपाणिनापृष्ठतउपसंगृह्य  
मुनिर्द्धूतंनिर्द्धूनुयात् । अथास्याः  
पादपाण्योश्चोणीमाकोटयेद  
स्याःस्फिचावुपसंगृह्यमुपीडितंपी

डयेत् । अथाम्यावालवेण्याक  
ण्ठतालूपरिमृशेत् ॥ ८९ ॥

और जब, प्रजात होजाय तब इसको कोई अमरा स्त्री, देखे वा प्रपन्न ( सेवक ) हो वा प्रपन्न न हो इसको यदि कोई अमरा प्राप्त न होय तो कोई स्त्री दक्षिण हाथसे नाभिसे ऊपर बलसे दबाकर वामहाथसे पीठ पकडकर अच्छी तरह कंपावै, फिर इसकी श्रो-णिको पादकी पार्श्वसे पीडित करे इसके हिलाकर स्फिज पकडकर, भली प्रकार पीडित करे, इसके अनन्तर, इसकी बाल वेणीका कण्ठ, तालुके ऊपर स्पर्श करे ॥ ८९ ॥

भूर्जपत्रकाचमणिसर्पनिर्मकैश्चा  
स्यायोनिधूपयेत् ! कुष्ठतालीस  
कल्कंवल्बजयूपमैरेयसुरामण्डेवा  
कौलथेवामण्डूकपर्णिपिप्पलीका  
थेवासंप्ताव्यपाययेदेनाम् ॥ ९० ॥

इसकी योनिको भोजपत्र, काच-मणि, सांपकी कांचलीकी धूमसे धूप दे, वा कूट तालीसके कल्कको बल्बजके यूपमें मैरेय सुराके मंडमें वा तीक्ष्ण कुलथीके मंडमें मंडूकपर्णी पिप्पलीके संपाकमें मिलाकर इसको पिलावै ॥ ९० ॥

तथासूक्ष्मैलाकिलिमकुष्ठनागरवि  
डङ्गकालविडचव्यापिप्पलीचित्र  
कोपकुञ्चिकाकल्कंखरवृषभस्य

जरतोवादक्षिणकर्णमुत्कृत्यदृष्ट्वादि  
जर्जरीकृत्यबल्वजयूपादीनामन्य  
तममस्मिन्प्रक्षिप्यमुहूर्तस्थितमुद्धृ  
त्यतदाप्लावनपाययेदेनाम् ॥ ९१ ॥

तैसेही छोटी इलायची किलिम कूठ  
सोंठ विडंग, फला विडचन्य पीपल  
चीता उपकुंचिका इनके कल्कको वा  
खर वृषका जीर्ण हुयेके दाक्षिण कर्णको  
उखाडकर पत्थरपर पीसकर भीगे हुये  
बल्वज यूपोंमेंसे किसी यूपको इसमें  
डालकर मुहूर्तके अनंतर उतारकर उस  
आप्लावनको इस स्त्रीको पिलावै ॥ ९१ ॥

शतपुष्पाकुष्ठमदनहिंगुसिद्धस्यचै  
नातैलस्यपिचुग्राहयेदतश्चैवानु  
वासयेदेतैरेवचाप्लावनैःफलजीमू  
तकेक्ष्वाकुधामार्गवकुटजकृतवेध  
नहस्तिपर्ण्युपहितैरास्थापयेत् ॥ ९२ ॥

सोंफ कूट मैनफल हींग इनसे सिद्ध  
तैलकी पिचु इसको ग्रहण करावै इसके  
अनंतर हसको इही आप्लावनोंसे अनुवा-  
सन करावै फल जीमूतक इक्ष्वाकु धामा-  
र्गव कुटज कृतवेधन हस्तिपर्णी इनसे  
युक्तोंसे आस्थापन करावै ॥ ९२ ॥

तदास्थापनमस्याहिसहवातमूत्रं  
पुरीषैर्निर्हरत्यमरामासक्तांवायोर  
नुलोमगमनात्। अमरंहिवातमूत्रं  
पुरीषाण्यन्यानिचान्तर्बहिर्मुखा  
निसृजन्ति ॥ ९३ ॥

वह आस्थापन इस स्त्रीके वात मूत्र  
पुरीषमें उक्त अमराको निर्हरण करताहै  
क्योंकि, वायु अनुकूल गमन करती है  
क्योंकि, अमरामें वात मूत्र पुरीष और  
अन्यभी अंतर्बहिर्मुख नाडी संगको प्राप्त  
हो जातेहैं ॥ ९३ ॥

तस्यान्तुखल्वमरायाःप्रपतना  
र्थखल्वेवमेवकर्मणिक्रियमाणे  
जातमात्रेऽस्यैवकुमारस्यकार्यार्था  
ण्येतानिकर्माणिभवन्तितद्यथा—  
अश्मनोःसंघट्टनंकर्णयोर्मूलेशीतो  
दकेनोष्णोदकेनवासुखपरिपेकः।  
तथासंक्लेशविहतान्प्राणान्पुनर्लभे  
तकृष्णकपालिकाशूर्पेणचैनमभि  
निष्पुणीयाद्यच्चेष्टस्याद्यावत्प्रा  
णानांप्रत्यागमनात्तत्तत्सर्वमेवकु  
र्युः ॥ ९४ ॥

और तिसको आवकीको प्रपतनके  
लिये यह कर्म करना होय तो जात-  
मात्रके समयमेंही इस कुमारके ये कार्य  
करने चाहिये ऐसे हैं कि, पत्थरका संघ-  
ट्टन कानोंके मूलमें करै शीतल वा उष्ण  
जलसे मुखका परिसेक करै तैसे करनेसे  
संक्लेशसे हुते होये प्राणोंको प्राप्त होताहै  
और कृष्ण कपालीके शूर्पसे इसको निरंतर  
पवित्र करै और इतने प्राणोंका प्रत्या-  
गमन हो तबतक जो २ इष्ट हो वह २  
करै ॥ ९४ ॥

ततःप्रत्यागतप्राणप्रकृतिभूतमभि  
समीक्ष्यस्नानोदकग्रहणाभ्यामुप  
पादयेत् । अथास्यताल्वोष्ठकण्ठ  
जिह्वाप्रमार्जनमारभेतअंगुल्यामुप  
रिलिखितनखयामुप्रक्षालितोपधा  
नकार्पासपिचुमत्याप्रथमप्रमार्जित  
स्यास्यचशिरस्तालुकार्पासपिचुना  
स्नेहगर्भेणप्रतिच्छादयेत् । ततोऽ  
स्यानन्तरकार्पासैन्ध्रवोपहितेनस  
र्पिपाप्रच्छदनम् ॥ ९५ ॥

फिर प्रत्यागत प्राण, प्रकृतिमें आये-  
कों देखकर स्नान और जलका ग्रहण  
करावे इसके अनंतर इसके तालु,  
ओष्ठ कंठ जिह्वा इनके मार्जनका प्रारंभ  
करे उस अंगुलीसे, जिसके उपर लि-  
खित (कटे) नख हों और जो भलीप्रकार  
प्रक्षालित उपधान कार्पासकी पिचुमतीहो  
उससे प्रथम मार्जन किये इस बालकके  
शिरा तालुको स्नेह मिली कार्पासकी  
पिचुसे प्रच्छादन करे ( ढकै ) फिर  
इसकी नाडीका सेंधव मिले घीसे प्रच्छ-  
दन करे ॥ ९५ ॥

नाड्यास्तस्याःकल्पनविधिमुपदे  
क्ष्यामः । नाभिवन्धनात्प्रभृति  
हित्वाष्ठांगुलमभिज्ञानं कृत्वा छेदना  
वकाशस्य द्वयोरन्तरयोः शनैर्गृही  
त्वा तीक्ष्णेन रौक्मराजतायसानां

छेदनानामन्यतमेनोर्द्ध्वधारेण छेद  
येत्तामग्रेसूत्रेणोपनिबध्य कण्ठे  
चास्य शिथिलमवसृजेत् ॥ ९६ ॥

उस नाडीके करनेकी विधिका उप-  
देश करते हैं, नाभिके बंधनसे लेकर  
आठ अंगुलको छोड़ और समझकर  
दोनों अंतरोंके छेदनावकाशको शनैः २  
पकड़कर सुवर्ण चांदी लोहा इनके छेद-  
नोंमेंसे कोईसे ऊर्द्ध्वधार तीक्ष्ण जो छेदन  
है उससे छेदन करे उसको अग्रभागमें  
सूत्रसे बांधकर इसके कंठमें शिथिलतासे  
पहनावे ॥ ९६ ॥

तस्य चेन्नाभिः पच्येत्तांलोध्रमधु  
कप्रियंगुदारुहरिद्राकल्कसिद्धेन  
तैलेनाभ्यज्योदपामिवतैलौपधानां  
चूर्णेनावचूर्णयेदपनाडीकल्पन  
विधिरुक्तः सम्यक् ॥ ९७ ॥

यादि उसकी नाभिको पकी देखे तो  
लोध्र, मधुक, प्रियंगु, दारुहलदी इनके  
कल्कसे सिद्ध तैलसे अभ्यंग करे इन्ही  
तैलकी औषधोंके चूर्णसे चूर्ण न करे  
( चूर्ण लगावे ) नाडी कल्पनकी विधि  
सम्यक् कही ॥ ९७ ॥

असम्यक् कल्पेन हि नाड्या आयाम  
व्यायामोत्तुण्डितपिण्डालिकावि  
नामिका विजृम्भिका बाधेभ्यो भ  
यम् ॥ ९८ ॥

क्योंकि, नाडीके असम्यक् करनेमें आयाम व्यायामा तुंडित पिंडालिका विनामिका विजृम्भिका इनकी बाधाओंसे भीति है ॥ ९८ ॥

तत्राविदाहिभिर्वात-पित्त-प्रशम-  
नैरभ्यङ्गोत्सादन-परिपेकैः सर्पि-  
र्भिश्चोपक्रमेत गुरुलाघवं मभिसमी-  
क्ष्य कुमारस्य ॥ ९९ ॥

उसमें अविदाही जो वात पित्त प्रश-  
मन है उनसे अभ्यंग आच्छादन परिसे-  
चनोंसे और घीसे कुमारके गुरु लाघ-  
वको देखकर चिकित्सा करे ॥ ९९ ॥

प्रागतो जातकर्मकार्यं ततो मधुस-  
र्पिपीमन्त्रोपमन्त्रितेयथान्यायं  
प्राशितुमस्मै दद्यात् । स्तनमत-  
ऊर्द्धमनेनैव विधिना दक्षिणं पातुं  
पुरस्तात् प्रयच्छेत् । अथातः शी-  
र्षतः स्थापयेदुदकुम्भं मन्त्रोपम-  
न्त्रितम् ॥ १०० ॥

इसके प्रथम जातकर्म करे वह ऐसे  
है कि, मंत्रोंसे उपमन्त्रित किये सहत और  
घृत आम्रायके अनुसार भक्षणके लिये  
दे, इसके अनंतर इसी विधिसे पीनेके  
लिये पहिले दक्षिण स्तन को दे इसके  
अनंतर शिरकी तरफ मंत्रोंसे उपमन्त्रित  
जलका घट स्थापन करे ॥ १०० ॥

अथास्य रक्षां विदध्यादादानीं ख-  
दिरकर्कन्धूपीलुपर्षकशाखाभि

रस्यागृहं भिषक् समन्ततः परिवार-  
येत् । सर्वतश्च सूतिकागारस्य स-  
र्पपातसीतण्डुलकणकणिकाः प्र-  
किरेत् । तथा तण्डुलबलिमङ्गल-  
होमः सततमुभयकालं क्रियते प्रा-  
ङ्नामकर्मणोर्द्वारे च मुसलमनुति-  
रश्मीनं न्यस्तं कुर्यात् । वचाकुष्ठ-  
क्षौमकहिंसुसर्पपातसीलशुनक-  
णकणिकानारक्षोन्नसमाख्याता-  
नाञ्च औषधीनां पोद्दलिकां बद्ध्वा  
सूतिकागारस्योत्तरदेहल्यामासु-  
जेत् । तथा सूतिकायाः कण्ठे स पुत्रा-  
याः स्थाल्युदककुम्भपर्यङ्केष्वपि  
तथैव च द्वयोर्द्वारपक्षयोः सकणकु-  
म्भकेन्धनाग्निस्तित्न्दुककाष्ठेन्धन-  
श्चाग्निः सूतिकागारस्याभ्यन्तरतो  
नित्यं स्यात् । स्त्रियश्चैनं यथोक्त-  
गुणाः सुहृदश्चानुजागृयुर्दशाहं द्वाद-  
शाहं वानुपरतप्रदानमङ्गलाशीः  
स्तुतिगीतवादित्रमन्त्रपानविशद-  
मनुरक्तप्रहृष्टजनसम्पूर्णतद्वेश्मका-  
र्यम् । ब्राह्मणश्चाथर्ववेदवित्स-  
ततमुभयकालं शान्तिं जुहुयात्स्व-  
स्त्ययनार्थमुकुमारस्य तथा सूतिका-  
या इत्येतद्रक्षाविधानमुक्तम् १०१

इसके अनंतर इसकी रक्षाको क  
आदानी, खदिर, कर्कंधु, पीलु, परुष

इनकी शाखाओंसे इसके गृहको चारों तरफसे वैद्य ढकड़े और सूतिकागारके चारोंतरफ सर्पप, अतसी, तंदुल, कण कणिका इनको बखेरै, तिसी प्रकार तंदुल बलि मंगल होमको निरंतर दोनोंकालोंमें नामकर्म पर्यंत करे और द्वारपर देहलीके समीप तिरछा मुसल रखे वच, कूट, क्षौमक, हींग, सरसों, अतसी, कण, कणिका जो रक्षोघ्न नामसे प्रसिद्ध औषधी हैं उनकी पोटली बांधकर सूतिकागारकी उत्तर देहली ( तरंगा ) पर बांधै, तिसी प्रकार पुत्र सहित सूतिकाके कंठमें और स्थाली जलघट पर्यंत इनमेंभी बांधै, तैसेही दोनों द्वारपक्षोंमें कणक अम्ल इंधनकी अग्नि और तिंदुक काष्ठके इंधनकी अग्नि सूतिकागारके भीतर नित्यरहै और सूतिकाको यथोक्त गुणवती स्त्री और सुहृद जागरण करावै और जिसमें दश दिन वा बारह दिन तक दानकी निवृत्ति नहीं हो और मंगल आशीश स्तुति गीत वादित्र अन्न पान विषद हों संपूर्ण जन हर्षसे रहें ऐसा वह घर बनाना चाहिये और अथर्व वेदका ज्ञाता ब्राह्मण निरंतर दोनोंकालमें शांति होसको कुमारकी स्वस्तिके लिये करे और तैसेही सूतिकाकी स्वस्तिके लिये करे यह रक्षा विधान कहा है ॥ १०१ ॥

सूतिकान्तुखलुबुभुक्षितांविदित्वा स्नेहंपाययेत्प्रथमंपरमयाश्चयास पिस्तैलंवसांमज्जानंवासात्प्यभा

वमभिसमीक्ष्यभिपक्व।पिप्पलीपि प्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरचूर्ण सहितंस्नेहंपीतवत्याश्वसार्पिस्तैला भ्यामभ्यज्यवेष्टयेदुदरंमहतावास सातथातस्थानवायुरुदरेविकृतिमु त्पादयत्यनवकाशत्वात्।जीर्णेतुस्ने हेपिप्पल्यादिभिरेवसिद्धांयवागूसु स्निग्धांद्रवांमात्रशःपाययेतोभय कालञ्चोष्णोदकेनपरिषेचयेत्प्रा क्स्नेहयवागूपानाभ्याम् । एवंपञ्चरात्रंसप्तरात्रञ्चानुपाल्यततःक्रमेणाप्ययेत्स्वस्थवृत्तमेतत्सूचि कायाः ॥ १०२ ॥

और सूतिकाको तो बुभुक्षित देखकर स्नेहपान करावै और परम शक्ति होय तो वैद्य घी, तेल, वसा, मज्जाको और सात्म्यताको देखकर पिलावै । पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, शृंगवेर इनके चूर्ण सहित स्नेह पीली गौका घृत और तेलसे अभ्यंग करके मोटे वस्त्रसे उदरको लपेटै, तैसे करनेसे वायु उदरमें नहीं होता और अनवकाश होनेसे विकारको पैदा नहीं करता और जब स्नेह पच जाय तब पीपल आदिसे सिद्ध भलीप्रकार चिकनी यवागू जो पतली हो उसको मात्रासे पिलावै और दोनोंकाल उष्ण जलसे स्नेह और यवागूके पीनेसे प्रहिले परिषेचन करै, इस प्रकार पांचरात्र वा



सातरात्र तक पालना करके फिर क्रमसे आप्यायन करे, यह सूतिकाका स्वस्थ वृत्त है ॥ १०२ ॥

तस्यास्तुखलुयोव्याधिरुत्पद्यतेस  
कृच्छ्रसाध्योभवत्यसाध्योवा ।  
गर्भवृद्धिक्षयितशिथिलसर्वशरीर  
धातुत्वात्प्रवाहणवेदनाक्लेदनरक्त  
निःसुतिविशेषशून्यशरीरत्वाच्चत  
स्मात्तांयथोक्तेनविधिनोपचरेद्भौ  
तिकजीवनीयवृंहणीयमधुरवात  
हरसिद्धैरभ्यङ्गोत्सादनपरिपेकाव  
गाहनान्नपानविधिभिर्विशेषतश्चो  
पचरेद्विशेषतोहिशून्यशरीराःस्त्रि  
यःप्रजाताभवन्ति ॥ १०३ ॥

सूतिकाको जो व्याधि उत्पन्न होती है, वह कष्टसाध्य वा असाध्य होती है क्योंकि वह गर्भकी वृद्धिसे कृश शिथिल सर्व शरीरकी धातुवाली है और प्रवाहणकी वेदना क्लेदन रक्तकी स्रुति आदिके विशेषोंसे शून्य शरीर है, तिससे उसका यथोक्त विधिसे उपचार करे और भौतिक जीवनीय वृंहणीय मधुर वातहर औषधियोंसे सिद्ध तैल आदिका अभ्यंग आच्छादन परिपेक अवगाहन ( स्नान ) अनुपानकी विधियोंसे विशेषकर उपचार करे क्योंकि प्रजात स्त्री विशेषकर शून्य शरीर होजाती है ॥ १०३ ॥

दशम्यानिश्यतीतायांसपुत्रास्त्री  
सर्वगन्धौषधैर्गौरसर्पलोध्रैश्चस्ना  
तालध्वहतवस्त्रं परिधायपवित्रेष्टल  
घुविचित्रभूषणवर्तिसंस्पृश्यमङ्ग  
लान्युचितामर्चयित्वाचदेवतां  
शिखिनःशुक्लवाससोव्यङ्गाश्चत्रा  
ह्मणान्स्वस्तिवाचयित्वाकुमारम  
हतेनशुचिवाससाच्छादयेत् ।  
प्राक्शिरसमुदक्शिरसंवासंवेश्यदेव  
तापूर्वद्विजातिभ्यःप्रणमतीत्युक्त्वा  
कुमारस्यपिताद्वेनामनीकारयेत्  
नाक्षत्रिकंनामाभिप्रायिकंश्च ।  
तत्राभिप्रायिकंनामघोषवदाद्यं  
न्तस्थान्तमुष्मान्तश्चवृद्धंत्रिपुरु  
षान्तरमनवप्रतिष्ठितम् । नाक्ष  
त्रिकन्तुनक्षत्रदेवतासंयुक्तंरुतं  
द्व्यक्षरंचतुरक्षरंवा ॥ १०४ ॥

और दशमी रात्रिके बीतने पर पुत्र सहित स्त्री सब गंध औषधी और गौरसर्प लोध्रसे स्नान करके और लघु नवीन वस्त्रोंको धारकर और पवित्र इष्ट लघु विचित्र भूषण धारण किये मंगलोंका स्पर्श करके उचित देवताको पूजकर शिखाधारे और शुक्लवस्त्र वाले अव्यंग ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर और बालक को नवीन वस्त्र धारण कराकर पूर्व वा उत्तरको है शिर जिसका ऐसे कुमारको

शयन कराकर प्रथम देवताओंको और ब्राह्मणोंको नमस्कार करताहै यह कह कर कुमारका पिता दो नाम करै एक नक्षत्रका और एक नाम लेनेके अभिप्रायसे उन दोनोंमें जो अभिप्रायसे नामहै उसकी आदिमें घोषवर्ण ( ह य व र ल ज म ङ ण न झ भ ष ड ध ज व ग ड द ) हों और अंतमें अंतस्थवा ऊष्मा ( य व रं ल श प स ह ) हों और जो अवृद्ध हो अर्थात् दीर्घस्वर जिसकी आदिमें न हों और तीन पीठिके भीतरका हो शत्रुका नाम न हो ऐसा नाम रखना चाहिये और नाक्षत्रिक तो नक्षत्रके देवताके नामसे संयुक्त हो कृत् प्रत्यय जिसके अंतमें हो दो वा तीन अक्षर जिसमें हों ॥ १०४ ॥

कृतेचनामकर्मणिकुमारंपरीक्षितु मुपक्रामेदायुपःप्रमाणज्ञानहेतोः । तत्रेमानिआयुष्मतांकुमाराणालक्ष णानिभवन्ति । तद्यथा, एकैकजामृ दवोऽल्पाःस्निग्धाःसुवद्धमूलाःकृ ण्णाःकेशाःप्रशस्यन्ते । स्थिराबह लात्वक्प्रकृत्याकृतिसुसम्पन्नमी पत्रप्रमाणातिरिक्तमनुरूपमातप त्रोपमंशिरःप्रशस्यते । व्यूढदंढं समंसुश्लिष्टशङ्खसन्ध्यर्द्धव्यञ्जन मुपचितंबालिनमर्द्धचन्द्राकृतिल लाटंवहलौविपुलसमपीठौसमौनी चौवृद्धौपृष्ठतोऽवनतौसुश्लिष्टकर्ण

पुटकौमहाच्छिद्रौकर्णौर्द्विपत्रल म्बिन्यावसङ्गतेसमेसंहतेनहत्यौ भ्रुवौ । समेसमाहितदर्शनेव्य क्तभागविभागेबलवतितेजसोपप त्रेस्वाङ्गोपाङ्गेचक्षुषी । ऋज्वी महोच्छासावंशसम्पन्नेपदवतता ग्रानासिकामहद्वजुसुनिविटदन्त मास्यमायामविस्तरोपपन्नाश्ल क्षणातन्वीप्रकृतियुक्तापाटलवर्णा जिह्वा । श्लक्ष्णंयुक्तोपचयमुष्मो पपञ्चरक्ततालुमहानदीनःस्निग्धो ऽनुनादीगम्भीरसमुत्थोधीरःस्वरः । नातिस्थूलौनातिकृशौविस्तारोप पन्नावास्यप्रच्छादनौरक्तावोष्ठौ । महत्यौहनूवृत्तौनातिमहतीग्रीवा व्यूढमुपचितमुरोदृढंजनुपृष्ठवंश श्व । विकृष्टान्तरौस्तनौअंसपा तिनीस्थिरेपार्श्वेवृत्तपरिपूर्णयितौ बाहूसक्थिनीअंगुलयश्चमहदुप चितंपाणिपादम् । स्थिरावृत्ताः स्निग्धस्ताम्रास्तुङ्गाःकूर्माकाराः करजाः । प्रदक्षिणावर्त्तासोत्सङ्गा चनाभी । नाभ्युरस्त्रिभागहीनास मासमुपचितमांसाकटीवृत्तौस्थि रोपचितमांसौनात्युन्नतौनात्यवन

तौस्फिचावनुपूर्ववृत्तोपचययु  
क्तावूरु । नात्युपचितेनात्युप  
चितेएणीपदेप्रगूढशिरास्थिसन्धी  
जङ्घे । नात्युपचितौनात्युपचि  
तौगुल्फौपूर्वोपदिष्टगुणौपादौकू  
र्माकरौ । प्रकृतियुक्तानिवातमू  
त्रपुरीषगुह्यानि तथास्वगजागरण  
यासस्मितरुदितस्तनग्रहणानि ।  
यच्चकिञ्चिदन्यदपिअनुक्तमस्ति  
तदपिसर्वप्रकृतिसम्पन्नमिष्टंविप  
रीतंपुनरनिष्टमितिदीर्घायुर्लक्षणा  
नि ॥ १०५ ॥

नाम कर्मके समाप्त होनेपर कुमारकी  
आयुकी प्रमाणताके हेतु परीक्षा करनेका  
प्रारंभ करै उसमें आयुष्मान् कुमारोंके  
ये लक्षण हैं कि एक २ उत्पन्न कोमल  
अल्प चिकने भली प्रकार बद्ध मूल  
कृष्ण ऐसे केश प्रशस्त होते हैं और  
प्रकृतिसे स्थिर बहुल त्वचा और प्रकृ-  
तिसे युक्त ईषत्प्रमाण अतिरिक्त ( बड़ा )  
अनुरूप छत्रके समानशिर उत्तम होता  
हो और व्यूढ दृढ सम सुस्निग्ध शंख  
संधि ऊँचा व्यंजन उपचित ( बड़ा )  
बलिसहित अर्द्धचंद्राकृति ऐसा ललाट  
हो और बहल विपुल समान पीठ नीचे  
बद्ध पृष्ठभाग अवनत ( झुके ) भली  
प्रकार मिले हैं कर्णपुट जिनके महा-  
छिद्रके कर्ण हों और ईषत् लंबी अव

संग पर्यंत गत ( तिरछी ) सम संहत  
( मिली ) बड़ी भ्रुकुटी हों, सम समा-  
हित दर्शन व्यक्त है भाग विभाग  
जिनका बलवान् तेजसे युक्त अंग उपां-  
गमें श्रेष्ठ नेत्र हों, कोमल महान् बड़ी  
वंशसे संपन्न ईषत् अग्र भागमें अवनत  
नासिका हो और बड़ा ऋजु भली प्रकार  
निविष्ट दंतवाला मुखहो, आयाम  
विस्तारसे युक्त शुक्ल तन्वी प्रकृतिसे  
युक्त पाटल वर्णकी जिह्वा हो, श्लक्ष्ण  
युक्त वृद्ध उष्मासे उपपन्न रक्त तालुहो,  
महान्अदीन स्निग्ध अनुनाद गंभीर उ-  
त्थान धीर स्वरहो, न अतिस्थूल न  
अतिकृश मुखके प्रच्छादनकारी ओष्ठ  
रक्त हों, महान् हनुवृत्त हों, नहीं अति  
बड़ीग्रीवा हो, विपुल उपचित छाती हो,  
दृढ जञ्जु और पृष्ठ वंशहों, अधिक अंत-  
रके स्तनहों अंश पर्यंत स्थिर पार्श्व हों,  
वृत्त और परिपूर्ण आयत बाहु हों और  
सक्थि और अंगुलिहों, महान् बड़े पाणि  
पादहों, स्थिर गोल स्निग्ध ताम्र ऊँचे  
कूर्माकार नखहों, प्रदक्षिणावर्त ऊँची  
नाभि हो, नाभि और उरके त्रिभागसेही-  
न और समान और भली प्रकार उचित  
है मांस जिसका ऐसी कटि हो, गोल  
स्थिर उपचित मांस नहीं अति ऊँचे न  
अतिनीचे स्फिजहों, अनुपूर्व गोल वृद्धिसे  
युक्त ऊरु हों, न ऊँचे न नीचे अति हों  
ऐसे एणी पदहों गुप्त शिरा और  
अस्थिसंधि जिनमें ऐसी जंघाहों, नहीं  
अति बड़े न अति छोटे गुल्फ हों, पूर्वोक्त

गुणवान् पादहो जिनका आकार कूर्मके समान हो, प्रकृतिसे युक्त वात मूत्रपुरीष गुह्यहो तिसीप्रकार स्वप्न जागरण और आयास स्मित रुदित स्तन ग्रहण येभी प्रकृति से युक्त हों जो कुछ अन्य भी अनुक्तहै वह भी सब प्रकृतिसे संपन्न इष्ट है और विपरीत अनिष्ट है ये सब दीर्घायुके लक्षण हैं ॥ १०५ ॥

धात्रीपरीक्षा ।

अतोधात्रीपरीक्षामुपदेक्ष्यामः १०६

इसके अनंतर धात्रीकी परीक्षाका उपदेश करतेहैं ॥ १०६ ॥

अथब्रूयाद्धात्रीमानयेतिसमानव  
णांयौवनस्थांनिभृतामनातुरामव्य  
ङ्गामव्यसनामविरूपामजुगुप्सि  
तादेशजातीयामशुद्रामशुद्रक  
र्मिणींकुलेजातांवत्सलामरोग  
जीवद्वत्सांपुंवत्सांदोग्ध्रीमप्रमत्ता  
मशायिनीमनुचारशायिनीमनन्त  
वशायिनींकुशलोपचारांशुचिम  
शुचिद्वेपिणींस्तन्यसम्पदुपेतामि  
ति ॥ १०७ ॥

इसके अनंतर कहै कि, धात्रीको लाओ जो समान वर्णकी हो यौवनमें स्थित हो निभृत्त हो आतुर न हो अव्यंग हो व्यसन रहित हो विरूप न हो निर्दित न हो अनिदित देशमें उत्पन्न हो क्षुद्र न हो क्षुद्र

कर्मवती न हो कुलीन हो, वत्सल हो नीरोग जीव पुत्रा हो पुरुष संतानवती हो दुग्धवती हो प्रमत्त न हो शयनशील न हो उच्चार शायिनी और अंतावशायिनी न हो उपचारमें कुशल हो शुचि हो अशुचिकी द्वेपिणी हो स्तन स्तन्य ( दूध ) इनकी संपदासे युक्त हो इति ॥ १०७ ॥

तत्रेयंस्तनसम्पन्नात्पूङ्खानातिल  
म्बौअनतिरुशौअनतिपीनौयुक्त  
पिप्पलकौमुखप्रपानौचेतिस्तनस  
म्पत् ॥ १०८ ॥

उसमें स्तनोंकी संपदा यह है कि, न अति ऊर्ध्व न अति लंबे न अति कृश न अति पीन युक्तिके पिप्पलक जिनके हों मुखसे पीने योग्य हों यह स्तनसंपत् है ॥ १०८ ॥

स्तन्यसम्पत्तुप्रकृतिवर्णगन्धरस  
स्पर्शनुदपात्रेचदुह्यमानंदुग्धमुदकं  
व्येतिप्रकृतिभूतत्वात्तत्पुष्टिकर  
मारोग्यकरश्चेतिस्तन्यसम्पदतो  
ऽन्यथाव्यापन्नंज्ञेयम् ॥ १०९ ॥

स्तन्यकी संपदा यह है कि, प्रकृतिके वर्ण गंधरस स्पर्श जिसके हों और जल के पात्रमें दुहाहुआ उदकतो नष्ट हो जाय ( न दीखे ) और दूधही प्रकृति भूत होनेसे रहै वह दूध पुष्टि आरोग्यकारक है यह स्तन्यकी संपत् है, इससे अन्यथा व्यापत्तिसे युक्त जानना ॥ १०९ ॥

तस्यविशेषाः श्यावारुणवर्णकपा  
यानुरसंविशदमनतिलक्ष्यगन्धंरूक्षं  
द्रवफेनिलंलघुअतृप्तिकरंकर्षणंवा  
तविकाराणांकर्तृवातोपसृष्टक्षीर  
मभिज्ञेयम् ॥ ११० ॥

उसके विशेष ये हैं कि, श्याव अरुण  
वर्ण पीछेसे कपाय रस विषद जिसकी  
गंध अत्यंत लक्षित न हो रूक्ष द्रव फेनिल  
लघु अतृप्तिकर कर्षण वात विकारोंका  
कर्ता जो है वह वातसे युक्त क्षीर  
जानना ॥ ११० ॥

कृष्णनीलपीतताम्रावभासंतिका  
म्लकटुकानुरसंकुणपरुधिरगन्धि  
भृशोष्णपित्तविकाराणांकर्तृपित्तो  
पसृष्टक्षीरमभिज्ञेयम् ॥ १११ ॥

और कृष्णनील पीतताम्र इनके  
समान प्रकाशमान् हो, तित्त अम्लकटु  
पीछेसे रसहों मांस रुधिरके समान गंधहो  
उष्ण हो पित्तविकारकारी हो वह दूध  
पित्तोपसृष्ट जानना ॥ १११ ॥

अत्यर्थशुक्लमतिमाधुर्योपपन्नंलव  
णानुरसंवृततैलवसामज्जगन्धिपि  
च्छिलंतनुमदुदकपात्रेऽवसीदति  
श्लेष्मविकाराणांकर्तृश्लेष्मोपसृ  
ष्टक्षीरमभिज्ञेयम् ॥ ११२ ॥

आतिशुक्ल हो अति मधुर हो पीछे  
से लवण रस हो घृत तेल वसा मज्जा इनके  
तुल्य गंध हो पिच्छिलहो जीव सहितहो

पात्रमें स्थिर होजाय कफके विकारका  
कर्ता हो वह दूध कफोपसृष्ट जानना ॥ ११२ ॥  
तेपान्तुत्रयाणामपिक्षीरदोषाणां  
प्रकृतिविशेषमभिसमीक्ष्ययथास्वं  
यथादोषश्चवमनविरेचनास्थापना  
नुवासनानिविभज्यकृतानिप्रशम  
नायभवन्ति ॥ ११३ ॥

उन तीनों भी क्षीर दोषोंके प्रकृति  
विशेषको देखकर यथायोग्य दोषके  
अनुसार वमन विरेचन आस्थापन अनु-  
वासन विभागसे कियेहुये शांतिको  
करतेहैं ॥ ११३ ॥

पानाशनविधिस्तुदुष्टक्षीरायायव  
गोधूमशालिपट्टिकमुद्गहरेणुककु  
लत्थसुरासौवीरकतुपोदकमैरेयमे  
दकलशुनकरञ्जप्रायःस्यात् ११४

और पान भोजनकी विधि तो यह है  
कि, दुष्टक्षीरा स्त्री गेहूं शालि सांठी  
मूंग हरेणु कुलथी सुरा सौवीरक तुपो-  
दक मैरेय भेदक लशुन करंज इनकोही  
प्रायः भक्षण करै ११४ ॥

क्षीरदोषविशेषांश्चावेक्ष्यावेक्ष्यत  
त्तद्विधानंकार्यंस्यात् ॥ ११५ ॥

क्षीरके दोष विशेषोंको देख २ कर  
तिस २ के विधानको करै ॥ ११५ ॥

पाठामहौषध-सुरदारु-मुस्तमुर्वा  
गुडूची-वत्सकफल-किराततित्त

कटुकरोहिणीशारिवाकपायाणा  
अपानप्रशस्यते । तथान्येषांति  
क्तकपायकटुकमधुराणांद्रव्या  
णांप्रयोगः । इतिक्षीरशोधनान्यु  
क्तानिभवन्ति । क्षीरविकारवि  
शेषानभिसमीक्ष्यमात्राकालञ्चे  
तिक्षीरविशोधनानि ॥ ११६ ॥

पाठा मूठ देवदारु मोथा मूर्वा  
गिलीय वत्सकफल किरात तित्तक कटु  
रोहिणी शारिवा इनके कपायोंका पान  
श्रेष्ठ है तिसी प्रकार अन्य भी तित्त  
कपाय कटु मधुर द्रव्योंका प्रयोगहै क्षीर  
विकारके विशेषोंको देखकर मात्राका  
कालहै ये क्षीर विशेषके शोधनहैं ॥ ११६ ॥

क्षीरजननानितुमद्यानिसीधुवज्या  
निग्राम्यानूपौदकानिचशाकधा  
न्यमांसानिद्रवमधुराम्लभूयिष्ठा  
श्वाहाराःक्षीरिण्यश्चौषधयःक्षीर  
पानञ्चानायासश्चेतिवीरणपट्टि  
शालिकेशुवालिकादर्भकुशकाश  
गुन्द्रोत्कटमूलकपायाणाञ्चपान  
मितिक्षीरजननान्युक्तानि ११७

क्षीरके उत्पादक तो मद्य, सीधुसे  
वर्जितहैं ग्राम्य अनूप उदकके शाक धान्य  
मांस और द्रव मधुर अम्ल लवण ये  
जिनमें अधिकहों ऐसे आहार और दूध  
वाली औषध क्षीरका पान और अना-

यास ये और वीरण सांठी शाली इक्षु  
वालिका दर्भ कुश काश गुन्द्र उत्कट  
मूल इनके कपायोंका पान इति क्षीर  
जननानि (येस्तन्त्रके वर्द्धकहैं) ॥ ११७ ॥

धात्रीतुयदास्वादुबहुलशुद्धदुग्धा  
स्यात्तदास्नातानुलिप्ताशुक्लवस्त्रंपरि  
धायैन्द्रीब्राह्मीशतवीर्यासहस्रवी  
र्यामोघामव्यथांशिवामरिष्ठांवा  
द्यपुष्पीविश्वक्सेनकान्तामिति वि  
भक्त्यौषधीःकुमारंप्राङ्मुखंप्रथमं  
दक्षिणंस्तनंपाययेदितिधात्रीकर्म ॥

और जब धात्री स्वादु बहुत शुद्ध दुग्ध  
वती होजाय तब स्नान लेपन शुक्ल वस्त्र  
धारकर इंद्रायण ब्राह्मी शतवीर्या सहस्र  
वीर्या मोघा अव्यथा शिवा अरिष्ठा बाह्य  
पुष्पी विष्वक्सेन कांता इन औषधियों  
को धारण करके पूर्वाभिमुख बैठेहुये  
बालकको प्रथम दक्षिणस्तनका पान  
करावै इति धात्रीकर्म ॥ ११८ ॥

कुमारागारविधिः ।

अतोऽनन्तरंकुमारागारविधिमनु  
व्याख्यास्यामः । वास्तुविद्याकुश  
लःप्रशस्तरम्यमतमस्कंनिवातंप्रवा  
तैकदेशंहृदमपगतश्वापदपशुदंष्ट्रि  
मुषिकपतङ्गंसुसंविभक्तसलिलो  
दूखलमूत्रवर्चःस्थानस्नानभूमिम  
हानसमृतुमुखंयथर्तुशयनासनास्त

रणसम्पन्नकुर्व्यात् । तथासुविहि  
तरक्षाविधानबलिमङ्गलहोमप्राय  
श्चितंशुचिवृद्धवैद्यानुरक्तजनसम्पू  
र्णमिति । कुमारगारविधिः ११९

इसके अनंतर कुमारके आगार को  
विधिका वर्णन करते हैं कि, वास्तुविद्या  
से कुशल प्रशस्त रमणीय अंधकार  
रहित वातहीन एकदेशमें अधिक वात  
युक्त दृढ, जिसमें श्वापद पशु दंष्ट्री मूषक  
पतंग न हों भलीप्रकार विभागसे जिसमें  
जल उलूखल मूत्र मल स्थान स्नानभूमि  
महानस जिसमें हों और ऋतुमें सुख हो  
ऋतु २ के अनुसार शयन आसन आ-  
स्तरण इनसे संपन्न हो और रक्षाविधि  
बलि मंगल होम प्रायश्चित्त ये जिसमें  
भलीप्रकार किये हों शुद्ध वृद्ध वैद्य अनु-  
रक्त जन इनसे सम्पूर्ण हो, इति कुमार  
गारविधिः ॥ ११९ ॥

शयनास्तरणप्रावरणानिकुमारस्य  
मृदुलघुशुचिसुगन्धीनिःस्युःस्वेद  
मलजन्तुमन्तिमूत्रपुरीषोपसृष्टानि  
चवर्ज्यानिःस्युः ॥ १२० ॥

लडकेके शयन आस्तरण आच्छादन  
ये मृदु लघु शुद्ध सुगंधितहों स्वेद मल  
जंतुवाले और मूत्रपुरीषसे युक्त वर्जित  
होते हैं ॥ १२० ॥

असतिसम्भवेऽन्येषांतान्येवचसु  
प्रक्षालितोपधानानिसुधूपितानि

मुशुद्धशुष्काण्युपयोगंछे

युः ॥ १२१ ॥

अन्य न होय तो उनकोही भलीप्र-  
कार प्रक्षालन पवन धूप देकर भलीप्रकार  
शुद्ध और शुष्क कराकर उपयोग में  
लावै ॥ १२१ ॥

धूपनानिपुनर्वाससांशयनास्तरण  
प्रावणानाश्चयवसर्षपातसी—हि  
ङ्गु—गुग्गुलु—वचाचोरकवयःस्था  
गोलोमीजटिला—पलङ्कशाशोक  
रोहिणीसर्पनिर्मोकाणिघृतसम्प्र  
क्तानिःस्युः ॥ १२२ ॥

वस्त्रों के और शयन आस्तरण प्राव-  
रणोंके धूपन ये हैं कि, जौ सरसों  
अतसी हींग गुग्गुलु वचा चोरकवयःस्था  
गोलोमी जटिला पलंकशा शोकरोहिणी  
सांपकीकांचली इनमें घी मिलाकर  
धूप होता है ॥ १२२ ॥

मणयश्चधारणीयाःकुमारस्यख  
ड्गुरुगवयवृषभाणांजीवतामेव  
दक्षिणेभ्योविषाणेभ्योऽग्राणिगृ  
हीतानिःस्युः । मन्त्राद्याश्चौषध  
योजीवकर्षभकौचयान्यपिअन्या  
निब्राह्मणाःप्रशंसेयुः ॥ १२३ ॥

और लडकेको मणियोंकाभी धारण  
करना खड्गुरु रुगवय वृषभ जीते हुये  
इनके दक्षिण कानोंके अग्रभागोंको लेकर

मणि होती हैं और ऐंद्री आदि औषधी जीवक ऋषभक और अन्यभी जिनकी ब्राह्मण प्रशंसा करें वे होती हैं ॥ १२३ ॥

क्रीडनकानिखल्वस्यतुविचित्रा  
णिघोषवन्त्यभिरामाणिअगुरु  
ण्यतीक्ष्णाग्राणिअनास्यप्रवेशी  
निअप्राणहराणिअवित्रासनानि  
स्युः ॥ १२४ ॥

और बालकके क्रीडनक (खिलौने) तो विचित्र शब्द करते सुंदर लघु जिनका अग्रभाग तीक्ष्ण न हों मुखमें प्रवेशके योग्य न हों प्राण हर न हों वित्रासन न हों ऐसे होते हैं ॥ १२४ ॥

नहिअस्यवित्रासनंसाधुतस्मात्त  
स्मिन्नुदत्यमुज्जनेवाअन्यत्रविधे  
यतामगच्छतिराक्षसपिशाचपूत  
नाद्यानांनामान्याह्वयताकुमार  
स्यवित्रासनार्थनामग्रहणंनका  
र्यस्यात् ॥ १२५ ॥

— क्योंकि बालकका वित्रासन अच्छा नहीं है तिससे उसके रोते भोजन न करते हुये वा अन्य समयमें कार्यको न करते हुयेके वित्रासनके लिये राक्षस पिशाच पूतना आदिके नामोंको लेकर बालकको त्रास न दे ॥ १२५ ॥

यदितुआतुर्ग्यकिञ्चित्कुमारमा  
गच्छेत्तत्प्रकृतिनिमित्तपूर्वरूपलि  
ङ्गोपशयविशेषैस्तत्त्वतानुबुध्य

सर्वविशेषानातुरौषधदेशकालश्र  
यानवेक्षमाणश्चिकित्सितुमारभे  
तैनमधुरमृदुलघुसुरभिशीतसङ्क  
रंकर्मप्रवर्तयेन्नेवंसात्म्याहिकुमा  
राभवन्तितथातेशर्मलभन्तेअचि  
रायरोगेतुअरोगवृत्तमातिष्ठेश  
कालात्मगुणविपर्ययेणवर्तमानः ॥

यदि बालक किंचित् रोगको प्राप्त होजाय तो उसकी प्रकृति निमित्त पूर्वरूप लिंग उपशय विशेषोंको तत्त्वसे जानकर आतुर औषध देशकालके आश्रय, संपूर्ण विशेषोंको देखता हुआ वैद्य इसकी चिकित्सा करनेका प्रारंभ करे, मधुर मृदु लघु सुगंध शीत इनसे मिले कर्मको प्रवृत्त करे क्योंकि कुमा-  
रोंकी ऐसीही सात्म्य होती है तैसे कर-  
नेसे वे बालक अचिरकालही सुखको प्राप्त होते हैं रोगके समयमें तो देश-  
काल, आत्मा गुण इनके विपर्ययसे वर्त-  
मान वैद्य अरोगके वर्तावको करे ॥ १२६ ॥

क्रमेणांसात्मानिपरिवर्त्योपयु  
आनःसर्वाणिअहितानिवर्जयेत्त  
थाबलवर्णशरीरायुषांसम्पदमवा  
प्नोतीति ॥ १२७ ॥

और क्रमसे असात्म्य पदार्थोंका परिवर्तनसे उपयोग करता हुआ संपूर्ण अहितोंको वर्ज दे, तैसेही बलवर्ण शरीर अवस्था इनकी संपदाको प्राप्त होता है ॥ १२७ ॥



एवमेनं कुमारमायौवनप्राप्तेर्धर्मा  
र्थकुशललगमनाच्चानुपालयेदिति  
पुत्राशिषांसमृद्धिकरं कर्म व्याख्या  
तम् । तदाचरन् यथोक्तैर्विधिभिः  
पूजां यथेष्टं लभतेऽनसूयक इति १२८

इसी प्रकार इस कुमारको यौवनके  
प्राप्ति पर्यंत धर्मार्थ कुशल मार्गमें गम-  
नके लिये पालना करै, यह पुत्रकी  
आशिषोंका समृद्धिकर कर्म व्याख्यात  
हुआ, तिसको आचरण करता हुआ  
यथोक्त विधियोंसे इष्ट पूजाको प्राप्त होता  
है और असूया रहित रहता है इति १२८  
तत्र श्लोकौ ।

पुत्राशिषां कर्म समृद्धिकारकं यदु-  
क्तमेतन्महदर्थसंहितम् । तदाच-  
रज्ज्ञो विधिभिर्यथा तथं पूजां यथे-  
ष्टं लभतेऽनसूयकः ॥ शरीरं चि-  
न्त्य ते सर्वदेवमानुषसम्पदा । सर्व-  
भावैर्यतस्तस्माच्छरीरस्थानमु-  
च्यते ॥ १२९ ॥

शरीरस्थानं समाप्तम् ।

उसमें ये दो श्लोक हैं इसमें समृद्धि-  
कारक जो आशीर्वादोंका यह महान्  
अर्थसे मिला कर्म कहा है बुद्धिमान्  
मनुष्य विधिसे उसका आचरण करता  
हुआ असूया रहित यथेष्ट पूजाको प्राप्त  
होता है संपूर्ण शरीर देव मानुष संपदासे

जिससे सब भावोंसे चिंतन किया जाता  
है तिससे शरीरस्थान कहाता है ॥ १२९ ॥

इति जाति सूत्रीयः शरीरः समाप्तः ॥ ८ ॥  
इति चरकमुनि निरचितायां संहितायां पं०  
मिहिरचंद्रकृत भाषाविशुद्धिसंहितायां शरीर-  
स्थानकं चतुर्थं समाप्तम् ॥ ४ ॥

इन्द्रियस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

वर्णस्वरीयम् ।

इह खलु वर्णश्च स्वरश्च गन्धश्च रस-  
श्च स्पर्शश्च चक्षुश्च श्रोत्रश्च घ्राणश्च  
रसनश्च स्पर्शनश्च सत्त्वश्च भक्तिश्च  
शौचश्च शीलश्च आचारश्च स्मृतिश्च  
कृतिश्च बलश्च ग्लानिश्च तन्द्राश्च  
भ्रमश्च गौरवश्च लाघवश्च आहारश्च  
विहारश्च आहारपरिणामश्चोपायश्च  
पायश्च व्याधिश्च व्याधिपूर्वरूपश्च  
वेदनाश्चोपद्रवाश्च छायाश्च प्रति-  
च्छायाश्च स्वप्नदर्शनश्च द्यूतादिका-  
रश्च पथिचौत्पातिकश्चातुरकुलेभा-  
वावस्थान्तराणि च भेषजसंवृत्ति-  
श्च भेषजविकारयुक्तिश्चेति परीक्षया  
णिप्रत्यक्षानुमानोपदेशैरायुषः प्र-  
माणविशेषं जिज्ञासमानेन भिषजा १

इसके अनंतर वर्णस्वरीय इंद्रियका  
व्याख्यान करते हैं कि, इसमें निश्चयसे

वर्ण, स्वर, गंध रस स्पर्श चक्षु श्रोत्र  
ग्राण रसना स्पर्शन सत्व भक्ति शौच  
शील आचार स्मृति आकृति बल शानि  
तंद्रा आरंभ गौरव लाघव आहार विहार  
आहारका परिणाम उपाय क्षपाय व्याधि  
व्याधिका पूर्वरूप वेदना उपद्रव छाया  
प्रतिछाया स्वप्नदर्शन दूताधिकार पंथा  
आतुर भावावस्था भेषज वृत्ति भेषज  
विकार युक्ति ये सत्र प्रत्यक्ष अनु-  
मान उपदेशोक्ते आयुके प्रमाण विशेष  
ज्ञानके अभिलाषी वैद्यको परीक्षा करने  
योग्यहैं ॥ १ ॥

तत्रतुखलुएपांपरीक्ष्याणांकानि  
चित्पुरुषमनाश्रितानिकानिचि  
च्चपुरुषसंश्रयाणि । तत्रयानि  
पुरुषमनाश्रितानितानिउपदेशतो  
युक्तितश्चपरीक्षेत । पुरुषसंश्रया  
णिपुनःप्रकृतितश्चविकृतितश्चा २ ॥

उनमें इन परीक्षा योग्योंमें कोई तो  
पुरुषके आश्रित नहीं हैं और कोई पुरु-  
षके आश्रितहैं उनमें जो पुरुषके अना-  
श्रितहैं उनकी उपदेश और युक्तिसे  
परीक्षा करै और जो पुरुष संश्रयहैं  
उनकी प्रकृति और विकृतिसे परीक्षा  
करै ॥ २ ॥

तत्रप्रकृतिर्जातिप्रसक्ताकुलप्रस-  
क्ताचदेशानुपातिनीचकालानुपा-  
तिनीचवयोऽनुपातिनीचप्रत्यात्म

नियताचेति । एतावज्जातिकुलदे-  
शकालवयःप्रत्यात्मनियताहि  
तेपांतेपांपुरुषाणांतितेभावविशे  
पाभवन्ति ॥ ३ ॥

उनमें प्रकृति, जाति प्रसक्ता और  
कुलप्रसक्ता देशानुपातिनी कालानु-  
पातिनी वयानुपातिनी और प्रत्यात्मनि-  
यता होती है अर्थात् जाति कुल देश  
काल वय इनके अनुसार और प्राति-  
जीव भिन्न २ होतेहैं और इतनेही जाति  
कुल देश काल वय प्रत्यात्मनियत  
वे वे भाव विशेष तिन तिन पुरुषों के  
होते हैं ॥ ३ ॥

विकृतिःपुनर्लक्षणनिमित्ताचल  
क्षयनिमित्ताचनिमित्तानुरूपाच ।  
तत्रलक्षणनिमित्तानामसायस्याः  
शरीरेलक्षणान्येवहेतुभूतानिभव-  
न्ति । लक्षणानिहिकानिचिच्छ-  
रीरोपनिबद्धानिभवन्ति । यानि  
हितस्मिस्तस्मिस्तत्राधिष्ठानमासा-  
द्यतांतांविकृतिमुत्पादयन्ति ॥ ४ ॥

और विकृति तो लक्षणनिमित्ता  
लक्षयनिमित्ता और निमित्तानुरूपा होती  
है उनमें लक्षणनिमित्ता वह है जिसके हेतु  
भूत शरीरमें लक्षणही हों क्योंकि कोई २  
लक्षण शरीरमें उपनिबद्ध होते हैं जो  
तिस २ शरीरमें अधिष्ठान (आश्रय) करके  
तिस २ विकृतिको पैदा करते हैं ॥ ४ ॥

लक्ष्यनिमित्तानुसायस्याउपल  
भ्यतेनिमित्तं यथोक्तं निदानेषु ५ ॥

लक्ष्यनिमित्तां तो वह है जिसका  
निदानोंमें उक्त निमित्त यथोक्त ( ज्यों-  
कात्यों ) मिले ॥ ५ ॥

निमित्तानुरूपानुमित्तार्थानुका  
रिणीयातामानिमित्तानिमित्तमायु  
षःप्रमाणज्ञानस्येच्छन्तिभिपजो  
भूयश्चायुषःक्षयनिमित्तप्रितलि  
ज्ञानरूपांयामायुषोऽन्तर्गतस्य  
ज्ञानार्थमुपदिशन्तिधीराः ॥ ६ ॥

निमित्तके अर्थानुकारिणी हो और  
निमित्तारूप उसको वैद्य आयुके प्रमाण-  
ज्ञानका निमित्त मानते हैं और आयुके  
क्षयका निमित्त प्रतल्लिङ्गके अनुरूप  
जिसको अंतर्गत आयुके ज्ञानार्थ धीर  
वैद्य कहते हैं ॥ ६ ॥

ग्रामधिकृत्यपुरुषसंश्रयाणिमुमू  
र्षतांलक्षणानिउपदेक्ष्यामः । इत्यु  
द्देशः । तद्विस्तरेणानुव्याख्या  
स्यामः ॥ ७ ॥

जिसका अधिकार करके पुरुषमें  
वर्तमान जो मुमूर्षुओंके लक्षण हैं उन  
का उपदेश करेंगे यह उद्देश (नाममात्र)  
है इसका विस्तारसे व्याख्यान करते  
हैं ॥ ७ ॥

तत्रादितएववर्णाधिकारस्तद्यथा-  
कृष्णःकृष्णश्यामःश्यामावदातोऽ

वदातश्चइतिप्रकृतिवर्णाःशरीर  
स्य ॥ ८ ॥

उसमें प्रथमही वर्णका अधिकार है  
वह ऐसे हैं कि, कृष्ण कृष्णश्याम श्या-  
मावदात अवदात ये शरीरके प्रकृति-  
वर्ण हैं ॥ ८ ॥

यांश्चापरानुपेक्षमाणोविद्यादनुक  
तोऽन्यथावापिनिर्दिश्यमानांस्त  
ज्ज्ञैः ॥ ९ ॥

और जिन अपरोंको उपेक्षा करता  
हुआ सादृश्यसे वा अन्यथा वर्णके ज्ञाता-  
ओंने उपदेश किये जाने वेभी प्रकृति-  
वर्ण हैं ॥ ९ ॥

नीलश्यामताम्रहरितशुक्लाश्ववर्णाः  
शरीरस्यवैकारिकाभवन्ति ।  
यांश्चापरानुपेक्षमाणोविद्यात्प्रा  
ग्विकृतानभूत्वोत्पन्नानितिप्रकृ  
तिविकृतिवर्णाभवन्त्युक्ताःशरी  
रस्य ॥ १० ॥

नील श्याम ताम्र हरित शुक्ल वर्ण  
जो शरीरके हैं वे वैकारिक होते हैं और  
उपेक्षा करता हुआ जिन अपरोंको जो  
पहिले विकृत न होकर उत्पन्नोंको जानै  
वैकारिक हैं ये प्रकृति विकृतिके वर्ण  
शरीरके कहे ॥ १० ॥

तत्रप्रकृतिवर्णोऽर्द्धशरीरेविकृ  
तिवर्णोऽर्द्धशरीरेद्वावपिवर्णोम  
र्यादाविभक्तोदृष्टायद्येनंसव्यदक्षि

णविभागेनयद्येवंपूर्वपश्चिमविभागे  
नयद्युत्तराधरविभागेनयद्यन्तर्वहि  
र्विभागेणआतुरस्यारिष्टमिति वि  
द्यात् ॥ ११ ॥

उनमें अर्द्धशरीरमें प्रकृति वर्ण  
और अर्द्धशरीरमें विकृति वर्ण दोनों  
वर्ण मर्यादासे विभक्त देखकर उनमें जो  
सव्य दक्षिण विभागसे, जो पूर्व पश्चिम  
विभागसे और जो २ उत्तर अधर विभा-  
गसे जो अंतर्वहिविभागसे होय तो  
आतुरको अरिष्ट होगा यह जानै ॥ ११ ॥

एवमेववर्णभेदोमुखेऽप्यन्यतावर्त्त  
मानोमरणायभवति ॥ १२ ॥

इसी प्रकार वर्ण भेदभी मुखमें अ-  
न्यथा वर्तमान होय तो मरणकारक  
होताहै ॥ १२ ॥

वर्णभेदेनग्लानिहर्षरौक्ष्यस्नेहाव्या  
ख्याताः ॥ १३ ॥

वर्णके भेदसे ग्लानि हर्ष रूक्षता स्नेह  
येभी व्याख्यात जानने ॥ १३ ॥

तथापिप्लुव्यंगतिलकालकपिडका  
नामन्यतमस्याननेजन्मातुरस्यैव  
मेवअप्रशस्तंविद्यात् ॥ १४ ॥

तथा प्लु व्यंग तिलकालक पिडका  
इनमेंसे किसीका मुखमें जन्मकोभी इसी  
प्रकार आतुरको अप्रशस्त जानै ॥ १४ ॥

नखनयनवदनमूत्रपुरीषहस्तपादौ  
ष्ठादिष्वपिचवैकारिकोक्तानांवर्ण

गामन्यतमस्यप्रादुर्भावोहीनबल  
वर्णेन्द्रियेपुलक्षणमायुपक्षयस्य  
भवति । यच्चान्यदपिकिञ्चिद्वर्ण  
वैरुतमभूतपूर्वसहसोत्पद्येतानि  
मित्तमेवहीयमानस्यातुरस्यतच्चा  
रिष्टमिति वर्णाधिकारः ॥ १५ ॥

नख नेत्र मुख मूत्र पुरीष हस्त पाद  
ओष्ठ आदिकोंमें भी विकारसे उत्पन्नमें  
कहे वर्णोंके मध्यमें किसी वर्णकी जो  
प्रकटता है वहभी जिनके बल वर्ण इंद्रि-  
यहीन हैं उनकी आयुके क्षयका लक्षण  
है और जो अन्यभी किंचित् वर्णकी  
विकृति सहसा अपूर्व हुई हो और वह  
किसी निमित्तसे न हो वहभी निरंतर  
हीयमान आतुरको अरिष्टकारक जाननी  
इति वर्णाधिकारः ॥ १५ ॥

स्वराधिकारः ।

स्वराधिकारस्तुहंसक्रौञ्चनेमिदु  
न्दुभिकलर्विककाककपोतझंझ  
रानुकराःप्रकृतिस्वराः । यांश्चाप  
रानुपेक्षमाणोऽपिविद्यादनूकतोऽ  
न्यथावापिनिर्दिश्यमानांस्तज्ज्ञैः १६

स्वरका अधिकार तो यह है कि, हंस  
क्रौंच नेमि दुंदुभी कलर्विक काककपोत  
झंझरके अनुहारी ये स्वर प्रकृतिके हैं  
और जिन उपरोंकोभी अपेक्षक वैद्य  
संज्ञा जानै वा पूर्वोक्तोंसे अन्यथाभी जो  
स्वरोंके ज्ञाताओंने दिखाये हैं वेभी  
प्रकृतिस्वर जानने ॥ १६ ॥

एडकं ग्रस्ताव्यक्तगद्गक्षामदीनानु  
कीर्णस्तु आतुराणां स्वरावैकारि  
काः । यांश्चापरनुपेक्षमाणोऽपि  
विधात्प्राग्विकृतानभूत्वोत्पन्नान् इ  
ति प्रकृतिविकृतिस्वराव्याख्याताः

और एरण्डक ग्रस्त अव्यक्त गद्गद  
क्षाम दीन अनुकीर्ण ये तो रोगियों के  
स्वर वैकारिक हैं और जिन अपरों को भी  
उपेक्षा करता वैद्य जानै और जो  
विकारसे पहिले बिना हुये उत्पन्न हों,  
ये प्रकृति विकृति स्वर वर्णन किये १७

तत्र प्रकृतिवैकारिकाणां स्वराणां  
माश्वभिनिर्वृत्तिः स्वरानेकत्वमेकस्य  
चानेकत्वमप्रशस्तमिति स्वराधि  
कारः इति वर्णस्वराधिकारौ य  
थावदुक्तौ मुमूर्षतां ज्ञानार्थमिति १८

उनमें प्रकृति विकृति स्वरों की उत्पत्ति  
शीघ्र ही होती है, एकको स्वरों की अनेक  
ता और एकमें अनेकता अप्रशस्त है  
इति स्वराधिकारः ये । वर्णस्वराधिकार  
मुमूर्षुओं के ज्ञानार्थं यथावत् कहे इति १८

तत्र श्लोकाः ।

यस्य वैकारिको वर्णः शरीर उपजा  
यते । अर्द्धे वायुदिवाकृत्स्नेऽनिमि  
त्तं च नास्ति सः ॥ १९ ॥

उसमें ये श्लोक हैं—कि, जिसके शरी-  
रमें वैकारिक वर्ण उत्पन्न होता है आधेमें

हो वा संपूर्णमें हो और निमित्त कोई  
न हो वह मनुष्य मानो नहीं है ॥ १९ ॥

नीलं वायुदिवा श्यावं ताम्रं वायुदिवा  
रुणम् । मुखार्द्धमन्यथा वर्णोऽपि  
स्वार्द्धेऽरिष्टमुच्यते ॥ २० ॥

नील वा श्याव ताम्र वा अरुण  
जिसका मुखका अर्द्धभाग हो उसके  
आधे मुखमें अरिष्ट कहते हैं ॥ २० ॥

स्नेहो मुखार्द्धे सुव्यक्तो रौक्ष्यमर्द्धे मु  
खे भृशम् । ग्लानिरर्द्धे तथा हर्षो  
मुखार्द्धे प्रेतलक्षणम् ॥ २१ ॥

मुखार्द्धमें भली प्रकार प्रकट स्नेह हो  
और मुखार्द्धमें अत्यंत रुक्षता हो और  
तैसे ही मुखार्द्धमें ग्लानि और वृद्धि हों यह  
प्रेतका लक्षण है ॥ २१ ॥

तिलकापिष्ठव्यङ्गाराजयश्च पृ  
थग्विधाः । आतुरस्याशु जायन्ते  
मुखे प्राणान्मुमुक्षतः ॥ २२ ॥

तिलक और पिष्ठ व्यङ्ग राजि पृथक्  
प्रकार की हो जाना ये सब प्राणों को  
त्याग ते हुये आतुर के मुखमें शीघ्र हो  
जाते हैं ॥ २२ ॥

पुष्पाणि नखदन्ते पुपङ्खो वा दन्तसं  
स्थितः । चूर्णको वापि दन्ते पुल  
क्षणं मरणस्य तत् ॥ २३ ॥

नखदांतोंमें पुष्प हों वा दांतोंमें पंख  
हो वा दांतोंमें चूर्ण होना यह मरणका  
लक्षण है ॥ २३ ॥

ओष्ठयोःपादयोःपाण्योरक्ष्णोर्मूत्र  
पुरीषयोः । नखेष्वपिचैववर्ण्यमे  
तत्क्षीणवलेऽन्तकृत् ॥ २४ ॥

ओष्ठ पाद हाथ नेत्र मूत्र पुरीष नख  
इनमें भिन्न वर्ण होना जो है यह बलके  
क्षीण होनेपर अंतकारक है ॥ २४ ॥

यस्यनीलाबुजावोष्ठौपक्वजाम्बव  
सन्निभौ । मुमूर्षुरितितंविद्यान्नरो  
धीरोगतायुषम् ॥ २५ ॥

जिसके दोनों ओष्ठ नीलहों पकी जामु-  
नके समान हों उस गतायुको धरिन्नर  
मुमूर्षु जानै ॥ २५ ॥

एकोवायदिवानेकोयस्यवैकारि  
कःस्वरः । सहस्रोत्पद्यतेजन्तोर्ही  
यमानस्यनास्तिसः ॥ २६ ॥

एक वा अनेक जिस थकेजंतुको  
वैकारिकस्वर सहसा उत्पन्न होजाय  
वह समझना कि नहीं है ॥ २६ ॥

यच्चान्यदपिकिञ्चित्स्यद्वैकृतंस्व  
-रवर्णयोः । बलमांसविहीनस्यत  
त्सर्वमरणोदयम् ॥ २७ ॥

और अन्यभी किंचित् स्वर वर्णमें  
विकारही बल मांस विहीनका वह सब  
मरणका उदय है ॥ २७ ॥

इतिवर्णस्वरावुक्तौलक्षणार्थमुमू  
र्षताम् । यस्तुसम्यग्विजानाति  
नायुर्ज्ञानिसमुह्यति ॥ २८ ॥

मुमूर्षुओंके लक्षणार्थ ये स्वर वर्ण  
कहे जो उन दोनोंको भली प्रकार जान-  
ताहै वह आयुर्ज्ञानके विषे मोहको प्राप्त  
नहीं होता ॥ २८ ॥

इति वर्णस्वरार्थमिन्द्रियम् ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

पुष्पितम् ।

इसके अनंतर पुष्पितिक इन्द्रियका  
व्याख्यान करते हैं कि-

पुष्पंयथापूर्वरूपंफलस्येहभाविष्य  
तः । तथालिङ्गमारिष्टाख्यंपूर्वरूपं  
पमारिष्यतः ॥ १ ॥

जैसे होनेवाले फलका पूर्वरूप पुष्प  
है तिसी प्रकार मरनेहारे मनुष्यकालिङ्ग  
अरिष्ट नामका है ॥ १ ॥

अप्येवन्तुभवेत्पुष्पंफलेनाननुव  
न्धियत् । फलश्चापिभवेत्किञ्चि  
यस्यपुष्पंनपूर्वजम् ॥ २ ॥

और जो फलका अनुबंध नहीं ऐसा  
पुष्पभी होताहै और जिसका पूर्व पुष्प  
नही ऐसा फलभी होता हो ॥ २ ॥

नत्वारिष्टस्यजातस्यनाशोऽस्ति  
मरणादृते । मरणश्चापितन्नास्ति  
यन्नारिष्टपुरःसरम् ॥ ३ ॥

परंतु उत्पन्न हुये अरिष्टका नाश  
मरणके विना नहीं है और जिसके पहिले  
अरिष्ट न हो वह मरणभी नहींहै ॥ ३ ॥

मिथ्यादृष्टमरिष्टाभमनरिष्टमजा  
नता । अरिष्टश्चाप्यसम्बुद्धमेतत्प्र  
ज्ञापराधजम् ॥ ४ ॥

जो अरिष्टके समान मिथ्यादृष्ट अ-  
रिष्ट ( अरोग ) है और अज्ञानीने अरिष्ट  
को भी असत् जानाहो, यह सब प्रज्ञाके  
अपराधसे उत्पन्न हैं ॥ ४ ॥

ज्ञानसम्बोधनार्थन्तुलिङ्गैर्मरणव  
र्जनैः । पुष्पितानुपदेक्ष्यामीनरान्द  
हुविधाञ्छृणु ॥ ५ ॥

ज्ञानके संबोधनार्थ मरणपूर्वक लिं-  
गोंसे बहुत और अनेक प्रकारके पुष्पित  
नरोंका उपदेश करतेहैं ॥ ५ ॥

नानापुष्पोपमोगन्धोयस्यवातिदि  
वानिशम् । पुष्पितस्यवनस्यैव  
नानाद्रुमलतावतः ॥ ६ ॥

जिस मनुष्यके देहमें नानापुष्पोंके  
समान गंध रात्रिदिन आवै जैसे नाना  
द्रुमलतावाले पुष्पित वनमें आतीहै ॥ ६ ॥

तमाहुःपुष्पितंधीरानरंमरणलक्ष  
णैः । सवैसंवत्सराद्देहंजहातीति  
विनिश्चयः ॥ ७ ॥

धीर मनुष्य उस नरको मरणके  
लक्षणोंसे पुष्पित कहतेहैं यह निश्चय है  
कि, एक वर्षमें वह देहको त्याग देगा ७

एवमेकैकशःपुष्पैर्यस्यगन्धःसमो  
भवेत् । इष्टैर्वायदिवानिष्टैःसचपु  
ष्पितउच्यते ॥ ८ ॥

इसी प्रकार जिसकी गंध एक २  
पुष्पके समान हो वह इष्टोंसे हो वा  
अनिष्टगंधोंसे हो वह भी पुष्पित कहा-  
ताहै ॥ ८ ॥

समासेनाशुभान्गन्धानेकत्वेनाथ  
वापुमान् । आजिघ्रेयस्यगात्रेषु  
तंविधात्पुष्पितंभिषक् ॥ ९ ॥

संक्षेपसे, वा एकरूपसे गंधोंको जिस  
के गात्रोंमें देखै, उसको वैद्य पुष्पित  
जानै ॥ ९ ॥

आप्लुतानाप्लुतेकायेयस्यगन्धाः  
शुभाशुभाः । व्यत्यासेनानिभि  
त्ताःस्युःसचपुष्पितउच्यते १० ॥

स्नात वा अस्नात जिसकी कायामें  
शुभ अशुभ, गंध हों व्यत्याससे विना  
कारण हों उसको भी पुष्पित समझना १०

तद्यथाचन्दनंकुष्ठंतगरागुरुणीम  
धु । माल्यंमूत्रपुरीषेवामृतानिकु  
णपानिवा ॥ ११ ॥

वह ऐसे हैं कि, चंदन कुष्ठ तगर  
दोनों अगर मधु माल्य मूत्र पुरीष वा  
मृत शरीर ॥ ११ ॥

येचान्येविविधात्मानोगन्धाविवि  
धयोनयः । तेऽप्यनेनानुमानेनवि  
ज्ञेयाविकृतिंगताः ॥ १२ ॥

और जो अन्य अन्य प्रकारके विवि-  
ध योनीके गंध हैं वे भी इसी अनुमानसे  
विकारी मनुष्यमें जानने ॥ १२ ॥

इदञ्चाप्यतिदेशार्थलक्षणगन्धसं  
श्रयम् । वक्ष्यामोयदभिज्ञायति  
पङ्मरणमादिशेत् ॥ १३ ॥

और अति देशके लिये यह भी  
गंधका लक्षण कहते हैं जिसको जानकर  
भिषक् मरणको कहदे ॥ १३ ॥

वियोनिर्विदुरोयस्यगन्धोगात्रेषु  
दृश्यते । इष्टोवायदिवानिष्टोनस  
जीवतितांसमाम् ॥ १४ ॥

जिसके गात्रोंमें वियोनि ( अहेतु )  
वेगसे गंध दीखे इष्ट हो वा अनिष्ट हो  
वह उस वर्षमें न जीवेगा ॥ १४ ॥

एतावद्गन्धविज्ञानंरसज्ञानमतःप  
रम् । आतुराणांशरीरेषुवक्ष्यामो  
विधिपूर्वकम् ॥ १५ ॥

इतना तो गंधका विज्ञान है इससे रस  
विज्ञान आतुरोंके शरीरमें विधिपूर्वक  
कहते हैं ॥ १५ ॥

योरसःप्रकृतिस्थानानराणांदेहस  
सम्भवः । संपांचरमेकालेविका  
रान्भजतेद्वयम् ॥ १६ ॥

जो रस प्रकृतिस्थ मनुष्योंके देहमें  
उत्पन्न है वह इनके अंत समयमें दो  
विकारोंको करता है ॥ १६ ॥

कश्चिदेवास्यवैरस्यमत्यर्थमुपपद्य  
ते । स्वादुत्वमपरश्चापिविपुलंभ  
जतेरसः ॥ १७ ॥

कोई तो मुखको अत्यंत विरस कर  
देता है और दूसरा अत्यंत स्वादु लगने  
लगता है ॥ १७ ॥

तमनेनानुमानेनविद्याद्विकृतिमांग  
तम् । मनुष्योमनुष्यस्यकथं  
रसमवाप्नुयात् ॥ १८ ॥

तिस मनुष्यको इस अनुमानसे विकार  
को प्राप्त हुआ जानै, मनुष्य मनुष्यके  
रसको कैसे प्राप्त होसकता है ॥ १८ ॥

मक्षिकाश्चैवयूकाश्चदंशाश्चमशकैः  
सह । विरसादपसर्पन्तिजन्तोः  
कायान्मुमूर्षतः ॥ १९ ॥

मक्षिका जुवाँ दंश और मशक ये सब  
मुमूर्षु जंतुकी कायासे दूर भागते हैं ॥ १९ ॥

अत्यर्थरसिकंकायंकालपक्वस्य  
मक्षिकाः । अपित्वातानुलितस्य  
भृशमायांन्तिसर्वशः ॥ २० ॥

और अत्यंत रसिक उस कायापर  
जो कालसे पक्व है चाहै वह स्नात और  
अनुलित हो मक्षिका चारों तरफसे अत्यंत  
आती हैं इति ॥ २० ॥

तत्र श्लोकः ।

यान्येतानिमयोक्तानिलिङ्गानि  
रसगन्धयोः । पुष्पितस्यनरस्ये  
तैःफलमरणमादिशेत् ॥ २१ ॥

उसमें यह श्लोक है कि, जो मैं ये रस  
और गंधके लिंग पुष्पित मनुष्यके कहे  
हैं इनसे वैद्य मरण को कहै ॥ २१ ॥

इति पुष्पितकर्मिन्द्रियसमासम् ॥ २ ॥



## तृतीयोऽध्यायः ।

परिमर्पणीयम् ।

वर्णस्वरेचगन्धेचरसेचोक्तं पृथक्  
पृथक् । लिङ्गं मुमूर्षतां सम्यक् स्पृ-  
शेष्वापि निबोधत ॥ १ ॥

इसके अनंतर परिमर्शनीय इंद्रियका  
व्याख्यान करते हैं कि, वर्ण स्वर गंध  
और रसमें पृथक् २ मुमूर्षुओंके लिंग कहे  
अब स्पर्शमें भी आप श्रवण करो ॥ १ ॥

स्पर्शप्राधान्येन आतुरस्यायुपः प्रमा-  
णविशेषं जिज्ञासुः प्रकृतिस्थेन पाणि-  
नाकेवलमस्य शरीरं स्पृशेत् । परि-  
मर्पयेद्वा न्येन ॥ २ ॥

स्पर्श की प्रधानतासे आतुरकी अव-  
स्थाके प्रमाण विशेषका जिज्ञासु वैद्य  
प्रकृतिमें स्थित अपने हाथसे केवल इसके  
शरीरको स्पर्श करे वा किसी अन्यसे  
परिमर्पण करावै ॥ २ ॥

परिमृषता तु खलु आतुरशरीरमिमे-  
भावास्तत्र तत्रावबोद्धव्याः । तद्य-  
था-सततं स्पन्दनानां शरीरोद्देशा-  
नां स्तम्भः । नित्योष्मणां शीती-  
भावः । मृदूनां दारुणत्वम् । श्ल-  
क्ष्णानां खरत्वम् । सतामसद्भावः  
सन्धीनां स्रंसभ्रंशच्यवनानि । मांस-  
शोणितयोर्वीतिभावः । दारुण-  
त्वस्वेदानुबन्धः स्तम्भोवायच्चा-

न्यदपि किञ्चिद्दृशविकृतमनिमि-  
तं स्यादितिलक्षणं स्पृश्यानां भावा-  
नाम् ॥ ३ ॥

परिमर्पण ( मलना ) कराते हुयेको  
आतुरके ये भाव तहां २ जानने योग्य  
अवश्य हैं, ये ऐसे हैं निरंतर शरीरके  
देशोंके जो स्पंदन हैं उनकी स्तंभ नित्य  
ऊष्मोंकी शीतलता मृदुओंकी कठिनता  
चिकनोंकी खरता, विद्यमानोंका असंभव  
संधियोंका स्रंशन भ्रंसन च्यवन, मांस  
शोणित का नाश वा दारुणता वा स्वेद  
का अनुबन्ध ( होना ) और जो अन्य  
भी अत्यंत विकृत विना निमित्तके हों वह  
हैं ये लक्षण स्पर्शयोग्य भावोंके हैं ॥ ३ ॥

तद्व्यासतोऽनुव्याख्यास्यामः ।

तस्य चेत्परिदृश्यमानं पृथक्त्वेन पा-  
दजङ्घोरुस्फिगुदरपार्श्वयष्टेपिका-  
पाणिग्रीवाताल्वोष्ठललाटं खिन्नं शी-  
तं प्रस्तब्धं दारुणं वीतमांसशोणितं  
वा स्यात्परासुरयंपुरुषो न चिरात्  
कालं करिष्यतीति विद्यात् ॥ ४ ॥

उसका विस्तारसे व्याख्यान करते हैं  
उसके यदि परिदृश्यमान पृथक् २ पाद  
जंघा ऊरु स्फिक् उदर पार्श्व पृष्ठ इषीका  
पाणि ग्रीवा तालु ओष्ठ ललाट ये स्वेदा  
युक्त शीतल अतिदारुण वा मांस शोणित  
हीन हों वह गतप्राण मनुष्य चिरकाल  
न करेगा यह जानले ॥ ४ ॥

तस्यचेत्परिमृश्यमानानिपृथक्केन  
गुल्फजानुवंक्षणगुदवृषणमेढूना  
भ्यंसस्तनमणिकहनुस्पर्शकानासि  
काकर्णाक्षिभ्रूशंखादीनिस्तनानि  
व्यस्तानिच्युतानिस्थानेभ्यःस्युःप  
रासुर्यंपुरुषोनचिरात्कालंकरि  
प्यतीतिविद्यात् ॥ ५ ॥

और यदि उसके परिमृश्यमान पृथक्  
गुल्फ जानु वंक्षण गुद वृषण लिंग  
नाभि स्कंध स्तन मणिक हनु नासिका  
कर्ण अक्षि भ्रू शंख आदि, स्तन हों  
विरुद्ध स्थित हो वा स्थान अस्थानसे  
पतित हों गतप्राण वह मनुष्य चिरकाल  
न करेगा यह जानले ॥ ५ ॥

तथास्योच्छ्वासमन्यादन्तपक्ष्म  
चक्षुःकेशलोमोदरनखांगुलीराल  
क्षयेत् । तस्यचेदुच्छ्वासेऽतिदी  
र्घअतिह्रस्वोवास्यात्परासुरिति  
विद्यात् । तस्यचेन्मन्येपरिदृश्य  
मानेनस्पन्देयातांपरासुरिति वि  
द्यात् । तस्यचेदन्ताःप्रतिकीर्णा  
श्वेतजातशर्कराःस्युःपरासुरिति वि  
द्यात् । तस्यचेत्पक्ष्माणिजटाव  
द्धानिस्युःपरासुरिति विद्यात् ।  
तस्यचेच्चक्षुषीप्रकृतिहीनेविकृ  
तियुक्तेअव्युत्पिण्डितेअतिप्रवि

ष्टेअतिजिह्वेअतिविषमेअति  
प्रस्रुतेअतिविमुक्तबन्धनेसततो  
न्मेपितेसततनिमेपितेनिमेपोन्मे  
पातिप्रवृत्तविभ्रान्तदृष्टिकेविपरी  
तदृष्टिकेहीनदृष्टिकेव्यस्तदृष्टिकेन  
कुलान्धेकपोतान्धेअलातवर्णेक  
ण्णनीलपीतश्यावताम्रहरितहारि  
द्रशुक्लवैकारिकाणांवर्णानामन्यत  
मेनाभिसंश्रुतेवास्यातांपरासुरिति  
विद्यात् ॥ ६ ॥

तिसी प्रकार मुखमें उच्छ्वास मन्या  
दंत पक्ष्म चक्षु केश लोम उदर नख  
अंगुली इनकीभी देखै यदि उसका  
उच्छ्वास दीर्घ हो वा अतिह्रस्व होय  
तो गतप्राण जानै यदि, तिसकी;  
दीखती हुई मन्या, चलायमान, न हो,  
तो उसकीभी परासु जानै, तथा यदि  
उसके दांतोंसे सफेद, शर्करा ( चूर्ण )  
झरने लगै तो उसकीभी परासु समझै  
उसके पक्ष्म जटिल बंधन युक्त होंय  
तो परासु ( मृत ) जानै, यदि उसके  
नेत्र प्रकृतिसे हीन विकारसे युक्त अति  
उत्पिण्डित अति प्रविष्ट अति कुटिल अति  
विषम अति प्रस्रुत अति विमुक्तबंधन  
निरंतर उन्मिषित निरंतर निमेषयुक्त  
निमेष उन्मेषमें अतिप्रवृत्त विभ्रान्त  
दृष्टि हीनदृष्टि व्यस्तदृष्टि नकुलान्ध  
पीतान्ध अलातवर्ण हों और कृष्ण नील  
पीत श्याव ताम्र हरित हारिद्र शुक्ल इन

वैकारिक वर्णोंमेंसे किसीसे अभिसंयुत (युक्त) हों उसको परासु जानै ॥ ६ ॥  
अथास्यकेशलोमान्यायच्छेत् ।  
तस्यचेत्केशलोमान्यायम्यमाना  
निप्रलुच्येरन्नचेद्वेदयेत्परासुरिति  
विद्यात् ॥ ७ ॥

फिर इसके केश लोमोंका स्पर्श करे  
वा देखे, यदि उसके केश लोम बढते हुये  
लुंचनको प्राप्त हो जाय और जान न  
पड़े तो उसको परासु जानै ॥ ७ ॥

तस्यचेदुदरेशिराःप्रदृश्येरन्।श्या  
वताम्रनीलहारिद्रशुक्लावास्युःपरा  
सुरिति विद्यात् ॥ ८ ॥

यदि उसके उदरमें शिरा दीखने  
लगें वा श्याव ताम्र नील हारिद्र शुक्ल  
हो जाय उसको परासु जानै ॥ ८ ॥

तस्यचेन्नखावीतमांसशोणिताःप  
क्वजाम्बववर्णाःस्युःपरासुरिति वि  
द्यात् ॥ ९ ॥

यदि उसके नख मांस शोणितरहित  
और पक्कीजामुनके वर्णके हों उसको  
परासु जानै ॥ ९ ॥

अथास्यांगुलीरायच्छेत्तस्यचेदंगु  
लयआयम्यमानानचेत्स्फुट्युःप  
रासुरिति विद्यात् ॥ १० ॥

फिर इसकी अंगुली देखे यदि उसकी  
अंगुली खीचनेसे स्फोट ( शब्द ) न  
करें तो परासु उसको जान ले ॥ १० ॥

भवतिचात्र ।

एतान्स्पृश्यान्वहून्भावान्यःस्पृश  
न्नावबुध्यते।आतुरेनससम्मोहमायु  
र्ज्ञानस्यगच्छति ॥ ११ ॥

इसमें यह श्लोकहै—इन स्पर्शके योग्य  
बहुतसे भावोंको स्पर्श करताहुआ तो  
जानता है वह आतुरके आयुर्ज्ञानके  
संमोहको प्राप्त नहीं होता इति ॥ ११ ॥

इति परिमर्शनीयमिन्द्रियं समाप्तम् ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

इन्द्रियानीकम् ।

इसके अनंतर इंद्रियानीक इंद्रियका  
व्याख्यान करते हैं कि—

इन्द्रियाणियथाजन्तोःपरीक्षेत  
विशेषवित् । ज्ञातुमिच्छन्निष  
ड्यानमायुषस्तन्निबोधमे ॥ १ ॥

विशेषका ज्ञाता और आयुः प्रमाणके  
ज्ञानका अभिलाषी वैद्य जैसे इंद्रियोंकी  
परीक्षा करे उसको तुम सुनो ॥ १ ॥

अनुमानात्परीक्षेतदर्शनादीनित  
त्त्वतः । अच्चाहिविदितंज्ञानमि  
न्द्रियाणामतीन्द्रियम् ॥ २ ॥

अनुमानसे यथार्थ दर्शन आदिकी  
परीक्षा करे क्योंकि इंद्रियोंका जो ज्ञानहै  
वह साक्षात् अतीन्द्रिय कहाहै ॥ २ ॥

स्वस्थोभ्योविकृतंयस्यज्ञानमिन्द्रि  
यसम्भवम् । आलक्ष्येतानिमि

तेनलक्षणंमरणस्यतत् ॥ ३ ॥

जिसकी इंद्रियोंका ज्ञान स्वस्थ अवस्थाकी अपेक्षा विकृत विनानिमित्त दीखे वह मरणका लक्षण है ॥ ३ ॥

इत्युत्तलक्षणं सर्वमिन्द्रियेष्वशुभोदयम् । तदेवतु पुनर्भूयो विस्तरणनिबोधत ॥ ४ ॥

यह इंद्रियोंमें अशुभकारी लक्षण भली प्रकार कहा उसकोही पुनः तुम विस्तारसे श्रवण करो ॥ ४ ॥

घनीभूतमिवाकाशमाकाशमिव मेदिनीम् । विगीतं ह्युभयं हेतुतत्पश्यन्मरणमृच्छति ॥ ५ ॥

आकाशको घनीभूतके समान और भूमिको आकाशके समान इन दोनोंको विगीत ( विपरीत ) देखता हुआ मरणको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

यस्य दर्शनमायातिमारुतोऽम्बरगोचरः । अग्निर्नायातिवादीतस्तस्यायुः क्षयमादिशेत् ॥ ६ ॥

आकाशमें चलता हुआ पवन जिसको दीखजाय और दीपती हुई अग्नि न दीखे उसकी आयुके क्षयको कहे ॥ ६ ॥

जले सुविमले जलमजालावतते तथा । स्थिते गच्छति वाट्टा जीवितात्परिमुच्यते ॥ ७ ॥

भली प्रकार विमल उस जलमें जो जालसे ढका न हो और स्थिर हो वा

चलता हुआ हो जाल पड़ा हुआ जो देखे वह जीनेसे मुक्त होता है अर्थात् मरता है ॥ ७ ॥

जाग्रन्पश्यांतियः प्रेतात्रक्षांसि विधानि च । अन्यद्वाप्यद्भुतं किंचिन्नसजीवितुमर्हति ॥ ८ ॥

जो मनुष्य जागता हुआ प्रेतोंकी वा अनेक प्रकारके राक्षसोंकी वा अन्य किसी अद्भुतको देखता है वह जीवने योग्य नहीं है ॥ ८ ॥

योऽग्निप्रकृतिवर्णस्थं नीलं पश्यति निष्प्रतप्तम् । कृष्णं वा यदि वा शुक्लं निशां वसतिसप्तमीम् ॥ ९ ॥

जो स्वभाविक वर्णमें स्थित अग्निको नील प्रकाशहीन कृष्ण वा शुक्ल देखता है वह सातवीं रात्रिको अग्निमें वास करता है ॥ ९ ॥

मरीचीनसतो मेघान्मेघान्वाप्यसतोऽम्बरे । विद्युतो वा विना मेघैः पश्यन्मरणमृच्छति ॥ १० ॥

जो किरणोंको मिथ्या मेघरूप और आकाशमें बिना हुये मेघोंकी और मेघोंके बिना विजलियोंको देखता है वह मरणको प्राप्त होता है ॥ १० ॥

मृण्मयीमिव यः पात्रीं कृष्णाम्बरसमावृताम् । आदित्यमीक्षते शुद्धं चन्द्रं वानसजीवति ॥ ११ ॥

जो धातुकी स्थाली आदि पात्रीको मिट्टीसे बनीके समान वा कृष्णवस्त्रसे

ढकी हुई देखै और सूर्य वा चंद्रमाको शुद्ध देखे वह न जीवेगा ॥ ११ ॥

अपर्वणियदापश्येत्सूर्य्याचन्द्रमसोर्ग्रहम् । अव्याधितोव्याधितो वातदन्तंतस्यजीवनम् ॥ १२ ॥

जब बिना पर्वके सूर्य और चंद्रमाके ग्रहणको व्याधिके समयमें देखै तो तब तकही उसका जीवन है ॥ १२ ॥

नक्तंसूर्य्यमहश्चन्द्रमनग्रौधूममुत्थितम् । अग्निवानिष्प्रभंरात्रौदृष्ट्वा मरणमृच्छति ॥ १३ ॥

जो रात्रिमें सूर्यको और दिनमें चंद्रमाको और बिना अग्नि उठे हुये धूमको वा रात्रिमें प्रकाशहीन अग्निको देखता है वह मरणको प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥

प्रभावतःप्रभाहीनान्निष्प्रभावान्प्रभावतः । नराविलिङ्गान्पश्यन्ति भावान्प्राणाजिहासवः ॥ १४ ॥

प्रभावानोंको प्रभाहीन और प्रभाहीनोंको प्रभावान् मनुष्योंको और भावोंको विलिङ्ग वेही देखते हैं जो प्राणोंके जिघांसु हैं अर्थात् मरणहार हैं ॥ १४ ॥

व्याकृतानिविवर्णानिविसंख्योपगतानिच । विनिमित्तानिपश्यन्तिरूपाण्यायुःक्षयेनराः ॥ १५ ॥

आयुके क्षयमें मनुष्य रूपोंको विकारसे युक्त वर्णसे हीन, विसंख्या ( कम अधिक ) को प्राप्त हुये और बिना निमित्तसे उत्पन्न देखतेहैं ॥ १५ ॥

यश्चपश्यत्यदृश्यान्वैदृश्यान्यश्च नपश्यति । तावुभौपश्यतःक्षिप्रं यमक्षयमसंशयम् ॥ १६ ॥

जो मनुष्य देखनेके अयोग्योंको देखै और जो देखने योग्योंको न देखै वे दोनों शीघ्रही यमके मंदिरको निःसंदेह देखतेहैं ॥ १६ ॥

अशब्दस्यचयःश्रोताशब्दान्यश्च नबुध्यते । द्वावप्येतौयथाप्रेतौ तथाज्ञेयौविजानता ॥ १७ ॥

और जो अशब्दको सुनै और शब्दोंको न सुनै इन दोनोंकोभी ज्ञाता मनुष्य ऐसे जानै जैसे प्रेत ॥ १७ ॥

संवृत्त्याङ्गुलिभिःकर्णौज्वालाशब्दंयथातुरः । नशृणोतिगतासुं तंबुद्धिमान्परिवर्जयेत् ॥ १८ ॥

अपनी अंगुलियोंसे कर्णोंको ढककर जो रोगी ज्वालाशब्दको न सुनै उस गतप्राणको बुद्धिमान् वैद्य वर्ज दे ॥ १८ ॥

विपर्ययेणयोविद्याद्रन्धानांसाध्वसाधुताम् । नवातान्सर्वशोविद्यात्तंविद्याद्विगतायुषम् ॥ १९ ॥

जो मनुष्य गंधोंकी साधुता और असाधुताको विपरीतरूपसे देखै वा उन सब गंधोंको न जानै उसकोभी गतायु जानना ॥ १९ ॥

योरसान्नाविजानातिनवाजानाति

तत्त्वतः । मुखपाकाद्वतेपकं तमा  
दुःकुशलानरम् ॥ २० ॥

जो मनुष्य मुखपकनेके विना रसोंको  
न जानै वा यथार्थरूपसे न जानै उस  
मनुष्यको कुशलजन पका हुआ (मृत)  
कहते हैं ॥ २० ॥

उष्णाञ्छीतान्स्वराञ्छृक्षणान्मृदून  
पिचदारुणान् । स्पर्शान्स्पृष्टात्  
तोऽन्यत्वंमुमुर्षुस्तेपुमन्यते २१ ॥

उष्णोंको शीतल और खरोंको चिकने  
और कीमलोंको दारुण स्पर्शके योग्यों-  
को स्पर्शमें देखैहै ऐसे उनसे अन्यको  
जो उनमें मानताहै वह मुमुर्षु है ॥ २१ ॥

अन्तरेणतपस्तीव्रयोगंवाविधिपू  
र्वकम् । इन्द्रियैरधिकं पश्यन्पञ्च  
त्वमधिगच्छति ॥ २२ ॥

तीव्रतपके विना वा विधि पूर्वक यो-  
गके विना इंद्रियोंसे जो अधिक देखता  
है वह मरणको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥

इन्द्रियाणामृतेदृष्टेरिन्द्रियार्थान्न  
पश्यति । विपर्ययेण यो विद्यात्तं वि  
द्याद्विगतायुषम् ॥ २३ ॥

इंद्रियोंके विना दृष्टिसे इंद्रियोंके  
विषयोंको कोई नहीं देखता है और जो  
विपर्ययसे देखताहै उसको विगतायु जानै  
अर्थात् वह न जीविगा ॥ २३ ॥

स्वस्थाः प्रज्ञाविपर्ययासैरिन्द्रिया  
र्थेषु वैकृतम् । पश्यन्ति ये सबहुशः  
तेषां मरणमादिशेत् ॥ २४ ॥

बुद्धिके विपर्याससे जो बहुतसे स्वस्थ  
मनुष्य इंद्रियोंके अर्थोंमें विकारको देखते  
हैं उनके मरणको कहै ॥ २४ ॥

तत्रश्लोकः ।

एतदिन्द्रियविज्ञानं यः पश्यति यथा  
तथा । मरणं जीवितं चैतत्सभिप  
क्ञ्जातुमर्हति ॥ २५ ॥

उसमें यह श्लोक है-इस इंद्रिय  
विज्ञानको जो जिस तिस प्रकारसे जानता  
है वह वैद्य मरण और जिवितके जानने  
योग्य है ॥ २५ ॥

इति इंद्रियानीकमिन्द्रियं समाप्तम् ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

पूर्वरूपीयम् ।

इसके अनंतर पूर्वरूपीय इंद्रियका  
व्याख्यान करते हैं कि-

पूर्वरूपाण्यसाध्यानां विकाराणां पृ  
थक्पृथक् । भिन्नाभिन्नानिव  
क्ष्यामोभिपज्ञां ज्ञानवृद्धये ॥ १ ॥

असाध्योंके जो विकार उनके पृथक्  
२ और भिन्न और अभिन्न पूर्वरूपोंको  
वैद्योंके ज्ञानकी वृद्धिके लिये हम कह-  
ते हैं ॥ १ ॥

पूर्वरूपाणिसर्वाणि ज्वरोक्तान्यति  
मात्रया । यं विशन्ति विशत्येनं मृ  
त्युर्ज्वरपुरःसरः ॥ २ ॥

ज्वरमें कहे संपूर्ण पूर्वरूपमात्रासे अधिक, जिस मनुष्यमें प्रविष्ट होते हैं उसमें ज्वरको आगे करके मृत्यु प्रविष्ट होती है ॥ २ ॥

अन्यस्यापिचरोगस्यपूर्वरूपाणि यं नरम् । विशन्त्ये तेनकल्पेनत स्यापिमरणंध्रुवम् ॥ ३ ॥

अन्यभी रोगके पूर्वरूप जिस नरमें प्रविष्ट होते हैं उसकाभी इसी प्रकार मरना निश्चित है ॥ ३ ॥

पूर्वरूपैकदेशास्तुवक्ष्यामोऽन्यान् सुदारुणान् । येरोगाननुबध्नन्ति मृत्युर्यैरनुबध्यते ॥ ४ ॥

उन अन्य दारुण पूर्वरूपोंके एक देशोंको कहते हैं जो रोगोंके अनुबन्धी हैं और जिनकी मृत्यु अनुबन्धी है ॥ ४ ॥

बलञ्चहीयतेयस्यप्रतिश्यायश्चवर्द्धते । तस्यनारीप्रसक्तस्यशोषोन्तायोपजायते ॥ ५ ॥

जिस मनुष्यके बलकी हानि हो और प्रतिश्यायको वृद्धि हो नारीमें प्रसक्त उस मनुष्यको मरणके लिये शोष हो जाता है ॥ ५ ॥

श्वभिरुष्टैःखरैर्वापियातियोदक्षिणांदिशम् । स्वप्नेयक्ष्माणमासाद्यजीवितंसविमुञ्चति ॥ ६ ॥

जो मनुष्य स्वप्नेमें श्वान खर ऊँठ इनपर चढ़कर दक्षिण दिशाको जाय

उसमें राजयक्ष्मा प्रविष्ट होकर जीवता हुआ नहीं छोड़ता ॥ ६ ॥

प्रेतैःसहपिवेन्मद्यंस्वप्नेयःकृष्यते शुना । सघोरंज्वरमासाद्यनजीवेन्नचसृज्यते ॥ ७ ॥

जो स्वप्नेमें प्रेतोंके संग मदिरा पीवै वा जिसको कुत्ते स्वप्नेमें खींचै वह मनुष्य घोर ज्वरको प्राप्त होकर न जीवेगा न रचा जायगा ॥ ७ ॥

लाक्षारक्ताम्बराभं यःपश्यत्यम्बरमन्तिकात् । सरक्तपित्तमासाद्य तेनैवान्तायनीयते ॥ ८ ॥

जो आकाशको समीपसे लाखके रंगके समान देखै वह रक्तपित्तको प्राप्त होकर उससेही अंतको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

रक्तस्रग्भक्तसर्वांगोरक्तवासामुद्बुर्हसन् । यःस्वप्नेहियतेनार्यासरक्तं प्राप्यसीदति ॥ ९ ॥

जिस रक्तमाला धारण किये और रक्त संपूर्ण अंग और रक्त वस्त्र, वारंवार हंसते हुयेको स्वप्नेमें नारी ले जाय वह रक्तरोगको प्राप्त होकर दुःखी होता है ९

शूलालोपान्त्रकूजाश्वदौर्बल्यंचातिमात्रया । नखादिषुचवैवर्ण्यगुल्मेनान्तकरोग्रहः ॥ १० ॥

जिसनरके शूल आटोप अंत्रकूट और दुर्बलता ये अत्यंत होते हैं और

नस्त्र आदिमें विवर्णता होती है उस मनुष्यका गुल्म अंत कर देता है ॥ १० ॥

लताकण्टकिनीयस्यदारुणाहृदि जायते । स्वप्नेगुल्मस्तमन्तायकूरोविशतिमानवम् ॥ ११ ॥

जिस नरके स्वप्नमें हृदयमें कंटकवती लता दारुण हो जाती है उस मानवमें अंतके लिये कूर गुल्म प्रवेश करता है ॥ ११ ॥

कायेऽल्पमपिसंस्पृष्टंमुभृशंयस्य दीर्घ्यते । क्षतानिचनरोहन्तिकुष्ठैर्मृत्युर्हि नस्ति तम् ॥ १२ ॥

जिसकी कायामें अल्पभी प्रवेश किया छुरी आदि अत्यंत विदीर्णता ( घाव ) की करै और क्षतोंका जो नर हनन करै उस मनुष्यको मृत्यु कुष्ठोंसे मारती है ॥ १२ ॥

नशस्याज्यावसिक्तस्यजुह्वतोऽग्निमनर्चिपम् । पद्मान्युरसिजायन्ते स्वप्नेकुष्ठैर्मरिष्यतः ॥ १३ ॥

जो मनुष्य कुष्ठोंसे मरणहारहै स्वप्नमें घीसे सिक्त और विना ज्वालाकी अग्निमें होम करते हुये उसकी छातीमें पद्म हो जाते हैं ॥ १३ ॥

स्नातानुलिप्तगात्रेऽपियस्मिन्गृध्रन्तिमक्षिकाः । सप्रमेहेणसंस्पर्शप्राप्यतेनैवहन्यते ॥ १४ ॥

जिसके स्नात और अनुलिप्त गात्रमें भी मक्षिका बैठा चाहें वह मनुष्य प्रमेहके संस्पर्शकी प्राप्त होकर उससेही मारा जाता है ॥ १४ ॥

स्नेहं बहुविधं स्वप्ने चण्डालैः सह्यः पिवेत् । बुध्यते स प्रमेहेण स्पृश्यतेऽन्तायमानवः ॥ १५ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें चांडालोंके संग अनेक प्रकारके स्नेहको पीता है जगता है वह मानव अंतके लिये प्रमेहसे स्पर्श किया जाता है ॥ १५ ॥

ध्यानायासौ तथोद्वेगो मोहश्चास्था न सम्भवः । अरतिर्वलहानिश्चमृत्युरुन्मादपूर्वकः ॥ १६ ॥

जिसकी ध्यान आयास तथा उद्वेग और विना समयके मोह अरति और बलकी हानि होते हों उसकी मृत्यु उन्माद रोग होकर होती है ॥ १६ ॥

आहाराद्वेपिणं पश्यन्लुप्तचित्तमुददितम् । विद्याद्धीरो मुमूर्षुर्तमुन्मादेनातिपातिना ॥ १७ ॥

आहारके द्वेपी लुप्तचित्त उदावर्ती जिसको देखै उसको अत्यंत भावी उन्मादसे मुमूर्षु जानै ॥ १७ ॥

क्रोधनं त्रासबहुलं सकृत्प्रहसिताननम् । मूर्च्छापिपासाबहुलं हन्त्युन्मादः शरीरिणम् ॥ १८ ॥



क्रोधी अधिकत्रासी, एकवारही  
ग्रहसितमुख, अधिक मूर्छा पिपासासे  
युक्त, शरीरधारियोंको उन्माद नष्ट  
करदेताहै ॥ १८ ॥

नृत्यत्रक्षोगणैःसार्द्धैःस्वप्नेऽम्भ  
सिसीदति । सप्राप्यभृशमुन्मादं  
यातिलोकमतःपरम् ॥ १९ ॥

जो मनुष्य राक्षसगणोंके संग नृत्य  
करता हुआ स्वप्नमें जलमें डूब जाय वह  
अत्यंत उन्मादको प्राप्त होकर परलोकमें  
जाता है ॥ १९ ॥

असत्तमःपश्यतियःशृणोत्यप्यस  
तःस्वरान् । बहून्बहुविधाञ्जाय  
त्सोऽपस्मारेणबध्यते ॥ २० ॥

जो मनुष्य जाग्रत अवस्थामें असत्  
स्वरके अनेक प्रकारके बहुत शब्दोंको  
सुनै और असत् ही अंधकारको देखै वह  
अपस्मारसे माराजाता है ॥ २० ॥

मत्तंनृत्यन्तमाविध्यप्रेतोहरतियं  
नरम् । स्वप्नेहरतितंमृत्युरपस्मा  
रपुरःसरः ॥ २१ ॥

जिस मत्त और नाचते हुये नरको  
बांधकर स्वप्नमें प्रेत ले जाय उस मनु-  
ष्यको अपस्मारके द्वारा मृत्यु हरतीहै २१

स्तुभ्येतेप्रतिबुद्धस्यहनुमन्येतथा  
क्षिणी । यस्यतंबहिरायामोगृही  
त्वाहन्त्यसंशयम् ॥ २२ ॥

जिस प्रतिबुद्ध ( जगे हुये ) मनुष्यके  
हनु मन्या और नृत्यस्तंभको प्राप्त हो  
जाय उसको बहिः आयाम ग्रहण करके  
निःसंदेह मारता है ॥ २२ ॥

शङ्कुलीरप्यूपान्वैस्वप्नेखादति  
योनरः । सचेत्तादृक्छर्दयतिप्र  
तिबुद्धोनजीवति ॥ २३ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें शङ्कुली ( पूरी )  
वा अपूपोंको खाता है और प्रतिबुद्ध  
हुआ वैसेही छर्द करता है वह नहीं  
जीवता है ॥ २३ ॥

एतानिपूर्वरूपाणियःसम्यगवबु  
ध्यते । सण्णामनुबन्धश्चफलश्च  
ज्ञातुमर्हति ॥ २४ ॥

इन पूर्वरूपोंको जो भली प्रकार  
जानता है वह इनके फल और अनुबन्-  
धोंको जानने योग्य है ॥ २४ ॥

यद्दमांश्चापरान्स्वप्नान्दारुणानुप  
लक्षयेत् । व्याधितानांविनाशा  
यक्लेशायमहतेऽपिवा ॥ २५ ॥

और जो इन अपर दारुण स्वप्नोंको  
व्याधियोंके विनाशके और महान् क्लेशके  
लिये देखताहै वह भी ज्ञाता है ॥ २५ ॥

यस्योत्तमाङ्गेजायन्तेवंशगुल्मल  
तादयः । वयांसिचविलीयन्तेस्व  
प्नेमौढ्यमियाच्चयः ॥ २६ ॥

जिसके उत्तम अंगमें वंशगुल्म लता  
आदि होतेहैं और पक्षी स्वप्नमें बैठतेहैं  
वह मूढ़ताको प्राप्त होताहै ॥ २६ ॥

गृध्रोलूकश्वकाकाचैःस्वमेयःपरि  
वाग्यते । रक्षःप्रेतपिशाचस्त्रीच  
ण्डालद्रवितान्धकैः ॥ २७ ॥

गीध उल्लू श्वान काक आदि स्वप्नमें  
जिसकी चारों तरफ हो जाय और रा-  
क्षस प्रेत पिशाच स्त्री चंडाल द्रवित अंध  
क इनसे ॥ २७ ॥

वंक्षवेत्रलतापाशतृणकण्टकस  
ङ्घटे । प्रमुह्यतिहियःस्वमेलगति  
प्रपतत्यपि ॥ २८ ॥

वंश वेंत लता पाश तृण कंटक इनके  
संकटमें मोहको स्वप्नमें प्राप्त हो लगें वा  
पतनको प्राप्त हो ॥ २८ ॥

भूमौपांशूपधानायांवलमीकेवाथ  
भस्मनि । श्मशानायतनेश्वभेस्व  
मेयःप्रपतत्यपि ॥ २९ ॥

पांशु है उपधान जिसमें ऐसी भूमिमें  
वलमीकमें वा भस्ममें श्मशानस्थानके  
कुंडमें जो स्वप्नमें गिरें ॥ २९ ॥

कलुपेऽभसिपङ्केचकूपेवातमसा  
वृते । स्वमेमज्जतिशीघ्रेणस्रोतसा  
हियतेचयः ॥ ३० ॥

मलीन जलमें पंकमें वा अंधकारसे  
ढके हुये कूपमें जो स्वप्नमें डूबताहै और  
शीघ्र स्रोतसे जो बहाया जाताहै ॥ ३० ॥

स्नेहपानंतथाभ्यङ्गःस्वमेबन्धपरा  
जयौ । हिरण्यलाभःकलहःप्रच्छ  
र्दनविरेचने ॥ ३१ ॥

और स्नेहका पान और अभ्यंग छर्द  
और विरेचन सुवर्णका लाभ कलह और  
स्वप्नमें बंधन और पराजय ॥ ३१ ॥

उपानयुगनाशश्चप्रपातःपांशुचर्म  
णोः । हर्षःस्वमेप्रकुपितैःपितृभि  
श्चापिभर्त्सनम् ॥ ३२ ॥

दोनों उपानहोंका नाश, पांशु और  
चर्मपर गिरना स्वप्नमें हर्ष प्रकुपित पित-  
रोंसे भर्त्सन ॥ ३२ ॥

दन्तचन्द्रार्कनक्षत्रदेवतादीपच  
क्षुपाम् । पतनंवाविनाशोवास्वमे  
भेदोनगस्यवा ॥ ३३ ॥

दंत चंद्र सूर्य नक्षत्र देवता दीपक  
चक्षु इनका स्वप्नमें पतन वा विनाश  
और पर्वतका भेदन ॥ ३३ ॥

रक्तपुष्पवनंभूमिंपापकर्मात्यंचि  
ताम् । गुहान्धकारसम्बाधंस्व  
मेयःप्रविशत्यपि ॥ ३४ ॥

रक्तपुष्पोंका वन और पापकर्म  
स्थान युक्त भूमि इनमें और गुहान्धकार  
संबाधमें जो स्वप्नमें प्रवेश करे ॥ ३४ ॥

रक्तमालीहसन्नुच्चैर्दिग्वासादक्षि  
णादिशम् । दारुणामटवींस्वमे  
कपियुक्तःप्रयातिवा ॥ ३५ ॥

अथवा रक्तमाला धारे ऊँचे स्वरसे  
हंसता नग हुआ दक्षिणदिशामें दारुण  
वनमें वानरसे युक्त यानमें जो स्वप्नमें  
जाता है ॥ ३५ ॥

कषायिणामसौम्यानां नानाद  
ण्डधारिणाम् । कृष्णानां रक्तने  
त्राणां स्वप्नेनेच्छन्ति दर्शनम् ॥ ३६ ॥

कापाय वस्त्रोंके धारक असौम्य नत्र  
दंडधारी कृष्ण और रक्तनेत्रवान् इनके  
दर्शनको स्वप्नेमें इष्ट नहीं मानते हैं ॥ ३६ ॥

कृष्णापापानिराचारादीर्घकेशन  
स्वस्तनी । विरागमाल्यवसनास्व  
प्ने कालनिशामता ॥ ३७ ॥

कृष्ण पापिन आचारहीन दीर्घ  
जिसके केश नख स्तन हों और राग-  
हीन जिसके माल्य वस्त्र हों ऐसी स्त्री  
स्वप्नेमें कालरात्रि मानी है ॥ ३७ ॥

इत्यन्येदारुणाः स्वप्नारोगीयैर्या  
तिपञ्चताम् । अरोगः संशयंगत्वा  
कश्चिदेव विमुच्यते ॥ ३८ ॥

ये दारुणस्वप्न हैं जिनसे रोगी मरण  
को प्राप्त होता है और नीरोग भी संशय  
में पड़कर कोई ही मरणसे विमुक्त  
होता है ॥ ३८ ॥

मनोवहानां पूर्णत्वाद्दोषैरतिबलैस्त्रि  
भिः । स्रोतसां दारुणान् स्वप्नान्काल  
लेपश्यति दारुणे ॥ ३९ ॥

अति बलवान् तीनों दोषोंसे मनो-  
वाही स्रोतोंके पूर्ण होनेसे समयपर  
अदारुण और दारुण स्वप्नोंको मनुष्य  
देखता है ॥ ३९ ॥

नातिप्रसुप्तः पुरुषः सफलानफलान  
पि । इन्द्रियेशेन मनसा स्वप्नान्पश्य  
त्यनेकधा ॥ ४० ॥

नहीं अत्यंत सोता हुआ पुरुष फल  
युक्तोंको और निष्फलोंभी स्वप्नोंको इंद्रि-  
योंके स्वामी मनसे अनेक प्रकारसे पुरुष  
देखता है ॥ ४० ॥

दृष्टं श्रुतानुभूतञ्च प्रार्थितं कल्पितं  
तथा । भाविकं दोषजञ्चैव स्वप्नं स  
तविधं विदुः ॥ ४१ ॥

दृष्ट श्रुत अनुभूत प्रार्थित कल्पित  
भावी और दोषज, यह सात प्रकारका  
स्वप्न बुद्धिमान् जानते हैं ॥ ४१ ॥

तत्र पञ्चविधं पूर्वमफलं भिषगादिशे  
त् । दिवा स्वप्नमतिह्रस्वमतिदीर्घ  
ञ्च बुद्धिमान् ॥ ४२ ॥

उनमें पहिले पांच प्रकारोंको बुद्धि-  
मान् दिनके अतिह्रस्व अति दीर्घ स्व-  
प्नोंको वैद्य निष्फल कहे ॥ ४२ ॥

दृष्टः प्रथमरात्रेयः स्वप्नः सोऽल्पफ  
लो भवेत् । न स्वपेयः पुनर्दृष्ट्वा स  
सद्यः स्यान्महाफलः ॥ ४३ ॥

जो स्वप्न प्रथम रात्रिमें देखा हो वह  
भी अल्प फल होता है और जो पहिले  
जिस स्वप्नको देखकर पुनः शयन करे  
वह स्वप्न सद्यः ही महाफलका दाता  
होता है ॥ ४३ ॥

अकल्याणमपिस्वमंहृद्वातत्रैवयः  
पुनः । पश्येत्सोमंशुभाकारंतस्य  
विद्याच्छुभंफलम् ॥ ४४ ॥

और अकल्याण भी स्वप्नको देखकर  
तत्कालमें ही जो पुनः सौम्य शुभाकार  
स्वप्नको देखताहै उसका भी शुभ फल  
जानना ॥ ४४ ॥

तत्रश्लोकः ।

पूर्वरूपाण्यथस्वप्नन्यदमान्वेत्ति  
दारुणान् । नसमोहादसाध्ये  
पुकर्माण्यारभतेभिपक् ॥ ४५ ॥

उसमें यह श्लोक है—पूर्व रूपोंको  
और इन दारुण स्वप्नोंको जो जानताहै  
वह वैद्य मोहसे असाध्योंमें कर्मोंका  
प्रारंभ नहीं करताहै ॥ ४५ ॥

इति पूर्वरूपीयंद्वितीयं समाप्तम्, ५

पष्ठोऽध्यायः ।

कतमानिशरीरीयम् ।

इसके अनंतर कतमानि शरीरीय  
इन्द्रियका व्याख्यान करतेहैं कि—

कतमानिशरीराणिव्याधिमन्ति  
महामुने । यानिवैद्यःपरिहरेयेषु  
कर्मनसिध्यति ॥ १ ॥

हे महामुने! कितने शरीर व्याधिमान्  
हैं जिनका वैद्य परित्याग करै और जि-  
नमें कर्म सिद्ध नहीं होता ॥ १ ॥

इत्यात्रियोऽग्निवेशेनप्रश्नंपृष्टःसु  
दुर्वचम् । आचक्षेयथातस्मै  
भगवंस्तन्निबोधमे ॥ २ ॥

यह दुःखसे कहने योग्य प्रश्न अग्नि-  
वेशने अत्रियकी पूछा जैसे उसके प्रति  
भगवान्ने कहा उसको तुम सुनो ॥ २ ॥

यस्यवैभाषमाणस्यरुजत्यूर्ध्वमुरो  
भृशम् । अन्नश्च्यवतेभुक्तंस्थि  
तश्चापिनजीर्यति ॥ ३ ॥

जिस भाषण करते हुये मनुष्यकी  
छाती अत्यंत ऊपरकी भग्न होती हो  
और भुक्त अन्न गिरता हो और स्थित  
जो है वह पचता न हो ॥ ३ ॥

बलश्चहीयतेयस्यतृष्णाचाभिप्र  
वर्द्धते । जायतेहृदिशूलश्चतंभिप  
क्परिवर्जयेत् ॥ ४ ॥

और जिसका बल हीन होता हो  
और तृष्णा बढ़ती हो, हृदयमें शूल  
होता हो उस रोगीको वैद्य वर्ज दे ॥ ४ ॥

हिकागम्भीरजायस्यशोणितश्चा  
तिसार्ग्यते । नतस्मैभेषजंदद्यात्  
स्मरन्नात्रेयशासनम् ॥ ५ ॥

जिसके गंभीर उत्पन्न हुई हिका  
रुधिर अतिसारको करै अत्रियकी शि-  
क्षाका स्मरण करता हुआ वैद्य उसको  
औषध न दे ॥ ५ ॥

आनाहंश्चातिसारश्चयमेतौदुर्वलं

रम् । व्याधितं विशतो रोगौ दुर्लभं  
तस्य जीवितम् ॥ ३ ॥

जिस व्याधिवाले दुर्बल नरको आ-  
नाह ( अफरा ) और अतीसार ये दोनों  
रोग प्रविष्ट होजाँय उसका जीवित  
दुर्लभ है ॥ ६ ॥

आनाहश्चैव तृष्णाचयमेतौ दुर्बलं  
नरम् । विशतो विजहत्येनं प्राणा  
नतिचिरान्नरम् ॥ ७ ॥

और जिस दुर्बल मनुष्यके अनाह  
और तृष्णा ये दोनों प्रविष्ट हो जाँय  
इसको प्राण अल्प कालमें ही त्याग  
देते हैं ॥ ७ ॥

ज्वरः पौर्वाहिको यस्य शुष्कः कास  
श्वदारुणः । ज्वरो यस्य अपराह्णेतु  
श्लेष्मकासश्चदारुणः । बलमांस  
विहीनस्य यथा प्रेतस्तथैव सः ॥ ८ ॥

जिस बल मांस विहीन मनुष्यके  
पूर्वाह्णमें ज्वर और दारुण शुष्क कास हो  
और अपराह्णमें ज्वर और दारुण श्लेष्म  
कास हो जैसा प्रेत वैसाही वह है ॥ ८ ॥

यस्य मूत्रं पुरीषश्च ग्रथितं सम्प्रवर्त  
ते । निरुष्मिणो जठरिणः श्वसनो  
न स जीवति ॥ ९ ॥

जिसके मूत्र और पुरीष ग्रंथि सहित  
आवें और ऊष्मासे रहित हो और उदर  
रोगी हो और श्वास हो वह न जीवैगा ॥ ९ ॥  
श्वयथुर्यस्य कुक्षिस्थो हस्तपादं वि

सर्पति । ज्ञाति संघं संसृज्यते न  
रोगेण हन्यते ॥ १० ॥

जिसकी कुक्षिमें स्थित शोथ हस्त  
पादपर फैलजाय वह मनुष्य जाति  
संगको क्लेश देकर उस रोगसे मारा  
जाता है ॥ १० ॥

श्वयथुर्यस्य पादस्थस्तथास्त्येच  
पिण्डके । सीदतश्चाप्युभे जंघेतं  
भिषक् परिवर्जयेत् ॥ ११ ॥

जिसके पादोंमें सूजन हो और पिंडी  
स्त्येच और अशुभ दोनों शंस दुःखित  
हों उसको भी वैद्य वर्ज दे ॥ ११ ॥

शूनहस्तं शूनपादं शूनगुह्योदरं नर  
म् । हीनवर्णबलाहारमौषधैर्ना  
पपादयेत् ॥ १२ ॥

जिस मनुष्यके हस्त पाद गुह्य (लिंग)  
उदर इनमें शूनता ( सूजन ) हो बल  
वर्ण आहार ये हीन हों उस मनुष्यको  
औषध न दे ॥ १२ ॥

उरो युक्तो बहुश्लेष्मानीलः पीतः  
सलोहितः । सततं च्यवते यस्य दू-  
रात्तं परिवर्जयेत् ॥ १३ ॥

छातीसे मुक्त होकर जिसके अधिक  
श्लेष्मा नीला पीत लोहित सहित निरंतर  
गिरता हो उसको दूरसे ही त्याग दे ॥ १३ ॥

हृष्टरोमासान्द्रमूत्रः शूनः कासज्व  
रार्दितः । क्षीणमांसो नरो दूरादव  
ज्यो वैद्येन जानता ॥ १४ ॥

रोमोंमें हर्ष मूत्रमें आर्द्रता शोथ कास ज्वरसे पीडित क्षीणमांस जो नर है वह ज्ञाता वैद्यको दूरसे त्यागने योग्य है ॥ १४ ॥

त्रयः प्रकुपितायस्य दोषाः कोष्ठेऽभिलक्षिताः । कृशस्य बलहीनस्य नास्ति तस्य चिकित्सितम् ॥ १५ ॥

जिस मनुष्यके तीनों दोष कोष्ठमें दीखते हुये अत्यंत कुपित जान पड़ें, कृश और बलहीन उसकी चिकित्सा नहीं है ॥ १५ ॥

ज्वगतिसारौ शोफान्ते श्वयथुर्वातयोः क्षये । दुर्बलस्य विशेषेण न रत्यान्ताय जायते ॥ १६ ॥

शोफके अंतमें ज्वर अतिसार हों वा उन दोनोंके नाश होनेपर शोथ हो वह उस विशेष दुर्बल नरके अंत कारक होता है ॥ १६ ॥

पाण्डूदरः कृशोऽत्यर्थं तृष्णया चित्परिभ्रुतः । डम्बरी कुपितो च्छ्वासः प्रत्याख्येयो विजानता ॥ १७ ॥

जो पांडु उदर हो अत्यंत कृश और तृष्णासे युक्त डंबरी और कुपित उर्ध्वश्वास हो वह ज्ञाता वैद्यके त्यागने योग्य है ॥ १७ ॥

हनुमन्याग्रहस्तृष्णाबलहासोऽतिमात्रया । प्राणश्चोरसि वर्तन्ते यस्य तं परिवर्जयेत् ॥ १८ ॥

हनु और मन्याका ग्रह तृष्णा अत्यंत बलकी हानि और जिसके प्राण छातीमें वर्तते हों उसको त्याग दे ॥ १८ ॥

ताम्यत्यायच्छते शर्मनकिञ्चिदपि विन्दति । क्षीणमांसबलाहारो मुमूर्षुरचिरान्नरः ॥ १९ ॥

जो ग्लानिको आयामको प्राप्त हो और किञ्चित् भी सुखको प्राप्त न हो और क्षीण हैं बल मांस आहार जिसके ऐसा नर अचिर कालमें ही मुमूर्षु है १९ विरुद्धयोनयो यस्य विरुद्धोपक्रमा मृशम् । वर्द्धन्ते दारुणारोगाः शीघ्रं शीघ्रं सहन्यते ॥ २० ॥

जिसके विरुद्ध हेतुओंसे और विरुद्ध उपक्रम किये अत्यंत दारुण रोग शीघ्र बढ़ते हों वह शीघ्र मारा जात है ॥ २० ॥

बलं विज्ञानमारोग्यं ग्रहणीमांसशोणितम् । एतानि यस्य क्षीयन्तो क्षीप्रं क्षिप्रं सहन्यते ॥ २१ ॥

बल विज्ञान आरोग्य ग्रहणी मांस रुधिर ये जिसके शीघ्र क्षीण होते हों वह शीघ्र मारा जाता है ॥ २१ ॥

विकारायस्य वर्द्धन्ते प्रकृतिः परिहीयते । सहसा सहसा तस्य मृत्युर्हरति जीवितम् ॥ २२ ॥

जिसके विकार बढ़ते हों और प्रकृति क्षीण सहसा होती हो उसके जीवितको मृत्यु सहसा हरती है ॥ २२ ॥

तत्रश्लोकः ।

इत्येतानिशरीराणिव्याधिमन्ति  
विवर्जयेत् । नह्येपुधीराःपश्यन्ति  
सिद्धिकाश्चिदुपक्रमात् ॥ २३ ॥

उसमें यह श्लोक है—कि, इन व्याधि-  
मान् शरीरोंको विशेषकर वर्जदे क्योंकि  
धीर मनुष्य इनमें उपक्रमसे किसीभी  
सिद्धिको नहीं देखते हैं इति ॥ २३ ॥

इति कृतमानिशरीरीयम्, इन्द्रियं समाप्तम् ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

पन्नरूपीयम् ।

इसके अनंतर पन्नरूपीय इन्द्रियका  
व्याख्यान करते हैं कि—

दृष्ट्यायस्यविजानीयात्पन्नरूपां  
कुमारिकाम् । प्रतिच्छायामयी  
मक्षणैर्नैनमिच्छेच्चिकित्सितुम् । १ ।

जिसकी दृष्टिमें पन्नरूपवती प्रति-  
च्छायामें कुमारिकाको नेत्रोंसे देखै उसकी  
चिकित्सा करनेकी इच्छा न करे ॥ १ ॥

ज्योत्स्नायामातपेदीपेसलिलाद  
र्शयोरपि । अङ्गेपुविकृतायस्य  
छायाप्रेतस्तथैवसः ॥ २ ॥

प्रकाश आतप दीपक जल आदर्श  
इनमें जिसकी छायामें अंगविकार दीखै  
वह नर प्रेतके समान है ॥ २ ॥

छिन्नाभिन्नाकुलाछायाहीनावा  
प्यधिकापिवा । नष्टातन्वीद्विधा  
छायाविशिराविस्तृताचया ॥ ३ ॥

छिन्न भिन्न आकुल हीन वा अधिक  
नष्टतन्वी दो प्रकारसे छिन्न शिर हीने  
और विस्तारवती जो छाया हैं ॥ ३ ॥

एताश्चान्याश्रयाःकाश्चित्प्रति

च्छायाविगर्हिताः । सर्वामुमूर्ष

तांज्ञेयानचेष्टक्षयनिमित्तजाः ॥ ४ ॥

ये और अन्य जो कोई निन्दित  
छाया हैं वे सब जो देखनेके योग्य  
निमित्तसे न होंय तो सब सुमूर्षुओंकी  
जाननी ॥ ४ ॥

संस्थानेनप्रमाणेनवर्णेनप्रभयात

था । छायाविवर्त्ततेयस्यस्वमेऽपि

प्रेतएवसः ॥ ५ ॥

संस्थानसे प्रमाणसे वर्णसे और प्रभासे  
विपरीत जिसकी छाया स्वप्नमेंभी हो  
वह प्रेतही है ॥ ५ ॥

संस्थानमाकृतिर्ज्ञेयासुपमाविपमा

चया । मध्यमल्पमहच्चोक्तंप्रमाणं

त्रिविधंनृणाम् ॥ ६ ॥

संस्थान आकृति जाननी जो सम  
और विषमरूप होती है और मनुष्योंका  
प्रमाण मध्य अल्प महान् भेदोंसे तीन  
प्रकारका होताहै ॥ ६ ॥

प्रतिप्रमाणसंस्थानाजलादर्शातपा

दिषु । छायायासाप्रतिच्छाया

याचवर्णप्रभाश्रया ॥ ७ ॥

जल आदर्श आतप आदिकोंमें जो  
छाया प्रति प्रमाणके आकारकी हो वह

वह छायाके वर्ण और प्रभाकी आश्रय प्रतिच्छाया होती है ॥ ७ ॥

स्वादीनांपञ्चपञ्चानांछायाविविध लक्षणाः । नाभसीनिर्मलानीला सस्नेहासप्रभेवच ॥ ८ ॥

पांच आकाश आदिकी पांच छाया विविध लक्षणकी होती है आकाशकी छाया निर्मल नीली स्नेहाहित प्रभा-युक्तके समान होती है ॥ ८ ॥

रुक्षाश्यावारुणायानुवायवीसाह तप्रभा । विशुद्धरक्तात्वाम्नेयीदी भाभादर्शनप्रिया ॥ ९ ॥

और जो रूक्ष श्याव अरुण होती है वह नष्ट प्रभावाली वायुकी होती है और विशुद्ध रक्त दीप्त कांति दर्शन प्रिय छाया अग्निकी होती है ॥ ९ ॥

शुद्धवैदूर्यविमलासुस्निग्धाचाम्भ सीमता । स्थिरास्निग्धाघनाश्ल क्षणाश्यामाश्वेताचपार्थिवी १० ॥

शुद्ध वैदूर्यमणिके समान विमल भली प्रकार स्निग्ध जलकी कही है, स्थिर स्निग्ध घन श्लक्ष्ण श्याम और श्वेत पृथिवीकी होती है ॥ १० ॥

वायवीगर्हितात्वासांचतस्रःस्युः शुभोदयाः । वायवीतुविनाशाय क्लेशायमहतेऽपिवा ॥ ११ ॥

इनमें वायु संबंधी छाया निंदित है और चारों सुखदायिनी होती हैं, वायुकी

तो विनाशके और महान् क्लेशके लिये होती है ॥ ११ ॥

स्यात्तेजसीप्रभासर्वासातुसप्तविधा स्मृता । रक्तापीतासिताश्यावा हरितापाण्डुराऽसिता ॥ १२ ॥

तेजकी सप्त छाया प्रभावाली होती है वह सात प्रकारकी कही है, कि रक्त पीत सित श्याव हरित पाण्डुर असित १२ तासांयाःस्युर्विकासिन्यःस्निग्धा श्वविपुलाश्वयाः । ताःशुभारूक्ष मलिनाःसंक्षिप्ताश्वाशुभोदयाः १३

उनमें जो प्रकाशवती हैं और जो स्निग्ध और विपुल हैं वे शुभ हैं और रूक्ष मलीन संक्षिप्त जो हैं वे अशुभ को देती हैं ॥ १३ ॥

वर्णमाक्रामतिच्छायाभास्तुवर्णप्र काशिनी । आसन्नालक्ष्यतेछाया भाःप्रकृष्टाप्रकाशते ॥ १४ ॥

छाया वर्णका आक्रमण करती है और भा ( कांति ) वर्णका प्रकाश करती है, छाया समीपमें दीखती है और भा दूरपर प्रकाश करती है ॥ १४ ॥

नाच्छायोनाप्रभःकश्चिद्विशेषा चिह्नयन्तितु । नृणांशुभाशुभोत्पत्तिकालेछायाःप्रभाश्रिताः १५

न छाया हीन और प्रभाहीन कोई विशेषसे चिह्न नहीं करते हैं, मनुष्योंके शुभ अशुभ की उत्पत्ति समय पर छाया प्रभाके आश्रित है ॥ १५ ॥



कामलाक्ष्णोर्मुखं पूर्णगण्डयोर्युक्तं  
समांसता । सन्त्रासश्चोष्णगात्रश्च  
यस्य तं परि वर्जयेत् ॥ १६ ॥

नेत्रोंमें कामला वायुसे मुख पूर्ण गंड  
स्थलोंमें युक्त मांस संत्रास और उष्ण  
गात्र जिसका हो ऐसे मनुष्यको वर्ज दे ॥ १६ ॥

उत्थाप्यमानः शयनात्प्रमोहं याति  
योनरः । मुहुर्मुहुर्नसताहं स जीव  
ति विकथनः ॥ १७ ॥

झग्यासे उठानेसे जो मनुष्य बारंवार  
मोहको प्राप्त हो वह श्वावाहीन सात दिन  
न जीवैगा ॥ १७ ॥

संसृष्टा व्याधयो यस्य प्रतिलोमानु  
लोमगाः । व्यापन्ना ग्रहणी प्रायः  
सोऽर्द्धमांसं न जीवति ॥ १८ ॥

जिसकी प्रतिलोमसे होनेवाली  
व्याधि संसृष्ट ( मिली ) हों और ग्रह-  
णीभी प्रायः नष्ट हो वह अर्द्धमांस न  
जीवैगा ॥ १८ ॥

उपद्रुतस्य रोगेण कर्पितस्याल्पमश्व  
तः । बहुमूत्रपुरीषस्यायस्य तं प  
रि वर्जयेत् ॥ १९ ॥

रोगसे उपरुद्ध कृश अल्प भोजी  
जिस मनुष्यके मूत्र पुरीष बहुत आवै  
उसको वर्ज दे ॥ १९ ॥

दुर्बलो बहुभुङ्क्ते यः प्राग्भुक्ता दन्न  
मातुरः । अल्पमूत्रपुरीषश्च यथापि  
तं स्तथैव सः ॥ २० ॥

जो दुर्बल मनुष्य बहु भोजी पहिले  
भोजनकी अपेक्षासे हो और मूत्र पुरीष  
अल्प आते हों वह प्रेतके समान है २० ॥

वर्द्धिष्णुगुणसम्पन्नमन्नमश्नातियो  
नरः । शश्वच्च बलवर्णाभ्यां हीयते न  
स जीवति ॥ २१ ॥

जो मनुष्य बढे हुए, गुणोंसे युक्त  
अन्नको निरंतर खाता हुआ बल वर्णसे  
हीन होता हो वह न जीवैगा ॥ २१ ॥

प्रकूजति प्रश्वसिति शिथिलश्चाति  
सार्यते । बलहीनः पिपासार्तः शु  
ष्कास्योनस जीवति ॥ २२ ॥

आंतांमें शब्द हो श्वास हो शिथिल-  
तासे अतिसार हो बलहीन पिपाससे आर्त  
और शुष्क मुख वह न जीवैगा ॥ २२ ॥

ह्रस्वश्च यः प्रश्वसिति व्याविद्धं रूप  
न्दते च यः । मृतमेव तमात्रेयो व्या  
चक्षे पुनर्वसुः ॥ २३ ॥

जिसका श्वास ह्रस्व हो और विशेष-  
कर आविद्ध ( रुका ) जिसका स्पंदन  
हो आत्रेय पुनर्वसुने उसको मृतही  
कहा है ॥ २३ ॥

ऊर्ध्वश्च यः प्रश्वसिति श्लेष्मणा चा  
विभूयते । हीनवर्णबलाहारो यो  
नरो न स जीवति ॥ २४ ॥

जिसका श्वास ऊर्ध्व हो कफने दवा-  
रक्ता हो बल वर्ण आहार ये हीन हों वह  
नर न जीवैगा ॥ २४ ॥

ऊर्ध्वेयिनयेयस्यमन्येचानतक  
म्पने । बलहीनःपिपासार्तःशु  
ष्कास्योनसजीवति ॥ २५ ॥

नेत्रोंका अग्रभाग ऊर्ध्व हो और दोनों  
मन्या आनत और कंपित हों, बलसेहीन  
और पिपासासे आर्त हो मुख शुष्क हो  
वह न जीवेगा ॥ २५ ॥

यस्यगण्डानुपचितौज्वरकासौच  
दारुणौ । शूलप्रद्वेष्टिचाप्यन्नं  
तस्मिन्कर्मनसिद्ध्यति ॥ २६ ॥

जिसके गंडस्थल बढेहुये हों और  
ज्वर कास दारुण हो शूल हो अन्नका  
द्वेषी हो ऐसे मनुष्यमें चिकित्साकी  
सिद्धि नहीं होती है ॥ २६ ॥

व्यावृत्तमूर्द्धजिह्वाक्षौभुवौयस्यच  
विच्युते । कण्ठकेश्वाचिताजिह्वा  
यथाप्रेतस्तथैवसः ॥ २७ ॥

जिसके मूर्द्धा जिह्वा नेत्र खुले हुये  
हों और भ्रुकुटी गिरीजाती हों और  
जिह्वा कंठकोंसे व्याप्त हो वह नर प्रेतके  
समानहै ॥ २७ ॥

शेषश्चात्यर्थमुत्सिकंनिसृतौवृष  
णौभृशम् । अतश्चैवविपर्यासो  
विकृत्याप्रेतलक्षणम् ॥ २८ ॥

जिसका लिंग उत्सिक ( गिरासा )  
और वृषण अत्यंत निकसे हुये हों वा  
इससे विपरीत हों यह प्रकृतिसे प्रेत  
( मृत ) का लक्षण है ॥ २८ ॥

निचितंयस्यमांसंस्यात्त्वगास्थिचै  
वदृश्यते । क्षीणस्यानश्नतस्तस्य  
मासमायुःपरंभवेत् ॥ २९ ॥

जिसका मांस इकट्ठाहो और त्वचा  
अस्थियोंमें ही दीखे क्षीण और भोजनका  
त्यागी उसकी आयु अधिकसे अधिक  
मासभरकी होगी ॥ २९ ॥

तत्र श्लोकः ।

इदंलिङ्गमरिष्टाख्यमनेकमभिज  
ज्ञिवान् । आयुर्वेदविदित्याख्यां  
लभतेकुशलोनरः ॥ ३० ॥

उसमें यह श्लोक है कि इस अरिष्ट  
नामके लिंगको जो जानता है, वह  
कुशलनर आयुर्वेदवित् इस नाम को  
प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

इति पूर्वरूपीयं इन्द्रियं समाप्तम् ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अवाक्शिरसीयम् ।

इसके अनंतर अवाक् शिरसीय इन्द्रि-  
यका व्याख्यान करते हैं कि—

अवाक्शिरावाजिह्वावायस्यवा  
विशिराभवेत् । जन्तोरुपप्रति  
च्छायानैनमिच्छेच्चिकित्सितुम् ॥ १ ॥

जिस जंतुकी रूपके छाया नीचे शि-  
रकी कुटिल और शीतल हो उसकी  
चिकित्सा करनेकी इच्छा न करे ॥ १ ॥

जटीभूतानिपक्ष्माणिदृष्ट्वापि  
निगृह्यते । यस्यजन्तोर्नतंधीरो  
भेषजेनोपपादयेत् ॥ २ ॥

जिस जंतुके पक्ष्म जटित हों और  
टापि का भी निग्रह ( रुकावट ) हो धीर  
वैद्य उसकी भेषज न करे ॥ २ ॥

यस्यशूनानिवर्तमानिनसमायान्ति  
शुष्यतः । चक्षुषीचोपदह्येतेयथा  
प्रेतस्तथैवसः ॥ ३ ॥

जिसके शून हुये वर्तमान ( मार्ग ) न  
आवै और शुष्क हुये के नेत्रोंमें उपदेह  
( उद्धत पन ) हो वह नर प्रेतके  
समान है ॥ ३ ॥

भुवोर्वायदिवामूर्ध्वसीमन्तावर्तम  
कान्बहून् । अपूर्वान्कृतान्व्य  
क्तान्दृष्ट्वा मरणमादिशेत् ॥ ४ ॥

भुजुटियोंमें वा मूर्ध्निमें, अधिक अपूर्व  
विना किये प्रकट सीमंतके बहुतसे  
आवर्तों को देखकर मरणको कहै ॥ ४ ॥

अहमेतेनजिवन्तिलक्षणेनातुरा  
नराः । अरोगाणांपुनस्त्वेतत्पट्टा  
त्रं परमुच्यते ॥ ५ ॥

इस लक्षणसे मनुष्य तीन दिन जी-  
वते हैं और जो अरोगी हैं उनका जी-  
वन इनसे छः रात्र परम कहा है ॥ ५ ॥

आयम्योत्पाटितान्केशान्योनरो  
नावबुध्यते । अनातुरोवारोगीवा  
षट्त्रात्रं नातिवर्त्तते ॥ ६ ॥

जो मनुष्य खींचकर उत्पाटित केशोंको  
नहीं जान सकता रोगी वा अरोगी वह  
छः रात्रका अवलंघन नहीं करता है ॥ ६ ॥

यस्यकेशानिरभ्यङ्गादृश्यन्तेऽभ्य  
क्तसन्निभाः । उपरुद्धायुषंज्ञात्वा  
तंधीरःपरिवर्जयेत् ॥ ७ ॥

जिसके अभ्यंग रहित केश अभ्यंग  
कियेके समान दीखें उसकी आयुके  
उपरोध ( रोक ) को देखकर धीर मनुष्य  
उसको वर्ज दे ॥ ७ ॥

ग्लायतोनासिकावंशःपृथुत्वय  
स्यगच्छति । अशूनःशूनसङ्का  
शःप्रत्याख्येयःसजानता ॥ ८ ॥

ग्लानिको प्राप्त हुये जिसकी नासि-  
काका वंश मोटा हो जाय, शूनके समान  
अशून उसका जानता हुआ वैद्य परि-  
त्याग कर दे ॥ ८ ॥

अत्यर्थविवृतायस्ययस्यचात्यर्थ  
संवृता । जिह्वावापरिशुष्कावा  
नासिकानसजीवति ॥ ९ ॥

जिसकी नासिका टेढ़ी अत्यंत विवृत  
( खुली ) वा संवृत हो वा शुष्क हो वह  
न जीवैगा ॥ ९ ॥

मुखंशब्दस्रवावोष्ठौशुक्लश्यावाति  
लोहितौ । विकृतौयस्यवानीलौ  
नसरोगाद्विमुच्यते ॥ १० ॥

जिसके ओष्ठ मुखके शब्दसे ढीले  
हों शुक्ल श्याव अतिलोहित हों वा विका-

रसे नील-हों वह रोगसे मुक्त नहीं होता ॥ १० ॥

अस्थिश्वेताद्विजायस्यपुष्पिताः पङ्कसंवृताः । विकृत्यानसरोरुगंतविहायारोग्यमश्नुते ॥ ११ ॥

जिसके दांत अस्थिके समान श्वेत पुष्पित पंकसे आच्छादित विकारसे हों वह नर उस रोगको त्यागकर आरोग्य नहीं भोगता है ॥ ११ ॥

स्तब्धानिश्चेतनागुर्वीकण्डकोपचितानुशम् । श्यावाशुष्काथवाशूनाप्रेतजिह्वाविसर्पिणी ॥ १२ ॥

जिस मनुष्यकी जिह्वा स्तब्ध, निश्चेतन, गुर्वी, अत्यंत कंडकोसे युक्त श्याव शुष्क अथवा शून ( सूजी ) और विसर्पिणी ( फैली ) हो वह प्रेतजिह्वा है अर्थात् वह मरेगा ॥ १२ ॥

दीर्घमुच्छ्वस्ययोहस्त्वनरोनिश्वस्य ताम्यति । उपरुद्धायुपंज्ञात्वातं धीरःपरिवर्जयेत् ॥ १३ ॥

जो मनुष्य दीर्घ ऊर्ध्वश्वास लेकर और न्हस्व श्वासको लेकर श्लानिकी प्राप्त हो जाय उसकी आयुके उपरोधको जानकर धीर मनुष्य वर्ज दे ॥ १३ ॥

हस्तौपादौचमन्येचतालुचैवातिशीतलम् । भवत्यायुःक्षयेऋमथवापिभवेन्मृदु ॥ १४ ॥

जिसके हस्त पाद मन्या तालु थे अति शीतल होते हैं वा आयुके क्षयमें कूर वा मृदु होते हैं ॥ १४ ॥

घट्टयन् जानुना जानुपादावुद्गम्य पातयन् । योऽप्यास्यतिमुहुर्वक्त्रमातुरोनसजीवति ॥ १५ ॥

जो मनुष्य जानुसे जानुका रगड़ता है और पादों को ऊपर उठा कर पटकता है और बारंवार मुखको खोलता है वह आतुर न जीवेगा ॥ १५ ॥

दन्तैश्छिन्दन्नखाग्राणिनखैश्छिन्दन् शिरोरुहान् । काष्ठेन भूमिं विलिखन्नरोगात्परिमुच्यते १६ ॥

दांतोंसे नखोंके अग्रोंको छेदन करता और नखोंसे केशोंको छेदन करता हुआ और काष्ठसे भूमि पर लिखता हुआ मनुष्य रोगसे मुक्त नहीं होता है ॥ १६ ॥

दन्तान्खादतियोजाग्रदसाम्नाविरुदन्हसन् । विजानातिनचेदुःखं नसरोगादिमुच्यते ॥ १७ ॥

जो दांतोंको खाता है और जागता हुआ अशांतिसे रोता और हँसता है और दुःखको नहीं जानता है वह मनुष्य रोगसे मुक्त नहीं होता है ॥ १७ ॥

मुहुर्हसन्मुहुःक्ष्वेडन् शय्यांपादेन हन्ति यः । उच्चैश्छिद्राणिविमृशन्नातुरोनसजीवति ॥ १८ ॥

जो वारंवार हँसता है वारंवार विलास करता हुआ पादसे शय्याको हतता है ऊँचेके छिद्रोंको स्पर्श करता हुआ वह आतुर न जीवैगा ॥ १८ ॥

यैर्विन्दतिपुराभावैःसमेतैःपरमांरतिम् । तैरेवारममाणस्यग्लास्त्रोर्मरणमादिशेत् ॥ १९ ॥

पहिले जिन समेत भावोंसे परम आनंदको प्राप्त होता था उनसे रमण न करते हुये ग्लानिसे युक्त मनुष्यके मरणको कहै ॥ १९ ॥

नचिभार्तिशिरोग्रीवांनपृष्ठंभारमात्मनः । नहनूपिण्डमास्यस्थमातुरस्यमुमूर्षतः ॥ २० ॥

मुमूर्षु रोगीकी ग्रीवा शिरको और पृष्ठ देहके भारको और हनू आस्यके पिण्डको धारण नहीं करती है ॥ २० ॥

सहसाज्वरसन्तापस्तृणामूच्छां बलक्षयः । विश्लेषणञ्चसन्धीनां मुमूर्षोरूपजायते ॥ २१ ॥

शीघ्रही ज्वरका संताप तृणामूच्छां बलका क्षय संधियोंका विभाग ये सब मुमूर्षु रोगीके होते हैं ॥ २१ ॥

गोसर्गेवदनाद्यस्यस्वेदःप्रच्यवते भृशम् । लेपज्वरोपतप्तस्यदुर्लभंतस्यजीवितम् ॥ २२ ॥

जिह्वाके लगनेसे जिसके मुखमेंसे अत्यंत स्वेद गिरै लेप और ज्वरसे उप तप्त उस मनुष्यका जीवित दुर्लभ है ॥ २२ ॥

नोपैतिकण्ठमाहारोजिह्वाकण्ठमुपैति च । आयुष्यन्तंगतेजन्तो बलञ्चपरिहीयते ॥ २३ ॥

जिसके कंठमें आहार न जाय और जिह्वा कंठमें जाय और बलकी हानि हो उसकी आयु अंतको प्राप्त है ॥ २३ ॥

शिरोविक्षिपतेकृच्छ्रान्मुञ्चयित्वा प्रपाणिकौ । ललाटप्रसृतस्वेदो मुमूर्षुःश्लथबन्धनः ॥ २४ ॥

शिराके विक्षेपको हाथोंके तलको न लगाकर जो कष्टसे करै मस्तकसे स्वेद गिरै वह श्लथ ( ढीले ) बंधन मनुष्य मुमूर्षु है, इति ॥ २४ ॥

अत्रश्लोकः ।

इमानिलिङ्गानि नरेषुबुद्धिमान्विभावयेतावहितो मुहुर्मुहुः । क्षणेनभूत्वाद्युपयान्तिकानिचिन्नचाफलंलिङ्गमिहास्तिकिञ्चन ॥ २५ ॥

उसमें यह श्लोक है कि—

बुद्धिमान् मनुष्य सावधान होकर मुमूर्षु मनुष्योंमें इन लिंगोंको वारंवार देखै कोई तो क्षणमें होकर नष्ट हो जाति हैं और इनमें कोईभी लिंग निष्फल नहीं है इति ॥ २५ ॥

इति अवाकुशिरसीयमिन्द्रियंसमाप्तम् ८

नवमोऽध्यायः ।

यस्य श्यावनिमितीयम् ।

इसके अनंतर यस्य श्याव निमितीय इन्द्रियका व्याख्यान करते हैं कि-

यस्य श्यावपरिध्वस्ते हरिते चापि दर्शने । आपन्नो व्याधिरन्तायज्ञे यस्तस्य विज्ञानता ॥ १ ॥

जिसके श्याव परिध्वस्त और हरित नेत्र हों उसको प्राप्त हुई व्याधि ज्ञाता वैद्यको अंतके लिये जाननी ॥ १ ॥

निःसंज्ञः परिशुष्कास्यः संविद्धो व्याधिभिश्च यः । उपरुद्धायुपंज्ञा त्वातं धीरः परिवर्जयेत् ॥ २ ॥

संज्ञासे रहित परिशुष्क मुख और व्याधियोंसे जो संविद्ध हो उसकी आयुके उपरोधको जानकर धीर वैद्य उसको वर्ज दे ॥ २ ॥

हरिताश्वशिरास्य लोमकूपाश्च संवृताः । सोऽम्लकामिलापी पुरुषः पित्तान्मरणमश्नुते ॥ ३ ॥

जिसकी शिरा हरित हो लोम कूप संवृत हों अम्लका अभिलापी वह पुरुष पित्तसे मरणको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

शरीरान्ताश्च शोभन्तेशरीरश्चोपशुष्यति । बलञ्च हीयते यस्य राजयक्ष्मा हि नस्ति तम् ॥ ४ ॥

शरीरकी जांत तो शोभित हों और शरीर शुष्क हो और बल जिसका हीन हो उसको राजयक्ष्मा हिसितकर ( मार ) देता है ॥ ४ ॥

अंसाभितापो हिक्का च छर्दनं शोणि तस्य च । आनाहः पार्श्वशूलञ्च भवत्यन्ताय शोपिणः ॥ ५ ॥

अंसोंमें अभिताप ( दर्द ) हिक्का रुधिरका छर्दन आनाह पार्श्वमें शूल ये सब शुष्क मनुष्यके अंतके लिये होते हैं ॥ ५ ॥

वातव्याधिरपस्मारी कुष्ठी शोफी तथोदरी । गुल्मी च मधुमेही च राजयक्ष्मी च योनरः ॥ ६ ॥

वातकी व्याधिमान् अपस्मारी कुष्ठी शोफी ( शूनी ) उदर रोगी गुल्मी मधुमेही और राजयक्ष्मी जो नर हैं ॥ ६ ॥

अचिकित्स्या भवन्त्येते बलमांसक्षये सति । अन्येष्वपि विकारेषु तान्निपक्वपरिवर्जयेत् ॥ ७ ॥

ये सब बल मांसके नष्ट होनेपर चिकित्साके अयोग्य होते हैं अन्य विकारोंमें भी उनको वैद्य वर्ज दे ॥ ७ ॥

विरिचनहृता नाहोयस्तृष्णानुगतो नरः विरक्तः पुनराध्माति यथाप्रेतस्तथैव सः ॥ ८ ॥

विरिचनसे आनाहके दूर होनेपर जो नर तृष्णाका अभिलापी हो और विरि-

चन करनेपरभी पुनः आध्मान करै वह नर प्रेतके समान है ॥ ८ ॥

पेयंपातुंनशक्रोतिकण्ठस्यचमुख  
स्यच । उरसश्चविवद्धत्वाद्योनरो  
नसजीवति ॥ ९ ॥

कंठ मुख और छाती इनके विवद्ध होनेसे जो पीने योग्य वस्तुको न पी सके वह नर न जीवैगा ॥ ९ ॥

स्वरस्यदुर्बलीभावंहानिञ्चबलव  
र्णयोः । रोगवृद्धिमयुक्त्याचह  
ष्टामरणमादिशेत् ॥ १० ॥

स्वरकी दुर्बलता और बल वर्णकी हानि और आयुक्तिसे रोगकी वृद्धि इनको देखकर मरणको कहै ॥ १० ॥

ऊर्द्धश्वासंगतोष्माणंशूलोपहत  
वंक्षणम् । शर्मचानधिगच्छन्तं  
बुद्धिमान्परिवर्जयेत् ॥ ११ ॥

जिसका ऊर्द्धश्वास हो ऊष्माका नाश हो शूलसे वंक्षणका नाश हो और सुख किसीकालमें न हो उसको बुद्धिमान् मनुष्य वर्ज दे ॥ ११ ॥

अपस्वरंभाषमाणंप्राप्तमरणमात्म  
नः । श्रोतारश्चाप्यशब्दस्यदूरतः  
परिवर्जयेत् ॥ १२ ॥

अपस्वर ( बुरे ) से भाषमाण हो अपने शब्दका श्रोताहै मरणको प्राप्त हुये उस मनुष्यको दूरसे वर्ज दे ॥ १२ ॥

यंनरसहसारागोदुर्बलंपरिमुञ्च

ति । संशयप्राप्तमात्रेयोजीवितं  
तस्यमन्यते ॥ १३ ॥

जिस दुर्बल नरको सहसा रोग होकर छोड़दे उस नरके जीवितको आत्रेयमुनि संशयको प्राप्त मानेत हैं ॥ १३ ॥

अथचेज्ज्ञातयस्तस्ययाचेरन्प्र  
णिपाततः । रसेनाद्यादितिब्रूया  
न्नास्मैदद्याद्विशोधनम् ॥ १४ ॥

इसके अनंतरभी यदि उसकी ज्ञा-  
तिके मनुष्य प्रणिपात ( प्रमणा ) से या-  
चना करें तो उसको यह कहै किरसोंसे  
युक्त भोजन करै इसके विशोधनको  
न करै ॥ १४ ॥

मासेनचेन्नदृश्येतविशेषस्तस्यशो  
भनः । रसैश्चान्यैर्बहुविधैर्दुर्लभं  
तस्यजीवितम् ॥ १५ ॥

एक माससे यदि उसको शोभन न  
दीखै तो अन्य बहुत प्रकारके रसोंसे  
उसका जीवित दुर्लभ है ॥ १५ ॥

निष्ठचूतश्चपुरीषश्चरेतश्चाम्भसिम  
ज्जति । यस्यतस्यायुषःप्राप्तमन्त  
र्माहुर्मनीषिणः ॥ १६ ॥

जिसका निष्ठचूत ( थूक ) पुरीष  
और वीर्य ये जलमें डूब जाँय बुद्धिमान्  
मनुष्योंने उसकी आयुका अंत आया  
हुआ कहा है ॥ १६ ॥

निष्ठचूतेयस्यदृश्यन्तेवर्णाबहुवि

धाःपृथक् । तच्चसीदत्यपःप्राप्य  
नसजीवितुमर्हति ॥ १७ ॥

जिसके निष्ठयूतमें पृथक् २ बहुत  
रंग दीखें और जलमें डूब जाय वह  
मनुष्य जीवनके योग्य नहीं है ॥ १७ ॥

पित्तमुष्मानुगंयस्यशंखौप्राप्यवि  
मृच्छति । सरोगःशंखकोनाम्ना  
त्रिरात्राद्धन्तिजीवितम् ॥ १८ ॥

जिसका ऊष्माका अनुयायी पित्त  
शंखोंको प्राप्त होकर मृच्छित हो जाय  
वह शंखक नामका रोग त्रिरात्रसे जी-  
वितको नष्ट करता है ॥ १८ ॥

सफेनंरुधिरंयस्यमुहुरास्यात्प्रमु  
च्यते । शूलैश्चतुद्यतेकुक्षिःप्रत्या  
ख्येयःसतादृशः ॥ १९ ॥

जिसके मुखसे वारंवार फेन सहित  
रुधिर गिरै और कुक्षिमें शूलकी पीडा  
हो उस प्रकारका वह रोगी प्रत्याख्यान  
करने योग्य है ॥ १९ ॥

वलमांसक्षयस्तीव्रोरोगवृद्धिररो  
चकः । यस्यातुरस्यलक्षन्तेत्री  
नहानसजीवति ॥ २० ॥

बड़ा भारी बल मांसका क्षय और  
रोगकी वृद्धि अरुचि ये जिस रोगीमें  
दीखें वह तीनदिन नहीं जीता है ॥ २० ॥

तत्र श्लोकौ ।

विज्ञानानिमनुष्याणांमरणेप्रत्युप

स्थिते । भवन्त्येतानिसम्पश्येद  
न्यानेवंविधानिच ॥ २१ ॥

उसमें ये दो श्लोक हैं, मरणकी  
उपस्थिति होनेपर मनुष्योंके ये विज्ञान  
होते हैं इनको और इस प्रकारके अन्यभी  
विज्ञानोंको देखें ॥ २१ ॥

तानिसर्वाणिलक्ष्यन्तेनतुसर्वाणि  
मानवम् । विशान्तिविनिशिष्य  
न्ततस्माद्बोध्यानि सर्वशः ॥ २२ ॥

वे सब दीखते हैं परंतु विनाश होने-  
वाले मानवमें सब प्रविष्ट नहीं होते तिससे  
संपूर्ण जानने योग्य हैं इति ॥ २२ ॥

इति यस्यान्यानामिन्द्रियं समाप्तम् ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।

सद्योमरणीयम् ।

इसके अनंतर सद्योमरणीय इन्द्रियका  
व्याख्यान करते हैं कि-

सद्यस्तितिक्षतःप्राणान्लक्षणानिपृ  
थक्पृथक् । अग्निवेश ! प्रवक्ष्या  
मिसंस्पृष्टोयैर्नजीवति ॥ १ ॥

सद्यः प्राणोंको जो त्यागा चाहता है  
हे अग्निवेश उसके उन लक्षणोंको पृथक्  
२ कहता हूँ जिनको प्राप्त होकर नहीं  
जीता है ॥ १ ॥

वाताष्टीलाः सुसंवृत्तास्तिष्ठन्तिदा  
रुणाहृदि । तृष्णयाभिपरीतस्य  
सद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ २ ॥

जिसके हृदयमें गोल और दारुण  
वातकी छीला टिकती है वह तृष्णासे



युक्त उसके जीवितको शीघ्रही नष्ट कर-  
ती है ॥ २ ॥

पिण्डिकेशिथिलीकृत्यजिह्वीकृत्य  
चनासिकाम् । वायुःशरीरेवि  
चरन्सद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ ३ ॥

पिण्डिकाओंको शिथिल और नासि-  
काको जिह्वा ( टेढ़ी ) करके शरीरमें  
विचरता हुआ वायु शीघ्र जीवितको  
नष्ट करता है ॥ ३ ॥

भ्रुवौयस्यच्युतेस्थानादन्तर्दाहश्च  
दारुणः । तस्यहिक्काकरोरोगःस  
द्योमुष्णातिजीवितम् ॥ ४ ॥

जिसकी भ्रुकुटि स्थानसे गिरजाय  
और दारुण अंतर्दाहहो उसके हिक्का  
कारक रोग शीघ्र जीवितको नष्ट कर-  
ता है ॥ ४ ॥

क्षीणशोणितमांसस्यवायुरुद्ध्वग  
तिश्चरन् । उभेमन्येसमेयस्यस  
द्योमुष्णातिजीवितम् ॥ ५ ॥

जिसके मांस शोणित क्षीण हों वायु  
ऊर्ध्वगतिसे विचरता हो दोनों मन्या  
समहों ये उसके जीवितको शीघ्र नष्ट  
करते हैं ॥ ५ ॥

अन्तरेणगुदंगच्छन्नाभिश्चसहसा  
निलः । कृशस्यवंक्षणौगृह्णन्स  
द्योमुष्णातिजीवितम् ॥ ६ ॥

पवन गुदाके मार्गको छोड़कर ना-  
भिमें जाता हो और जिस कृशके वंक्ष-

णोंका ग्रहण करता होय तो सद्यः जी-  
वितको नष्ट करता है ॥ ६ ॥

वितत्यपर्शुकाग्राणिगृहीत्वोरश्च  
मारुतः । स्तिमितस्यायताक्षस्य  
सद्योमुष्णाति जीवितम् ॥ ७ ॥

पर्शुके अग्रके समान तीक्ष्ण बड़ा  
हुआ मारुत, स्तिमित और आयत  
( लंबे ) अक्ष मनुष्यके जीवितको शीघ्र  
चुराता है ॥ ७ ॥

हृदयश्चगुदश्चोभेगृहीत्वामारुतो  
बली । दुर्बलस्यविशेषेणसद्यो  
मुष्णातिजीवितम् ॥ ८ ॥

जिस विशेष दुर्बल मनुष्यके हृदय  
और गुदा दोनोंको ग्रहण करता हुआ  
बलवान् मारुत हो वह उसके जीवितको  
सद्यः नष्ट करता है ॥ ८ ॥

वंक्षणौचगुदश्चोभेगृहीत्वामारुतो  
बली । श्वासंसञ्जनयञ्जन्तोः  
सद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ ९ ॥

वंक्षण और गुदा दोनोंको ग्रहण  
करके बलवान् मारुत श्वासको पैदा  
करके जंतुके जीवितको शीघ्र नष्ट करता है

नाभिंबस्तिशिरोमूत्रं पुरीषश्चापि  
मारुतः । विबध्यजनयञ्छूलं  
सद्योमुष्णातिजीवितम् ॥ १० ॥

नाभि बस्ति शिर मूत्र और पुरीष  
इनको बांधकर शूलको पैदा करता हुआ  
वायु सद्यः जीवितको नष्ट करता है ॥ १० ॥

भिद्येतवंक्षणौयस्यवातशूलैःसम  
न्ततः । भिन्नंपुरीपंतृष्णाचसद्यः  
प्राणाजहातिसः ॥ ११ ॥

जिसके वंक्षणांका भेद चारोंतरफके  
वात शूलसे हो और पुरीपका भेद हो  
और तृष्णा हो वह सद्यः प्राणोंको  
त्यागता है ॥ ११ ॥

आपुनंमारुतेनेहशरीरंयस्यकेव  
लम् । भिन्नंपुरीपंतृष्णाचसद्यो  
जह्यात्सजीवितम् ॥ १२ ॥

जिसके शरीरमें केवल मारुत भरा  
हुआ हो और पुरीपका भेद और तृष्णा  
हो वह सद्यः जीवितको त्यागताहै ॥ १२ ॥

शरीरंशोफितंयस्यवातशोफेनदे  
हिनः । भिन्नंपुरीपंतृष्णाचसद्यो  
जह्यात्सजीवितम् ॥ १३ ॥

जिसके शरीरमें वातके शोफसे सू-  
जन हो और पुरीपका भेद और तृष्णा-  
हो वह सद्यः जीवितको त्यागताहै ॥ १३ ॥

आमाशयसमुत्थानायस्यस्यात्प  
रिकर्तिका । तृष्णागुदग्रहश्चोत्रः  
सद्योजह्यात्सजीवितम् ॥ १४ ॥

जिसके आमाशयमें पैदा हुई परि-  
कर्तिका हो जाय और तृष्णा और अति  
गुद ग्रह हो वह सद्यः जीवितको त्याग-  
ताहै ॥ १४ ॥

पकाशयमधिष्ठायहत्वासंज्ञाश्चमा

रुतः । कण्ठेधुर्धुरकंकटवासद्योह  
रतिजीवितम् ॥ १५ ॥

पकाशयमें टिककर और संज्ञाको नष्ट  
करके और कंठमें धुर्धुर शब्द करके  
पवन सद्यः जीवितको हरता है ॥ १५ ॥

दन्ताःकर्दमचूर्णाभामुखंचूर्णकस  
न्निभम् । शिप्रायन्तेचगात्राणि  
लिङ्गंसद्योमरिष्यतः ॥ १६ ॥

दंत कर्दमके चूर्ण समान और मुख  
चूर्णके समान सपेद हों और गात्रोंमें सिप्रा  
हों ये चिह्न सद्यः मरणहारकेहैं ॥ १६ ॥

तृष्णाश्वासशिरोरोगमोहदौर्बल्य  
कूजनैः । स्पृष्टःप्राणान्जहात्या  
शुशकृद्देनचातुरः ॥ १७ ॥

तृष्णा श्वास शिररोग मोह दुर्बलता  
कूजन इन रोगोंसे युक्त मनुष्य और  
मलभेदी मनुष्य शीघ्र प्राणोंको त्याग-  
ताहै इति ॥ १७ ॥

तत्रश्लोकाः ।

एतानिखलुलिङ्गानियःसम्यगवबु  
ध्यते । सर्जीवितश्चमर्त्यानांमर  
णश्चावबुध्यते ॥ १८ ॥

उसमें यह श्लोकहै कि इन लिंगोंको  
जो वैद्य भली प्रकार निश्चयसे जानताहै  
वह मनुष्योंके जीवित और मरणको  
जान लेताहै ॥ १८ ॥

इति सद्योमरणीयमिन्द्रियं समाप्तम् ॥ १० ॥

## एकादशोऽध्यायः ।

## अणुज्योतीयम् ।

इसके अनंतर अणुज्योतीय इंद्रियका व्याख्यान करते हैं कि ॥

अणुज्योतिरनेकाग्रोदुश्छायोदुर्मनाः  
सदा । रतिनलभतेयातिपरलोकं  
समान्तरे ॥ १ ॥

अणुज्योति जिसकी हो अनेक  
अग्रकी ऊर्द्ध छाया हो सदा दुर्मन हो  
और रतिको प्राप्त न हो वह वर्षके भीतर  
परलोकमें जाता है ॥ १ ॥

बलिबलिभुजोयस्यप्रणीतनोपभु  
जते । लोकान्तरगतःपिण्डंभु  
ङ्क्तेसंवत्सरेणसः ॥ २ ॥

जिसकी दी हुई बलिको बलिभृत  
( काक आदि ) न खांय वह मनुष्य  
लोकान्तरमें जाकर वर्षदिनके भीतर  
पिण्डोंको खाता है ॥ २ ॥

सप्तर्षीणांसमीपस्थांयोनपश्यत्य  
रुन्धतीम् । संवत्सरान्तेजन्तुःस  
सम्पश्यतिमहत्तमः ॥ ३ ॥

जो मनुष्य सप्तर्षियोंके समीपमें  
स्थित अरुंधती की नहीं देखसकता है  
वह मनुष्य संवत्सरके अन्तमें महान्  
तम ( नरक ) में प्रविष्ट होता है ॥ ३ ॥

विकृत्याविनिमित्तंयःशोभामुपचयं  
धनम् । प्राप्नोत्यतोवाविभंशंसमा  
न्तंसजीवति ॥ ४ ॥

विकारसे वा विना निमित्तके जो  
मनुष्य शोभा उपचय धन इनको वा  
इनके नाशको प्राप्त होता है वह वर्षके  
अंतमें न जीवेगा ॥ ४ ॥

भक्तिः शीलंस्मृतिस्त्यागोबुद्धि-  
बलमहेतुकम् । पडेतानिनिवर्तन्ते  
षड्भिर्मासैर्मरिष्यतः ॥ ५ ॥

भक्ति शील स्मृति त्याग बुद्धि और  
अहेतुक बल ये छः उस मनुष्यके निवृत्त  
हो जाते हैं जो छः मासमें मरण-  
हार है ॥ ५ ॥

धमनीनामपूर्वाणांजालमत्यर्थशो  
भनम् । ललाटेदृश्यतेयस्यपण्मां  
सान्नसजीवति ॥ ६ ॥

जिसके ललाटमें अपूर्व धमनीयोंका  
अत्यंत शोभन जल दीखे वह छः मास  
न जीवेगा ॥ ६ ॥

लेखाभिश्चन्द्रवक्त्राभिर्ललाटमुप  
चीयते । यस्यतस्यायुषःषड्भि  
र्मासैरन्तंसमादिशेत् ॥ ७ ॥

जिसका ललाट चंद्रमाके समान  
तिरछी लेखाओंसे पूर्ण हो उसकी आयु  
का अन्त छः मासोंतक कहै ॥ ७ ॥

शरीरकम्पःसंमोहो गतिर्वचनमे  
वच । मत्तस्येवोपलक्ष्यन्तेयस्य  
मासंसजीवति ॥ ८ ॥

शरीरमें कंप संमोह हों और गमन  
और वचन उन्मत्तके समान जिसके  
प्रतीत हों वह एक मास न जीवेगा ॥ ८ ॥

रेतोमूत्रपुरीपाणियस्यमज्जन्ति  
चाम्भसि । समासात्स्वजनद्वेष्टा  
मृत्युवारिणिमज्जति ॥ ९ ॥

जिससे वीर्य मूत्र पुरीष ये सब  
जलमें डूब जाँय अपने जनोंका द्वेष्टा  
वह एक मासमें मृत्यु रूप जलमें  
डूबता है ॥ ९ ॥

हस्तपादंमुखश्चोभौविशेषाद्यस्य  
शुण्यतः । शूयेतेवाविनादेहात्स  
चमासनंजीवति ॥ १० ॥

जिसके हस्त पाद ये दोनों विशेष  
कर शुष्क हो जाँय वा जो देहके विना  
बढ़ जाय वह एक मास न जीवेगा १० ।

ललाटेमूर्ध्निवस्तौवानीलायस्यप्र  
काशते । राजीवालेन्दुकुटिलान  
सजीवितुर्महति ॥ ११ ॥

जिसके ललाट वा मूर्द्धापर वाल  
चंद्रके समान टेढ़ी नीली राजी ( रेखा )  
प्रकट दीखे वह न जीवेगा ॥ ११ ॥

प्रवालगुटिकाज्ञासायस्यगात्रेमसू  
रिकाः । उत्पाद्याशुविनश्यन्ति  
नचिरात्सविनश्यति ॥ १२ ॥

मूंगेकी गोलीके समान मसूरिका जिसके  
गात्रोंमें पैदा होकर शीघ्र नष्ट हो जाती  
हैं वह अल्पकालमेंही नष्ट होताहै ॥ १२ ॥

ग्रीवावमर्दोबलवाञ्जिह्वाश्वय  
थुरेवच । ब्रध्नास्यगलपाकश्वय  
स्यपक्वंतमादिशेत् ॥ १३ ॥

जिसकी ग्रीवामें अवमर्दन हो और  
बलवान् सृजन जिहामें हो ब्रध्न आस्य  
कंठ ये पक्काँय उसे पक्क कहै ॥ १३ ॥

संभ्रमोऽतिप्रलापोऽतिभेदोऽस्थना  
मतिदारुणः । कालपाशपरीत  
स्यत्रयमेतत्प्रवर्तते ॥ १४ ॥

कालपाशसे जो युक्त हो उसके ये  
तीन होतेहैं कि संभ्रम अतिप्रलाप और  
अस्थिर्योमें दारुण भेदन ॥ १४ ॥

प्रमुह्यल्लुञ्चयेत्केशान्परान्गृह्णा  
त्यतीवच । नरःस्वस्थवदाहारव  
चनःकालचोदितः ॥ १५ ॥

प्रकृष्टमोहित होकर केशोंको जो  
उखाड़े और अन्योको ग्रहण जो करताहै  
और निर्वलभी स्वस्थके समान भोजन  
करताहै वह कालका प्रेरितहै ॥ १५ ॥

समीपेचक्षुषोःकृत्वामृगयेतांगुली  
यकम् । स्मयतेऽपिचकालान्ध  
ऊर्ध्वाक्षोऽनिमिपेक्षणः ॥ १६ ॥

नेत्रोंके समीपमें करके अंगूठीकी  
डूँढे, और ऊपरकी है अग्रजिनका और  
अनिमिप जिसके नेत्र हों ऐसा विस्म-  
यको प्राप्त जो हो वह कालसे अंधाहै १६

शयनाद्वसनादङ्गात्काष्ठात्कुड्या  
दथापिवा । असन्मृगयतेकिञ्चि  
त्समुह्यन्कालचोदितः ॥ १७ ॥

शयनमें वसन अंग काष्ठ कुड्य इनमेंसे  
असत् किंचित् वस्तुको जो ढूँढे वह  
मोहित कालका प्रेरित हुआ है ॥ १७ ॥

अहास्यहसनोमुह्यन्प्रलोढिदशन  
च्छदौ । शीतपादकरोच्छ्वासोयो  
नरोनसजीवति ॥ १८ ॥

जो विना हास्यके हंसे और मोहसे  
ओष्ठ चाटै जिसके पाद, कर, शीतल हों  
ऊर्द्ध श्वास हो ऐसा जो नर वह न  
जीवेगा ॥ १८ ॥

आह्वयन्तंसमीपस्थंस्वजनंजनमेव  
वा । महाभोहावृतमनाःपश्यन्न  
पिनपश्यति ॥ १९ ॥

महामोहसे जिसका मन आवृतहै  
वह समीपमें स्थित बुलाते हुये स्वजन  
और अन्य जनको देखता हुआ भी नहीं  
देखताहै अर्थात् पहिचानतानहीं ॥ १९ ॥

अयोगमतियोगंवाशरीरेमतिमा  
न्निपक् । खादीनांयुगपद्दृष्ट्वाभे  
षजनावचारयेत् ॥ २० ॥

बुद्धिमान् वैद्य शरीरमें आकाश  
आदिके अयोगको वा अतियोगको एक  
समयमें देखकर भेषज न करै ॥ २० ॥

अतिप्रवृद्ध्यारोगाणामनसश्चबल  
क्षयात् । वासमुत्सृजतिक्षिप्रंश  
रीरीदेहसंज्ञकम् ॥ २१ ॥

रोगोंकी अत्यंत प्रवृत्तिसे और मनके  
बल नाशसे जीव शरीरनामके वास को  
शीघ्र त्यागता है ॥ २१ ॥

वर्णस्वरावशिवलंवाग्निन्द्रियमनो

बलम् । हीयतेऽसुक्षयेनिद्रानि  
त्याभवतिवानवा ॥ २२ ॥

वर्ण और स्वर अधिका बल वाक्  
इन्द्रिय मन इनके बल प्राणोंके क्षयमें  
नष्ट होते हैं और निद्रा नित्यकी होती  
है वा नहीं होती है ॥ २२ ॥

भिषग्भेषजपानान्नगुरुमित्रद्विष  
श्रये । वशगाःसर्वएवैतेबोद्धव्याः  
समवर्त्तिनः ॥ २३ ॥

भिषक् औषध अन्न पान गुरु मित्र  
इनके जो द्वेषी हैं ये सब वशमें आये  
समवर्त्ति जानने ॥ २३ ॥

एतेपुरोगःक्रमतेभेषजंप्रतिहन्य  
ते । नैषामन्नानिभुञ्जीतनचोदक  
मपिस्पृशेत् ॥ २४ ॥

इनमें रोग बढ़ता है और औषध  
नहीं लगती है, इनके अन्नको न खाये  
और जलका भी स्पर्श न करै ॥ २४ ॥

पादाःसमेताश्चत्वारःसम्पन्नाःसा  
धकैर्गुणैः । व्यर्थागतायुषोद्रव्या  
द्विनानास्तिगुणोदयः ॥ २५ ॥

इकट्ठे हुये चारों जो चिकित्साके पाद  
हैं वे साधक और गुणोंसे युक्तभी हों वे  
सब गतआयु मनुष्यके व्यर्थ हैं द्रव्यके  
बिना गुणोंका उदय नहीं होता इति २५ ॥

परीक्ष्यमायुर्भिषजानिरुजस्यातु  
रस्यच । आयुर्वेदफलंकृत्स्नया  
युर्देहानुवर्त्तते ॥ २६ ॥

रोगरहित और रोगीकी आयुकी परीक्षाको वैद्य करे तो आयुवेदक-फल जो संपूर्ण आयु है उसको देही प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

तत्र श्लोकः ।

क्रियापथमतिक्रान्ताः केवलदेह  
माप्नुताः । चिह्नकुर्वन्तियदोपास्त  
दरिष्टं निरुच्यते ॥ २७ ॥

उसमें यह श्लोक है कि क्रियाके मार्गकी अवलंबन करते हुये केवल देह में आप्नुत ( वर्तमान ) दोष जिस चिह्नको करते हैं उसको अरिष्ट कहते हैं ॥ २७ ॥

इत्यणुज्योतीय इन्द्रिय समाप्तम् ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

गोमयचूर्णीयम् ।

यस्य गोमयचूर्णाभिंचूर्णमूर्द्धनि जा-  
यते । सस्नेहं भक्ष्यते चैव मासान्तं  
तस्य जीवितम् ॥ १ ॥

इसके अनंतर गोमय चूर्णीय इन्द्रिय का व्याख्यान करते हैं कि—

जिसके मूर्द्धनि गोमय चूर्णके समान चूर्ण होजाय और चिकिना होकर गिरता हो उसका मासके अंत तक जीवित है ॥ १ ॥

निर्वर्पन्निवयः पादौ च्युतांसः परि-  
धावति । विकृत्यानसलोकेऽस्मि  
श्विरं वसतिमानवः ॥ २ ॥

जो पादोंको निरंतर घिसकर ( रगड़ता ) और स्कंधोंको गेरकर

दौड़ता है इस विकारसे वह मनुष्य इस लोकमें चिरकाल तक न वसेगा ॥ २ ॥

यस्य स्नातानुलिप्तस्य पूर्वशुष्यत्यु-  
रोभृशम् । आर्द्रपुंसर्वगात्रे पुंसोऽ-  
र्द्धमासं न जीवति ॥ ३ ॥

जिसके स्नान लेपनके अनंतर पहिले छाती अत्यंत शुष्क हो जाय और सब गात्र आर्द्र हों वह अर्द्ध मास न जीवैगा ३ यमुद्दिश्यातुरं त्रैद्यः संवर्त्तयितुमौष-  
धम् । यतमानो न शक्नोति दुर्लभं त-  
स्य जीवितम् ॥ ४ ॥

जिस आतुरके उद्देशसे औषधके प्रचारको करता हुआ वैद्य यत्नसे भी न कर सके उसका जीवित दुर्लभ है ॥ ४ ॥

विज्ञातं बहुशः सिद्धं विधिवच्चावचा-  
रितम् । न सिध्यत्यौषधं यस्य ना-  
स्ति तस्य चिकित्सितम् ॥ ५ ॥

बहुत बार सिद्ध जानी हुई और भली प्रकार दी हुई औषध जिसमें सिद्ध न हो उसकी चिकित्सा नहीं है ॥ ५ ॥

आहारमुपयुज्जानो भिषजासूपक-  
ल्पितम् । यः फलं तस्य नाप्नोति दुर्ल-  
भं तस्य जीवितम् ॥ ६ ॥

वैद्यने भली प्रकार दिये हुये आहारको खाता हुआ जो उसके फलको प्राप्त न हो उसका जीवित दुर्लभ होता है ॥ ६ ॥

दूताधिकारेवक्ष्यामोलक्षणानिमु  
मूर्षताम् । यानिदृष्ट्वाभिपक्प्राज्ञः  
प्रत्याख्येयादसंशयम् ॥ ७ ॥

अब दूताधिकारमें मुमूर्षुओंके लक्ष-  
णोंको कहतेहैं जिनको देखकर बुद्धिमान  
भिपक् निस्संदेह प्रत्याख्यान ( नहीं )  
कर दे ॥ ७ ॥

मुक्तकेशोऽथवानग्रेरुदत्यप्रयतेऽथ  
वा । भिषगभ्यागतंदृष्ट्वादूतमरण  
मादिशेत् ॥ ८ ॥

केशोंको खोलकर अथवा नग्र रोते  
हुये अज्ञांत वैद्यके समीप आये दूतको  
देखकर मरणको कहै ॥ ८ ॥

सुप्तेभिषजि ये दूताश्छिन्दत्यपि  
चभिन्दति । आगच्छन्तिभिपक्  
तेषांनभर्त्तारमनुव्रजेत् ॥ ९ ॥

वैद्यके, शयन करते हुये वा छेदन  
भेदन करते हुयेके संमुखजो दूत आतेहैं  
उनके स्वामीके पास वैद्यन जाय ॥ ९ ॥

जुह्वत्यग्निं तथापिण्डं पितृभ्योनिर्व  
पत्यपि । वैद्येदूताय आयान्ति ते  
घ्नन्तिप्रजिघांसवः ॥ १० ॥

अग्निहोत्र करते हुये पितरोंको पिंड  
देते हुये वैद्यके समीप जो दूत आते हैं  
हत्याके अभिलाषी वे रोगीको हततेहैं १०

कथयत्यप्रशस्तानिचिन्तयत्यथ  
वापुनः । वैद्येदूतामनुष्याणामा  
गच्छन्तिमुमूर्षताम् ॥ ११ ॥

जो दूत, निंदित वचनोंको कहते वा  
मनमें विचारते हुये वैद्यके पास आते हैं  
वे दूत मुमूर्षु मनुष्योंके आते हैं ॥ ११ ॥

मृतदग्धविनष्टानिभजतिव्याहर  
त्यपि । अप्रशस्तानिचान्यानि  
वैद्येदूतामुमूर्षताम् ॥ १२ ॥

मृत, दग्ध और विनष्ट जो वस्तु हैं  
उनको भजते हुये तथा अन्य अमांग-  
लिक वचनोंको कहते हुए वैद्यके सन्मुख  
जो दूत जाते हैं उनको मुमूर्षु पुरुषोंको  
जानै ॥ १२ ॥

विकारसामान्यगुणेश्च देशकालेऽ  
थवाभिपक् । दूतमभ्यागतंदृष्ट्वा  
नातुरंतमुपाचरेत् ॥ १३ ॥

विकारका सामान्यगुण वा देशकाल  
न हो ऐसे समयमें आये दूतको देखकर  
वैद्य उस रोगीकी चिकित्सा नकरै ॥ १३ ॥

दीनभीतद्रुतत्रस्तांमलिनामसतीं  
स्त्रियम् । त्रीन्व्याकृतांश्चपण्डां  
श्चदूतान्विद्यान्मुमूर्षताम् ॥ १४ ॥

दीन भीत द्रुत त्रस्त और मलिन अ-  
सती स्त्री और तीन और व्याकृत ( पंगु  
आदि ) नपुंसक ये दूत मुमूर्षुओंके  
जानने ॥ १४ ॥

अङ्गव्यसननंदूतंलिङ्गिनंव्याधितं  
तथा । संप्रेक्ष्यचोत्रकर्मणानंवैद्यो  
गन्तुमर्हति ॥ १५ ॥

अंगोमें व्यसनी लिंगी रोगी उग्रकर्मी  
ऐसे दूतको देखकर वैद्य जाने योग्य  
नहीं है ॥ १५ ॥

आतुरार्थमनुप्राप्तं खरोट्मथवाहन  
म् । दूतं दृष्ट्वा भिषग्विद्यादातुरस्य  
पराभवम् ॥ १६ ॥

आतुरके लिये प्राप्त हुये खर, ऊंट,  
अश्व वाहन वाले दूतको देखकर वैद्य  
रोगीके पराभव ( मरण ) को जानै ॥ १६ ॥

पलालवुपमांसास्थिकेशलोमनख  
द्विजान् । मार्जनीमुसलं शूर्पमुपान  
द्भविच्युते ॥ १७ ॥

पलाल वृंसा मांस अस्थि केश लोम  
नख दांत मार्जनी मुसल शूर्प और  
भग्न उपानह विच्युत ( पतित ) ॥ १७ ॥

तृणकाष्ठतुपाङ्गारं स्पृशन्तो लोष्टभ  
स्मच । तत्पूर्वदर्शने दूता व्याहर  
न्ति मुमूर्षताम् ॥ १८ ॥

तृण, काष्ठ, तुप, अंगार, लोष्ट, भस्म,  
इनके स्पर्शको वैद्यके प्रथम, दर्शन करते  
हुये दूत मुमूर्षुओंके पंडितोंने कहे हैं ॥ १८ ॥

यस्मिंश्च दूते ब्रुवति वाक्यमातुरसंश्र  
यम् । पश्येन्निमित्तमशुभं तच्च नानु  
ब्रजेद्भिषक् ॥ १९ ॥

आतुरके निमित्त वाक्यको कहते हुये  
दूतके समयमें अशुभ निमित्तको देखे तो  
उसके समीप वैद्य न जाय ॥ १९ ॥

यथा व्यसनिनं प्रेतं प्रेतालङ्कारमेव  
वा । भिन्नं दग्धं विनष्टं वातद्वादीनि  
वचांसि वा ॥ २० ॥

जैसे व्यसनी प्रेत प्रेतका अलंकार,  
भिन्न दग्ध विनष्ट इनको वा इनके कहने  
योग्य वचनोंको ॥ २० ॥

रसो वा कटुकस्तीव्रोगन्धो वा कौण  
पोमहान् । स्पर्शो वा विपुलः क्रूरो  
यद्वा न्यदशुभं भवेत् ॥ २१ ॥

वा तीव्र कटु रस वा मांसकी अत्यंत  
दुर्गन्ध वा बड़ा क्रूर स्पर्श और जो अन्य  
अशुभ हो ॥ २१ ॥

तत्पूर्वमभितो वाक्यं वाक्यकाले  
थवा पुनः । दूतानां व्याहृतं श्रुत्वा  
धीरो मरणमादिशेत् ॥ २२ ॥

वह वाक्यके आदि अंतमें हो वा पुनः  
वाक्यके समयमें हो ऐसे दूतोंके वच-  
नोंको सुनकर मरणको कहै ॥ २२ ॥

इति दूताधिकारोऽयमुक्तः कृत्स्नो  
मुमूर्षताम् । पश्यातुरकुलानाञ्च  
वक्ष्यामौत्पातिकं पुनः ॥ २३ ॥

यह संपूर्ण दूताधिकार मुमूर्षुओंका  
कहा अन्यभी आतुरके कुलका मार्गमें  
उत्पात जो है उस स्वाभाविकको पुनः  
कहते हैं ॥ २३ ॥

अवशुतमथोत्क्रुष्टं स्खलनं पतनं  
तथा । आक्रोशः संप्रहारो वा प्रति  
षेधो विगर्हणम् ॥ २४ ॥



अव कृष्ट क्षुत ( छींक ) उत्कृष्ट  
स्खलन पतन आक्रोश संप्रहार वा निषेध  
निंदा ॥ २४ ॥

वस्त्रोष्णीपोत्तरासङ्गश्छत्रोपान  
युगाश्रयम् । व्यसनंदर्शनश्चापि  
मृतव्यसनिनंतथा ॥ २५ ॥

वस्त्र पगडी डुपट्टा छत्र दोनों उपा-  
नह इनका व्यसन और दर्शन और  
मृत व्यसनी ॥ २५ ॥

चैत्यध्वजपताकानांचूर्णानापत  
नानिच । हतानिष्टप्रवादाश्रदर्शनं  
भस्मपांसुभिः ॥ २६ ॥

चैत्य ध्वजा पताका चूर्ण इनका पतन  
हतोंके अनिष्ट प्रवाद भस्म पांशुका दर्शन  
पथच्छेदोविडालेनशुनासर्पणवा  
पुनः । मृगद्विजानांक्रूराणांगिरो  
दीप्तादिशंप्रति ॥ २७ ॥

मार्गका विडालसे छेदन और श्वान  
सर्प इनसे छेदन क्रूर मृग पक्षियोंकी  
और दीप्त दिशाओंमें वाणीका श्रवण २७

शयनासनयानानामुत्तानानांप्रद  
र्शनम् । इत्येतान्यप्रशस्तानि  
सर्वाण्याहुर्मनीषिणः ॥ २८ ॥

और उलटे शयन आसन यान  
इनका दर्शन इन सबको बुद्धिमानोंने  
अप्रशस्त कहा है ॥ २८ ॥

एतानिपथिवैद्येनपश्यतातुरवर्त्म  
नि।शृण्वताचनगन्तव्यंतदागारं  
विपश्चिता ॥ २९ ॥

इनको मार्गमें आतुरके घर जाता  
हुआ भिषक् देखै और सुनै तो बुद्धि-  
मान् वैद्य रोगीके घर न जाय ॥ २९ ॥

इत्यौत्पातिकमाख्यातंपथिवैद्य  
विगर्हितम् । इमामपिचबुध्येत  
गृहावस्थांमुमूर्षताम् ॥ ३० ॥

यह मार्गमें जो वैद्यको स्वाभाविक  
विगर्हित है वह कहा और मुमूर्षुओंकी  
इस गृहकी अवस्थाकोभी जानै कि ३० ॥

प्रवेशेपूर्णकुम्भाग्रिमृद्बीजफलसर्पि  
षाम् । वृषब्राह्मणरत्नानादेवता  
नांविनिर्गतिम् ॥ ३१ ॥

प्रवेशके समय पूर्णकुंभ, अग्नि, मिट्टी,  
बीज, फल, घी, वृषभ, ब्राह्मण, रत्न,  
अन्न, देवता इनके निकासको ॥ ३१ ॥

अग्निपूर्णानिपात्राणिभिन्नानिवि  
शिखानिच । भिषङ्मुमूर्षतांविश्व  
प्रविशन्नेवपश्यति ॥ ३२ ॥

अग्निसे पूर्ण पात्र भिन्न और शिखा  
रहित इनको प्रवेश करता हुआ देखै तो  
मुमूर्षु जान ले ॥ ३२ ॥

छिन्नभिन्नविदग्धानिभग्नानिमृदि  
तानिच । दुर्बलानिचसेवन्तेमुमू  
र्षेर्वैशिकाजनाः ॥ ३३ ॥

छिन्न भिन्न अवदग्ध भग्न और मर्दन  
किये दुर्बल ये सब घरके मनुष्य जिस  
कीसेवा करते होय तो वह मुमूर्षु है ३३

शयनं वसनं यानं गमनं भोजनं रुत  
म् । श्रूयतेऽमङ्गलं यस्य नास्ति त  
स्य चिकित्सितम् ॥ ३४ ॥

जिसके शयन वस्त्र यान वा अन्य  
सामग्री प्रेतके समान करते हों तो  
वह प्रेतही है ॥ ३४ ॥

शयनं वसनं यानमन्यद्वापि परि  
च्छेदम् । प्रेतवदस्य कुर्वन्ति सु  
हृदः प्रेत एव सः ॥ ३५ ॥

जिसके शयन वसन यान गमन  
भोजन शब्द ये अमंगल सुने जाय  
उसकी चिकित्सा नहीं है ॥ ३५ ॥

अन्नं व्यापद्यतेऽत्यर्थं ज्योतिश्चैवो  
पशाम्यति । निवाते सेन्धनं यस्य  
तस्य नास्ति चिकित्सितम् ॥ ३६ ॥

अन्नमें अत्यंत व्यापत्ति ( न खाना )  
हो और ज्योतिकी शान्ति विना पवन  
इंधनके होनेपर भी हो, उसकी चिकित्सा  
नहीं है ॥ ३६ ॥

आतुरस्य गृहे यस्य भिद्यन्ते वापत  
न्ति वा । अतिमात्रममत्राणि दु  
र्लभंतस्य जीवितम् ॥ ३७ ॥

जिस आतुरके घरमें अत्यंत भेदन  
और पतन पात्रोंके होते हों उसका जी-  
वित दुर्लभ है, इति ॥ ३७ ॥

भवन्ति चात्र ।

यद्वा दशभिर्ध्यायैर्व्यासतः परि

कीर्तितम् । मुमूर्षतां मनुष्याणां  
लक्षणं जीवितान्तकृत् ॥ ३८ ॥

इसमें यह वचन है कि जो द्वादश  
अध्यायोंसे विस्तार पूर्वक मुमूर्षु मनुष्योंके  
जीवितके अंतकारक लक्षण कहें ॥ ३८ ॥

तत्समासेन वक्ष्यामि पर्यायान्तर  
माश्रितम् । पर्यायवचनं ह्यर्थं वि  
ज्ञानायोपपद्यते ॥ ३९ ॥

वे दूसरे नामोंसे संक्षेप पूर्वक कहते हैं  
क्योंकि पर्यायका कथन अर्थके ज्ञानके  
लिये होता है ॥ ३९ ॥

इत्यर्थं पुनरेवेयं विवक्षानो विधीय  
ते । तस्मिन्नेवाधिकरणे यत्पूर्वम  
भिदर्शितम् ॥ ४० ॥

इस लिये यह हमारी विवक्षा उसी  
अधिकारमें जो पूर्व दिखाया है पुनः  
होती है ॥ ४० ॥

वसतां चरमे काले शरीरे पुशरीरि  
णाम् । अत्युग्राणां विनाशाय देहे  
भ्यः प्रविवत्सताम् ॥ ४१ ॥

चरम कालके विषे शरीरोंमें वसते  
हुये जीवोंको अती उग्र ( मुख्य )  
देहोंमेंसे विनाशके लिये जो प्रवास  
( गमन ) किया चाहते हैं ॥ ४१ ॥

इष्टां स्तितिक्षतां प्राणान्कान्तं वासं  
जिहासताम् । तन्त्रयन्त्रेषु भिन्ने  
पुतमोऽन्त्यं प्रविचक्षताम् ॥ ४२ ॥

इष्टभी प्राणोंको जो त्यागा चाहतेहैं और सुंदरभी वासकी त्यागनेके अभिलाषीहैं तंत्र और यंत्रोंका भेदन होनेपर अंत्य तमोगुणमें जो प्रवेश कियाचाहतेहैं ॥ ४२ ॥

विनाशयेहरूपाणियान्यवस्थान्तराणिच । भवन्तितानिवक्ष्यामियथोद्देशंयथागमम् ॥ ४३ ॥

उनके विनाशके लिये जो यहाँ रूपहैं और जो अन्य अवस्थाहैं उन सबको उपदेश और शास्त्रके अनुसार कहताहूँ ॥ ४३ ॥

प्राणाःसमुपतप्यन्तेविज्ञानमुपरुध्यते । वमन्तिवलमङ्गानिचेष्टाव्युपरमन्तिच ॥ ४४ ॥

प्राणोंमें तो अधिक उपताप हो और विज्ञानका उपरोध ( नाश ) हो अंगोंमें बल न रहै और चेष्टाओंका नाश हो जाय ॥ ४४ ॥

इन्द्रियाणिविनश्यन्तिखिलीभूतेवचेतना । औत्सुक्यंभजतेसत्त्वंचेतोभीराविशत्यपि ॥ ४५ ॥

इन्द्रियोंका नाश हो और चेतना न्यूनके समान हो सत्त्वमें उत्साह हो चित्तमें भी ( भय ) का प्रवेश हो ॥ ४५ ॥

स्मृतिस्त्यजतिमेधाचन्हीश्रियौचापसर्पतः । उपप्लवन्तेपाप्मानओजस्तेजश्चनश्यति ॥ ४६ ॥

स्मृति और मेधाका त्याग हो रही और लक्ष्मी चली जाय, पापोंका उपप्लव ( उठना ) हो ओज और तेजका नाश हो ॥ ४६ ॥

शीलंव्यावर्त्ततेऽत्यर्थंभक्तिश्चपारि सर्पते । विक्रियन्तेप्रतिच्छायाश्छायाश्चविकृतिंगताः ॥ ४७ ॥

शीलका अत्यंत नाशहो, भक्ति दूर होजाय प्रतिछायामें विकार हो और छाया प्रकृतिके अनुसार न हो ॥ ४७ ॥

शुक्रंप्रच्यवतेस्थानादुन्मार्गंभजतेऽनिलः । क्षयंमांसानिगच्छन्तिगच्छत्यसृगुपक्षयम् ॥ ४८ ॥

वीर्य स्थानसे गिरता हो पवन विरुद्ध मार्ग होजाय, मांस क्षयको प्राप्त हो जाय और रुधिरका नाश होजाय ॥ ४८ ॥

उष्माणःप्रलयंयान्तिविश्लेषंयान्तिसन्धयः । गन्धाविकृततांयान्तिभेदवर्णस्वरौतथा ॥ ४९ ॥

ऊष्माओंका प्रलय होजाय संधियोंका विश्लेष होजाय, गंधोंमें विकार होजाय वर्ण और स्वरका भेद होजाय ॥ ४९ ॥

वैरस्यंभजतेकायःकायश्छिद्रंविशुध्यति । धूमःसञ्जायतेमूर्ध्निदारुणारव्यश्चचूर्णकः ॥ ५० ॥

काया विरस होजाय कायाके छिद्र विशुद्ध होजाय, मूर्ध्नि धूम होजाय और दारुण नामका चूर्ण होजाय ॥ ५० ॥

सततस्पर्शनादेशाःशरीरेयेऽभिल  
क्षिताः । तेस्तन्मानुगताःसर्वेन  
चलन्तिकथञ्चन ॥ ५१ ॥

शरीरमें जो निरंतर स्पर्शनादेश देश  
दीखते हैं वे सब स्तम्भनकी प्राप्त होकर  
कथंचित् भी न चलते हैं ॥ ५१ ॥

गुणाःशरीरदेशानांशीतोष्णमृदु  
दारुणाः। विपर्ययासेनवर्तन्तेस्था  
नेष्वन्येषुतद्विधाः ॥ ५२ ॥

शरीरके देशोंके जो शीत उष्ण मृदु  
दारुण गुण हैं वे विपरीत रूपसे वर्त  
ते और अन्य स्थानोंमें उन शीत आदिके  
समान हैं ॥ ५२ ॥

नखेषुजायतेपुष्पपङ्क्तोदन्तेपुजा  
यते । जटाःपक्ष्मसुजायन्तेसीम  
न्ताश्चापिमूर्धनि ॥ ५३ ॥

नखोंमें पुष्प हो जाय दांतोंमें पंक्त  
हो जाय पक्ष्मोंमें जटा हो जाय मूर्ध्नि  
सीमन्त हो जाय ॥ ५३ ॥

अपेजानिनसंवृत्तिप्राप्नुवन्तितथा  
रुचिम् । यानिचाप्युपपद्यन्तेते  
पांवीर्यनसिध्यति ॥ ५४ ॥

और औषधोंकी संप्राप्ति न हो और  
रोचक न हो और जो मिलें उनका वीर्य  
सिद्ध नहो ॥ ५४ ॥

नानाप्रकृतयःक्रूराविकाराविवि  
धौषधाः ॥ ५५ ॥

और नाना प्रकारके क्रूर वे  
विकार हों जिनकी अनेक प्रकारकी  
औषध हों ॥ ५५ ॥

क्षिप्रंसमभिवर्तन्तेप्रतिहत्यबलौ  
जसी । शब्दःस्पर्शोरसोरूपगन्ध  
श्रेष्ठाविचिन्तितम् ॥ ५६ ॥

और वे बल ओजकी नष्ट करके  
क्षिप्र हो जाय शब्द स्पर्श रस रूप गंध  
चेष्टा विचिन्तित ॥ ५६ ॥

उत्पद्यन्तेऽशुभान्येवप्रतिकर्मप्रवृ  
त्तिषु । दृश्यन्तेदारुणाःस्वभादौ  
रात्म्यमुपजायते ॥ ५७ ॥

ये प्रत्येक कर्मकी प्रवृत्तिमें अशुभही  
हों और दारुण स्वप्न दीखें और दुरा  
त्मता हो जाय ॥ ५७ ॥

प्रेष्याःप्रतीपतांयान्तिप्रेताकृतिरु  
दीर्यते । प्रकृतिर्हीर्यतेऽन्यथवि  
कृतिश्चाभिवर्द्धते ॥ ५८ ॥

और सेवक विपरीत भावको प्राप्त  
हो जाय और प्रेतकी आकृति ( रूप )  
हो जाय, प्रकृतिकी अत्यंत हानि हो और  
विकृतिकी वृद्धि हो ॥ ५८ ॥

कृत्स्नमौत्पातिकंघोरमरिष्टमुपल  
क्ष्यते । इत्येतानिमनुष्याणांभवं  
न्तिविनाशिष्यताम् ॥ ५९ ॥

और संपूर्ण स्वाभाविक घोर अनिष्ट  
दीखें, ये संपूर्ण चिन्ह विनाश होनेहार  
मनुष्योंके होते हैं ॥ ५९ ॥

लक्षणानियथोद्देशंयान्युक्तानिय  
थागमम् । मरणायेहरूपाणिपश्य  
तापिभिषग्विदा ॥ ६० ॥

ये जो लक्षण उद्देश और शास्त्रके  
अनुसार कहें हैं, इनमें मरणके रूपोंको  
देखता हुआ वैद्यवर ॥ ६० ॥

अपृष्टेननवक्तव्यंमरणंप्रत्युपस्थि  
तम् । पृष्टेनापिनवक्तव्यंतत्रयत्रो  
पघातकम् ॥ ६१ ॥ ५९५०

विना पूछे उपस्थित हुये मरणको  
न कहै और जहाँ तहाँ उपघातक लक्षण  
को पूछनेपरभी न कहै ॥ ६१ ॥

आतुरस्यभवेदुःखमथवान्यस्यक  
स्यचित् । अध्रुवंमरणंयस्यनैन  
मिच्छेच्चिकित्सितम् । यस्यपश्ये  
द्विनाशायलिङ्गानिकुशलोभिषक्

क्योंकि रोगीको दुःख होताहै अथवा  
किसी अन्यको होताहै, तिसके मरणका  
निश्चय नहींहै, ऐसेको देखकर चिकित्सा  
करनेकी इच्छा न करै कुशल वैद्य जिसके  
विनाश कारक लिंगोंको देखै ॥ ६२ ॥

लिङ्गेभ्योमरणाख्येभ्योविपरी  
तानिपश्यता । लिङ्गान्यारोग्य  
मागन्तुवक्तव्यंभिषजाध्रुवम् ॥ ६३ ॥

और मरणके लिंगोंसे विपरीतोंको  
देखता हुआ वैद्य निश्चयसे भावी आरोग्यको कहै ॥ ६३ ॥

दूतैरौत्पातिकैर्भावैःपथ्यातुरकुला  
श्रयैः । आतुराचारशीलैष्टद्रव्य  
सम्पत्तिलक्षणैः ॥ ६४ ॥

दूतोंसे औत्पातिक उन भावोंसे जो  
मार्ग आतुर कुलके आश्रय हैं आतुर  
आचार शील इष्ट द्रव्यकी संपत्तिके लक्ष-  
णोंसे आरोग्यको कहै ॥ ६४ ॥

स्वाचारंहृष्टमव्यङ्ग्यशस्यंशुक्लवा  
ससम् । अमुण्डमजटंदूतंजाति  
वेशक्रियासमम् ॥ ६५ ॥

शोभन आचार हृष्ट अव्यंग्य यशवान्  
शुक्ल वस्त्र, अमुंड जटाहीन जातिवेश  
क्रिया इनमें सम जो दूत है ॥ ६५ ॥

अनुष्टरखरयानस्थमसन्ध्यास्वग्रहे  
पुच । अदारुणेषुनक्षत्रेष्वनुग्रेषु  
ध्रुवेषुच ॥ ६६ ॥

और ऊंट खरके यानपर नहो असन्ध्या  
और अग्रहोंमें अदारुण नक्षत्रोंमें और  
अनुग्र ध्रुव नक्षत्रोंमें ॥ ६६ ॥

विनाचतुर्थीनवमीविनारिक्ताञ्च  
तुर्दशीम् । मध्याह्नञ्चार्द्धरात्रञ्च  
भूकम्पराहुदर्शनम् ॥ ६७ ॥

और चतुर्थी नवमी रिक्ता चतुर्द-  
श मध्याह्न अर्द्धरात्र भूकम्प राहुदर्शन इन  
विना ॥ ६७ ॥

विनादेशमशस्तञ्चशस्तौत्पाति-  
लक्षणम् । दूतंप्रशस्तमव्यग्रंनि  
दिशेदागतंभिषक् ॥ ६८ ॥

